जैन संस्कृति और र स्थान

[राजस्थान के सास्कृतिक विकास मे जैनधर्म के बहुआयामी योगदान का मूल्याकन]

❖

प्रधान सम्पादक

डॉ० नरेन्द्र भानावत

❖

सम्पादक

डॉ० कमलचन्द सोगानी डॉ० शान्ता भानावत

❖

सह सम्पादक

डॉ० प्रेमसुमन जैन डॉ० देव कोठारी

डॉ० महेन्द्र भानावत महावीर कोटिया

❖

प्रकाशक

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

बापू बाजार, जयपुर-३०२००३

जैन संस्कृति और राजस्थान

□

प्रधान सम्पादक

डॉ० नरेन्द्र भानावत

□

प्रकाशक

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

बापू बाजार, जयपुर-३०२००३

□

प्रकाशन-वर्ष—१९७५–७६

मूल्य २५) रु०

□

मुद्रक

फ्रैण्ड्स प्रिण्टर्स एण्ड स्टेशनर्स

जौहरी बाजार, जयपुर-३०२००३

समर्पण

परम श्रद्धेय

चार्य श्री हस्तीमलजी महाराज

के

नैतिक उत्थान एवं सांस्कृतिक जागरण

में निरत

साधनाशील महिमामय व्यक्तित्व

को

र ि

मा

प्रकाशकीय

भगवान् महावीर के २५००वें परिनिर्वाण महोत्सव के उपलक्ष्य मे विद्वान् पाठको की सेवा मे "जैन सस्कृति और राजस्थान" ग्रथ प्रस्तुत करते हुए हमे अत्यन्त प्रसन्नता और गौरव की अनुभूति हो रही है।

भगवान् महावीर के सिद्धान्त किसी वर्ग या धर्म विशेष के लिए नही है। उनमे सर्वधर्मसमभाव, सर्वजातिसमभाव, सर्वजीवसमभाव की लोकमगलकारी पावन धारा प्रवाहित है। जहाँ उनसे वैयक्तिक जीवन विकारमुक्त, शुद्ध और पवित्र बनता है वहाँ सामूहिक सदाचारशीलता का भाव भी जागृत होता है। इसीलिए भ० महावीर की जीवन-गाथा और देशना २५०० वर्षो के बाद भी वर्तमान जीवन-सवेदना के लिए आज उतनी ही ताजी, उपयोगी और सार्थक है।

भगवान् महावीर के इन्ही उदात्त आदर्शों को जीवन और समाज मे, विचार और आचार दोनो स्तरो पर युगपत प्रतिष्ठित करने के लिए, आज से लगभग ३१ वर्ष पूर्व, परम श्रद्धेय जैनाचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा० की प्रेरणा से सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल की स्थापना की गई थी। मण्डल स्वाध्यायी सघ, साधक सघ, जैन सिद्धान्त शिक्षण सस्थान आदि प्रवृत्तियो के माध्यम से चारित्र निर्माणकारी राष्ट्रीय कार्यो मे तभी से सक्रिय रूप से जुडा हुआ है। विचार प्रेरक, सस्कारवर्धक सत्साहित्य के प्रकाशन की दृष्टि से मण्डल ने अब तक लगभग ५० पुस्तकें प्रकाशित की है और 'जिनवाणी' मासिक पात्रिका गत ३३ वर्षो से नियमित रूप से प्रकाशित हो रही है। इसके स्वाध्याय, सामायिक, तप, श्रावकधर्म, साधना, ध्यानयोग आदि विशेपाक विशेप लोकप्रिय और प्रेरक रहे हैं।

भगवान् महावीर परिनिर्वाण वर्ष मे यो तो विपुल साहित्य प्रकाशित हुआ है पर "जैन संस्कृति और राजस्थान" ग्रथ का प्रकाशन, प्रकाशन-क्षेत्र मे एक विशेष उपलब्धि है। इसमे जैन सस्कृति के तत्त्व चिन्तन से सम्बद्ध सामग्री ही नही है वरन् उस चिन्तन से प्रेरित-प्रभावित होकर जैन धर्मावलम्बियो ने पुरातत्त्व, कला, भाषा, साहित्य, प्रशासन, राजनीति, उद्योग, वाणिज्य तथा जन-कल्याणकारी विविध प्रवृत्तियो मे योग देकर विशेषत राजस्थान के सास्कृतिक गौरव की जो अभिवृद्धि की है, उसका प्रमाण पुरस्सर सर्वेक्षात्मक मूल्याकन पहली बार प्रस्तुत किया गया है। इस दृष्टि से यह ग्रथ सामान्य पाठको के लिए ही नही, पुरातत्त्व, कला, साहित्य, समाजशास्त्र और इतिहास के क्षेत्र मे कार्यरत शोधार्थियो एव विद्वानो के लिए भी समान रूप से उपयोगी है।

इस ग्रथ के प्रणयन मे ग्रथ के प्रधान सम्पादक डॉ० नरेन्द्र भानावत व सम्पादक मण्डल के अन्य सदस्यो तथा विद्वान् लेखको का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। राजस्थान जैन सस्कृति परिषद्, उदयपुर का भी सामग्री-सकलन मे विशेष सहयोग रहा है। इन सबके प्रति हम सम्यग्ज्ञान प्रचारक मडल की ओर से हार्दिक आभार प्रकट करते हैं।

आशा है, इस ग्रथ के माध्यम से जैन सस्कृति के अध्ययन का क्षेत्र व्यापक बनेगा और उसका लोकमगलवाही रूप विशेष रूप से उजागर होगा।

सोहननाथ मोदी
अध्यक्ष

चन्द्रराज सिंघवी
मत्री

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर

तृतीय खण्ड

राजस्थान का सांस्कृतिक विकास और जैन धर्मानुयायी (१७६–४६६)

४ उद्योग और वाणिज्य (३४७-३८४)

५. धर्म और समाज (३८५-४६६)

चतुर्थ खण्ड

परिचर्चा (४६७–४९०)

परिशिष्ट

हमारे सहयोगी लेखक (४९१–४९६)

□□

मस्कृति जन का मस्तिष्क है और धर्म जन का हृदय। जब जब सस्कृति ने कठोर रूप धारण किया, हिंसा का पथ अपनाया, अपने रूप को भयावह व विकृत बनाने का प्रयत्न किया, तब तब धर्म ने उसे हृदय का प्यार लुटा कर कोमल बनाया, अहिंसा और करुणा की बरसात कर उसके रक्तानुरजित पथ को शीतल और अमृतमय बनाया, सयम, तप और सदाचार से उसके जीवन को सौन्दर्य और शक्ति का वरदान दिया। मनुष्य की मूल समस्या है—आनन्द की खोज। यह आनन्द तब तक नही मिल सकता जब तक कि मनुष्य भय-मुक्त न हो, आतक-मुक्त न हो। इस भय-मुक्ति के लिये दो शर्तें आवश्यक हैं। प्रथम तो यह कि मनुष्य अपने जीवन को इतना शीलवान, मदाचारी और निर्मल बनाए कि कोई उससे न डरे। द्वितीय यह कि वह अपने मे इतना पुरुषार्थ, सामर्थ्य और बल सचित करे कि कोई उसे डरा-धमका न सके। प्रथम शर्त को धर्म पूर्ण करता है और दूसरी को मस्कृति।

जैनधर्म और मानव-सस्कृति

जैनधर्म ने मानव सस्कृति को नवीन रूप ही नही दिया, उसके अमूर्त भाव तत्त्व को प्रकट करने के लिए सभ्यता का विस्तार भी किया। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव इस मानव-सस्कृति के सूत्रधार बने। उनके पूर्व युगलियो का जीवन था, भोगमूलक दृष्टि की प्रधानता थी, कल्पवृक्षो के आधार पर जीवन चलता था। कर्म और कर्तव्य की भावना सुषुप्त थी। लोग न खेती करते थे न व्यवसाय। उनमे सामाजिक चेतना और लोक दायित्व की भावना के अकुर नही फूटे थे। भगवान् ऋषभदेव ने भोगमूलक सस्कृति के स्थान पर कर्ममूलक सस्कृति की प्रतिष्ठा की। पेड-पौधो पर निर्भर रहने वाले लोगो को खेती करना बताया। आत्म-शक्ति से अनभिज्ञ रहने वाले लोगो को अक्षर और लिपि का ज्ञान देकर पुरुषार्थी बनाया। दैववाद के स्थान पर पुरुषार्थवाद की मान्यता को सपुष्ट किया। अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध लडने के लिये हाथो मे बल दिया। जड सस्कृति को कर्म की गति दी। चेतना शून्य जीवन को सामाजिकता का बोध और सामूहिकता का स्वर दिया। पारिवारिक जीवन को मजबूत बनाया, विवाह, प्रथा का समारम्भ किया। कला-कौशल और उद्योग-धन्धो की व्यवस्था कर निष्क्रिय जीवन-यापन की प्रणाली को सक्रिय और सक्षम बनाया।

सस्कृति का परिष्कार और महावीर

अन्तिम तीर्थंकर महावीर तक आते-आते इस सस्कृति मे कई परिवर्तन हुए। सस्कृति के विशाल सागर मे विभिन्न विचारधाराओ का मिलन हुआ। पर महावीर के समय इस सास्कृतिक

मिलन का कुत्सित और वीभत्स रूप ही सामने आया। संस्कृति का जो निर्मल और लोककल्याणकारी रूप था, वह अब विकारग्रस्त होकर चन्द व्यक्तियो की ही सम्पत्ति बन गया। धर्म के नाम पर क्रिया-काण्ड का प्रचार बढा। यज्ञ के नाम पर मूक पशुओ की बलि दी जाने लगी। अश्वमेध ही नही नरमेध भी होने लगे। वर्णाश्रम व्यवस्था मे कई विकृतिया आ गईं। स्त्री और शूद्र अधम तथा निम्न समझे जाने लगे। उनको आत्म-चिन्तन और सामाजिक-प्रतिष्ठा का कोई अधिकार न रहा। त्यागी-तपस्वी समझे जाने वाले लोग अब लाखो-करोडो की सम्पत्ति के मालिक बन बैठे। सयम का गला घोटकर भोग और ऐश्वर्य किलकारिया मारने लगा। एक प्रकार का सास्कृतिक सकट उपस्थित हो गया। इससे मानवता को उबारना आवश्यक था।

वर्द्धमान महावीर ने सवेदनशील व्यक्ति की भाति इस गभीर स्थिति का अनुशीलन और परीक्षण किया। साढे बारह वर्षों की कठोर साधना के बाद वे मानवता को इस सकट से उबारने के लिए अमृत ले आये। उन्होने घोषणा की—सभी जीव जीना चाहते है, मरना कोई नही चाहता। यज्ञ के नाम पर की गई हिंसा अधर्म है। सच्चा यज्ञ आत्मा को पवित्र बनाने मे है। इसके लिये क्रोध की बलि दीजिए, मान को मारिये, माया को काटिये और लोभ का उन्मूलन कीजिये। महावीर ने प्राणि-मात्र की रक्षा करने का उद्बोधन दिया। धर्म के इस अहिंसामय रूप ने सस्कृति को अत्यन्त सूक्ष्म और विस्तृत बना दिया। उसे जन-रक्षा (मानव-समुदाय) तक सीमित न रखकर समस्त प्राणियो की सुरक्षा का भार भी सभलवा दिया। यह जनतत्र से भी आगे प्राणतत्र की व्यवस्था का सुन्दर उदाहरण है।

जैनधम ने सास्कृतिक विषमता के विरुद्ध अपनी आवाज बुलन्द की। वर्णाश्रम व्यवस्था की विकृति का शुद्धिकरण किया। जन्म के आधार पर उच्चता और नीचता का निर्णय करने वाले ठेकेदारो को मुँह तोड जवाब दिया। कर्म के आधार पर ही व्यक्तित्व की पहचान की। अपमानित और अचल सम्पत्तिवत् मानी जाने वाली नारी के प्रति आत्म-सम्मान और गौरव की भावना जगाई। उसे धर्म ग्रथो को पढने का ही अधिकार नही दिया वरन् आत्मा के चरम विकास मोक्ष की अधिकारिणी माना। श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार इस युग मे सर्वप्रथम मोक्ष जाने वाली ऋषभ की माता मरुदेवी ही थी। नारी को अबला और शक्तिहीन नही समझा गया। उसकी आत्मा मे भी उतनी ही शक्ति सभाव्य मानी गई, जितनी पुरुष मे। महावीर ने चन्दनबाला की इसी शक्ति को पहचान कर उसे साध्वियो का नेतृत्व प्रदान किया। नारी को दब्बू, आत्मभीरु और साधना-क्षेत्र मे बाधक नही माना गया। उसे साधना मे पतित पुरुष को उपदेश देकर सयम-पथ पर लाने वाली प्रेरक शक्ति के रूप मे देखा गया। राजुल ने सयम मे पतित रथनेमि को उद्बोधन देकर अपनी आत्म-शक्ति का ही परिचय नही दिया, वरन् तत्त्वज्ञान का पाडित्य भी प्रदर्शित किया।

सास्कृतिक समन्वय और भावनात्मक एकता।

जैनधर्म ने सास्कृतिक समन्वय और एकता की भावना को भी बलवती बनाया। यह समन्वय विचार और आचार दोनो क्षेत्रो मे देखने को मिलता है। विचार-समन्वय के लिए अनेकान्त-दर्शन की देन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। भगवान् महावीर ने इस दर्शन की मूल भावना का विश्लेषण करते हुए सासारिक प्राणियो को बोध दिया—किसी बात को, सिद्धान्त को एक तरफ से मत देखो, एक ही तरह उस पर विचार मत करो। तुम जो कहते हो वह सच होगा, पर दूसरे जो कहते हैं, वह

भी सच हो सकता है । इसलिये सुनते ही भडको मत, वक्ता के दृष्टिकोण से विचार करो । आज ससार मे जो तनाव और द्वन्द्व है वह दूसरो के दृष्टिकोण को न समझने या विपर्यय रूप से समझने के कारण है । अगर अनेकान्त दृष्टि के आलोक मे सभी राष्ट्र और व्यक्ति चिन्तन करने लग जायें तो झगडे की जड ही न रहे । सस्कृति के रक्षण और प्रसार मे जैनधर्म की यह देन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । आचार-समन्वय की दिशा मे मुनि धर्म और गृहस्थ धर्म की व्यवस्था दी है । प्रवृत्ति और निवृत्ति का सामजस्य किया गया है । ज्ञान और क्रिया का, स्वाध्याय और सामायिक का सन्तुलन इसीलिये आवश्यक माना गया है । मुनि-धर्म के लिये महाव्रतो के परिपालन का विधान है । वहा सर्वथा-प्रकारेण हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह के त्याग की बात कही गई है । गृहस्थ धर्म मे अणुव्रतो की व्यवस्था दी गई है, जहा यथाशक्य इन आचार नियमो का पालन अभिप्रेत है । प्रतिमाधारी श्रावक वानप्रस्थाश्रमी की तरह और साधु सन्यासाश्रमी की तरह माना जा सकता है ।

सास्कृतिक एकता की दृष्टि से जैनधर्म का मूल्याकन करते समय यह स्पष्ट प्रतिभासित होता है कि उसने सम्प्रदायवाद, जातिवाद, प्रान्तीयतावाद, आदि सभी मतभेदो को त्याग कर राष्ट्र-देवता को बडी उदार और आदर की दृष्टि से देखा है । प्रत्येक धर्म के विकसित होने के कुछ विशिष्ट क्षेत्र होते हैं । उन्ही दायरो मे वह धर्म बधा हुआ रहता है पर जैनधर्म इस दृष्टि से किसी जनपद या प्रान्त विशेष मे ही बधा हुआ नही रहा । उसने भारत के किसी एक भाग विशेष को ही अपनी श्रद्धा का, साधना का और चिन्तना का क्षेत्र नही बनाया । वह सम्पूर्ण राष्ट्र को अपना मानकर चला । धर्म का प्रचार करने वाले विभिन्न तीर्थंकारो की जन्मभूमि, दीक्षास्थली, तपोभूमि, निर्वाणस्थली, आदि अलग-अलग रही हैं । भगवान् महावीर विदेह (उत्तर बिहार) मे उत्पन्न हुए तो उनका साधना क्षेत्र व निर्वाण स्थल मगध (दक्षिण बिहार) रहा । तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का जन्म तो वाराणसी मे हुआ पर उनका निर्वाणस्थल बना सम्मेद शिखर । प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव अयोध्या मे जन्मे, पर उनकी तपोभूमि रही कैलाश पर्वत और भगवान् अरिष्टनेमि का कर्म व धर्म क्षेत्र रहा गुजरात । भूमिगत सीमा की दृष्टि से जैनधर्म सम्पूर्ण राष्ट्र मे फैला । देश की चप्पा-चप्पा भूमि इस धर्म की श्रद्धा और शक्ति का आधार बनी । दक्षिणी भारत के श्रवणबेलगोला व कारकल आदि स्थानो पर स्थित बाहुबली के प्रतीक आज भी इस राष्ट्रीय चेतना के प्रतीक हैं ।

जैनधर्म की यह सास्कृतिक एकता भूमिगत ही नही रही । भाषा और साहित्य मे भी उसने समन्वय का यह औदार्य प्रकट किया । जैनाचार्यों ने सस्कृत को ही नही अन्य सभी प्रचलित लोक-भाषाओ को अपना कर उन्हें समुचित सम्मान दिया । जहा-जहा भी वे गए, वहा-वहा की भाषाओ को चाहे वे आर्य परिवार की हो, चाहे द्राविड परिवार की—अपने उपदेश और साहित्य का माध्यम बनाया । इसी उदार प्रवृत्ति के कारण मध्ययुगीन विभिन्न जनपदीय भाषाओ के मूल रूप सुरक्षित रह सके हैं । आज जब भाषा के नाम पर विवाद और मतभेद हैं, तब ऐसे समय मे जैनधर्म की यह उदार दृष्टि अभिनन्दनीय ही नही अनुकरणीय भी है ।

जैनधर्म अपनी समन्वय भावना के कारण ही सगुण और निर्गुण भक्ति के झगडे मे नही पडा । गोस्वामी तुलसीदास के समय इन दोनो भक्ति-धाराओ मे जो समन्वय दिखाई पडता है, उसके बीज जैन भक्तिकाव्य मे आरम्भ से मिलते हैं । जैन दर्शन मे निराकार आत्मा और वीतराग साकार भगवान् के स्वरूप मे एकता के दर्शन होते हैं । पचपरमेष्ठी महामत्र (णमो अरिहताण, णमो सिद्धाण

आदि) मे सगुण और निर्गुण भक्ति का कितना सुन्दर मेल बिठाया है। अर्हन्त सकल परमात्मा कहलाते हैं। उनके शरीर होता है, वे दिखाई देते है। सिद्ध निराकार हैं, उनके कोई शरीर नही होता, उन्हे हम देख नही सकते। एक ही मगलाचरण मे इस प्रकार का समभाव हम देखने को मिलता है।

जैनधर्म का लोकसग्राहक रूप .

धर्म का आविर्भाव जब कभी हुआ विषमता मे समता, अव्यवस्था मे व्यवस्था और अपूर्णता मे सम्पूर्णता स्थापित करने के लिए ही हुआ। अत यह स्पष्ट है कि इसके मूल मे वैयक्तिक अभिक्रम अवश्य रहा पर उसका लक्ष्य समष्टिमूलक हित ही रहा है, उसका चिन्तन लोकहित की भूमिका पर ही अग्रसर हुआ है।

पर सामान्यत जब कभी जैनधर्म या श्रमण धर्म के लोक सग्राहक रूप की चर्चा चलती है तब लोग चुप्पी साध लेते हैं। इसका कारण मेरी समझ मे शायद यह रहा है कि जैन दर्शन मे वैयक्तिक मोक्ष की बात कही गयी है। सामूहिक निर्वाण की बात नही। पर जब हम जैन दर्शन का सम्पूर्ण सदर्भों मे अध्ययन करते हैं तो उसके लोक सग्राहक रूप का मूल उपादान प्राप्त हो जाता है।

लोक सग्राहक रूप का सबसे बडा प्रमाण है लोक नायको के जीवन क्रम की पवित्रता, उनके कार्य-व्यापारो की परिधि और जीवन-लक्ष्य की व्यापकता। जैनधर्म के प्राचीन ग्रथो मे ऐसे कई उल्लेख आते हैं कि राजा श्रावक धर्म अगीकार कर, अपनी सीमाओ मे रहते हुए, लोक कल्याणकारी प्रवृत्तियो का सचालन एव प्रसारण करता है। पर काल-प्रवाह के साथ उसका चिन्तन बढता चलता है और वह देशविरति श्रावक से सर्वविरति श्रमण बन जाता है। सासारिक मायामोह, पारिवारिक प्रपच, देह-आसक्ति आदि मे विरत होकर वह सच्चा साधु, तपस्वी और लोक-सेवक बन जाता है। इस रूप या स्थिति को अपनाते ही उसकी दृष्टि अत्यन्त व्यापक और उसका हृदय अत्यन्त उदार बन जाता है। लोक कल्याण मे व्यवधान पैदा करने वाले सारे तत्व अब पीछे छूट जाते हैं और वह जिस साधना पर बढता है, उसमे न किसी के प्रति राग है न द्वेष। वह सच्चे अर्थों मे श्रमण है।

श्रमण के लिए शमन, समन, समण, आदि शब्दो का भी प्रयोग होता है। उनके मूल मे भी लोक सग्राहक वृत्ति काम करती रही है। लोक सग्राहक वृत्ति का धारक सामान्य पुरुष हो ही नही सकता। उसे अपनी साधना से विशिष्ट गुणो को प्राप्त करना पडता है। क्रोधादि कषायो का शमन करना पडता है, पाच इन्द्रियो और मन को वशवर्ती बनाना पडता है, शत्रु-मित्र तथा स्वजन-परिजन की भेद भावना को दूर हटाकर सबमे समान मन को नियोजित करना पडता है। समस्त प्राणियो के प्रति समभाव की धारणा करनी पडती है। तभी उसमे सच्चे श्रमण-भाव का रूप उभरने लगता है। वह विशिष्ट साधना के कारण तीर्थंकर तक बन जाता है। ये तीर्थंकर तो लोकोपदेशक ही होते हैं।

इस महान् साधना को जो साध लेता है, वह श्रमण बारह उपमाओ से उपमित किया गया है —

> उरग, गिरि, जलण, सागर, णहतल, तरुगण, समोय जो होइ ।
> भमर, मिय, धरणि, जलरुह, रवि, पवण, समोय सो समणो ।।

अर्थात् जो सर्प, पर्वत, अग्नि, सागर, आकाश, वृक्षपक्ति, भ्रमर, मृग, पृथ्वी, कमल, सूर्य और पवन के समान होता है, वह श्रमण कहलाता है।

ये सब उपमाएँ साभिप्राय दी गई है। सर्प की भांति ये साधु भी अपना कोई घर (बिल) नही बनाते। पर्वत की भांति ये परीषहो और उपसर्गों की आंधी से डोलायमान नही होते। अग्नि की भांति ज्ञान रूपी ईन्धन से ये तृप्त नही होते। समुद्र की भांति अथाह ज्ञान को प्राप्त कर भी ये तीर्थंकर की मर्यादा का अतिक्रमण नही करते। आकाश की भांति ये स्वाश्रयी, स्वावलम्बी होते है, किसी के अवलम्बन पर नही टिकते। वृक्ष की भांति समभाव पूर्वक दुख-सुख को सहन करते है। भ्रमर की भांति किसी को बिना पीडा पहुचाये शरीर-रक्षण के लिए आहार ग्रहण करते हैं। मृग की भांति पापकारी प्रवृत्तियो के सिंह से दूर रहते है। पृथ्वी की भांति शीत, ताप, छेदन, भेदन आदि कष्टो को समभाव पूर्वक सहन करते है, कमल की भांति वासना के कीचड और वैभव के जल से अलिप्त रहते है। सूर्य की भांति स्वसाधना एव लोकोपदेशना के द्वारा अज्ञानान्धकार को नष्ट करते हैं। पवन की भांति सवत्र अप्रतिबद्ध रूप से विचरण करते है। ऐसे श्रमणो का वैयक्तिक स्वार्थ हो ही क्या सकता है?

ये श्रमण पूर्ण अहिंसक होते है। षट्काय (पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय) जीवो की रक्षा करते है। न किसी को मारते है, न किसी को मारने की प्रेरणा देते हैं और न जो प्राणियो का वध करते है, उनकी अनुमोदना करते है। इनका यह अहिंसा-प्रेम अत्यन्त सूक्ष्म और गम्भीर होता है।

ये अहिंसा के साथ-साथ सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के भी उपासक होते हैं। किसी की वस्तु बिना पूछे नही उठाते। कामिनी और कचन के सर्वथा त्यागी होते है। आवश्यकता से भी कम वस्तुओ की सेवना करते है। सग्रह करना तो इन्होने सीखा ही नही। ये मनसा, वाचा, कर्मणा किसी का वध नही करते, हथियार उठाकर किसी अत्याचारी—अन्यायी राजा का नाश नही करते, लेकिन इससे उनके लोक सग्रही रूप मे कोई कमी नही आती। भावना की दृष्टि से तो उसमे और वैशिष्ट्य आता है। ये श्रमण पापियो को नष्ट कर उनको मौत के घाट नही उतारते वरन् उन्हे आत्मबोध और उपदेश देकर सही मार्ग पर लाते हैं। ये पापी को मारने मे नही, उसे सुधारने मे विश्वास करते हैं। यही कारण है कि महावीर ने विषदृष्टि सर्प चण्डकौशिक को मारा नही वरन् अपने प्राणो को खतरे मे डाल कर, उसे उसके आत्मस्वरूप से परिचित कराया। बस फिर क्या था? वह विष से अमृत बन गया। लोक-कल्याण की यह प्रक्रिया अत्यन्त सूक्ष्म और गहरी है।

इनका लोक-सग्राहक रूप मानव सम्प्रदाय तक ही सीमित नही है। ये मानव के हित के लिये अन्य प्राणियो का वध करना व्यर्थ ही नही, धर्म के विरुद्ध समझते हैं। इनकी यह लोक-सग्रह की भावना इसीलिये जनतत्र से आगे बढकर प्राणतत्र तक पहुँची है। यदि अयतना से किसी जीव का वध हो जाता है या प्रमादवश किसी को कष्ट पहुचता है तो ये उन सब पापो से दूर हटने के लिए प्रात. साय प्रतिक्रमण (प्रायश्चित) करते हैं। ये नगे पैर पैदल चलते हैं। गाव-गाव और नगर-नगर मे विचरण कर सामाजिक चेतना और सुषुप्त पुरुषार्थ को जागृत करते हैं। चातुर्मास के अलावा किसी भी स्थान पर नियत वास नही करते। अपने पास केवल इतनी वस्तुएँ रखते हैं जिन्हें ये अपने आप उठाकर भ्रमण कर सकें। भोजन के लिये गृहस्थो के यहाँ से भिक्षा लाते हैं। भिक्षा भी जितनी आवश्यकता होती है उतनी ही। दूसरे समय के लिये भोजन का सचय ये नही करते। रात्रि मे न पानी पीते हैं न कुछ खाते हैं।

इनकी दैनिक चर्या भी बड़ी पवित्र होती है। दिन-रात ये स्वाध्याय-मनन-चिन्तन-लेखन और प्रवचन आदि मे लगे रहते हैं। सामान्यत य प्रतिदिन ससार के प्राणियो को धर्मबोध देकर कल्याण के मार्ग पर अग्रसर करते हैं। इनका समूचा जीवन लोक-कल्याण मे ही लगा रहता है। इस लोक-सेवा के लिये ये किसी से कुछ नही लेते।

श्रमण धर्म की यह आचारनिष्ठ दैनन्दिन चर्या इस बात का प्रबल प्रमाण है कि ये श्रमण सच्चे अर्थों मे लोक-रक्षक और लोक-सेवी हैं। यदि आपद्‌काल मे अपनी मर्यादाओ से तनिक भी इधर-उधर होना पड़ता है तो उसके लिये भी ये दण्ड लेते हैं, व्रत-प्रत्याख्यान करते हैं। इतना ही नही, जब कभी अपनी साधना मे कोई बाधा आती है तो उसकी निवृत्ति के लिये परीषह और उपसर्ग आदि की सेवना करते हैं। मैं नही कह सकता, इससे अधिक आचरण की पवित्रता, जीवन की निर्मलता और लक्ष्य की सार्वजनीनता और किस लोक सग्राहक की होगी ?

सामान्यतः यह कहा जाता है कि जैनधर्म ने ससार को दुखमूलक बताकर निराशा की भावना फैलाई है, जीवन मे सयम और विराग की अधिकता पर बल देकर उसकी अनुराग भावना और कला प्रेम को कुठित किया है। पर यह कथन साधार नही है, भ्रातिमूलक है। यह ठीक है कि जैनधर्म ने ससार को दुखमूलक माना, पर किस लिए ? अखण्ड आनन्द की प्राप्ति के लिए, शाश्वत सुख की उपलब्धि के लिए। यदि जैनधर्म ससार को दुखपूर्ण मान कर ही रुक जाता, सुख-प्राप्ति की खोज नही करता, उसके लिए साधना मार्ग की व्यवस्था नही देता तो हम उसे निराशावादी कह सकते थे, पर उसमे तो मानव को महात्मा बनाने की, आत्मा को परमात्मा बनाने की आस्था का बीज छिपा हुआ है। दैववाद के नाम पर अपने को असहाय और निर्बल समझी जाने वाली जनता को किसने आत्म-जागृति का सन्देश दिया ? किसने उसके हृदय मे छिपे हुए पुरुषार्थ को जगाया ? किसने उसे अपने भाग्य का विधाता बनाया ? जैनधर्म की यह विचारधारा युगो बाद आज भी बुद्धिजीवियो की धरोहर बन रही है, सस्कृति को वैज्ञानिक दृष्टि प्रदान कर रही है।

यह कहना भी कि जैनधर्म निरा निवृत्तिमूलक है, ठीक नही है। जीवन के विधायक पक्ष को भी उसने महत्त्व दिया है। इस धर्म के उपदेशक तीर्थंकर लौकिक-अलौकिक वैभव के प्रतीक हैं। दैहिक दृष्टि से वे अनन्त बल, अनन्त सौदर्य और अनन्त पराक्रम के धनी होते है। जैनधर्म की कलात्मक देन अपने आप मे महत्त्वपूर्ण और अलग से अध्ययन की अपेक्षा रखती है। वास्तुकला के क्षेत्र मे विशालकाय कलात्मक मन्दिर, मेरुपर्वत की रचना, नदीश्वर द्वीप व समवसरण की रचना, मानस्तम्भ, चैत्य, स्तूप आदि उल्लेखनीय हैं। मूर्तिकला मे विभिन्न तीर्थंकरो की मूर्तियो को देखा जा सकता है। चित्रकला मे भित्ति चित्र, ताडपत्रीय चित्र, काष्ठ चित्र, लिपि चित्र, वस्त्र पर चित्र आश्चर्य मे डालने वाले हैं। इस प्रकार निवृत्ति और प्रवृत्ति का समन्वय कर जैनधर्म ने सस्कृति को लचीला बनाया है। उसकी कठोरता को कला की बाँह दी है तो उसकी कोमलता को सयम की दृढता।

नैतिक उत्थान और सास्कृतिक जागरण मे योग :

आधुनिक भारत के नवनिर्माण की सामाजिक, धार्मिक, शैक्षणिक, राजनैतिक और आर्थिक प्रवृत्तियो मे जैनधर्मावलम्बियो की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। अधिकाश सम्पन्न जैन श्रावक अपनी आय का एक निश्चित भाग लोकोपकारी प्रवृत्तियो मे व्यय करने के व्रती रहे हैं। जीवदया, पशुबलि निषेध, स्वधर्मी वात्सल्यफड, विधवाश्रम, वृद्धाश्रम, जैसी अनेक प्रवृत्तियो के माध्यम से असहाय लोगों

को सहायता मिली है । समाज मे निम्न और घृणित समझे जाने वाले खटीक, बलाई आदि जाति के भाइयो मे प्रचलित कुव्यसनो को मिटा कर, उन्हें सात्विक जीवन जीने की प्रेरणा देने वाला वीरवाल एव धर्मपाल प्रवृत्ति का रचनात्मक कार्यक्रम अहिंसक समाज-रचना की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है। लौकिक शिक्षण के साथ साथ नैतिक शिक्षण के लिये देश के विभिन्न क्षेत्रो मे कई जैन शिक्षण सस्थाए, स्वाध्याय-शिविर और छात्रावास कार्यरत हैं। निर्धन और मेधावी छात्रो को अपने शिक्षण मे सहायता पहुँचाने के लिये व्यक्तिगत और सामाजिक स्तर पर बने कई धार्मिक और पारमार्थिक ट्रस्ट हैं, जो छात्रवृत्तिया और ऋण देते है। जन-स्वास्थ्य के सुधार की दिशा मे भी जैनियो द्वारा विभिन्न क्षेत्रो मे कई अस्पताल और औषधालय खोले गये है, जहा रोगियो को नि शुल्क तथा रियायती दरो पर चिकित्सा सुविधा प्रदान की जाती है।

जैन साधु और साध्विया वर्षा ऋतु के चार महीनो मे पदयात्रा नही करते। वे एक ही स्थान पर ठहरते हैं जिसे चातुर्मास करना कहते है। इस काल मे जैन लोग तप, त्याग, प्रत्याख्यान, सघ-यात्रा, तीर्थ-यात्रा, मुनि दर्शन, उपवास, आयम्बिल, मासखमण, सवत्सरी, क्षमापर्व जैसे विविध उपासना-प्रकारो द्वारा आध्यात्मिक जागृति के विविध कार्यक्रम बनाते हैं। इससे व्यक्तिगत जीवन निर्मल, स्वस्थ और उदार बनता है तथा सामाजिक जीवन मे बधुत्व, मैत्री, वात्सल्य जैसे भावो की वृद्धि होती है।

अधिकाश जैन धर्मावलम्वी कृषि, वाणिज्य और उद्योग पर निर्भर है। देश के विभिन्न क्षेत्रो मे ये फैले हुए है। इनके बडे-बडे उद्योग-प्रतिष्ठान है। अपने आर्थिक सगठनो द्वारा इन्होने राष्ट्रीय उत्पादन तो बढाया ही है, देश के लिये विदेशी मुद्रा अर्जन करने मे भी इनकी विशेष भूमिका रही है। जैन सस्कारो के कारण मर्यादा से अधिक आय का उपयोग वे सार्वजनिक स्तर के कल्याण कार्यों मे करते रहे हैं।

राजनीतिक चेतना के विकास मे भी जैनियो का सक्रिय योग रहा है। भामाशाह क परम्परा को निभाते हुए कइयो ने राष्ट्रीय रक्षाकोष मे पुष्कल राशि समर्पित की है। स्वतत्रता से पूर्व देशी रियासतो मे कई जैन श्रावक राज्यो के दीवान और सेनापति जैसे महत्त्वपूर्ण पदो पर कार्य करते रहे हैं। स्वतत्रता सग्राम मे क्षेत्रीय आन्दोलनो का नेतृत्व भी उन्होने सभाला है। अहिंसा, सत्याग्रह, भूमिदान, सम्पत्तिदान, भूमि सीमाबदी, आयकर प्रणाली, धर्म निरपेक्षता, जैसे सिद्धान्तो और कार्यक्रमो मे जैन-दर्शन की भावधारा न्यूनाधिक रूप से प्रेरक कारण रही है।

प्राचीन साहित्य के सरक्षक के रूप मे जैनधर्म की विशेष भूमिका रही है। जैन साधुओ ने न केवल मौलिक साहित्य की सजना की वरन् जीर्णशीर्ण, दुर्लभ ग्र थो का प्रतिलेखन कर उनकी रक्षा की और स्थान-स्थान पर ग्र थ भण्डारो की स्थापना कर, इस अमूल्य निधि को सुरक्षित रखा। ये ज्ञान-भण्डार इस दृष्टि से राष्ट्र की अमूल्य निधि हैं। महत्त्वपूर्ण ग्र थो के प्रकाशन का कार्य भी जैन शोध सस्थानो ने अब अपने हाथ मे लिया है। जैन पत्र-पत्रिकाओ द्वारा भी वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन को स्वस्थ और सदाचारयुक्त बनाने की दिशा मे बडी प्रेरणा और शक्ति मिलती रही है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि जैनधर्म की दृष्टि राष्ट्र के सर्वागीण विकास पर रही है। उसने मानव-जीवन की सफलता को ही मुख्य नही माना, उसका बल रहा उसकी सार्थकता और आत्म-शुद्धि पर।

प्रस्तुत ग्रंथ

जैनधर्म-दर्शन से सम्बन्धित तात्त्विक और सैद्धान्तिक ग्रंथ पर्याप्त मात्रा में लिखे गये हैं पर सामाजिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य मे जैन संस्कृति के प्रभावो का मूल्यांकन करने वाले ग्रंथ बहुत ही कम हैं। प्रस्तुत ग्रंथ इस दिशा मे एक विनम्र प्रयास है।

हमने ऊपर जैनधर्म और संस्कृति के मूल्यांकन के जिन आयामो की ओर संकेत किया है, उसी पृष्ठभूमि को ध्यान मे रखते हुए 'जैन संस्कृति और राजस्थान' नामक इस ग्रंथ की योजना तैयार की गई है।

यह ग्रंथ चार खण्डो मे विभक्त है। प्रथम खण्ड 'जैन संस्कृति' से सम्बन्धित है। इसमे जैन संस्कृति के मूल तत्त्वो और उसके ऐतिहासिक विकास पर अधिकृत विद्वानो के १६ लेख संकलित किये गये है। द्वितीय खण्ड मे 'राजस्थान मे जैन संस्कृति का विकास' विषय पर ४ लेख दिये गये हैं जो राजस्थान मे जैनधर्म के विभिन्न सम्प्रदायो की ऐतिहासिकता पर अच्छा प्रकाश डालते है। तृतीय खण्ड 'राजस्थान का सांस्कृतिक विकास और जैन धर्मानुयायी' सबसे बडा और महत्त्वपूर्ण खण्ड है। इसमे ३१ लेख हैं जो ५ भागो मे विभक्त है। ये भाग है—१ पुरातत्त्व और कला, २ भाषा और साहित्य, ३ प्रशासन और राजनीति, ४ उद्योग और वाणिज्य, ५ धर्म और समाज। इस खण्ड के सभी लेख बडे उपयोगी और ज्ञानवर्द्धक हैं। कई लेख ऐसे है जो पहली बार सम्बद्ध विषय पर लिखे गये हैं और शोध क्षेत्र की नई संभावनाओ के द्वार खोलते है। इस खण्ड का अन्तिम लेख 'राजस्थान मे लोकोपकारी जैन संस्थाएं' सर्वेक्षणात्मक लेख है जो धार्मिक प्रवृत्तियो के सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रभाव का बहुरंगी चित्र प्रस्तुत करता है। चतुर्थ खण्ड 'परिचर्चा' से सम्बन्धित है। इसमे विभिन्न क्षेत्रो मे कार्यरत ६ प्रबद्ध विचारको के 'राजस्थान के सांस्कृतिक विकास मे जैनधर्म एवं संस्कृति का योगदान' विषय पर विचार गुंफित किये गये हैं।

इस ग्रंथ के प्रारम्भिक दो खण्डो की अधिकांश सामग्री राजस्थान जैन संस्कृति परिषद्, उदयपुर के सौजन्य से प्राप्त हुई है। इस सहयोग के लिए मैं परिषद् के पदाधिकारियो, विशेषतः डॉ० कमलचन्द सोगानी, श्री बलवन्तसिंह मेहता, श्री जोधसिंह मेहता आदि के प्रति अपना हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ। विद्वान् लेखको ने अत्यन्त व्यस्त रहते हुए भी जिस तत्परता और अपनत्व के साथ अपने लेख भिजवाकर सहयोग प्रदान किया तथा सम्पादक-मण्डल के सदस्यो ने जो आत्मीयतापूर्ण योगदान दिया, उन सबके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना मैं अपना परम कर्तव्य मानता हूँ। सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के मंत्री श्री चन्द्रराज सिंघवी के प्रति मैं विशेष आभार प्रकट करता हूँ जिनके सहयोग से अल्प अवधि मे इतने बडे ग्रंथ के प्रकाशन की व्यवस्था सम्भव हो सकी।

आशा है, जैन संस्कृति और राजस्थान के विकासात्मक सांस्कृतिक अध्ययन की दिशा मे यह ग्रंथ एक महत्त्वपूर्ण घटक सिद्ध होगा और अन्य प्रदेशवासियो को भी इस दृष्टिकोण से सांस्कृतिक अध्ययन-अनुशीलन करने की प्रेरणा मिलेगी।

सी-२३५ ए, दयानन्द मार्ग
तिलक नगर, जयपुर-४

प्रथम खण्ड
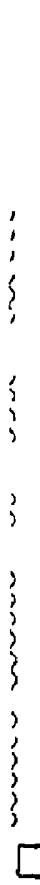
जैन संस्कृति

१ | णमोकार मंत्र

०

डॉ० नेमिचन्द शास्त्री

नमस्कार मत्र

णमो अरिहंताण,

णमो सिद्धाण,

णमो आयरियाण,

णमो उवज्झायाण

णमो लोए सव्व साहूण ।

अरिहन्तो या अर्हन्त को नमस्कार हो, सिद्धो को नमस्कार हो, आचार्यों को नमस्कार हो, उपाध्यायो को नमस्कार हो और लोक के सर्व साधुओ को नमस्कार हो ।

अरिहन्तो को नमस्कार

'णमो अरिहताण' इस पद मे अरिहतो को नमस्कार किया गया है । अरि–शत्रु–शत्रुओ के नाश करने से अरिहत यह सज्ञा प्राप्त होती है । नरक, तिर्यंच, कुमानुष और प्रेत इन पर्यायो मे निवास करने से होने वाले समस्त दु खो की प्राप्ति का निमित्त कारण होने से मोह को अरि–शत्रु कहा गया है ।

मोहरूप अरि के नष्ट हो जाने पर जन्म, मरण की परम्परा रूप ससार के उत्पादन की शक्ति शेप कर्मो मे नही रहने से उन कर्मों का सत्व, असत्व के समान हो जाता है तथा केवलज्ञानादि समस्त आत्मगुणो के आविर्भाव को रोकने मे समर्थ कारण होने से भी मोह को प्रधान शत्रु कहा जाता है । अत उसके नाश करने से अरिहन्त सज्ञा प्राप्त होती है ।

कर्म रूपी शत्रुओ के नाश करने से प्राप्त होने वाले अर्हन्त अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख और अनन्त वीर्यरूप अनन्तचतुष्टय के प्राप्त होने पर इन्द्रादि के द्वारा निर्मित पूजा को प्राप्त होने वाले अर्हत् अथवा घातिया ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय इन चारो कर्मो के नाश होने से अनन्तचतुष्टया विभूति जिनको प्राप्त हो गयी है, उन अर्हन्तो को नमस्कार किया गया है ।

जो ससार से विरक्त होकर, घर छोड़कर मुनि धर्म स्वीकार कर लेते है तथा अपनी आत्मा का स्वभाव साधनकर चार घातिया कर्मों के नाश द्वारा अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य इस अनन्त चतुष्ट को प्राप्त कर लेते है, वे अरहन्त है। ये अरहन्त अपने दिव्य ज्ञान द्वारा ससार के समस्त पदार्थों की समस्त अवस्थाओ को प्रत्यक्ष रूप से जानते है, अपने दिव्य दर्शन द्वारा समस्त पदार्थों का सामान्य अवलोकन करते है। ये आकुलता रहित परम आनन्द का अनुभव करते है। क्षुधा, तृषा, भय, राग, द्वेष, मोह, चिन्ता, बुढापा, रोग, मरण, पसीना, खेद, अभिमान, रति, आश्चर्य, जन्म, नीद और शोक इन अठारह दोषो[1] से रहित होने के कारण परम शान्त होते है, अत वे देव कहलाते है।

अर्हन्तो के मूल दो भेद है—सामान्य अर्हन्त और तीर्थंकर अर्हन्त। अतिशय और धर्म-तीर्थ का प्रवतन तीर्थंकर अर्हन्त मे ही पाया जाता है। अन्य विशेषताए दोनो की समान होती है। कोई भी आत्मा तपश्चरण द्वारा घातिया कर्मो को नष्ट करने पर अर्हन्त पदको प्राप्त कर सकती है।

सिद्धो को नमस्कार

जिन्होने नाना भेदरूप आठ कर्मों का नाश कर दिया है, जो तीन लोक के मस्तक के शेखर स्वरूप है, दु खो से रहित है, सुखरूपी सागर मे निमग्न है, निरजन है, नित्य है, आठ गुणो से युक्त हैं, निर्दोष हैं, कृतकृत्य है। जिन्होने समस्त पर्यायो सहित सम्पूर्ण पदार्थों को जान लिया है, जो वज्रशिला निर्मित अभग्न प्रतिमा के समान अभेद्य आकार से युक्त है, जो पुरुषाकार होने पर भी गुणो से पुरुष के समान नही है, क्योकि पुरुष सम्पूर्ण इन्द्रियो के विषयो को भिन्न-भिन्न देश मे भी जानता है, परन्तु जो प्रत्येक देश मे सब विषयो को जानते हैं, वे सिद्ध है। आत्मा का वास्तविक स्वरूप इस सिद्ध पर्याय मे ही प्रकट होता है, सिद्ध ही पूर्ण स्वतन्त्र और शुद्ध है। इस प्रकार पूर्ण शुद्ध कृतकृत्य, अचल, अनन्त सुख, ज्ञानमय और स्वतन्त्र सिद्ध आत्माओ को 'णमो सिद्धाण' पद मे नमस्कार किया गया है।

आचार्यो को नमस्कार

आचार्य परमेष्ठी को नमस्कार है। जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप और वीर्य इन पाच आचारो का स्वय आचरण करते है और दूसरे साधुओ से आचरण कराते हैं, उन्हे आचार्य कहते हैं जो चौदह विद्या स्थानो मे पारगत हो, ग्यारह अग के धारी हो अथवा आचाराग मात्र के धारी हो अथवा तत्कालीन स्वसमय और परसमय मे पारगत हो, मेरु के समान निश्चल हो, पृथ्वी के समान सहनशील हो, जिन्होने समुद्र के समान मल अर्थात् दोषो को बाहर फेंक दिया हो और जो सात प्रकार के भय से रहित हो, उन्हे आचार्य कहते है।

---

1 श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार घातिकर्मों के उदय से होने वाले अज्ञान, निद्रा, पाच अन्तराय, काम, क्रोध मोह आदि ११ दोष मिलकर १८ दोष बताये गये हैं। क्षुधा, तृषा, रोग, जरा आदि शारीरिक दोषो से आत्मज्ञान मे कोई बाधा नही मानी जाती।

—सम्पादक

परमागम के परिपूर्ण अभ्यास और अनुभव से जिनकी बुद्धि निर्मल हो गयी है, जो निर्दोष रीति से छह आवश्यको का पालन करते हैं, जो मेरु पर्वत के समान निष्कम्प हैं, शूरवीर हैं, सिंह के समान निर्भीक हैं, श्रेष्ठ हैं, सौम्य मूर्ति हैं, आकाश के समान निर्लेप हैं, ऐसे आचार्य परमेष्ठी होते है। ये दीक्षा और प्रायश्चित् देते हैं।

उपाध्यायो को नमस्कार

चौदह विद्यास्थान के व्याख्यान करने वाले उपाध्याय परमेष्ठी को नमस्कार है। तत्कालीन परमागम के व्याख्यान करने वाले उपाध्याय होते हैं। उन उपाध्याय परमेष्ठी के लिए नमस्कार है जिनके पास अनन्त मुनि गण अध्ययन करते हैं, अथवा जिनके निकट द्वादशाग के सूत्र और अर्थो का मुनिगण अध्ययन करते हैं।

साधुओ को नमस्कार

मनुष्य लोक के समस्त साधुओ को नमस्कार है। जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्-चारित्र के द्वारा मोक्षमार्ग की साधना करते हैं तथा सभी प्राणियो मे समान बुद्धि रखते है, वे स्थविरकल्पि और जिनकल्पि आदि भेदो से युक्त साधु हैं।

सिंह के समान पराक्रमी, गज के समान स्वाभिमानी या उन्मत्त, बैल के समान भद्र प्रकृति, मृग के समान सरल, पशु के समान निरीह, गौचरी वृति करने वाले, पवन के समान निस्सग या सर्वत्र विना रुकावट के विचरण करने वाले, सूर्य के समान तेजस्वी या समस्त तत्त्वो के प्रकाशक, समुद्र के समान गम्भीर, सुमेरु के समान परीषह और उपसर्गो के आने पर अकम्प और अडोल रहने वाले, चन्द्रमा के समान शान्तिदायक, मणि के समान प्रभापुन्ज युक्त, पृथ्वी के समान सभी प्रकार की बाधाओ को सहने वाले, सर्प के समान दूसरो के बताये हुए अनियत आश्रय मे रहने वाले, आकाश के समान निरालम्बी या निर्भीक एव सर्वदा मोक्ष का अन्वेषण करने वाले साधु परम परमेष्ठी होते हैं।

नमस्कार-क्रम का औचित्य :

सभी प्रकार के कर्म लेप से रहित सिद्ध परमेष्ठी के विद्यमान रहते हुए अघातिया कर्मो के लेप से युक्त अरिहन्तो को आदि मे नमस्कार क्यो किया है ? इस आशका का उत्तर देते हुए वीरसेन स्वामी ने लिखा है कि यह कोई दोष नही है, क्योकि सबसे अधिक गुणवाले सिद्धो के प्रति श्रद्धा-जागृत करने के कारण अरिहन्त परमेष्ठी ही हैं—अरिहन्त परमेष्ठी के निमित्त—से ही अधिक गुण वाले सिद्धो के प्रति सबसे अधिक श्रद्धा उत्पन्न होती है अथवा यदि अरिहन्त परमेष्ठी न होते तो हम लोगो को आप्त आगम और पदार्थ का परिज्ञान नही हो सकता था। अत अरिहन्त की कृपा से ही हमे बोध की प्राप्ति हुई है, इसलिए उपकार की अपेक्षा से भी आदि मे अरिहन्तो को नमस्कार करना युक्ति सगत है। जो मार्गदर्शक उपकारी होता है उसी का सबसे पहले स्मरण किया जाता है।

आचार्य से कम उपकारी उपाध्याय हैं। आचार्य सर्वसाधारण को अपने उपदेश से धर्म मार्ग मे लगाते हैं। किन्तु उपाध्याय उन जिज्ञासुओ को अध्ययन कराते हैं, जिनके हृदय मे ज्ञानपिपासा

है। उनका सम्बन्ध सर्व साधारण से नही, वल्कि सीमित अध्ययनार्थियो से है। उदाहरण के लिए यो कहा जा सकता है कि आचार्य नेता है जो अगणित प्राणियो की सभा मे अपना प्रभावक उपदेश देकर उन्हे हितकी ओर ले जाता है और उपाध्याय वह प्रोफेसर है, जो एक सीमित कमरे मे बैठे हुए छात्रवृन्द को गम्भीर तत्त्व समझाता है। हैं दोनो ही उपकारी, पर उनके उपकार के परिमाण और गुणो मे अन्तर है। अत आचार्य के अनन्तर उपाध्याय पद का पाठ भी उपकार गुण की न्यूनता के कारण ही रखा गया है।

अन्त मे मुनि पद या साधुपद का पाठ भी उपकार गुण की न्यूनता—के कारण ही रखा गया है। मुनि सर्वदा लोकोपकार से पृथक् रहकर आत्मसाधना मे रत रहते हैं। यद्यपि इनकी सौम्य मुद्रा तथा इनके अहिंसक आचरण का प्रभाव भी समाज पर अमिट पडता है। पर ये आचार्य या उपाध्याय के समान लोककल्याण मे सलग्न नही रहते है। अत 'सव्व साहूण' पद का पाठ सबमे अन्त मे रखा गया है।
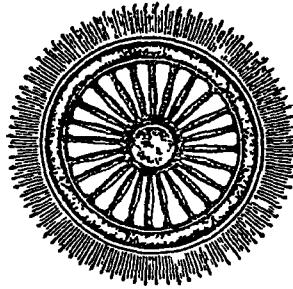
२ णमोकार मन्त्र का वैशिष्ट्य

आचार्य रजनीश

नमस्कार मंत्र का वैशिष्ट्य

अद्भुत है यह बात भी कि इस महामंत्र ने किसी व्यक्ति का नाम नही लिया महावीर का नही, पार्श्वनाथ का नाम नही, किसी का नाम नही। जैन परम्परा का भी कोई नाम नही। यह नमस्कार बडा विराट है। सभवत विश्व के किसी धर्म ने ऐसा महामंत्र, इतना सर्वांगीण, इतना स्वस्पर्शी महामंत्र विकसित नही किया। व्यक्ति का जैसे खयाल भी नही है, केवल शक्ति का खयाल है। रूप पर ध्यान ही नही है, वह जो अरूप सत्ता है, उसी का ध्यान है।

अरिहन्त . शत्रुरहित स्थिति

अरिहन्त शब्द निगेटिव है, नकारात्मक है। उसका अर्थ है—जिनके शत्रु समाप्त हो गये। यह पॉजिटिव नही है, यह विधायक नही है। असल मे इस जगत् मे जो श्रेष्ठतम अवस्था है, उसको निषेध से ही प्रकट किया जा सकता है। 'नेति नेति' से उसको विधायक शब्द नही दिया जा सकता। उसका कारण है–सभी विधायक शब्दो मे सीमा आ जाती है, निषेध मे सीमा नही होती। अगर मैं कहता हूँ–ऐसा है, तो एक सीमा निर्मित होती है। अगर मैं कहता हू कि ऐसा नही है, तो कार्य सीमा नही है। 'नही' की कोई सीमा नही, है की तो सीमा है। तो 'है' तो बडा छोटा शब्द है। 'नही' बहुत विराट है। इसलिए परम शिखर पर रखा है अरिहन्त को। सिर्फ इतना ही कहा है कि जिनके सब शत्रु समाप्त हो गये, जिनके अन्तर्द्वन्द्व विलीन हो गये, नकारात्मक हो गये। जिनमे लोभ नही, मोह नही, काम नही। क्या है यह नही कहा, क्या नही है जिनमे वह कहा ?

सिद्ध सम्पूर्ण उपलब्धि .

इसलिए अरिहन्त बहुत वायवीय, ऐब्स्ट्रेक्ट शब्द है और शायद पकड मे न आये। इसलिए ठीक दूसरे शब्द मे पॉजिटिव का उपयोग किया है—'णमो सिद्धाणम्'। सिद्ध का अर्थ होता है–वे जिन्होने पा लिया। अरिहन्त का अर्थ होता है–वे, जिन्होने कुछ छोड दिया। सिद्ध बहुत पॉजिटिव शब्द है। सिद्धि, उपलब्धि, एचीवमेंट–जिन्होने पा लिया, उनको नम्बर दो पर रखा है। क्यो ? सिद्ध अरिहन्त से छोटा नही होता ? सिद्ध वही पहुँचता है जहा अरिहन्त पहुँचता है। लेकिन भाषा

मे पार्जिटिव नम्बर दो पर रखा जायेगा। सिद्ध के सम्बन्ध मे सिर्फ इतनी ही सूचना है कि पहुच गये, और कुछ नही कहा है। कोई विशेषण नही जोडा। पर पहुच गये कहने भर से हमारी समझ मे वह नही आयेगा। अरिहन्त भी हमे बहुत दूर लगता है। जो शून्य हो गये, निर्वाण को पा गये, मिट गये, नही रहे। सिद्ध भी बहुत दूर है। सिर्फ इतना ही कहा है कि जिन्होंने पा लिया। लेकिन क्या ? और पा लिया तो हम कैसे जानें ?

इसलिए हमारी पकड मे सिद्ध भी न आ सकेगा और मंत्र तो ऐसा चाहिए जो पहली सीढी से लेकर आखिरी शिखर तक जहाँ जो है, वही से पकड मे आ जाय। जो जहा खडा हो वही से यात्रा कर सके। इसलिए तीसरा सूत्र कहा है–आचार्यों को नमस्कार।

आचार्य : ज्ञान और आचरण की एकता

आचार्य का अर्थ है—वह जिसने पाया भी और आचरण मे प्रकट भी किया। आचार्य का अर्थ है जिसका ज्ञान और आचरण एक है। ऐसा नही कि सिद्ध का आचरण ज्ञान से भिन्न होता है। लेकिन शून्य हो सकता है। ऐसा भी नही कि अरहन्त का आचरण भिन्न होता है। लेकिन हो सकता है कि वह हमारी पकड मे न आये। हमे फ्रेम चाहिए जिसमे पकड मे आ जाय। आचार्य मे शायद निकटता मालूम पडेगी। ज्ञान और आचरण के अर्थो मे हम ज्ञान को भी न पहचान पायेंगे, आचरण को पहचान लेंगे। आचरण और ज्ञान जहा एक हो जाये, उसे हम आचार्य कहते हैं।

जो व्यक्ति आचार्य को नमस्कार कर रहा है, वह यह भाव कर रहा है कि मैं नही जानता क्या है ज्ञान, क्या है आचरण ? लेकिन जिनका भी आचरण उनके ज्ञान से उपजता है और बहता है, उनको मैं नमस्कार करता हूँ। अभी भी बात सूक्ष्म है इसलिए चौथे चरण मे उपाध्यायो को नमस्कार किया गया है।

उपाध्याय : ज्ञान और आचरण के साथ उपदेश भी

उपाध्याय का अर्थ है–आचरण ही नही, उपदेश भी। उपाध्याय का अर्थ है—ज्ञान ही नही, आचरण ही नही, उपदेश भी। वे जो जानते हैं, जानकर वैसा जीते हैं और जैसा वे जीते हैं और जानते हैं वैसा बताते भी हैं। उपाध्याय का अर्थ है वह जो बताता भी है। क्योंकि हम मौन से न समझ पाये तो। आचार्य मौन हो सकता है। वह मान सकता है कि आचरण काफी है और अगर तुम्हे आचरण दिखाई नही पडता, तो तुम जानो। उपाध्याय आप पर और भी दया करता है, वह बोलता भी है। वह आपको कह कर भी बताता है।

साधु : सरलता की प्रतिमूर्ति

ये चार स्पष्ट रेखाएं हैं। लेकिन जानने वाले इन चार के बाहर भी छूट जायगे। क्योंकि जानने वालो को केटेगरी से बाधा नही जा सकता। इसलिए पाचवे चरण मे एक सामान्य नमस्कार है। 'नमो लोए सव्व साहूणम्'। लोक मे जो भी साधु हैं उन सबको हमारा नमस्कार है। जो इन चार मे कही भी छूट गये हो उनके प्रति भी हमारा नमन है। पूज्य व्यक्तित्व को केटेगराइज नही किया जा सकता है, खाचो मे नही बाटा जा सकता। इसलिए जो शेष रह जायेंगे उनको सिर्फ 'साधु' कहा है। वे जो सरल हैं। साधु का एक अर्थ और भी है। इतना सरल भी हो सकता है कोई कि आचरण को भी छिपाये। पर उसको भी हमारे नमस्कार पहुचने चाहिए।

नमस्कार मन्त्र : रूपान्तरण की प्रक्रिया

सवाल यह नही है कि हमारे नमस्कार से उनको कुछ फायदा होगा। सवाल यह है कि हमारा नमस्कार हमें रूपान्तरित करता है। न अरिहन्तो को कोई फायदा होगा, न सिद्धो को, न आचार्यो को, न उपाध्यायो को, न साधुओ को। पर आपको फायदा होगा। यह बहुत मजे की बात है कि हम सोचते है कि शायद उस नमस्कार मे हम सिद्धो के लिए अथवा अरिहन्तो के लिए कुछ कर रहे है। तो इस भूल मे न पडे। आप उनके लिए कुछ भी न कर सकेंगे। यह नमस्कार अरिहन्तो के लिए नही है, अरिहन्तो की तरफ है। यह आपके लिए है। इसका जो परिणाम है, वे आप पर होने वाले है जो फल है वे आप पर बरसेंगे। अगर कोई व्यक्ति उस भाति नमन मे भरा हो, तो क्या आप सोचते है, उस व्यक्ति मे अहकार टिक सकेगा ? असभव है।

नमस्कार : नमन का सूत्र

नमोकार नमन का सूत्र है। यह पाच चरणो मे है। समस्त जगत् मे जिन्होने भी कुछ पाया है, जिन्होने भी कुछ जाना है, जिन्होने भी कुछ जिया है, जो जीवन के अन्तर्तम गुह्य रहस्य से परिचित हुए है, जिन्होने मृत्यु पर विजय पायी है, जिन्होने शरीर के पार कुछ पहचाना है उन सबके प्रति नमस्कार। समय और क्षेत्र दोनो मे लोक दो अर्थ रखता है। लोक का अर्थ विस्तार मे जो है स्पेस है, आकाश मे, जो आज है वे। लेकिन जो कल थे, वे भी और जो कल होगे वे भी, लोक मे, सर्व लोक मे, सव्व-साहूण, समस्त साधुओ को समय के अन्तराल के पीछे जो कभी हुए होगे, भविष्य मे जो होगे, और आज जो हैं, वे समय या क्षेत्र मे कही भी, जब भी कही कोई ज्ञानज्योति जगी हो, उस सबके लिए नमस्कार।
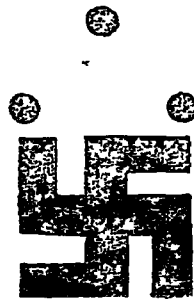
२ आत्मा

•

डॉ० कमलचन्द सोगानी

आत्मा की स्वतन्त्रता :

जैन दर्शन के अनुसार जीव अथवा आत्मा स्वतन्त्र अस्तित्व वाला द्रव्य है। अपने अस्तित्व के लिये न तो यह किसी दूसरे द्रव्य पर आश्रित है और न इस पर आश्रित कोई और दूसरा द्रव्य है। सब द्रव्यो मे जीव ही सर्वश्रेष्ठ द्रव्य है, क्योकि केवल जीव को ही हित-अहित, हेय-उपादेय, सुख-दुःख आदि का ज्ञान होता है। अन्य द्रव्यो—पुद्गल,धर्म, अधर्म, आकाश और काल मे इस प्रकार के ज्ञान का सर्वथा अभाव होता है। द्रव्य की सामान्य परिभाषा के अनुसार आत्मा परिणामी नित्य है। द्रव्य एव गुण अपेक्षा से आत्मा नित्य है किन्तु पर्याय अपेक्षा से परिणामी। आत्मा के ज्ञानादि गुणो की अवस्थाये परिवर्तित होती रहती हैं तथा ससारी आत्मा विभिन्न जन्म ग्रहण करती है, इन अपेक्षाओ से आत्मा परिणामी है और आत्मा कभी भी इन परिवर्तनो मे नष्ट नही होती इस अपेक्षा से नित्य है। यहा यह कहा जा सकता है कि यह लक्षण ससारी आत्मा मे तो घटित हो जाता है, किन्तु मुक्त आत्मा मे नही। पर ऐसा कहना उचित नही है, क्योकि मुक्त आत्मा की नित्यता के विषय मे तो सदेह है ही नही और उसमे ज्ञानादि गुणो का स्वरूप परिणमन होता है इस अपेक्षा से वह परिणामी भी सिद्ध होती है अत आत्मा द्रव्य गुण दृष्टि मे नित्य और पर्याय दृष्टि से परिणामी स्वीकार की गई है।

आत्म स्वातन्त्र्य के प्रमाण

अब यह विचार करना है कि आत्मा के स्वतन्त्र अस्तित्व के लिए प्रमाण क्या है? इसके लिये चार प्रमाण उपस्थित किये जा सकते हैं। प्रथम, अह प्रत्यय अर्थात् 'मैं हू' का कोई न कोई आधार होना आवश्यक है, वह आधार आत्मा ही हो सकता है। यदि आत्मा नही है तो अह प्रत्यय कैसे हो सकता है?[1] द्वितीय, सुख दुःखात्मक भावो की अनुभूति, स्मृति आदि ज्ञान आत्मा के अभाव मे सभव नही है[2] अत आत्मा का अस्तित्व है। तृतीय, आत्मा के अस्तित्व मे सशय, आत्मा के अस्तित्व को प्रमाणित करता है। यदि सशय ही नही तो 'मैं हू या नही हू' यह सशय कहा से उत्पन्न

१—विशेषावश्यक भाष्य, पृ० ४८३

२—कार्तिकेयानुप्रेक्षा, १८३, आचाराग ५—६०

जैन दर्शन जीव को स्वदेह परिमाण स्वीकार करता है।[6] जिस प्रकार दूध मे डाली हुई पद्मरागमणि (नील मणि) उसे अपने रग से प्रकाशित कर देती है उसी प्रकार देह मे रहने वाला जीव भी अपनी देह मात्र को अपने रूप मे प्रकाशित करता है, अर्थात वह स्वदेह मे ही व्याप्त होता है, देह के बाहर नही।[7] जैन दार्शनिको का कथन है कि जिस वस्तु के गुण जहा विद्यमान होते हैं, वह वस्तु भी वही पर होती है। घडा वही है जहा घडे के गुण, रूपादि वर्तमान हैं। इसी प्रकार आत्मा का अस्तित्व भी वही मानना चाहिये जहा आत्मा के ज्ञानादि गुण विद्यमान हैं। अत हम कह सकते है कि आत्मा सर्वव्यापी नही है क्योकि उसके गुण सर्वत्र उपलब्ध नही होते। जिसके गुण सर्वत्र उपलब्ध नही होते वह सर्वव्यापी नही होता, जैसे घट। जो सर्वव्यापी होता है उसके गुण सर्वत्र उपलब्ध होते हैं, जैसे आकाश।[8]

जैन दर्शन की मान्यता है कि ससारी आत्मा अनादिकाल मे कर्मो से बद्ध है। इसी कारण प्रत्येक ससारी जीव जन्म-मरण के चक्कर मे पडा रहता है। इतना होते हुए भी प्रत्येक ससारी आत्मा वस्तुत: सिद्ध समान है।[9] दोनो मे भेद केवल कर्मो के बन्धन का है। यदि कर्मों के बन्धन को हटा दिया जाय तो आत्मा का सिद्ध स्वरूप जो अनन्त ज्ञान, सुख और शक्ति रूप है प्रकट हो जाता है।

जैन दर्शन के अनुसार जीव को प्रभु कहा गया है।[10] इसका अभिप्राय यह है कि जीव स्वय ही अपने उत्थान या पतन का उत्तरदायी है। वही अपना शत्रु है और वही अपना मित्र है।[11] बन्धन

१–विशेषावश्यक भाष्य पृ० ४८३ २–पचास्तिकाय, १३ ३–नियमसार, ३७
४–कार्तिकेयानुप्रेक्षा, १७८ ५–द्रव्य सग्रह, ८९ ६–द्रव्य सग्रह, ३
७–पचास्तिकाय सग्रह, ३३ ८–स्याद्वादमजरी, पृ० ९४ ९–नियमसार, ४८
१०–पचास्तिकाय, २७ ११–उत्तराध्ययन, २०–३७

और मुक्ति उसी के आश्रित है। अज्ञानी से ज्ञानी होने का और बद्ध से मुक्त होने का सामर्थ्य उसी मे है, वह सामर्थ्य कही बाहर मे नही आता वह तो उसके प्रयास मे ही प्रकट होता है।

सासारिक जीव

जैन दर्शन मे जीवो का वर्गीकरण दो दृष्टिकोण से किया गया है—(१) सासारिक और (२) आध्यात्मिक। सासारिक दृष्टिकोण से जीवो का वर्गीकरण इन्द्रियो की अपेक्षा से किया गया है।[1] सबसे निम्न स्तर पर एक इन्द्रिय जीव है जिनके केवल एक स्पर्शन इन्द्रिय ही होती है। वनस्पति वर्ग एक इन्द्रिय जीवो का उदाहरण है। इनमे चेतना सबसे कम विकसित होती है। इनसे उच्च स्तर के जीवो मे दो से पाच इन्द्रियो तक के जीव है। सीपी, शख, बिना पैरो के कीडे आदि के स्पर्शन और रसना ये दो इन्द्रिया होती है। जू, खटमल, चीटी, आदि के स्पर्शन रसना और घ्राण ये तीन इन्द्रिया होती है। मच्छर, मक्खी, भवरा, आदि जीवो के स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु ये चार इन्द्रिया होती हैं। मनुष्य, पशु-पक्षी आदि जीवो के स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण ये पाच इन्द्रिया होती हैं।

जीव तीन प्रकार के बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा

आध्यात्मिक दृष्टिकोण से जीव तीन प्रकार के है—बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा।[2] बहिरात्मा शरीर को ही आत्मा समझता है और शरीर के नष्ट होने पर अपने को नष्ट हुआ समझता है।[3] वह इन्द्रियो के विषयो मे आसक्त रहता है और इच्छित वस्तु के सयोग से प्रसन्न होता है और उसके वियोग से अप्रसन्न।[4] वह मृत्यु के भय से आक्रान्त रहता है।[5] वह कार्माण शरीर रूपी काचली से ढके हुए ज्ञान रूपी शरीर को नही जानता है, इसलिए बहुत काल तक ससार मे भ्रमण करता है।[6]

अन्तरात्मा अपने आत्मा को अपने शरीर से भिन्न समझता है।[7] वह निर्भय होता है अत उसे लोक-भय, परलोक-भय, मरण-भय आदि भय नही होते। उसको कुल, जाति, रूप, ज्ञान, धन, बल, तप और प्रभुता का मद नही होता।[8] उसकी आत्म तत्व मे रुचि पैदा होने से उसकी सासारिक पदार्थो मे आसक्ति नही होती और वह शीघ्र ही जन्म-मरण के चक्कर से छूट जाता है।[9]

परमात्मा वह है जिसने आत्मोत्थान मे पूर्णता प्राप्त कर ली है और काम, क्रोधादि दोषो को नष्ट कर दिया है।[10] एव अनन्त ज्ञान, अनन्त शक्ति और अनन्त सुख प्राप्त कर लिया है तथा जो सदा के लिये जन्म-मरण के चक्कर से मुक्त हो गया है।

□ □ □

१–पचास्तिकाय ११३ से ११७ २–समाधिशतक ४ ३–मोक्षपाहुड ८, ज्ञानार्णव ३२–१८
४–समाधिशतक, ७–५५ परमात्मा प्रकाश, १–८४ ५–समाधिशतक ७६ ६–वही ६८
७–कार्तिकेयानुप्रेक्षा, १९३ ८–मोक्ष पाहुड, १४, ८७ ९–समाधिशतक, १३
१०-मोक्षपाहुड, ५, ६, नियमसार, ७ १० क–तत्वार्थ सूत्र ५–२३। १० ख–द्रव्य सग्रह, ५०
१० ग–नियमसार १७७

४ कर्म

●

डॉ० मोहनलाल मेहता

कर्म सिद्धान्त

भारतीय दार्शनिक चिन्तन मे कर्म सिद्धान्त का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सुख, दु ख एव अन्य प्रकार के सासारिक वैचित्र्य के कारणो की खोज करते हुए भारतीय चिन्तको ने इसका अन्वेषण किया। जो जैसा करता है वैसा भरता है। एक प्राणी दूसरे प्राणी के कर्मफल का अधिकारी नही होता। कर्मवाद किसी-न-किसी रूप मे भारत की समस्त दार्शनिक एव नैतिक विचारधाराओ मे विद्यमान है तथापि इसका जो सुविकसित रूप जैन परम्परा मे उपलब्ध होता है, वह अन्यत्र उपलब्ध नही होता। कर्मवाद जैन विचारधारा एव आचार परम्परा का अविच्छेद्य अग है।

कर्मवाद, नियतिवाद एव इच्छा स्वातत्र्य :

प्राणी अनादिकाल से कर्म-परम्परा मे पडा हुआ है। पुरातन कर्मो के योग एव नवीन कर्मो के बन्धन की परम्परा अनादि काल से चली आ रही है। जीव अपने कृत कर्मो को भोगता हुआ नवीन कर्मो का उपार्जन करता है। ऐसा होते हुए भी यह नही कहा जा सकता कि प्राणी एकान्त रूप से कर्मो के अधीन है अर्थात् वह कर्मो का बन्धन रोक ही नही सकता। यदि प्राणी का प्रत्येक कार्य कर्माधीन ही माना जाए तो वह अपनी आत्मशक्ति का स्वतन्त्रता पूर्वक उपयोग कैसे कर सकेगा ? प्राणी को सर्वथा कर्माधीन मानने पर इच्छा स्वातत्र्य का कोई मूल्य नही रह जाता। परिणामत कर्मवाद नियतिवाद के रूप मे परिणत हो जायगा।

कर्मवाद को नियतिवाद अथवा अनिवार्यतावाद नही कह सकते। कर्मवाद यह नही मानता कि प्राणी जिस प्रकार कर्म का फल भोगने मे परतन्त्र है उसी प्रकार कर्म का उपार्जन करने मे भी परतन्त्र है। कर्मवाद यह मानता है कि प्राणी को स्वोपार्जित कर्म का फल किसी न किसी रूप मे अवश्य भोगना पडता है किन्तु जहा तक नवीन कर्म के उपार्जन का प्रश्न है, वह अमुक सीमा तक स्वतन्त्र होता है। यह सत्य है कि कृत कर्म का भोग किये विना मुक्ति नही हो सकती किन्तु यह अनिवार्य नही कि अमुक समय मे अमुक कर्म का उपार्जन हो ही। आन्तरिक शक्ति तथा बाह्य परिस्थिति को दृष्टि मे रखते हुए प्राणी अमुक सीमा तक नये कर्मो का उपार्जन रोक सकता है।

यही नही, वह अमुक सीमा तक पूर्व कृत कर्मो को शीघ्र अथवा देर से भी भोग सकता है। इस प्रकार कर्मवाद मे सीमित इच्छास्वातन्त्र्य स्वीकार किया गया है।

कर्म का अर्थ

कर्म शब्द का अर्थ साधारणतया काय, प्रवृत्ति अथवा क्रिया किया जाता है। कर्मकाण्ड मे यज्ञ आदि क्रियाएँ कर्म के रूप मे प्रचलित है। पौराणिक परम्परा मे व्रत, नियम आदि क्रियाएँ कर्म रूप मानी जाती है। जैन परम्परा मे कर्म दो प्रकार का माना गया है —द्रव्य कर्म और भावकर्म। कार्मण जाति का पुद्गल अर्थात् जड तत्त्व विशेष जो कि आत्मा के साथ मिलकर कर्म के रूप मे परिणत होता है, द्रव्य कर्म कहलाता है। राग द्वेषात्मक परिणाम को भावकर्म कहते है।

आत्मा और कर्म का सम्बन्ध प्रवाहत अनादि है। जीव पुराने कर्मो का विनाश करता हुआ नवीन कर्मो का उपार्जन करता रहता है। जब तक प्राणी के पूर्वोपार्जित समस्त कर्म नष्ट नही हो जाते एव नवीन कर्मों का उपार्जन बन्द नही हो जाता तब तक उसकी भवबन्धन मे मुक्ति नही होती। एक बार समस्त कर्मो का विनाश हो जाने पर पुन नवीन कर्मो का उपार्जन नही होता क्योकि उस अवस्था मे कर्मोपार्जन का कारण विद्यमान नही रहता। आत्मा की इसी अवस्था को मुक्ति, मोक्ष, निर्वाण अथवा सिद्धि कहते है।

कर्मबन्ध का कारण

जैन परम्परा मे कर्मोपार्जन के दो कारण माने गये है—योग और कषाय। शरीर, वाणी और मन की प्रवृत्ति को योग कहते है। क्रोधादि मानसिक आवेगो को कषाय कहते है। वैसे तो प्रत्येक प्रकार का योग अर्थात् क्रिया कर्मोपार्जन का कारण है किन्तु जो योग कषाय युक्त होता है। उससे होने वाला कर्मबन्ध विशेष बलवान होता है जब कि कषाय रहित क्रिया से होने वाला कर्मबन्ध अति निर्बल व अल्पायु होता है। दूसरे शब्दो मे कषाययुक्त अर्थात् राग-द्वेषजनित प्रवृत्ति ही कर्म-बन्ध का महत्त्वपूर्ण कारण है।

कर्मबन्ध की प्रक्रिया

सम्पूर्ण लोक मे ऐसा कोई भी स्थान नही है जहा कर्मयोग्य परमाणु विद्यमान न हो। जब प्राणी अपने मन, वचन अथवा तन से किसी भी प्रकार की प्रवृत्ति करता है तब उसके आस-पास चारो ओर से कर्मयोग्य परमाणुओ का आकर्षण होता है अर्थात् जितने क्षेत्र मे आत्मा विद्यमान होती है उतने ही क्षेत्र मे विद्यमान परमाणु उसके द्वारा उस समय ग्रहण किये जाते है। प्रवृत्ति की तरतमता के अनुसार परमाणुओ की मात्रा मे भी तारतम्य होता है। गृहीत परमाणुओ के समूह का कर्मरूप से आत्मा के साथ बद्ध होना जैन कर्मवाद की परिभाषा मे प्रदेशबन्ध कहलाता है। इन्हीं परमाणुओ की ज्ञानावरणादि रूप परिणति को प्रकृतिबन्ध कहते है। कर्मफल के काल को स्थिति बन्ध तथा कर्मफल की तीव्रता-मदता को अनुभाव बन्ध कहते हैं। कर्म बधते ही फल देना प्रारम्भ नही कर देते। कुछ समय तक वे वैसे ही पड़े रहते हैं। कर्म के इस काल को अबाधाकाल कहते हैं। अबाधाकाल के व्यतीत होने पर ही बद्धकर्म फल देना प्रारम्भ करते हैं। कर्मफल का प्रारम्भ ही कर्म का उदय कहलाता है। कर्म अपने स्थिति बन्ध के अनुसार उदय मे आते रहते हैं एव फल प्रदान

कर्म प्रकृति

जैन कर्मशास्त्र मे कर्म की आठ मूल प्रकृतियाँ मानी गई है। ये प्रकृतियाँ प्राणी को भिन्न-भिन्न प्रकार के अनुकूल एव प्रतिकूल फल प्रदान करती है। उन आठ प्रकृतियो के नाम ये है :—
(१) ज्ञानावरण (२) दर्शनावरण, (३) वेदनीय, (४) मोहनीय, (५) आयु, (६) नाम, (७) गोत्र व (८) अन्तराय। इनमे से ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय—ये चार घाती प्रकृतिया है क्योकि इनसे आत्मा के चार मूल गुणो ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य का घात होता है। शेष चार प्रकृतिया अघाती है क्योकि ये आत्मा के किसी गुण का घात नही करती। ज्ञानावरण कर्मप्रकृति आत्मा के ज्ञान गुण का घात करती है। दर्शनावरण कर्मप्रकृति आत्मा के दर्शन गुण का घात करती है। मोहनीय कर्मप्रकृति से आत्मसुख का घात होता है। अन्तराय कर्मप्रकृति के कारण वीर्य अर्थात् आत्म शक्ति का घात होता है। वेदनीय कर्मप्रकृति अनुकूल एव प्रतिकूल सवेदन अर्थात् सुख दुख के अनुभव का कारण है। आयु कर्मप्रकृति के कारण नरकादि विविध भवो की प्राप्ति होती है। नाम कर्मप्रकृति विविध शरीर आदि का कारण है। गोत्र कर्मप्रकृति प्राणियो के उच्चत्व एव नीचत्व का कारण है।

कर्मफल की तीव्रता और मन्दता का आधार तन्निमित्तक कषायो की तीव्रता–मन्दता है। जो प्राणी जितना अधिक कषाय की तीव्रता से युक्त होगा, उसके अशुभ कर्म उतने ही प्रबल एव शुभ कर्म उतने ही निर्बल होगे। जो प्राणी जितना अधिक कषायमुक्त एव विशुद्ध होगा, उसके शुभ कर्म उतने ही अधिक प्रबल एव अशुभकर्म उतने ही अधिक दुर्बल होगे।

कर्म और पुनर्जन्म

कर्म और पुनर्जन्म का अविच्छेद्य सम्बन्ध है। कर्म की सत्ता स्वीकार करने पर तद्फलरूप परलोक अथवा पुनर्जन्म की सत्ता भी स्वीकार करनी पडती है। जैन कर्म-साहित्य मे समस्त ससारी जीवो का समावेश चार गतियो मे किया गया है—मनुष्य, तिर्यंच, नारक और देव। मृत्यु के पश्चात् प्राणी अपने गति नाम कर्म के अनुसार इन चार गतियो मे से किसी एक गति मे उत्पन्न होता है। जब जीव शरीर छोडकर दूसरा शरीर धारण करने वाला होता है तब आनुपूर्वी नाम कर्म उसे अपने उत्पत्ति स्थान पर पहुचा देता है। गत्यन्तर के समय जीव के साथ केवल दो प्रकार के शरीर रहते है—तैजस और कार्मण। अन्य प्रकार के शरीर औदारिक अथवा वैक्रिय का निर्माण वहा पहुचने के बाद प्रारम्भ होता है।

---

५ हिंसा

•

मुनि नथमल

अहिंसा-साधना :

भगवान् ऋषभदेव ने जो साधना अपनायी वह अहिंसा की साधना थी। उन्होने सर्व प्राणातिपात का विरमण किया। यही से अहिंसा का स्रोत बहा, उपदेशलब्ध धर्म का प्रवर्तन हुआ। दूसरो का प्राण नाश करना मनुष्य के हित मे नही है, इस भावना मे प्राणातिपात विरति का सूत्रपात हुआ। उसका विकास होते होते वह चतुर्रूप बन गई —

१—२ पर प्राण-वध जैसे पाप है, वैसे स्व-प्राण वध भी पाप है।

३—४ पर के आत्मगुण का विनाश करना जैसे पाप है, वैसे अपने आत्म-गुण का विनाश करना भी पाप है।

प्राणातिपात विरमण के इस विस्तृत अर्थ को सक्षेप मे रखने की आवश्यकता हुई तब अहिंसा शब्द प्रयोग मे आया। इसका सम्बन्ध केवल प्राण-वध से न होकर असत्-प्रवृत्ति मात्र से होता है। कल्पना की दृष्टि से भी यह सगत लगता है। पहले-पहल जब दूसरो को न मारने की भावना उत्पन्न हुई, तब उसकी अभिव्यक्ति के लिए प्राणातिपात विरति शब्द ही पर्याप्त था। किन्तु अनुभव जैसे आगे बढा, प्राण-वध के बिना भी प्रवृत्तियो मे दोष प्रतीत हुआ, तब एक ऐसे शब्द की आवश्यकता हुई, जो केवल प्राण-वध का अभिव्यजक न होकर सदोष-प्रवृत्ति मात्र (आत्मा की विभाव परिणति मात्र) का व्यजक हो। इसी खोज के फलस्वरूप अहिंसा शब्द प्रयोग मे आया। इस कल्पना को साहित्य का आधार भी मिल जाता है—

१—'आचाराग' सूत्र मे तीन महाव्रत—अहिंसा, सत्य और बहिद्धादान का उल्लेख मिलता है।[1]

२—'स्थानाग', 'उत्तराध्ययन' आदि मे चार याम—अहिंसा, सत्य, अचौर्य और बहिद्धादान का उल्लेख मिलता है।[2] चातुर्याम का उल्लेख बौद्ध पिटको मे भी हुआ है।[3]

१—आचाराग ८।१५ २—(क) स्थानाग २६६, (ख) उत्तराध्ययन २३।२३ ३—दीर्घनिकाय

३—पाच महाव्रत—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का उल्लेख अनेक स्थलों पर हुआ है।[1]

इन विविध परम्परा से फलित यह हुआ कि धर्म का मौलिक रूप अहिंसा है। सत्य आदि उसका विस्तार है, इसलिए आचार्यों ने लिखा है 'अवसेसा तस्स रक्खट्ठा' शेष व्रत अहिंसा की सुरक्षा के लिए है। काव्य की भाषा मे अहिंसा धान है, सत्य आदि उसकी रक्षा करने वाले बाडे है।[2] अहिंसा जल है और सत्य आदि उसकी रक्षा के लिए सेतु है।[3] सार यही है कि दूसरे सभी व्रत अहिंसा के ही पहलू है।

किसी भी प्राणी की हिंसा नही करनी चाहिए—यही ज्ञानियों के ज्ञान वचनो का सार है। अहिंसा, समता—सब जीवो के प्रति आत्मसात् भाव—इसे ही शाश्वत धर्म समझो।[4]

अहिंसा की परिभाषा

अहिंसा को भगवान् ने जीवो के लिए कल्याणकारी देखा है। सर्व जीवो के प्रति संयमपूर्ण जीवन-व्यवहार ही अहिंसा है।[5]

मनसा, वाचा और कर्मणा जो स्वय जीवो की हिंसा करता है, दूसरो से करवाता है, या जो जीव हिंसा का अनुमोदन करता है, वह (प्रति हिंसा को जगाता हुआ) वैर की वृद्धि करता है।[6]

सुख-दु ख, प्रिय-अप्रिय की वृत्ति प्राणी मात्र मे तुल्य होती है। अहिंसा की भावना को समझने और बलवान् बनाने के लिये यह आत्म तुला का सिद्धान्त अत्यन्त उपयोगी है। इसीलिए भगवान् महावीर ने बताया है—छह जीव—निकाय को अपनी आत्मा के समान समझो।[7] प्राणी मात्र को आत्म तुल्य समझो।

हे पुरुष जिसे तू मारने की इच्छा करता है, विचार कर, वह तेरे जीवन जैसा ही सुख-दु ख का अनुभव करने वाला प्राणी है, जिस पर तू हुकूमत करने की इच्छा करता है, विचार कर, वह तेरे जैसा ही प्राणी है, जिसे तू दु ख देने का विचार करता है, विचार कर, वह तेरे जैसा ही प्राणी है, जिसे तू अपने वश मे करने की इच्छा करता है, विचार कर, वह तेरे जैसा ही प्राणी है, तू जिसके प्राण लेने की इच्छा करता है, विचार कर वह तेरे जैसा ही प्राणी है।

सत्पुरुष इसी तरह विवेक रखता हुआ जीवन बिताता है, न किसी को मारता है और न किसी का घात करता है।

जो हिंसा करता है, उसका फल पीछे भोगना पडता है, अत किसी भी प्राणी की हिंसा करने की कामना न करें।

१—उत्तराध्ययन २१।२२ २—हारिभद्रीय अष्टक १६।५ ३—योगशास्त्र प्रकाश ४—वही, ११।४।१० ५—दशवैकालिक ६।८ ६—वही, ७—दशवैकालिक १०।५

जैसे मुझे कोई बेंत हड्डी, कंकर आदि से मारे, पीटे, ताड़ित करे, तर्जन करे, दुःख दे, व्याकुल करे, भयभीत करे, प्राण-हरण करे तो मुझे दुःख होता है, जैसे मृत्यु से लेकर रोम उखाड़ने तक से मुझे दुःख होता है और भय होता है, वैसे ही सब प्राणी, भूत, जीव और सत्वों को होता है। यह सोच कर किसी भी प्राणी, भूत, जीव व सत्व को नहीं मारना चाहिये, उस पर हुकूमत नहीं करनी चाहिए, यह धर्म ध्रुव, नित्य और शाश्वत है।[1]

अहिंसा के दो रूप

अहिंसा का शब्दानुसारी अर्थ है—हिंसा न करना। अ+हिंसा—इन दो शब्दों से अहिंसा शब्द बना है। इसके पारिभाषिक अर्थ निषेधात्मक एवं विधेयात्मक—दोनों हैं। राग-द्वेषात्मक प्रवृत्ति न करना, प्राण वध न करना, या प्रवृत्ति मात्र का विरोध करना निषेधात्मक अहिंसा है। सत्प्रवृत्ति करना, स्वाध्याय, अध्यात्म-सेवा, उपदेश, ज्ञानचर्चा आदि आत्महितकारी क्रिया करना विधेयात्मक अहिंसा है। संयमी के द्वारा अशक्य कोटि का प्राणवध हो जाता है, वह भी निषेधात्मक अहिंसा है यानी हिंसा नहीं है। निषेधात्मक अहिंसा में केवल हिंसा का वर्जन होता है, विधेयात्मक अहिंसा में सत् क्रियात्मक सक्रियता होती है। यह स्थूल दृष्टि का निर्णय है। गहराई में पहुंचने पर बात कुछ और है। निषेध में प्रवृत्ति और प्रवृत्ति में निषेध होता है। निषेधात्मक अहिंसा में सत् प्रवृत्ति और सत्प्रवृत्यात्मक अहिंसा में हिंसा का निषेध होता है। हिंसा न करने वाला यदि आन्तरिक प्रवृत्तियों को शुद्ध न करे तो वह अहिंसा नहीं होगी। इसलिए निषेधात्मक अहिंसा में सत्प्रवृत्यात्मक अहिंसा में हिंसा का निषेध होना आवश्यक है, इसके बिना कोई प्रवृत्ति सत् या अहिंसा नहीं हो सकती, यह निश्चय दृष्टि की बात है। व्यवहार में निषेधात्मक अहिंसा को निष्क्रिय अहिंसा और विधेयात्मक अहिंसा को सक्रिय अहिंसा कहा जाता है।

आत्म-तुला के मर्म को समझे बिना हिंसा-वृत्ति नहीं छूटती। इसीलिए अहिंसा में मैत्री-रूप विधि और अमैत्री त्याग रूप निषेध दोनों समाए हुए हैं।

सब जीवों को अपने समान समझो और किसी को हानि मत पहुचाओ, इन शब्दों में अहिंसा का द्वयर्थी सिद्धान्त—विधेयात्मक और निषेधात्मक सन्निहित है। विधेयात्मक में एकता का संदेश है, सबमें अपने आपको देखो। निषेधात्मक उससे उत्पन्न होता है—किसी को भी हानि मत पहुँचाओ। सब में अपने आपको देखने का अर्थ है—सबको हानि पहुचाने से बचना। यह हानि रहितता सबमें एक की कल्पना में विकसित होती है।[2]

नकारात्मक अहिंसा

'स्थानांग' सूत्र में संयम की परिभाषा बताते हुए लिखा है—सुख का व्यपरोपण या वियोग न करना और दुःख का संयोग करना—संयम है।[3] यह निवृत्ति रूप अहिंसा है।

१—आचारांग १।५।१०१–१०३ २—हिन्दुस्तान, दिनांक २८ मार्च, १९५३ : भगवान् महावीर उनका जीवन और संदेश। ३—स्थानांग ४।४

'आचाराग' सूत्र मे धर्म की परिभाषा बताते हुए लिखा है—किसी प्राणी को मत मारो, उस पर अनुशासन मत करो, उसको अधीन मत करो, दास-दासी की तरह पराधीन बना कर मत रखो, परिताप मत दो, प्राण-वियोग मत करो। यह धर्म ध्रुव, नित्य और शाश्वत है। सर्वज्ञ तीर्थंकरो ने इसका उपदेश किया है। यह भी निवृत्ति रूप अहिंसा है।

भगवान महावीर ने प्रवृत्ति रूप अहिंसा का भी विधान किया है किन्तु सब प्रवृत्ति अहिंसा नही होती। चारित्र मे जो प्रवृत्ति है, वही अहिंसा है। अहिंसा के क्षेत्र मे आत्मलक्षी प्रवृत्ति का विधान है और ससारलक्षी या पर-पदार्थलक्षी प्रवृत्ति का निषेध। ये दोनो क्रमश विधि रूप अहिंसा और निषेध रूप अहिंसा बनते हैं। 'उत्तराध्ययन सूत्र' मे कहा है—समिति अर्थात् सत् व्यापार, यह प्रवृत्ति धर्म है और गुप्ति अर्थात् असत् व्यापार का नियन्त्रण, यह निवृत्ति धर्म है।[1]

सर्व प्राणियो के साथ मैत्री रखो[2]—यह कथन भी प्रवृत्ति रूप अहिंसा का विधान करता है।

वस्तु-तत्त्व को जानने वाले व्यक्ति, प्राणी मात्र को आत्म तुल्य समझ कर पीडित नही करते। वे समझते हैं जैसे कोई दुष्ट पुरुष मुझे मारता है, गाली देता है, बलात्कार करता है, दास-दासी बना अपनी आज्ञा का पालन कराता है, तब मैं जैसा दुख अनुभव करता हू वैसे ही दूसरे प्राणी भी मारने, पीटने, गाली देने, बलात्कार से दास-दासी बना आज्ञा-पालन कराने से दुख अनुभव करते होगे। इसलिए किसी भी प्राणी को मारना, कष्ट देना, बलात् आज्ञा मनवाना उचित नही।[3]

हिंसा की परिभाषा :

प्रमाद और काम-भोगो मे जो आसक्ति होती है, वही हिंसा है।[4] आत्मा की अशुद्ध परिणति मात्र हिंसा है। इसका समर्थन करते हुए आचार्य अमृतचन्द्र ने लिखा है—असत्य आदि सभी विकार आत्म परिणति को बिगाडने वाले हैं। इसलिए वे सभी हिंसा हैं। असत्य आदि जो दोष बतलाए है, वे केवल शिष्यबोधाय है। सक्षेप मे राग-द्वेष का अप्रादुर्भाव अहिंसा और उनका प्रादुर्भाव हिंसा है। राग-द्वेष रहित प्रवृत्ति से अशक्य कोटि का प्राण-वध हो जाये तो भी नैश्चयिक हिंसा नही होती, राग-द्वेष सहित प्रवृत्ति से प्राण-वध न होने पर भी, हिंसा होती है। जो राग-द्वेष की प्रवृत्ति करता है, वह अपनी आत्मा की घात कर ही लेता है, फिर चाहे दूसरे जीवो की घात करे या न करे। हिंसा से विरत न होना भी हिंसा है और हिंसा मे परिणति होना भी हिंसा है। इसलिए जहा राग-द्वेष की प्रवृत्ति है वहा निरन्तर प्राणवध होता है।[5]

निश्चय दृष्टि से आत्मा ही अहिंसा है और वही हिंसा। अप्रमत्त आत्मा अहिंसक है और जो प्रमत्त है, वह हिंसक है।[6]

१—उत्तराध्ययन २४।२६ २—उत्तराध्ययन ६।२ ३—सूत्रकृताग ४—सूत्रकृताग–१।१।८६
५—पुरुषार्थ सिद्धयुपाय ४२–४८ ६—हरिभद्र कृत अष्टक ७, श्लोक ६ की वृत्ति

इन तथ्यो से साफ हो जाता है कि प्राण वध श्रौर हिंसा सर्वथा एक नही है। इसी दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति के लिए अहिंसा शब्द व्यवहार मे आया, ऐसा प्रतीत होता है।

अहिंसा शब्द हिंसा का निषेध है। हिंसा सदेह मे होती है श्रौर अहिंसा भी उसी मे है। विदेह मे हिंसा श्रौर अहिंसा की कोई कल्पना ही नही होती। हिंसा बन्धन या सदेह दशा का हेतु है श्रौर अहिंसा मुक्ति या विदेह दशा का। मुक्ति होने के बाद अहिंसा आत्मा की शुद्धि रूप रह जाती है, साधना रूप नही। फिर उसका कोई कार्य नही रहता। इसलिए उसकी कोई कल्पना भी नही होती। मुक्ति धर्म है—हिंसा का निषेध।

सदेह जीवन तीन प्रकार का होता है—हिंसा का, हिंसा के अल्पीकरण का श्रौर अहिंसा का। हिंसा के जीवन मे हिंसा-अहिंसा का विवेक ही नही होता। हिंसा के अल्पीकरण के जीवन मे हिंसा को कम से कम करने का प्रयत्न किया जाता है। अहिंसा के जीवन मे हिंसा का पूरा त्याग किया जाता है।

हिंसा . जीवन की परवशता ·

अहिंसा मे मैत्री है, सौहार्द है, एकता है, सुख श्रौर शान्ति है। अहिंसा का स्वरूप है उपशम, मृदुता, सरलता, सन्तोष, अनासक्ति श्रौर अद्वेष। अहिंसा हमारे मन मे है, वाणी मे है श्रौर कार्यों मे है। इनके द्वारा हम न किन्ही दूसरो को सताते है श्रौर न अपने आपको। अहिंसा हमारी स्वाभाविक क्रिया है। हिंसा हमारे स्वभाव के प्रतिकूल है। हिंसा मे मनुष्य को परवशता का भान होता है। विना खाये, विना पिये, विना कुछ किये शरीर चल नही सकता। शरीर के सामर्थ्य के विना खाने-पीने का साधन नही जुटाया जा सकता। इस प्रकार की क्रमबद्ध शृ खलाश्रो की अनिवार्य प्रेरणाश्रो से मनुष्य व्यापार करता है, धन का अर्जन करता है, उसकी रक्षा करता है, उपभोग करता है, चोर लुटेरो से अपने स्वत्व को बचाता है, दण्ड प्रहार करता है, शासन-व्यवस्था करता है श्रौर अपने विरोधियो से लोहा लेता है। यह सब हिंसा है। पूर्ण आत्म-सयम के विना सब प्रकार की हिंसाश्रो को नही त्यागा जा सकता श्रौर सब प्रकार की हिंसाश्रो को त्यागने के पश्चात् ये सब काम नही किये जा सकते। कितनी जटिल समस्या है अहिंसा श्रौर हिंसा के बीच। हिंसा के विना गृहस्थ जी नही सकता श्रौर अहिंसा के विना वह मानवीय गुणो को नही पा सकता। ऐसी स्थिति मे बहुधा विचार शक्तिया उलझ जाती हैं श्रौर अहिंसा का मार्ग कठोर प्रतीत होने लग जाता है। जैन आचार्यों ने मनोवैज्ञानिक तरीको से मानसिक विचारो का अध्ययन किया, उनकी गहरी छानबीन की श्रौर तत्पश्चात् एक तीसरे हिंसा श्रौर अहिंसा के बीच के मार्ग (मध्यम मार्ग) का निरूपण किया। यह मार्ग यथाशक्य अहिंसा के स्वीकार का है। जैन दर्शन के अनुसार उसका नाम अहिंसा-अणुव्रत है।

हिंसा चार प्रकार की

गृहस्थ खाने के लिए भोजन पकाते हैं, पानी पीते हैं, रहने के लिए मकान बनवाते हैं, पहनने-श्रोढने के लिए कपडे बनवाते हैं—यह आरम्भी हिंसा है। खेती करते है, कल-कारखाने चलाते

है, व्यापार करते है—यह उद्योगी हिंसा है । राष्ट्र जनता एव कुटुम्ब की रक्षा करते है, आततायियो से लडते है, अपने आश्रितो को आपत्तियो से बचाते है, दल-वल आदि सम्भव उपायो का प्रयोग करते है—यह विरोधी हिंसा है । द्वेषवश या लोभवश दूसरो पर आक्रमण करते है, बिना प्रयोजन किसी को सताते है, दूसरो का स्वत्व छीनते है, अपने तुच्छ स्वार्थों के लिए मनमाना प्राणवध करते हैं, वृत्तियो को उच्छृखल करते है—यह सकल्पी हिंसा है । इस प्रकार हिंसा के चार प्रमुख वर्ग किये गये है । गृह-त्यागी मुनि इन चारो प्रकार की हिंसाओ को त्यागते है, अन्यथा वे मुनि नही हो सकते । गृहस्थ पहली तीन प्रकार की हिंसाओ को पूर्ण रूप से नही त्याग सकते, तथापि यथासम्भव इनको त्यागना चाहिये । व्यापारादि करने मे मनुष्य का सीधा उद्देश्य हिंसा करने का नही, कार्य करने का होता है । हिंसा हो जाती है । सकल्पी हिंसा का सीधा उद्देश्य हिंसा का होता है, कार्य करने का नही । दूसरो के सुख, शान्ति, हित और अधिकारो को कुचलने वाले कार्य भी बहुधा सकल्पी हिंसा जैसे बन जाते हैं । अत सामूहिक न्यायनीति की व्यवस्था का उल्लघन करना भी सबल हिंसा का साधन है । सकल्पी हिंसा तो गृहस्थ के लिये भी सर्वथा वर्जनीय है । जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए होने वाली हिंसा का असर व्यक्तिनिष्ठ है, समष्टिगत नही । किन्तु सकल्पी हिंसा का अभिशाप समूचे राष्ट्र और समाज को भोगना पडता है ।

हिंसा-अहिंसा का चतुर्वर्ग

वस्तुओ का स्वरूप देखने के लिए जैन आचार्यों ने निश्चय और व्यवहार इन दो दृष्टियो का उपयोग किया है । व्यवहार दृष्टि वस्तु का बाहरी स्वरूप देखती है और निश्चय दृष्टि उसका आन्तरिक स्वरूप । व्यवहार दृष्टि मे लौकिक व्यवहार की प्रमुखता होती है और निश्चय दृष्टि मे वस्तु स्थिति की । व्यवहार दृष्टि के अनुसार प्राणवध हिंसा है और प्राण-वध नही होता है, वह अहिंसा है । निश्चय दृष्टि के अनुसार असत् प्रवृत्ति यानी राग, द्वेष, प्रमादात्मक प्रवृत्ति हिंसा है और सत् प्रवृत्ति अहिंसा है । इन दृष्टियो के आधार पर हिंसा-अहिंसा की चतुर्वर्गी बनती है, जैसे —

१—द्रव्य हिंसा और भाव हिंसा

२—द्रव्य हिंसा और भाव अहिंसा

३—द्रव्य अहिंसा और भाव हिंसा

४—द्रव्य अहिंसा और भाव अहिंसा ।

राग-द्वेष वश होने वाला प्राणवध द्रव्य हिंसा और भाव हिंसा है । जैसे एक शिकारी हिरण को मारता है, यह द्रव्य यानी व्यवहार मे भी हिंसा है, क्योकि वह हिरण के प्राण लूटता है और भाव यानी वास्तव मे भी हिंसा है, क्योकि शिकार करने मे उसकी प्रवृत्ति असत् होती है । राग-द्वेष के बिना होने वाला प्राणवध द्रव्य-हिंसा और भाव अहिंसा है । जैसे एक सयमी सावधानीपूर्वक चलता-फिरता है तथा आवश्यक दैहिक क्रियाए करता है, उसके द्वारा अशक्य परिहार कोटि का प्राणवध हो जाता है । वह व्यवहार मे हिंसा है क्योकि वह प्राणी की मृत्यु का निमित्त बनता है पर वास्तव मे अहिंसा है, हिंसा नही है, क्योकि वहा उसकी प्रवृत्ति राग द्वेषात्मक नही होती । राग-द्वेष युक्त विचार

से अप्राणी पर घात या प्रहार किया जाता है, वह द्रव्य अहिंसा और भाव हिंसा है। जैसे कोई व्यक्ति धु धुले प्रकाश मे रस्सी को साप समझ कर उस पर प्रहार करता है तो वह व्यवहार मे अहिंसा है, क्योकि उस क्रिया मे प्राणवध नही होता पर निश्चय मे हिंसा है, कारण कि वहा मारने की प्रवृत्ति द्वेषात्मक है। जहा न राग द्वेषात्मक प्रवृत्ति होती है और न प्राणवध होता है, वह सर्व सवर रूप अवस्था द्रव्य अहिंसा और भाव अहिंसा है। यह अवस्था दैहिक और मानस क्रिया से निवृत्त तथा समाधि प्राप्त योगियो की होती है। भाव अहिंसा की पूर्णता सयम जीवन मे प्राप्त होती है किन्तु द्रव्य अहिंसा की पूर्ण अवस्था दैहिक चचलता छूटे बिना, दूसरे शब्दो मे समाधि—अवस्था पाये बिना, नही आती।

एव खु नाणिणो सार, ज न हिंसइ किंचण —सूत्रकृताग १।११।१०

किसी भी प्राणी की हिंसा न करना ही ज्ञानी होने का सार है।

आय तुले पयासु —सूत्रकृताग १।११।३

सभी प्राणियो के प्रति आत्मतुल्य भाव रखो।

आरभज दुक्खमिण —आचाराग १।३।१

ससार मे जितने भी दु.ख हैं, वे सब आरभज-हिंसा से उत्पन्न होते हैं।

तुमसि नाम स चेव ज हतव्व ति मन्नसि —आचाराग १।५।५

जिसे तू मारना चाहता है। जिसको कष्ट व पीडा पहुँचाना चाहता है। वह अन्य कोई तेरे समान ही चेतनावाला प्राणी है, ऐसा समझ। वास्तव मे वह तू ही है।

---

६ समता

०

आचार्य श्री नानालालजी म० सा०

विज्ञान का विकास और विषमता :

यह कहना सर्वथा उचित ही होगा कि अनियन्त्रित विज्ञान के विकास ने मानव जीवन को असन्तुलित बना दिया है और यह असन्तुलन नितप्रति विषमता को बढाता जा रहा है। विज्ञान जहाँ वास्तव मे निर्माण का साधन बनना चाहिये, वहाँ वह उसके दुरुपयोग से विनाश और महाविनाश का साधन बनता जा रहा है।

विज्ञान तो विशेष ज्ञान का नाम है और भला स्वय ज्ञान और विज्ञान विनाशकारी कैसे बन सकता है ? उसे विनाशकारी बनाने वाला है उसका अनियत्रण अथवा उसका दुष्प्रवृत्तियो के बीच सरक्षण। उस्तरे से हजामत बनाई जाती है, मगर वही अगर बन्दर के हाथ मे पड जाय तो वह उससे किसी का गला भी काट सकता है, बल्कि वह तो गला काट ही देता है।

विषमताजन्य समाज मे विज्ञान का जितना विकास हुआ है, वह बराबर बन्दरस्वभावी लोगो के हाथ मे पडता रहा है। आखिर विज्ञान एक शक्ति है इसके नये-नये अन्वेषण और अनुसधान शक्ति के नये-नये स्रोतो को प्रकट करते हैं। ये ही स्रोत अगर सदाशयी और त्यागी लोगो के नियत्रण मे आ जाते है तो उनसे समता की ओर गति की जाकर सामूहिक कल्याण की साधना की जा सकती है। परन्तु आज तो यह शक्ति स्वार्थ और भोग के पडो के हाथो मे हे, जिसका परिणाम है कि ये तत्त्व अधिक से अधिक शक्तिशाली होकर इस शक्ति का अपनी सत्ता और अपना वर्चस्व बढाने मे प्रयोग कर रहे हैं।

शक्ति स्रोतो का असन्तुलन :

वैज्ञानिक शक्तियो का यह दुरुपयोग, सभी क्षेत्रो मे निरन्तर विषमता मे वृद्धि करता जा रहा है। हमारी सस्कृति का जो मूलाधार गुण और कर्म पर टिकाया गया था, वह इस असन्तुलित वातावरण के बीच उखडता जा रहा है। शक्ति-स्रोतो के इस असन्तुलन का सीधा प्रभाव यह दिखाई दे रहा है कि योग्य को योग्य नही मिलता और अयोग्य मारा योग्य हडप जाता है। योग्य हताश

होकर निष्क्रिय होता जा रहा है और अयोग्य अपनी अयोग्यता का ताडव नृत्य कर रहा है। जब उपलब्धियो का विभाजन लूट के आधार पर होने लगे तो लुटेरा ही लूट सकेगा, साहूकार को तो मुँह की खानी ही पडेगी। लुटेरा बेझिझक होकर लूटता रहेगा तो निश्चित रूप से शक्तियाँ अधिक से अधिक असन्तुलित होती जायेंगी, अधिक से अधिक शक्ति कम से कम हाथो मे इकट्ठी होती जायगी और वे कम से कम हाथ भी खून और कत्ल करने वाले हाथ होगे। दूसरी ओर बडी से बडी सख्या मे लोग शक्तिहीन होकर नैतिकता के अपने साधारण धरातल मे भी गिरने लगते हैं। आज भौतिकता की ऐसी ही दुर्दशाग्रस्त विषम स्थिति मे समाज जकडा हुआ है।

विषमता का मूल . परिग्रह

सारभूत एक वाक्य मे कहा जाय तो इस सर्वव्यापिनी पिशाचिनी विषमता का मूल मनुष्य की मनोवृत्ति मे है। जैसे हजारो गज भूमि पर फैले एक वट वृक्ष का बीज राई जितना ही होता है, उसी प्रकार इस विषमता का बीज भी छोटा ही है, किन्तु है कठिन अवश्य। मनुष्य की मनोवृत्ति मे जन्मा और पनपा यह बीज बाह्य और आन्तरिक जगत् मे वट वृक्ष की तरह प्रस्फुटित होकर फैलता है और हर क्षेत्र मे अपनी विषमता की शाखाएँ एव उपशाखाएँ विस्तारित करता है।

इसके मूल के क्षेत्र को और भी छोटा किया जा सकता है। अधिक सूक्ष्मता से मनोवृत्तियो का अध्ययन किया जायगा तो स्पष्ट होगा कि इस भयाविनी विषमता का बीज केवल मनुष्य की भोग मनोवृत्ति मे रहा हुआ है। भोग स्वय के लिये ही होता है इसलिये भोग-वृत्ति स्वार्थ को जन्म देती है। स्वार्थ का स्वभाव सकुचित होता है—वह सदा छोटा से छोटा होता जाता है, उसका दायरा बराबर घटता ही जाता है। जितना यह दायरा घटता है, उतनी ही मनुष्यता बौनी होती है—पशुता बडी बनती जाती है।

भोगवृत्ति की तुष्टि का प्रधान आधार है परिग्रह—अपने द्रव्य अर्थ मे भी और अपने भाव अर्थ मे भी।

परिग्रह का जीवन पर प्रभाव :

अपने द्रव्य अर्थ मे परिग्रह का अर्थ है धन-सम्पदा। निश्चय ही सासारिक जीवन धनाभाव में नही चल सकता है। जीवन-निर्वाह की मूल आवश्यकताएँ हैं—भोजन, वस्त्र एव निवास, जिनका सचालन धन पर ही आधारित है। इसलिये इस तथ्य को स्वीकारना पडेगा कि धन का ससारी जीवन पर अमित प्रभाव ही नही है, बल्कि वह उसके लिये अनिवार्य है।

अनिवार्य का अर्थ है–धन के बिना इस सशरीरी जीवन को चलाना सभव नही, तो एक बात स्पष्ट हो जाती है कि ऐसे अनिवार्य पदार्थ की साधारण रूप से उपेक्षा नही की जा सकती है। किसी भी दर्शन ने इसकी उपेक्षा की भी नही है। जो ज्ञान का प्रकाश फैलाया गया है, वह इस दिशा मे कि धन को आवश्यक बुराई मानकर चला जाय। सन्तोष, सहकार, सहयोग आदि सद्गुणो का विकास इसी आधार पर किया गया कि धन का उपयोग करने दें मर्यादाओ के भीतर और उसके दुरुपयोग को न पनपने दें।

दार्शनिको ने धन-लिप्सा के भयावह परिणामो को जाना था। इसीलिये उन्होने इस पर अधिक से अधिक कडे अकुश लगाने का विधान भी किया। धन का वाहुल्य नैतिक अर्जन से सभव नही वनता। अधिक धन का अर्थ अधिक अन्याय और उसका अर्थ है अधिक कष्ट—इस कारण एक के लिये अधिक धन का साफ अर्थ हुआ वहुतो के लिये अधिक कष्ट। अत. वहुलतया अधिक धन अधिक अनीति मे ही अर्जित हो सकता है—यह पहली वात है।

दूसरे, अधिक धन की उपलब्धि का सीधा प्रभाव मनुष्य की भोगवृत्ति के उत्तेजित वनने पर पडता है। भोग अधिक—स्वार्थ अधिक और जितना स्वार्थ अधिक तो उतनी ही विपमता अधिक जटिल वनती जायगी—यह स्वाभाविक प्रक्रिया होती है।

होना यह चाहिये कि जो अधिक सद्गुणी हो, वह समाज मे अधिक शक्तिशाली हो किन्तु जहाँ धन-लिप्सा अनियन्त्रित छोड दी जाती है, वहा अधिक धनी, अधिक शक्तिशाली और अधिक धनी, अधिक सम्माननीय, यह मापदड वन जाता है। इसी मानदड से विपमता का विपवृक्ष फूटता है।

शक्ति और सम्मान का स्रोत जव गुण न रह कर धन वन जाता है तो सांसारिक जीवन मे सभी धन के पीछे दौडना शुरू करते है—एक गहरा ममत्व लेकर। समाज का ऐसा मूल्य-निर्धारण मनुष्य को विदिशा मे मोड देता है। तव भोग उसका भगवान् वन जाता है और स्वार्थ उसका परम आराध्य देव—फिर भला उसका विवेक इन घेरो से वाहर कैसे निकले और कैसे समता के स्वस्थ मूल्यो को ग्रहण करे? जव विवेक सो जाता है तो निर्णय शक्ति उभरती नही। निर्णय नही तो जीवन की दिशा नही—भावना का जगत् तव शून्य होने लगता है। दिशा-निर्णय एव स्वस्थ भावना के अभाव मे विपमता ही तो सव ठौर फैलने लगेगी।

परिग्रह का गूढार्थ मूर्छा

"मुच्छा परिग्गहो वुत्तो—" यह जैन-सूत्रो की परिग्रह की गूढ व्याख्या है। मूर्छा को परिग्रह कहा गया है। द्रव्य परिग्रह की ओर तव कदम बढते है जव पहले भाव परिग्रह जन्म लेता है और यह भाव परिग्रह है—ममत्व और मूर्छा। जव मनुष्य की भावनात्मक जागृति क्षीण वनती है, उस अवस्था को ही मूर्छा कहते हैं। ममत्व मूर्छा को वढाता है।

यह मेरा है—ऐसा अनुभाव कभी अन्तर जगत् के लिये स्फूर्तिजनक नही माना जाता है, क्योकि इसी अनुभाव से स्वार्थ पैदा होता है जिसकी परिणति व्यापक विपमता मे होती है। यह मेरा है इसे ही ममत्व कहा गया है। मेरे-तेरे की भावना से ऊपर उठने मे ही जागृति का मूल मत्र समाया हुआ है और इसी भावना की नीव पर त्याग का प्रासाद खडा किया जा सकता है।

इस मूर्छा को मन मे न जन्मने दो, न जमने दो—फिर जिन जीवन मूल्यो का निर्माण होगा, वह त्याग पर आधारित होगा। त्याग का अर्थ है जो अपने पास परिग्रह है उसे भी परोपकार के निमित्त छोड देना वल्कि यो कहे कि अपनी ही आत्मा के उपकार के निमित्त छोड देना। जो छोडना सीख लेता है तो उसकी तृष्णा कट जाती है और इस तृष्णा के कटने पर विपमता के मूल पर आघात होता है।

नियम और सयम की धारा

परिग्रह और परिग्रहजन्य मनोवृत्तियो मे भटकना या परिग्रह और उसकी मूर्छा तक से निरपेक्ष बन जाना—वास्तव मे यही जीवन का दोराहा है। एक राह प्रवृत्ति की है, दूसरी राह निवृत्ति की। निवृत्ति और समूची निवृत्ति को सभी नही अपना सकते है। समूची निवृत्ति साधु जीवन का अग होती है और अन्तिम रूप से वही ग्राह्य मानी गई है, किन्तु सासारिक जीवन में न्यूनाधिक प्रवृत्ति के बिना काम नहीं चल सकता है। इसलिये बताया गया है कि द्रव्य परिग्रह के अर्जन की पद्धति को आत्म-नियन्त्रित बनाओ।

यह पद्धति जितनी विषमता से दूर हटेगी—जितनी समता के समीप जायगी, उतनी ही सार्वजनिक कल्याण का कारण भी बन सकेगी। इस पद्धति को नियम और सयम के आधार पर ही नियन्त्रित बनाया जा सकता है। यह नियम और सयम जितना व्यक्ति स्वेच्छा से ग्रहण करे, उतना ही अच्छा है। हा, व्यक्ति की अज्ञान अवस्था मे ऐसे नियम और सयम को सामूहिक शक्ति से भी शुरू करके व्यक्ति जीवन को प्रभावित बनाया जा सकता है।

नियम और सयम की धारा तब ही बहती रह सकेगी जब परिग्रह की मूर्छा समाप्त की जाय। जीवन-निर्वाह के लिये धन चाहिये, वह निरपेक्ष भाव से अर्जित किया जाय और चारो ओर समता के वातावरण की सृष्टि की जाय—तब धन जीवन मे प्राथमिक न रहकर गौण हो जायगा। इसके गौण होते ही गुण ऊपर चढेगा—विषमता कटेगी और समता प्रसारित होगी। नियन्त्रित प्रवृत्ति और निवृत्ति की ओर गति ही समता जीवन का आधार है।

सार्थक जीवन

इस दिशा मे विशिष्ट सत्यानुभूति के उद्देश्य से यह नवीन सूत्र प्रस्तुत किया जा रहा है—

'कि जीवनम् ?
सम्यक् निर्णायक समतामयञ्च यत्
तज्जीवनम्।'

जीवन क्या है ? प्रश्न उठाया गया है और उसका उत्तर भी इसी सूत्र मे दिया गया है कि जो जीवन सम्यक् निर्णायक और समतामय है, वास्तव मे वही जीवन है।

जो जिया जाता है, वह जीवन है—यह तो जीवन की स्थूल परिभाषा है। एक आदमी को बोरे मे बाध कर पहाड की चोटी से नीचे लुढका दिया जाय तो वह बोरा ढलान से लुढकता हुआ नीचे आ जाय—यह भी एक तरह से चलना ही हुआ। वहा दूसरा आदमी अपने नपे-तुले कदमो से, अपनी सजग दृष्टि से चल कर उतरे—उसे भी तो चलना ही कहेगे। तो दोनो तरह के चलने मे फर्क क्या हुआ ? एक चलाया जाता है, दूसरा चलता है। चलाया जाना जडत्व है तो चलना चैतन्य। अब दोनो मे परिणाम भी देखिये। जो बोरे मे बधा लुढक कर चलता है, वह लहूलुहान हो जायगा—चट्टानो के आघात-प्रतिघातो से वह अपनी सज्ञा भी खो बैठेगा और सभव है कि फिर लम्बे अर्से तक वह चल सकने के काबिल भी न रहे। तो जो केवल जिया जाता है, उसे केवल जडतापूर्ण

जीवन ही कहा जा सकता है। सार्थक जीवन वह है जो स्वय चले—स्वस्थ एव सुन्दर गति मे चले बल्कि अपने चलने के साथ अन्य दुर्बल जीवनो मे भी प्रगति का बल भरता हुआ चले।

समतामय जीवन

समता शब्द का अर्थ भिन्न-भिन्न रूपो मे लिया जाता है। वैसे मूल शब्द सम है जिसका अर्थ समान होता है। अब यह समानता जीवन के विभिन्न क्षेत्रो मे किस-किस रूप मे हो—उसका विविध विश्लेषण किया जा सकता है।

सबसे पहले आध्यात्मिक क्षेत्र की समानता पर सोचें तो अपने मूल स्वरूप की दृष्टि मे सारी आत्माए समान होती है—चाहे वह एकेन्द्रिय याने अविकसित प्राणी की आत्मा हो या सिद्ध भगवान् की पूर्ण विकसित आत्मा। दोनो मे वर्तमान समय की जो विषमता है, वह कर्मजन्य है। कुविचारो एव कुप्रवृत्तियो का मैला अविकसित अवस्था मे आत्मा के साथ सलग्न होने से उसका स्वरूप भी मैला हो जाता है और जैसे मैले दर्पण मे प्रतिबिम्ब नही दिखाई देता, उसी तरह मैली आत्मा भी श्रीहीन बनी रहती है। तो आध्यात्मिक समता यह है कि इस मैल को दूर करके आत्मा को अपने मूल निर्मल स्वरूप मे पहुँचाई जाय।

एक-एक आत्मा इस तरह समता की ओर मुडे तो दूसरी ओर परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व मे भी ऐसा समतामय वातावरण बनाया जाय जिसके प्रभाव से समूहगत समता भी सशक्त बनकर समग्र जीवन को समतामुखी बना दे। राजनीति मे समानता, अर्थनीति मे समानता और समाजनीति मे समानता के जब पग उठाये जायेंगे और उसे अधिक से अधिक वास्तविक रूप दिया जायगा तो समता की द्विधारा बहेगी—भीतर से बाहर और बाहर से भीतर। तब भौतिकता और आध्यात्मिकता सघर्षशील न रहकर एक दूसरे की पूरक बन जायेगी जिसका समन्वित रूप जीवन के बाह्य और अन्तर को समतामय बना देगा।

यह परिवर्तन समाजवाद या साम्यवाद से आवे अथवा अन्य विचार के कार्यान्वय से—किन्तु लक्ष्य हमारे सामने स्पष्ट होना चाहिये कि मानवीय गुणो की अभिवृद्धि के साथ सासारिक व्यवस्था में अधिकाधिक समता का प्रवेश होना और ऐसी समता का जो मानव-जीवन के आभ्यन्तर को न सिर्फ सन्तुलित रखे, बल्कि उसे सयम-पथ पर चलने के लिये प्रेरित भी करे। धरातल जब समतल और साफ होता है तो कमजोर आदमी भी उस पर ठीक व तेज चाल से चल सकता है, किन्तु इसके विपरीत अगर धरातल उबडखाबड और कटीला, पथरीला हो तो मजबूत आदमी को भी उस पर भारी मुश्किलो का सामना करना पडेगा। व्यक्ति की क्षमता का तालमेल यदि सामाजिक विकास के साथ बैठ जाता है तो व्यक्ति की क्षमता भी कई गुनी बढ जाती है।

व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध

यो देखा जाय तो समाज कुछ भी नही है, व्यक्ति-व्यक्ति मिल कर ही तो समाज की रचना करते हैं, फिर व्यक्ति से विलग समाज का अस्तित्व कहा है ? किन्तु सभी के अनुभव में आता होगा कि व्यक्ति की शक्ति प्रत्यक्ष दीखती है फिर भी समूह की शक्ति उससे ऊपर होती है जो व्यक्ति की शक्ति को नियत्रित भी करती है। एक व्यक्ति एक सगठन की स्थापना करता है—उसके नियमो-

पनियम बनाता है तथा उनके अनुपालन के लिये दड व्यवस्था भी कायम करता है। एक तरह से सगठन का वह जनक है, फिर भी क्या वह स्वय ही नियम-भग करके दड से बच सकता है ? यही शक्ति समाज की शक्ति कहलाती है जिसे व्यक्ति स्वेच्छा से वरण करता है। राष्ट्रीय सरकारो के सविधानो में यही परिपाटी होती है।

जब-जब व्यक्ति स्वस्थ धारा से अलग हटकर निरकुश होने लगता है—शक्ति के मद मे झूम कर अनीति पर उतारू होता है, तब-तब यही सामाजिक शक्ति उस पर अकुश लगाती है। प्रत्येक व्यक्ति यह अनुभव करता होगा कि कई बार वह कुकर्म करने का निश्चय करके भी इसी विचार से रुक जाता है कि लोग क्या कहेगे ? ये लोग चाहे परिवार के हो—पडोस के हो—मोहल्ले, गाँव, नगर या देश-विदेश के हो, इन्हे ही समाज मान लीजिये।

व्यक्ति स्वय से नियत्रित हो—व्यक्ति समाज से नियत्रित हो—ये दोनो परिपाटिया समता लाने के लिये सक्रिय बनी रहनी चाहिये। यही व्यक्ति एव समाज के सम्बन्धो की सार्थकता होगी कि विषमता को मिटाने के लिये दोनो ही नियत्रण सुदृढ बनें।

समता मानव मन के मूल मे है

प्रत्येक मानव अपने जीवन को सुखी बनाना चाहता है और उसके लिये प्रयास करता है, किन्तु आज की दुविधा यह है कि सभी तरह की विषमताओ के बीच सम्पन्न भी सुखी नही, विपन्न भी सुखी नही और शान्ति लाभ तो जैसे एक दुष्कर स्थिति बन गई है। इसका कारण यह है कि मानव अपने साध्य को समझने के बाद भी उसके प्रतिकूल साधनो का आश्रय लेकर जब आगे बढता है तो बबूल उगाने से आम कहाँ से फलेगा ?

समता मानव मन के मूल मे है—उसे भुला कर जब वह विपरीत दिशा मे चलता है तभी दुर्दशा आरम्भ होती है।

समता का मूल्याकन

समता या समानता का कोई यह अर्थ ले कि सभी लोग एक ही विचार के या एक से शरीर के बन जावें अथवा बिल्कुल एक सी ही स्थिति मे रखे जावें तो यह न सभव है और न ही व्यावहारिक। एक ही विचार हो तो बिना आदान-प्रदान, चिन्तन और सघर्ष के विचार का विकासशील प्रवाह ही रुक जायगा। इसी तरह आकृति, शरीर अथवा सस्कारो मे भी समानपने की सृष्टि सभव नही।

समता का अर्थ है कि पहले समतामय दृष्टि बने तो यही दृष्टि सौम्यतापूर्वक कृति मे उतरेगी। इस तरह समता समानता की वाहक बन सकती है। आप ऐसे परिवार को लीजिये, जिसमे पुत्र अर्थ या प्रभाव की दृष्टि से विभिन्न स्थितियो मे हो सकते हैं किन्तु सब पर पिता की जो दृष्टि होगी, वह समतामय होगी। एक अच्छा पिता ऐसा ही करता है। उस समता से समानता भी आ सकेगी।

समता कारण रूप है तो समानता कार्यरूप, क्योकि समता मन के धरातल पर जन्म लेकर मनुष्य को भावुक बनाती है तो वही भावुकता फिर मनुष्य के कार्यों पर असर डाल कर उसे समान

स्थितियो के निर्माण मे सक्रिय सहायता देती है। जीवन मे जब समता आती है तो सारे प्राणियो के प्रति समभाव का निर्माण होता है। तब अनुभूति यह होती है कि बाहर का सुख हो या दुख—दोनो अवस्थाओ मे समभाव रहे—यह स्वयं के साथ की स्थिति तो अन्य सभी प्राणियो को आत्म-तुल्य मानकर उनके सुख-दुख मे सहयोगी बने—यह दूसरो के साथ व्यवहार करने की स्थिति। ये दोनो स्थितिया जब पुष्ट बनती है तो यह मानना चाहिये कि जीवन समतामय बन रहा है। कारण कि यही पुष्ट भावना आचरण मे उतर कर व्यक्ति से समाज और समाज से व्यक्ति की दोराहो पर विपमता को नष्ट करती हुई समता की सृष्टि करती है।

समता का आविर्भाव कब

समता का श्रीगणेश चूकि मन से होना चाहिये इसलिये मन की दो वृत्तिया होती है—राग और द्वेष। ये दोनो विरोधी वृत्तिया है। जिसे आप चाहते हैं उसके प्रति राग होता है। राग से मोह और पक्षपात जन्म लेता है। जिसे आप नही चाहते उसके प्रति द्वेष आता है। द्वेष से कलुष, प्रतिशोध और हिंसा पैदा होती है। ये दोनो वृत्तिया मन को चचल बनाती रहती है तथा मनुष्य को स्थिरचित्ती एव स्थिरधर्मी बनने से रोकती हैं। चचलता से विपमता बनती और बढती है। मन विपम तो दृष्टि विपम होगी और उसकी कृति भी विपम होगी।

समता का आविर्भाव अत तभी सभव होगा जब राग और द्वेष को घटाया जाय। जितनी निरपेक्ष वृत्ति पनपती है, समता सगठित और सस्कारित बनती है। निरपेक्ष दृष्टि मे पक्षपात नही रहता और जब पक्षपात नही है तो वहा उचित के प्रति निर्णायक वृत्ति पनपती है तथा गुण और कर्म की दृष्टि से समता अभिवृद्ध होती है। अगर एक पिता के मन मे भी एक पुत्र के प्रति राग और दूसरे के प्रति द्वेष है तो वह स्थिति समता जीवन की द्योतक नही है। मैं सबकी आखो मे प्रफुल्लता देखना चाहूं—मैं किसी की आख मे आसू नही देखना चाहू—ऐसी वृत्ति जब सचेष्ट बनती है तो मानना चाहिये कि उसके मन मे समता का आविर्भाव हो रहा है।

बाह्य समानता के लिये प्रयास करने से पूर्व अन्तर की विपमता नही मिटाई और कल्पना करले कि बाहर की विषमता किसी भी बल प्रयोग से एक बार मिटा भी दी गई हो तो भी विषमता-मय अन्तर के रहते वह समानता स्थायी नही रह सकेगी। एक ध्वजा जो उच्च गगन मे वायु-मण्डल मे लहराती है—उसकी कोई दिशा नही होती। जिस दिशा का वायु वेग होता है, वह उधर ही मुड जाती है, किन्तु ध्वजा का जो दण्ड या स्तूप होता है, वह सदा स्थिर रहता है। तो समता के विकास के लिये दण्ड या स्तूप बनने का प्रयास करें जो स्थिर और अटल हो। फिर समता का सूक्ष्मतम विकास होता चला जायगा।

अन्तर्दृष्टि और बाह्य दृष्टि

समता के दो रूप है—दर्शन और व्यवहार। अन्तर के नेत्रो की प्रकाशमय दृष्टि से देखकर जीवन मे गति करना समता दर्शन का मुख्य भाव है और यह जो गति है उससे समता के व्यवहार का स्वरूप स्पष्ट होता है। अत अन्तर और बाह्य दोनो दृष्टियो से समतापूर्ण जीवन का सचालन करने से सार्थक जीवन की उपलब्धि हो सकती है। दर्शन की गति व्यापक नही हो तो व्यवहार मे

भी एकरूपता नही आती है। इसके लिये अन्तर्दृष्टि और बाह्य दृष्टि मे सम्यक् समन्वय होना चाहिये।

आप एक मकान को देखते है। उसमे कही पत्थर होता है, कही चूना, सीमेन्ट, लोहा, लकडी आदि। फिर भी उसमे रहने या बैठने वालो की स्थिति भी एक सी नही होती—अलग-अलग आकृतिया, वेश-भूषा आदि। फिर भी यदि अन्तर्दृष्टि मे सबके समता आ जाय तो इन विभिन्नताओ के बावजूद सारा समूह एकरूपता की अनुभूति ले सकता है। बाह्य दृष्टि की विपमता इसी भाव एव विचार समता के दृढ आधार पर समाप्त की जा सकती है।

किन्तु जो अन्तर्दृष्टि मे शून्य रह कर केवल बाह्य दृष्टि मे भटकता है, वह विपमता को ही अधिक बढाता है। समता की साधना एकागी नही, मन, वचन एव कर्म तीनो के सफल सयोग से की जानी चाहिये तभी बाह्य दृष्टि अपना मार्ग अन्तर्दृष्टि से पूछ कर ही चलेगी। अन्तर्दृष्टि का अनुशासन ही बाह्य दृष्टि पर चलना चाहिये।

समता शान्ति, समृद्धि एव श्रेष्ठता की प्रतीक

मनुष्य के मन के मूल मे रही समता ज्यो-ज्यो उभरती जायगी, वह अपने व्यापक प्रभाव के साथ मानव जीवन को भी उबारती जायगी। उसे अशान्ति, दु खदैन्य एव निकृष्टता के चक्रवात से बाहर निकाल कर यही समता उसे शान्ति, सर्वांगीण समृद्धि एव श्रेष्ठता के साचे मे ढालेगी। ऐसी ढलान के बाद ही मनुष्य विपमताजन्य पशुता के घेरो से निकल कर आत्मीयतापूर्ण मनुष्यता का स्वामी बन सकेगा। समता शान्ति, समृद्धि एव श्रेष्ठता की प्रतीक होती है—इसे कभी न भूलें।

नो उच्चावय मण नियछिज्जा —आचाराग २।३।१

सकट की घडियो मे भी मन को ऊचा-नीचा अर्थात् डावाडोल नही होने देना चाहिए।

समय सया चरे। —सूत्रकृताग २।२।३

साधक को सदा समता का आचरण करना चाहिए।

असविभागी ण हु तस्स मोक्खो —दशवैकालिक ६।२।१३

जो अपनी प्राप्य सामग्री दूसरो मे बाटता नही, उसकी मुक्ति नही होती।

७ सामायिक

उपाध्याय अमर मुनि

सामायिक' समभाव की साधना

सब जीवो पर समता—समभाव रखना, पाच इन्द्रियो का सयम नियन्त्रण करना, अन्तर्हृदय मे शुभ भावना—शुभ सकल्प रखना, आर्त—रौद्र दुर्ध्यानो का त्याग कर धर्मध्यान का चिन्तन करना सामायिक व्रत है।

सामायिक का मुख्य लक्षण समता है। समता का अर्थ है—मन की स्थिरता, रागद्वेष की अपरिणति, समभाव, एकीभाव, सुख दु ख मे निश्चलता इत्यादि। समता आत्मा का स्वरूप है और विषमता परस्वरूप यानी कर्मो का स्वरूप। अतएव समता का फलितार्थ यह हुआ कि कर्म—निमित्त से होने वाले राग आदि विषम भावो की ओर से आत्मा को हटाकर स्व-स्वरूप मे रमण करना ही समता है। आचार्य हरिभद्र पचाशक मे लिखते है—

> समभावो सामाइय, तण-कचण सत्तु-मित्त विसउत्ति।
> णिरभिस्सग चित्त, उचिय पवित्तिप्पहाण च॥

चाहे तिनका हो, चाहे सोना, चाहे शत्रु हो, चाहे मित्र, सर्वत्र अपने मन को राग-द्वेष की आसक्ति से रहित रखना तथा पाप-रहित उचित धार्मिक प्रवृत्ति करना, सामायिक है, क्योंकि समभाव ही तो सामायिक है।

सामायिक के दो भेद·

(१) **द्रव्य सामायिक** —द्रव्य का अभिप्राय यहां ऊपर के विधि विधानो तथा साधनो से है। अत सामायिक के लिए आसन बिछाना, गृहस्थ-वेष के कपडे उतारना, माला फेरना आदि द्रव्य सामायिक है।

(२) **भाव सामायिक :**—भाव का अभिप्राय यहा अन्तर्हृदय के भावो और विचारो से है। अर्थात् राग-द्वेष से रहित होने के भाव रखना, राग-द्वेष से रहित होने के लिए प्रयत्न करना, यथा-शक्ति राग-द्वेष से रहित होते जाना, भाव सामायिक है। उक्त भाव को जरा दूसरे शब्दो में कहें, तो यो कह सकते हैं कि बाह्य दृष्टि का त्याग कर अन्तर्दृष्टि के द्वारा आत्म निरीक्षण मे मन को जोडना,

विषमभाव को त्यागकर समभाव मे स्थिर होना, पौद्गलिक पदार्थों का यथार्थ स्वरूप समझ कर उनसे ममत्व हटाना एव आत्मस्वरूप मे रमण करना भाव सामायिक है ।

सामायिक की भूमिका

सामायिक के लिए भूमिका स्वरूप चार प्रकार की शुद्धि आवश्यक है—द्रव्य शुद्धि, क्षेत्र शुद्धि, काल शुद्धि, और भाव शुद्धि । उक्त चार शुद्धियो के साथ की हुई सामायिक ही पूर्ण फलदायिनी होती है, अन्यथा नही ।

(१) **द्रव्य शुद्धि** —सामायिक के लिए जो भी आसन, वस्त्र, रजोहरण या पूजणी, माला मुखवस्त्रिका, पुस्तिका आदि द्रव्य साधन आवश्यक है, उनका अल्पारभ, अहिंसक एव उपयोगी होना आवश्यक है ।

(२) **क्षेत्र शुद्धि** —क्षेत्र से मतलब उस स्थान मे है, जहा साधक सामायिक करने के लिए बैठता है । क्षेत्र शुद्धि का अभिप्राय यह हे कि सामायिक करने का स्थान भी शुद्ध होना चाहिये । जिन स्थानो पर बैठने से विचारधारा टूटती हो, चित्त मे चचलता आती है, अधिक स्त्री-पुरुष या पशु-आदि का आवागमन अथवा निवास हो, लडके और लडकियाँ कोलाहल करते हो, खेलते हो, विषय-विकार उत्पन्न करने वाले शब्द कान मे पडते हो, इधर-उधर दृष्टिपात करने से विकार पैदा होता हो अथवा कोई क्लेश उत्पन्न होने की सम्भावना हो, ऐसे स्थानो पर बैठकर सामायिक करना ठीक नही है । आत्मा को उच्च दशा मे पहुचाने के लिए अन्तर्हृदय मे समभाव की पुष्टि करने के लिए क्षेत्रशुद्धि सामायिक का एक अत्यावश्यक अग है । अत सामायिक करने के लिए वही स्थान उपयुक्त हो सकता है, जहाँ चित्त स्थिर रह सके और आत्मचिंतन किया जा सके ।

(३) **कालशुद्धि** —काल का अर्थ समय है, अत योग्य समय का विचार रख कर जो सामायिक की जाती है, वही सामायिक निर्विघ्न तथा शुद्ध होती है । बहुत से सज्जन समय की उचितता अथवा अनुचितता का बिल्कुल विचार नही करते । यो ही जब जी चाहा, तभी अयोग्य समय पर सामायिक करने बैठ जाते है । फल यह होता है कि सामायिक मे मन शात नही रहता, अनेक प्रकार के सकल्प विकल्पो का प्रवाह मस्तिष्क मे तूफान खडा कर देते है ।

(४) **भावशुद्धि** —भावशुद्धि से अभिप्राय है, मन, वचन और शरीर की शुद्धि । मन, वचन और शरीर की शुद्धि का अर्थ है, इनकी एकाग्रता । जब तक मन, वचन और शरीर की एकाग्रता न हो, चचलता न रुके, तब तक दूसरा बाह्य विधि-विधान जीवन मे उत्क्राति नही ला सकता । जीवन उन्नत तभी होता है जबकि साधक मन, वचन, शरीर की एकाग्रता भग करने वाले अन्तरात्मा मे मलिनता पैदा करने वाले दोषो को त्याग दे ।

सामायिक मुक्ति का साधन

सामायिक मोक्ष प्राप्ति का प्रमुख अग है । जब तक हृदय मे समभाव का उदय न होगा, तब तक किसी भी दशा मे मोक्ष नही प्राप्त हो सकती । सामायिक मे समभाव, समता मुख्य है । और समता क्या है ? आत्म-स्थिरता । और आत्म स्थिरता अर्थात् आत्म भाव मे रहना ही चारित्र है । आत्मभाव मे स्थिर होने वाले चारित्र से ही मोक्ष मिलती है । अतएव आचार्य हरिभद्र कहते हैं—

सामायिकं च मोक्षाङ्गं, परं सर्वज्ञ भाषितम् ।
वासी चन्दन-कल्पानामुक्तमेतन्महात्मनाम् ॥

—२९वा अष्टक

जिस प्रकार चन्दन अपने काटने वाले कुल्हाडे को भी सुगन्ध अर्पण करता है, उसी प्रकार विरोधी के प्रति भी जो समभाव की सुगन्ध अर्पण करने रूप महापुरुषों की सामायिक है, वह मोक्ष का सर्वोत्कृष्ट अंग है, ऐसा सर्वज्ञ प्रभु ने कहा है ।

तिव्वतवं तवमाणो, जं न वि निट्ठवइ जम्मकोडीहिं ।
तं समभावियचित्तो, खवेइ कम्मं खणद्धेण ॥

करोडो जन्म तक निरन्तर उग्र तपश्चरण करने वाला साधक जिन कर्मों को नष्ट नही कर सकता, उनको समभाव-पूर्वक सामायिक करने वाला साधक मात्र आधे ही क्षण मे नष्ट कर डालता है ।

किं तिव्वेण तवेणं, किं च जवेणं किं चरित्तेणं ।
समयाइ विण मुक्खो, न हु हुओ कहवि न हु होई ॥

चाहे कोई कितना ही तीव्र तप तपे, जप जपे, अथवा मुनि वेष धारण कर स्थूल क्रियाकाण्ड रूप चारित्र पाले, परन्तु समताभाव रूप सामायिक के बिना न किसी को मोक्ष हुआ है और न होगा ।

आत्मा ही सामायिक है और आत्मा ही सामायिक का अर्थ फल है—

आया सामाइए, आया सामाइयस्स अट्ठे ।

यह निश्चय दृष्टि का कथन है । उसके अनुसार जब तक साधक स्व-स्वरूप मे ध्यान मग्न रहता है, उपशम जल से राग-द्वेष के मल को धोता है, पर-परिणति को हटाकर आत्म-परिणति मे रमण करता है, तब तक ही सामायिक है ।

अत साधको का कर्तव्य है कि निश्चय सामायिक की प्राप्ति का प्रयत्न करे । केवल सामायिक के बाह्य स्वरूप मे चिपटे रहना और उसे ही सब कुछ समझ लेना उचित नही ।

निश्चय सामायिक के स्वरूप का वर्णन करके उस पर जोर देने का यह भाव नही कि अन्तरग साधना अच्छी तरह नही होती है, तो बाह्य साधना भी छोड ही दी जाय । बाह्य साधना, निश्चय साधना के लिए अतीव आवश्यक है । निश्चय सामायिक तो साध्य है, उसकी प्राप्ति बाह्य साधना करते-करते आज नही, तो कालान्तर मे कभी न कभी होगी ही । मार्ग पर एक-एक कदम बढने वाला दुर्बल यात्री भी एक दिन मजिल पर पहुच जाएगा ।

८ तप

●

डॉ० नरेन्द्र भानावत

आत्म-शुद्धि और तप

भारतीय साधना पद्धति मे तप को परम ज्योति और अग्नि कहा गया है। अग्नि की भाति तपोसाधना से जहाँ आत्मा के विकार नष्ट होते हैं, वहाँ उससे नई शक्ति और प्रकाश भी मिलता है। तप की उष्मा पाकर आत्मा निर्मल और पवित्र बनती है और धीरे-धीरे साधना का बल पाकर यह उष्मा विलक्षण ज्योति मे परिणत हो जाती है। यह परिणमन ही तपोसाधना का चरम लक्ष्य है। इसे ही आत्म-दशा से परमात्म-दशा तक पहुचने की स्थिति कहा गया है। आत्मा और परमात्मा मे जो भेद है, वह कर्म जनित है। राग-द्वेषादि कर्मों से आत्मा मलीन और अपवित्र बन जाती है। आत्मा की शुद्धि के लिये श्रमण सस्कृति मे तप का विशेष विधान है। 'सयुक्त निकाय' जैसे बौद्ध ग्रन्थो मे तप और ब्रह्मचर्य को बिना पानी का स्नान कहा गया है। भगवान् महावीर ने कहा— तवेण परिसुज्झई' अर्थात् तप से आत्मा का शुद्धिकरण होता है।

सासारिक बन्धनो मे बन्ध कर आत्मा भारी हो जाती है। तप की अग्नि से आत्मा हल्की और विशुद्ध होकर परमात्म-दशा को प्राप्त कर लेती है। इस दृष्टि से आत्म-शुद्धि के लिये की जाने वाली कोई भी प्रवृत्ति तप कही जा सकती है। जैन साधको की दृष्टि इस दिशा मे बडी उदार रही है। कोई भी व्यक्ति अपनी आतरिक शक्तियो को जागृत कर उनका विकास कर महापुरुष बन जाता है। उसमे ईश्वरत्व की झलक प्रतिबिम्बित होने लगती है। साधारण पुरुष से महापुरुष बनने की इस प्रक्रिया मे तप की विशेष भूमिका है। तप के द्वारा ही मन की सुषुप्त शक्तियाँ जागृत होती हैं। जिस अनुपात मे ये शक्तियाँ जागृत होती जाती हैं, उसी अनुपात मे महानता का स्तर बढता जाता है।

तप का मूल धैर्य

तप का मूल धैर्य माना गया है—'तवस्स मूल धिती'। जब व्यक्ति मे धीर भाव का उदय होता है तब उसमे अन्य गुण स्वत चले आते हैं। शायद इसीलिए साहित्यशास्त्रियो ने हर नायक के पहले धीर विशेषण का प्रयोग किया है, यथा धीरोदात्त, धीर प्रशान्त आदि। जहा धैर्य होता है

वहाँ अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों मे सतुलन बना रहता है। यह सतुलन ही जीवन मे धैर्य और सहनशीलता जोडे रखता है।

तप वाह्य और आभ्यन्तर

जैन आगमो मे व्यक्ति की क्षमता और रुचि के अनुसार तप का विधान किया गया है। मुख्य रूप से दो प्रकार के तप कहे गये है—वाह्य तप और आभ्यन्तर तप। वे क्रियाएँ जिनका आचरण करने पर हमे स्वय कष्ट, श्रम आदि का अनुभव होता है और दूसरो को भी वाहर मे दीखता है कि हम तप कर रहे है, वाह्य तप की श्रेणी मे आती है। इनका मुख्य लक्ष्य इन्द्रिय-विषयो से दूर हटना होता है।

वाह्य तप के ६ प्रकार

वाह्य तप के छह भेद माने गये हैं—अनशन, ऊनादरी, भिक्षाचरी, रस-परित्याग, कायक्लेश और प्रतिसलीनता।

अनशन का अर्थ है—आहार का त्याग करना। यह तप सभी तपो मे प्रथम है क्योकि आहार के प्रति प्राणी मात्र की आसक्ति रहती है। भूख पर विजय प्राप्त करना सवमे कठिन तप है। आहार की इच्छा का त्याग करने का अर्थ है—प्राणो का मोह छोडना और मृत्यु के भय को जीतना। आहार त्याग से मानसिक विकारो को दूर करने मे भी मदद मिलती है। व्यवहार में अनशन तप को ही 'उपवास' कहा जाता है। उपवास शब्द पर विचार करने से प्रतीत होता है कि इसमे दो शब्द हैं उप+वास। 'उप' का अर्थ है समीप और 'वास' का अर्थ है—रहना अर्थात् आत्मा के समीप रहना। आत्मा का स्वभाव आनन्दमय एव ज्ञानमय है। इस आनन्द और ज्ञान की अनुभूति वही कर सकता है जो राग-द्वेष आदि विकारो से दूर रहकर समभाव मे रमण करता है।

तप का दूसरा भेद ऊनोदरी है। इसका अर्थ है भूख से कम खाना। इस तप द्वारा खाद्य सयम की साधना को बल मिलता है और अनावश्यक सचय करने की प्रवृत्ति पर अकुश लगता है अत यह तप धार्मिक दृष्टि से ही नही, आर्थिक एव सामाजिक दृष्टि से भी उपयोगी है। वस्तु की तरह क्रोध, मान, माया, लोभ आदि मानसिक विकारो मे कमी लाना, इनके वेगो को कम करना भी भाव ऊनोदरी तप है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे सादगी, सयम और समभाव लाना इस तप का मुख्य लक्ष्य है।

तीसरे तप भिक्षाचरी का सम्बन्ध निर्दोष आहार ग्रहण करने की विधि से है। इसमे साधक के लिये विधान है कि वह अभिग्रह आदि नियम करके रूखा-सूखा जैसा भी निर्दोष आहार प्राप्त हो, उसे समभाव पूर्वक ग्रहण करे। चौथे रस-परित्याग तप मे स्वाद-वृत्ति पर विजय प्राप्त करते हुए अभक्ष्य चीजो से वचा जाता है। आज युवको मे वढती हुई मासाहार और होटलो मे खाने की प्रवृत्ति मुख्यत स्वादलोलुपता का ही परिणाम है। तन-मन को स्वस्थ रखने के लिए सादे और सात्विक भोजन की ओर प्रवृत्त होना इस तप का लक्ष्य है। पाँचवा कायक्लेश तप व्यक्ति को सहिष्णु और सहनशील वनाता है। छठे प्रतिसलीनता तप मे असद्वृत्तियो से इन्द्रियो को हटाकर सद्वृत्तियो मे

मन को तल्लीन किया जाता है। इस प्रकार इन छह बाह्य तपो के द्वारा विषयो से बचने की साधना की जाती है। इनमे से प्रारभ के चार तप आहार से सम्बन्धित हैं। जब तक आहार पर सयमन नही किया जाता, तब तक मन की शक्तियो को उजागर नही किया जा सकता।

आभ्यन्तर तप के ६ प्रकार

जिन क्रियाओ के द्वारा साधना मे शारीरिक कष्ट तो कम होते है किन्तु मानसिक एकाग्रता, सरलता और भावो की शुद्धता का प्रभाव अधिक रहता है, उन्हे आभ्यन्तर तप कहा गया है। इनका विधान विकारो को दूर हटाने के लिए है। इनके छह प्रकार है—प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग।

प्रायश्चित का अर्थ है—प्रमाद या अज्ञानवश हुई भूल के प्रति मन मे ग्लानि या पश्चाताप करते हुए उसे दुबारा न करने का सकल्प करना। इस प्रक्रिया से आत्म-निरीक्षण होकर उत्तरोत्तर जीवन शुद्ध बनता है। विनय का अर्थ है—नम्रता। बडो के प्रति विनम्र भाव रखना और छोटो के प्रति स्नेह और वात्सल्य रखना वैयक्तिक और सामाजिक जीवन के लिये आवश्यक है। विनय द्वारा अहकार टूटता है और सदाचार मे वृद्धि होती है।

वैयावृत्य का अर्थ है—सेवा। सेवा को परम धर्म कहा गया है। जैन आगमो मे तो यहाँ तक कथन है कि वैयावृत्य करने से तीर्थङ्कर गोत्र बधता है। इसमे अपनी सुख-सुविधाओ का त्याग करके दूसरो के सुख के लिये त्याग की भावना जागृत होती है। आज सेवा का विशाल क्षेत्र हमारे सामने है। जो समाज-सेवा और राष्ट्र-सेवा मे निष्काम भाव से अपना योग देता है वह भी हमारे यहाँ तपस्वी कहा गया है। विधि पूर्वक सद्शास्त्रो का अध्ययन, मनन करना और तदनुरूप उस पर आचरण करने का प्रयत्न करना स्वाध्याय तप है। स्वाध्याय से मन एकाग्र होता है, विचार शुद्ध बनते हैं और ज्ञान का अभ्यास बढता है। स्वाध्याय से ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय होता है—'सज्झाएण नाणावरणिज्ज कम्म खवेइ'। वाचना पृच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षा और धर्मकथा ये स्वाध्याय के पाँच प्रकार है। मन की एकाग्रता के लिये ध्यान तप का विधान है। इसके द्वारा मन के प्रवाह को अशुभ विचारो से शुभ विचारो की ओर मोडा जाता है। शुभ विचारो की ओर बढता हुआ मन जब किसी विषय मे तन्मय हो जाता है, तब वह ध्यान कहलाता है। धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान शुभ ध्यान है। इनसे आत्मबल का विकास होता है और धीरे-धीरे मन समाधिस्थ होने लगता है। व्युत्सर्ग तप मे विशिष्ट विधि पूर्वक त्याग किया जाता है। शरीर के प्रति आसक्ति का त्याग करना, धन सम्पत्ति के ममत्व का त्याग करना तथा क्रोध, मान, माया, लोभ आदि विकारो के परिहार का अभ्यास करना व्युत्सर्ग तप है। इसमे देहासक्ति से सर्वथा मुक्त होने का प्रयास किया जाता है।

तप का वास्तविक स्वरूप

केवल भूखा रहना वास्तविक अर्थ मे सच्चा तप नही है। यह तो तप का आरभ मात्र है। अनशन तप मे भोजन का त्याग भर करना पडता है। पर ज्यो-ज्यो तप सूक्ष्म बनता जाता है, उसमे विषय और विकार छूटते चलते है और अन्तत भोग से सर्वथा विरक्ति हो जाती है। श्रेष्ठ तप वह है जिनमे मन किसी प्रकार का अमगल न सोचे, इन्द्रियो की हानि न हो और नित्य प्रति की धर्म-

त्रियाओ मे विघ्न न आये। तप व्यक्ति को कमजोर या निष्क्रिय नही बनाता, वह उसकी सक्रियता और जीवन्त शक्ति को सतेज करता है।

तप का वैयक्तिक और सामाजिक महत्त्व

जैनागमो मे वर्णित उक्त बाह्य एव आभ्यन्तर तपो के बारह प्रकारो से यह स्पष्ट है कि तप का वैयक्तिक और सामाजिक जीवन मे महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसकी साधना से कर्मो की निर्जरा तो होती ही है, साथ ही खाद्य-सयम, कष्ट-सहिष्णुता, अस्वादवृत्ति, सेवा-भावना, मानसिक एकाग्रता, त्याग-वृत्ति जैसे सद्गुणो का भी विकास होता है जो किसी भी स्वस्थ समाज और प्रगतिशील मजबूत राष्ट्र के मूल आधार हैं।

एगमप्पाण सपेहाए धुणे सरीरग

—आचाराग १।४।२

आत्मा को शरीर से विलग जानकर भोगलिप्त शरीर को तपश्चर्या के द्वारा धुन डालना चाहिए।

भवकोडिय सचिय कम्म, तवसा णिज्जरिज्जइ

—उत्तराध्ययन ३०।६

करोडो भवो के सचित कर्म तपश्चर्या से निर्जीर्ण—नष्ट हो जाते हैं।

सक्खं खु दीसइ तवो विसेसो।
न दीसई जाइविसेस कोई।।

—उत्त० १२।३७

तप की महिमा प्रत्यक्ष मे दिखलाई देती है किन्तु जाति की महिमा तो कोई नजर नही आती है।

---

९ श्रा क धर्म

•

• श्री मधुकर मुनि

श्रावक का स्वरूप :

'श्रावक' श्रमण-सस्कृति का मुख्य शब्द है। जैन और बौद्ध—दोनो ही परम्पराओ मे गृहस्थ उपासक को श्रावक कहा गया है। श्रावक शब्द के कुछ गुणवाचक अर्थ इस प्रकार है।

जो धर्मशास्त्रो का श्रवण करता है, वह श्रावक।

जो त्यागी श्रमणो की उपासना करता है, वह श्रमणोपासक है। श्रावक शब्द से ध्वनित होता है—

श्रा	श्रद्धावान हो,
व	विवेकी हो,
क	क्रियावान हो,

श्राद्धविधि[1] नाम के प्राचीन ग्रथ मे श्रावक शब्द की व्युत्पत्ति के साथ निम्न अर्थ बताये गये है—

श्रा—वह तत्त्व-अर्थ के चिन्तन द्वारा श्रद्धालुता को दृढ करता है।

व—वह सत्पात्र मे धन रूप बीज का वपन करता है।

क—वह शुद्ध साधु की सेवा करके पाप धूलि को दूर फेंकता है।

उक्त परिभाषाओ से यह स्पष्ट होता है कि श्रावक वह व्यक्ति है, वह पवित्र मानव है जो सदा श्रद्धा, ज्ञान और कर्म की पावन त्रिवेणी मे अवगाहन करता रहता है। राष्ट्र और समाज मे जिसका चरित्र आदर्श होता है। जो सग्रह भी करता है तो दान भी देता है, जो सेवा लेता है तो सेवा करने मे भी पीछे नही रहता और जो नीति एव सदाचार के नियमो का आत्मसाक्षी से पालन करता है, वह जैन परिभाषा के अनुसार 'श्रावक' है।

---

१ श्रद्धालुता श्राति पदार्थ चिन्तनाद्, धनानि पात्रेषु वपत्यनारतम्।
किरत्यपुण्यानि सुसाधुसेवना, दत्तोपि त श्रावक माहुरुत्तमा ॥

—श्राद्धविधि पृ० ७२। श्लोक ३

श्रावकधर्म की रूपरेखा

जीवन एक अखण्ड वस्तु है । धर्म उसकी अखण्डता का रक्षक, पालक एव पोषक है । धार्मिक जीवन और लौकिक जीवन भिन्न-भिन्न नही हो सकते । दोनो का विकास एक साथ होता है । अत सामान्य आचार की भूमिका बनाने के बाद श्रावकधर्म का विकास इस प्रकार किया जा सकता है—

श्रावक आंशिक रूप मे सावद्य योगो का परित्याग करते हुए आत्मसाधना के लिए तत्पर रहते है । अतएव हिंसादि का एक सीमा तक त्याग करने के कारण श्रावकधर्म को अणुव्रत भी कहते है । उन व्रतो के नाम इस प्रकार है—

पाच अणुव्रत—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह ।
तीन गुणव्रत—दिशापरिमाण, उपभोग-परिभोग-परिमाण, अनर्थदण्डविरमण ।
चार शिक्षाव्रत—सामायिक, देशावकाशिक, पोषध, अतिथिसविभाग ।

इन सबको मिलाकर श्रावक के १२ व्रत कहे जाते है । अहिंसा आदि पांच अणुव्रत, सावद्य प्रवृत्तियो से निवृत्ति रूप है । गुणव्रतो के परिपालन मे सावद्य योगो मे निवृत्ति का पोषण करने का अभ्यास बढता है और शिक्षाव्रतो के रूप मे प्रवृत्ति की जाने से दैनिक जीवन के व्यवहार रूप मे धर्म-धारा बहती रहती है ।

अणुव्रत

(१) **अहिंसा अणुव्रत**—यह श्रावकाचार की भूमिका है । स्थूल हिंसा का त्याग करते हुए शेष सूक्ष्म हिंसा का त्याग करना अहिंसा अणुव्रत है । हिंसा का अर्थ है प्रमत्त योग मे प्राणो का नाश करना । प्रमत्त योग अर्थात् राग-द्वेष से की गई प्रवृत्ति । इस राग-द्वेष पूर्ण प्रवृत्ति मे हिंसा होती है ।

अहिंसाव्रत के अतिचार :

अहिंसा के पाच अतिचार (दोष) बताये गये है, जिनसे गृहस्थ को सदा बचना होता है । जैसे—

बन्धन—पशु आदि को कठोर बन्धन से बाँधना ।

वध—गाय-बैल, घोडा आदि मूक पशुओ पर निर्मम प्रहार करना ।

छविच्छेद—पशु एव मनुष्यो के हाथ-पैर आदि अगो को काटना ।

अतिभार—किसी भी प्राणी पर उसकी शक्ति से अधिक भार लादना, अति श्रम लेना, शोषण करना ।

अन्नपाननिरोध—अपने आश्रित पशु-पक्षी, मनुष्य आदि के भोजन-पानी मे बाधा डालना । आश्रित प्राणी को भूखा मारना ।

(२) **सत्याणुव्रत**—यह अहिंसा का ही दूसरा नाम है । इसका उद्देश्य झूठ बोलने से बचना है । सत्य बोलना दूसरो के लिए लाभदायक होने की अपेक्षा स्वय के लिए महान् हितकारी है । इसीलिए सत्य को भगवान् की उपमा दी है—'**सच्च खु भगव**'—सत्य ही भगवान् है ।

स्वार्थ के लिए अथवा दूसरो के लिए क्रोध से अथवा भय से किसी भी प्रसग पर दूसरो को पीडा पहुचाने वाला असत्य-वचन न तो स्वय बोलना, न दूसरो से बुलवाना चाहिए।

सत्यव्रत के अतिचार

सत्य की सीमा अनन्त है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे इसका उपयोग होता है। कभी-कभी न चाहते हुए भी गृहस्थ को विवश होकर असत्य का सहारा लेना पडता है, किन्तु धर्मशास्त्र कहते हैं यदि विवशतावश असत्य बोलते हो तब भी असत्य के प्रति मन मे ग्लानि रखो। अपनी दुर्बलता को छोडने की दिशा मे प्रयत्नशील रहो। यह सकल्प रखो कि आज नही तो कल मुझे असत्य का पूर्ण परित्याग करना है—

सत्यव्रत के पाच अतिचारो से गृहस्थ को बचना चाहिए, ताकि उसका व्रत दूषित न हो। पाच अतिचार इस प्रकार है—

मिथ्योपदेश—सच-झूठ समझाकर किसी को बुरे मार्ग पर ले जाना।
रहस्याभ्याख्यान—किसी की गुप्त बात प्रकट करना, मर्मभेद करना।
कूटलेखक्रिया—झूठे दस्तावेज, नकली खाते-बही आदि बनाना।
न्यासापहार—धरोहर रखकर देते समय मुकर जाना।
साकारमत्रभेद—झूठी अफवाहे फैलाना, चुगली खाना।

ये पाचो ही सत्यव्रत के दोष है। गृहस्थ को इनसे बचना अत्यन्त आवश्यक है।

(३) **अचौर्याणुव्रत**—अचौयव्रत का अर्थ है, अपने स्वामित्व की वस्तु को छोडकर किसी दूसरे की वस्तु को बिना उसकी अनुमति के अपने उपयोग मे लाना चोरी है और इस चोरी का त्याग करना अचौर्यव्रत है।

अचौर्यव्रत के सम्बन्ध मे गम्भीरता से विचार किया जाए तो प्रतीत होगा कि पेट भरने और शरीर ढकने के लिए जरूरत से अधिक सग्रह रखना भी चोरी है। गाधीजी ने तो इसके लिए लिखा है कि जिस वस्तु की हमे आवश्यकता न हो, भले ही वह वस्तु दूसरो से आज्ञा लेकर ही ली हो, किन्तु उसे लेना भी चोरी है।

वस्तु के स्वामी की अनुपस्थिति मे ताला तोडकर वस्तु लेना जैसे चोरी कही जाती है, वैसे ही उसकी उपस्थिति मे धोखा देकर ले जाना भी चोरी है। ताला तोडकर लेना असभ्य चोरी है। लेकिन अपनी बुद्धिमानी, शक्ति आदि से दूसरे की वस्तुओ पर अधिकार जमाना, शोषण करना, अधिक मूल्य की वस्तु मे कम मूल्य की वस्तु की मिलावट करना, विज्ञापन आदि देकर मानसिक, शारीरिक स्वास्थ्य को खराब करने वाली वस्तुओ आदि को बेचना आदि उपाय या कार्य सब चोरी ही माने जायेंगे।

अचौर्यव्रत के अतिचार :

गृहस्थ सम्पूर्ण अचौर्यव्रती बने यह सभव नही। चूकि जीवन-व्यवहार इतने उलझे हुए और एक दूसरे से सम्बद्ध हैं कि कभी-कभी अनचाहे भी चोरी हो जाती है, जिसे समझ भी नही पाते।

इसलिए गृहस्थ जीवन मे चोरी की स्थूल मर्यादा की जाती है कि ऐसा चोर कर्म न करे जिसके कारण समाज मे वह कलकित हो, शासन द्वारा दडित किया जाय । इस मर्यादा के साथ उसे अचौर्यव्रत के पाच निम्न अतिचारो से भी बचते रहना चाहिए—

(१) स्तेनाहृत—चोरी का माल खरीदना ।

(२) तस्कर प्रयोग—चोरी के नये-नये तरीके खोजना और दूसरो को चोरी के उपाय बताना ।

(३) विरुद्धराज्यातिक्रम—राज्य के नियम के विरुद्ध व्यापार आदि कार्य करना ।

(४) कूटतुला-कूटमान—तोलने और नापने मे गडबड करना ।

(५) तत्प्रतिरूपक व्यवहार—असली मे नकली तथा बहुमूल्य वाली वस्तु मे कम मूल्य की वस्तु मिलाकर बेचना । दिखाना कुछ, देना कुछ ।

ये पाचो ही कार्य अचौर्यव्रत के दोष है । सदाचारी गृहस्थ को इनसे बचना चाहिए ।

(४) ब्रह्मचर्यव्रत—इस व्रत का उद्देश्य शरीर एव मन की शक्तियो को सुरक्षित रखना और उन्हे सत्कार्यों, सत्प्रवृत्तियो मे नियोजित करना है । आन्तरिक शक्तियो को सुरक्षित रखने के लिए सयम की आवश्यकता है । सयम के द्वारा महान् और अद्भुत कार्य किये जा सकते है ।

सदाचार का पालन ही मानव जीवन की आधार शिला है । मनुष्य के पास विद्वत्ता और लक्ष्मी हो या न हो, परन्तु उसके पास चारित्र होना ही चाहिए । सदाचार के अभाव मे न तो बौद्धिक शक्तिया प्राप्त की जा सकती हैं और न आत्मिक शक्तिया ।

मनुष्य यदि सदाचारी हे, ब्रह्मचारी है तो उसका वीर्य ऊपर चढेगा और तेजस्वी बनेगा । असयम मनुष्य को तेजहीन बना देता है । वीर्य का उर्ध्वीकरण नर को नारायण और अब्रह्मचर्य मानव को दानव बना सकता है ।

ब्रह्मचर्यव्रत के अतिचार

यद्यपि ब्रह्मचर्य की सम्पूर्ण साधना कर ऊर्ध्वरेता बनना मनुष्यजीवन का आदर्श है, पर साधारण गृहस्थ इस आदर्श के अनुसार नही चल सकता । अत उसे यथाशक्य ब्रह्मचर्य का उपदेश किया गया है । अधिक से-अधिक सयम कर इन्द्रियो का निग्रह करे, ब्रह्मचर्य की अधिक-से-अधिक साधना करे, यही उसका ध्येय होना चाहिए । उसे ब्रह्मचर्य पालन मे बडी सतर्कता और सावधानी रखनी होती है । खासकर निम्न ५ दूषणो से तो बचते रहना आवश्यक है—

(१) इत्वरि परिग्रहितागमन—परस्त्री-गमन अथवा अल्पकाल के लिए रखैल स्त्री से गमन करना ।

(२) अपरिग्रहीतागमन—अविवाहित स्त्री, कन्या अथवा वेश्या आदि के साथ गमन करना ।

(३) अनंगक्रीडा—ऐसी क्रीडाएँ करना, जिनसे कामोत्तेजना हो ।

(४) **परविवाहकरण**—बेमेल विवाह करवाना, अथवा विवाह कराने मे अधिक दिलचस्पी रखना।

(५) **तीव्रकामासक्ति**—काम-भोग सेवन की तीव्र अभिलापा रखना।

ये पाचो ही ब्रह्मचर्यव्रत के दूषण है, श्रावक को इनमे बचते रहना अनिवार्य है।

(५) **अपरिग्रहव्रत**—तृष्णा, मूर्च्छा, ममत्व व आसक्ति को नियन्त्रित करने के लिए यह व्रत है। यह व्रत-पालन करने के मुख्य दो उद्देश्य है—एक व्यक्तिगत आत्म-विकास और दूसरा सामाजिक व्यवस्था। जड वस्तुओ के अधिक सग्रह से मनुष्य की आत्मचेतना दब जाती है और उसका विकास अवरुद्ध हो जाता है। जब एक मनुष्य किसी वस्तु का अधिक सग्रह करता है, तब दूसरे मनुष्यो को उस वस्तु की कमी भोगनी पडती है। सग्रह की वजह से समाज मे विषमता और अव्यवस्था उत्पन्न होती है। भगवान् महावीर ने जड पदार्थों का सग्रह करने वालो को बोध देते हुए कहा है—

> **वित्तेण ताण न लभे पमत्ते, इयम्मि लोए अदुवा परत्था।**
> **दीविप्पणट्ठेव अणतमोहे, नेयाउय दट्ठुमदट्ठुमेव॥**

हे प्रमादी जीव! इस लोक या परलोक मे धन शरण देने वाला नही है। अधकार मे जैसे दीपक बुझ जाए तो देखा हुआ मार्ग भी बिन देखा जैसा हो जाता है, वैसे ही पौद्गलिक-वस्तुओ के मोहान्धकार मे मनुष्य न्याय मार्ग को देखकर अनदेखा कर देता है।

परिग्रह सब पापो की जड है। जबतक परिग्रह, सग्रहवृत्ति पर नियन्त्रण नही किया जायेगा, तब तक दूसरे पाप रुक नही सकते। श्रावक का यह अपरिग्रह अणुव्रत, इच्छापरिमाण व्रत के नाम से प्रसिद्ध है, क्योकि गृहस्थ सम्पूर्ण रूप से अपरिग्रही नही बन सकता है। अत उसके लिए यही उचित है कि वह अपनी इच्छाओ को सीमित करे, तृष्णा का, लालसा का दमन कर उन्हे एक सीमा से आगे न बढने दे। इसीलिए जैन आगमो मे अपरिग्रह अणुव्रत को 'इच्छापरिमाणव्रत' कहा है।

इच्छापरिमाणव्रत के अतिचार

अन्य व्रतो की भाँति इस व्रत के भी पाच अतिचार हैं।

१ धन व धान्य का नियय व मर्यादा से अधिक सग्रह करना। २ भूमि तथा गृह आदि का सीमा से अधिक स्वामित्व रखना। ३ चादी व सोना मर्यादा से अधिक रखना। ४ नियम से अधिक दास-दासी तथा पशु आदि रखना। ५ मर्यादा के उपरान्त घर का सामान रखना।

इन अतिचारो मे मुख्य बात यही है कि गृहस्थ सग्रह तो करता है, किन्तु अपने गृहीत नियमो के उपरान्त सग्रह न करे। एक दृष्टि से सामाजिक एव राजकीय मर्यादा का उल्लघन भी इसमें आ सकता है। दृष्टि यही है कि किसी भी प्रकार अधिक सग्रह न करे। सग्रह ही विग्रह की जड है, विषमता का जनक है।

गुणव्रत

गुणव्रत का भाव है, जो पाँच अणुव्रत हैं, उनके गुणो की वृद्धि करने वाले व्रत। अहिंसा, सत्य आदि की साधना को अधिक सशक्त बनाना इनका ध्येय है।

(६) **दिशापरिमाणव्रत**—अपनी शक्ति के अनुसार पूर्व-पश्चिम आदि की सीमा निश्चित करना कि उन दिशाओ मे इस सीमा से आगे मैं व्यापार आदि प्रवृत्तिया नही करूगा। यह व्रत अपरिग्रह का पूरक व्रत है। अपरिग्रहव्रत मे धन आदि वस्तुओ की मर्यादा की जाती है। इस व्रत का आराधक दिशाओ की की हुई मर्यादा से वाहर व्यापार-व्यवसाय नही करता।

दिशाओ की मर्यादा न रहने से आज विश्व मे वर्ग-सघर्ष, व्यापारिक-प्रतियोगिता, वेकारी, युद्ध का वातावरण वना हुआ है। यदि भारतवासी अपने व्यापार-व्यवसाय व वस्तुओ के लिए क्षेत्र सीमा वाध लें तो विदेशो पर निर्भरता की मनोवृत्ति कम होगी और देश को उत्पादन की दृष्टि से स्वावलम्वी वना सकेंगे।

दिशापरिमाणव्रत वाला तो अपनी क्षेत्र-सीमा रखता ही हे और उसके वाहर क्रय-विक्रय नही करता, किन्तु साधारण जन भी दिशापरिमाण कर ले तो वहुत-से सघर्षो व तस्करीकृत्य आदि से सहज ही बच सकते हैं। इस व्रत का उद्देश्य सतोष और शाँति युक्त जीवन विताने की ओर प्रेरित करना है।

इस व्रत के पाच अतिचार निम्न हैं—

(१) ऊची दिशा, (२) नीची दिशा, (३) तिर्यक् दिशा मे जाने की सीमा का उल्लघन करना, (४) क्षेत्र की सीमा का वढाना तथा (५) अपनी सीमा-मर्यादा को भूल जाना। इन वातो मे व्रत मे दोप आता है। अत सतत् सावधानी वरतनी चाहिए।

(७) **उपभोग-परिभोगपरिमाणव्रत**—अपरिग्रहव्रत और दिशापरिमाणव्रत से धन-सपत्ति, क्षेत्र की सीमा निश्चित कर ली, लेकिन उसके वाद भी भोगोपभोग की इच्छाओ पर नियत्रण नही रखा गया, तो भी सुख प्राप्त नही हो सकता है। अतएव भोगोपभोग सामग्रियो को और भी सीमित व नियन्त्रित करने के लिए व्रत उपयोगी है। इस व्रत मे उपभोग यानी एक वार भोगी जाए, ऐसी वस्तु—भोजन, पेय आदि पदार्थ और परिभोग यानी वार-वार भोगी जा सके, ऐसी वस्तु—वस्त्र, आभूपण आदि पदार्थ—इन दोनो प्रकार के पदार्थो का परिमाण किया जाता है।

इस व्रत के दो प्रकार हैं—एक भोजन, वस्त्र आदि सम्वन्धी और दूसरा कर्म-सम्वन्धी। उपभोग-परिभोग की वस्तुओ की मर्यादा का वाध लेना, भोजन, वस्त्रादि सम्वन्धी उपभोग-परिभोग-परिमाणव्रत कहलाता है और इन उपभोग-परिभोग की वस्तुओ की प्राप्ति के लिए जो उद्योग-धन्धे करने पडे, उनका प्रमाण व प्रकार निश्चित करना कर्म-सम्वन्धी उपभोगपरिभोगपरिमाण व्रत है। इनके लिए यह भी समझ लेना चाहिए कि तामसिक पदार्थो, भोजन आदि का और आजीविका के हिंसक व्यापारो का तो पहले ही त्याग हो जाता है। इस व्रत मे जिन कार्य व व्यापार मे अधिक हिंसा और अधर्म होने की सभावना हो, उनका त्याग कर कम हिंसा और कम पाप वाली वस्तुओ का भी परिमाण (सीमा) वाध दिया जाता है।

२. सचित्तमबद्ध-आहार—कठिन बीज या गुठली आदि सचेतन पदार्थ मे युक्त बेर, आम आदि पके फल खाना।

३ सचित्तसमिश्र-आहार—तिल, खसखस आदि सचित वस्तुओ से मिश्रित लड्डू आदि खाना या चीटी आदि से मिश्रित वस्तु खाना।

४ अभिषव-आहार—किसी प्रकार के एक मादक द्रव्य का अथवा विविध विविध द्रव्यो के मिश्रण से उत्पन्न मद्य आदि का सेवन करना।

५ दुष्पक्व-आहार—अधपके या ठीक न पके हुए को खाना।

(८) अनर्थदण्डविरमणव्रत—यह श्रावक धर्म का आठवा व्रत है। इसका पालन करने वाला सावद्य (हिंसायुक्त) व्यापारो से और अधिक निवृत्ति लेता है। अपने जीवन-निर्वाह के लिए होने वाले सावद्य व्यापारो के सिवाय अन्य सभी अधर्म व्यापारो व निरर्थक वस्तुओ के सग्रह मे निवृत्ति लेना, अनर्थदण्डविरमणव्रत है।

अनर्थ का मतलब है—निरर्थक, अनावश्यक और दण्ड का अर्थ है हिंसा। अनावश्यक हिंसा से बचना इस व्रत का लक्ष्य है।

अनर्थदण्ड के चार प्रकार हैं—(१) अपध्यान, (२) प्रमादयुक्त आचरण, (३) हिंसादान और (४) पापोपदेश।

अशुभ चिन्तन-मनन करना अपध्यान है। प्रिय वस्तु के वियोग और अनिष्ट वस्तु के सयोग होने पर शोक करना, सयोग-वियोग के लिए सदैव सकल्प-विकल्पो मे लीन रहना, शत्रु के नाश व उसका अनिष्ट करने की चिन्ता मे डूबे रहना आदि अपध्यान कहलाता है। अपध्यान करने से दुर्गति की प्राप्ति होती है।

प्रमाद भयकर पाप है। प्रमाद पतन की निशानी है। शास्त्रो मे प्रमाद के पाप को हिंसा के के समान माना है।

प्रमाद के कारणो का सकेत करते हुए शास्त्रो मे कहा है—मद्य (नशा, मद्यपान), इन्द्रियो के विषय (रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द), कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ), निद्रा और विकथाओ का कहना-सुनना। इनमे अनुरक्त जीव प्रमादयुक्त होता है और ये सब कारण प्रमाद को बढाने वाले हैं।

हिंसादान यह तीसरा अनर्थदण्ड है। जिसके द्वारा किसी की हिंसा हो सकती है, ऐसे अस्त्र-शस्त्र व अन्य साधन देना अथवा किसी के हिंसक कृत्य मे सहायता देना हिंसादान कहलाता है।

पापोपदेश—जिस उपदेश से पापकर्म मे प्रवृत्ति होती हो, पापकर्म मे सलाह या स्वीकृति देना, दूसरे को दुर्व्यसनो मे फसाने की आदत डालना आदि सब पापोपदेश माना जाता है। अनर्थदण्ड का त्यागी इन सब हिंसाकारक कार्यों और कारण से निवृत्ति ले लेता है।

इस व्रत के पाच अतिचार ये है—

१ कन्दर्प—अधिक हसी-मजाक करना।

२. कौत्कुच्य—शरीर से भाड की तरह कुचेष्टा करना

३ मौखर्य—निरर्थक बकवास करना।

४ सयुन्ताधिकरण—अनावश्यक हिंसक साधनो का सग्रह करना।

५. उपभोग-परिभोगातिरिक्त—भोगोपभोग के अनावश्यक साधनो का सग्रह करना।

शिक्षाव्रत

शिक्षा व्रत का अर्थ है श्रावक के लिए उपदेश एव उद्‌बोधन देने वाले व्रत। इनसे व्रतो का विकास व विस्तार होता है।

(९) **सामायिकव्रत**—मन की चचल वृत्तियो को शान्त करने, स्थिर करने के लिए सामायिक द्वारा शिक्षा मिलती है। सामायिक का अर्थ है 'समभाव'। सम, अर्थात् समता और आय, अर्थात् लाभ जिस साधना से समभाव की प्राप्ति हो। उसे सामायिक कहते हैं। भगवान् महावीर ने कहा है—

जिसकी आत्मा सयम, नियम एव तप मे तल्लीन है, उसी को सच्ची सामायिक होती है।

सामायिक साधना आत्मा की खुराक है। व्रतो को बलवान् बनाने वाला रसायन (टानिक) है।

इस व्रत के पाच अतिचार निम्न हैं—

(१) मन, (२) वचन, (३) काया को चचल बनाना, (४) सामायिक की समय-मर्यादा को भूल जाना, (५) सामायिक के काल और क्रियासाधना का सम्यक् पालन न करना।

साधक को इन अतिचारो का परिहार करना चाहिए।

(१०) **देशावकाशिकव्रत**—इस व्रत मे छठे दिशापरिमाणव्रत और सातवें उपभोग-परिभोग-परिमाणव्रत के लिए जो जीवनपर्यन्त के लिए क्षेत्र की सीमा व पदार्थों के उपभोग की मर्यादा की थी, उनमे सवर (सयम) की वृद्धि के लिए प्रतिदिन के लिए कमी करने का लक्ष्य रहता है। प्रतिदिन के लिए मर्यादा करने से भोगोपभोग की वृत्तियो को सयमित करने का अभ्यास किया जाता है। इस व्रत का पालन करने वाला प्रतिदिन की हुई मर्यादा से बाहर न तो स्वय गमन करता है और न दूसरे को भेजता है। बाहर से लाई हुई वस्तु का उपयोग नही करता है। यहा तक कि अपने-आपको सयमित कर लेता है कि शब्द आदि भी जोर से नही बोलता, जो सीमामर्यादा से बाहर जाकर किसी को अपनी ओर आकर्षित कर सके।

जीवन की सभी प्रवृत्तियो मे महारम्भ का त्याग कर जीवन की आवश्यकताए घटाकर जीवन को पवित्र बनाना इस व्रत का आशय है। यह व्रत दैनिक सवर बढाता है तथा जीवन को अधिकाधिक सयम साधना के लिए अभ्यस्त बनाता है। इस व्रत के पाच अतिचार इस प्रकार हैं—

(१) सीमा के बाहर से किसी वस्तु को मगाना, (२) बाहर किसी वस्तु का भेजना, (३) जिस देश मे स्वय न जाने का नियम लिया हो, वहाँ शब्द सकेत से अपना काम करते रहना, (४) सीमा से बाहर देश मे कई वस्तु-सकेत आदि भेजकर उसी के सहारे काम करना, तथा (५) मर्यादा से बाहरी देश मे वस्तुएँ भेजकर कार्य करना।

(११) पौषधव्रत—पौषधव्रत का अर्थ है पोपना, तृप्त करना । हम प्रतिदिन भोजन से तो अपने शरीर को तृप्त बनाते है लेकिन आत्मा को भूखा रखते है । लेकिन इस व्रत मे शरीर को भूखा रखकर आत्मा को तृप्त किया जाता है । आत्म-चिन्तन मे समय व्यतीत करना और आत्म-निरीक्षण कर आत्मभाव मे रमण करना पौपधव्रत है ।

इस व्रत के पालक को भौतिक आपत्तिया, भय आदि भी आत्मभाव से विचलित नही कर सकते है और वह अखण्ड शान्ति का अनुभव करता है ।

पौपधव्रतधारी की एक दिन-रात की चर्या श्रमणधर्म का अभ्यास कराने वाला सोपान-जैसा है ।

पौषधव्रत के पाच अतिचार

पौपधव्रत प्राय उपवास के साथ ही किया जाता है । उपवास करके एकान्त स्थान मे जाकर सासारिक वृत्तियो का त्याग कर चौबीस घण्टे या कम-अधिक समय के लिए साधु की तरह जीवन-चर्या करना इस व्रत की विधि है । इस व्रत के पाच अतिचार है, जैसे—

(१) पौषध योग्य स्थान आदि का भली प्रकार निरीक्षण न करना, (२) पौपध योग्य शैय्या आदि का सम्यक् अवलोकन न करना, (३) मल-मूत्र त्यागने के स्थान का निरीक्षण न करना, (४) अयोग्य स्थान पर मलमूत्र त्यागना तथा (५) पौपधोपवासव्रत की मर्यादाओ के क्षेत्र मे कही खामी करना ।

(१२) अतिथिसविभागव्रत—दान देना श्रावक के प्रतिदिन के कार्यो मे से एक है । जिसकी पूर्ति यह व्रत करता है । इस व्रत मे सयमी सुपात्र को शुद्ध आहार आदि वस्तुओ को दान करने का विधान है । सयमी पुरुषो को आवश्यक वस्तुओ का दान करने से उनके पवित्र जीवन का अनुमोदन और उनके धर्माचरण मे सहयोग होता है, इससे दान देने वाले का जीवन भी विकसित होता है । अपने न्यायोपार्जित धन का सुपात्र के लिए सविभाग करना—देना इस व्रत का उद्देश्य है । अपने लिए तो सभी प्रकार के साधन जुटाये जाते हैं, किन्तु उन साधनो मे से दूसरो के लिये उपयोग मे देने की शिक्षा इस व्रत से मिलती है ।

दान देने मे धनी या निर्धन का कोई भेद नही है । रुपया-पैसा ही धन नही है, किन्तु जिसके पास बुद्धि है, वह शारीरिक शक्ति है, औपधि है, वे भी विद्यादान, सेवाकार्य, औषधिदान, वस्त्रदान, भयभीत को अभयदान दे सकते हैं ।

सुपात्र दान के तीन प्रकार माने गये है—

(१) उत्कृष्ट सुपात्रदान, (२) मध्यम सुपात्रदान, (३) जघन्य सुपात्रदान । सयमी पुरुषो को दान देना उत्कृष्ट सुपात्रदान है । स्वधर्मी बन्धुओ को दान देना मध्यम सुपात्र दान है । समकिती, दीन-दुखियो को अनुकम्पा भाव से सहायता देना जघन्य सुपात्रदान है । ये तीनो सुपात्रदान कहे जाते हैं । प्रसङ्गानुसार श्रावक को तीनो दानो का अवसर सहर्ष स्वीकार करना चाहिए ।

जो धन का उपयोग भोग-विलास मे करता है और दान नही देता, लक्ष्मी उसके लिए भार-स्वरूप हो जाती है । विलास मे लगाया गया धन मनुष्य को डुबो देता है, जबकि सत्कार्य मे व्यय किया

दिया धन मनुष्य को भवसागर से तिराता है। अत गृहस्थ को यथावसर दान देने के लिए तत्पर रहना चाहिए। अतिथिसंविभागव्रत के पाच अतिचार—

(१) निर्दोष (अचित्त) आहार आदि को सचित्त वस्तु मे डालकर रखना।

(२) सचित्त वस्तु से ढाककर रखना।

(३) समय पर दान न देना, असमय मे दान के लिए कहना।

(४) दान देने की भावना से अपनी वस्तु को पराई बना देना।

(५) ईर्ष्या व अहकार की भावना से दान देना। देखा-देखी, प्रशसा के लिए भी देना व्रत का दोष है।

श्रावकधर्म की उपयोगिता

उक्त बारहव्रतरूप श्रावकधर्म इतना महत्त्वपूर्ण है कि प्रत्येक मानव यदि परिवार के बीच रह कर इसका पालन करने लगे तो वह अपने जीवन को सुखी बना सकता है और कुटुम्ब, समाज, राष्ट्र व निज-जीवन मे सुख-शान्ति रूप हो सकता है। व्रतो के पालन के लिए जरूरी है—शल्य-रहितता। कपट, प्रदर्शन की भावना, अहकार आदि मन के शल्य है। इन शल्यो से रहित होना ही व्रती बनने की भूमिका है। कहा है—'नि शल्यो व्रती'।

व्रतो का पालन जीवन को शुद्ध और सरल बनाने के लिए है। व्रत बन्धन नही, किन्तु शक्तिसचय के कारण है। व्रतो से जीवनशक्ति केन्द्रित होती है और उसके विकास का द्वार खुलता है।

१ भक्ति

•

प० चैनसुखदास

भक्ति शब्द का अर्थ

भक्ति का अर्थ है—भाव की विशुद्धि से युक्त अनुराग। जिस अनुराग मे भाव की निर्मलता नही होती वह अनुराग (प्रेम) भक्ति नही कहला सकता। सासारिक अनुराग मे वासना होती है इसलिए उसे भक्ति का रूप नहीं दिया जा सकता। परमात्मा, सन्त या शास्त्र आदि मे होने वाले विशुद्ध प्रेम को ही भक्ति कहा जा सकता है। जिसकी भक्ति की जाती है उसमे पहले पूज्य बुद्धि उत्पन्न होती है। उसका कारण है अपने इष्ट देवता आदि के वे गुण जिन्हे भक्त प्राप्त करना चाहता है।

भक्ति का लक्ष्य

जैन भक्ति का लक्ष्य वैयक्तिक अर्थात् ऐहिक स्वार्थ नही है, अपितु आत्मशुद्धि है। आत्मा जब परमात्मा बनना चाहती है तब उसका प्रारम्भिक प्रयत्न भक्ति के रूप मे ही होता है। भक्ति आत्मा को परमात्मा बनाने के लिए एक सरल एव पकड सकने योग्य मार्ग है। खासकर गृहस्थ के लिये यह मार्ग विशेष रूप से उपादेय है। भक्ति शुभोपयोग का कारण है और शुभोपयोग से पुण्यबध होता है। यदि भक्ति मे फलासक्ति न हो और वह पूर्णतया निष्काम हो तो अन्त मे मनुष्य को शुद्धोपयोग की ओर आकृष्ट करने का कारण बन सकती है, जो मुक्ति का साक्षात् कारण है।

जैन धर्म गुण का उपासक

जैन धर्म व्यक्ति का उपासक नही अपितु गुण का उपासक है। यह व्यक्ति की उपासना का समर्थन तो करता है पर उसका कारण भी व्यक्ति के गुण ही हैं। व्यक्ति स्वय मे कुछ नही है, उसकी सारी महत्ता का कारण उसके गुण हैं और गुणो की उपासना का प्रयोजन भी गुणो की प्राप्ति है। गुणो के लिये ही भक्त, उपासक गुणवान् उपास्य को अपना आदर्श मानता है और जिस विधि से स्वय उपास्य ने गुण प्राप्त किये उसी विधि से उस मार्ग को अपनाकर भक्त भी उपास्य के गुणो को प्राप्त करना चाहता है। यही भक्ति का वास्तविक ध्येय है। इस सम्बन्ध मे निम्नाकित प्राचीन उल्लेख बडा ही महत्त्वपूर्ण है—

मोक्षमार्गस्य नेतार, भेतार कर्मभूभृताम्,
ज्ञातार विश्वतत्त्वाना, वन्दे तद्गुणलब्धये।

अर्थात् मैं मोक्ष के नेता, कर्मरूपी पर्वतो के भेता और विश्व तत्त्वो के ज्ञाता को उसके गुणो की प्राप्ति के लिये वदना करता हू । यहा किसी खास व्यक्ति को प्रणाम नही है अपितु उन गुणो को धारण करने वाले व्यक्तियो को प्रणाम है, चाहे वह कोई भी क्यो न हो । एक श्वेताम्बराचार्य भी यही कहते हैं —

भववीजाकुरजलदा , रागाद्या. क्षयमुपागता यस्य,
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा, हरो जिनो वा नमस्तस्मै ।

भव-वीजाकुर के लिये मेघ के समान, रागादिक सपूर्ण दोष जिसके नष्ट हो गये हैं उसे मेरा प्रणाम है फिर चाहे वह ब्रह्मा हो या विष्णु अथवा महादेव हो या जिन ।

सुप्रसिद्ध तार्किक आचार्य अकलकदेव भी गुणोपासना के सम्बन्ध मे यही कहते हैं—

यो विश्व वेदवेद्य , जननजलनिधेर्भंगिन पारदृश्वा,
प्रौर्वापर्याऽविरूद्ध , वचनमनुपम निष्कलक यदीयम् ।
त वन्देसाधुवद्य निखिलगुण निधि ध्वस्तदोषद्विषन्त,
वुद्ध वा वर्द्धमान शतदलनिलय केशव वा शिव वा ।

जिसने जानने योग्य सव कुछ जान लिया है, जो जन्म रूपी समुद्र की तरगो के पार पहुच गया है, जिसके वचन दोप रहित, अनुपम और पूर्वा पर विरोध रहित है, जिसने अपने सारे दोषो का विध्वस कर दिया है और इसीलिए जो सपूर्ण गुणो का भडार वन गया है तथा इसी हेतु से जो सतो द्वारा वन्दनीय है, मैं उसकी वदना करता हू । चाहे वह कोई भी हो, वर्द्धमान हो, ब्रह्मा हो, विष्णु हो अथवा महादेव हो ।

ये सव उदाहरण हमे यह वतलाते है कि भक्ति के स्थान गुण है, व्यक्ति नही । इसलिए जैन-दर्शन, भक्ति का आधार गुणो को मानता है । यदि परमात्मा की भक्ति करने से कोई परमात्मा नही बन सकता तो फिर उसकी भक्ति का प्रयोजन ही क्या है ? इस सम्वन्ध मे आचार्य मानतु ग ने ठीक ही कहा है—

नात्यद्भुत भुवनभूपण ! भूतनाथ,
भूतैर्गु णैर्भु वि भवन्तमभिष्टुवन्त ।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किवा,
भुत्याश्रित य इह नात्मसम करोति ।

अर्थात् हे जगत के भूपण, हे जगत् के जीवो के नाथ ! आपके यथार्थ गुणो के द्वारा आपका स्तवन करते हुए भक्त यदि आपके समान हो जाय तो हमे कोई अधिक आश्चर्य नहीं है । ऐसा तो होना ही चाहिये क्योकि स्वामी का यह कर्तव्य है कि वह अपने आश्रित भक्त को अपने समान वना ले । अथवा उस मालिक मे लाभ ही क्या है जो अपने आश्रित को वैभव मे अपने समान नही वना लेता ।

किन्तु यहां प्रश्न यह उपस्थित होता है कि जब परमात्मा रागद्वेष से विहीन है, तब उसकी भक्ति से लाभ ही क्या है ? राग न होने के कारण वह अपने किसी भी भक्त पर अनुग्रह नही करेगा

और न द्वेष होने से किसी दुष्ट का निग्रह करने के लिये ही प्रेरित होगा क्योकि अनुग्रह और निग्रह मे प्रवृत्ति तो राग-द्वेष की प्रेरणा से ही होती है। जो शिष्टो पर अनुग्रह और दुष्टो पर निग्रह करता है उसमे राग या द्वेष का अस्तित्व जरूर होता है किन्तु जैन इस प्रकार के किसी ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार नही करते, इस प्रश्न का उत्तर जैन स्रोतो मे जो दिया गया है वह बडा ही मनोग्राही, तर्कसगत एव आकर्षक है। प्रख्यात तार्किक आचार्य समन्तभद्र इस प्रश्न का उत्तर देते हुए अपने 'स्वयभू स्तोत्र' मे वासुपूज्य तीर्थंकर का स्तवन करते हुए कहते हैं—

न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे, न निन्दया नाद विवान्तवैरे,
तथापि ते पुण्यगुणस्मृतिर्न , पुनातु चेनो दुरिता जनेभ्य ।

हे नाथ ! आप तो वीतराग है। आपको अपनी पूजा मे कोई प्रयोजन नही है। आप न अपनी पूजा करने वालो से खुश होते है और न निन्दा करने वालो से नाखुश, क्योकि आपने तो वैर का पूरी तरह वमन कर दिया है तो भी यह निश्चित है कि आपके पवित्र गुणो का स्मरण हमारे चित्त को पापरूप कलक से हटा कर पवित्र बना देता है। इसका आशय है कि परमात्मा स्वय यद्यपि कुछ भी नही करता फिर भी उसके निमित्त से आत्मा से जो शुभोपयोग उत्पन्न हो जाता है उसी से उसके पाप का क्षय और पुण्य की उत्पत्ति हो जाती है।

महाकवि धनजय इसी का समर्थन करते हुए अपने 'विषापहार' नामक स्तोत्र मे क्या ही मनोग्राही वाणी मे कहते है—

उपैति भक्त्या सुमुख सुखानि, त्वयि स्वभावाद् विमुखश्च दु खम्,
सदावदातद्युतिरेकरूपस्तयोस्त्वमादर्श इवावभासि ।

हे भगवन् ! तुम तो निर्मल दर्पण की तरह स्वच्छ हो। स्वच्छता तुम्हारा स्वभाव है। जो तुम्हे अपने निष्कपट भाव से देखता है वह सुख पाता है और विमुख होकर बुरे भावो से तुम्हे देखता है वह दु ख पाता है। ठीक ही है, दर्पण मे कोई अपना मुह सीधा करके देखता है तो उसे उसका मुह सीधा दिखता है और जो अपना मुह टेढा करके देखता है उसे टेढा दिखता हे। किन्तु दर्पण किसी का मुह न सीधा करता है और न टेढा। इसी प्रकार राग-द्वेष रहित परमात्मा स्वय न किसी को सुख देते है और न दु ख। वह तो प्रकृतिस्थ है।

भक्त के आत्मोद्धार और भगवान् की भक्ति मे निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध हैं। यद्यपि जैनदर्शन मानता है कि भक्ति साक्षात् मुक्ति का कारण नही है, उससे 'दासोहम्' की भावना नष्ट होती है, तो भी भक्ति का महत्त्व कम नही होता। वह मनुष्य के सामने परमात्मा का आदर्श उपस्थित करती है। यद्यपि उस आदर्श की प्राप्ति रत्नत्रय से होती है, भक्ति से कभी नही, किन्तु साधना की प्रथम भूमिका मे भक्ति का बहुत बडा उपयोग है। इसका अर्थ यह है कि मन जब उपास्य की ओर आकृष्ट होता है तब वह उसके मार्ग का अनुसरण करना भी अपना कर्तव्य समझता है। वह असत् प्रवृत्तियो से हटता है और सत् प्रवृत्तियो को अपनाता है। अदया से दया की ओर, अक्षमा से क्षमा की ओर तथा सक्षेप मे अधर्म से धर्म की ओर बढता है। यदि भक्ति मे पाखण्ड न हो, किसी प्रकार का प्रदर्शन न हो और वह मानव मन को अपने यथार्थ रूप से छूने लगे तो भक्ति उसको मुक्ति की ओर ले जा सकती है। यही कारण है कि अनेक जैन कवियो ने भक्ति को इतना अधिक महत्त्व दे दिया है कि उसे पढकर आश्चर्य हुए बिना नही रहता।

भक्ति तर्क को पसन्द नही करती, वह तो श्रद्धाप्रसूत है। पर इसका अर्थ यह कदापि नही है कि भक्ति मे विवेक नही होता ऐसा हो तो वह भक्ति ही नही है। ज्ञानी और अज्ञानी की भक्ति मे जो महान् अन्तर जैनाचार्यो ने वतलाया है उसका कारण विवेक का सद्भाव और असद्भाव ही तो है। विवेक सहित भक्ति ही मनुष्य को अमरत्व की ओर ले जाती है। जो साधक श्रमणत्व की ऊची भूमिका मे नही जा सकता उसके लिए भक्ति सवल है। मुक्ति मार्ग मे पाथेय है और साधक के लिए एक सहारा है। इसलिए महाकवि वादिराज ने अपने 'एकीभाव स्तोत्र' मे कहा है—

> शुद्धे ज्ञाने शुचिनि चरिते, सत्यपि त्वय्यनीचा,
> भक्तिर्नो चैदनवधिसुखावचिका कु चिकेयम्।
> शक्योद्घाट भवति हि कथ मुक्तिकामस्य पु सो,
> मुक्तिद्वार परिदृढमहामोहमुद्रा कपाटम्।

अर्थात् शुद्ध ज्ञान और पवित्र चरित्र होने पर भी यदि असीम सुख देने वाली तुम्हारी भक्ति रूपी कु चिका न हो तो जिसके महामोह रूपी ताला लगा हुआ है ऐसा मुक्तिद्वार, मुक्ति की इच्छा रखने वाले के लिये कैसे खुल सकता है? यहा कवि ने भक्ति की तुलना मे शुद्ध ज्ञान और पवित्र चारित्र को भी उतना महत्त्व नही दिया है। यह भक्ति की पराकाष्ठा है।

भक्ति का फल

जैनाचार्यो ने भक्ति को एक निष्काम कर्म माना है। यदि उसे लक्ष्य कर मनुष्य मे फलासक्ति उत्पन्न हो जाय तो भक्ति विल्कुल व्यर्थ है। जैन-शास्त्रो मे निदान (फलाकाक्षा) को धार्मिक जीवन मे एक प्रकार का शल्य (काटा) वतलाया गया है। भक्त के सामने सदा मुक्ति का आदर्श उपस्थित रहता है। वह उससे कभी भटकता नही। यदि भटकता है तो उसे सच्चा भक्त नही कह सकते। भक्ति का सच्चा फल वह यही चाहता है कि जब तक मुक्ति की प्राप्ति न हो तव तक प्रत्येक मानव जन्म मे उसे भगवद्भक्ति मिलती रहे। इसी आशय को स्पष्ट करते हुए 'द्विसधान काव्य' के कर्ता महाकवि धनजय कहते हैं—

> इति स्तुति देव विधाय दैन्याद्, वर न याच त्वमुपेक्षकोऽसि,
> छाया तरु सश्रयत् स्वत् स्यात्, कश्छायया याचितयाऽऽमलोभ।
> अथास्ति दित्या यदिवोपरोध, त्वय्येव सक्ता दिश भक्ति-वुद्धि,
> करिष्यते देव तथा कृपा मे, को वात्मपोष्ये सुमुखो न सूरी।

हे देव! इस प्रकार आपकी स्तुति कर मैं आप से उसका कोई वर नहीं मागता, क्योंकि किसी से भी कुछ मागना तो एक प्रकार की दीनता है। सच तो यह है कि आप उपेक्षक (उदासीन) हैं। आप मे न द्वेष है और न राग। राग विना कोई किसी की आकाक्षा पूरी करने के लिए कैसे प्रवृत्त हो सकता है? तीसरी बात यह है कि छाया वाले वृक्ष के नीचे वैठकर फिर उस वृक्ष से छाया की याचना करना तो विल्कुल व्यर्थ है, क्योकि वृक्ष के नीचे वैठने वाले को तो वह स्वत ही प्राप्त हो जाती है।

'कल्याण मदिर स्तोत्र' के कर्ता महाविद्वान् कुमुदचन्द्र भी इस सबध में यही बात कहते हैं —

यद्यस्ति नाथ भवदघ्रिसरोतहाणाम्, भक्ते फल किमपि सतत सचिताया ,
तन्मे त्वदेकशरणस्य शरण्यभूया स्वामी त्वमेव भुवनेऽत्र भवान्तरेपि ।

हे शरण्य ! ग्रापके चरण कमलो की सतत् सचिता भक्ति का यदि कोई फल हो तो वह यही होना चाहिये कि इस जन्म ग्रौर ग्रगले जन्म मे ग्राप ही मेरे स्वामी हो, क्योकि ग्रापके ग्रतिरिक्त मेरा कोई भी शरण नही हो सकता ।

किन्तु जैसा कि पहले कहा है, मनुष्य का चरम लक्ष्य मुक्ति है । इसलिए कोई भी भक्त जब तक मुक्ति नही मिले तव तक ही इस फलाकाक्षा का ग्रौचित्य समभता है । इसलिए भगवान् की पूजा के ग्रत मे जैन मदिरो मे जो शान्तिपाठ बोला जाता है, उसमे इस ग्रभिप्राय को ग्रत्यन्त स्पष्ट शब्दो मे व्यक्त किया गया है —

तव पादौ मम हृदये, मम हृदय तव पदद्वयेलीनम्,
तिष्ठतु जिनेन्द्र ! तावत् यावन्निर्वाणसप्राप्ति ।

हे भगवन् ! जव तक निर्वाण की प्राप्ति न हो तव तक तुम्हारे चरण मेरे हृदय मे लीन रहे, ग्रौर मेरा हृदय तुम्हारे चरणो मे लीन रहे, इन उद्धरणो से यह ग्रच्छी तरह समभा जा सकता है कि जैन भक्ति का उद्देश्य परमात्मत्व की ग्रोर बढना है। किसी भी प्रकार का लौकिक स्वार्थ उसका लक्ष्य नही है । जिसके जीवन मे भक्ति की महत्ता ग्रकित हो जाती है उसकी दुनिया के क्षणभगुर पदार्थों मे ग्रास्था नही होती ग्रौर न उसके मन मे किसी प्रकार के वैयक्तिक स्वार्थ की ही ग्राकाक्षा होती है । वास्तविक भक्त वह है जिसकी दुनिया के क्षणभगुर सुखो मे ग्रास्था नही होती । जिसको इस प्रकार की ग्रास्था, ग्रासक्ति ग्रथवा ग्राकाक्षा होती है वह कभी परमात्मत्व की ग्रोर नही बढ सकता, भक्त हृदय ग्रहिंसक होता है इसलिए उसका कोई शत्रु भी नही होता है वह ग्रपनी भक्ति के बीच मे इस प्रकार की ग्राकाक्षायें भी नही लाता जो द्वेषमूलक एव हृदय को विकृत करने वाली हो । जैन दृष्टि से वे स्तोत्र ग्रत्यन्त नीच स्तर के ही समभे जाने चाहिये जो मनुष्य को हिंसा एव विकार की ग्रोर प्रेरित करने वाले हो ।

हा, जैन भक्ति एव पूजा के प्रकरणो मे भक्ति के फलस्वरूप ऐसी मागें जरूर उपलब्ध होती है जो वैयक्तिक नही ग्रपितु सार्वजनिक हैं, फिर चाहे वे लौकिक ही क्यो न हो । भगवान् की उपासना के बाद जैन उपामना गृहो मे शाति पाठ बोला जाता है उसमे भक्त कहता है —

क्षेम सर्वप्रजाना प्रभवतु बलवान् धार्मिको भूमिपाल ,
काले काले च सम्यग् विलसतु मघवा व्याधयो यान्तु नाशम् ।
दुर्भिक्ष चौरमारी क्षणमपि जगता मास्मभूज्जीवलोके,
जैनेन्द्र धर्मचक्र प्रभवतु सतत सर्वसौख्य-प्रदायि ।

हे भगवान् ! सारी प्रजा का कल्याण हो । शासक वलवान् ग्रौर धर्मात्मा हो । समय-समय पर (ग्रावश्यकतानुसार) पानी वरसे । रोग नष्ट हो जावें । कही न चोरी हो ग्रौर न महामारी फैले ग्रौर सारे सुखो को देने वाला भगवान् जिनेन्द्र का धर्मचक्र शक्तिशाली हो ।

इम प्रकार का एक उल्लेख ग्रौर भी सुनिये —

सपूजकाना प्रतिपालकानाम्, यतीन्द्रसामान्यतपोधनानाम्,
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञ , करोतु शाति भगवान् जिनेन्द्रः ।

जो भगवान् के भक्त हैं, जो दीनहीनो के सहायक है, जो यतियो मे श्रेष्ठ हैं, जो तपोधन हैं, उन सबको तथा देश, राष्ट्र, नगर और राजा को भगवान् जिनेन्द्र शान्ति प्रदान करें ।

ये सब उल्लेख स्पष्ट यह बतलाते हैं कि जैनो के वाङ्मय का लक्ष्य आत्मशोधन के साथ-साथ लोकोपकार की भावना भी है । उसका दृष्टिकोण सकुचित नही अपितु उदार, विशाल एव व्यापक है । इसमे वसुधैवकुटुम्बकम् की उदात्त तथा प्राजल भावना ओतप्रोत है । इससे मानव को जो प्रेरणा मिलती है उससे उसकी पशुता निकल कर मानवता निखर जाती है ।

मूर्तिपूजा और भक्ति .

श्वेताम्बर जैनो के स्थानकवासी और तेरापथी एव दिगम्बर जैनो का तारणपथी सम्प्रदाय—यद्यपि मूर्ति पूजा को महत्त्व नही देते, फिर भी वे भक्ति का समर्थन करते हैं । यद्यपि मूर्ति पूजा और भक्ति का निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है तथापि ये दोनो चीजें एक नही हैं । किन्ही दो पदार्थों मे निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध बनाना व्यक्तिगत प्रश्न है । भक्ति के लिये भी कोई मूर्ति पूजा को अवलम्बन मानता है और कोई नही मानता है । जो सप्रदाय मूर्ति या प्रतिमा को अवलम्बन नही मानते, वे भी भगवान् की भक्ति करते है । भक्ति तो मनुष्य की मानसिक वृत्ति है । वह मूर्ति रूप आलबन के बिना निरालबन भी हो सकती है । वास्तव मे परमात्मा या भगवान् ही आलबन हैं । उपास्य मे तो कोई भेद है नही, भले ही उनकी मूर्ति बनाई जाये या न बनाई जाये । बिना मूर्ति के भी परमात्मा या महात्माओ के गुणो मे अनुराग उत्पन्न कर उसमे पूजनीयता की आस्था स्थापित की जा सकती है । भक्ति का रहस्य भी यही है । जैन धर्म मे जो भक्ति का महत्त्वपूर्ण स्थान है उसे जैनो के सभी सम्प्रदाय एक मत से स्वीकार करते हैं ।

११ योग

•

मुनि सुशीलकुमार

योग का अर्थ :

योग का प्रसिद्ध अर्थ समाधि है अथवा सयोग। समाधि योग का साध्य है और सयोग साधन। ध्याता का ध्येय के साथ सयोग—तदाकार हो जाना ही योग है, अत चित्त-वृत्तियो का निरोध भी योग कहा जाता है। इन्हे ध्यान और समाधि भी कहा जा सकता है, क्योकि ध्यानयोग मे मन की एकाग्रता का सम्पादन करना और समाधि मे मन की सुस्थिरता प्राप्त करना ही योग की सिद्धि है।

जैनागमो मे विशिष्ट अर्थ .

किन्तु जैनागमो मे मन, वचन तथा काया के व्यापारो को भी योग कहा गया है।[1] आत्म-प्रदेशो के साथ—कर्मपरमाणुओ का सम्बद्ध होना ही बध कहलाता है, बध मे मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, और योग ही कारण है।[2] विशेषकर आत्मा की शुभाशुभ प्रवृत्ति मे मन, वचन तथा काया-व्यापार की नितान्त आवश्यकता रहती है। इसीलिए इन्हे आस्रवद्वार भी कहा जाता है। यद्यपि वीर्यान्तरकर्म के क्षयोपशम मे आत्मप्रदेशो का परिस्पन्दन-कम्पन-व्यापार ही वास्तव मे योग है, किन्तु यह आत्म-परिस्पन्दन मन, वचन तथा काया के आश्रित हैं, अत इन्हें ही योग कहा जाता है।

मनोयोग

मन, शरीर और इन्द्रियो का शासक है, वाणी अन्त स्थ भावनाओ की अभिव्यञ्जना का माध्यम है और शरीर क्रियाशक्ति का केन्द्र है, शरीर की अपेक्षा वाणी मे और वाणी की अपेक्षा असख्य गुण-शक्ति मन मे है।

जैनागम मे मन को यथार्थ, अयथार्थ, उभय और अनुभय के रूप मे चार भागो मे बाटा है।

१–ठाणांग, स्थान ३।

२–समवायांग, समवाय ५,

मन की सारी दौड-धूप इसी चतुष्पथ मे समाप्त हो जाती है। यद्यपि मनोदण्ड के नाते स्थूल रूप से छ दोषो से मन अभिभूत हो जाता है जैसा कि—

१ विषाद, २ निर्दयतापूर्ण-विचार ३ व्यर्थ कल्पना-जाल, ४ इधर-उधर मन को भटकाना, ५ अपवित्र विचार, ६ द्वेष या अनिष्ट चिंतन आदि।

इनसे विपरीत मन को प्रशस्त भाव, पवित्र विचार, विश्वहित तथा आत्मबोध की ओर लगाना ही मनोयोग है।

वचन योग :

वचन योग भी सत्यवाणी, असत्यवाणी सत्यासत्य और अनुभयरूप वाणी के भेद से चार प्रकार का होता है। वचन भी अप्रशस्त भाव से छ बुराई कर बैठता है—

१ असत्य-भाषण २ निन्दा, चुगली, ३ कटु गाली, शाप देना, ४ अपनी बडाई हाकना, ५ व्यर्थ की बातें करना, ६ शास्त्रो के सम्बन्ध मे मिथ्याप्ररूपणा करना।

इन्ही से विपरीत प्रशस्त वचन का अर्थ है—'हितमित्त पथ्य, सुखद, कल्याणकर वाणी बोलना।'

काय योग

काया का व्यापार बहुत विस्तृत है। जैनधर्म मे इस शरीर को औदारिक शरीर बताया गया है। औदारिक, आहारक, वैक्रिय और कार्मण काय-योग के साथ जो आत्म-परिस्पन्दन होता है, उसे काय-योग कहा जाता है।

और सामान्यत काय योग को भी प्रशस्त और अप्रशस्त रूप से विभक्त किया गया है, जैसे कायादण्ड के नाते—

१ पीडा पहुचाना, २ व्यभिचार करना, ३ वस्तु चुराना, ४ अकड कर चलना, ५ व्यर्थ की चेष्टाएँ करना, ६ असावधानी से चलना, अयत्ना करना आदि कायदण्ड हैं, और इन्ही के विपरीत पीडा न पहुचाना, ब्रह्मचर्य पालन करना, और सयत रहना आदि, काया के शुभ व्यापार (प्रशस्त काय योग) हैं।

मन्त्रयोग, लययोग, राजयोग, तथा हठयोग की तरह जैनधर्म में भी योग को समाधि के रूप मे ग्रहण किया गया है, किन्तु जैनधर्म निरोध प्रधान ही योग नही है, अपितु वह चिन्तन-प्रधान योग को मानता है। जैनधर्म के योग का स्पष्ट मन्तव्य यह है कि अकुशल मन का निरोध और कुशल मन की उदीरणा,[1] और लौकिक योग मे मनोलय का ही आदर्श श्रेष्ठ माना गया है। इसीलिए आचार्य हरिभद्र सूरि ने योग के पाँच प्रकार बतलाए हैं—और योग को निर्वाण प्राप्ति का श्रेष्ठतम मार्ग प्रतिपादित किया है, एव १ अध्यात्म योग, २ भावना योग, ३ ध्यान योग, ४ समता योग, व ५ वृत्ति सक्षय योग, को ही योग का सोपान-क्रम निश्चित किया गया है। भावना, ध्यान, तथा समता का तो वर्णन पृथक्-

---

१—अकुसल मण निरोहो वा, कुसल मन उदीरण वा—भगवती शतक २५, उ० ७, सा० ७।

पृथक् यथा स्थान मे हुआ है, सभव है आध्यात्म और वृत्ति सक्षय के अर्थ मे कुछ भ्राति रह जाए अत जैनधर्म के अनुसार अध्यात्म का अर्थ तत्त्वचिन्तन करना है, जो औचित्य, वृक्षमसवेतत्त्व, आगमानुसारित्व तथा मैत्री, करुणा, प्रमुदित और उपेक्षा-भावना से युक्त होना चाहिए ।

वृत्ति सक्षय का अर्थ आत्मा मे शरीर मन के सम्बन्ध से उत्पन्न होने वाली विकल्प रूप तथा चेष्टारूप वृत्तियो का अपुनर्भाव से व आत्यन्तिक रूप से समूल नाश हो जाना ही किया गया है ।[1] पतञ्जलि योग के अनुसार इन्हे सप्रज्ञात और असप्रज्ञात समाधि के रूप से तुलनात्मक भाषा मे प्रतिपादित किया जा सकता है ।

जैनधर्म मे अष्टांग योग

जैनधर्म मे भी योग के अष्टांगो का वर्णन प्राप्त होता है, यद्यपि जैनागमो मे चित्तगत मल का नाश और आत्मगत ज्ञान की प्राप्ति को ही योग का मुख्य ध्येय बताया गया है, किन्तु योग के अष्टांगो का बहुत ही मौलिक रूप मे वर्णन किया गया है । महर्षि पतञ्जलि ने अष्टांगो के ये नाम बताये हैं—

१ यम, २ नियम, ३ आसन, ४ प्राणायाम, ५ प्रत्याहार ६ धारणा, ७ ध्यान, ८ समाधि ।

जैन धर्म के अनुसार इन्ही अष्टांगो को इस प्रकार प्रतिपादित किया है, जैसे कि—

१ महाव्रत (यम), २ ३२ योग सग्रह (नियम), ३ कायक्लेश (आसन), ४ भावप्राणायाम (प्राणायाम), ५ प्रतिसलीनता (प्रत्याहार), ६ धारणा (धारणा), ७ ध्यान (ध्यान), ८ समाधि (समाधि) ।

१ महाव्रत पाँच है, अहिंसादि ।

२ योग सग्रह ३२ हैं जैसे—

१ पापो की आलोचना, २ किसी की आलोचना दूसरे को नही कहना, ३ कष्ट मे धर्म दृढता, ४ स्वालम्बी तप करना, ५ शिक्षा-ग्रहण, और आसेवन शिक्षा का पालन । ६ शरीर की निष्प्रतिक्रमता, ७ मान, बडाई न चाह कर, अज्ञात तप, ८ अलोभ, ९ तितिक्षासहन, १० सरलता, ११ पवित्रता, १२ सम्यग्दृष्टि, १३ समाधिस्थ होना, १४ सदाचारी १५ विनयी, १६ धैर्यवान् १७ सवेगयुक्त, १८ अमायी, १९ सदनुष्ठान, २० सव रयुक्त, २१ स्वदोषो का निरोध, २२ कामविषयादि से विरक्त, २३ मूल गुणो का शुद्ध पालन, २४ उत्तर गुणो का शुद्ध पालन, २५ व्युत्सर्ग करना, २६ अप्रमादी, २७ क्षण-क्षण मे समाचारी का ध्यान, २८ ध्यान, सवरयुक्त करना, २९ मृत्युतुल्य कष्ट मे भी अचल, ३० सगत्याग, ३१ प्रायश्चित्त करना, ३२ मरण समय आराधक बनना ।

३ काय-क्लेश मे अनेक प्रकार के आसनो का वर्णन किया गया है, जैसे कि—वीरासन, कमलासन, उत्कटिकासन, गोदोहासन, सुखासन, कायोत्सर्ग आदि ।[2]

४ प्राणायाम के विषय मे जैनागमो मे अधिक नही कहा गया, क्योकि आसन, मुद्रा, प्राणायाम, और षट्कर्म पर हठयोग मे अधिक बल दिया गया है, किन्तु जैनधर्म मे तो उत्साह, निश्चय,

१—योग बिन्दु ३६६ । २—औपपा० सू० ।

धैर्य, सन्तोष, तत्त्वदर्शन और लोकत्याग के द्वारा और प्राण-वृत्ति के निरोध से भाव प्राणायाम को ही महत्त्व दिया गया है।

५ प्रत्याहार और प्रतिसलीनता के अर्थ मे कोई अन्तर नही है। इन्द्रिय, कषाय, योग, और विविक्त शयनासन प्रतिसलीनता का अर्थ है, अप्रशस्त से हटाकर प्रशस्त की ओर प्रयाण करना।[1]

६ धारणा[2]–चित्त की एकाग्रता के किसी एक स्थान पर अथवा किसी एक पुद्गल पर दृष्टि लगा देना धारणा है।

७ ध्यान के विषय मे जैनागमो मे बहुत विस्तारपूर्वक वर्णन उपलब्ध होता है। जैनधर्म मे ध्यान की परिभाषा यह की गई है जैसे कि स्थिर दीप-शिखा के समान निश्चल और अन्य विषय के सचार से रहित केवल एक ही विषय के धारावाही प्रशस्त सूक्ष्म बोध को ध्यान योग कहा गया है[3], क्योकि शक्ति का अभ्युदय सकल्प की दृढता और तीव्रता मे निहित है, और सकल्प की दृढता एव तीव्रता मानसिक वृत्तियो के अनियन्त्रित प्रसार अवरोध मे। जब मनोवृत्तिया अपने उद्दाम उच्छृङ्खल प्रवाह को रोक कर एक ओर वहने लगती है, चिन्तन धारा लक्ष्य की ओर ही तीव्रता के साथ दौडना प्रारम्भ कर देती है, उस समय का चित्तवृत्तियो का एक ही ओर का वह प्रवहन जैनशास्त्रो मे ध्यान कहलाता है।

ध्यान के अवलम्बन से मानसिक शक्ति पूजीभूत हो जाती है और आत्मा मे अद्भुत सामर्थ्य प्रकट होता है। इसी कारण जैनधर्म की साधना मे ध्यान को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है, और अशेप कर्मक्षय का साक्षात् कारण माना गया है।

ध्यान के प्रकार

हमारी मानसिक वृत्तियो के प्रवाह के सामने एक चत्वर है, चहुमुखी मार्ग है। उसे चार प्रकार का ध्यान[4] कहा जाता है और उनका सक्षिप्त आशय इस प्रकार है—

१ आर्त्तध्यान—शोक, चिन्ता मे उद्भूत वृत्तिप्रवाह।

२ रौद्रध्यान—पाप जनक दुष्ट भावो से उत्पन्न होने वाला दु सकल्प।

३ धर्मध्यान—आत्मस्वरूप दर्शन की उत्कठामयी चित्तवृत्ति।

४ शुक्लध्यान—शुद्ध आत्मदर्शन से जनित सर्वथा विशुद्ध आत्मवृत्ति।[5]

यही वह चत्वर है, जिस पर सृष्टि के समग्र प्राणियो की चित्त वृत्तिया दौड रही है।

(१) आर्त्तध्यान—अरति, शोक, सताप और चिन्ता हमारे मन पर जो प्रभुत्व जमा लेती है, वह आर्त्तध्यान है। उसके प्रधान कारण चार है—[6]

१–औपपा० सू०, भगवती श०, २५, उ० ७, पा० ७।

२–भगवती सूत्र, शतक ३, उ० २, 'एगपोग्गलनिविट्ठदिट्ठि'।

३–निवायसरणप्पदीप्पपज्झाणमिव निप्पकपे, प्रश्न० सवरद्वार, ५।

४–भगवती सूत्र, श० २५, उ० ७, पा० १३,

५–भगवती सूत्र, श० २५, उ० ७, पा० १३

६–भगवती सूत्र, शतक २५, उ० ७, पाठ १३, तत्त्वार्थ सूत्र, अ० ९ सूत्र ३।

१ अनिष्ट वस्तु का सयोग और उसके वियोग—पृथक्करण के लिए होने वाली चिन्ता ।

२ इष्ट वस्तु के प्राप्त होने पर उसका सम्बन्ध-विच्छेद न होने की चिन्ता और सम्बन्ध विच्छेद होने पर उसकी पुन प्राप्ति की कामना ।

३ व्याधिजन्य दु ख और पीडा से विमुक्ति पाने की चिन्ता ।

४ भविष्य के कमनीय स्वप्नो की पूर्ति की चिन्ता ।

चार कारणो से उत्पन्न होने के कारण आर्त्तध्यान के प्रकार भी चार ही माने गये हैं ।

(२) रौद्रध्यान—[1] रुद्र का अर्थ है क्रूर आशय । क्रूर आशय से उत्पन्न होने वाली चित्त-वृत्ति की एकाग्रता रौद्रध्यान है । रौद्र ध्यान के चार कारण है, जिनसे यह ध्यान भी चार प्रकार का माना गया है—[2]

१ हिंसानुबधी—प्राणिहिंसा का क्रूर सकल्प ।

२ मृषानुबधी—असत्य परपीडा-जनक या सत्य का अपलाप करने वाली वाणी का प्रयोग करना या ऐसा सकल्प करना ।

३ चौर्यानुबंधी—अदत्तादान की चित्तवृत्ति ।

४ सरक्षणानुबधी—परिग्रह की रक्षा मे सलग्न मनोवृत्ति ।

ये दोनो ध्यान त्याज्य हैं ।

(३) धर्मध्यान—[3]धार्मिक कार्यो मे चित्त की एकाग्रता होना धर्मध्यान है । यह भी चार प्रकार का है । (उत्तराध्ययन अ० ३०, गा० ३५ ।)

१ आज्ञाविचय—वीतराग कथित तत्त्वो मे अचल आस्था रखकर उनका यथोचित विश्लेषण करने की मानसिक एकाग्रता ।

२ अपायविचय—राग, द्वेष, मोह, आदि आन्तरिक विकारो को नष्ट करने की और इन विकारो से पीडित प्राणियो को कल्याण पथ की ओर आकृष्ट करने की मानसिक चिन्तना ।

३ विपाकविचय—सुख मे हर्ष, दु ख मे विषाद की भावना त्याग कर कर्म-फल का चिन्तन करना ।

४ सस्थानविचय—लोक की पुरुषाकार आकृति का, जगत् के स्वरूप का एव द्रव्य-गुण पर्याय का चिन्तन करना ।

धर्मध्यान के चार विधेय रूप हैं, जिनके द्वारा मानसिक वृत्तियो को सत्त्वस्वरूपमय बनाया जा सकता है, जैसे—

१—भगवती सूत्र, शतक २५, उ० ७, सूत्र ८०३ ।
२—,, ,, ,, ,, ,,
३—,, ,, ,, ,, ,,

१. पिण्डस्थध्यान—पिण्ड अर्थात् शरीर मे स्थित आत्मा पर मनोवृत्ति को केन्द्रित करना पिण्डस्थ ध्यान है।

२. पदस्थस्थान—नमस्कार-महामन्त्र के पाँच पदो पर चित्तवृत्ति एकाग्र करना पदस्थ ध्यान है।

३. रूपस्थ-ध्यान—सम्पूर्ण वाह्य और आन्तरिक महिमा से सुशोभित अर्हन्त भगवान् का अवलम्बन लेकर उन पर चित्तवृत्ति केन्द्रित कर लेना, रूपस्थ ध्यान है।

४ रूपातीत ध्यान—निरजन, निर्विकार, अमूर्त, अशरीर, सिद्ध परमात्मा का ध्यान करना रूपातीत ध्यान है।

यहाँ अत्यन्त सक्षेप मे धर्म-ध्यान का सूचन किया गया है। पिण्डस्थ ध्यान से आरम्भ करके रूपातीत ध्यान का अभ्यास करने से मन की चचलता मिट जाती है और आत्मा विशुद्ध होती है।

(४) शुक्लध्यान

धर्मध्यान आत्मा की विकास-अवस्था का द्योतक है। इस ध्यान से भी कषाय का पूर्णतया नाश नही होता। धर्मध्यान की स्थिति सातवें गुणस्थान तक ही है। आठवें गुणस्थान से शुक्लध्यान की अवस्था आती है। शुक्लध्यान के प्रयोग से समस्त कषाय निर्मूल हो जाते है, कर्माशय हल्का होकर क्रमश सर्वथा जीर्ण हो जाता है। यह सर्वोत्तम ध्यान है, परम समाधि है। इस ध्यान मे भी एक प्रकार का तारतम्य होता है, जिसके आधार पर उसके चार भेद किए गए है, वे इस प्रकार हैं—

शुक्लध्यान[1] की प्राथमिक अवस्था पृथक्त्व वितर्क सविचार अवस्था कहलाती है। यहां वितर्क का अर्थ है 'श्रुत' और विचार का अर्थ पदार्थ, शब्द और योग का सक्रमण होना है। अभिप्राय यह है कि इस ध्यान के प्रयोग मे ध्येय वस्तु, उसके वाचक शब्द और मन आदि योगो का परिवर्तन होता रहता है। फिर भी यह सव एकाग्रता आत्मस्थ ही होती है।

इसके पश्चात् जव ध्यान मे कुछ अधिक परिपक्वता आती है, तो किसी एक ही वस्तु का ध्यान होने लगता है। पदार्थ, शब्द और योग का सक्रमण रुक जाता है। उस समय का ध्यान एकत्व वितर्क अविचार शुक्लध्यान कहलाता है।[2]

मन, वचन, काय के स्थूल योगो का निरोध कर देने पर सिर्फ श्वासोच्छ्वास जैसी सूक्ष्म क्रिया ही शेप रह जाती है, उस समय का ध्यान सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाति, शुक्लध्यान है।[3] इस ध्यान के पश्चात् जव सूक्ष्म क्रिया का भी सर्वथा अभाव हो जाता है, और आत्मप्रदेश सुमेरु की तरह अचल हो जाते हैं, उस समय का सर्वोत्कृष्ट ध्यान 'व्युपरतक्रियानिवर्त्ति शुक्लध्यान' कहलाता है। इस ध्यान के प्रभाव मे अत्यल्प काल मे ही पूर्ण सिद्धि—विदेह अवस्था—की प्राप्ति हो जाती है। निर्विकल्प समाधि का यह सर्वोत्कृष्ट रूप है।[4]

१–प्रज्ञापना, पद १, चारित्रार्य विपय।

२–भगवती सूत्र, शतक २५, उ० ७, सूत्र ८०३।

३–,, ,, ,, ,, ,,

४–प्रज्ञापना, पद १, चारित्रार्य विपय, स्थानाग, सत्रवृत्ति, स्था० ४, उ० १, सूत्र २८७।

८ समाधि का पूर्ण समावेश शुक्लध्यान के चार भेदो मे ही हो जाता है। जैनाचार्यों ने योग का सर्वाङ्गरूप—मित्रा, तारा, बला, दीप्रा, स्थिरा, कान्ता, प्रभा, और परा, इन सप्त दृष्टियो के क्रमिक-विकास मे भी प्रतिपादित किया है। जैनधर्म मे योग और उसकी साधना महान् है। तत्त्वचिन्तन और प्रशस्त-भाव से उसकी प्राप्ति होती है। समाधि का शब्दो द्वारा वर्णन करना कठिन है। वह अनुभवजन्य ज्ञान है। हठयोग की साधना मे तो उसे रहस्यमय तत्त्व बताया गया है क्योकि इडा व पिंगला नाडिया ही शारीरिक चैतन्य का आधार है, ध्यानावस्था मे योगी शरीर की सुध-बुध भुलाकर इडा व पिंगला को सुषुम्णा मे विलय कर देता है। सुषुप्ति अवस्था भी इसे ही कहते हैं। किन्तु योगी त्राटक द्वारा नेत्र मूद कर भ्रूमध्य मे टिमकने वाले कृष्ण बिन्दु को एकाग्रता से तोडकर प्रकाश व सगीत का आस्वाद लेता है। ये सब आत्मानुभव की प्राथमिक सीढियाँ हैं। जैनधर्म समता शब्द द्वारा उसी स्थिति को कायोत्सर्ग कर, भ्रूमध्य मे ध्यानस्थ होकर, समाधि के आनन्द का विधान करता है।
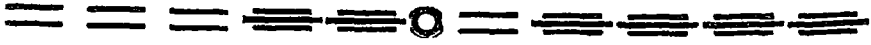
आत्मदोषो की आलोचना करने से पश्चाताप की भट्टी सुलगती है और उस पश्चाताप की भट्टी मे सब दोषो को जलाने के बाद साधक परम वीतराग भाव को प्राप्त करता है।

—भगवान् महावीर

आत्मस्वरूप मे लगा हुआ चित्त बाह्य विषयो की इच्छा नहीं करता, जैसे दूध मे से निकला घी फिर दुग्ध भाव को प्राप्त नहीं होता।

—शंकराचार्य

आत्मा से बाहर मत भटको, अपने ही केन्द्र मे सीमित रहो।

—स्वामी रामतीर्थ

१२ | समाधिमरण

०
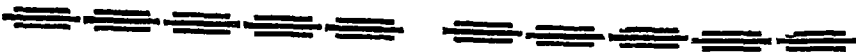
आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा०

मरण कैसा हो ?

ससार मे शायद ही कोई ऐसा प्राणी हो जो मरण को नही जानता हो । छोटे से छोटे कीट, पतग से लेकर नरेन्द्र, असुरेन्द्र और देवेन्द्र तक भी इसके प्रभाव से प्रभावित हैं ।

भयकर से भयकर रोग मे फसने वाला असहाय रोगी भी मरना नही चाहता । भले उसे कितना ही रोग, शोक, वियोग या अपमान सहना पडे । फिर भी वह प्राणी यही चाहेगा कि मरू नही । कारण मरण सबसे बडा भय है । कहा भी है—मरण सम नत्थिभय । मरण मे बचने के लिये मनुष्य हर सभव उपाय को करने के लिये तैयार रहता है । उसने मृत्यु जय और महामृत्यु जय के भी पाठ कराये, सुसज्जित सेनाओ के बीच अपने को सुरक्षित रक्खा, फिर भी मरण से नही बच पाया । मरण के सामने मत्र बल, तत्र बल, यत्र बल और शस्त्र बल सभी बेकार हैं । कहावत भी है—'काल बेताल की धाक तिहु लोक मे ।' सच है जगत के जीव मात्र मरण का नाम सुनते ही रोमाचित हो जाते हैं ।

किन्तु ज्ञानी कहते हैं—'मृत्योर्विभेषिकिं मूढ ?' मूर्ख ! मृत्यु से क्यो डरता है ? यह तो पुराना चोला छोडकर नया धारण करना है । इसमे भयभीत होने की क्या बात है । निर्भय और निर्मल भाव से कर्तव्य पालन कर, फिर देख कि मरण भी तेरे लिये मगल महोत्सव बन जायगा ।

अतः यह जानना आवश्यक है कि मरण क्या है और वह कितने प्रकार का है ? तथा उत्तम मरण कैसा होना चाहिये ।

जैन शास्त्र कहते हैं कि ससार का कोई भी द्रव्य सर्वथा नष्ट नही होता । अत प्रश्न होता है कि 'मरण' जिसको कि नाश कहते हैं कैसे सगत होगा ? कारण द्रव्य का लक्षण 'उत्पाद', व्यय, ध्रौव्य-युक्तसत्' कहा है । उसका कभी नाश नही होता, तब मरण क्या हुआ ? यहा मरण का अर्थ आत्यन्तिक तिरोभाव या अदर्शन है । जब आयु पूर्ण कर जीव किसी शरीर से अलग होता है याने जीव या प्राणी का शरीर से सर्वथा सबध छूट जाता है उसे मरण कहते हैं ।

यद्यपि आत्मा अजर, अमर और अजन्मा है । वास्तव मे उसका न जन्म है और न मरण, फिर भी ससारावस्था मे शरीरधारी जीव का शरीर की अपेक्षा जन्म और मरण कहा जाता है । सक्षेप मे कहना चाहिये कि वर्तमान शरीर को छोडकर जीव का प्रयाण कर जाना ही मरण है ।

जैन शास्त्रो मे मरण पर बहुत गभीर विचार किया गया है। श्रीस्थानाग, श्रीभगवती, श्री उत्तराध्ययन आदि अगोपाग सूत्रो के अतिरिक्त जैनाचार्यों ने मरण पर स्वतत्र प्रकरण भी लिखे हैं। मरणविभत्ति, भत्तपच्चक्खाण और समाधिमरण उनमे खास उल्लेख योग्य है।

यह निश्चित है कि ससार मे दृष्टिगोचर होने वाले पदार्थ मात्र एक दिन विलय होने वाले हैं। अचेतन मे जड होने से हर्ष, शोक के भाव उत्पन्न नही होते। चेतन होने से जीव को ही हर्ष, शोक होते हैं। इसलिये यहा इसी के मरण का विचार करना है। आत्मदर्शी महात्माओ ने कहा है कि मरण केवल दुःखदायी ही नही वह सुखप्रद भी होता है।

अज्ञानी और ज्ञानी की दृष्टि से मरण भी बुरा और भला होता है। अज्ञानी पर्यायदृष्टि-प्रधान होने से प्राण-वियोग पर रोता और दु ख करता है, वहा ज्ञानी दिव्यदृष्टि की प्रधानता से धन, जन, प्राण के वियोग मे भी प्रसन्न रहता है, सदा समरस रहता है। ठीक ही कहा है कि अज्ञानी मरण से डरते हैं, जबकि ज्ञानी उसको सहर्ष गले लगाते हैं। कारण, ज्ञानी समझता है कि मैं तो त्रिकाल सत्य हुँ, इस शरीर के पहले भी था, अब भी हूँ और शरीर छूटने पर भी रहूगा, फिर सुकृताचरण से मैं कृतकृत्य हो चुका हू, अत मुझे मरण से घबराने की कोई आवश्यकता नही। कहा भी हैं—मरणादपि नोद्विजते कृतकृत्योऽस्मीति धर्मोऽस्मा" शास्त्रो मे मरण का विस्तार निम्न रूप से किया है —

मरण के प्रकार .

भगवती सूत्र मे मरण के ५ प्रकार बतलाए है—

(१) आवीचिमरण, (२) अवधिमरण, (३) आत्यन्तिकमरण, (३) बालमरण, (५) पडितमरण।

प्रथम तीन प्रकार के मरण द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव भेद से पाच-पाच प्रकार के बतलाये गये हैं[1]। प्रति समय आयुकर्म के दलिको का क्षीण होते जाना यह आवीचिमरण है। नरक आदि भव की स्थिति पूर्ण कर जो तत् तत् भवानुबन्धी सामग्री का त्याग किया जाता है वह अवधिमरण है। और एक बार मरने के बाद फिर उस भव से नही मरना यह आत्यन्तिकमरण है।

फिर स्थानाग सूत्र मे मरण के तीन प्रकार भी बतलाये हैं[2]। जैसे (१) बालमरण, (२) पडितमरण, (३) बालपडितमरण। विवेकरहित अविरत जीव का मरण बालमरण, तत्त्वज्ञानी सयमी का मरण पडितमरण और सम्यग्दृष्टिव्रती गृहस्थ का मरण बालपडितमरण कहलाता है। परिणामो के स्थित, अस्थित और वर्धमान शुभाध्यवसायो से प्रत्येक के तीन-तीन भेद होते है।

बालमरण :

बाल मरण जन्म-मरण की वृद्धि का कारण है। अतएव श्रमण भगवान् श्रीमहावीर ने कहा है कि[3] तपस्वी निग्रन्थो को ऐसे मरण से नही मरना चाहिये। ये मरण निम्न प्रकार हैं-(१) बलय-

---

१ भगवती सूत्र १३ श०, ७ उ०, ४९६ सूत्र
२ स्था० ३ उ० (२२२ सूत्र)
३ स्था० २

मरण, (२) वशार्तमरण, (३) निदानमरण, (४) तद्भवमरण, (५) गिरिपतन, (६) तरुपतन, (७) जलप्रवेश, (८) अग्निप्रवेश, (९) विषभक्षण, (१०) शस्त्रघात, (११) वेहायम, (१२) गृद्ध-पृष्ठमरण। इनका स्वरूप इस प्रकार है—

(१) भूख-प्यास आदि परिषहो से घवरा कर असयम सेवन करते मरना वलयमरण है। (२) पतग आदि की तरह शब्दादि विपयो के अधीन होकर मरना वशार्तमरण है, जैसे किसी कामिनी के पीछे कामी का प्राण गवाना, (३) ऋद्धि आदि की प्रार्थना करके सम्भूति मुनि की तरह मरना निदानमरण है। (४) जिस भव मे है उसी जन्म (योनी) का आयु वाध कर मरना तद्भव-मरण है। (५) पर्वत से गिर के मरना। (६) वृक्ष से लटक कर मरना। (७) जल मे डूव कर मरना। (८) आग मे सती आदि की तरह जीते जल मरना, (९) विप खाकर मरना। (१०) शस्त्र से आत्महत्या कर लेना। (११) फासी लेकर मरना। (१२) पशु के कलेवर मे गीध आदि का भक्ष्य वन कर मरना।

उपर्युक्त १२ प्रकार के मरण से मरने वाला जीव नरक, तिर्यच, मनुष्य और देवगति के अनन्त-अनन्त जन्म करता हुआ चतुर्गति रूप ससार मे परिभ्रमण करता है। इस प्रकार यह 'वाल-मरण' ससार को वढाने वाला है। भगवान् महावीर कहते हैं—'कौटुम्विक झगडो से तग आकर यश, धन-हानि, जन-हानि और मान-हानि की व्याकुलता मे मरना दु ख को घटना नही वढाना है'—यह पडितमरण नही वालमरण' है।

माता, पिता, पुत्र या पति, पत्नी आदि प्रियजन के वियोग मे मर जाना अथवा मृत पति के साथ जीते जल जाना भी उत्तम मरण नही है। वहुत सी वार मनुष्य शोक, मोह और अज्ञान के वश भी प्राण गमा देता है। व्यापार, धधे मे हानि उठाकर लेनदारो को देने की अक्षमता मे सैकडो ने मान-प्रतिष्ठा की आग मे प्राणो की वलि कर दी और करते जाते हैं। अर्थाभाव मे पारिवारिक भरण-पोपण और कर्जदारी की चिंता से भी कई हलाहल पी कर मरण की शरण ले लेते हैं। घर के लडाई-झगडो से तग आकर और दु ख मे ऊव कर भी कई ललनाए तेल छिडक कर जल मरती हैं। नौकरी नही मिलने से कई शिक्षित युवक और परीक्षा मे फेल होकर कई विद्यार्थी प्रतिवर्ष जीवन समाप्त करते सुने जाते हैं। इस प्रकार इच्छा मे मरने वालो की सख्या कम नही है। वास्तव मे ये सव अकाम-मरण या वालमरण हैं। इस प्रकार चिन्ता, शोक या अभाव मे झुलस कर कई मानव जीवन-लीला समाप्त करते हैं। सचमुच यह देश और समाज के लिये कलक की वात है। समाज और राष्ट्रनायको को इसका उचित हल निकालना चाहिये। ऐसे अविवेकपूर्वक अकाममरण से मरना दु ख घटाने वाला नही होता। इसमे तत्काल ऐसा प्रतीत होता है कि मर जाने से मैं अपनी आंखो से यह दु ख नही देख पाऊगा, किन्तु उसे ध्यान रखना चाहिये कि अकाममरण से वर्तमान का दु ख लाखो गुणा होकर फिर सामने आ सकता है। उस दिन उसका विचारपूर्ण समर्थ मन भी नही रह पाता। सच वात यह है कि दु ख भागने से नही छूटता, वह तो शातिपूर्वक भोगने से छूटता है।

की हलन-चलन रूप चेष्टाए तथा सार-सभाल होती है । इन दोनों प्रकार के पडितमरण से मरने वाला जीव अनन्त-अनन्त नरक, तिर्य च आदि के जन्म-मरण से आत्मा को विमुक्त करता यावत् संसार को पार करता है । भक्त प्रत्याख्यान आदि का स्वरूप एव भेद निम्न दिये जाते हैं—

भक्त प्रत्याख्यान—जिसमे तीन या चार प्रकार के आहारमात्र का त्याग होता है और शरीर का हलन-चलन बन्द नही किया जाता उसे भक्तप्रत्याख्यान कहते हैं ।

इगितमरण—इसमे सर्वथा खाने-पीने का त्याग किया जाता और मर्यादित क्षेत्र के अतिरिक्त शरीर से गमनागमन आदि चेष्टा भी नही की जाती है । पादोपगमन मे यह विशेषता है कि वह शरीर की कोई चेष्टा नही करता, न करवट ही बदलता है । दूसरा भले कोई उसे इधर से उधर बैठा दे या करवट बदल दे, किन्तु स्वय वह कोई चेष्टा नही करता, वृक्ष की तरह अडोल पडा रहता है ।

भक्त प्रत्याख्यान मे जलाहार लिया जाता है और वह सागारी भी होता है, किन्तु इगित-मरण और पादोपगमन मे कोई आगार नही होता, न कोई जलाहार ही ग्रहण किया जाता है । भक्त-प्रत्याख्यान सर्वदा सबके लिये सुलभ है, परन्तु इगितमरण एव पादोपगमन प्रथम ३ सहनन मे और विशिष्ट श्रुतधारी को ही होते हैं । व्यवहार भाष्य मे कहा है कि सभी आर्या और सब प्रथम सहन-नहीन जीव तथा सब देशविरति भक्त प्रत्याख्यान को ही प्राप्त करते है ।

पादोपगमन वाले को कभी पूर्वभव के वैर से कोई देव पातालकलशो मे सहरण करदे तो वह उपसर्ग को सम्यक् प्रकार से सहन करता है । उस समय ऐसा सोचता है कि जैसे तलवार म्यान से भिन्न है, ऐसे जीव शरीर से भिन्न है, अत उपसर्ग से मेरी कोई हानि नही होती । जैसे मेरू पूर्वादि चारो दिशा की प्रचण्ड वायु से कम्पित नही होता, वैसे पादोपगमनवाला उपसर्ग मे भी ध्यान से चलायमान नही होता है ।

इनका आदर्श होता है उग्रतम कष्ट के समय भी अविचल रहकर मरण का आलिगन करना । देखिये, कृष्ण वासुदेव के लघु भाई गजसुकुमार ने मरणान्त कष्ट के समय भी कैसी अखण्ड शाति कायम रक्खी । भगवान् नेमनाथ की अनुमति लेकर जब महामुनि महाकाल श्मशान मे ध्यान लगाकर देहभान को भुलाकर आत्मध्यान मे तल्लीन हो गये। उस समय सोमल ब्राह्मण उधर से निकला और महामुनि को देखते ही क्रोध से जल उठा । उसने गीली मिट्टी लेकर मुनि के सिर पर बाधी तथा अगार रख दिये । सिर जलने लगा और नसें खिंचने लगी, फिर भी मुनिजी के मन मे उफ तक नही, क्योकि उन्होने क्रोध, मान, माया, लोभ के आतर विकारो को जला दिया एव प्राणीमात्र को आत्म-सम समझ लिया था । अतर मे एक ही आवाज गू जती थी कि—"मैं एक और शाश्वत हू । मेरा स्वरूप ज्ञान, दर्शन है । धन, दारा और परिवार आदि सब बाह्यभाव पर हैं। और वे सयोग सबध मे अपने व पराये होते हैं । वास्तव मे ये मेरे नही ज्ञान, दर्शन रूप उपयोग स्वभाव ही मेरा है। जो न कभी जलता है औ न कभी गलता है ।"

"एगो मे सासओ अप्पा, नाणदसणसजुओ ।
सेसा मे बहिरा भावा, सव्वे सजोगलक्खणा ॥

अग अग के जलने पर भी गजसुकुमाल की प्रसन्नता अविचल रही और उन क्षणो में ही अखण्ड समाधि के साथ उन्होने सकल कर्म क्षय कर मुक्ति प्राप्त करली ।

पण्डितमरण के अधिकार :

वे लोग इसके अधिकारी नही होते, जिनका जीवन हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार आदि पापो मे रचा-पचा होता है, जो अजितेन्द्रिय होकर अभक्ष्य भक्षण करता और विपय कपाय मे रति मानता है। ऐसे असयमशील प्राणियो का अन्तिम समय मे हाहाकार करते प्रयाण होता है, उनको पडितमरण प्राप्त नही होता। अत यह बालमरण है। क्रोध, लोभ या मोह और अज्ञान के वश जो आत्म-हत्याए की जाती हैं वे सब भी बालमरण है।

अतिम क्षण तक भौतिक कामना की आकुलता होने मे ये अकाममरण मरते है। अत पडितमरण के अधिकारी नही होते।

सयमशील व्रती गृहस्थ या महाव्रतधारी साधु-साध्वी जो हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह के पूर्ण त्यागी और जितेन्द्रिय हैं, आरम्भ परिग्रह और विपय-कपाय से मन को मोड कर जिन्होने परमात्मा के चरणो मे चित्त लगा दिया एव ज्ञान के प्रकाश मे जड-चेतन का भेद समझकर तन, धन, परिजन से ममता हटाली है वे ही पडितमरण के अधिकारी होते है। पडितमरण मे केवल विशुद्ध हेतु और प्रसन्नता के साथ देहत्याग किया जाता है, अत' इसे सकाममरण भी कहते हैं। सभी साधु और श्रावक पडितमरण को प्राप्त नही करते, किन्तु पडितमरण के अधिकारी कुछ विशिष्ट पुरुष ही होते है। जैसे कहा भी है—

> न इम सव्वेसु भिक्खुसु, न इम सव्वेसुअगारिसु।
> नाणा सीला अगारत्था, विसम-सीला य भिक्खुणो ॥ उ० ५ ॥

अर्थात् यह मरण सभी भिक्षुओ मे नही होता, न सब गृहस्थो को होता है। कारण विभिन्न शील स्वभाव के गृहस्थ होते है और भिक्षुओ के भी सयमस्थान समान नही होते।

देखिये, हजार वर्ष का सयमपालन करके भी कुडरीक ने चन्द दिनो की भोग-भावना मे मरण विगाड लिया, परिणामस्वरूप उसको नरक मे जाना पडा और पुडरीक ने जीवन का लम्बा समय भोग एव राग मे विता कर भी अन्तिम दिनो की पवित्र साधना से जीवन सुधार लिया और पडितमरण से मरकर सुगति प्राप्त की। यह पडितमरण की ही महिमा है।

ज्ञानी कहते है—यदि तुम दु ख मे ऊब गए हो, सहने की शक्ति खो चुके हो और मरना चाहते हो तो चिन्ता-शोक मे देह को गला कर मरने की अपेक्षा तप-सयम मे देह को विवेकपूर्वक गलाओ और ध्यानाग्नि मे दु ख को जला कर हसते-हसते मरो, रोते हुए क्यो मरते हो।

पण्डितमरण की विधि

जब समझ लो कि अब शरीर अधिक समय तक टिकने वाला नही है अथवा धर्म रक्षा के लिये प्राणो का त्याग करना है तब सर्वप्रथम मन से वैरविरोध भुला कर अन्तरात्मा को स्वच्छ बना लेना चाहिये। फिर तन, मन, धन, परिजनादि बाह्य वस्तुओ मे मन मोड कर, आत्मस्वरूप मे वृत्ति जमा कर, सदा के लिये अकरणीय पापकर्म और चतुर्विध आहार का त्याग कर लेना चाहिये।

अर्हन्त सिद्ध की साक्षी से यह निश्चय कर लो कि ससार के दृश्य पदार्थ सब पर और नाशवान् है। उनको अपना समझ कर ही चिरकाल से मै भटक रहा हू। यह मेरा अज्ञान है। वास्तव

मे तन एव धन की हानि से मेरी कोई हानि नही होती। मैं सदा शुद्ध, बुद्ध एव समरस हू। आग मे जलना, पानी मे गलना और रोग से सडना मेरा स्वभाव नही है। सडना गलना, गलना आदि देह के धर्म हैं, अत. इस परमप्रिय देह का भी आज से स्नेह छोडता हू। मेरा न किसी पर राग है, न किसी पर द्वेष।

इसी प्रकार के मरण से अबड सन्यासी के ७०० शिष्यो ने भी सुगति प्राप्त की थी। कपिलपुर से पुरिमताल की ओर जाते समय अव उनके पास का पानी समाप्त हो गया और तृषा के मारे होठ-कठ सूखने लगे, तब उन्होने उस दु.खद स्थिति मे निम्न प्रकार का पडितमरण स्वीकार किया था।

पहले गगा के किनारे बालू को देखा, साफ किया और पूर्वाभिमुख पर्यंकासन से बैठ कर दोनो हाथ जोडे हुए इस प्रकार बोले—"नमस्कार हो सिद्धि प्राप्त जिनवर को और नमस्कार हो सिद्धिगति पाने वाले श्रमण भगवान् महावीर को, फिर नमस्कार हो हमारे धर्माचार्य धर्मगुरु अम्वड परिव्राजक को। हमने पहले धर्मगुरु अम्वड के पास स्थूल हिंसा, झूठ अदत्त, सपूर्ण मैथुन और परिग्रह का त्याग किया है। अब श्रमण भगवान् महावीर के पास आजीवन सब प्रकार के हिंसा, झूठ, अदत्त, कुशील और परिग्रह का त्याग करते हैं। हम सर्वथा क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, परपरिवाद अरतिरति, मायामृषा और मिथ्यादर्शनशल्यरूप अकरणीय पापकर्मों का आजीवन त्याग करते हैं। जीवन भर के लिये सब प्रकार का अनशनादि चतुर्विध आहार भी छोडते हैं और यह भी शरीर जो आज तक इष्ट, कात एव अत्यन्त प्रेमपात्र रहा जिसको सदा भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी, दश-मच्छर, चोरव्याल और रोग-शोक से बचाते रहे, उस प्रिय तन की भी अन्तिम श्वासोच्छ्वास के साथ हम ममता छोडते हैं। अब कुछ भी हो, इस ओर ध्यान नही देगे।" यह पडितमरण ग्रहण करने की विधि है।

इस प्रकार वे सलेखनापूर्वक आमरण अनशन मे काल की अपेक्षा नही करते हुए विचरते रहे। अन्तिम समय अनशनपूर्वक समाधिभाव मे मरण पा कर ब्रह्मलोक के अधिकारी बने। उन्होने अपना मरण सुधार लिया।

आत्महत्या और समाधिमरण

बहुत से लोग यह समझा करते हैं कि सथारा या भत्तपच्चक्खाण से मरना, यह आत्महत्या है। उनको समझना चाहिये कि आत्महत्या और समाधिमरण मे बडा अन्तर है। आत्महत्या मे निष्कारण शोक या मोहादिवश शरीर नष्ट किया जाता है। उसमे चिंता-शोक की आकुलता या मोह की विकलता होती है, जबकि समाधिमरण मे भय, शोक को भूल कर प्रसन्न मन से सब को मैत्रीभाव से देखते हुए निर्मोह भाव मे देह त्याग किया जाता है। आत्महत्या मे देह का दुरुपयोग है, जबकि समाधिमरण सभी प्रकार के वेगो को शान्त कर स्वस्थ मन से आयुकाल की निकट अन्त मे समाप्ति समझ कर किया जाता है।

आत्महत्या किसी कामना को लेकर होती है। उसमे क्रोध, लोभ या शोक, मोह कारण होते हैं, जबकि समाधिमरण निष्काम होता है। इसमे सभी प्रकार के विकारो को नष्ट कर केवल आत्मशुद्धि का ही लक्ष्य होता है।

समाधिमरण मे ये पाच दूषण माने गये हैं। (१) इस लोक मे तन, धन वैभव आदि सुखो की इच्छा करना, (२) इन्द्रादि पद या स्वर्गीय सुख की आशा करना, (३) अधिक जीने की इच्छा करना, (४) कष्ट से घबरा कर जल्द मरने की इच्छा करना, (५) कामभोग-इन्द्रिय-सुखो की वाछा करना।

समाधिमरण मे वहा कोई कामना नही रहती, वहा शरीर को अक्षम समझ कर या शील धर्मादि की रक्षा के लिये अनिवार्य समझ कर पवित्र हेतु से आत्महित के लिये शरीर त्यागा जाता है। अतः यह किसी तरह आत्महत्या नही कहा जा सकता। यह तो समाधिमरण या पडितमरण है।

मरण-महिमा

मनुष्य चाहे जैसे भी उच्च कुल, जाति या योनि मे उत्पन्न हुआ हो, यदि जीवन का सध्या-मरण अधकारपूर्ण है तो उसका सारा परिश्रम और साधन-सकलन व्यर्थ है। उसका जन्म दु ख वृद्धि के लिये है। वास्तव मे जीवन शिक्षाकाल है और मरण परीक्षाकाल। जीवन कार्यकाल है और मरण विश्रातिकाल। जैन महर्षियो ने कहा है कि—जिसका मरण सुधरा उसका जीवन सुधरा समझो और मरण विगडा तो जीवन विगडा समझो, क्योकि मरण की सध्या पार करके ही प्राणी जीवन के नवप्रभात की ओर जाता है। शास्त्र मे भी कहा है—

> अन्तोमुहुत्तमि गए, अन्तोमुहुत्तमि सेसए चेव।
> लेसाहिं परिणयाहिं, जीवा गच्छन्ति परलोय ॥ उ० ३४ ॥

जिस लेश्या मे जीव काल करता है, अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर जीव परलोक मे भी उसी लेश्यास्थान मे जाकर उत्पन्न होता है। अत आत्महितैषियो के लिये मरण सुधार की ओर लक्ष्य देना अत्यावश्यक है। शास्त्र कहते हैं कि तनधारी प्राणीमात्र को मरना तो है ही, चाहे धैर्यपूर्वक कष्टो को शाति से सह कर मरे या कायर की तरह दीन होकर मरे। तन, धन एव परिवार के लिये अकुलाते हुए मरे या सव से ममता हटा कर निराकुल भाव से मरे। सत्यशील की आराधना करते हुए मरे अथवा शीलरहित अव्रत दशा मे मरे। दोनो दिशा मे मरना तो अवश्य है। तव कायर की तरह विलखते मरने की अपेक्षा सयमशील होकर धैर्य से हसते हुए मरना ही अच्छा है। कहा भी है—

> धीरेण वि मरियव्वं, काउरिसेण वि अवस्स मरियव्वं।
> दुण्हपि हु मरियव्वे, वर खु धीरत्तणे मरिउ ॥ ६४ ॥
> सीलेण वि मरियव्व निस्सीलेण वि अवस्स मरियव्वं।
> दुण्हपि हु मरियव्वे, वर खु सीलत्तणे मरिउ ॥ ६५ ॥ आतु० प०

किसी उर्दू कवि ने भी कहा है—

> हँस के दुनिया मे मरा, कोई कोई रोके मरा।
> जिन्दगी पाई मगर, उसने जो कुछ हो के मरा ॥

विद्वानों को ऐसे ही मरण से मरना चाहिये। इस प्रकार मरने वाले मर के भी अमरता के भागी होते हैं।

अभ्युद्यत मरणविधि

विवेकी पुरुष जीवन की अन्तिम घडियो मे पूरी सतर्कता रखते है क्योकि उस समय की जरासी गलती बने-बनाये काम को बिगाड देती है। अत ज्योही उन्हे जीवन-यात्रा मे लम्बे समय तक शरीर टिकने वाला नही है ऐसा प्रतिभासित होता है, त्योही बिना विलम्ब वे मरण को शानदार बनाने के लिये कटिबद्ध हो जाते है। तन, धन, परिजन और सम्मान से मन मोडकर वे एक मात्र आत्मलक्षी हो जाते हे। तब पराये गुणापगुण देखने की अपेक्षा उनको आत्मदर्शी होकर अपना निरीक्षण करना ही अधिक प्रिय होता है और जीवन की छोटी-मोटी कोई भी चूक हो उसको बिना सकोच के गीतार्थ के पास आलोचना द्वारा प्रगट करना और यथायोग्य प्रायश्चित से उसकी शुद्धि करना उनका प्रधान लक्ष्य होता हे। जैसे सुयोग्य वैद्य भी अपनी चिकित्सा दूसरे से कराता है, वैसे ज्ञानसपन्न साधक भी अन्य गीतार्थ के सम्मुख अपनी आलोचना करते और आत्म-शुद्धि करते है।

सलेखना

मरण की तैयारी के लिये शास्त्रो मे पहले सलेखना का विधान है। वह जघन्य ६ मास और उत्कृष्ट १२ वर्ष की होती है। 'उत्तराध्ययन सूत्र' के ३६वें अध्याय मे कहा है कि उत्कृष्ट सलेखना १२ वर्ष की, मध्यम १ वर्ष और जघन्य ६ मास की होती है।

उत्कृष्ट सलेखना मे पहले ४ वर्ष दूध आदि विगई का त्याग किया जाता है और दूसरे चार वर्ष मे उपवास, वेला आदि विचित्र तप किये जाते हैं। फिर दो वर्ष एकान्तर तप और पारणक मे आयविल किया जाता है। ग्यारहवे वर्ष मे ६ महीने का सामान्य तप किया जाता है और ६ महीने विकृष्ट तप किया जाता है। इसमे आयबिल भी परिमित किये जाते है। बारहवें वर्ष मे उपवास आदि के पारणक मे कोटि सहित आयबिल आदि किये जाते हें। बीच बीच मे मास और पक्ष के अनशन भी करते हैं। [अ० ३६/२५२-५६]

'व्यवहार सूत्र' के दशम उद्देश्य के भाष्य मे भी इसका विस्तार से वर्णन मिलता है। वहा प्रथम के चार वर्षो मे विचित्र तप का इच्छानुसार कामगुण पारणा और दूसरे चार वर्षो मे विगइ, त्यागपूर्वक पारणा का उल्लेख है। [भा० ४१२ से ४२१]

मध्यम और जघन्य सलेखना भी ऐसे मास और पक्ष के विभाग से की जाती है। इस प्रकार सलेखना के अनन्तर गुरु या गीतार्थ परीक्षित ही सामान्य रूप से इस मरण को स्वीकार करते है।

सलेखना द्वारा केवल शरीर को ही क्षीण नही किया जाता, बल्कि अन्तर के विकारो को भी क्षीण किया जाता है। जब तक आन्तरिक विकार क्षीण नही होते साधक उत्तम मरण को प्राप्त नही कर सकता। इसके लिये पहले परीक्षा की जाती थी। मनोनुकूल उत्तम भोजन को पाकर भी जब मरणार्थी उसको ग्रहण नही करता तब तक उसकी अगृध्नुता समझ ली जाती थी। इस पर एक छोटा उदाहरण दिया गया है—

किसी समय एक आचार्य के पास भक्त परीक्षार्थी शिष्य आया और उसने कहा, "मैं भक्त प्रत्याख्यान करना चाहता हू।" तब आचार्य ने पूछा—'तुमने सलेखना की है या नही?' शिष्य को आचार्य की बात से विचार हुआ। उसने सोचा—मेरा शरीर हड्डी का पजर सा हो चुका है, लोह-

मास का कही नाम भी नही, फिर गुरुजी पूछते हैं कि सलेखना की या नही ? रोष मे आकर उसने अपनी अगुली तोड डाली और बोला—'महाराज ! देखो रक्त की एक बूद भी नही है, क्या अब भी सलेखना बाकी है ?" गुरुजी ने कहा—"वत्स ! यह तो द्रव्य सलेखना का रूप है जो तेरे शरीर से प्रत्यक्ष दिखता है, किन्तु अभी भाव सलेखना करनी है, कपाय के विकारो को सुखाना है। इसीलिये मैंने पूछा था कि सलेखना की या नही। जाओ, अभी भाव सलेखना करो। फिर भक्त पच्चक्खाण सथारा प्राप्त होगा। [व्य० भा० ४५०]

इस प्रकार द्रव्य-भाव-सलेखनापूर्वक किया गया मरण ही पडितमरण है। मरणान्तिक कष्ट, आघात-प्रत्याघात या आतक से निकट भविष्य मे ही देह छूटने वाला हो, वैसी स्थिति मे द्रव्य सलेखना की आवश्यकता नही होती। उसी समय आलोचनापूर्वक आत्मशुद्धि की जाती है और विचार एव आचार की पूर्ण शुद्धि के साथ सर्वथा पापो के त्याग कर लिये जाते हैं।

न संतसति मरणते, सीलवता बहुस्सुया।

—उत्तराध्ययन ५।२९

शीलवान और बहुश्रुत भिक्षु मृत्यु के क्षणो मे भी सत्रस्त नही होते।

काल अणवकखमाणे विहरइ।

—उपासकदशाग १।७३

आत्मार्थी साधक कष्टो मे जूझता हुआ मृत्यु से अनपेक्ष बन कर रहे।

मरण हेच्च वयति पडिया।

—सूत्रकृताग १।२।३।१

पडित पुरुष ही मृत्यु की दुर्दम सीमा को लाघकर अविनाशी पद को प्राप्त होते हैं।

माराभिसकी मरणा पमुच्चइ।

—आचाराग १।३।१

जो व्यक्ति मृत्यु मे सदा सतर्क रहता है, वही उससे मुक्ति पा सकता है।

१३ न तत्त्व

आचार्य श्री आनन्द ऋषिजी

जैन दर्शन मे तत्त्व का स्वरूप

जैनदर्शन मे लोक व्यवस्था का मूल आधार 'तत्त्व' है। कहा है—

> भावस्स गत्थि गासो, गत्थि अभावस्स चेव उप्पादो।
> गुणपज्जएस्सु भावा उप्पाय वय पकुव्वंति ॥
>
> —पचास्तिकाय—१५०

किसी भाव यानी सत् का कभी नाश नही होता है और असत् की उत्पत्ति नहीं होती है। इसीलिए आकाश-कुसुम की तरह जो सर्वथा असत् है, वह तत्त्व नही हो सकता है। इसीलिए जैनदर्शन मे लौकिक व्यवहार मे प्रचलित तत्त्व शब्द के अर्थों को स्वीकार करते हुए भी तत्त्व की विशुद्ध व्याख्या की है—

> 'सद् दव्व वा।' —भगवती ८।९

यानी द्रव्य (तत्त्व) का लक्षण सत् है। यह सत् स्वत सिद्ध है और नवीन अवस्थाओ की उत्पत्ति एव पुरानी अवस्थाओ का विनाश होते रहने पर भी अपने स्वभाव का कभी परित्याग नही करता है। वाचक मुख्य उमास्वाति ने सत् की स्पष्ट व्याख्या करते हुए कहा है—

> 'उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त सत्।' —तत्त्वार्थसूत्र ५।३०

यानी जो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य इन तीनो से युक्त अर्थात् तदात्मक है, उसे सत् कहते है। भगवान महावीर की वाणी मे सत् के स्वरूप को इस प्रकार कहेगे—

> 'उपन्ने इ वा विगमे इ वा धुवे इ वा।' —स्थानाग १०

उत्पन्न होने वाले, नष्ट होने वाले और ध्रुव रहने वाले को सत् कहते है। इसीलिए सत् की न तो आदि है और न अत है। उसका न तो कभी नाश होता है और न कभी नया उत्पन्न होता है। वह सदैव—भूत, वर्तमान और भविष्य तीनो कालो मे विद्यमान रहता है।

तत्त्वो की सख्या :

तत्त्व का लक्ष्य ज्ञात होने पर यह प्रश्न होता है कि जैन दर्शन मे 'तत्त्व' किसे कहा है और उनकी सख्या कितनी है ? इस प्रश्न का उत्तर आध्यात्मिक और दार्शनिक दृष्टि से विभिन्न ग्रथो मे विभिन्न शैली से दिया गया है। आध्यात्मिक दृष्टि से आत्मा ही मुख्य तत्त्व है और आत्मा के कर्म सहित अशुद्ध आत्मा और कर्मरहित (शुद्ध आत्मा) अथवा ससारी और मुक्त यह दो प्रकार होने से दो भेद हो जाते हैं। आत्मा के इन दो प्रकारो के अतिरिक्त अन्य शेष जड पदार्थ है। अध्यात्मयोगी आचार्य कुन्दकुन्द ने जड पदार्थों को वहिस्तत्त्व तथा आत्मा के दोनो प्रकारो को क्रमश अन्तस्तत्त्व और परमतत्त्व कहा है।

लेकिन जन-साधारण को जानकारी देने के लिए तत्त्व के भेद और उनके नामो के लिए निम्नलिखित तीन शैलिया दृष्टिगत होती है—

१ पहली शैली के अनुसार तत्त्व दो है—
(i) जीव और (ii) अजीव।

२ दूसरी शैली के अनुसार तत्त्वो की सख्या सात है—
(i) जीव, (ii) अजीव, (iii) आस्रव, (iv) बध (v) सवर, (vi) निर्जरा और (vii) मोक्ष।

३ तीसरी शैली के अनुसार तत्त्वो की सख्या नौ है।
(i) जीव, (ii) अजीव, (iii) पुण्य, (iv) पाप, , (v) आस्रव, (vi) बन्ध, (vii) सवर, (viii) निर्जरा, (ix) मोक्ष।

उक्त दो, सात और नौ सख्या कथन की शैली मे कोई वास्तविक भेद नही है। इनमे मुख्य रूप से जीव, अजीव यह दो तत्त्व है तथा शेष आस्रव आदि जीव व अजीव की पर्याय होने से उन दोनो मे अन्य तत्त्वो का समावेश हो जाता है।

नव तत्त्वो का वर्गीकरण व लक्षण

उक्त जीवादि सात अथवा नव तत्त्वो मे मुख्य तत्त्व जीव है अथवा जीव और अजीव। यह दो तत्त्व तो धर्मी हैं यानी आस्रव आदि अन्य तत्त्वो के आधार है और आस्रव आदि शेष तत्त्व उनके धर्म हैं।

१ जीव तत्त्व

नौ तत्त्वो मे सबसे पहला तत्त्व जीव है। जीव की परिभाषा करते हुए कहा है—

'जीवो उवओग लक्खणो।' —उत्तराध्ययन २८।१०

जीव का लक्षण उपयोग है अर्थात् जिसमे चेतना—उपयोग हो उसे जीव कहते है। आगमों मे उपयोग के दो भेद किये है। साकारोपयोग (ज्ञान) और निराकारोपयोग (दर्शन)। इसलिए

जिसमे ज्ञान और दर्शन रूप उपयोग पाये जाते है, वह जीव है। जीव को चेतन इसलिए कहते है कि उसमे सुख-दु:ख, अनुकूलता, प्रतिकूलता आदि की अनुभूति करने की क्षमता है। 'स्व', 'पर' का ज्ञान और हिताहित का विवेक जीव के सिवाय अन्य पदार्थो मे नही पाया जाता है। जीव द्रव्य की अपेक्षा अनन्त है और प्रत्येक जीव असख्यप्रदेशी है।

जीव शब्द की शाब्दिक व्याख्या करते हुए आचार्यों ने जीव का लक्षण इस प्रकार कहा है—

'पाणेहि चदुहि जीवदि जीविस्सदि जो हि जीवदो पुव्व।'

—प्रवचनसार गा० १४७

जो चार प्राणो (इन्द्रिय, बल, आयु और श्वासोच्छ्वास) से जीता है, जीयेगा और पहले भी जीता था उसे जीव कहते हैं।[१] सत्व, भूत, प्राणी, आत्मा आदि भी जीव के एकार्थवाची—पर्यायवाची दूसरे नाम हैं। लेकिन इन सबका साराश यही है कि जिसमे ज्ञान-दर्शनात्मक उपयोग है, वह जीव है।

जीव की पाच जातिया है। १ एकेन्द्रिय, २ द्वीन्द्रिय, ३ त्रीन्द्रिय, ४ चतुरिन्द्रिय, और ५ पचेन्द्रिय। जाति का अर्थ है सामान्य अर्थात् जिस एक शब्द के बोलने से उसके समान गुण-धर्म वाले सभी पदार्थो का ग्रहण हो जाये। जैसे—गाय, भैंस आदि बोलने से समस्त गायो, भैसो का ग्रहण हो जाता है। वैसे ही एकेन्द्रिय कहने से सभी एक इन्द्रिय वाले जीवो का ग्रहण व ज्ञान हो जाता है। इसी प्रकार द्वीन्द्रिय आदि पचेन्द्रिय जीवो के बारे मे भी समझ लेना चाहिए।

एकेन्द्रिय जीवो के सिर्फ एक स्पर्शनेन्द्रिय होती है। एकेन्द्रिय जीवो के पाच प्रकार हैं—(i) पृथ्वीकाय, (ii) अप्काय (पानी), (iii) तेजस्काय (अग्नि), (iv) वायुकाय और (v) वनस्पतिकाय। पृथ्वी ही जिनका काय-शरीर हो उन्हे पृथ्वीकाय कहते हैं। इसी प्रकार से अप्काय आदि भी समझ लेना चाहिये।

पृथ्वीकाय आदि पाचो प्रकार के एकेन्द्रिय जीव दो प्रकार के होते हैं—सूक्ष्म और बादर। जो हमारी आखो से दिखाई नही दे सकते वे सूक्ष्म हैं, और जो हमे दृष्टिगोचर होते हैं वे बादर कहलाते है। हम पृथ्वी, जल आदि का जो रूप देखते हैं वह बादर है। बादर एकेन्द्रिय जीव तो ससार के किसी-किसी भाग मे ही निवास करते है लेकिन सूक्ष्म जीवो से तो यह समस्त लोक काजल की डिबिया की तरह खचाखच भरा हुआ है।

द्वीन्द्रिय जीवो के स्पर्शन (शरीर) और रसन (जीभ) ये दो इन्द्रिया होती हैं। जैसे—लट, शख, जोक, घुन आदि द्वीन्द्रिय जीव कहलाते है।

---

१ ५ इन्द्रिय—स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र।
३ बल—मनोबल, वचनबल और कायबल, तथा आयु व श्वासोच्छ्वास। इस प्रकार से भेद करने पर प्राण के दस भेद होते हैं।

त्रीन्द्रिय जीवो के स्पर्शन, रसन और घ्राण यह तीन इन्द्रिया होती है। चींटी, जू, कानखजूरा आदि जीव त्रीन्द्रिय है।

चतुरिन्द्रिय जीवो के स्पर्शन, रसन घ्राण और चक्षु (आख) यह चार इन्द्रिया होती है। मक्खी, मच्छर, टिड्डी, भौरा, बिच्छू आदि जीव चतुरिन्द्रिय होते है।

पचेन्द्रिय जीवो के स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र (कान) ये पाचो इन्द्रिया होती है। जैसे—गाय, भैस घोडा, हाथी कबूतर, कौवे आदि।

नारक, मनुष्य और देवो के भी पाच इन्द्रिया होती है। अत उनका भी पचेन्द्रिय जाति मे ग्रहण हो जाता है।

इन एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक के जीवो मे से द्वीन्द्रिय से पचेन्द्रिय तक के जीव अपने हित के लिए प्रवृत्ति और अहित की निवृत्ति के लिए हलन-चलन कर सकते है, अत उन्हे त्रस और एकेन्द्रिय जीव अपने हिताहित के लिए प्रवृत्ति-निवृत्ति के निमित्त हलन-चलन करने मे समर्थ नही है अत उन्हे स्थावर कहते है।

एकेन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय तक के तिर्यंचो के मन नही होने से असज्ञी (अमनस्क) और पचेन्द्रिय तिर्यंचो मे मन सहित वाले सज्ञी कहलाते है। गर्भ से उत्पन्न होने वाले तिर्यंचो के मन होता है और शेष बिना मन वाले होते है।

एकेन्द्रिय जीवो मे सजीवता बतलाने के लिए भगवान् महावीर ने मानव शरीर के साथ तुलना करके वनस्पति को दृष्टान्त रूप मे रखते हुए स्पष्ट बताया है कि "मनुष्य की तरह वनस्पति—वृक्ष आदि बाल, युवा, वृद्धावस्थाओ का उपभोग करती है। मनुष्य की तरह वृक्षो मे भी चेतना शक्ति है तथा सुख-दुख, आघात आदि का अनुभव करते है। मनुष्य के शरीर मे घाव आदि हो जाने पर वे ठीक हो जाते है, वैसे ही वृक्षादि भी छिन्न-भिन्न होने पर पुन ठीक हो जाते है। वृक्षो को भी मनुष्य की तरह भूख-प्यास का अनुभव होता है। खाद पानी आदि मिलने पर मनुष्य शरीर की तरह वृक्ष भी बढते है और न मिलने पर सूख जाते है। आयु क्षीण हो जाने पर वृक्ष भी मनुष्य की तरह मर जाते हैं। वनस्पति के लिए जो कथन किया गया है, वही अन्य पृथ्वी आदि एकेन्द्रिय जीवो के बारे मे भी समझना चाहिये।"

—आचाराग १।१।५।४४

२ अजीव तत्त्व :

यह जीव के स्वरूप से विपरीत लक्षण वाला है। जीव चेतना वाला है, सुख-दुख की अनुभूति करता है, लेकिन अजीव मे चेतना नही है, उसमे सुख दुख की अनुभूति नही होती है। अर्थात् जिसमे चेतना न हो उसे अजीव कहते है। अजीव को जड, अचेतन भी कहते है। ससार मे जितने भी ईंट, चूना, चादी, सोना आदि भौतिक तथा धर्मास्तिकाय आदि अभौतिक पदार्थ है, वे सब अजीव है।

अजीव के भेद :

अजीव के पाच भेद हैं—(i) धर्म, (ii) अधर्म, (iii) आकाश, (iv) काल और (v) पुद्गल।

अजीव के उक्त पाच भेदो मे से धर्म, अधर्म, आकाश और काल अमूर्त और पुद्गल मूर्त है। आगमो मे अमूर्त के लिए 'अरूपी' और मूर्त के लिए 'रूपी' शब्द का प्रयोग किया गया है। अरूपी उसे कहते हैं जिसमे रूप, रस, गध और स्पर्श न हो, आखो से दिखाई न दे और जिसमे रूप, रस, गध स्पर्श हो तथा जिसके विभिन्न प्रकार के आकार-प्रकार बन सकें उसे रूपी कहते हैं।

धर्म आदि अजीव के पाच भेदो के लक्षण नीचे लिखे अनुसार हैं—

धर्म—यह गति सहायक तत्त्व है। जीव और पुद्गल मे गतिशीलता की शक्ति है। जिस प्रकार से मछली को गमन करने मे पानी सहकारी निमित्त है, उसी प्रकार से जीव और पुद्गल द्रव्यो के हलन-चलन, गमन मे सहायक कारण धर्म द्रव्य है।

अधर्म—यह स्थिति सहायक तत्त्व है। इसका स्वभाव धर्म द्रव्य से विपरीत है। अर्थात् जिस प्रकार से धर्म, द्रव्य, जीव और पुद्गल को गतिक्रिया मे सहायक बनता है, उसी प्रकार अधर्म ठहरने की इच्छा रखने वाले जीव और पुद्गलो को पथिक को वृक्ष की छाया की तरह ठहरने मे सहायता देता है।

यह धर्म और अधम जीव और पुद्गलो को न तो बलात् चलाते हैं और न चलने से रोकते हैं। किन्तु सहकारी निमित्त के रूप मे उनके चलने मे या रुकने मे सहायक बन जाते हैं।

आकाश—जिसमे पदार्थों को अवकाश-आश्रय आधार देने का गुण हो, उसे आकाश कहते हैं। विश्व के समस्त पदार्थ आकाश के आधार से ही टिके हुए हैं। आकाश के दो भेद हैं—लोकाकाश और अलोकाकाश। आकाश के जितने क्षेत्र मे जीवादि द्रव्य रहते हैं उसे लोकाकाश और शेष आकाश को अलोकाकाश कहते हैं।

काल—जो द्रव्यो की नवीन, पुरातन आदि अवस्थाओ के बदलने मे निमित्त रूप से सहायता करता है वह 'काल' है। घडी, घटा, मिनट, समय आदि सभी काल की अवस्थायें हैं। बाल, युवा, वृद्ध, नूतन, पुरातन, ज्येष्ठत्व, कनिष्ठत्व आदि लोक व्यवहार काल की सहायता से होता है।

पुद्गल—जिसमे स्पर्श, रस, गध, वर्ण हो उसे पुद्गल कहते हैं। वैज्ञानिक पुद्गल को मैटर (matter), न्याय वैशेषिक दर्शन भौतिक तत्त्व, साख्य दर्शन प्रकृति शब्द से कहते हैं। बौद्धदर्शन मे विज्ञानसतति के लिये पुद्गल शब्द का प्रयोग होता है।

'पुद्गल' यह 'पुद्' और 'गल' इन दो शब्दो से बना है। इसमे पुद् का अर्थ है पूरण और गल का अर्थ है गलन। अर्थात् "पूरणाद् गलनाद् वा पुद्गल" जिसमे पूरण और गलन होता है उसे पुद्गल कहते हैं। पुद्गल इस पूरण और गलन स्वभाव वाला होने के कारण पिंड रूप हो सकता है

और खड खड होकर इतना सूक्ष्म भी हो जाता है कि जिसका कोई दूसरा टुकडा नही होता। पिंड रूप पुद्गल को स्कन्ध और सूक्ष्मतम अश को परमाणु कहते हे।

जैनदर्शन के अनुसार जीव आदि काल पर्यन्त छह द्रव्यो के समूह को लोक कहते है। यह छह द्रव्य नित्य है, अवस्थित है और शाश्वत हें। इनका कभी विनाश नही होता है और अपने-अपने गुण, पर्यायो द्वारा उत्पाद, विनाश, रूप से परिणमन करते रहते हैं। इस लोक को न तो किसी ने वनाया है और न कोई इसका विनाश ही कर सकता है।

३-४. पुण्य और पाप तत्त्व

जो आत्मा को शुभ की ओर ले जाता है उसे पुण्य कहते हैं और आत्मा का शुभ से वचाता है अथवा जिससे अनिष्ट पदार्थों की प्राप्ति होती है वह पाप है। यह पुण्य और पाप का शाब्दिक अर्थ है। यह अर्थ जीव के भावो, परिणामो और विचारो की अपेक्षा से किया गया है। लेकिन यहा पुण्य और पाप को शुभ और अशुभ कर्म परमाणु रूप से अजीव मानकर कथन किया जा रहा है।

इस पर प्रश्न होता है पुण्य और पाप को अजीव रूप मानने का कारण क्या है ? जवकि अजीव कर्म परमाणु जीव के परिणामो द्वारा अपना शुभ अथवा अशुभ रूप मे फल देते हैं। और जीव के शुभ अथवा अशुभ परिणामो के द्वारा ही उनका वध होता है। इसका समाधान यह है कि जीव मे होने वाले शुभ या अशुभ परिणामो को योग-आस्रव के अन्तर्गत रखा गया है कि जीव मन, वचन, काया की अच्छी बुरी प्रवृत्ति द्वारा शुभ-अशुभ कर्म पुद्गलो को ग्रहण करता रहता है। यहा तो पुण्य और पाप को अलग तत्त्व मानने से इतना ही अपेक्षित है कि मन, वचन, काय की शुभ-अशुभ प्रवृत्ति के द्वारा जो कर्म पुद्गल जीव के साथ सम्बद्ध होते है और शुभ या अशुभ रूप मे जिनका विपाकोदय होता है। कर्मों की इसी विपाकोदय की दृष्टि को ध्यान मे रखकर वाचक-मुख्य उमास्वाति ने (तत्त्वार्थसूत्र ८।२६ मे) सातावेदनीय, सम्यक्त्वमोहनीय, हास्य, रति, पुरुषवेद, शुभ-आयु, शुभनाम और शुभगोत्र—इन कर्म प्रकृतियो को पुण्य रूप तथा इनके अतिरिक्त शेष कर्म प्रकृतियो को पाप रूप कहा है।

आत्मा के परिणाम अगणित हैं। इसलिए पुण्य-पाप के कारण भी अगणित हैं। फिर भी उनका सक्षेप मे वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

'शुभ पुण्यस्य। अशुभ. पापस्य।' —तत्त्वार्थसूत्र ६।३४

शुभ योग (परिणामो) से पुण्य का वध होता है और अशुभ से पाप का। यानी योगप्रवृत्ति शुभ रूप है तो पुण्य का और अशुभ रूप है तो पाप का कारण वनती है और उनसे कर्मपरमाणुओ मे शुभ या अशुभ रूप से फल देने की शक्ति आयेगी और वे उस रूप मे अपना फल देंगे। इसलिये आत्म-वृत्तियो की विविधता के कारण यद्यपि उनमे अनेकता है लेकिन व्यावहारिक दृष्टि मे उनमे मे कुछ एक कारणो का यहा सकेत करते हैं—

पुण्य व पाप तत्त्व के भेद·

उदय मे आये हुए पुद्गलो को जहा पुण्य कहा गया वही उनके कारणो को भी पुण्य रू

है। पुण्य के कारण अनेक हैं फिर भी संक्षेप में उनको अनेक प्रकार से कहा जा सकता है—

अर्हदादौ परा भक्तिः कारुण्यं सर्वजन्तुषु ।
पावने चरणे रागः पुण्यबंधनिबन्धनम् ॥

—योगशास्त्र ४।३७

अर्हंत आदि पंच परमेष्ठियो मे भक्ति, समस्त जीवो पर करुणा और पवित्र चारित्र मे प्रीति रखने से पुण्य का बन्ध होता है। दीन-दुःखी पर करुणा व उनकी सेवा करना, गुणीजनो पर प्रमोद भाव रखना, दान-देना, परोपकार करना, मन, वचन, काया की शुभ प्रवृत्ति करना आदि अनेक कारण माने जा सकते हैं। आगमो मे पुण्योपार्जन के नौ कारण बतलाये है। अतः शास्त्रीय दृष्टि से पुण्य के नौ भेद इस प्रकार हैं[1]—

१ अन्न पुण्य —भोजन देना।
२ पान पुण्य —पानी पिलाना।
३ लयन पुण्य —योग्यतानुसार आवास स्थान की व्यवस्था करना।
४ शयन पुण्य —शैया, पाट आदि विश्राम के साधनो को देना।
५ वस्त्र पुण्य —तन ढाकने के लिए वस्त्र आदि देना।
६. मन पुण्य —दान, शील आदि भावनाओ मे मन को प्रवृत्त रखना।
७ वचन पुण्य —मुख से हित-मित प्रिय वचन बोलना।
८. काय पुण्य —शरीर द्वारा जीवो की सेवा आदि कार्य करना।
९ नमस्कार पुण्य —गुणीजनो, गुरुजनो आदि का विनय, नमस्कार आदि करना।

इन सब भेदो मे अन्तर्हित भावनाओ और कार्यों का सारांश यह है कि मन, वचन, काया की प्रवृत्ति को शुभ कार्यों को करने मे लीन रखकर प्राणिमात्र का उपकार करना।

उदय मे आए हुए अशुभकर्म पुद्गलो और अशुभकर्मों को पाप कहते हैं। पुण्य के कारणों की तरह पाप के कारण भी आत्म-परिणतियो की असंख्यता से असंख्य हैं। इन कारणो को संक्षेप और विस्तार की दृष्टि से अनेक प्रकार से कह सकते हैं, फिर भी पाप-उपार्जन के निम्नलिखित मुख्य अठारह कारण माने गये हैं—

१ प्राणातिपात —प्रमाद के योग से प्राणो का घात करना।
२. मृषावाद —झूठ बोलना।
३. अदत्तादान —चोरी करना।
४ अब्रह्मचर्य —कुशील का सेवन करना।
५ परिग्रह —पर-पदार्थों मे मूर्च्छाभाव (ममत्व) रखना।
६. क्रोध —गुस्सा करना, कुपित हो जाना।

---

१ पुण्य नौ प्रकार से बांधा जाता है। ४२ प्रकार से भोगा जाता है। पाप १८ प्रकार से बांधा जाता है। ८२ प्रकार से भोगा जाता है।

७. मान	—अभिमान (घमण्ड) करना।
८ माया	—कपट भाव रखना।
९. लोभ	—असतोष, पदार्थों के सरक्षण की वृत्ति।
१०. राग	—माया और लोभ की वृत्ति के साथ आसक्ति रूप परिणाम।
११. द्वेष	—क्रोध और मान के वशवर्ती जीव के परिणाम।
१२. कलह	—लडाई-झगडा करना।
१३. अभ्याख्यान	—झूठा दोषारोपण करना।
१४. पैशुन्य	—परोक्ष मे किसी के दोषो को प्रगट करना, चुगली करना।
१५. परनिन्दा	—दूसरो की बुराई करना, निन्दा करना।
१६. रति-अरति	—मनोज्ञ वस्तु मे राग और अमनोज्ञ वस्तु मे द्वेष-भाव अथवा पाप मे रुचि रखना और धर्मवृत्ति मे उदासीन रहना।
१७ माया-मृषावाद	—कपट पूर्वक झूठ बोलना।
१८. मिथ्यादर्शन	—जीवादि तत्त्वो और देव, गुरु, धर्म के प्रति श्रद्धा न रखना अथवा विपरीत श्रद्धा रखना।

५ आस्रव तत्त्व

पुण्य पाप, रूप कर्मों के आने के द्वार को 'आस्रव' कहते हैं। आस्रव द्वारा आत्मा कर्मों को ग्रहण करती रहती है। यानी आत्मा के जिन परिणामो से पुद्गलद्रव्य कर्म रूप बनकर आत्मा मे आता है, उसे आस्रव कहते है। ससारी जीव मे प्रतिसमय मन, वचन, काय की परिस्पन्दनात्मक क्रिया होती रहती है जिससे वह सतत् कर्मपुद्गलो का आस्रवण-ग्रहण करता है। जैसे समुद्र मे नदियो द्वारा पानी का आना चालू रहता है, वैसे ही आत्मा हिंसा, झूठ आदि प्रवृत्ति द्वारा कर्म रूपी जल को ग्रहण करती रहती है। इसीलिए कर्म के आने के मार्ग को आस्रव कहा गया है।

तत्त्व के भेद

आस्रव तत्त्व के दो भेद हैं—(I) द्रव्यास्रव, और (II) भावास्रव। अपने-अपने निमित्त रूप योग को प्राप्त करके आत्मप्रदेशो मे स्थित पुद्गल कर्म रूप से परिणत हो जाते हैं, उसे द्रव्यास्रव कहते हैं और आत्मा के जिन परिणामो से पुद्गलद्रव्य कर्म रूप बनकर आता है उसे भावास्रव कहते हैं।

आत्मा मे कर्मों के आगमन के मुख्य रूप से निम्नलिखित कारण हैं। इसलिए इन कारणो की अपेक्षा से आस्रव के पाच भेद हैं—

(१) मिथ्यात्व, (२) अविरति, (३) प्रमाद, (४) कषाय, और (५) योग।

(१) मिथ्यात्व—जीवादि तत्त्वो के विपरीत श्रद्धान को मिथ्यात्व कहते हैं। इस विपरीत श्रद्धान के कारण जड पदार्थों मे चैतन्य बुद्धि, अतत्त्व मे तत्त्व बुद्धि आदि विपरीत प्ररूपणा की जाती है।

(२) अविरति—अर्थात् इच्छाओ एव पापाचरणो मे विरत न होना। पाच इन्द्रियो और मन को वश मे न रखना और पृथ्वी आदि छहकाय के जीवो की हिंसा का त्याग प्रत्याख्यान न करना।

(३) प्रमाद—कुशल कार्यों मे उत्साह न रखना। अर्थात् आत्म-विकास की प्रवृत्ति मे आलस्य एव शिथिलता करना।

(४) कषाय—आत्मा के स्वाभाविक रूप का घात करने वाली क्रोध, मान, माया, लोभ आदि प्रवृत्तिया।

(५) योग—मानसिक, वाचिक, कायिक शुभा-शुभ प्रवृत्ति।

६. बन्ध तत्त्व·

काषायिक परिणामो से कर्म के योग्य पुद्गलो का आत्मा के साथ सम्बन्ध होना वन्ध कहलाता है। जीव अपने काषायिक परिणामो से अनन्तानन्त कर्म योग्य पुद्गलो का वन्ध करता रहता है। आत्मा और कर्मो का यह वन्ध दूध और पानी या अग्नि और लौह पिण्ड जैसा है। जैसे दूध और पानी, अग्नि और लौह पिण्ड अलग-अलग हैं फिर भी एक दूसरे के सयोग से एकमेक दिखते है।

बन्ध तत्त्व के भेद

वन्ध के निम्नलिखित चार भेद है—

(१) प्रकृतिबन्ध—जीव द्वारा ग्रहण किये गये कर्म पुद्गलो मे भिन्न-भिन्न स्वभावो का होना। जैसे अमुक कर्म आत्मा के ज्ञान गुण को आवृत करेगा, अमुक दर्शन गुण को इत्यादि।

(२) स्थितिबन्ध—जीव द्वारा बद्ध कर्म पुद्गलो मे अमुक समय तक जीव के साथ जुड़े रहने की कालमर्यादा को स्थितिबन्ध कहते है। कर्मो की यह स्थिति जघन्य और उत्कृष्ट और इन दोनो के मध्य के समय भेद से अनेक प्रकार की होती है। कालमर्यादा की न्यूनाधिकता होने मे जीव के परिणाम कारण है।

(३) अनुभागबन्ध—अनुभाग नाम फल देने की शक्ति का है। जीव द्वारा ग्रहण किए हुए कर्म पुद्गलो मे फल देने की न्यूनाधिक शक्ति का होना अनुभाग वन्ध कहलाता है। इसे अनुभावबन्ध, रसबन्ध भी कहते है।

(४) प्रदेशबन्ध—ग्रहण किए जाने पर भिन्न-भिन्न स्वभाव मे परिणत होने वाली कर्म पुद्गल शक्ति का, स्वभावानुसार अमुक-अमुक परिमाण मे बँट जाना प्रदेशबन्ध है।

वन्ध के उक्त प्रकृतिबन्ध आदि चार भेदो मे से प्रकृतिबन्ध और प्रदेश बन्ध योग के निमित्त से तथा स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध कषाय के निमित्त से होता है। क्योकि योग परिस्पन्दन के तरतम भाव पर ही बद्ध कर्म पुद्गलो मे उस रूप मे उनका स्वभाव और प्रदेश मर्यादा हो सकती है यदि योगो की प्रवृत्ति मद है तो बद्ध कर्म पुद्गलो मे वैसा मद स्वभाव और प्रदेश मर्यादा बनेगी और तीव्र होने पर स्वभाव व प्रदेशो की सख्या मे अधिकता होगी। कषाय एक प्रकार की चिकनाई है। चिकनाई मे अधिकता होने पर जैसे धूलि आदि अधिक समय तक चिपकी रहती है और उसे हटाने मे

समय भी लगता है । इसीलिए अनुभागबन्ध और स्थितिबन्ध की न्यूनाधिकता कषाय पर आधारित है ।

बन्ध के शुभ या अशुभ ऐसे दो प्रकार भी हो सकते है । शुभ बन्ध को पुण्य और अशुभ बन्ध को पाप कहते हैं । जब तक कर्म फल नही देते है तब तक बन्ध कहलाते है और फल देने पर पुण्य या पाप कहे जाते है । यानी कर्मों के अनुदयकाल को बन्ध और उदयकाल-फल देने के समय को पुण्य-पाप कहते है ।

७. सवर तत्त्व

आस्रव-निरोध को सवर कहते है, अर्थात् जिन निमित्तो से कर्म बधते है, उनका निरोध-प्रतिबन्ध करना । कर्म आने के द्वार को रोकना सवर है । आत्मा मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग प्रवृत्ति द्वारा कर्मो का आस्रवण करती है । इन कारणो द्वारा जो कर्मो का आगमन हो रहा है, कर्मो के आने के द्वार बद कर देना सवर का अर्थ है । नवीन कर्मों के आगमन को रोकने के कारण हैं—गुप्ति, समिति, धर्मसाधना, अनुप्रेक्षा (लोक स्वरूप का चिन्तन) परिषह सहन करना, सम्यक्चारित्र, तप आदि ।

सवर के स्वरूप को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जाता है—'कल्पना कीजिये कि कोई व्यक्ति तालाब को खाली करने के लिए पानी उलीच कर, अथवा पम्पिग सेट आदि द्वारा बाहर फेक रहा है । लेकिन परिश्रम करने पर यदि वह तालाब मे पानी आने के द्वारो-नालो को बन्द नही करता है तो उसका किया कराया परिश्रम व्यर्थ हो जाता है । जितना वह पानी निकालता है उतना ही पानी नालो द्वारा तालाब मे भरता जा रहा है । इस स्थिति मे तालाब का खाली होना सम्भव नही ।

सवर द्वारा कर्मबध की निमित्तभूत प्रवृत्तियो का निरोध एव उन क्रियाओ का निरोध होने से आने वाले कर्मपुद्गलो का विच्छेद होता है । इसलिए आत्म-प्रवृत्तियो के निरोध को भावसवर एव आगत कर्मो के रुकने को द्रव्य सवर कहा जाता है ।

सवर तत्त्व के भेद .

कर्मास्रव रोकने का मुख्य हेतु तो आत्मा का स्वभाव है, लेकिन सवर आस्रव का विरोधी तत्त्व है । अत सवर के निम्नलिखित ५ भेद हैं—

(१) सम्यक्त्व— जीवादि तत्त्वो का यथार्थ श्रद्धान करना ।
(२) व्रत— पाप कर्मो से विरत होना ।
(३) अप्रमाद— धर्म के प्रति उत्साह का होना ।
(४) अकषाय— क्रोधादि कषायो का क्षय या उपशम होजाना ।
(५) योगनिग्रह—मन, वचन, काय, प्रवृत्ति का निरोध करना ।

ये पाँचो आस्रव के विरोधी भेद है । इनके अतिरिक्त हिंसादि पापो से निवृत्ति लेना । पाँच इन्द्रियो की अपने-अपने विषयो की प्रवृत्ति को रोकना । मन, वचन, काय की प्रवृत्ति को रोकना

अथवा, सम्यक् प्रवृत्ति करना आदि भी सवर के भेद हैं। लेकिन उन सबका ऊपर बताये गये भेदो मे समावेश हो जाने से मुख्यतया सवर के सम्यक्त्व आदि पांच भेद तथा विस्तार से २० और ५७ भेद माने गए हैं।

८ निर्जरा तत्त्व

पूर्व वद्ध कर्मों का आशिक या क्रमिक क्षय होना निर्जरा है। सवर के द्वारा आगत कर्मों को रोका जाता है और निर्जरा से पूर्ववद्ध कर्मों को धीरे धीरे क्षीण किया जाता है। जैसे—तालाव मे पानी के आने के द्वारो को रोक देने पर सूय के ताप आदि से धीरे-धीरे तालाव सूख जाता है, वैसे ही सवर द्वारा नवीन कर्मो का निरोध हो जाने पर निर्जरा द्वारा वद्धकर्मों का शनै-शनै क्षय होता है।

ससारी जीव के साथ कर्मवन्ध का त्रम और अपना फल देकर क्षय होने का क्रम भी निरन्तर चालू रहता है। लेकिन यहाँ निर्जरा का विशेष अर्थ यह है कि सवर द्वारा कर्मों के आगमन को रुकने के वाद पूर्व-वद्ध कर्मो का शनै -शनै क्षय होना। इसलिए कर्मास्रव के साथ कर्मक्षय होने को सविपाक निजरा और विना फलोदय के कर्मक्षय होने को अविपाक निर्जरा कहते हैं।

निर्जरा मुक्ति प्राप्ति के लिए सीढियो के समान है। सीढियो द्वारा जैसे मजिल पर पहुँचा जाता है। वैसे ही निर्जरा भी कर्मक्षय के लिए सहायक वनती है। कर्मक्षय के लिए अग्रसर साधक का एक मात्र उद्देश्य अनादिकाल से चले आ रहे कर्म-बन्धन को नष्ट करने का होता है और सासारिक कामनाओ मे न उलझकर कर्मक्षय के लिए प्रयत्नशील रहना है।

निर्जरा तत्त्व के भेद

जैसे शुद्ध सुवर्ण की प्राप्ति के लिए कनकोपल को तपाया जाता है, वैसे ही आत्मा से सम्बद्ध कर्मावरण को हटाने के लिए आत्मा व शरीर को तपाया जाता है। तप शुद्धि का मुख्य साधन है। इसीलिए तप को निर्जरा कहते हैं। तप के बारह भेद होने से निर्जरा के भी बारह भेद होते हैं।[1]

९ मोक्ष का लक्षण

मोक्ष अर्थात् कर्मबन्धनो से सर्वथा मुक्त होकर आत्म स्वरूप की प्राप्ति कर लेना। समस्त कर्मों का क्षय करके आत्म-स्वरूप की प्राप्ति कर लेना ही जीव का लक्ष्य है और इसी की प्राप्ति मे उसके पुरुषार्थ की सफलता है। कर्म ही ससार है और कर्ममुक्ति हुई कि अनन्तकाल के लिए जन्म मरण का चक्र रुक गया। सद्-चित्-आनन्दमय स्वरूप की जागृति हो गई। वेदान्त के 'ब्रह्मोऽस्मि' को आत्मा की इसी अवस्था का द्योतक मान सकते हैं।

आत्म-विकास की पूर्णता मोक्ष है, अत मोक्ष मे कोई भेद नही है। मुक्त आत्माएँ अपने स्वरूप की अपेक्षा समान हैं। भेद के कारण कर्म हैं, जब कर्मों का ही अभाव हो गया तो भेद की कल्पना भी कैसे की जा सकती है। फिर भा लोक व्यवहार मे मुक्ति प्राप्त करने की पूर्वावस्था के आधार से तीर्थसिद्ध, अतीर्थसिद्ध आदि १५ भेद जनसाधारण को समझाने के लिए शास्त्रो मे बताए

---

१ देखिए इसी पुस्तक का तप शीर्षक निवन्ध, स० ८।

गये हैं। जिनका फलितार्थ यह है कि कोई भी जीव चाहे वह किसी भी लिंग, जाति आदि का हो, मुक्ति प्राप्ति का अधिकारी है। मुक्ति की प्राप्ति जीव के सम्यक् पुरुषार्थ पर निर्भर है, जाति, कुल आदि उसमे कारण नही है।

मोक्ष कोई स्थान विशेष नही है, लेकिन जिसे हम लोक के अग्रभाग मे स्थित सिद्धशिला के नाम से कहते है, वह तो जीव के ऊर्ध्वगमन स्वभाव के कारण शुद्ध आत्मा के अवस्थान की दृष्टि से समझ लेना चाहिए। जैसे मिट्टी के लेप से भारी बना हुआ तुम्बा पानी के तल भाग मे डूबा रहता है और लेप के हटने पर ऊपर पानी की सतह पर आ जाता है, वैसे ही कर्म लेप से भारी बना जीव ससार सागर मे डूबा रहता है, लेकिन निष्कर्मा होकर लोकाग्र मे स्थित हो जाता है और उस स्थान विशेष को सिद्धशिला कह दिया जाता है।

मोक्ष प्राप्ति के उपाय

आगमो मे मोक्ष प्राप्ति के चार उपाय बताये हैं—(i) ज्ञान, (ii) दर्शन, (iii) चारित्र, और (iv) तप। ज्ञान से तत्त्वो की जानकारी और दर्शन से तत्त्वो पर श्रद्धा होती है। चारित्र द्वारा कर्मास्रव रुकता है और तप से पूर्वबद्ध कर्मो का क्षय होता है। आचार्यों ने तप को चारित्र मे गर्भित करके ज्ञान, दर्शन, चारित्र को मोक्ष प्राप्ति का उपाय कहा है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि मे किसी एक के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति नही, किन्तु ज्ञान, दर्शन आदि की सामूहिक रूप से साधना करने पर ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसीलिए इनको 'रत्न त्रय' कहा जाता है।

१४ गुणस्थान

•

प० सुखलाल सघवी

गुणस्थान आत्मविकास की क्रमिक अवस्था

गुणो (आत्मशक्तियो) के स्थानो को अर्थात् विकास की क्रमिक अवस्थाओ को गुणस्थान कहते हैं। जैन शास्त्र मे गुणस्थान, इस पारिभाषिक शब्द का मतलब आत्मिक शक्तियो के आविर्भाव की, उनके शुद्ध कार्य रूप मे परिणत होते रहने की तरतम भावापन्न अवस्थाओ से है। आत्मा का वास्तविक स्वरूप शुद्ध चेतना और पूर्णानन्दमय है। पर उसके ऊपर जब तक तीव्र आवरणो के घने बादलो की घटा छाई हो, तब तक उसका असली स्वरूप दिखाई नही देता। किन्तु आवरणो के क्रमश शिथिल या नष्ट होते ही उसका असली स्वरूप प्रकट होता है। जब आवरणो की तीव्रता आखिरी हद की हो, तब आत्मा प्राथमिक अवस्था मे अविकसित अवस्था मे पडा रहता है। और जब आवरण बिल्कुल ही नष्ट हो जाते है, तब आत्मा चरम अवस्था—शुद्ध स्वरूप की पूर्णता मे वर्तमान हो जाता है। जैसे-जैसे आवरणो की तीव्रता कम होती जाती है, वैसे-वैसे आत्मा भी प्राथमिक अवस्था को छोडकर धीरे-धीरे शुद्ध रूप का लाभ करता हुआ चरम अवस्था की ओर प्रस्थान करता है। प्रस्थान के समय इन दो अवस्थाओ के बीच उसे अनेक नीची-ऊची अवस्थाओ का अनुभव करना पडता है। प्रथम अवस्था को अविकास की अथवा अध पतन की पराकाष्ठा और चरम अवस्था को विकास की अथवा उत्क्रान्ति की पराकाष्ठा समझना चाहिये। इस विकास क्रम की मध्यवर्तिनी सब अवस्थाओ को अपेक्षा से उच्च भी कह सकते है और नीच भी, अर्थात् मध्यवर्तिनी कोई भी अवस्था अपने से ऊपर वाली अवस्था की अपेक्षा नीच और नीचे वाली अवस्था की अपेक्षा उच्च कही जा सकती है। विकास की ओर अग्रसर आत्मा वस्तुत उक्त प्रकार की सख्यातीत आध्यात्मिक भूमिकाओ का अनुभव करता है। पर जैन शास्त्र मे सक्षेप मे वर्गीकरण करके उनके चौदह विभाग किये है, जो चौदह गुणस्थान कहलाते हैं।

मोह आत्मविकास मे मुख्य बाधक

सब आवरणो मे मोह का आवरण प्रधान है अर्थात् जब तक मोह बलवान् और तीव्र हो, तब तक अन्य सभी आवरण बलवान और तीखे बने रहते हैं। इसलिए आत्मा के विकास करने मे मुख्य बाधक मोह की प्रबलता और मुख्य सहायक मोह की निर्बलता समझनी चाहिये। इसी कारण गुणस्थानो की विकास क्रम की अवस्थाओ की कल्पना मोह शक्ति की उत्कटता, मन्दता, तथा अभाव पर अवलम्बित है।

मोह की प्रधान शक्तिया दो हैं। इनमे से पहली शक्ति, आत्मा को दर्शन अर्थात् स्वरूप–पररूप का निर्णय किंवा जड–चेतन का विवेक करने नही देती और दूसरी शक्ति आत्मा को विवेक प्राप्त कर लेने पर भी तदनुसार प्रवृत्ति से छुटकारा स्वरूप लाभ नही करने देती। व्यवहार मे पग पग पर यह देखा जाता है किसी वस्तु का यथार्थ दर्शन बोध कर लेने पर ही उस वस्तु को पाने या त्यागने की चेष्टा की जाती है और वह सफल भी होती है। आध्यात्मिक विकासगामी आत्मा के लिए भी मुख्य दो ही कार्य हैं। पहला स्वरूप तथा पररूप का यथार्थ दर्शन किंवा भेद ज्ञान करना और दूसरा स्वरूप मे स्थित होना। इनमे से पहले कार्य को रोकने वाली मोह की शक्ति जैनशास्त्र मे दर्शनमोह और दूसरे कार्य को रोकने वाली मोह की शक्ति चारित्रमोह कहलाती है। दूसरी शक्ति अनुगामिनी है, अर्थात् पहली शक्ति प्रवल हो, तब तक दूसरी शक्ति कभी निर्वल नही होती और पहली शक्ति के मन्द-मन्दतर और मन्दतम होते ही दूसरी शक्ति भी क्रमश. वैसी ही होने लगती है, अथवा यो कहिये कि एक वार आत्मा स्वरूपदर्शन कर पावे तो फिर उसे स्वरूप-लाभ करने का मार्ग प्राप्त हो ही जाता है।

ग्रथिभेद

अविकसित किंवा सर्वथा अध पतित आत्मा की अवस्था प्रथम गुणस्थान है। इसमें मोह की उक्त दोनो शक्तियो के प्रवल होने के कारण आत्मा की आध्यात्मिक स्थिति विलकुल गिरी हुई होती है। इस भूमिका के समय आत्मा चाहे आधिभौतिक उत्कर्ष कितना ही क्यो न कर ले, पर उनकी प्रवृति तात्विक लक्ष्य से सर्वथा शून्य होती है। जैसे दिग्भ्रम वाला मनुष्य पूर्व को पश्चिम मान कर गति करता है और अपने इष्ट स्थान को नही पाता, उसका श्रम एक तरह से वृथा ही जाता है, वैसे प्रथम भूमिका वाला आत्मा, पर रूप को स्वरूप समझ कर उसी को पाने के लिए प्रति क्षण लालायित रहता है। और विपरीत दर्शन या मिथ्यादृष्टि के कारण राग-द्वेष की प्रवल चोटो का शिकार बनकर तात्विक सुख से वचित रहता है। इसी भूमिका को जैन शास्त्र मे वहिरात्माभाव किंवा मिथ्यादर्शन कहा है। इस भूमिका मे जितने आत्मा वर्तमान होते हैं, उन सभी की आध्यात्मिक स्थिति एक सी नही होती अर्थात् सव के ऊपर मोह की सामान्यत दोनो शक्तियो का आधिपत्य होने पर भी उसमे थोडा वहुत तरतम भाव अवश्य होता है। किसी पर मोह का प्रभाव गाढतम, किसी पर गाढतर और किसी पर उससे भी कम होता है। विकास करना यह प्राय आत्मा का स्वभाव है। इसलिए जानते या अजानते, जव उस पर मोह का प्रभाव कम होने लगता है, तव वह कुछ विकास की ओर अग्रसर हो जाता है और तीव्रतम राग-द्वेष को कुछ मन्द करता हुआ मोह की प्रथम शक्ति को छिन्न-भिन्न करने योग्य आत्मवल प्रकट कर लेता है। इसी स्थिति को जैनशास्त्र मे ग्रंथिभेद कहा है।

मे कभी एक तो कभी दूसरा जय लाभ करता है। अनेक आत्मा ऐसे भी होते हैं जो करीव-करीव ग्रन्थिभेद करने लायक बल प्रकट करके भी अन्त मे राग-द्वेप के तीव्र प्रहारो से आहत होकर व उनसे हार खाकर अपनी मूल स्थिति मे आ जाते है और अनेक वार प्रयत्न करने पर भी राग-द्वेप पर जयलाभ नही करते। अनेक आत्मा ऐसे भी होते हैं, जो न तो हार खाकर पीछे गिरते हैं और न जयलाभ कर पाते हैं। किन्तु वे चिरकाल तक उस आध्यात्मिक युद्ध मैदान मे ही पडे रहते हैं। कोई-कोई आत्मा ऐसा भी होता है जो अपनी शक्ति का यथोचित प्रयोग कर, उस आध्यात्मिक युद्ध पर, राग-द्वेष पर जयलाभ कर ही लेता है।

आध्यात्मिक युद्ध •

किसी भी मानसिक विकार की प्रतिद्वन्द्विता मे इन तीनो अवस्थाओ का अर्थात् कभी हार खाकर पीछे गिरने का, कभी प्रतिस्पर्धा मे डटे रहने का और जयलाभ करने का अनुभव हमे अवसर नित्य प्रति हुआ करता है। यही सघर्ष कहलाता है। सघर्ष विकास का कारण है। चाहे विद्या, चाहे धन, चाहे कीर्ति, कोई भी लौकिक वस्तु इष्ट हो, उसको प्राप्त करते समय भी अचानक अनेक विघ्न उपस्थित होते है और उनकी प्रतिद्वन्द्विता मे उक्त प्रकार की तीनो अवस्थाओ का अनुभव प्राय सबको होता रहता है। कोई विद्यार्थी, कोई धनार्थी या कोई कीर्ति का आकाक्षी जब अपने इष्ट के लिए प्रयत्न करता है तब या तो वह बीच मे अनेक कठिनाइयो को देखकर प्रयत्नो को छोड ही देगा या कठिनाइयो को पारकर इष्ट-प्राप्ति के मार्ग की ओर अग्रसर होता है। जो अग्रसर होता है, वह बडा विद्वान्, बडा धनवान् या बडा कीर्तिशाली बन जाता है। जो कठिनाइयो से डर कर पीछे भागता है, वह पामर, अज्ञानी, निर्धन, कीर्तिहीन बना रहता है। और जो कठिनाइयो को जीत सकता है और उनसे हार मानकर पीछे भागता है, वह साधारण स्थिति मे ही पडा रहकर, कोई ध्यान खीचने योग्य उत्कर्ष लाभ नही करता।

इस भाव को समझाने के लिए शास्त्र मे एक दृष्टान्त दिया गया है। तीन प्रवासी कही जा रहे थे। बीच मे भयानक चोरो को देखते ही तीन में से एक तो पीछे भाग गया। दूसरा उन चोरो से डर कर नही भागा, किन्तु उनके द्वारा पकडा गया। तीसरा तो असाधारण बल तथा कौशल से उन चोरो को हराकर आगे बढ ही गया। मानसिक विकारो के साथ आध्यात्मिक युद्ध करने मे जो जय-पराजय होता है, उसका थोडा बहुत खयाल उक्त दृष्टान्त से आ सकता है।

सद्दृष्टि :

प्रथम गुणस्थान मे रहने वाले विकासगामी ऐसे अनेक आत्मा होते हैं, जो राग-द्वेप के तीव्रतम वेग को थोडा-सा दवाये हुए होते है, पर मोह की प्रधान शक्ति को अर्थात् दर्शनमोह को शिथिल किये हुए नही होते, तो भी उनका वोध व चरित्र अन्य अविकसित आत्माओ की अपेक्षा अच्छा ही होता है। यद्यपि ऐसी आत्माओ की आध्यात्मिक दृष्टि सर्वथा आत्मोन्मुख न होने के कारण वस्तुत मिथ्या दृष्टि, विपरीत दृष्टि या असत् दृष्टि ही कहलाती है तथापि वह सद्दृष्टि के समीप ले जाने वाली हो जाने के कारण उपादेय मानी गई है।

वोध, वीर्य व चारित्र के तरतम भाव की अपेक्षा से उस असत् दृष्टि के चार भेद करके

मिथ्यादृष्टि गुणस्थान की अन्तिम अवस्था का शास्त्र मे अच्छा चित्र खीचा गया है। इन चार दृष्टियो मे जो वर्तमान होते हैं, उनको सद्‌दृष्टि लाभ करने मे फिर देरी नही लगती।

सद्‌बोध, सद्‌वीर्य व सच्चरित्र के तरतम भाव की अपेक्षा से सद्‌दृष्टि के भी शास्त्र में चार विभाग किये है, जिनमे मिथ्यादृष्टि त्यागकर अथवा मोहकर एक या दोनो शक्तियो को जीतकर आगे बढे हुए सभी विकसित आत्माओ का समावेश हो जाता है, अथवा दूसरे प्रकार से यो समझाया जा सकता है कि जिसमे आत्मा का स्वरूपभासित हो और उसकी प्राप्ति के लिए मुख्य प्रवृत्ति हो, वह सद्‌दृष्टि इसके विपरीत जिसमे आत्मा का स्वरूप न तो यथावत् भासित हो और न उसकी प्राप्ति के लिए ही प्रवृत्ति हो, वह असद्‌दृष्टि। बोध, वीर्य व चरित्र के तरतम भाव को लक्ष्य मे रखकर शास्त्र मे दोनो दृष्टि के चार-चार विभाग किये गये हैं, जिनमे सब विकासगामी आत्माओ का समावेश हो जाता है और जिनका वर्णन पढने से आध्यात्मिक विकास का चित्र आखो के सामने नाचने लगता है।

शारीरिक और मानसिक दु खो की सवेदना के कारण अज्ञातरूप मे ही 'गिरिनदीपापान्याय' से जब आत्मा का आवरण कुछ शिथिल होता है और इसके कारण उसके अनुभव तथा वीर्योल्लास की मात्रा कुछ बढती है, तब उस विकासगामी आत्मा के परिणामो की शुद्धि व कोमलता कुछ बढती है। जिसकी बदौलत वह रागद्वेप की तीव्रतम-दुर्भेद्य ग्रथि को तोडने की योग्यता बहुत अशो मे प्राप्त कर लेता है। इस अज्ञान पूर्वक दु ख सवेदनाजनित अति अल्प आत्मशुद्धि को जैन शास्त्र मे 'यथाप्रवृत्तिकरण' कहा है। इसके बाद जब कुछ और भी अधिक आत्मशुद्धि तथा वीर्योल्लास की मात्रा बढती है तब रागद्वेष की उस दुर्भेद्य ग्रथि का भेदन किया जाता है। इस ग्रथिभेदकारक आत्म शुद्धि को 'अपूर्वकरण' कहते हैं। क्योकि ऐसा करण-परिणाम विकासगामी आत्मा के लिये अपूर्व प्रथम ही प्राप्त है। इसके बाद आत्मशुद्धि व वीर्योल्लास की मात्रा कुछ अधिक बढनी है, तब आत्मा मोह की प्रधानभूत शक्ति दर्शनमोह पर अवश्य विजयलाभ करता है। इस विजयकारक आत्म शुद्धि को जैन-शास्त्र मे 'अनिवृत्तिकरण' कहा है, क्योकि उस आत्म-शुद्धि के हो जाने पर आत्मा दर्शनमोह पर जयलाभ किये बिना नही रहता, अर्थात् वह पीछे नही हटता। उक्त तीन प्रकार की आत्मशुद्धियो मे दूसरी अर्थात् अपूर्वकरण नामक शुद्धि ही अत्यन्त दुर्लभ है। क्योकि राग-द्वेप के तीव्रतम वेग को रोकने का अत्यन्त कठिन कार्य इसी के द्वारा किया जाता है, जो सहज नही है। एक बार इस कार्य मे सफलता प्राप्त हो जाने पर फिर चाहे विकासगामी आत्मा ऊपर की किसी भूमिका से गिर भी पडे तथापि वह पुन कभी न कभी अपने लक्ष्यो को अपने—आध्यात्मिक पूर्ण स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। इस आध्यात्मिक परिस्थिति का कुछ स्पष्टीकरण अनुभवगत व्यावहारिक दृष्टान्त के द्वारा किया जा सकता है।

जैसे एक ऐसा वस्त्र हो, जिसमें मल के अतिरिक्त चिकनाहट भी लगी हो। उसका मल ऊपर ऊपर से दूर करना उतना कठिन और साध्य नही जितना कि चिकनाहट का दूर करना। यदि चिकनाहट एक बार दूर हो जाए तो फिर बाकी का मल निकालने मे किंवा [illegible] लगे हुए गर्द को दूर करने मे विशेष श्रम नही पडता, और वस्त्र को उसके असली स्वरूप मे सहज ही लाया जा सकता है। ऊपर-ऊपर का मल दूर करने मे जो बल लगता है, उसके सदृश 'यथाप्रवृत्ति-करण' है। चिकनाहट दूर करने वाले विशेष बल व श्रम के समान 'अपूर्वकरण' है, जो चिकनाहट

के समान राग-द्वेष की तीव्रतम ग्र थि को शिथिल करता है। बाकी बचे हुए मल को किंवा चिकनाहट दूर होने के बाद फिर से लगे हुए मल को कम करने वाले बल प्रयोग के समान 'अनिवृत्तिकरण' है। उक्त तीनो प्रकार के बल प्रयोग मे चिकनाहट दूर करने वाला बल प्रयोग ही विशिष्ट है।

अथवा, जैसे किसी राजा ने आत्मरक्षा के लिए अपने अ गरक्षको को तीन विभागो मे विभाजित कर रखा हो, जिनमे दूसरा विभाग शेष दो विभागो मे से अधिक बलवान् हो, तब उसी को जीतने मे विशेष बल लगाना पडता है। वैसे ही दर्शनमोह को जीतने के पहले उसके रक्षक राग-द्वेष के तीव्र सस्कारो को शिथिल करने के लिए विकासगामी आत्मा को तीन बार बल प्रयोग करना पडता है। जिनमे दूसरी बार किया जाने वाला बल प्रयोग ही, जिसके द्वारा राग-द्वेष की अत्यन्त तीव्रतारूप ग्र थि भेदी जाती है, प्रधान होता है। जिस प्रकार उक्त तीनो दलो मे बलवान् दूसरे अ ंगरक्षक दल के जीत लिए जाने पर फिर उस राजा की पराजय सहज होती है, इसी प्रकार राग-द्वेष की अति तीव्रता को मिटा देने पर दशन मोह पर जयलाभ करना सहज है। दर्शन मोह को जीता और पहले गुणस्थान की समाप्ति हुई।

अन्तरात्म भाव

ऐसा होते ही विकासगामी आत्मा स्वरूप का दर्शन कर लेता है। अर्थात् उसकी अब तक जो पररूप मे स्वरूप की भ्रान्ति थी, वह दूर हो जाती है। अतएव उसके प्रयत्न की गति उल्टी न होकर सीधी हो जाती है। अर्थात् वह विवेकी बनकर कर्तव्य–अकर्तव्य का वास्तविक विभाग कर लेता है। इस दशा को जैन शास्त्र मे अन्तरात्म भाव कहते हैं, क्योकि इस स्थिति को प्राप्त करके विकासगामी आत्मा अपने अन्दर वर्तमान सूक्ष्म और सहज शुद्ध परमात्म भाव को देखने लगता है, अर्थात् अन्तरात्म भाव, यह आत्म मन्दिर का गर्भद्वार है, जिसमे प्रविष्ट होकर उस मन्दिर मे वर्तमान परमात्म भावरूप निश्चय देव का दर्शन किया जाता है।

सम्यक्त्व

यह दशा विकासक्रम की चतुर्थी भूमिका किंवा चतुर्थ गुणस्थान है, जिसे पाकर आत्मा पहले-पहल आध्यात्मिक शान्ति का अनुभव करता है। इस भूमिका मे आध्यात्मिक दृष्टि यथार्थ (आत्म-स्वरूपोन्मुख) होने के कारण विपर्याय रहित होती है। जिसको जैन शास्त्र मे सम्यक्त्व कहा है।

चतुर्थी से आगे की अर्थात् पचमी आदि सब भूमिकाए सम्यग्दृष्टि वाली ही समझनी चाहिए, क्योकि उनमे उत्तरोत्तर विकास तथा दृष्टि की शुद्धि अधिकाधिक होती जाती है। चतुर्थ गुणस्थान मे स्वरूप दर्शन करने से आत्मा को अपूर्व शान्ति मिलती है और उसको विश्वास होता है कि अब मेरा साध्य-विषयक भ्रम दूर हुआ, अर्थात् अब तक जिस पौद्गलिक व बाह्य सुख के लिए मैं तरस रहा था, वह परिणाम विरस, अस्थिर एव परिमित है, सुन्दर, स्थिर व अपरिमित सुख स्वरूप-प्राप्ति मे ही है। तब वह विकासगामी आत्मा स्वरूप-स्थिति के लिए, प्रयत्न करने लगता है।

देशविरति •

मोह की प्रधान शक्ति दर्शन मोह को शिथिल करके स्वरूप दर्शन कर लेने के बाद भी, जब

तक उसकी दूसरी शक्ति चारित्र-मोह को शिथिल न किया जाए, तब तक स्वरूप लाभ किंवा स्वरूप स्थिति नही हो सकती। इसलिए वह मोह की दूसरी शक्ति को मन्द करने के लिए प्रयास करता है। जब वह उस शक्ति को अशत शिथिल कर पाता है, तब उसकी और भी उत्क्रान्ति हो जाती है। जिसमे अशत. स्वरूप स्थिरता या परपरिणति त्याग होने से चतुर्थ भूमिका की अपेक्षा अधिक लाभ होता है। यह देशविरति नामक पाचवा गुणस्थान है।

सर्वविरति :

इस गुणस्थान मे विकासगामी आत्मा को यह विचार होने लगता है कि यदि अल्प विरति से ही इतना अधिक शान्ति लाभ हुआ तो फिर सर्वविरति, द्वारा जड भावो के सर्वथा परिहार से कितना शान्ति लाभ होगा ? इस विचार से प्रेरित होकर व प्राप्त आध्यात्मिक शान्ति के अनुभव से वलवान् होकर वह विकासगामी आत्मा चारित्रमोह को अधिकाश मे शिथिल करके पहले की अपेक्षा भी अधिक स्वरूप-स्थिरता व स्वरूप लाभ प्राप्त करने की चेष्टा करता है। इस चेष्टा मे कृतकृत्य होते ही उसे सर्वविरति सयम प्राप्त होता है जिसमे पौद्‌गलिक भावो पर मूर्च्छा बिल्कुल नही रहती, और उसका सारा समय स्वरूप की अभिव्यक्ति करने के काम मे ही खर्च होता है। यह सर्वविरति नामक षष्ठ गुणस्थान है। इसमे आत्म कल्याण के अतिरिक्त लोक कल्याण की भावना और तदनुकूल प्रवृत्ति भी होती है। जिससे कभी-कभी थोडी बहुत मात्रा मे प्रमाद आ जाता है।

प्रमाद से युद्ध ·

पाचवे गुणस्थान की अपेक्षा, इस छठे गुणस्थान मे स्वरूप-अभिव्यक्ति अधिक होने के कारण यद्यपि विकासगामी आत्मा को आध्यात्मिक शान्ति पहले से अधिक ही मिलती है तथापि बीच-बीच मे अनेक प्रमाद उसे शान्ति के अनुभव मे जो वाधा पहुचाते हैं, उसको वह सहन नही कर सकता। अतएव सर्वविरतिजनित शान्ति के साथ अप्रमादजनित विशिष्टशान्ति का अनुभव करने की प्रवल लालसा से प्रेरित होकर वह विकासगामी आत्मा प्रमाद का त्याग करता है और स्वरूप की अभिव्यक्ति के अनुकूल मनन-चिन्तन के सिवाय अन्य सब व्यापारो का त्याग कर देता है। यही अप्रमत्त-सयत नामक सातवा गुणस्थान है। इसमे एक ओर अप्रमादजन्य उत्कट सुख का अनुभव आत्मा को उस स्थिति मे बने रहने के लिए उत्तेजित करता है और दूसरी ओर प्रमादजन्य पूर्व वासनाए उसे अपनी ओर खीचती हैं। इस खीचातानी मेविकासगामी आत्मा कभी प्रमाद की तन्द्रा और कभी अप्रमाद की जागृति अर्थात् छठे और सातवें गुणस्थान मे अनेक वार जाता-आता रहता है। भवर या वातभ्रमी मे पडा हुआ तिनका इधर से उधर और उधर से इधर जिस प्रकार चलायमान होता रहता है, उसी प्रकार छठे और सातवें, गुणस्थान के समय विकासगामी आत्मा अनवस्थित बन जाता है।

प्रमाद के साथ होने वाले इस आन्तरिक युद्ध के समय विकासगामी आत्मा यदि अपना चारित्र बल विशेष प्रकाशित करता है तो फिर वह प्रमादो, प्रलोभनो को पार कर विशेष अप्रमत्त अवस्था प्राप्त कर लेता है। उस अवस्था को पाकर वह ऐसी शक्तिवृद्धि की तैयारी करता है जिससे शेष रहे-सहे मोहबल को नष्ट किया जा सके। मोह के साथ होने वाले भावी युद्ध के लिए की जाने वाली तैयारी की इस भूमिका को आठवा गुणस्थान कहते है।

दो श्रेणिया .

पहले कभी न हुई ऐसी आत्मशुद्धि इस गुणस्थान मे हो जाती है । जिससे कोई विकासगामी आत्मा तो मोह के सस्कारो के प्रभाव को क्रमश दबाता हुआ आगे बढता है तथा अन्त मे उसे बिल्कुल ही उपशान्त कर देता है और विशिष्ट आत्मशुद्धि वाला कोई दूसरा व्यक्ति ऐसा भी होता है जो मोह के सस्कारो को क्रमश जडमूल से उखाडता हुआ आगे बढता है तथा अन्त मे सब सस्कारो को सर्वथा निर्मूल ही कर डालता है । इस प्रकार आठवें गुणस्थान से आगे बढने वाले अर्थात् अन्तरात्म भाव के विकास द्वारा परमात्म भाव रूप सर्वोपरि भूमिका के निकट पहुँचने वाले आत्म दो श्रेणियो मे विभक्त हो जाते हैं ।

एक श्रेणी वाले, तो ऐसे होते हैं, जो मोह को एक बार सर्वथा दबा तो लेते हैं, उसे निर्मूल नही कर पाते । अतएव जिस प्रकार किसी बर्तन मे भरी हुई भाप कभी-कभी अपने वेग से उस बर्तन को उडा ले भागती है या नीचे गिरा देती है अथवा जिस प्रकार राख के नीचे दबी हुई अग्नि हवा का झकोरा लगते ही अपना कार्य करने लगती है, किंवा जिस प्रकार जल के तल मे बैठा हुआ मल थोडा-सा हिलते ही ऊपर उठकर जल को गदला कर देता है, उसी प्रकार पहले दबाया हुआ भी मोह आन्तरिक युद्ध मे थके हुए उन प्रथम श्रेणी वाले आत्माओ को अपने वेग के द्वारा नीचे पटक देता है। एक बार सर्वथा दबाये जाने पर भी मोह, जिस भूमिका से आत्मा को हार दिलाकर नीचे की ओर पटक देता है, वही ग्यारहवा गुणस्थान है । मोह को क्रमश दबाते-दबाते सर्वथा दबाने तक मे उत्तरोत्तर अधिक-अधिक विशुद्धिवाली दो भूमिकाए अवश्य प्राप्त करनी पडती है, जो नोवा तथा दसवा गुणस्थान कहलाता है । ग्यारहवा गुणस्थान अध पतन का स्थान है, क्योकि उसे पाने वाला आत्मा आगे न बढकर एक बार तो अवश्य नीचे गिरता है ।

दूसरी श्रेणी वाले आत्मा मोह को क्रमश निर्मूल करते-करते अन्त मे उसे सर्वथा निर्मूल कर ही डालते है । सर्वथा निर्मूल करने की जो उच्च भूमिका है, वही बारहवा गुणस्थान है । इस गुणस्थान को पाने तक मे, अर्थात् मोह को सर्वथा निर्मूल करने से पहले बीच मे नौवा और दसवा गुणस्थान प्राप्त करना पडता है । इस प्रकार देखा जाए तो चाहे पहली श्रेणी वाले हो, चाहे दूसरी श्रेणी वाले, पर वे सब नौवा-दसवा गुणास्थान प्राप्त करते ही हैं । दोनो श्रेणी वालो मे अन्तर इतना ही होता है कि प्रथम श्रेणी वालो की अपेक्षा दूसरी श्रेणी वालो मे आत्मशुद्धि व आत्म-बल विशिष्ट प्रकार का पाया जाता है जैसे किसी एक दर्जे के विद्यार्थी भी दो प्रकार के होते हैं । एक प्रकार के तो ऐसे होते है, जो सौ कोशिश करने पर भी एक बारगी अपनी परीक्षा मे पास होकर आगे नही बढ सकते । पर दूसरे प्रकार के विद्यार्थी अपनी योग्यता के बल से सब कठिनाइयो को पार कर उस कठिनतम परीक्षा को बेधडक पास कर ही लेते है । उन दोनो दल के इस अन्तर का कारण उनकी आन्तरिक योग्यता की न्यूनाधिकता है । वैसे ही नोवें तथा दसवें गुणस्थान को प्राप्त करने वाले उक्त दोनो श्रेणीगामी आत्माओ की आध्यात्मिक विशुद्धि न्यूनाधिक होती है । जिसके कारण एक श्रेणी वाले तो दसवें गुणस्थान को पाकर अत मे ग्यारहवें गुणास्थान मे मोह से हार खाकर नीचे गिरते हैं और अन्य श्रेणी वाले दसवें गुणस्थान को पकाकर इतना अधिक प्रकट करते है कि अन्त मे वे मोह को सर्वथा क्षीण कर बारहवें गुणस्थान को प्राप्त कर ही लेते हैं ।

जैसे ग्यारहवां गुणस्थान अवश्य पुनरावृत्तिका है, वैसे ही वारहवा गुणस्थान अपुनरावृत्तिका है। अर्थात् ग्यारहवें गुणस्थान को पाने वाला आत्म एक वार उससे अवश्य गिरता है और वारहवें गुणस्थान को पाने वाला उससे कदापि नही गिरता, बल्कि ऊपर को ही चढता है। किसी एक परीक्षा मे नही पास होने वाले विद्यार्थी जिस प्रकार परिश्रम व एकाग्रता से योग्यता बढाकर फिर उस परीक्षा को पास कर लेते है, उसी प्रकार एक वार मोह से हार खाने वाला आत्मा भी अप्रमत्त भाव व आत्मवल की अधिकता से फिर मोह को अवश्य क्षीण कर देते हैं। उक्त दोनो श्रेणी वाले आत्माओ की तर-तमभावपन्न आध्यात्मिक विशुद्धि याने परमात्मा भाव रूप सर्वोच्च भूमिका पर चढने की दो सीढिया हैं। जिनमे से एक को जैनशास्त्र मे उपशम श्रेणी और दूसरी को क्षपक श्रेणी कहा है। पहली कुछ दूर चढाकर गिराने वाली और दूसरी चढाने वाली ही है। पहली श्रेणी से गिरने वाला आध्यात्मिक अध पतन के द्वारा चाहे प्रथम गुणस्थान तक क्यो न चला जाए, पर उसकी वह अध.पतित स्थिति कायम नही रहती। कभी न कभी फिर वह दुगने वल से और दुगनी सावधानी से तैयार होकर मोह शत्रु का सामना करता है और अन्त मे दूसरी श्रेणी की योग्यता प्राप्त कर मोह का सर्वथा क्षय कर डालता है। व्यवहार मे अर्थात् आधिभौतिक क्षेत्र मे भी यह देखा जाता है कि जो एक वार हार खाता है, वह पूरी तैयारी करके हराने वाले शत्रु को फिर से हरा सकता है।

परमात्मा का स्वराज्य :

परमात्मा का स्वराज्य प्राप्त करने मे मुख्य वाधक मोह ही है। जिसको नष्ट करना अन्तरात्म भाव के विशिष्ट विकास पर निर्भर है। मोह का सर्वथा नाश हुआ कि अन्य आवरण जो जैन शास्त्र मे घातिक कर्म कहलाते है, वे प्रधान सेनापति के मारे जाने के वाद अनुगामी सैनिको की तरह एक साथ तितर-वितर हो जाते है। फिर क्या देरी है, विकासगामी आत्मा तुरन्त परमात्मा भाव का पूर्ण आध्यात्मिक स्वराज्य पाकर अर्थात् सच्चिदानन्द स्वरूप को पूर्णतया व्यक्त करके निरतिशय ज्ञान, चारित्र का लाभ करता है तथा अनिर्वचनीय स्वाभाविक सुख का अनुभव करता है। जैसे, पूर्णिमा की रात मे निरभ्र चन्द्र की सम्पूर्ण कलाए प्रकाशमान होती हैं, वैसे ही उस समय आत्मा की चेतना आदि सभी मुख्य शक्तियाँ पूर्ण विकसित हो जाती हैं। इस भूमिका को जैन शास्त्र मे तेरहवा गुण-स्थान कहते हैं।

इस गुणस्थान मे चिरकाल तक रहने के वाद आत्मा दग्ध रज्जु के समान शेष आवरणो को अर्थात् अप्रधानभूत अघातिकर्मों को उडाकर फेंक देने के लिए सूक्ष्म क्रिया प्रतिपत्ति शुक्लध्यान रूप पवन का आश्रय लेकर मानसिक, वाचिक और कायिक व्यापारो को सर्वथा रोक देता है। यही आध्यात्मिक विकास की पराकाष्ठा किंवा चौदहवा गुणस्थान है। इसमे आत्मा समुच्छिन्न क्रिया प्रतिपत्ति शुक्लध्यान द्वारा सुमेरू की तरह निष्प्रकम्प स्थिति को प्राप्त करके अन्त मे शरीर त्याग पूर्वक व्यवहार और परमार्थ दृष्टि से लोकोत्तर स्थान को प्राप्त करता है। यही निर्गुण ब्रह्मस्थिति है, यही सर्वांगीण पूर्णता है, यही पूर्ण कृतकृत्यता है, यही परम पुरुषार्थ की अन्तिम सिद्धी है और यही अपुनरावृत्ति स्थान है।

अपक्रान्ति/उत्क्रान्ति :

यह कथा हुई पहले से चौदहवें गुणस्थान तक के बारह गुणस्थानों की। इनमे दूसरा और

तीसरे गुणस्थान की कथा, जो छूट गई है, वह यो है—सम्यक्त्व किंवा तत्वज्ञान वाली ऊपर की चतुर्थी आदि भूमिकाओ के राजमार्ग से च्युत होकर जब कोई आत्मा तत्वज्ञान शून्य किंवा मिथ्यादृष्टि वाली प्रथम भूमिका के उन्मार्ग की ओर झुकता है, तब बीच मे उस अध.पतनोन्मुख आत्मा की जो कुछ अवस्था होती है, वही दूसरा गुणस्थान है। यद्यपि इस गुणस्थान मे प्रथम गुणस्थान की अपेक्षा आत्मशुद्धि अवश्य कुछ अधिक होती है, इसलिए इसका नम्बर पहले के बाद रखा गया है, फिर भी यह बात ध्यान मे रखनी चाहिये कि इस गुणस्थान को उत्क्रान्ति स्थान नही कह सकते। क्योकि प्रथम गुणस्थान को छोडकर उत्क्रान्ति करने वाला आत्मा इस दूसरे स्थान को सीधे तौर से प्राप्त नही कर सकता, किन्तु ऊपर के गुणस्थान से गिरने वाला आत्मा ही इसका अधिकारी बनता है। अध पतन मोह के उद्रेक से होता है अतएव इस गुणस्थान के समय मोह की तीव्र काषायिक शक्ति का आविर्भाव पाया जाता है। खीर आदि मिष्ट भोजन करने के बाद जब वमन हो जाता है, तब मुख मे एक प्रकार का विलक्षण स्वाद अर्थात् न अति मधुर न अति अम्ल जैसा प्रतीत होता है। इसी प्रकार दूसरे गुणस्थान के समय आध्यात्मिक स्थिति विलक्षण पाई जाती है। क्योकि उस समय आत्मा न तो तत्वज्ञान की निश्चित भूमिका पर है और न तत्वज्ञान शून्य की निश्चित भूमिका पर, अथवा जैसे कोई व्यक्ति चढने की सीढियो से खिसक कर जब तक जमीन पर आकर नही ठहर जाता, तब तक बीच मे एक विलक्षण अवस्था का अनुभव करता है, वैसे ही सम्यक्त्व से गिरकर मिथ्यात्व को पाने तक मे अर्थात् बीच मे आत्मा एक विलक्षण आध्यात्मिक अवस्था का अनुभव करता है। यह बात हमारे इस व्यावहारिक अनुभव से भी प्रसिद्ध है कि जब किसी निश्चित उन्नत अवस्था से गिरकर कोई निश्चित अवनत अवस्था प्राप्त की जाती है, तब बीच मे एक विलक्षण परिस्थिति खडी हो जाती है।

तीसरा गुणस्थान आत्मा की उस मिश्रित अवस्था का नाम है, जिसमे न तो केवल सम्यक् दृष्टि होती है और न केवल मिथ्यादृष्टि, किन्तु आत्मा उसमे दोलायमान आध्यात्मिक स्थिति वाला बन जाता है। अतएव उसकी बुद्धि स्वाधीन न होने के कारण सन्देहशील होती है अर्थात् उसके सामने जो कुछ आया, वह सब सच। न तो वह तत्व को एकान्त अतत्वरूप से ही जानता है और न तत्व अतत्व का वास्तविक पूर्ण विवेक ही कर सकता है।

कोई उत्क्रान्ति करने वाला महात्मा प्रथम गुणस्थान से निकलकर सीधे ही तीसरे गुणस्थान को प्राप्त कर सकता है और कोई अवक्रान्ति करने वाला आत्मा भी चतुर्थ आदि गुणस्थान से गिरकर तीसरे गुणस्थान को प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार उत्क्रान्ति करने वाले और अवक्रान्ति करने वाले दोनो प्रकार के आत्माओ का आश्रय स्थान तीसरा गुणस्थान है। यही तीसरे गुणस्थान की दूसरे गुणस्थान से विशेषता है।

१५ अनेकान्त

०

उपाध्याय विद्यानंद मुनि

जीव और अजीव अनन्तानन्त

इस जगत् मे अनन्तानन्त चेतन पदार्थ (जीव) हैं और अनन्तानन्त जड (अजीव) पदार्थ हैं, उनमे से प्रत्येक पदार्थ अनन्त गुणो (शक्तियो) तथा अनन्त विशेषताओ का पुज है। सूक्ष्म परमाणु (एटम) मे भी अनन्त शक्तियाँ निहित हैं। परमाणु की शक्ति से विशाल नगरो का विध्वस क्षण-भर में किया जा सकता है और विशाल परिमाण मे विद्युत् उत्पन्न करने वाले बिजलीघर का सचालन किया जा सकता है, भीमकाय जल-यान (पानी के जहाज, पनडुब्बी, नाव आदि) परमाणु की शक्ति से चलाये जा सकते हैं। एक परमाणु मे जब इस प्रकार की विध्वस, निर्माण, सचालन, प्रेरणा-रूप असीम शक्तियाँ तथा विशेषताएँ सिद्ध होती हैं, तब अन्य विशाल जड-चेतन पदार्थों के गुणो और विशेषताओ का भी इससे अनुमान लगाया जा सकता है।

अग्नि लकडी को जलाकर भस्म करती है, सोने को गलाकर शुद्ध करती है, रोटी को पकाती है, दाल को गलाती है, जल को भाप बनाती है, अशुद्ध धातु-पात्रो को शुद्ध करती है, शीत को दूर करती है, प्रकाश प्रदान करती है, इत्यादि अनन्त प्रकार की विशेषताएँ अग्नि मे विद्यमान हैं।

ऐसी ही अनन्त शक्तियाँ, गुण या विशेषताएँ जल, वायु तथा पार्थिव पदार्थों मे विद्यमान हैं। ये भौतिक (पार्थिव, जलीय, आग्नेय, वायव्य) पदार्थ उन परमाणुओ के सम्बद्ध समुदाय से बना करते हैं, जिनकी शक्ति परमाणु-बम, परमाणु-बिजलीघर आदि के रूप मे पहले बतलाई जा चुकी है।

अमूर्तिक जड़ पदार्थ

पौद्गलिक (मटीरियल) जड पदार्थों के सिवाय अमूर्तिक (नॉनमटीरियल) जड पदार्थ और भी है, जिनको धर्म (ईथर) (क्रियाशील अनन्त पदार्थो की हलनचलन रूप क्रिया में सहायक), अधर्म (स्थितिशील अनन्त पदार्थो की स्थिति मे सहायक), आकाश (समस्त पदार्थो के लिए स्थान-दाता), काल (समस्त अनन्त पदार्थों के प्रतिक्षणवर्ती परिणमन में सहायक) नाम से कहा जाता है। उन अमूर्तिक जड पदार्थों मे से प्रत्येक मे भी परमाणु या भौतिक पदार्थों के समान अनन्त शक्तियाँ

विद्यमान है, जिससे कि इस जगत् का ढाँचा सूक्ष्म रूप से विविध परिणमन कर रहा है। स्थूल दृष्टि से विचार-शक्ति भले ही सहसा उसे न जान सके, किन्तु सूक्ष्म विचार से तो उनको जाना ही जाता है।

चेतन पदार्थ की अनन्तानन्तता

जड पदार्थों के समान चेतन पदार्थ (जीव) भी सख्या मे अनन्तानन्त है और प्रत्येक चेतन पदार्थ भी, वह चाहे छोटा प्रतीत हो या वडा, अनन्त शक्तियो का पु ज है। ज्ञान-दर्शन, सुख, वल, श्रद्धा, समता, क्षमता, मृदुता आदि अनन्त प्रकार के गुण या शक्तियाँ तथा विशेषताएँ प्रत्येक जीव मे विद्यमान है। अर्थात् जगत् का कोई भी पदार्थ क्यो न हो वह अनन्त गुणात्मक है। उन अनन्त गुणो का परिणमन भिन्न-भिन्न निमित्तो से विभिन्न प्रकार का हुआ करता है। उन विभिन्न विशेषताओ को जव विभिन्न दृष्टिकोणो (अपेक्षाओ) से जाना जाता है तब प्रत्येक पदार्थ अनेक रूप मे प्रतीत होता है।

जल किसी प्यासे मनुष्य की प्यास बुझाकर उसे जीवन देता है और किसी प्यासे (हैजे के रोगी) को प्यास बुझाकर मार देता है, स्नान के रूप मे स्वस्थ मनुष्य को जल स्फूर्ति और आनन्द प्रदान करता है, दाह ज्वर वाले मनुष्य को वही जल-स्नान सन्निपात लाकर मृत्यु के निकट पहुँचा देता है। इस तरह जल जीवन-दाता अमृत-रूप भी है और मारक विष-रूप भी है।

दूध शरीर के लिए सर्वोत्तम पोपक पदार्थ है, तत्काल के उत्पन्न बालक, शिशु का जीवन तो दूध पर ही निर्भर है। किशोर, यौवन, प्रौढ, वृद्ध अवस्थाओ मे भी दूध शरीर का अच्छा पोषण करता है, इसी कारण दूध को अमृत भी कहा जाता है, परन्तु यही दूध यदि अतिसार (दस्त) के रोगी को दिया जाए तो उसके लिए विप जैसा हानिकारक सिद्ध होगा।

ऐसे ही विभिन्न दृष्टिकोणो से विभिन्न प्रकार की प्रतीत होने वाली अनेक प्रकार की विशेषताएँ प्रत्येक पदार्थ मे एक साथ होती है, जैसे—राम राजा दशरथ के पुत्र थे, किन्तु लवणाकुश (लव-कुश) के पिता थे, लक्ष्मण के भाई थे, सीता के पति थे, जनक के जामाता (दामाद) थे, भामण्डल के वहनोई थे। इस तरह एक ही राम पुत्र, पिता, भाई, पति, दामाद, बहनोई आदि अनेक रूप थे। इसी प्रकार प्राय अन्य प्रत्येक मनुष्य भी पिता, पुत्र, बाबा, पोता, पति, पुत्र, श्वसुर, जमाई, साला, वहनोई आदि अनेक सम्बन्धो का समुदाय होता है।

अनेकान्तवाद

इन अनेक प्रकार की विशेपताओ के कारण ही प्रत्येक पदार्थ अनेकान्त (अनेके अन्ता॰ धर्माः यस्मिन् स अनेकान्त) रूप मे पाया जाता है, जो (धर्म) विशेपताएँ परस्पर-विरुद्ध प्रतीत होती है (जैसे जो पुत्र है, वह पिता कैसे हो सकता है, जो साला है, वह बहनोई कैसे हो सकता है, जो पति है, वह पुत्र कैसे हो सकता है इत्यादि) वे ही विशेपताएँ एक ही पदार्थ मे ठीक सही तौर पर पायी जाती है। पदार्थ की इस अनेक—रूपता (धर्मात्मकता) को प्रतिपादन करने वाला सिद्धान्त अनेकान्तवाद कहलाता है।

यदि हम हाथी का चित्र पीछे की ओर से लें, तो उसमे पिछले पैर और पूछ ही दिखाई देंगे, और यदि सामने से फोटो खीचे तो उसकी सूड, दाँत, आँख, कान, मुख, अगले पैर चित्र मे आवेंगे, और यदि इसे ही दाँयी ओर से खीचा गया तो वह अन्य ढग का होगा। इसी तरह बायी ओर कैमरा रखकर फोटो खीचने से हाथी का चित्र पहिले तीन चित्रो मे विलक्षण होगा। इस तरह एक ही हाथी के ये चित्र भिन्न-भिन्न दिशा और कोणो से भिन्न-भिन्न प्रकार के होगे। यद्यपि ये सभी एक दूसरे से विलक्षण है, तथापि हैं सब वास्तविक और एक ही हाथी के।

इस तरह किसी पदार्थ के स्वरूप की छानबीन की जाए तो वह अनेक धर्मात्मक (अनेक रूप का) सिद्ध होता है, एक धर्म रूप ही प्रमाणित नही होता, इसलिए जगत् के समस्त पदार्थ अनेकान्त रूप हैं, एकान्त (एक ही रूप) रूप कोई भी पदार्थ सिद्ध नही होता। इस प्रकार सूक्ष्म तथा स्थूल विचार से अनेकान्तवाद, यानी अनेकान्त का सिद्धान्त यथार्थ, अकाट्य और तर्कसगत सिद्ध होता है।

जब हम कहते हैं कि 'आत्मा नित्य है', तब हमारा दृष्टिकोण मौलिक आत्म-द्रव्य पर होता है, क्योकि आत्मा अभौतिक द्रव्य है, अत वह न तो अस्त्र-शस्त्रो से छिन्न-भिन्न हो सकता है, न अग्नि मे जल सकता है, न जल से गल सकता है और न वायु मे सूख सकता है। वह अनादि काल से अनन्त काल तक बना रहता है। परन्तु जब हम सासारिक आवागमन को मुख्य करके आत्मा की पर्याय (भव-दशा) का विचार करते हैं तो आत्मा अनित्य सिद्ध होता है, क्योकि आत्मा कभी मनुष्य-भव मे होता है, कभी मरकर पशु-पक्षी आदि हो जाता है। इस तरह एक ही आत्मा मे नित्यता भी है और अनित्यता भी। 'पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय' मे इसका एक सुन्दर उदाहरण दिया गया है—

'एकेनाकर्षन्ती, श्लथयन्ती वस्तुतत्त्वमितरेण।
अन्तेन जयति जैनी, नीतिर्मन्थान नेत्रमिव गोपी' ॥२२५॥

अर्थात् जिस तरह दही को मथकर मक्खन निकालने वाली ग्वालिन मथानी की रस्सी को एक हाथ से खीचती है और दूसरे हाथ की रस्सी को ढीला कर देती है, इसी तरह जैन-पदार्थ-निर्णय-पद्धति (अनेकान्तवाद) पदार्थ के किसी एक धर्म को मुख्य करती है, तो दूसरे को गौण (अमुख्य) कर देती है, उसे सर्वथा छोड नही देती।

इस प्रकार अनन्त धर्मात्मक पदार्थों के किसी धर्म को मुख्य और अन्य धर्म को गौण करके विचार करने से तत्त्व का ठीक-ठीक निर्णय होता है।

सप्तभगी .

समस्त चेतन-अचेतन पदार्थ स्व-द्रव्य, स्व-क्षेत्र, स्व-काल और स्व-भाव की अपेक्षा से सत्स्वरूप हैं और पर-द्रव्य, पर-क्षेत्र, पर-काल और पर-भाव की अपेक्षया असत् स्वरूप हैं। यदि ऐसा अपेक्षया स्वीकार न किया जाए तो किसी इष्ट तत्त्व की व्यवस्था नही बन सकती—

'स्यादस्ति स्वचतुष्टयादिरत स्यान्नास्त्यपेक्षाक्रमात्,
तत्स्यादस्ति च नास्ति चेति युगपत् सा स्यादवक्तव्यता।

तद्वत् स्यात् पृथगस्ति नास्ति युगपत् स्यादस्तिनास्त्याहिते
वक्तव्ये गुणमुख्य भावनियत· स्यात् सप्तभगी विधि· ॥

—श्रीपुर पार्श्वनाथ स्तोत्रम् ॥१०॥

अर्थात् स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादस्तिनास्ति, स्यादवक्तव्य, स्यादस्त्यवक्तव्य, स्यान्नास्त्यवक्तव्य, स्यादस्तिनास्त्यवक्तव्य—ये सात भग है। वक्तव्य मे गौण और मुख्य भाव नियत करने वाली यह 'सप्तभग' विधि है।

भग शब्द के भाग, लहर, प्रकार, विघ्न आदि अनेक अर्थ होते हैं, उनमे से यह 'भग' शब्द प्रकारवाची लिया है, तदनुसार वचन के भग सात प्रकार के हो सकते हैं, उससे अधिक नही क्योकि आठवीं तरह का कोई वचन-भग नही होता और सात से कम मानने से कोई-न-कोई वचन-भग छूट जाता है।

इसका कारण यह है कि किसी भी पदार्थ के विषय में जो भी बात कही जाती है, वह मौलिक रूप से तीन प्रकार की होती है या हो सकती है—१ 'है' (अस्ति) के रूप मे, २ 'नही' (नास्ति) के रूप मे, ३ न कह सकने योग्य (अवक्तव्य) के रूप मे।

इन तीन मूल अगो को परस्पर मिलाकर तीन युगल (द्वि-सयोगी) रूप होते हैं—१ 'है' और 'नही' (अस्ति-नास्ति) रूप, २ 'है' और 'न कह सकने योग्य' (अस्ति-नास्ति-अवक्तव्य)।

इस तरह वचन-भग सात तरह के है। इन सातो भगो,के समुदाय को (सप्ताना भङ्गाना समुदाय सप्तभगी) 'सप्तभगी' कहते हैं।

(१) प्रत्येक वस्तु अपने (विवक्षित-कहने के लिए इष्ट) दृष्टिकोण (द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव) की अपेक्षा 'अस्ति' (मौजूद) रूप होती है, जैसे—राम अपने पिता दशरथ की अपेक्षा 'पुत्र' है।

(२) प्रत्येक वस्तु अन्य वस्तुओ की या अन्य (अविवक्षित) दृष्टिकोणो की अपेक्षा अभाव (नास्तित्व) रूप होती हैं, जैसे—राम राजा जनक (की अपेक्षा) के पुत्र नही हैं।

(३) दोनो दृष्टिकोणो को क्रमश कहने पर वस्तु अस्तित्व तथा अभाव (अस्ति-नास्ति) होती है, जैसे—राम दशरथ के पुत्र है जनक के पुत्र नही हैं।

(४) परस्पर-विरोधी ('है' तथा 'नही' रूप) दोनो दृष्टिकोणो से एक साथ (युगपद्) वस्तु 'वचन द्वारा कही नही जा सकती' क्योंकि वैसा वाचक (कहने वाला) कोई शब्द नही हैं। अत उस अपेक्षा मे वस्तु अवक्तव्य (न कह सकने योग्य) होती है, जैसे—राम राजा दशरथ तथा राजा जनक की युगपद (एक साथ एक शब्द द्वारा) अपेक्षा कुछ नहीं कहे जा सकते।

(५) वस्तु 'न कह सकने योग्य' (युगपद् कहने की अपेक्षा अवक्तव्य) होने हुए भी अपने

दृष्टिकोण से होती तो है (स्यात् अस्ति अवक्तव्य) जैसे—राम यद्यपि दशरथ तथा जनक की अपेक्षा एक ही शब्द द्वारा अवक्तव्य (न कहे जा सकने योग्य) है फिर भी राजा दशरथ की अपेक्षा पुत्र है (स्यात् अस्ति अवक्तव्य)।

(६) वस्तु अवक्तव्य (युगपद् कहने की अपेक्षा) होते हुए भी अन्य दृष्टिकोण से नही रूप (स्यात् नास्ति-अवक्तव्य) है, जैसे—राम दशरथ तथा जनक की युगपद् अपेक्षा पुत्र नही है, (स्यात् नास्ति अवक्तव्य)।

(७) परस्पर विरोधी (है और नही रूप) दृष्टिकोणो से युगपद् (एक साथ एक ही शब्द द्वारा) अवक्तव्य (न कह सकने योग्य) होते हुए भी वस्तु क्रमश उन परस्पर-विरोधी दृष्टिकोणो मे है, नही (अस्ति नास्ति अवक्तव्य) रूप होती है, जैसे—राम राजा दशरथ तथा राजा जनक की अपेक्षा युगपद् रूप से कुछ भी नही कहे जा सकते (अवक्तव्य हैं) किन्तु युगपद् अपेक्षया अवक्तव्य होकर भी क्रमश राम राजा दशरथ के पुत्र हैं, राजा जनक के पुत्र नही है।

इस प्रकार सप्तभगी प्रत्येक पदार्थ के विषय मे लागू होती है। सप्तभङ्गी के लागू होने के विषय मे मूल बात यह है कि प्रत्येक पदार्थ मे अनुयोगी (अस्तित्व-रूप) और प्रतियोगी (अभावरूप-नास्तित्व रूप) धर्म पाये जाते हैं तथा अनुयोगी-प्रतियोगी धर्मो को युगपद् (एक साथ) किसी भी शब्द द्वारा न कह सकने योग्य रूप अवक्तव्य धर्म भी प्रत्येक पदार्थ मे विद्यमान है। अनुयोगी, प्रति योगी और अवक्तव्य इन तीनो धर्मो के एक सयोगी (अकेले-अकेले) तीन भग होते है तथा तीनो का मिलकर त्रि-सयोगी भग एक होता है। इस तरह सब मिलाकर सात भग हो जाते हैं।

आचार्य कहते है—'अक्षरेण मिमते सप्त वाणी' —सप्तविध वाक् अक्षरो द्वारा व्यक्त है। यहाँ प्रथमा, द्वितीयादि सप्त विभक्तियाँ ही ज्ञातव्य नही है, अपितु वाक् की सप्तभगिमाएँ भी व्याख्यात हुई हैं। 'सप्त व्याहृति' वाणी को सप्तविध—सख्यान ही होनी चाहिये। नही तो कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादन, सम्बन्ध, अधिकरण आदि कारक कैसे सिद्ध कर सकोगे, इसलिए सप्त-विध भग ही शब्द-शास्त्र से एव वाणी मे कथन करना सम्भव है।

स्याद्वाद •

'स्याद्वादो विद्यते यत्र, पक्षपातो न विद्यते।
अहिंसाया. प्रधानत्व, जैनधर्म स उच्यते ॥

जानने और कहने मे बहुत भारी अन्तर है, क्योंकि जितना जाना जा सकता है उतना कहा नही जा सकता। इसका कारण यह है कि जितने ज्ञान के अश हैं, उन ज्ञान-अशो के वाचक न तो उतने शब्द ही हैं और न ही उन सब ज्ञान-अशो को कह डालने की शक्ति जीभ मे है।

सामान्य दृष्टान्त है कि हम अगूर, आम, अनार खाकर उनकी मिठास के अन्तर (मिष्ठता) को यथार्थत पृथक्-पृथक् नही कह सकते। किसी भी इष्ट या अनिष्ट पदार्थ के छूने, सूंघने, देखने, सुनने मे जो आनन्द या दु ख होता है, कोई भी मनुष्य उसे इन्द्रिय-जन्य ज्ञान को ठीक उसी रूप से

मुख द्वारा कह नही सकता । परीक्षा मे उत्तीर्ण होने वाले विद्यार्थी को अपना परीक्षाफल जानकर जो हर्ष हुआ, उस हर्ष को हजार यत्न करने पर भी वह ज्यो-का-त्यो कह नही सकता । गठियावात के रोगी को गठियावात की जो पीडा होती है, उसे वह शब्दो मे नही बतला सकता ।

इस तरह एक तो जानने और कहने मे यह एक बडा भारी अन्तर है । दूसरे जितना विषय एक समय मे जाना जाता है यदि उसे मोटे रूप से भी कहना चाहे तो उसके कहने मे जानने की अपेक्षा समय बहुत अधिक लगता है । किसी सुन्दर उद्यान का एक दृश्य देखकर जो उस बगीचे के विषय मे एक ही मिनट मे ज्ञान हुआ, उस सब को कहने मे अनेक मिनट ही नही अपितु अनेक घंटे लग जाएगे, क्योकि जिन सब बातो को नेत्रो ने एक मिनट मे जान लिया है, उनको जीभ (युगपद्) एक साथ कह नही सकती । उन बातो को क्रम से एक-एक करके कहा जा सकेगा ।

इसी कारण प्राचीन ग्रथकारो ने लिखा है कि सर्वज्ञ अपने ज्ञान द्वारा जितना त्रिकालवर्ती तथा त्रिलोकवर्ती पदार्थों को युगपद् (समसामयिक) जानता है, उसका अनन्तवाँ भाग विषय उसकी वाणी मे प्रगट होता है । जितना दिव्य-ध्वनि मे प्रगट होता है उसका अनन्तवाँ भाग चार ज्ञान-धारक गणधर अपने हृदय मे धारण कर पाते हैं । जितना विषय धारण कर पाते हैं तथा उसका अनन्तवाँ भाग शास्त्रो मे लिखा जाता है ।

इस प्रकार जानने और उस जाने हुए विषय को कहने मे महान् अन्तर है । एक साथ जानी हुई बात को ठीक उसी रूप मे एक साथ कह सकना असम्भव है ।

अत जिस पदार्थ के विषय मे कुछ कहा जाता है तो एक समय मे उसकी एक ही बात कही जाती है, उस समय उसकी अन्य बातें कहने से छूट जाती हैं, किन्तु वे अन्य बातें उसमे होती अवश्य है । जैसे कि जब यह कहा जाए कि 'राम राजा दशरथ के पुत्र थे' ।

उस समय राम के साथ लगे हुए सीता, लक्ष्मण, लव-कुश आदि अन्य व्यक्तियो के पति, भ्राता, पिता आदि के सम्बन्ध कहने से छूट जाते हैं, जो कि यथार्थ हैं । यदि उन छूटे हुए सम्बन्धो का अपलाप कर लिया जाए (सर्वथा छोड दिया जाए) तो राम-सम्बन्धी परिचय अधूरा रह जाएगा और इसी कारण वह कहना गलत प्रमाणित होगा । इस गलती या अधूरेपन को हटाने के लिए जैन-धर्म-सिद्धान्त ने प्रत्येक वाक्य के साथ 'स्यात्' शब्द लगाने का निर्णय दिया है ।

'स्यात्' शब्द का अर्थ 'कथचित्' यानी 'किसी—दृष्टिकोण से' या 'किसी अपेक्षा से' है । अर्थात् जो बात कही जा रही है, वह किसी एक अपेक्षा से (किसी एक दृष्टिकोण से) कही जा रही है, जिसका अभिप्राय यह प्रगट होता है कि यह विषय अन्य दृष्टिकोणो से या अन्य अपेक्षाओ से अन्य अनेक प्रकार भी कहा जा सकता है ।

तदनुसार राम के विषय मे यो कहेंगे—स्यात् (राजा दशरथ की अपेक्षा) राम पुत्र हैं । 'स्यात्' (सीता की अपेक्षा) राम 'पति' हैं । स्यात् (लक्ष्मण की अपेक्षा) राम 'भ्राता-भाई' हैं । स्यात् (लवकुश की अपेक्षा) राम 'पिता' हैं । स्यात् (राजा जनक की अपेक्षा) राम 'जामाता' (दामाद) हैं ।

इस तरह 'स्यात्' शब्द लगाने से उस बडी भारी त्रुटि उपर्युक्त पांच बातो मे से एक ही बात कहने पर होती है, का सम्यक् परिहार हो जाता है। यानी–राम 'पुत्र' तो हैं, किन्तु वे सर्वथा (हर तरह से) पुत्र ही नही है, वे पति, भाई, पिता, दामाद आदि भी तो है। हां, वे राजा दशरथ की अपेक्षा से पुत्र ही है। इस 'अपेक्षा' शब्द मे उनके अन्य दूसरे पति, भाई, पिता, दामाद आदि सम्बन्ध सुरक्षित रहे जाते है।

इस प्रकार 'स्यात्' निपात के प्रयोग से समाज के सभी सैद्धान्तिक विवाद शान्त हो जाते हैं और पूर्ण सत्य का ज्ञान हो जाता है।

जगत् के विभिन्न मत-मतान्तर अपने-अपने एक-एक दृष्टिकोण ही को सत्य मानकर दूसरो के दृष्टिकोण से प्रकट की गई मान्यता असत्य बतलाकर परस्पर विवाद करते है। उनका विवाद 'स्यात्' पद लगाकर दूर किया जा सकता है।

अनेकान्तवाद और सप्तभगी स्याद्वाद के रूपान्तर हैं। स्याद्वाद एक वास्तविक अकाट्य सिद्धान्त है, किन्तु यह दार्शनिक तर्क-विषय है, अत कुछ कठिन है। अनेक व्यक्ति इसका स्वरूप ठीक न समझ सकने के कारण इसे गलत ठहराने का यत्न करते है। ऐसी त्रुटि साधारण व्यक्ति ही नही, बडे-बडे विद्वान् भी कर जाते है।

१६ जैन संस् ृति ा वि

●
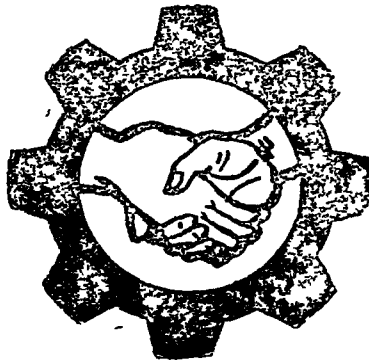
डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन

१ कालचक्र और प्रागैतिहासिक

धर्म और सस्कृति ·

इतिहास अतीत की कहानी है और उसका एक उद्देश्य उन पुराण पुरुषो के पुण्यचरित्र की स्मृति का सरक्षण है, जिन्होने मानव समाज के उन्नयन मे उल्लेखनीय योग दिया है। राजनैतिक, आर्थिक आदि लौकिक क्षेत्रो मे नेतृत्व करने वाले व्यक्तियों का इतिवृत्त लौकिक इतिहास मे दिया जाता ह, तो सास्कृतिक इतिहास मे धार्मिक सस्कृति के विकास मे पथचिह्न बनने वाले और लोक को कल्याणकारी सुपथ दिखाने वाले महापुरुषो का चरित्र चित्रण होता है।

सस्कृति प्राय सदैव से सर्वत्र धर्माश्रित रहती आई है और प्रत्येक सस्कृति की पृष्ठभूमि मे तत्तद धर्म की कतिपय मौलिक मान्यतायें नीव के रूप मे रहती हैं। अस्तु, जब हम प्रदेश विशेष राजस्थान के परिप्रेक्ष्य मे जैन सस्कृति का अध्ययन करने के लिए उक्त सस्कृति के उद्गम एव विकास का अनुसधान करते हैं तो वह तत्सम्बन्धी जैन परम्पराओ एव मान्यताओ के आश्रय से ही करते है, जो स्वाभाविक भी है, उचित और युक्तियुक्त भी।[१]

विश्व अनादि-अनन्त .

जैनधम एव सस्कृति की यह असदिग्ध मौलिक मान्यता है कि चराचर जगत् या विश्व अनादि और अनन्त है। जो विभिन्न एव विविध द्रव्य विश्व के उपादान है, जिनसे कि वह निर्मित है, वह सब भी अनादि और अनन्त है। असत् से सत् की उत्पत्ति नही होती, और सत् का कभी विनाश नही होता। अतएव, इस विश्व की न कभी किसी ने सृष्टि की, और न कभी किसी के द्वारा उसका अन्त ही होगा किन्तु साथ ही, इस शाश्वत जगत् मे उसके उपादान द्रव्यो में निरन्तर परिवर्तन, परिणमन, पर्याय से पर्यायान्तर होते रहते हैं। वर्तमान पर्याय का नाश होता है और नवीन का उत्पाद और उसका निमित्त है कालचक्र।

१—शूब्रिंग, द डाक्ट्रिन ऑव जैनाज, पृ० १८

कालचक्र :

काल का प्रवाह भी अनादि-अनन्त है। काल का सवसे छोटा अविभाज्य अश 'समय' कहलाता है, और सबसे वडी व्यवहार्य इकाई 'कल्पकाल'। एक कल्पकाल का परिमाण वीस कोटाकोटि 'सागर' होता है जो स्थूलत सख्यातीत वर्षो का होता है। प्रत्येक कल्पकाल के दो विभाग होते हैं—एक अवसर्पिणी और दूसरा उत्सर्पिणी, जो एक के अनन्तर एक आते रहते है। अवसर्पिणी उत्तरोत्तर ह्रास एव अवनति का युग होता है। और उत्सर्पिणी उत्तरोत्तर विकास एव उन्नति का। इन दोनो मे से प्रत्येक छ भागो मे विभक्त होता है, और अवसर्पिणी के प्रारभ से उक्त छ युगो या कालो की गणना प्रारम्भ होती है। यथा—प्रथमकाल (सुखमा-सुखमा), द्वितीयकाल (सुखमा), तृतीय काल (सुखमा-दुखमा), चतुर्थकाल (दुखमा-सुखमा), पचमकाल (दुखमा), और षष्ठकाल (दुखमा-दुखमा)।

इनमे से प्रथम काल मे मनुष्यो एव अन्य प्राणियो के शरीर का वल, आकार, आयु आदि सर्वाधिक होते हैं और सर्वप्रकार का शारीरिक एव मानसिक सुख अत्यन्त होता है। दूसरे काल मे इन सव चीजो मे कमी होती जाती है, तीसरे मे और अधिक कमी होती है तथा साथ मे दु ख का भी समावेश होने लगता है, तथापि ये तीनो काल सुख एव भोग प्रधान होने हैं और जीवन पूर्णतया प्रकृत्याश्रित होता है, अतएव सामूहिक रूप से प्रथम तीनो काल भोगयुग या भोगभूमि काल कहलाते है। चौथे काल से कर्मभूमि या कर्मयोग का उदय होता हे। शरीर के आकार, वल, आयु, सुख और भोग मे उत्तरोत्तर ह्रास होता जाता है, तथा दु ख की प्रधानता होने लगती है। मात्र प्रकृति पर निर्भर रहने से काम नही चलता। स्वपुरुषार्थ एव कृत्रिम उपायो का सहारा अनिवार्यत आवश्यक हो जाता है। अतएव इस चौथे काल मे ही तीर्थंकरो के रूप मे महान् जननेताओ का आविर्भाव होता है, जो अपने-अपने समय मे मनुष्यो को सुकर्म और धर्म की शिक्षा देते है। पाँचवे काल मे जीवन सघर्ष मे और अधिक वृद्धि हो जाती है तथा सुख नाम मात्र का ही रह जाता है। छठे काल मे आत्यन्तिक दु ख की प्रधानता रहती है और इस काल के अन्त तक सर्वव्यापी पतन अपनी चरमावस्था को पहुँच जाता है तथा ह्रास चक्र की चरम सीमा स्पर्श कर्ता हे। उसके उपरान्त, घडी के पेन्डुलम की भाति, कालचक्र पीछे को लौटता है—उसका प्रत्यावर्तन होता है और पुन छठे से प्रारम्भ होकर पाँचवा, चौथा, तीसरा, दूसरा, और पहिला काल क्रमश आते हैं। यह उत्सर्पिणी का युग उत्तरोत्तर विकास एव उन्नति का युग होता है।[1] इसके प्रथम तीन कालो मे कर्मभूमि की व्यवस्था रहती है और अन्तिम तीन मे भोमभूमि की। इस अनादि कालचक्र मे युगारभ एव वर्पारभ श्रावण कृष्ण प्रतिपदा से होता है।

अनन्त आकाश के एक भाग मे पुरुपाकार परिमित लोक है। उसी मे जीव-अजीव आदि विभिन्न द्रव्य पाये जाते हैं, वही चराचर जगत् और हमारा विश्व है। उसके मध्यभाग को मध्यलोक कहते हैं। मध्यलोक के ठीक मध्य मे जम्बूद्वीप है जिसके केन्द्र मे सुमेरु पर्वत स्थित है और चारो ओर लवण समुद्र है। इस जम्बूद्वीप के ही एक भाग मे, उत्तर मे हिमवन पर्वत तथा दक्षिण मे तीन ओर लवणसमुद्र से वेष्ठित भरत क्षेत्र है। इसके मध्य मे विजयार्ध पर्वत है। हिमवन पर्वत से निकल कर, अनेक सहायक नदियो के परिवार से युक्त होकर, एक पूर्व की ओर और दूसरी पश्चिम की ओर वह

१–शूब्रिग, द डाक्ट्रिन ऑव जैनाज, पृ० १८–१९

कर महासमुद्र मे मिलने वाली गगा और सिंधु नाम की दो महानदिया उक्त भरत क्षेत्र को छ खण्डो मे विभाजित करती है। इन खण्डो मे से गगा और सिंधु का मध्यवर्ती प्रदेश आर्य खण्ड कहलाता है। प्राचीन भारत का मध्यदेश यही है। इसी प्रदेश मे तीर्थंकरो एव अन्य महापुरुषो का जन्म हुआ। यही भारतीय धन, विज्ञान, कला और सभ्यता तथा भारतीय सस्कृति की विभिन्न धाराओ का उदय, विकास एव परिपोषण हुआ। वर्तमान राजस्थान भी भरत क्षेत्र के उसी मध्यदेश या आर्यखण्ड का एक अग है।

इस समय कल्पकाल का अवसर्पिणी विभाग चल रहा है। वर्तमान अवसर्पिणी की यह विशेषता है कि इसमे कतिपय अपवाद या सनातन नियम विरुद्ध कुछ अनोखी बातें भी हो जाया करती हैं। अतएव सामान्य अवसर्पिणी से भेद करने के लिये इसे हुडावसर्पिणी कहते हैं। इसके प्रथम चार भाग व्यतीत हो चुके हैं और पाचवा भाग या आरा (आरक) चल रहा है जिसके लगभग अढाई सहस्र वर्ष व्यतीत हो चुके है और साढे अठारह सहस्र वर्ष शेष हैं।

कुलकर

वर्तमान अवसर्पिणी के प्रथम तीनो कालो मे जीवन अत्यन्त सरल, स्वच्छ, स्वतन्त्र एव प्राकृतिक था। मनुष्यो की समस्त आवश्यकताओ की पूर्ति दश प्रकार के तथाकथित कल्पवृक्षो से स्वत हो जाया करती थी। मनुष्य शान्त एव निर्दोष था। कोई सघर्ष या द्वन्द्व नही था, अत कोई मानवकृत व्यवस्था भी नही थी।[1] आधुनिक भूतत्व एव नृतत्व विज्ञान सम्मत आदिम युगीन प्रथम, द्वितीय एव तृतीय युगो की वस्तुस्थिति के साथ उपर्युक्त जैन मान्यता का अद्भुत सादृश्य है।[2] अवसर्पिणी के तीसरे काल के अन्तिम पाद मे जब भोगभूमि का अवसान होने लगा और कालचक्र के प्रभाव से होने वाले अवस्था-परिवर्तनो को देखकर लोग शकित एव भयभीत होने लगे तो उनका समाधान, मार्ग-दर्शन एव नेतृत्व करने के लिये इस देश मे, एक के बाद एक, चौदह कुलकरो या मनुओ का प्रादुर्भाव हुआ। इस युग की वस्तुस्थिति आधुनिक पुराशास्त्रियो को प्रागैतिहासिक पाषाणयुगीन स्थिति से मेल खाती है।[3]

कुलकरो की सख्या तथा उनमे से कुछएक के नाम अथवा क्रम के विषय मे कतिपय मतभेद है।[4] बहुमान्य मत के अनुसार उस काल मे चौदह कुलकर हुये। जीवन की रक्षा एव जीवन-निर्वाह की आवश्यकताओ के लिये बढते हुये सघर्षो के कारण उस युग के मनुष्य की सहज शान्ति जब भग होने लगी तो उसने स्वय को कुलो (जनो, समूहो या कबीलो) मे सगठित करना आरभ कर दिया। इस प्रकार कुलो की व्यवस्था करने वाले और उनका नायकत्व एव नेतृत्व करने वाले कुलमान्य व्यक्ति कुलकर कहलाये। वे आवश्यकतानुसार आदेश-निर्देश भी देते थे, मर्यादायें निर्धारित करते थे और

१–डॉ० हीरालाल जैन, भारतीय सस्कृति मे जैनधर्म का योगदान पृ० ६
२–डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन, भारतीय इतिहास एक दृष्टि, पृ० २०–२१
३–कामता प्रसाद जैन, दी रिलीजन ऑव तीर्थंकराज, पृ० ३७–३८
४–जे० सी० सिकदार, कुलकर सिस्टम, जैनजर्नल VII–३, पृ० १४३,
आ० हस्तेमलजी, जैनधर्म का मौलिक इतिहास, भाग १, पृ० ४–६,
शूब्रिग, वही, पृ० १६–२०।

व्यवस्था देते थे, इसलिये मनु भी कहलाते थे । उन्ही की सन्तति होने के कारण इस देश के निवासी मानव कहलाये ।

सर्वप्रथम मनु या कुलकर प्रतिश्रुति थे । उन्होने लोगो को सूर्य और चन्द्रमा के उदय एव अस्त होने जैसी प्राकृतिक घटनाओ का रहस्य बताया । चन्द्रास्त एव सूर्योदय एक साथ पहली बार जब लक्ष्य मे आये तभी से दिन और रात्रि का व्यवहार और वर्ष का प्रारम्भ माना जाने लगा ।[1] यह श्रावण कृष्ण प्रतिपदा का प्रात.काल था । दूसरे कुलकर सन्मति ने लोगो को नक्षत्रो एव तारिकाओ का ज्ञान दिया । वह सर्वप्रथम ज्योतिर्विद थे । तीसरे कुलकर क्षेयकर ने वन्य पशुओ से निर्भय रहना और उनमे से कुछ को पालतू बनाना सिखाया । चौथे कुलकर क्षेमधर ने सिह आदि हिसक पशुओ से स्वरक्षा के लिये दण्ड (डडे), पाषाण आदि का प्रयोग सिखाया । पाचवें कुलकर, सीमकर के समय तक अधिकतर कल्पवृक्ष नष्ट हो गये थे और जो बचे थे, उनके स्वामित्व को लेकर झगडे होने लगे, अतएव इस कुलकर ने प्रत्येक कुल के अधिकार क्षेत्र की सीमा निर्धारित करके उन्हे सघर्षो से बचाया । *इन पाचो कुलकरो ने भोग युग के अवसान और कर्मयुग के आगमन की पूर्व सूचना देते हुये अपने-*अपने समय के मानव कुलो को बदलती हुई परिस्थितियो के अनुकूल जीवन बिताने की शिक्षा दी । अपराधियो के लिये वे 'हाकार' नीति का प्रयोग करते रहे, अर्थात अपराधी को 'हा' कह देना भर पर्याप्त था, और किसी दण्ड की आवश्यकता नही होती थी ।

छठे कुलकर सीमधर ने बचे खुचे कल्पवृक्षो पर वैयक्तिक अधिकार की सीमायें निश्चित कर दी—वैयक्तिक सम्पत्ति की कल्पना का प्रारभ यही से हुआ समझा जा सकता है । सातवे कुलकर विमलवाहन ने हाथी आदि पशुओ को पालतू बनाकर बाधे रखना और सवारी आदि के लिये उनका उपयोग करना सिखाया । आठवें कुलकर चक्षुष्मान के समय मे भोगभूमिज युगलिया स्त्री-पुरुष अपनी युगलिया सन्तान को जन्म देकर भी जीवित रहने लगे और उन्हे देखने का आनन्द प्राप्त करके मरने लगे । इसके पूर्व वे सन्तान को जन्म देकर तुरन्त मर जाते थे । इस कुलकर ने उन्हे सन्तान सुख प्राप्त करना सिखाया । नौवें कुलकर यशस्वन ने लोगो को अपनी सन्तान से स्नेह करना और उनका नामकरण आदि करना सिखाया । दसवें कुलकर अभिचन्द्र ने बालको का रोना चुप कराने, उन्हें खिलाने, बुलवाने और उनका पालन-पोषण आदि करने की शिक्षा लोगो को दी । छठे से दसवें कुलकर तक 'हा के साथ 'मा' (नही, मत करो) का भी दण्डनीति के रूप मे प्रयोग हुआ ।

ग्यारहवें मनु चन्द्राभ थे । इनके समय मे लोग अति शीत, तुषार एव वायु के प्रकोप से दु खी और भयभीत हुये । कुलकर ने उनका समाधान किया । बालको का लालन पालन, तथा अन्य उपयोगी बातें भी सिखाई । बारहवें कुलकर मरुदेव थे, जिनके समय मे मेघ गर्जन और बिजली की चमक के साथ वर्षा होने लगी, नदी नाले बहने लगे । लोग भयभीत हुए । मरुदेव ने उन्हें समझाया कि भोग-भूमि समाप्त होने वाली है और कर्म भूमि अति निकट है, अत कर्म करना प्रारभ करो । उन्होंने नाव बनाकर लोगो को नदी पार करना तथा पहाडो पर चढना भी सिखाया । तेरहवें कुलकर प्रसेनजित ने सद्यजात बालको की जरायु हटाने की तथा उनका भली प्रकार लालन-पालन करने की शिक्षा दी । चौदहवें कुलकर नाभिराय थे जिन्होने सद्यजात शिशुओ की नाभिनाल काटने की विधि बताई ।

१-सी० आर० जैन, ऋषभदेव, फाउन्डर ऑव जैनिज्म पृ० ५२

सभवतया इन्ही के नाम पर इस देश का प्राचीनतम नाम अननाभ या अननाभ प्रसिद्ध हुआ था। इस समय तक समस्त कल्पवृक्ष नष्ट हो चुके थे, किन्तु साथ ही सहज उत्पन्न विविध औषधिया, धान्य फल-फूलादि उगने लगे थे। नाभिराय ने क्षुधानिवारण के लिये इन स्वत. उत्पन्न शालि, जौ, वल्ल, तुवर, तिल, उडद आदि का भक्षण करना बताया। एक मतानुसार उन्होने अग्नि जलाना, अन्न पकाना और कपडे बुनना भी सिखाया। अन्य मतानुसार ये आविष्कार उनके पुत्र ऋषभदेव ने अपने कुमारकाल मे किये थे।[1] अन्तिम चार कुलकरो के समय मे दण्डनीति मे 'धिक्कार' का भी प्रयोग होने लगा था।

जैन परम्परा मे मान्य भोगभूमि की व्यवस्था तथा कुलकरो से सम्बन्धित वर्णन आधुनिक चिन्तको एव विचारक मनीषियो के उस वर्णन के साथ अद्भुत सादृश्य रखते है जो वे मानवजाति की आदिम शैशावास्था मे मानवीय मभ्यता के उदयकाल तक हुये, उसके विकास-क्रम के सम्बन्ध मे प्रतिपादित करते हैं। कुलो, जनो, कबीलो आदि की मान्यता भी अमरीका के आदिवासियो तथा यूनान एव रोम के आदिवासियो मे उसी प्रकार रही मानी एव जानी जाती है।[2] ये तथ्य जहाँ इस जैन परम्परा को विश्वसनीय सिद्ध करते है, वही जैन धर्म एव सस्कृति की अत्यन्न प्राचीनता के भी सूचक है।

तीसरे काल अर्थात् भोगभूमि और कुलकर युग के साथ वास्तविक प्रागैतिहासिक युग समाप्त हो जाता है और अनुश्रुतिगम्य इतिहास (प्रोटोहिस्टरी) का प्रारम्भ होता है। कर्मभूमि और सम्यता एव सस्कृति के इतिहास का भी वही से ॐ नम होता है, और इस आने वाले युग के प्रमुख नेता चौवीस तीर्थंकर है तथा गौण नेता उनतालिस अन्य महापुरुष हैं जो सब मिलकर त्रिषष्टिशलाका-पुरुष कहलाते हैं।[3]

तीर्थ नाम धर्मशासन का है अतएव जो महापुरुष जन्म-मरण रूपी दु ख के आगार ससार सागर से पार करने के लिये धर्मतीर्थ की स्थापना या प्रवर्तन करते है, वे तीर्थंकर कहलाते हैं। आगे के समय मे ऐसे चौवीस तीर्थंकर हुये। उनके अतिरिक्त बारह चक्रवर्ती, नौ वासुदेव (नारायण), नौ प्रतिवासुदेव (प्रतिनारायण) तथा नौ बलदेव (बलभद्र), इस प्रकार कुल मिलाकर त्रेसठ शलाका पुरुष हुये।

२ ऋषभ से नमि पर्यन्त—इक्कीस तीर्थंकर

ऋषभदेव •

अन्तिम कुलकर नाभिराय की चिरसगिनी मरुदेवी की कुक्षि से प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभ का जन्म चैत्र कृष्णा नवमी (अष्टमी) के दिन हुआ था। इनके जन्मस्थान पर ही अयोध्या (इक्ष्वाकु भूमि) नाम की नगरी बसी, जिसके अपरनाम विनीता और साकेत भी हुये। भगवान का लाछन वृषभ था। तथा ऋषभ शब्द का अर्थ धर्म है, और यह स्वय धर्म के साक्षात्, सर्वप्रथम, सजीव रुप थे, अतएव इनका नाम

१—तिलोयपण्णत्ति, IV गा० ४२१—५०६, पृ० १६७—२०६, आचार्य हस्तीमलजी, वही पृ० ३—५, ६११—६१२, सिकदार, वही, पृ० १४३—१४६, शूब्रिंग, वही पृ० १६—२०

२—सिकदार, वही, पृ० १४२—१४३, १५०, एन्जेल्स कृत दी ओरिजिन ऑव दी फैमिली, पृ० २४—२६, ८३—८४।

३—जिनसेन गुणभद्र कृत महापुराण तथा हेमचन्द्र कृत त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित्।

ऋषभ, ऋषभदेव या ऋषभनाथ (वृषभदेव या वृषभनाथ भी) प्रसिद्ध हुआ। इनके गर्भ मे आते ही देवताओ ने जन्मस्थान मे स्वर्णवृष्टि की थी, इसी से ये हिरण्यगर्भ भी कहलाये। वयस्क होते ही इन्होने कुलो की व्यवस्था अपने हाथ मे ले ली अतएव ये कुलकर और मनु भी कहलाये, साथ ही प्रथम मानव (मनुओ की सन्तान) भी थे। इस कल्पकाल मे मानवी सभ्यता के आद्य जनक होने के कारण आदि पुरुष भी थे। प्रथम लोकनायक होने के कारण आदिनाथ, परमात्मपद को प्राप्त होने वाले प्रथम व्यक्ति होने के कारण आदिदेव, आदीश्वर, आदिब्रह्म तथा महादेव कहलाये। इन्होने जो कुछ किया स्वय किया, किसी अन्य की शिक्षा या उपदेश मे नही किया, अतएव ये स्वयभू थे और प्रजा का विधिवत पालन करने के कारण प्रजापति भी कहलाते थे। इक्षुदण्ड (गन्ने) का रस निकालना और उस रस को भौज्य पदार्थ के रूप मे पान करना इन्होने सर्वप्रथम लोगो को सिखाया। इसलिये वे इक्ष्वाकु एव काश्यप नामो से भी प्रसिद्ध हुये, जो कि उनकी सन्तति के क्रमश वश एव गोत्र नामो के रूप मे प्रचलित हुये इस प्रकार भगवान ऋषभ के अनेक सार्थक नाम लोकप्रसिद्ध हुए।

अनुश्रुति है कि इन आदि पुरुष ने ही सर्वप्रथम जनता को खेती करना, आग जलाना, आग मे अन्न को भूनना, पकाना, मिट्टी के वर्तन बनाना, कपडा बुनना, मकान बनाना, ग्राम-नगर आदि बसाना सिखाया था। इन्होने लोगो को असि-मसि-कृषि-शिल्प, वाणिज्य-विद्या नामक षट कर्मों द्वारा जीविकोपार्जन करने का तथा पुरुषो की बहत्तर और स्त्रियो की चौसठ कलाओ का ज्ञान तत्कालीन जनता की बुद्धि, ग्रहणशीलता एव लोकदशा के अनुरूप दिया था। समाज-व्यवस्था के लिये उन्होने मनुष्यो को उनके कर्म, रुचि एव प्रवृत्ति के अनुसार क्षत्रिय, वैश्य एव शूद्र, इन तीन वर्णो मे विभाजित किया। यह वर्णभेद वर्ण या प्रतिष्ठाभेद सूचक न था, मात्र कर्मभेद सूचक था और अपरिवर्तनीय भी नही था। भगवान ने कच्छ और सुकच्छ की पुत्रियो नन्दा और सुनन्दा (अथवा सुनन्दा और सुमगला अपरनाम यशस्वती) के साथ विवाह करके मानव समाज मे सर्वप्रथम विवाह प्रथा प्रचलित की। इन दोनो पत्नियो से उनके अनेक पुत्र और ब्राह्मी एव सुन्दरी नाम की दो कन्याये उत्पन्न हुई। उन्होने पुत्रियो को भी पुत्रो के समान ही शिक्षा दी—ब्राह्मी को अक्षर ज्ञान की शिक्षा देने के निमित्त से ही प्राचीन ब्राह्मी लिपि का आविष्कार हुआ और सुन्दरी को अक ज्ञान दिया। इस प्रकार भगवान ऋषभ ने प्रजा का सम्यक्रित्या पालन, पथप्रदर्शन एव नेतृत्व चिरकाल तक किया। ज्ञान-विज्ञान एव विविध कलाओ की शिक्षा, सामाजिक सगठन, अर्थव्यवस्था, राज्य प्रशासन आदि के रूप मे मानवीय सभ्यता एव सस्कृति के बीजारोपण का प्रधान श्रेय इन्ही आदि पुरुष को है।

एक दिन उनकी राज्य सभा मे नीलाजना नाम की नर्तकी की नृत्य करते-करते मृत्यु हो गई। इस आकस्मिक दुर्घटना को देखकर[1] भगवान् को ससार-देह-भोगो की अस्थिरता एव क्षण-भगुरता का भान हुआ। उनके चित्त मे विराग उत्पन्न हुआ और उन्होने सर्वस्व का परित्याग कर, वन मे जाकर प्रव्रज्या ले ली तथा सर्व परिग्रह विमुक्त हो निर्ग्रन्थ मुनि के रूप मे इन योगिराज ने दुर्द्धर तपश्चरण द्वारा आत्मसाधन करना प्रारभ किया। अन्य अनेक व्यक्तियो ने उनका अनुकरण किया, किन्तु उनमे से प्राय कोई भी उक्त कठिन मार्ग पर न चल सके और अपने पथ से विचलित हो गये। स्वय योगीश्वर भगवान ने एक स्थान पर ही कायोत्सर्ग योग से खडे रहकर छ मास की

१—यह उल्लेख दिगम्बर मान्यता के अनुसार है—सम्पादक

समाधि लगाई। उस अवधि के बीतने पर पारणा करने के लिये यत्र-तत्र विहार किया। वे मौन रहते थे, और लोग जानते नही थे कि वे क्या चाहते है अथवा उन्हे क्या करना है। इस प्रकार छ मास और व्यतीत हो गये। एक बार वे गजपुर (हस्तिनापुर) पधारे वहा राजा सोमयश के अनुज श्रेयास कुमार ने पूर्वजन्म के सस्कारो से प्रेरित होकर भगवान् को इक्षुरस का आहार दिया। वह वैसाख शुक्ला तृतीया का दिन था जो तभी से अक्षयतृतीया के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस घटना की पुण्यस्मृति मे कुमार श्रेयास ने दानस्थल पर एक रत्नमय स्तूप का निर्माण कराया।

भगवान् वहा से विहार करके पुन तपश्चरण मे लीन हो गये। एक समय जब वे पुरिमताल नगर (वर्तमान प्रयाग-इलाहाबाद) के बाहर एक वटवृक्ष के नीचे ध्यानस्थ बैठे थे, उन्हे केवलज्ञान प्राप्त हो गया। वे सर्वज्ञ, केवलि, जिन, अर्हत परमेष्टि हो गये और स्वपुरुषार्थ से उक्त परमपद को प्राप्त करने के कारण वे स्वयभु थे। वह वटवृक्ष भी अक्षयवट के नाम से लोकप्रसिद्ध हुआ।

अब ये सर्वज्ञ—'वीतराग-हितोपदेशी जिनेन्द्र देश-देश मे विहार करके लोक कल्याणार्थ धर्म प्रचार करने लगे। इस धर्म तीर्थ प्रवर्तन द्वारा उन्होने अपना तीर्थंकर पद चरितार्थ किया। एक अनुश्रुति के अनुसार यह धर्म चक्र प्रवर्तन सर्वप्रथम तक्षशिला नगरी मे हुआ था। भारत महादेश के राष्ट्रीय ध्वज चिह्न 'धर्म चक्र' का इतिहास यही से प्रारभ होता है। भगवान की व्याख्यान सभा मे सभी प्राणियो को बिना किसी भेदभाव के धर्म लाभ लेने का समान अवसर प्राप्त था, इसी कारण वे सभायें 'समवसरण' कहलाती थी।

चिरकाल तक अपने धर्मोपदेश द्वारा लोकहित करने के उपरान्त फाल्गुन कृष्णा त्रयोदशी (मतान्तर से माघ कृष्णा त्रयोदशी) की रात्रि मे कैलाश पर्वत (अब चीन अधिकृत तिब्बत मे स्थित) पर भगवान् ने निर्वाण-लाभ किया और मुक्तिरूपी शिव लक्ष्मी का वरण किया। तभी से शिवरात्रि पर्व प्रसिद्ध हुआ।

ये युगादि पुरुष भ० ऋषभदेव इस कल्पकाल मे धर्म के सर्वप्रथम प्रवर्तक और जैन परम्परा के प्रथम तीर्थंकर थे।[1]

पौराणिक हिन्दू धर्म मे भगवान ऋषभ की गणना विष्णु के प्रारम्भिक प्रमुख अवतारो मे की गई है। भागवत्, विष्णु, ब्रह्माड आदि अनेक ब्राह्मणीय पुराणो मे जैन अनुश्रुति से प्राय सर्वथा मिलता-जुलता ही उनका वणन मिलता है। प्राचीन ऋग्वेदादि वेद ग्रन्थो तथा उत्तरकालीन बौद्ध त्रिपिटको मे भी भगवान् ऋषभ के एकाधिक उल्लेख मिलते हैं। सिन्धु घाटी की पाच-छ सहस्र वर्ष प्राचीन सभ्यता के अवशेषो के उत्खनन मे प्राप्त नग्न—कायोत्सर्ग-ध्यानस्थ योगियो की मृण्मुद्राओ से उस काल एव प्रदेश मे ऋषभ धम तथा ऋषभदेव की उपासना का प्रचलन रहा पाया जाता है। प्राचीन यूनानी लेखको के मेरु पर्वत निवासी आद्य भारतीय महापुरुष डायोनिसस से भी आदि पुरुष ऋषभदेव का ही अभिप्राय है। कई विद्वान तो पौराणिक देवता शिव (महादेव या शकर) की कल्पना का मूलाधार ऋषभ को ही मानते है। सेमेटिक (यहूदी-ईसाई-मुस्लिम आदि) परम्पराओ

---

१ महापुराण, त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित, सी० आर० जैन, वही, का० प्र० जैन, वही, पृ० ४१-४५, हीरालाल जैन, वही, पृ० ११, आचाय हस्तीमलजी, वही, पृ० १३-६३ ज्यो० प्र० जैन, वही, पृ० २२-२४।

के आद्य मानव बाबा आदम भी आदि पुरुष ऋषभदेव ही प्रतीत होते है।[1] आधुनिक दृष्टि से भगवान् ऋषभ का सुनिश्चित समय निर्धारित करना तो अत्यन्त दुष्कर है, किन्तु उनका अस्तित्व था इस विषय मे सदेह करने की गु जाइश नही है।

ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र एव उत्तराधिकारी महाराज भरत थे, जो प्रथम तीर्थकर के श्रावकोत्तम एव प्रधान श्रोता भी थे। जो व्यक्ति धर्मात्मा, मन्दकषायी, अल्प सतोषी एव ज्ञान-ध्यान मे लीन रहने वाले थे, उन्हे भरत ने ब्राह्मण सज्ञा देकर चतुर्थ वर्ण की स्थापना की। भरत ही सभ्य ससार के प्रथम चक्रवर्ती सम्राट थे। उन्होने छ खड पृथ्वी को दिग्विजय करके वसु धरा का उपभोग किया। उन्ही भरत के नाम पर यह महादेश भारतवर्ष या भारत कहलाया।[2] यह तथ्य महापुराण आदि प्राचीन जैन ग्रन्थो से ही नही, भागवद्, विष्णु आदि ब्राह्मण पुराणो एव वैदिक साहित्य से भी भलीभाति सिद्ध है।

सम्राट भरत के अनुज बाहुबलि अत्यन्त वीर एव बलशाली थे। उन्हे तक्षशिला का — मतान्तर से दक्षिण देशस्थ-पोदनपुर का राज्य मिला था। जब चक्रवर्ती दिग्विजय के लिये निकले तो मात्र बाहुबलि ही ऐसे नरेश थे जिन ने बिना युद्ध किये उनकी प्रभुसत्ता मानना अस्वीकार कर दिया। फलस्वरूप दोनो भाइयो के बीच भीषण द्वन्द्व युद्ध हुआ जो अनिर्णीत रहा, किन्तु बाहुबलि ससार से विरक्त हो गये और राज्य का परित्याग करके मुनि हो गये। एक ही स्थान मे निश्चल ध्यानावस्थित खडे रहकर उन्होने चिरकाल तक दुर्द्धर तप किया। इन्ही गोम्मटेश्वर बाहुबलि की अति विशाल-काय प्रतिमायें दक्षिण भारत के अनेक स्थानो मे विद्यमान हैं और ससार के आश्चर्यो मे गिनी जाती है।

बाहुबलि के एक पुत्र सोमयश गजपुर के नरेश थे—उन्ही से प्राचीन क्षत्रियो का चन्द्र या सोमवश चला। इनके एक वशज कुरु के नाम से कुरु देश या कुरु जागल देश और कुरु वश प्रसिद्ध हुये, तथा एक अन्य वशज हस्तिन के समय से गजपुर का नाम बदल कर हस्तिनपुर या हस्तिनापुर हुआ। हरिवश आदि अन्य प्रमुख प्राचीन वशो का प्रारभ भी आगे-पीछे इसी काल मे हुआ—यादव वश हरिवश की ही एक शाखा थी। कुलकरो और तीथ करो का पूर्वोक्त वश मूलत मानव वश कहलाता था—उसी की उपर्युक्त शाखा-प्रशाखायें होती चली गई। इन मानववशियो के अतिरिक्त नागफणि, ऋक्ष, यक्ष, असुर गधर्व, किन्नर, वानर आदि अनेक विद्याधर वशी मनुष्य जातिया भी इस भूखण्ड के विभिन्न भागो मे निवास करती थी। अनेक आधुनिक विद्वानो के मतानुसार इन्ही की वशज तथाकथित द्राविड जातिया हैं। प्रागैतिहासिक सिन्धु घाटी आदि सभ्यताओ के जनक भी यही आर्येतर विद्याधर वशी जातिया रही, ऐसा अनुमान किया जाता है। लौकिक विद्याओ और कलाओ मे

---

१ ज्यो० प्र० जैन, वही, पृ० २६-२८, तथा जैनिज्म दी ओल्डेस्ट लिविंग रिलीजन, पृ० ४०-६१, हीरालाल जैन, वही, पृ० ११-१८, का० प्र० जैन, वही, पृ० ४४-४७, ६०—६५, आ० हस्ती-मलजी, वही, पृ० ५७-६३।

२ स्वामी कर्मानन्द—भारत का आदि सम्राट, तथा भरत और भारत, जयचन्द्र विद्यालकर, भा० इति० की रूपरेखा, पृ० १४६, ३४३, ज्यो० प्र० जैन-जैनिज्म दी ओलडेस्ट लिविंग रिलीजन, पृ० ४७ तथा भा० इति० एक दृष्टि, पृ० २४।

विद्याधर लोग मानवो की अपेक्षा कही अधिक बढे-चढे थे, किन्तु धर्म साधना, दार्शनिक चिन्तन एव आध्यात्मिक सस्कृति के नेता मानव वशी ही प्राय रहे।[1]

अजितनाथ

ऋषभदेव के निर्वाण के बहुत समय उपरान्त साकेत (अयोध्या) मे हो इक्ष्वाकुवशी-काश्यप गोत्रीय राजा जितशत्रु की रानी विजया (विजयासेना) की कुक्षि से दूसरे तीर्थ कर अजितनाथ का जन्म हुआ। इनका लाछन हस्ति था। बहुत समय तक राज्य एव गृहस्थ का उपभोग करके इन्होने दीक्षा ली, तपस्या की, केवल ज्ञान प्राप्त किया और यत्र-तत्र विहार करके धर्मोपदेश दिया। अन्त मे सम्मेदशिखर से निर्वाण लाभ किया। तीर्थ कर अजितनाथ के ही तीर्थ मे, उनके निर्वाण के कुछ समय पश्चात् उसी इक्ष्वाकु वश एव अयोध्या नगरी मे राजा समुद्र विजय और रानी सुबला का पुत्र सगर भरत क्षेत्र का दूसरा चक्रवर्ती सम्राट हुआ। इस सगर चक्रवर्ती और उसके साठ हजार पुत्रो की कथा ब्राह्मणीय पुराणो मे भी पाई जाती है।[2]

सभवनाथ

तीसरे तीर्थंकर सभवनाथ भी इक्ष्वाकु वशी थे, किन्तु उनका जन्म श्रावस्ती (उत्तर प्रदेश के बहराइच जिले का सहेट महेट नामक स्थान) मे हुआ था। इनके पिता का नाम दृढराज (या जितारि) और माता का सुषेणा (या सेना) था। लाछन अश्व था। चिरकाल तक गृहस्थ सुख का उपभोग करके इन्होने वन की राह ली, तप किया, केवल ज्ञान प्राप्त किया, लोगो को धर्मोपदेश दिया और अन्त मे सम्मेदशिखर से निर्वाण प्राप्त किया।"[3] प्राचीन श्रावस्ती के स्थान पर सहेट-मेहट के खडहरो मे तीर्थ कर सभवनाथ के एक प्राचीन मदिर के भग्नावशेष अब तक खडे हैं। सिंधु देश के मौर्यकालीन सभूत्तर जनपद के निवासियो के पूर्वज तथा वे स्वय भ० सभवनाथ के विशेष भक्त रहे प्रतीत होते हैं। सिन्धु देश अश्वो के लिये प्रसिद्ध रहा है—अश्व का एक पर्यायवाची ही सैन्धव हैं। सभव है कि अश्व-पालन एव प्रागैतिहासिक सिन्धु घाटी (मोहनजोदडो आदि को) सभ्यता के उदय का प्रारभ अश्व लाछन तीर्थ कर सभवनाथ के तीर्थ मे ही हुआ हो।

अभिनन्दन, सुमतिनाथ, पद्मप्रभु, सुपार्श्वनाथ

चौथे तीर्थ कर अभिनन्दननाथ का लाछन वानर था, पिता का नाम स्वयवर (या सवर) और माता का सिद्धार्था था, वश इक्ष्वाकु, जन्म स्थान अयोध्या और निर्वाण स्थान सम्मेदशिखर था।[4] पाचवें तीर्थंकर सुमतिनाथ भी उसी वश और उसी नगर मे उत्पन्न हुये थे, मोक्ष स्थान भी वही था। इनका लाछन चकवाक (क्रोच) था, पिता का नाम मेघरथ (मेघ) और माता का मगला (या सुमगला) था।[5] छट्ठे पद्मप्रभु का जन्म कोशाम्बी नगरी मे हुआ था, पितृवश एव मोक्ष स्थान

---

१ देखिये—भा० इति० एक दृष्टि, पृ० २२-२३, का० प्र० जैन, वही, पृ० ५४-५८।

२ गुणभद्र—उत्तर पुराण, पर्व ४८ अजितादि आगे के तीर्थ करो के वर्णन का मुख्य आधार यही पुराण ग्रन्थ बनाया गया है। दिगम्बर-श्वेताम्बर उभय सम्प्रदायो की इन तीर्थंकरो से सबधित अनुश्रुतिया प्राय समान हैं। कही-कही कोई-कोई साधारण से अन्तर हैं।

३. उत्तरपुराण, पर्व ४६, ४ वही, पर्व ५०, ५ वही, पर्व ५१

वही था, लाछन पद्म (लाल कमल) था, माता का नाम सुमीमा और पिता का नाम 'धरण' या (धर) था।[1] कोशाम्बी के निकट पभोसा (प्रभास) नाम की पहाडी इनका तप एव केवलज्ञान स्थान मानी जाती है। सातवें तीर्थकर सुपार्श्वनाथ का लाछन स्वस्तिक था, पितृवश इक्ष्वाकु, जन्म स्थान वाराणसी, पिता का नाम सुप्रतिष्ठ (प्रतिष्ठ) और माता का पृथिवीषेणा (पृथ्वी) था, निर्वाण स्थान सम्मेदशिखर था।[2] तीर्थंकर सुपार्श्व की प्रतिमाये बहुधा सर्प-छत्र युक्त पाई जाती हैं। मथुरा का जैन स्तूप सर्वप्रथम इन्ही के समय मे देवो द्वारा निर्मित हुआ था, ऐसी अनुश्रुति है। नागजाति के विद्याधरो मे इनकी मान्यता विशेष रही प्रतीत होती है। प्राचीन सिन्धु घाटी सभ्यता का यह प्राय मध्य काल था। स्वस्तिक का वहा बहुत प्रचार था, सडकें भी प्राय स्वस्तिकाकार बनाई जाती थी। क्या आश्चर्य है कि योगिराज सुपार्श्व की मान्यता वहा विशेष रही हो।

चन्द्रप्रभ, सुविधिनाथ, शीतलनाथ

आठवे तीर्थंकर चन्द्रप्रभ का लाछन चन्द्रमा, जन्म स्थान चन्द्रपुर, वश इक्ष्वाकु, पिता का नाम महासेन, माता का लक्ष्मणा और निर्वाण स्थान सम्मेद शिखर था।[3] चन्द्रप्रभ अपेक्षाकृत अधिक लोकप्रिय तीर्थंकरो मे से एक हैं। इनकी प्रतिमायें बहुलता से प्राप्त होती है। नौवें तीर्थंकर पुष्पदन्त का अपरनाम सुविधिनाथ था, पितृवश इक्ष्वाकु, पिता का नाम सुग्रीव, माता का जयरामा (रामा) था, जन्म स्थान काकदी नगरी (देवरिया जिले का वर्तमान खुखुन्दो) थी और मोक्ष स्थान सम्मेद-शिखर था। इनका लाछन नक्र (मगर) था।[4] ब्राह्मणयी पुराण साहित्य मे इनका उलेल्ख काकुत्स्थ नाम से हुआ लगता हैं।[5] सिन्धु घाटी सभ्यता का यह उत्कर्ष काल था और वहा नक्र प्रतीक की उस काल मे बडी मान्यता थी। इस प्रदेश का नाम ही मकरदेश प्रसिद्ध हो गया था।[6] अतएव तीर्थ कर पुष्पदत की उपासना यहा रही प्रतीत होती है। दसवें तीर्थ कर शीतलनाथ का जन्म भद्रपुर (या भद्दिलपुर) मे हुआ था। इनका लाछन श्रीवत्स, वश इक्ष्वाकु, पिता का नाम दृढरथ और माता का सुनन्दा (नन्दा) था, निर्वाण स्थान सम्मेद शिखर था।[7] शीतलनाथ की गणना भी लोकप्रिय तीर्थं-करो मे है। इनके निर्वाणोपरान्त, उन्ही के तीर्थकाल के अन्तिम भाग मे समीचीन जैनधर्म की परम्परा कालदोष से समाप्त प्राय हो गई कही जाती है।[8] उसी भद्रिलपुर के राजा मेघरथ के शासनकाल मे भुडशालायन नामक एक ब्राह्मण ने अपने प्रभाव से ब्राह्मणो की पूजा करवाने और उन्हें भूमि-स्वर्ण आदि का दान देने की प्रथा चलवादी।[9] ऐसा लगता है कि भ० शीतलनाथ के समय तक इस देश मे तीर्थ करो के धर्म का प्राय एकच्छत्र एव अविच्छिन्न प्रभाव और प्रचार रहता आया था, किन्तु अब देशज ब्राह्मणो के धार्मिक विचारो मे सर्वप्रथम क्रान्ति होनी प्रारभ हुई, त्याग के स्थान मे भोग की ओर, निवृत्ति के स्थान मे प्रवृत्ति की प्रधानता होने लगी। सभवतया यही वह युग था जब

१ वही, पर्व ५२,
२ वही, पर्व ५३,
३. वही, पर्व ५४,
४ वही, पर्व ५५
५ पिछले दिनो एक ब्राह्मण पडित ने 'काकुत्स्थचरित' नामक पुस्तक लिखी थी, जिसमे यह समीकरण स्थापित किया था।
६ ज्यो० प्र० जैन—जैनिज्म, दी ओल्डेस्ट लिविंग रिलीजन, पृ० ५२।
७ उत्तरपुराण, पर्व ५६,
८ वही, श्लोक ६३,
९ वही, श्लोक ६४-६६।

उत्तर-पश्चिमीय भारत मे आर्यों का तथाकथित प्रवेश हुआ, अथवा वैदिक आर्य ब्राह्मणीय धर्म, सस्कृति एव सभ्यता का उदय प्रारभ हुआ । तीर्थंकरो के अनुयायी मध्य देशीय ब्राह्मण भी उनके प्रभाव मे आने लगे और प्राय यही समय विद्याधरो की प्रागैतिहासिक सिन्धु घाटी प्रभृत्ति सभ्यताओ का अस्तकाल था ।

श्रेयासनाथ

ग्यारहवें तीर्थंकर श्रेयासनाथ का जन्म सिंहपुर (वर्तमान सारनाथ) नामक नगर मे हुआ था । इनका वश इक्ष्वाकु था, पिता का नाम विष्णु और माता का नन्दा (या विष्णु देवी) था, लाछन गेंडा और निर्वाण स्थल सम्मेदशिखर था । भ० श्रेयासनाथ ने धर्म की टूटी हुई परम्परा को पुन जोडा और तीर्थंकरो के धर्म का लोक मे पुन. प्रचार किया । इन्ही के समय मे पेदनपुर नरेश त्रिपृष्ठ हुआ जो नव नारायणो (वासुदेवो) मे प्रथम था, अर्धचक्री और त्रिखडी था । इसका भाई विजय (या अचल) नव बलभद्रो (बलदेवो) मे प्रथम बलप्रद था । दोनो भाई बडे प्रतापी थे और तीर्थंकर के परम भक्त थे । इनका प्रतिद्वन्द्वी प्रथम प्रतिनारायण (प्रतिवासुदेव) अश्वग्रीव अलकापुरी का राजा था, जो बडा अत्याचारी था । त्रिपृष्ठ और विजय द्वारा उसका अन्त हुआ ।[1] इस प्रकार देश मे अत्याचारी राजाओ का प्रादुर्भाव और राजनीतिक सघर्षों एव राज्य सत्ता के लिये युद्धो का प्रारभ भी प्राय इसी समय से हुआ लगता है ।

वासुपूज्य, विमलनाथ, अनन्तनाथ

बारहवें तीर्थंकर वासुपूज्य का जन्म अ गदेश के चम्पापुर नामक नगर (बिहार के भागलपुर जिले) मे हुआ था, वश इक्ष्वाकु, पिता का नाम वसुपूज्य, माता का जयावती और लाछन महिष था । इनका निर्वाण चम्पापुर के निकट मन्दारगिरि पर हुआ माना जाता है । इन्ही के समय मे दूसरा बलभद्र अचल, दूसरा वासुदेव द्विपृष्ट तथा दूसरा प्रतिनारायण तारक हुये थे ।[2] तेरहवें तीर्थंकर विमलनाथ का लाछन बराह और जन्म स्थान काम्पिल्य नगर था । वश इक्ष्वाकु पिता का नाम कृतवर्मा और माता का नाम जयश्यामा (सामा) था तथा निर्वाण स्थान सम्मेदशिखर था । इनके समय मे सुधर्म (या भद्र) नाम का बलभद्र, स्वयभू नाम का नारायण और मधु (मेरक) नामक प्रतिनारायण हुये, तथा मेरु और मन्दर नामक प्रसिद्ध गणधर एव सजयत नामक केवली हुये ।[3] चौदहवे तीर्थंकर अनन्तनाथ का जन्म अयोध्या मे हुआ, निर्वाण सम्मेदशिखर पर । इनका लाछन सेही (श्येन) था, वश इक्ष्वाकु, पिता का नाम सिंहसेन और माता का जयश्यामा (या सुयशा) था । इनके समय मे सुप्रभ बलभद्र, पुरुषोत्तम, नारायण और मधुसूदन (मधु कैटभ) नामक प्रतिनारायण हुये ।[4]

धर्मनाथ •

पन्द्रहवें तीर्थंकर धर्मनाथ का जन्म रत्नपुर (फैजाबाद जिले का नौगई या रौनाइ) मे कुरुवशी राजा भानु की पत्नि सुप्रभा (सुव्रता) की कुक्षि से हुआ था और निर्वाण सम्मेदशिखर पर । इनका लाछन वज्रदड था । इनके समय मे सुदर्शन नामक बलभद्र, पुरुषसिंह नामक नारायण और

१ उत्तरपुराण, पर्व ५७.
२ वही, पर्व ५८
३ वही, पर्व ५६,
४ वही, पर्व ६०,

मधुक्रीड (या निशु भ) नामक प्रतिनारायण हुये । धर्मनाथ के निर्वाण और सोलहवें तीर्थंकर के जन्म के मध्य-अन्तराल मे अयोध्या नगरी मे इक्ष्वाकु, या सूर्यवशी दो चक्रवर्ती सम्राट कालान्तर से हुये—प्रथम का नाम मघवा था और दूसरे का सनत्कुमार ।[1] अब तक के समस्त चक्रवर्ती अयोध्या मे ही हुये, जिससे प्रतीत होता है कि पूरे देश की राजनीति मे तब तक अयोध्या और उसके इक्ष्वाकु वश का ही सर्वोपरि प्रभाव रहता रहा था । ये सब चक्रवर्ती तथा विभिन्न नारायण एव बलभद्र भी, तीर्थंकरो के भक्त थे । किन्तु इस अन्तराल मे भी कुछ काल तक श्रमणधर्म-मुनिमार्ग का विच्छेद रहा जिसे सोलहवें तीर्थंकर शान्तिनाथ ने पुन स्थापित किया ।[2]

शातिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ

शान्तिनाथ तीर्थंकर होने के साथ ही साथ चक्रवर्ती सम्राट भी थे । उनका जन्म हस्तिनापुर (गजपुर) के कुरुवशी नरेश विश्वसेन की रानी ऐरा (अचिरा) की कुक्षि से हुआ था, लाछन हिरण था । चिरकाल पर्यंत पृथ्वी का एकच्छत्र राज्य एव गृह सुख का उपभोग करके उन्होंने दीक्षा ली तपस्या की, केवलज्ञान प्राप्त किया, लोक को धर्मोपदेश दिया, मुनि मार्ग की पुन स्थापना की और अन्त मे सम्मेदशिखर से निर्वाण प्राप्त किया ।[3] वे एक अत्यन्त लोकप्रिय तीर्थंकर हुये । आज भी उनकी उपासना का प्रभूत प्रचार है ।

सत्रहवें तीर्थंकर कुन्थुनाथ का जन्म भी कुरुजागल देश के उसी हस्तिनापुर नगर मे और कुरु वश मे ही हुआ था, पिता का नाम शूरसेन (या वसु), और माता का श्रीकान्ता (या श्रीदेवी) था, लाछन अज था और मोक्ष स्थान सम्मेदशिखर । ये भी अपने समय के चक्रवर्ती सम्राट थे ।[4]

अठारहवें तीर्थंकर अरनाथ का जन्म भी उसी हस्तिनापुर मे, सोमवश नरेश सुदर्शन की पत्नी मित्रसेना (या महादेवी) की कुक्षि से हुआ था, लाछन नद्यावर्त (मत्स्य) था और निर्वाण स्थान सम्मेदशिखर । ये भी अपने समय के चक्रवर्ती सम्राट थे ।[5] इन तीनो तीर्थंकरो के समय मे श्रमण धर्म का प्रधान केन्द्र पश्चिमी उत्तर प्रदेशस्थ कुरु महाजनपद रहा जिसकी प्रधान महानगरी हस्तिनापुर थी । राजनीतिक प्रभुसत्ता भी अयोध्या से स्थानान्तरित हो चुकी थी, और हस्तिनापुर मे स्थिर हुई । ऐसा लगता है कि उस समय तक वैदिक सस्कृति का प्रभाव एव प्रसार पश्चिमोत्तर प्रान्त तक ही सीमित था, गगा-यमुना के अन्तर्वेद मे विशेष नहीं हो पाया था ।

इन्होने विवाह नही किया, बालब्रह्मचारी रहे। भ० मल्लिनाथ के तीर्थकाल मे वाराणसी नगरी मे पद्म नाम का चक्रवर्ती सम्राट हुआ तथा नन्दिमित्र नामक बलभद्र, दत्त नामक नारायण और वलीन्द्र, (प्रहलाद, प्रहरण) नामक प्रतिनारायण हुये।[1]

मुनिसुव्रत

बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ का जन्म राजगृही नगरी मे हरिवशी महाराज सुमित्र की रानी सोमा (या पद्मावती) की कुक्षि से हुआ था। इनका लाछन कच्छप था और मोक्ष स्थल सम्मेद-शिखर।[2] इन्ही के तीर्थ मे अयोध्या के रघुवशी महाराज रामचन्द्र और लका के विद्याधर वशी महाबली रावण हुये तथा रामायण मे वर्णित घटनायें घटी। भगवान् राम उस युग के बलभद्र थे, उनके अनुज लक्ष्मण नारायण थे और रावण प्रतिनारायण। महारानी सीता की जैन परम्परा की सोलह सर्वोपरि सतियो मे गणना है। राम ने दीक्षा लेकर पद्ममुनि नाम से तपश्चरण की, अर्हत केवलि हुये और उसी भव मे मोक्ष प्राप्त करके सिद्ध परमात्मा हुये। पवन्जय-अजना सुत हनुमान का भी जैन परपरा मे एक कामदेव तथा मोक्षगामी महापुरुष के रूप मे कथन किया गया है। जैन पद्म-पुराण मे इन महान् विभूतियो एव तत्सबधी घटनाओ का विस्तार के साथ वर्णन हुआ है। भ० मुनि-सुवृत्त के तीर्थकाल मे ही राजा वसुचैद्योपरिस्वर की राज्य सभा मे नारद और पर्वत का वह सैद्धान्तिक विवाद हुआ था जिसके फलस्वरूप याज्ञिक हिंसा—पशुबलि आदि का प्रचलन हुआ और प्रचार बढा। हरिषेण नामक चक्रवर्ती भी इसी तीर्थकाल मे भोगपुर नगर मे हुआ था।[3] विष्णु-कुमार मुनि द्वारा बलिबधन, सात सौ मुनियो की रक्षा और रक्षाबधन पर्व की प्रवृत्ति की घटनायें भी सभवतया इसी काल की हैं।

नमिनाथ

इक्कीसवें तीर्थंकर नमिनाथ का जन्म मिथिला नगरी मे इक्ष्वाकु वशी राजा विजय की रानी वप्पिला (वप्रा) की कुक्षि से हुआ था। इनका लाछन नील कमल और निर्वाण स्थल सम्मेद शिखर था। इन्ही के तीर्थ मे वत्सदेशस्थ कोशाम्वी नगरी मे जयसेन नामक चक्रवर्ती सम्राट हुआ।[4] हिन्दू पुराणो मे विदेहजनक के पूर्वज जिन मिथिलानरेश नमि[5] का उल्लेख आया है सभवतया वही इक्कीसवें तीर्थंकर नमिनाथ थे। मिथिला मे आग लग जाने पर इनकी अनासक्त वृत्ति का जो वर्णन जैन 'उत्तराध्ययन सूत्र' मे आया है, प्राय वही महाभारत तथा बौद्धो के महाजनक जातक मे आया है। तीनो परम्पराओ का यह समीकिरण तीर्थंकर नमि की ऐतिहासिकता का साधक है।[6] आगे चल कर जिस आध्यात्मवाद ने उपनिषदो की आत्मविद्या का रूप लिया उसका बीज इन विदेह नमि द्वारा ही मिथिला म आरोपित हुआ था।

---

१ वही, पर्व ६६—श्वेताम्बर अनुश्रुतियो मे तीर्थंकर मल्लिनाथ को स्त्री रहा प्रतिपादित किया है।

२, वही, पव ६७

३ वही, पव ६७-६८,   ४ वही, पर्व ६६।

५ ये नमि प्रत्येक बुद्ध हैं, स्वय बुद्ध नही, अत तीर्थंकर नमिनाथ से ये भिन्न हैं—सम्पादक

६ डॉ० हीरालाल जैन, भा० स० मे जैन धर्म का योगदान, पृ० १९-२०।

ऐमा लगता है कि १८वें तीर्थकर अरनाथ के उपरान्त ही मध्य देश मे वैदिक ब्राह्मणीय धर्म और सम्कृति का द्रुतवेग से प्रसार हुआ, राज्य सत्ता भी श्रमण या व्रात्य क्षत्रियों के हाथ से निकलकर वैदिक क्षत्रियो के हाथ मे आ गई। सिंधु घाटी की सम्यता तथा उसकी अन्य शाखायें कभी की समाप्त प्राय हो चुकी थी, उनके निवासियो का भी स्वतत्र अस्तित्व प्राय कोई नही रह गया था। तीर्थकरो के अनुयायी मानव वश प्रसूत इक्ष्वाकु, सूर्य, सोम, हरि उग्र आदि वशो के क्षत्रिय भी पराभूत हो गये थे, कम से कम मध्य देश मे निष्कासित से हो गये थे। यह निरा सयोग ही नही है कि शान्ति, कुन्थु, अर नाम के तीन तीर्थंकर लगातार पश्चिमी उत्तर प्रदेश के हस्तिनापुर मे हुये तो उनके वाद के तीन तीर्थकर लगातार सुदूर एव विहार प्रदेश मे हुये। वैदिक सम्यता और सत्ता का यह चरमोन्नत काल था। इसी युग मे श्रमण और ब्राह्मण उभय सस्कृतियो का पारस्परिक सघर्ष अपनी चरम सीमा को पहुच गया था। तीर्थंकर परम्परा के लिये यह एक जबरदस्त झटका था।

३ अन्तिम तीन तीर्थंकर—नेमि, पार्श्व, महावीर

अरिष्टनेमि

सबने भरसक अनुनय विनय की, किन्तु उस दृढ प्रतिज्ञ धर्मवीर ने एक न सुनी। वे निकटवर्ती गिरिनार पर्वत (उर्ज्जयत या रैवत गिरि) के उत्तुग शिखर पर जा चढे और दुर्द्धर तपश्चरण मे लीन हो गये। जब सुकुमारी राजुलमती ने यह समाचार सुना तो उन्होने निश्चय किया कि बिना विवाहे तोरण पर से लौट जाने वाले नेमिनाथ ही उनके पति है, और वह स्वय उन्ही का पदानुसरण करेगी। वह भी गिरिनार की एक गुहा मे जाकर तपस्या मे रत हो गई। नेमिनाथ और राजुलमती के हृदयद्रावक प्रसग को लेकर अनेक जैनकवियो ने वियोग शृ गार के काव्य की सरिता बहाई है।

केवलज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त तीर्थंकर नेमिनाथ ने देशविदेश मे विहार करके अहिंसा धर्म का उपदेश दिया और अन्त मे गिरनार पर्वत से ही निर्वाण प्राप्त किया। गुजरात काठियावाड प्रभृति पश्चिमी प्रदेशो एव दक्षिणापथ मे जैनधर्म का विशेष प्रचार इसी समय से हुआ। हरिवश-पुराण, उत्तरपुराण, वसुदेवहिंडि, नेमिनाहचरिउ, पाडवपुराण आदि ग्र थो मे उस युग की घटनाओ का सविस्तार वर्णन पाया जाता है। भगवान नेमिनाथ का उल्लेख ऋगवेद, यजुर्वेद, सामवेद, स्कद-पुराण, महाभारत आदि प्राचीन ब्राह्मणीय ग्रन्थो मे भी हुआ है, और पुरातत्व आदि से भी उनका अस्तित्व सिद्ध है। आधुनिक विद्वानो द्वारा उनकी ऐतिहासिकता प्राय स्वीकृत है।[1] महाभारत के 'शाति पव' मे जो भगवान तीर्थवित् और उनके द्वारा दिये गये उपदेश का वृतान्त मिलता है, वह जैन तीर्थंकर द्वारा उपदेशित धर्म के समरूप हैं।[2] सभावना यही है कि महाभारत का अनाम का सकेत भगवान अरिष्टनेमि और उनके द्वारा पुरस्कृत विचारधारा की ओर है। तीर्थंकर नेमिनाथ का जब जन्म हुआ तो याज्ञिक वैदिक धर्म एव सभ्यता के बढते हुये प्रभाव एव प्रसार के सन्मुख श्रमण सस्कृति पराभूत प्राय हो चुकी थी। यदि महाभारत युद्ध ने वैदिक क्षत्रियो की शक्ति, सत्ता और प्रभाव को जबरदस्त धक्का पहुचाया तो भगवान् नेमिनाथ के उपदेश ने उनके हिंसा-प्रधान धर्म एव सस्कृति को प्राय वैसी ही ठेस पहुचाई। महाभारत का उपरान्त काल इतिहास मे उत्तरवैदिक युग कहलाता है और वही युग श्रमण पुनरुत्थान युग है जिसके कि सर्वमहान् प्रथम प्रस्तोता तीर्थंकर नेमिनाथ थे। मनुष्य के भोजन के लिये पशु-पक्षियो के वध को अधार्मिक कृत्य एव पाप घोपित करके तथा मासाहार का निपेध करके और निवृत्तिरूप तप साधना का आदर्श प्रस्तुत करके उन्होने भारी क्रान्ति की थी।[3] वस्तुत अहिंसा को धार्मिक वृत्ति का मूल मानकर उसे सैद्धान्तिक रूप देना, श्रमण परपरा के लिये तीर्थंकर नेमिनाथ की विशेप देन रही प्रतीत होती है।[4]

नेमिनाथ के निर्वाण के कुछ समय उपरान्त काशी मे ब्रह्मदत्त नाम का शक्तिशाली नरेश हुआ जो जैन परम्परा के बारह चक्रवर्तियो मे अन्तिम था। उसकी ऐतिहासिकता भी मान्य की जाती है।

---

१ देखिए ज्यो० प्र० जैन—जैनिज्म दी ओल्डेस्ट लिविंग रिलीजन, पृ० २०–२४, विद्यानन्द मुनि, 'विश्वधर्म की रूपरेखा' पृ० २४–२८, का० प्र० जैन, दी रिलीजन आफ तीर्थंकराज, पृ० ७७–७९

२ हीरालाल जैन, वही, पृ० २०

३ ज्यो० प्र० जैन—रिवाईवल आफ श्रमण धर्म इन लेटर वैदिक एज, जैन जनल, छः, २, पृ० ६०–६२, छ, ३, पृ० १०६–११३

४ हीरालाल जैन, वही, पृ० २०

पार्श्वनाथ .

तेइसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का लाँछन सर्प या नाग था, और इनका जन्म भी जिस उरगवश मे हुआ था वह भी सभवतया व्रात्यक्षत्रियो की नागजाति की ही एक शाखा था। गोत्र इनका भी काश्यप था, और पिता काशिदेशस्थ वाराणसी नगरी के नरेश अश्वसेन थे तथा माता वामादेवी थी। पार्श्वनाथ का जन्म भगवान् महावीर के निर्वाण (५२७ ई० पूर्व) से साढे तीन सौ वर्ष पहिले, ईसा पूर्व ८७७ मे हुआ था। शैशवावस्था से ही ये अत्यन्त शातिचित्त, दयालु, मेधावी और चिन्तनशील थे, किन्तु साथ ही अतुल वीर्य-शौर्य के धनी एव परम पराक्रमी भी थे। उनके मातुल कुशस्थलपुर (कान्यकुब्ज) नरेश पर जब कालयवन नामक एक प्रबल आतताई ने आक्रमण किया तो कुमार पार्श्व तुरन्त सेना लेकर उसकी सहायता के लिये गये और भीषण युद्ध करके उन्होने शत्रु को पराजित किया तथा बन्दी बनाया। कृतज्ञ मामा ने उन्हे साग्रह कुछ दिन अपना अतिथि बनाये रक्खा। वह अपनी पुत्री का विवाह भी इनके साथ करना चाहता था, किन्तु, इसी बीच एक दिन वन विहार करते हुये कुमार पार्श्व ने तापसियो का एक आश्रम देखा, जहाँ उन्होने एक भयकर तापसी मे एक नाग-नागिन युगल की रक्षा की। इस घटना के बाद उन्हे वैराग्य हो गया और पार्श्व आत्मशोध-नार्थ तपश्चरण करने के लिये वन मे चले गये।

पार्श्वनाथ ने कठोर साधना की है। इस साधना के बीच ही वे हस्तिनापुर मे पारणा करके गगा के किनारे-किनारे वर्तमान बिजनौर के उस स्थान पर आये जो बाद मे पारसनाथ किला के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यहाँ से आगे चलकर वह उत्तर पाँचाल की राजधानी परिचक्रा (पाँचालपुरी या शखावती) के निकटवर्ती भीमादेवी नामक महावन मे पहुचे। यह नगर (वर्तमान बरेली जिले की आँवला तहसील का राम नगर) ही बाद मे अहिच्छत्रा के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस कालान्तार मे योगिराज पार्श्व योगधारण करके कायोत्सर्ग मुद्रा मे ध्यानस्थ हो गये। इस अवसर पर वहाँ शबर नामक एक दुष्ट असुर ने उन पर भीषण उपसर्ग किये। नागराज धरणीन्द्र और येक्षेश्वरी पद्मावती ने उक्त उपसर्ग के निवारण करने का यथा शक्य प्रयत्न किया। उपसर्ग निवारणार्थ नागराज (अहि) धारणेन्द्र ने भगवान् के सिर के ऊपर जो छत्राकर सहस्रफण मडप बनाया था, उसी के कारण वह स्थान अहिच्छत्रा नाम से लोक प्रसिद्ध हुआ। इस घटना के प्रतीकात्मक अकन के रूप मे ही तीर्थंकर पार्श्व की प्रतिमायें सर्पफण-छत्र से युक्त पाई जाती है। तभी भगवान को केवल ज्ञान हुआ और तदन्तर लगभग सत्तर वर्ष पर्यन्त उन्होने देश विदेश मे भ्रमण करके लोक को धर्मोपदेश दिया और एक सौ वर्ष की आयु मे सम्मेद शिखर मे, जो इसी कारण पारसनाथ पर्वत भी कहलाया, निर्वाण प्राप्त किया। यह घटना ईसा पूर्व ७७७ की है।[1]

तीर्थंकर पार्श्व की ऐतिहासिकता आधुनिक विद्वानो की दृष्टि से भी असदिग्ध है।[2] वस्तुत

---

१ ज्यो० प्र० जैन, रूहेलखड—कुमाऊ और जैन धर्म, पृ० १३–१७—तीर्थंकर पार्श्व के पौराणिक चरित्र के लिये देखिये—उत्तर पुराण, पद्मकीर्ति कृत पासनाहचरिउ, आदि पुराण ग्रन्थ, तथा आ० हस्तीमलजी, वही २८१–३३२

२ देखिए—ज्यो० प्र० जैन, जैनिज्म दी ओल्डेस्ट लिविंग रिलीजन पृ० १४–२०, भा० इति० एक दृष्टि, पृ० ४६, जैन जर्नल, सात, २, पृ० ८७–६४, हीरालाल जैन, वही, पृ० २०–२१, का० प्र० जैन, वही पृ० ७६–८७, विद्यानन्द मुनि, वही पृ० २८–२६, आ० हस्तीमलजी, वही, पृ० २८१–२८२

जैन तीर्थंकरो मे पार्श्वनाथ प्रायः सर्वाधिक लोकप्रिय रहे हैं। भारतवर्ष के विभिन्न भागो मे जितने मदिर, मूर्तिया और तीर्थस्थान इनके नाम से सम्बद्ध पाये जाते हैं, उतने शायद ही किसी अन्य तीर्थंकर के हो। गजपुर नरेश स्वयभू, कुशस्थलपुर का राजा रविकीर्ति, तेरापुर का स्वामी करकण्ड आदि कई भूपति इनके परम भक्त और अनुयायी थे। नाग, यक्ष, असुर आदि अनार्य देशी जातियो मे, जिनका ब्राह्मणीय साहित्य मे व्रात्य क्षत्रिय के रूप मे बहुधा उल्लेख हुआ है, तीर्थंकर पार्श्व का प्रभाव विशेप रहा प्रतीत होता है। उत्तर प्रदेश, बिहार एव बगाल मे ही नही उडीसा और आन्ध्र प्रदेश पर्यन्त इनका प्रत्यक्ष प्रभाव था। अनुमान तो यह भी किया जाता है कि देश की पश्चिमोत्तर सीमाओ को पारकर के मध्य एशियाई देशो एव यूनान आदि तक भी इनकी कीर्तिगाथा एव विचार प्रसारित हुये थे। पार्श्व के निर्वाण और महावीर के जन्म के मध्य लगभग पौने दो सौ वर्षों का अन्तर था और इस बीच पार्श्व का उपदेश एव उनकी श्रमण शिष्य परम्परा अविच्छिन्न बनी रही। महावीर का पितृकुल एव मातृकुल पार्श्व के ही अनुयायी थे। महावीर ने *जब उपदेश देना प्रारभ किया तब तक भी पार्श्वपरम्परा के केशि प्रभृति प्रभावशाली श्रमण विद्यमान* थे। पार्श्व द्वारा उपदेशित मार्ग को बहुधा चातुर्याम धर्म के नाम से उल्लेखित किया जाता है और कहा जाता है कि उन्होने अहिंसा, सत्य, अस्तेय और अपरिग्रह पर ही बल दिया था, ब्रह्मचर्य नाम के पृथक् से किसी व्रत का विधान नही किया था, जैसा कि महावीर ने बाद मे किया। धर्मसाधना मे भगवान पार्श्व चारित्रिक नैतिकता पर विशेष बल देते थे और तत्कालीन जनमानस मे नैतिकता का महत्त्व जमाने मे वे बहुत कुछ सफल भी हुये। इसके अतिरिक्त, पचाग्नि जैसे कुश तपो और हठयोगादि की निरर्थकता एव निर्दयता की ओर उन्होने लोक का ध्यान आकर्षित किया। तीर्थंकर नेमिनाथ ने यदि मनुष्य के भक्षण के लिये पशु हत्या का बहिष्कार किया तो तीर्थंकर पार्श्व ने धर्म के नाम से की जाने वाली साधना मे सभावित हिंसा के विरुद्ध आवाज उठाई। वस्तुतः तीर्थंकर पार्श्व, जो तत्कालीन जगत् मे 'पुरिसदानिय' (पुरुषश्रेष्ठ) के नाम से प्रसिद्ध हुये, उत्तर वैदिक काल के उस श्रमण धर्म-पुनरुत्थान के सर्वमहान एव सफल नेता थे, जिसका प्रारभ नेमिनाथ ने किया था। उन्ही के नैतिक एव आध्यात्मिक विचारो का प्रभाव था कि स्वय ब्राह्मण वैदिक परम्परा मे एक प्रभावशाली दल याज्ञिक हिंसा का विरोधी हो गया और उसने औपनिषदिक आत्मविद्या का प्रचार किया। पार्श्व के प्रचार क्षेत्र मे विदेह के जनक ही उपनिपदो की विचारधारा के सबसे बडे पोषक एव प्रचारक हुये।[1]

महावीर स्वामी

सिंहलांछन भगवान् महावीर तीर्थंकर परम्परा के चरम, अन्तिम अर्थात् चौबीसवें तीर्थंकर थे। वीर, अतिवीर, सन्मति, वर्द्धमान आदि उनके अन्य नाम थे। जैन साहित्य में 'श्रमण भगवान् महावीर' और बुद्ध साहित्य मे 'निगठनातपुत्र (निर्ग्रन्थ ज्ञातृपुत्र) के नाम से उनका बहुधा उल्लेख हुआ है।

ईसा पूर्व ५९९ की चैत्र शुक्ल त्रयोदशी के शुभ दिन महानगरी वैशाली के निकटवर्ती

---

१ ज्यो० प्र० जैन—रिवाईवल आफ श्रमणधर्म इन लेटर वैदिक एज, जैन जर्नल, सात, २, पृ० ८६-९०

उपनगर कुण्ड ग्राम या कुण्डपुर मे उनका जन्म हुआ था। इनके पिता सिद्धार्थ लिच्छवि जाति के ज्ञातृवशी काश्यपगोत्री क्षत्रिय थे और माता त्रिशला (अपर नाम प्रियकारिणी एव विदेहदत्ता) गणतन्त्रात्मक वज्जिसघ के प्रधान वैशाली के महाराज चेटक की पुत्री (मतान्तर से भगिनी) थी। महावीर बाल्यकाल से ही बडे शान्त चित्त, देह भोगो से विरक्त और चिन्तनशील थे, साथ ही अत्यन्त निर्भय, वीर और साहसी थे। प्राचीन ग्रन्थो मे उनके शैशव एव किशोरकाल की अनेक घटनाओ का प्रेरणाप्रद वर्णन प्राप्त होता है, जिससे उनके अतुल बल, वीर्य, शौर्य, बुद्धि और प्रतिभा का परिचय मिलता है। इससे बडी बात यह थी कि वे परदुख कातर थे, करुणा की साक्षात् मूर्ति थे। ससारीजनो की दु खग्रस्त दुर्दशा ने और चारो ओर के हिंसामयी वातावरण ने, जहाँ कि धर्म के नाम पर भी विविध प्रकार की घोर हिंसा होती थी, उन्हे गभीर, विरक्त एव चिन्तनशील बना दिया था। वर्णभेद, वर्गभेद, दास-दासी प्रथा, स्त्री जाति को हीन समझना, क्रियाकाड, आडम्बर, व्यभिचार, भ्रष्टाचार और अनैतिकता का बोलबाला था। अपने स्वरूप से बेभान लोक झूठे सुख की चाह एव खोज मे भटक रहा था, और दु ख की दल-दल मे अधिकाधिक फँसता जा रहा था। परिणामस्वरूप उस महावीर के हृदय मे लोक के दु ख का निवारण करने तथा लोक का कल्याण करने की उत्कृष्ट भावना प्रतिदिन बलवती होती जाती थी। बन्धु-बान्धवो ने उन्हे विवाह बन्धन मे बाँधकर ससार मे रमाये रखने का प्रयत्न किया। किन्तु उस वीर ने बालब्रह्मचारी रहना ही स्थिर किया (मतान्तर से महावीर ने विवाह किया था और उनके एक पुत्री हुई थी।)

तीस वर्ष की अवस्था होते न होते उन्होने जो कुछ धन सम्पत्ति उनकी थी सब याचको को मुक्त हस्त से दान कर दी, और समस्त साँसारिक सुख भोगो से मुँह मोड वन की राह ली। मार्गशीर्ष कृष्णादशमी के दिन उन्होने पचमुष्टि केशलोंच किया, दीक्षा ली और आत्म-साधना के दुर्द्धर मार्ग पर चल पडे। साढे बारह वर्ष की इस कठोर एव अलौकिक साधना मे अनगिनत उपसर्ग सहे, सभी प्रकार के कष्ट, लाँछन, अपमान, तिरस्कार पूर्णतया समताभाव के साथ सहन किये। न किसी से राग था, न किसी से द्वेष। आत्मशोधन और सत्यान्वेषण की प्रक्रिया मे एकनिष्ट होकर लीन रहे। फलस्वरूप, वैशाख शुक्ल दशमी के दिन जब वे ऋजुकूला नदी के तट पर शालवृक्ष के नीचे एक शिला पट पर आत्मस्थ अवस्था मे आसीन थे तो उन्हे केवलज्ञान प्राप्त हुआ। वे वीतराग, सर्वज्ञ, अर्हंत, केवलि, जिन हो गये। छयासठ दिन[1] तक उपयुक्त शिष्य के समागम के अभाव मे मौनावस्था मे ही विहार करते हुये वह मगध की राजधानी राजगृह अपरनाम पचशैलपुर के विपुलाचल पर्वत पर पधारे। एक निकटवर्ती ग्राम मे वेद-वेदाग मे पारगत इन्द्रभूति नाम का गौतम गोत्रीय महा तेजस्वी, शीलवान ब्राह्मण अपने विशाल शिष्य समुदाय के साथ रहता था। उसे जीव, अजीव आदि तत्त्वो के विषय मे शका थी। भगवान का विपुलगिरि पर आगमन सुनकर शास्त्रार्थ की इच्छा से वह सदलबल वहाँ आया, किन्तु भगवान के समक्ष पहुँचते ही उसकी शकायें विलीन हो गई—उनके परमतेजोमय मौन से ही उसे अपनी समस्त शकाओ का समाधान मिल गया। वह भक्ति से नतमस्तक हुआ और उनका प्रथम शिष्य बना। यही तीर्थंकर महावीर के प्रधान गणधर गौतम स्वामी थे। यह शुभ दिन आषाढ शुक्ला पूर्णिमा का था, अतएव लोक मे गुरुपूर्णिमा के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अगले दिन,

---

१ श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार भ० महावीर ने केवलज्ञान के दूसरे ही दिन इन्द्रभूति आदि को अपापापुरी मे ही शकाओ का निरसन कर प्रतिबोधित किया था। —सम्पादक

श्रावण कृष्णा प्रतिपदा[1] को उसी स्थल पर अपनी समवसरण सभा मे भगवान ने अपना सर्वप्रथम उपदेश दिया, धर्मतीर्थ की स्थापना की और धर्मचक्र का प्रवर्तन किया। यही दिन वीर शासनजयन्ति के नाम से प्रसिद्ध है। मगध नरेश श्रेणिक विम्बसार भी श्रोता रूप मे उपस्थित था। भगवान ने विना किसी भेदभाव के सभी प्राणियो को कल्याण का मार्ग दिखाया, अपना अहिंसामय उपदेश और सुखद सदेश दिया।

तदनन्तर, देश-देशान्तरो मे पदातिक विहार करते हुये निरन्तर तीस वर्ष पर्यन्त उस महाप्रभु ने जन-जन को, जनता की ही भाषा (लोक भाषा अर्धमागधी प्राकृत) मे सच्चा एव वास्तविक सुख प्राप्त करने का उपाय वताया—विश्वप्रेम, आत्मौपम्य, अहिंसा और अनेकान्त को समाविष्ट करने वाली तथा श्रमपूर्वक तप-त्याग-सयम द्वारा आत्मशोधन पर आधारित समीचीन रत्नत्रयी उस परम-स्वातन्त्रय अथवा मोक्ष सुख की प्राप्ति की कुञ्जी और साधिका प्रतिपादित की।

अन्त मे, शक पूर्व ६०५, विक्रम पूर्व ४७० और ईसा पूर्व ५२७ की कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी (अमावस्या) की रात्रि के अन्तिम प्रहर में, प्रत्यूष बेला मे, पावापुरी मे तीर्थंकर महावीर का निर्वाण हुआ। उसी रात गौतम गणधर को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। लोगो ने दीपमालिका प्रज्वलित करके निर्वाण महोत्सव मनाया, और वह शुभ दिन लोक मे दीपमालिका, दीपावली या दीवाली के नाम से प्रसिद्ध हुआ।[2]

विश्व मानव के इतिहास मे अन्तिम तीर्थंकर भगवान् वर्द्धमान महावीर के व्यक्तित्व, देन एव महत्त्व का मूल्याकन गत अढाई सहस्र वर्षों से होता आ रहा है। प्रत्येक युग अपनी-अपनी समस्याओ का समाधान उसमे ढूढता और पाता रहा है।

---

१ श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार तीर्थ-स्थापना का शुभ दिन वैशाख शुक्ला एकादशी माना गया है। —सम्पादक

२ महावीर की तिथि के लिये देखिए—ज्यो० प्र० जैन—जैनसोर्सेज आफ दी हिस्टरी आफ एन्शेन्ट इण्डिया, पृ० ३२–५४

द्वितीय खण्ड

र जस्थ न

में

जैन ंस्‌ति रि
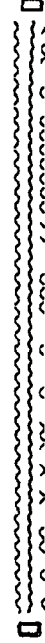
१७ रा स्थान की भौगोलिक, ऐतिहासिक एवं धार्मिक पृष्ठभूमि

डॉ० रामगोपाल शर्मा

राजस्थान भारतवर्ष का एक महत्त्वपूर्ण राज्य है जहाँ के लोगो ने देश के इतिहास एव संस्कृति के निर्माण की प्रक्रिया मे महत्त्वपूर्ण योग दिया है। विदेशी आक्रान्ताओं के विरुद्ध संघर्ष मे राजस्थानी वीरो की प्रशंसनीय भूमिका रही है। यही नही, यहाँ के लोगो ने संस्कृति के संरक्षण एव परिवर्द्धन मे भी महत्त्वपूर्ण योग दिया है। राजस्थान के इस ऐतिहासिक दाय को समुचित परिप्रेक्ष्य मे समझने के लिए आवश्यक है कि प्रारम्भ मे उसकी भौगोलिक स्थिति तथा उसके व्यापक प्रभाव का अध्ययन किया जाय।

चित्तौड, कोटा तथा वासवाडा के क्षेत्र अधिक वर्षा के लिए प्रसिद्ध है। जलवायु की विषमता के कारण विदेशी आक्रान्ताओ ने यहाँ अपना स्थायी प्रभुत्व स्थापित करने मे अधिक रुचि नही ली।

राजस्थान की उपर्युक्त भौगोलिक विशेषताओ का यहाँ के जन-जीवन पर गहरा प्रभाव पडा है। विषम प्राकृतिक स्थिति तथा जलवायु के साथ सतत् सघर्ष ने यहाँ के लोगो मे अदम्य साहस एव दृढता, असाधारण धैर्य एव सहनशीलता तथा कर्मठता का सचार किया है। भौगोलिक परिवेश ने राजस्थान के इतिहास तथा सस्कृति को भी एक विशिष्ट स्वरूप प्रदान किया है। अरावली पर्वत-माला का व्यापक प्रभाव इस सन्दर्भ मे विशेष उल्लेखनीय है। इस अरावली पर्वत की पश्चिमी तथा केन्द्रीय मेखला घनी और दुर्गम है तथा वह इस क्षेत्र के निवासियो के लिए सुरक्षा की महत्त्वपूर्ण प्राचीर रही है। इन पर्वतीय प्रदेशो व घाटियो मे बसने वाली, भील, मीणा, मेर आदि जन-जातियो ने वाह्य सपर्क से दूर रहकर अपनी विशिष्ट जीवन पद्धति का विकास किया।

अपनी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति के कारण राजस्थान समीपवर्ती प्रदेशो से निष्क्रमण करने वाली जन-जातियो के लिए आश्रय-स्थल भी रहा है। उत्तर-प्रदेश, पजाव, मालवा तथा गुजरात के साथ मिलने वाली राजस्थान की सीमा पर ऊँचे पहाड, नदी हैं और इसलिए वह अधिवासन के लिए उपयुक्त है, किन्तु इन सीमावर्ती क्षेत्रो के समीप ही दुर्गम थार का मरुस्थल तथा दुर्गम उच्च अरावली की पर्वत-शृ खला स्थित हैं जो आक्रान्ताओ के विरुद्ध सघर्ष में उपयुक्त रक्षा-पक्ति का कार्य करते ह। यूनानियो के हाथो पराजित होने के वाद मालवगण ने राजस्थान में ही शरण ली। राजस्थान में आकर बसनेवाली अन्य गण-जातियो मे यौधेय एव अर्जु नायन मुख्य हैं जिन्होने यहाँ आकर अपनी स्वाधीनता की रक्षा की। मालव, यौधेय एव अर्जु नायन गणो ने विदेशी शको को यहाँ से मार भगाया और शक्तिशाली कुषाण साम्राज्य के ध्वस में भी महत्त्वपूर्ण योग दिया। इस प्रकार राजस्थान को भारत के महान् गणराज्यो का क्रीडा-स्थल बनने का गौरव प्राप्त है।

राजस्थान की भौगोलिक विशेषताओ के फलस्वरूप ही यहाँ के वीर राजनेता भारतीय सास्कृतिक सरक्षण के लिए विधर्मियो के विरुद्ध सफलतापूर्वक सघर्ष कर सके। अरावली की घाटियो तथा गिरिगह्वरो में आश्रय ले, राजस्थानी वीरो ने विदेशियो का सफलतापूर्वक प्रतिरोध किया।

राजस्थान में दुर्गम पहाडी प्रदेशो का उपयोग धार्मिक स्थानो की सुरक्षा के लिए भी हुआ है। विधर्मियो के सतत् आघात से सुरक्षित रखने के लिए यहाँ के शासको तथा समृद्ध परिवारो ने मन्दिरो तथा धर्म-स्थानो का निर्माण दुर्गम पर्वतीय प्रदेशो में करवाया। नागदा, एकलिंगजी, राणक-पुर, सिहाड आदि के मन्दिर इसी दृष्टि से दुर्गम पर्वतीय प्रदेश में वनवाए गए हैं।

भौगोलिक विविधता के वीच भी राजस्थानी जन जीवन में एक मूलभूत एकता दृष्टिगोचर होती है। भाषा, धर्म, समान आचार-विचार तथा आदर्शों की समानता यहाँ के निवासियो में एकत्व की अनुभूति की निरन्तर पुष्टि करते हैं। विषम भौगोलिक स्थिति तथा जलवायु के कारण राजस्थान का उत्तरी-पश्चिमी भाग आर्थिक दृष्टि से अधिक विकसित नही हो सका है किन्तु अब राजस्थान नहर एव चम्बलघाटी जैसी विशाल योजनाओ के फलस्वरूप समस्त राजस्थान का आर्थिक भविष्य भी उज्ज्वल प्रतीत होता है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :

'राजस्थान' नाम काफी अर्वाचीन है, किन्तु इस नाम से द्योतित प्रदेश हमारे देश के प्राचीनतम इतिहास तथा सस्कृति से सबद्ध रहा है। प्राचीन भारतीय साहित्य मे इस प्रदेश के विभिन्न नाम मिलते हैं जो या तो इस प्रदेश की भौगोलिक विशेषताओ से सबद्ध हैं या यहाँ बसने वाले लोगो से सबद्ध। इन नामो का अध्ययन हमे राजस्थान को राजनीति एव इतिहास की विकास-प्रक्रिया का बोध कराता है।

राजस्थान का सबसे प्राचीन उल्लेख हमे 'मरु' नाम से ऋग्वेद मे मिलता है। मरुप्रदेश का उल्लेख महाभारत के वनपर्व[1] मे, वृहत्सहिता मे, सम्मोहतन्त्र मे, रुद्रदामन के जूनागढ अभिलेख (१५० ई०) मे तथा पाल अभिलेखो मे भी मिलता है। खरतरगच्छ पट्टावली[2] मे मरुप्रदेश के लोगो (मारवो) को गुर्जरो से भिन्न बताया गया है। मरुदेश प्रारम्भ मे राजस्थान के रेतीले क्षेत्र का बोध कराता था, किन्तु कालान्तर मे उसका अर्थ अधिक व्यापक बन गया। जयसिंह सूरि की रचना 'हमीर मदमर्दन' मे जो उल्लेख है, उससे मरुप्रदेश के अन्तर्गत जालोर, चन्द्रावती, आबू तथा मेवाड के शामिल होने का भी सकेत मिलता है।

'जागल' नाम से भी राजस्थानी प्रदेश का उल्लेख प्राचीन साहित्य मे हुआ है। महाभारत मे कुरु और मद्र जनपदो के दक्षिण की ओर स्थित प्रदेशो के लिए क्रमश 'कुरु-जागल' तथा 'मद्र-जागल' शब्दो का प्रयोग हुआ है। प्रारम्भ मे 'जागल देश' के अन्तर्गत हर्ष, नागौर तथा साभर के क्षेत्र सम्मिलित थे। जागल क्षेत्र पर शासन करते थे शाकम्भरी तथा अजमेर के चौहान शासक जो 'जागलेश' भी कहलाते थे।[3] परवर्ती काल मे बीकानेर के राजा भी इस जागल देश के शासक होने के नाते स्वय को 'जागलधर बादशाह' कहते थे।

शाकभरी तथा अजमेर का चौहान राज्य केवल 'जागल' के रूप मे ही नही, 'सपादलक्ष' (सवालाख) के रूप मे भी विख्यात था। इसीलिए चौहान शासक 'सपादलक्षीय नृपति' भी कहलाते थे। सपादलक्ष नाम से चौहान राज्य का अनेक अभिलेखो तथा साहित्य मे उल्लेख हुआ है। इस प्रदेश का नामकरण 'सपादलक्ष' हुआ, क्योकि इसके अन्तर्गत बहुत से ग्राम रहे होगे। प्रारम्भ मे सपादलक्ष केवल शाकम्भरी व अजमेर के चौहान राज्य का द्योतक था, किन्तु चौहान राजशक्ति के विस्तार के साथ-साथ इसका प्रादेशिक क्षेत्र भी अधिक व्यापक होता गया। जब चौहान राज्य अपने उत्कर्ष की पराकाष्ठा पर था तब सपादलक्ष के अन्तर्गत जागल, शेखावाटी से रणथभोर तक का विस्तृत क्षेत्र, कोटा, मेवाड का माण्डलगढ दुर्ग, बूदी का पश्चिमी भाग, किशनगढ तथा अजमेर के क्षेत्र सम्मिलित थे।[4]

प्राचीनकाल मे राजस्थान के विभिन्न प्रदेशो का नामकरण उनसे सबद्ध जन-जातियो के नाम पर भी हुआ। ऐसे नामो मे 'मत्स्य शब्द विशेष उल्लेखनीय है। मत्स्य' शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख ऋग्वेद मे मिलता है जहाँ मत्स्यों को राजा सुदास का विरोधी बताया गया है। 'शतपथ ब्राह्मण' के

१ वनपर्व, २०१·४ १ २ पृ० ३६

३ डॉ० दशरथ शर्मा, Early Chauhana Dynasty, पृ० 10, 11, 63, 70

४ गौरीशकर हीराचन्द ओझा, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, II, पृ० ३३०-३३२

अनुसार मत्स्य लोग सरस्वती के समीप बसे थे और उनके राजा ने सरस्वती के तट पर अनेक अश्वमेध यज्ञ किए थे। महाभारत युद्ध के समय विराट् (वर्तमान बैराठ) मत्स्य के विस्तृत राज्य की राजधानी था और मत्स्यो ने पाण्डवो के प्रमुख सहयोगियो के रूप मे युद्ध मे सक्रिय भाग लिया था। महाभारत के 'कर्ण पर्व' मे मत्स्यो को सत्य के प्रति निष्ठावान् बताया गया है। 'अगुत्तर निकाय' नामक बौद्ध ग्रन्थ मे मत्स्यो का उल्लेख शूरसेनो के साथ हुआ है। मत्स्य प्रदेश के अन्तर्गत किसी समय जयपुर तथा अलवर रियासत का कुछ भाग तथा अधिकाश भरतपुर रियासत का क्षेत्र शामिल था।

एक अन्य प्रादेशिक नाम 'शाल्व' का उल्लेख भी महाभारत मे मिलता है। शाल्वो की राजधानी शाल्वपुर थी जिसका समीकरण कनिघम ने अलवर से किया है। शाल्व प्रदेश के अन्तर्गत अधिकाश अलवर राज्य का भाग सम्मिलित था।

प्राचीन साहित्य मे शूरसेन जनपद का भी उल्लेख मिलता है जिसके अन्तर्गत मथुरा, अलवर, भरतपुर, धोलपुर तथा करौली के समीपवर्ती भाग शामिल थे। यूनानी लेखको ने भी शौरसेन जनपद का उल्लेख किया है। शूरसेन जनपद 'भडाणक' भी कहलाता था जिसका समीकरण वर्तमान 'बयाना' से सभव है।

प्राचीनकाल मे दक्षिणी राजस्थान मे शिबि जनपद की भी स्थिति थी। इसका ज्ञान चित्तौड के समीप नगरी से प्राप्त सिक्को से होता है जिन पर लेख है—'मज्झिमिकय शिबि जनपदस अर्थात् शिबि जनपद से सबद्ध मध्यमिका। प्राचीन काल मे मध्यमिका एक महत्त्वपूर्ण नगरी थी और इसीलिए भारत पर आक्रमण करने वाले बाख्त्री यवनो ने मथुरा के साथ-साथ मध्यमिका पर भी घेरा डाला था।[1]

मालवगण की भी राजस्थान के इतिहास मे प्रमुख भूमिका रही। मालवगण की स्थिति के सूचक अनेक सिक्के जयपुर रियासत के उणियारा ठिकाने के अन्तर्गत नगर या कारकोट नगर से मिले है। इन सिक्को से भी अधिक महत्त्वपूर्ण रैड मे प्राप्त वह मुद्रा है जिस पर 'मालव जनपदस' लेख अकित है।

राजस्थान प्रदेश से सबद्ध एक अन्य प्राचीन नाम है 'गुर्जर', जिसका उल्लेख चीनी यात्री ह्वेनसाग ने किया है। ह्वेनसाग के कथनानुसार गुर्जर प्रदेश की राजधानी पि-लो-मो-लो थी जिसका समीकरण वर्तमान भीनमाल से किया जा सकता है। उद्योतनसूरि भी अपनी 'कुवलयमाला कहा' मे गुर्जर देश तथा भिल्लमाल का उल्लेख करते है। गुर्जर प्रदेश के लिए 'गुर्जरात्र' शब्द भी प्रयोग किया जाता था जिसका अर्थ है—गुर्जरो द्वारा रक्षित प्रदेश। भोजप्रथम के दौलतपुर अभिलेख में दण्डवानक विषय के अन्तर्गत 'शिव' ग्राम का उल्लेख मिलता है। दण्डवानक विषय का समीकरण वर्तमान डीडवाना मे किया जाता है। प्रारम्भ में 'गुर्जर' शब्द पुरानी जोधपुर रियासत के अधिकाश प्रदेश तथा वर्तमान गुजर राज्य के कुछ भागो का सूचक था, किन्तु बाद में वह केवल गुजरात प्रदेश का समानार्थक बन गया।

मेवाड का उल्लेख मेदपाट नाम से भी मिलता है जो उसका सस्कृत रूप है। मेदपाट के

---

१ अरुणद् यवन साकेतम्।

प्रयोग से यह सकेत मिलता है कि गुहिल शासको के आधिपत्य से पूर्व मेवाड, मेद अथवा मेर कहलाने वाले लोगो के अधीन था। डॉ० गौ० ही० ओझा मेदो को शको का वशज बतलाते हैं। जयसिंह कलचुरि के करणवेल अभिलेख से ज्ञात होता है कि मेदपाट का दूसरा नाम प्रागवाट भी था।[1] प्रागवाट शब्द पोरवाल वणिक् जाति का बोध कराता है जो मूलत॰ मेदपाट अथवा प्रागवाट से सबद्ध रही होगी।

राजस्थान के अन्य क्षेत्रीय नामो में वल्ल, अवणि, माड, अनन्तगोचर तथा वागड उल्लेखनीय हैं। इन नामो का उल्लेख जोधपुर के कई अभिलेखो मे हुआ है। वल्ल माड राज्य का सीमावर्ती प्रदेश था। 'माड' नाम अभी भी जैसलमेर क्षेत्र के लिए प्रयुक्त होता है। इसी से राजस्थान के एक लोक-प्रिय 'माण्ड' नामक राग का उदय हुआ प्रतीत होता है। अनन्तगोचर नाम का उल्लेख अभिलेखो में प्रारम्भिक चौहानो की भूमि के रूप में हुआ है। यह वही क्षेत्र है जिसका नागपुरा अथवा नागौर प्रमुख नगर था। वागड राजस्थान मे दो हैं। डूगरपुर तथा बासवाडा रियासतो के क्षेत्र अभी भी वागड कहलाते है और इसी अर्थ में वागड का स्थानीय अभिलेखो में उल्लेख मिलता है। डॉ० गौ० ही० ओझा के अनुसार वागड शब्द की उत्पत्ति वगडा से हुई है जिसका अर्थ है जगल।[2] नरहड (पिलानी के पास), भाद्रा नोहर तथा कनणा का क्षेत्र भी कभी वागड के रूप में प्रसिद्ध रहा है और इसी नाम से इस क्षेत्र का खरतरगच्छपट्टावलि में उल्लेख मिलता है। नाडोल का चौहान राज्य 'सप्तशत' कहलाता था। आबू का क्षेत्र 'अष्टादशशत' के नाम से प्रसिद्ध था, क्योकि इसमें १८०० ग्राम शामिल थे। इस नाम का विनयचन्द्र की काव्य शिक्षा, उपदेश तरंगिणी तथा उपदेशसार मे उल्लेख मिलता है।

राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रो के द्योतक उपर्युक्त नामो मे समय-समय पर परिवर्तन होता रहा, किन्तु मरु, वागड तथा मेदपाट आदि नाम अपरिवर्तित रहे।

उपर्युक्त विवेचन से राजस्थान का ऐतिहासिक महत्त्व निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाता है। भारत के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य मे राजस्थानियो का स्वाधीनता प्रेम विशेष द्रष्टव्य है। प्राचीनकाल मे राजस्थान मालव, यौधेय, अर्जुनायन जैसे स्वाधीनता प्रेमी 'गणो' की क्रीडास्थली रहा जब आठवी शताब्दी मे अरबो ने आक्रमण किया तो जालोर के शासक नागभट्ट प्रथम ने सफलतापूर्वक उनका प्रतिरोध किया और महान् प्रतिहार साम्राज्य की स्थापना की। प्रतिहार साम्राज्य के पतन के बाद चौहानो ने हिन्दू धर्म एव सस्कृति की रक्षा के लिए सघर्ष जारी रखा। चौहानो के पराभव के बाद मेवाड के शीशोदियो–महाराणा कुभा, महाराणा सागा तथा महाराणा प्रताप ने स्वाधीनता की ज्योति को किसी-न-किसी रूप मे प्रज्वलित रखा। इन महान् विभूतियो का कार्यकलाप भारत के इतिहास का एक स्वर्णिम अध्याय है जो युगो से हमारे लिए प्रेरणा का स्रोत रहा है। भारत के स्वाधीनता-आन्दोलन मे भी राजस्थान की सक्रिय भूमिका रही है।

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद राजस्थान की राजनीतिक एकता का मार्ग प्रशस्त हुआ। कई चरणो में राजस्थान राज्य का निर्माण हुआ। सर्वप्रथम १७ मार्च, १९४८ को 'मत्स्य' राज्य का

१ गौ० ही० ओझा, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, II, पृ० ३३६

२. ओझा, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, II, पृ० ३३७

निर्माण हुआ, जिसमें अलवर, भरतपुर, धोलपुर तथा करौली के प्रदेश सम्मिलित थे। २५ मार्च, १६४८ को कोटा, टोंक, बूंदी, झालावाड, प्रतापगढ, डूंगरपुर, बासवाडा, किशनगढ, शाहपुरा एव कुशलगढ को मिलाकर राजस्थान की दूसरी इकाई का निर्माण किया गया जिसमें बाद में उदयपुर रियासत भी शामिल हो गई। यह इकाई 'राजस्थान' कहलाई। बाद में जयपुर, जोधपुर, बीकानेर तथा जैसलमेर रियासतो के इसमे शामिल होने पर बृहत्तर राजस्थान का उद्घाटन ३० मार्च, १६४६ को सरदार पटेल के करकमलो द्वारा हुआ। बाद मे मत्स्य राज्य और आबू भी इसमें शालिम हो गये और इस प्रकार राजस्थान की राजनीतिक एव मनोवैज्ञानिक एकता का स्वप्न साकार हुआ।

धार्मिक पृष्ठभूमि :

प्राचीनकाल से ही राजस्थान के जन-जीवन पर धर्म का व्यापक प्रभाव रहा है। राजस्थान का सास्कृतिक जीवन धार्मिक परिवेश मे ही पल्लवित होता रहा है। राजस्थान के धार्मिक जीवन की मुख्य धारा वैदिक एव पौराणिक ढग का हिन्दुत्व रहा है और उसके समानान्तर जैन-धर्म की परम्परा भी निरन्तर प्रवाहमान रही है। यहाँ हम राजस्थान मे विभिन्न धर्मों की स्थिति एव व्यापकता का सक्षेप मे अध्ययन करेंगे।

वैदिक मत :

प्राचीनकाल से ही राजस्थान मे यज्ञ की वैदिक परम्परा विद्यमान रही है। दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व के घोसुण्डी शिलालेख मे हमे अश्वमेध यज्ञ के सम्पादन का उल्लेख मिलता है। नान्दसा यूप स्तम्भ लेख मे, जो तीसरी शताब्दी का है, पष्ठिरात्र यज्ञ करने का उल्लेख है। वैदिक यज्ञो की यह परम्परा राजस्थान मे बहुत बाद तक प्रचलित रही। मेवाड के महाराणा कुंभा ने अनेक वैदिक यज्ञो का आयोजन किया। जयपुर के महाराज सवाई जयसिंह ने ईसा की अठारहवी शताब्दी मे भी वैदिक परम्परा को पुनर्जीवित कर अश्वमेध तथा अन्य कई यज्ञो का आयोजन किया। वैदिक यज्ञो तथा कर्मकाण्ड की परम्परा आज भी राजस्थान मे व्यापक रूप मे विद्यमान है।

राजस्थान मे प्राचीनकाल से ही पौराणिक हिन्दू धर्म भी अत्यन्त लोकप्रिय रहा है। पौराणिक धर्म के अन्तर्गत विष्णु, शिव, दुर्गा, ब्रह्मा, गणेश आदि विभिन्न देवी-देवताओ की पूजा का विधान था। राजस्थान मे पौराणिक देवताओ की आराधना के लिए चित्तौड, ओसियाँ, पुष्कर, आहड, आम्बानेरी, भीनमाल आदि नगरो मे अनेक मन्दिरो का निर्माण हुआ। राजस्थान मे विष्णु, शिव, दुर्गा, सूय आदि देवता बहुत लोकप्रिय थे। आबू, नागदा तथा चित्तौड आदि स्थानो से अनेक शिलालेख प्राप्त हुए हैं जो पौराणिक देवी-देवताओ के स्तुतिगान से आतप्रोत हैं। प्रतिहार काल मे राजस्थान मे सूर्य पूजा का भी काफी प्रचलन था। भीनमाल सूर्य पूजा का महान् केन्द्र था और वहाँ जगत् स्वामिन् का प्रसिद्ध सूर्य मन्दिर था।

यद्यपि राजस्थान मे विभिन्न देवी-देवताओ की उपासना प्रचलित रही तथापि परम्परागत धार्मिक-सहिष्णुता की भावना को इससे कोई आघात नही पहुँचा। हिन्दुओ की धार्मिक सहिष्णुता की भावना प्रतिहार काल मे समन्वित हिन्दू देवताओ की मूर्तियो के निर्माण मे अभिव्यक्त हुई है। बघेरा तथा वेडला से प्राप्त हरिहर की मूर्ति, हर्ष से प्राप्त तीन मुखवाले सूर्य की मूर्ति, झालावाड से प्राप्त सूर्यनारायण की मूर्ति, आमानेरी मे प्राप्त अर्धनारीश्वर की मूर्ति और अजमेर म्यूजियम मे

उपलब्ध विष्णु तथा त्रिपुरुष की त्रिमूर्ति हिन्दू धर्म की समन्वयात्मक प्रवृत्ति की सुन्दर प्रतीक है।[1]

राजस्थान मे प्राचीनकाल से ही हिन्दुत्व के विभिन्न धार्मिक सप्रदाय फलते-फूलते रहे। इन सप्रदायो मे विशेप उल्लेखनीय हैं—शैव तथा पाचरात्र या वैष्णव मत।

शैवमत ·

राजस्थान मे प्राचीनकाल से ही शैवमत का व्यापक प्रसार रहा है। पाशुपत, शैव, घोप पाशुपत, कापालिक, कालमुख, लकुलीश आदि अनेक शैव सप्रदाय राजस्थान मे प्रचलित रहे है।[2] इनमे पाशुपत सप्रदाय विशेष लोकप्रिय रहा है। पूर्व मध्यकालीन शिलालेखो से ज्ञात होता है कि राजस्थान मे शिव की उपासना अनेक नामो से की जाती थी, जिनमे मुख्य हैं—एकलिंग, समिधेश्वर, चन्द्र चूडामणि, भवानीपति, अचलेश्वर, शम्भू, पिनाकिन् आदि। शैव उपासना के अन्तर्गत राजस्थान मे लकुलीश तथा नाथ सप्रदाय विशेप लोकप्रिय रहे है। मेवाड के महाराणाओ ने श्री एकलिंगजी को ही राज्य का स्वामी माना और स्वय को उनका दीवान। नाथ सप्रदाय का जोधपुर क्षेत्र मे विशेष जोर रहा है और राजस्थान के कई स्थलो मे उनके अखाडे है। राजस्थान मे शैवमत की प्रगति यहाँ वने बहुत से शैव मन्दिरो से स्पष्ट है।

शक्ति-पूजा :

राजस्थान मे शक्ति के रूप मे देवी को उपासना का भी प्रचलन रहा है। देवी की उपासना महिषासुरमर्दिनी, दुर्गा, पार्वती, योगेश्वरी, अरण्यवासिनी, अष्टमात्रिका, लक्ष्मी, सरस्वती, अम्बिका, काली तथा राधिका के रूप मे होती रही है। देवी दुर्गा शक्ति की प्रतीक मानी जाती है, इसलिए राजस्थान के कई राजवश शक्ति को कुलदेवी के रूप मे मान्यता दे, उसकी आराधना करते रहे है।

पाचरात्र अथवा वैष्णव मत :

पाचरात्र लोकप्रिय भागवत धर्म का ही पूर्व रूप था। इसका प्राचीनतम उल्लेख दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व के घोसुण्डी अभिलेख मे मिलता है। इस अभिलेख में वलराम वासुदेव के पूजा-स्थान का उल्लेख है। कालान्तर में यह पाचरात्र सप्रदाय भगवत् गीता के अवतारवाद में परिणत हो गया। इस परिवर्तन से हिन्दुत्व में हर धार्मिक विचारधारा को आत्मसात् करने की आश्चर्यजनक क्षमता विकसित हुई। पाचरात्र तथा भागवत दोनो प्रकार का वैष्णववाद दीर्घकाल तक राजस्थान का प्रमुख धर्म वना रहा। वैष्णवमत के अन्तर्गत कृष्ण की पूजा का भी विकास हुआ। राजस्थान के कई मन्दिरो में कृष्ण लीला से सम्वन्धित दृश्य उत्कीर्ण हैं। कृष्ण चरित से सम्बन्धित कई आख्यान तक्षण कला के द्वारा व्यक्त हुए हैं और ओसियाँ, किराडू, सादडी आदि स्थानो मे अनेक ऐसी कला-कृतियाँ उपलब्ध हुई हैं। महाराणा कुभा के काल मे चित्तौड तथा कुम्भलगढ में कृष्ण मन्दिरो का निर्माण हुआ। राजस्थान में वैष्णवमत राम की आराधना के रूप मे भी प्रचलित रहा है।

भक्ति-आन्दोलन .

मध्यकाल में राजस्थान में धर्म सुधार की प्रवृत्ति भक्ति-आन्दोलन के रूप में प्रवाहित हुई।

---

१ डॉ० दशरथ शर्मा, Rajasthan through the Ages

२ उपमिति भवप्रपञ्चकथा, पृ० ३९६-९७

धर्म के वाह्य कर्मकाण्ड तथा आडम्बर के स्थान पर ईश्वर की शुद्ध भक्ति पर जोर दिया गया और धर्म के सदेश को ब्राह्मणो के एकाधिकार से मुक्त कर, जन-साधारण तक पहुचाया गया। राजस्थान में इस नई धार्मिक चेतना के अग्रदूत थे भक्तशिरोमणि धन्नाजी, जाम्भोजी, मीराबाई तथा दादू।

बौद्धधर्म .

बैराठ तथा झालावाड जैसे कतिपय स्थलो से पुरातत्त्वविदो को स्तूप व विहार आदि के कुछ ऐसे अवशेष मिले हैं जो प्राचीनकाल मे राजस्थान मे बौद्ध धर्म के अस्तित्व को सिद्ध करते हैं, किन्तु बौद्धधर्म राजस्थान मे कभी लोकप्रिय न हो सका और शीघ्र ही यहाँ से लुप्त हो गया। राजस्थान से उसके विलोप का मुख्य कारण यहाँ निरन्तर बढती हुई वैष्णव तथा जैनमतो की लोकप्रियता थी।

जैनधर्म

जैनधर्म शुरू से ही राजस्थान, गुजरात, मालवा एव सौराष्ट्र मे काफी लोकप्रिय रहा और उसने इस भ्रान्त धारणा का खण्डन कर दिया कि युद्ध-प्रिय राजपूत जन-जातियो द्वारा प्रशासित प्रदेशो मे अहिंसा परक धर्मों का कोई स्थान नही है।

राजस्थान मे जैन-धर्म के उत्कर्ष का श्रेय उन जैन साधुओ की परम्परा को है जिसने जैन-धर्म व समाज मे सुधार के लिए विधि-चैत्य आन्दोलन का सचालन किया। यह एक महत्त्वपूर्ण आन्दोलन था जिसका शुभारम्भ जैन आचार्य हरिभद्रसूरि ने किया और उद्योतनसूरि तथा सिद्धर्षिसूरि जैसे आचार्यों ने जिसे व्यापक आधार प्रदान किया। हरिभद्रसूरि ने जैनमत मे प्रचलित बुराइयो के विरुद्ध आवाज उठाई और अपनी रचनाओ तथा उपदेशो द्वारा समस्त जैन चिन्तन को प्रभावित किया। उनकी रचनाओ मे 'अनेकान्तजय' तथा 'धर्मबिन्दु' विशेष उल्लेखनीय हैं। उनकी मृत्यु के बाद उनके सन्देश का प्रसार दो महान् जैन लेखक—उद्योतनसूरि तथा सिद्धर्षिसूरि ने किया।

राजस्थान मे अनेक जैन गच्छो का व्यापक प्रचलन हुआ। आबू मे बडगच्छ की स्थापना हुई। बडगच्छ का प्रभाव सिरोही तथा मारवाड क्षेत्रो मे भी रहा। खरतरगच्छ का जन्म गुजरात मे हुआ, किन्तु राजस्थान इसकी गतिविधि का प्रसिद्ध केन्द्र बन गया। खरतरगच्छ के आचार्यो ने राजस्थान मे जैनधर्म को लोकप्रिय बनाने मे विशेष योग दिया। उन्होने निरन्तर पद यात्रा कर अपने उपदेशो द्वारा जन-साधारण में जैन-धर्म के प्रति नई चेतना जाग्रत की। जगह-जगह व्रत, उपवास तथा उत्सवो का आयोजन किया गया।

जैन साधुओ की राजस्थान को एक महत्त्वपूर्ण देन उनके द्वारा रचा गया विशाल साहित्य है। इन विद्वान् साधुओ ने ज्ञान की विभिन्न शाखाओ पर सहस्रो ग्रन्थ लिखे और उनका अपने धर्म स्थानो मे सरक्षण किया। भारतीय इतिहास, दर्शन एव साहित्य के ज्ञान के लिए जैन विद्वानो का यह विशाल साहित्य हमारी अमूल्य निधि है।

---

१८ राजस्थान में जैन संस्कृति के विकास का ऐतिहासिक सर्वेक्षण

डॉ० कैलाशचन्द्र जैन
डॉ० मनोहरलाल दलाल

[१]

महावीर के समय जैनधर्म

भगवान् महावीर के जीनवकाल मे ही राजस्थान के कुछ भागो मे जैन-धर्म के प्रचार एव प्रसार का ज्ञान परवर्ती जैन साहित्य से होता है। महावीर के मामा एव लिच्छवी गणतत्र के प्रमुख चेटक की ज्येष्ठ पुत्री प्रभावती सिन्धु-सौवीर के शासक उदाइन को व्याही गई थी। उदाइन जैन-मतावलम्बी हो गया था। भगवती सूत्र के अनुसार उसने अपने भाणेज केशी को राज्य देकर अपने अतिम समय मे श्रमण-दीक्षा स्वीकार करली थी। सामान्यत सौवीर प्रदेश के अतर्गत जैसलमेर और कच्छ के हिस्से भी माने जाते है।[1] अवन्ति महाजनपद के अतर्गत राजस्थान के कुछ पूर्वी भाग भी सम्मिलित थे, जहाँ का शासक प्रद्योत महासेन महावीर का अनुयायी था क्योकि इसे चेटक की चतुर्थ पुत्री शिवा व्याही गई थी।

भीनमाल के १२७६ ई० के एक अभिलेख[2] से विदित होता है कि महावीर स्वामी स्वयं श्रीमाल नगर पधारे थे। आबूरोड से ८ कि०मी० पश्चिम मे मुगस्थल से प्राप्त १३६६ ई० के शिला-लेख[3] से पता चलता है कि भगवान् महावीर स्वय अर्बुद भूमि पधारे थे।

उपर्युक्त विवरण बहुत बाद के हैं इतिहास के प्रकाश मे इनकी सत्यता प्रमाणित नहीं होती। यद्यपि महावीर युग मे सिन्धु-सौवीर के शासक उदाइन और अवन्ति महाजनपद के शासक प्रद्योत महासेन के जैन मतावलम्बी होने की सम्भावना को निरस्त नही किया जा सकता है।

---

१ Ancient India by Tribhuvanlal Shah Vol I, p 215

२ Progress Report of Archaeological Survey of India, Western Circle, 1907

३ अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख सदोह, अभिलेख सख्या–४८

[२]

राजस्थान मे जैनधर्म

राजस्थान मे जैन-धर्म के प्रसार का सर्वाधिक ठोस प्रमाण ईसा पूर्व पञ्चम शताब्दी का बडली-शिलालेख[1] माना जाता है, जिसमे वीर निर्वाण सवत् के ८४ वें वर्ष तथा माझमिका का उल्लेख है। माझमिका की पहिचान चित्तौड के निकट स्थित 'नगरी' से की जाती है। पातञ्जल महाभाष्य[2] मे उल्लेखित माध्यमिका ही बडली-लेख की माझमिका है। माध्यमिका जैन-धर्म का प्राचीन केन्द्र रही है, जहाँ जैन श्रमण सघ की माध्यमिका शाखा की स्थापना सुहस्ती के द्वितीय शिष्य प्रियग्रथ ने की थी।[3] जैन श्रमणो की माध्यमिका शाखा का स्थविरावलि मे उल्लेख है। प्रियग्रथ का समय ई०पू० तृतीय शताब्दी माना जाता है, इसी समय का यहाँ से एक अभिलेख भी मिला है, जिसका अर्थ है—सर्वभूतो के निमित्त।[4] यह अभिलेख जैन या बौद्ध अनुयायी द्वारा सम्पन्न पुण्य कर्म से सम्बद्ध माना जा सकता है, चूकि माध्यमिका जैन-धर्म के श्रमण सघ का केन्द्र थी, अतएव इस अभिलेख की स्थापना जैन धर्मानुयायी द्वारा की जाने की ही अधिक सम्भावना है। बडली-शिलालेख की प्रामाणिकता के सन्दर्भ मे मतवैभिन्य[5] है, अत इसे प्रामाणिक नही माना जा सकता। परन्तु प्रद्योत के प्रभाव क्षेत्र मे सूरसेन प्रदेश होने तथा अवन्ति के निकटवर्ती राजस्थान के क्षेत्रो पर अधिकार होने की सम्भावना के प्रकाश मे माध्यमिका का जैन-धर्मावलम्बियो के केन्द्र के रूप में प्रतिष्ठित होने के प्रति उपेक्षा भाव नही रखा जा सकता, अन्यथा प्रियग्रथ माध्यमिका मे आवास नही कर सकते। मौर्यकाल तक माध्यमिका जैन-धर्म के प्रतिष्ठित केन्द्र के रूप मे जानी जाने लगी थी।

मौर्य युग मे जैनधर्म

मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त के शासनकाल से ही राजस्थान का क्षेत्र मौर्य साम्राज्य का अग था। कलिंग देश के विजेता अशोक का वैराट से अभिलेख मिला है। चन्द्रगुप्त को जैनधर्मानुयायी[6] बताने वाले परवर्ती साहित्यिक एव आभिलैखिक साक्ष्यो को अविश्वसनीय नही माना जा सकता है। चन्द्रगुप्त ने जैन-धर्म के प्रसार के लिये कई प्रयत्न किये। उसे अनेक मदिरो की स्थापमा का श्रेय दिया जाता है, किन्तु ये अनुश्रुतियाँ विश्वसनीय नही हैं। जोधपुर से २६ कि०मी० पर स्थित घघाणी ग्राम मे पार्श्वनाथ का प्राचीन मन्दिर है तथा वहाँ के एक तालाब से १६०५ ई० मे कई जैन-मूर्तियाँ खोजी गई थी।

---

१ Nahar Jain Inscription, No 402, भारतीय प्राचीन लिपिमाला पृष्ठ—२
२ The History of Rajputana, Vol I, p 110
३ Sacred Books of the East, Vol 22 p. 293
४ उदयपुर राज्य का इतिहास, पृष्ठ ३५४-५८
५ Journal of the Bihar and Orissa Research Society, March 1954, p 8
६ The Early History of India p 154 (see also F N 3)

चन्द्रगुप्त मौर्य का पुत्र बिन्दुसार अमित्रघात भी पिता का अनुगामी प्रतीत होता है, यद्यपि उसका पुत्र अशोक कलिंग युद्ध के पश्चात् बौद्ध-धर्म की ओर आकृष्ट हो चुका था। अहिंसा के प्रति अनुराग अशोक मे सस्कारजन्य प्रतीत होना है। अशोक ने बराबर की पहाडियो मे आजीविको के वर्षावास हेतु गुफाए खुदवाई थी तथा अपने अभिलेखो मे 'निग्गथो' के प्रति उसने आदर भाव व्यक्त किया है, फलत राजस्थान क्षेत्र मे भी जैन-धर्म फूलता-फलता रहा होगा। अशोक का पौत्र सम्प्रति जैन इतिहास मे अशोक के समान महान् माना जाता है। उसने जैन-धर्म के प्रसार हेतु अथक प्रयत्न किये थे। जैन परम्परा मे उसे राजस्थान, गुजरात और मालवा मे अनेक मन्दिरो के निर्माण तथा मूर्तियाँ प्रतिष्ठित करवाने का श्रेय दिया जाता है।[1] सम्प्रति ने अपने आचार्य आर्य सुहस्ती के सरक्षण मे जैन-धर्म के प्रसार के लिये सभा भी बुलाई थी तथा तीर्थयात्रा के लिये उसे सघ निकालने का भी श्रेय दिया जाता है। टॉड के अनुसार[2] कु भलमेर का मन्दिर सम्प्रति ने निर्मित करवाया था, जोकि सत्य नही है। यह मन्दिर वास्तुशैली की दृष्टि से १३वी शताब्दी का प्रकट होता है तथा बनावट मे आबू के समकालीन मन्दिरो से समानता रखता है। नडूलाई के शिलालेख[3] से विदित होता है कि वि०स० १६८६ मे स्थानीय जैन सघ ने राजा सम्प्रति द्वारा निर्मित मन्दिरका पुन-निर्माण करवाया था, इसे प्रमाण रूप से ग्रहण करना सम्भव नही है।

मौर्येतर काल मे जैनधर्म

मौर्येतर काल मे जैन-धर्म का उत्थान शको के शासन काल मे ज्ञातव्य है। प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व मे जैन विद्वान् कालकाचार्य ने सौराष्ट्र, अवन्ति और सम्भवत पश्चिमी राजस्थान तक जैन-धर्म का प्रचार किया था। आचार्य कालक की बहिन सरस्वती भी साध्वी रूप मे धर्म प्रचार मे साथ थी, परन्तु उज्जयिनी के शासक गर्दभिल्ल ने कामुकता वश अपरिमित सुन्दरी साध्वी सरस्वती का बलात् हरण कर लिया तथा स्थानीय जैन सघ और कालक के अनुरोध पर भी सरस्वती को मुक्त नही किया, फलत प्रतिशोध लेने हेतु कालक पश्चिम मे गया। पश्चिमी भारत के सिन्धु प्रदेश मे शाही (शक) शासक को ज्योतिष विद्या से प्रभावित कर अन्य ९५ सरदारो सहित अवन्ति पर चढा लाया तथा गर्दभिल्ल के पराभव एव मृत्यु के पश्चात् सरस्वती को मुक्त करवा लिया। इन शाहियो का उज्जयिनी पर १७ वर्ष राज्य रहा और तत्पश्चात् गर्दभिल्ल के पुत्र विक्रमादित्य ने शको को खदेड कर विक्रम सवत् का प्रवर्तन किया। सम्भवत कालक के प्रभाव से पश्चिमी भारत मे जैन-धर्म लोकप्रिय हो गया था, क्योकि जैन अनुश्रुति के अनुसार विक्रमादित्य ने जैनाचार्य सिद्धसेन दिवाकर के प्रभाव से जैन-धर्म स्वीकार कर लिया था,[4] जोकि मालव गणतत्र से सम्बद्ध था, जिनका शासन कालान्तर मे अजमेर, जयपुर, टोक के त्रिकोण प्रदेश पर होने की पुष्टि सिक्को और अभिलेखो से होती है।[5]

---

१ T L. Shah, Ancient India, Vol 2 pp 293 94

२ Annals and Antiquities of Rajasthan, Vol 2, pp 779-80

३ Nahar Jain Inscriptions No 856

४ The Pattavaali Sammuchchaya, pp 46, p 106, Indian Antiquary, Vol 20

५ Epigraphia Indica, Vol 27, p 266, Catalogue of Indian Coins by Gardner, Pt XVII No 5

इस समय अजमेर एव पुष्कर के बीच हर्षपुर एक समृद्धिशाली नगर था, जिसकी पहिचान 'हरसुर' से की जाती है। जैन परम्परा[१] मे हर्षपुर को जैन-धर्म का प्रसिद्ध केन्द्र वर्णित किया गया है, जहाँ ३०० जैन मन्दिर थे। जैनो का हर्षपुर-कच्छ भी इसी स्थल से प्रसिद्ध हुआ था, जिसका ग्यारहवी शताब्दी के अभिलेखो मे उल्लेख है।

कुषाण युग मे जैनधर्म ·

मथुरा से प्राप्त जैन अवशेषो, मूर्तियो एव अभिलेखो से कुषाणो के शासनकाल मैं प्राचीन सूरसेन प्रदेश मे जैन-धर्म लोक प्रिय ज्ञात होता है। इस युग से जैनसघ का गण, कुल एव शाखा मे विभक्त होने के उल्लेख भी मिलते हैं, अतएव मथुरा के निकट के राजस्थानीय क्षेत्रो मे जैन-धर्म की समृद्धि का आभास होता है। समन्तभद्र के प्रयासो से द्वितीय शताब्दी मे जैन-धर्म का प्रचार अधिक हुआ था। श्रवणबेलगोला के शक सवत् १०५० के शिलालेख[२] के अनुसार समन्तभद्र ने जैन धर्म की विजय का डका पाटलीपुत्र, मालवा एव सिन्ध मे बजाने के बाद काची होते हुए कर्नाटक तक प्रयाण किया था। इस समय मालव लोग जयपुर-टोक-अजमेर के प्रदेश मे स्थापित थे। माध्यमिका, हर्षपुर आदि नगर कुषाणकाल मे जैनधर्म के प्रतिष्ठित केन्द्र माने जाते थे।

गुप्त एव गुप्तेतर काल मे जैनधर्म

केशोराय पाटण मे सम्पन्न उत्खनन मे गुप्तयुगीन जैन मूर्तियाँ एव कल्प वृक्ष पट्ट निकला था,[3] जिससे इस स्थल पर गुप्तकाल मे निर्मित जैन मन्दिर का ज्ञान होता है। व्हेनसाग ने भीनमाल और बैराठ के सम्बन्ध मे कुछ जानकारी दी है, जिससे ज्ञात होता है कि बौद्धधर्म इन स्थानो पर पतनावस्था मे था,[४] जबकि अन्य धर्मावलम्बियो की जनसख्या अधिक थी। इनमे ब्राह्मण धर्मों के साथ जैन-धर्म भी यहाँ विद्यमान रहा होगा। बसतगढ से भगवान् ऋषभदेव की दो मूर्तियाँ मिली हैं, जिन पर ६८७ ई० का अभिलेख है।[५]

आठवी और नवमी शताब्दी मे राजस्थान मे जैन-धर्म के प्रसार का सम्पूर्ण श्रेय हरिभद्र-सूरि को है, जो आरम्भ मे चित्तौड के शासक जितारी के विद्वान् पुरोहित थे, किन्तु बाद मे जैन श्रमण हो गये थे। इन्होने अपने ग्रथ 'समराइच्यकहा' मे जैन-धर्म की स्थिति पर कुछ प्रकाश डाला है।[६]

[३]

राजपूतकाल मे जैनधर्म

शक्तिशाली राजपूत शासको के राज्यकाल मे जैन-धर्म की अप्रत्याशित प्रगति हुई। ये शासक

---

१ Tribhuvan Lal Shah Anciant India, III p 140
२ हीरालाल जैन जैन शिलालेख सग्रह, प्रथम भाग, सख्यक ५४, पृष्ठ १०२
३ Jainism in Rajasthan by Dr K C Jain pp 16
४ Thomas Watters On Yuanchawang's Travels in India p 249
५ अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख सदोह, सख्यक, ३६५
६ समराइच्चकहा, भूमिका पृष्ठ ५३, मूल पृष्ठ १८७-८८

शैव या शाक्त धर्म के अनुयायी थे, परन्तु सहिष्णुता एव जैन-धर्म के प्रति उदार दृष्टिकोण के कारण राजपूत शासको ने जैन-धर्म की उन्नति मे हर प्रकार से सहयोग दिया। गुजरात, मालवा एव राजपूताना के शासको ने जैन विद्वान् जिनसेन, हेमचन्द्र आदि के प्रभाव से जैन-धर्म की उन्नति मे सक्रिय सहयोग दिया था।

प्रतीहार-राजवंश :

गुर्जर प्रतीहार शासको के राज्यकाल मे जैन-धर्म के प्रसार से सम्बद्ध उल्लेख आठवी शताब्दी के अतिम चरण से प्राप्त होते हैं। वत्सराज[1] के समय ओसिया मे महावीर स्वामी के मन्दिर का निर्माण हुआ था। इसी वत्सराज का जिनसेन ने ७८३ ई० मे लिखे गये अपने जैन ग्र थ 'हरिवश पुराण' मे विवरण दिया है। करीब ७९२ ई० मे वत्सराज का उत्तराधिकारी नागभट्ट हुआ, जिसे 'आम' नाम से भी उल्लेखित किया गया है। 'प्रभावक चरित' से स्पष्ट ज्ञात होता है कि 'आम' एव नागावलोक अभिन्न राजा था, जिसने एक वणिक जैन-कन्या से विवाह किया था, इसी वणिक के वशज कर्मशाह[2] ने १५३० ई० मे शत्रु जय-तीर्थ का सस्कार करवाया था। नागभट्ट जैन आचार्य बप्पभट्टसूरि का बहुत सम्मान करता था तथा उनके आदेशानुसार इसने कई स्थलो पर जैन मन्दिरो का निर्माण करवाया था। प्रसिद्ध गुर्जर प्रतीहार सम्राट् मिहिरभोज के ८४० ई० मे गद्दी पर बैठने के पश्चात् जैन-धर्म को और अधिक सरक्षण मिला क्योकि मिहिरभोज बप्पसूरि के दो शिष्यो—नन्नसूरि एव गोविन्दसूरि से प्रभावित था। कक्कुक, जोधपुर के निकट मडोर का प्रतीहार शासक था, जोकि सस्कृत का विद्वान् तथा जैन-धर्म का सरक्षक था। घटियाला-शिलालेख[3] से विदित होता है कि कक्कुक ने ८६१ ई० मे एक जैन मन्दिर निर्मित करवाया था।

चौहान-राजवश :

चौहान शासको के राज्यकाल मे जैन-धर्म का प्रचार अधिक हुआ। प्रसिद्ध जैनाचार्य धर्मघोषसूरि, जिनदत्तसूरि चौहानो के समकालीन थे, जिनके प्रति अगाध श्रद्धा के कारण जैनो को मन्दिरो को बनवाने हेतु अनुमति एव भूमिदान दी। ११०५ ई० मे शासनरत पृथ्वीराज प्रथम[6] ने रणथम्भोर के जैन मन्दिरो मे स्वर्ण-कलश की प्रतिष्ठा की थी,[4] जो धार्मिक मामलो मे उसके उदार दृष्टिकोण का परिचायक है। इसके पुत्र अजयराज ने शैवमतावलम्बी होते हुए भी जैन धर्म के प्रति सहिष्णुता का परिचय देते हुए नव स्थापित अजमेर नगर मे जैन मन्दिरो के निर्माण हेतु जैनो को अनुमति दी तथा पार्श्वनाथ मन्दिर हेतु एक स्वर्ण-कलश भेंट किया।[6] अजयराज ने श्वेताम्बर जैनाचार्य

१ Archaeological Survey of India, Annual Report 1908-09 p 108
२ मुनि जिनविजय जैन-लेख सग्रह, भाग–२, सम्यक–१२
३ Dr K C Jain Jainism in Rajasthan p 19
४ Annual Report, Rajputana Museum, Ajmer, 1934, No 4
५ Catalogue of the Manuscripts in the Pattna Bhandaras p 316
६ Jainamana, Yr 1, No 1, p 4

धर्मघोषसूरि एव दिगम्बर गुणचन्द्र के मध्य धार्मिक वाद-विवाद मे निर्णायक का कार्य किया था। इसके उत्तराधिकारी अर्णोराज अथवा आन्नलदेव की जिनदत्त सूरि के प्रति अगाध श्रद्धा थी, जो ११३३ ई० के पूर्व सिंहासनारूढ हो चुका था। अर्णोराज ने जिनदत्त सूरि के दर्शन किये और उनके अनुयायियो को एक विशाल जैन मन्दिर का निर्माण करने हेतु भूमि दान दी थी।[1] यह स्थान दादा जिनदत्त सूरि के पश्चात् दादावाडी (दादा का उद्यान) के नाम से विख्यात हो गया।

अर्णोराज का उत्तराधिकारी करीब ११५२ ई० मे वीसलदेव विग्रहराज हुआ, जोकि सहिष्णुता एव धार्मिक उदारता का पक्षपाती था। जैनो हेतु उसने विहार बनवाये तथा उनके धार्मिक समारोह मे भाग लिया। जैन विद्वानो के प्रति श्रद्धालु होने के कारण धर्मघोष सूरि के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने हेतु बीसलदेव ने एकादशी के दिन पशुहिंसा बन्द[2] करवादी। इसके पश्चात् ११६९ ई० के बिजोलिया शिलालेख से विदित होता है कि पृथ्वीराज द्वितीय ने वहाँ के पार्श्वनाथ मन्दिर के दैनिक खर्चों हेतु मोरकुरी ग्राम दान मे दिया था। पृथ्वीराज द्वितीय का उत्तराधिकारी उसका चाचा सोमेश्वर हुआ, जोकि अर्णोराज का पुत्र था। यह शासक प्रतापलकेश्वर के नाम से भी प्रसिद्ध है। उसने स्वर्ग प्राप्त करने की इच्छा से रेवा नदी के तट पर स्थित पार्श्वनाथ मन्दिर को रेवाना ग्राम की सम्पूर्ण आय दान की थी।[3] सोमेश्वर का उत्तराधिकारी ११७९ ई० मे पृथ्वीराज तृतीय हुआ, जिसे धार्मिक वाद-विवाद का शौक था, फलत उसके दरबार मे जिनपति सूरि एव पडित पद्मप्रभ के मध्य ११८२ ई० मे वाद-विवाद आयोजित किया गया,[4] जिसमे उपकेशगच्छीय चैत्यवासी पद्मप्रभ परास्त हो गये।

चौहानो की एक शाखा ने नाडोल मे ९६० से १२५२ ई० तक शासन किया था। अश्वराज चौहान सोलकी शासक कुमारपाल के अधीनस्थ था। अश्वराज ने जैन धर्म स्वीकार कर लिया था तथा अपने राज्य मे अहिंसा के पालनार्थ निश्चित दिनो मे पशु हिंसा का निषेध घोषित कर रखा था। इसके शिला लेखो से विदित होता है कि कई जैन मन्दिरो मे उसने दान दिये थे। अश्वराज ने अपने पुत्र कटुकराज को सेवादी ग्राम की जागीर दी थी, जहाँ पर वीरनाथ (महावीर स्वामी) का प्रसिद्ध जैन मन्दिर था। सेवादी से १११० ई० के प्राप्त शिलालेख मे अश्वराज के समय मे प्रदत्त दान का विवरण है। इस प्रज्ञापन के अनुसार पद्राडा, मेद्रचा, छेछडिया एव मेद्दडी ग्राम के प्रत्येक कूप वाले किसान को एक हारक यव (जौ) धर्मनाथ देव की दैनिक पूजा, अर्चना हेतु महास्थानीय उप्पलराक द्वारा समीपाटी-मदिर मे देने का आदेश था। १११५ ई० के दूसरे शिलालेख से विदित होता है कि कटुकराज ने आठ द्रम वार्षिक का अनुदान थल्लक को दिया था ताकि वह शिवरात्रि के दिन खत्तक मे प्रतिष्ठित शांतिनाथ की पूजा करे।[5]

---

१ खरतरगच्छ बृहद्गुर्वावली, पृष्ठ १६

२ Catalogue of the Manuscripts in the Patna Bhandaras, p 370

३ Epigraphia Indica, Vol XXIV, p 84

४ खरतरगच्छ बृहद्गुर्वावली, पृष्ठ २५–३३

५ Epigraphia Indica, Vol XI, p 30–32

महाराज रायपाल ने भी जैन धर्म को सरक्षण प्रदान किया था। नाडलाई अभिलेख से विदित होता है कि रायपाल की राज्ञी मानलदेवी और पुत्रगण—रुद्रपाल और अमृतपाल ने ११३२ ई० मे जैन साधुओ हेतु प्रति तेलघानी से राजभाग मे से दो पलिकाए तेल दानस्वरूप दिये जाने की घोषणा की थी।[१] नाडलाई से प्राप्त ११३८ ई० के शिलालेख से विदित होता है कि महाराज रायपाल के शासनकाल मे गुहिल ठाकुर राजदेव ने नेमिनाथ भगवान् की पूजा हेतु नड्डुलाडगिक से आयात-निर्यात होने वाले भार की आय का बीसवाँ भाग दान दिया था।[२] नाडलाई के ११४३ ई० के तृतीय शिलालेख मे महावीर के मन्दिर को महाराज रायपाल के राज्य मे दी गई सुविधाओ का विवरण है, जबकि रावल राजदेव ठाकुर थे।[३] यही से प्राप्त चतुर्थ शिलालेख[४] मे रावल राजदेव द्वारा ११४३ ई० मे मन्दिर हेतु प्रति घाणक दो पलिकाए तेल दान देने का आदेश हे।

सोलकी कुमारपाल के सामत महाराज आल्हणदेव ने अपने स्वामी के पक्ष मे किराट कूप, लाटहृंडा एव शिवा ग्रामो मे ११५२ ई० मे[५] महाजनो तथा ताम्बुलिको के आत्म सतोष के लिये प्रति मास अष्टमी, एकादशी एव चतुर्दशी को पशु हिंसा का निषेध कर दिया था तथा इसका उल्लघन कर पशु हिंसा करने या पशु हिंसा का कारण बनने वाले के लिये उसने गम्भीर दण्ड का प्रावधान घोषित कर दिया था। यह कदम आल्हणदेव की जैन धर्म के प्रति अगाध श्रद्धा को व्यक्त करता है। ब्राह्मणो, पुरोहितो तथा मत्रियो को भी पशुहिंसा निषेध से सम्बद्ध इस प्रज्ञापन का पालन करने का आल्हणदेव ने निर्देश दिया था। आल्हण एव केल्हण के नाडोल दान पत्र से विदित होता है कि उन्होने राजपुत्र कीर्तिपाल को बारह ग्राम दिये थे तथा ११६० ई० मे नाडलाई मे सूर्य एव महेश्वर की आराधना कर स्नान करने के पश्चात् कीर्तिपाल ने अपने प्रत्येक ग्राम की ओर से नाडलाई के जिन महावीर मन्दिर हेतु दो द्रम वार्षिक दान की घोपणा लिखवाई थी।[६]

आल्हणदेव का पुत्र केल्हणदेव ने भी जैनधर्म के उत्थान हेतु सहयोग प्रदान किया था। उसके ११६४ ई० के साडेराव के शिलालेख से विदित होता है कि राजमाता अण्हल्लदेवी ने सन्डेरक गच्छ के मूल नायक तीर्थंकर महावीर हेतु भूमिदान किया था।[७] लालराई के द्वितीय शिलालेख से विदित होता है कि सम्नाणक के स्वामी राजपुत्र लाखनपाल एव अभयपाल के अधीनस्थ कृपक—भीवडा, आशाधर एव अन्यो ने तीर्थकर शांतिनाथ से सम्बद्ध गुर्जरो के उत्सव के लिये चार सेर जौ अपने खेत —खाडिसीरा से[८] आत्म कल्याणार्थ भेंट दिया था।

कीर्तिपाल ने चाहमान राजधानी नाडोल से जबालिपुर स्थानातरित कर ली थी, फलत. जवालिपुर से भी जैन धर्म के उत्थान के उल्लेख मिले हैं। महाराज आल्हण के पौत्र एव महाराज कीर्तिपालदेव के पुत्र महाराज समरसिंह के राज्यकाल के ११८२ ई० के जालोर शिलालेख के अनुमार

१ Epigraphia Indica, Vol XI, p 34–35

२ वही, पृ० ३७-४१

३ वही, Vol IX, पृ० १५६

४ वही, पृ० ६३-६६

५ वही, Vol XI, पृ० ४३–४६

६ वही, Vol IX, पृ० ६६–७०

७ वही, Vol XI, पृ० ४६–४७

८ वही, पृ० ५०–५१

श्रीमाल परिवार के सेठ यशोवीर ने अपने भाई एव गोष्ठी के समस्त सदस्यो के साथ एक मण्डप निर्मित करवाया था।[1] चाहमान महाराज समरसिंह के आदेश से भण्डारी यशोवीर ने कुमारपाल द्वारा निर्मित पार्श्वनाथ मन्दिर का पुनरुद्धार ११८५ ई० मे जालोर मे करवाया था।[2] चाहमान शासक चाचिगदेव के शासनकाल मे १२४५ ई० मे तेलिया ओसवाल नरपति ने भगवान् महावीर के मन्दिर के भण्डार मे ५० द्रम दिये थे।[3] १२७५ ई० के एक अन्य शिलालेख से विदित होता है कि सामतसिंह के राज्यकाल मे नरपति ने पार्श्वनाथ-मदिर मे भेंट अर्पित की थी।[4]

चौहानो के उदार राज्यकाल मे राजस्थान के मारवाड, अजमेर, बिजोलिया, एव सोम्भर के क्षेत्रो मे जैन धर्म का उत्कर्ष और प्रसार हुआ था। चौहान शासको के जैनेतर धर्मों के अनुयायी होने पर भी हिन्दू देवी-देवताओ के साथ-साथ सहिष्णुतावश जैन तीर्थंकरो की भी अर्चना करते रहे तथा जैनमतावलम्बियो के उत्सवो मे भाग लेकर अपनी जैन-प्रजा के प्रति सौहार्द्रता का परिचय देते रहे।

चावड़ तथा सोलकी राजवश

जैन धर्म को चावड एव सोलकी शासको का सरक्षण प्राप्त हुआ था, इन राजवशो के शासनकाल मे जैन धर्म का अधिक प्रचार हुआ। ये राजवश शैवधर्मानुयायी थे, परन्तु जैन धर्म एव साधुओ के प्रति सहिष्णुतावश आदर भाव रखते थे। कुछ शासको ने स्वय भी जैन धर्म के प्रचार मे सहयोग दिया। प्रसिद्ध विद्वान् हेमचन्द्र के चरित्र, पाडित्य एव प्रभाव के कारण जैन धर्म का गुजरात और राजस्थान मे अत्यधिक प्रसार हुआ था। विद्वता तथा जीवन की पवित्रता की दृष्टि से हेमचन्द्र की तुलना शकराचार्य से ही की जा सकती है।

अन्हिलवाड के सस्थापक वनराज ने चावड वश की स्थापना की थी। वनराज ने शीलगुण सूरि को अपनी राजधानी आने को आमन्त्रित किया तथा अपना सम्पूर्ण राज्य सूरिजी के चरणो मे अर्पित करने की तत्परता व्यक्त की। शीलगुणसूरि के प्रति इतनी श्रद्धा का कारण यह बताया गया है कि जब वनराज जगल मे पलने पर सोया हुआ था, उस समय सूरिजी ने उसके शारीरिक लाञ्छनो को देखकर भविष्यवाणी की थी कि यह बालक आगे चलकर राजा बनेगा। निःस्वार्थ भाव रखने वाले त्यागी सूरिजी ने इसको स्वीकार नही किया, परन्तु सूरिजी के आदेशानुसार वनराज ने अणहिलपुर पाटन मे पचासर नाम के मन्दिर का निर्माण करवाकर भगवान् पार्श्वनाथ की प्रतिमा प्रतिष्ठित की।[5] वनराज ने अपनी नवस्थापित राजधानी अणहिलपुर पाटन मे बसने हेतु श्रीमाल तथा मरुधर देश के अन्य स्थानो के जैन व्यापारियो को आमन्त्रित भी किया था।

मूलराज सोलकी ने वनराज के वशज अतिम चावड राजा से करीब ९४२ ई० मे सत्ता हस्तगत कर ली। मूलराज शक्तिशाली शासक था, इसके राज्य क्षेत्र मे सारस्वत, सत्यपुरमण्डल तथा

---

१ Epigraphia Indica, Vol XI, पृ० ५२–५४

२ Progress Report of Archaeological Survey, Western Circle 1908–09, p 55

३ वही, पृ० ५५   ४ वही, पृ० ५५

५ प्रबन्धचितामणि, वनराज प्रबन्ध, पृ० १५

कुमारपाल विद्या प्रेमी श्रौर विद्वानो का श्राश्रयदाता था, उसने श्रपने राज्य मे विभिन्न स्थानो पर २१ शास्त्र भण्डारो की स्थापना की थी।[४] वह एक महान् निर्माता भी था, मेरुतु ग के अनुसार उसने १४४० मन्दिर निर्मित करवाये थे।[५] कुमारपाल से सम्बद्ध बहुसख्यक मन्दिर बताना अतिरजित हो सकता है, परतु उसने बडी तादाद मे जैन मदिर अवश्य बनवाये थे। ११३४ ई० के अभिलेख[६] से विदित होता है कि उसने जालोर मे एक जैन मन्दिर का निर्माण करवाया था। कुमारपाल की मृत्यु के बाद राजनीतिक अस्थिरता के कारण जैन धर्म की उन्नति मे बाधा अवश्य आई, परन्तु जैन राजनयिको के प्रभाव एव प्रयत्न से जैन धर्म विकासोन्मुख बना रहा।

जैन धर्म ने विमल, वस्तुपाल श्रौर तेजपाल जैसे महापुरुषो की सरक्षता मे उन्नति की। ये श्रावक जैन धर्म के प्रसार हेतु सदैव प्रयत्नशील रहे। चालुक्य शासक भीम प्रथम ने विमल को अपना प्रान्तीय शासक नियुक्त किया था, इसने भीम श्रौर धन्धू के मध्य मैत्री स्थापित करवाई तथा धन्धू के

१ प्रबन्धचिंतामणि, मूलराज-प्रबन्ध, पृ० २२
२ प्रभावक चरित्र, पृ० १७१—८२, प्रबन्धचिंतामणि, पृ० ७८—८२
३ प्रबन्धचिंतामणि, पृ० ११०
४ प्रभावक चरित्र, पृ० ६२
५ प्रबन्धचिंतामणि, पृ० ११५
६ Progress Report of Archaeological Survey, Western Cirle 1908–09, P 55

आदेश से १०३२ ई० मे आबू मे आदिनाथ के एक सौन्दर्यपूर्ण एव विशाल मन्दिर का निर्माण करवाया।

वस्तुपाल एव तेजपाल पहले भीम द्वितीय के मत्री थे, जिन्हे वीरधवल के अनुरोध पर मैत्रीवश बाघेला राज्य की सेवार्थ भीम ने भेज दिया, फलत बाद मे ये वीरधवल के मन्त्री रहे। सोमसिह के शासनकाल मे वस्तुपाल के अनुज तेजपाल ने १२३० ई० मे आबू मे नेमीनाथ का मन्दिर निर्मित करवाया तथा अपने पुत्र लूणसिह की स्मृति मे मन्दिर का नाम लूणवसही दिया। यह मंदिर कला का अद्भुत उदाहरण माना जाता है।

परमार राजवश •

परमार शासको ने भी जैन धर्म की उन्नति मे योगदान अर्पित किया था। सिरोही रियासत के दियाणा ग्राम के जैन मन्दिर मे ९६७ ई० के शिलालेख[1] मे कृष्णराज के शासन काल मे विष्टित परिवार के वर्द्धमान द्वारा वीरनाथ की मूर्ति प्रतिष्ठित करने का विवरण है। ऐतिहासिक दृष्टि से दियाणा का यह जैन शिलालेख कृष्णराज परमार का समय निश्चित करने मे अत्यत महत्त्वपूर्ण है। कृष्णराज, आबू के परमार राजवश मे उत्पलराज का पौत्र एव आरण्यराज का पुत्र तथा आबू के परमारो से सम्बद्ध यह सबसे प्राचीन अभिलेख है।

झाडोली के महावीर जैन मन्दिर के ११९७ ई० के शिलालेख[2] से ज्ञात होता है कि परमार राजा धारावर्ष की रानी शृ गारदेवी ने मन्दिर हेतु भूमिदान दी थी। चन्द्रावती के शासक आल्हणसिह के शासन काल मे पार्श्वनाथ मन्दिर को भेंट देने का विवरण १२४३ ई० के अभिलेख से विदित होता है।[3] चन्द्रावती के महाराज वीसलदेव और सारगदेव के शासनकाल मे दत्ताणी के परमार ठाकुर द्वय श्री प्रताप और हेमदेव ने पार्श्वनाथ मन्दिर के व्यय हेतु दो खेत १२८८ ई० मे दान दिये थे।[4] रावल महिपालदेव के पुत्र सूहडसिह ने भी इसी मन्दिर को धार्मिक महोत्सव मनाने के लिये ४०० द्रम दान किये थे। दियाणा से प्राप्त १३३४ ई० के शिलालेख[5] से विदित होता है कि महाराज तेजपाल और उनके मत्री कूपा ने एक हौज बनवाकर महावीर स्वामी के मन्दिर को भेट किया था।

धार के परमार शासको ने भी जैन धर्म के प्रति सहिष्णुता दिखलाई। राजस्थान के विस्तृत क्षेत्र—मेवाड, सिरोही, कोटा और झालावाड इनके शासनान्तर्गत थे। इन प्रदेशो मे जैन धर्म को लोकप्रियता का ज्ञान बिखरे हुए जैन अवशेषो से होता है। धार का परमार शासक नरवर्मन शैव था, परन्तु जैन धर्म के प्रति आचार्य जिनवल्लभसूरि के कारण श्रद्धालु था। खरतरगच्छ की एक परम्परा के अनुसार नरवर्मन के दरबार मे दो दाक्षिणात्य ब्राह्मण एक समस्या के निदान हेतु धार आये थे, धार के विद्वानगण उक्त समस्या का सतोषप्रद हल नही कर सके, फलत राजा ने उन ब्राह्मणो को जिनवल्लभसूरि के पास चित्तौड भेज दिया। सूरिजी ने तुरन्त सतोषप्रद हल निकाल दिया। जब जिनवल्लभसूरि धारा नगरी आये तो राजा नरवर्मन ने उनको राजमहल मे आमन्त्रित किया

---

१ अबु दाचल प्रदक्षिणा जैन लेख सदोह, सख्यक ३११ २ वही, सख्यक ३११

३ Annual Report of the Rajputana Museum, Ajmer, 1909–10, No 22

४ अबु दाचल प्रदक्षिणा जैन लेख सदोह, सख्यक ५५ ५ वही, सख्यक ४९०

तथा सूरिजी के विद्वतापूर्ण उपदेशो से अत्यन्त प्रभावित हुआ। नरवर्मन ने जिनवल्लभसूरि को तीन ग्राम या ३० हजार द्रम दान लेने की इच्छा व्यक्त की, जिसे सूरिजी ने स्वीकार नही किया। सूरिजी के अनुरोध पर नरवर्मन ने चित्तौड के चूगीगृह से वहा के खरतरगच्छ के दो मन्दिरो को दो द्रम दैनिक दिये जाने के आदेश दिये।[1]

हठु डी का राठौड राजवश .

हठु डी, मारवाड मे बीजापुर के निकट है, जहा से दसवी शताब्दी मे राठोडो का शासन करना ज्ञात होता है। सामान्यतः यह राठोड राजवश जैनधर्मावलम्बी विदित होता है।[2] वासुदेवाचार्य के उपदेश से प्रभावित होकर हठु डी मे हरिवर्मन के पुत्र विदग्धराज ने ऋषभदेव का मन्दिर निर्मित करवाकर भूमि दान मे दी थी। विदग्धराज के पुत्र ममत्त ने भी इसी मन्दिर को कुछ दान दिये थे। ममत्त के पुत्र धवल ने अपने पितामह द्वारा निर्मित इस मन्दिर का नवीनीकरण करवाया तथा जैन-धर्म की कीर्ति स्थापित करने हेतु प्रत्येक प्रकार के प्रयत्न किये। हठु डी के इस मन्दिर को 'हस्तिकुण्डी की गोष्ठी' ने पुन सुधरवाया था तथा उसके बाद वासुदेवाचार्य के शिष्य शातिभद्र के हाथो १०५३ ई० मे प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवाई थी, जिसमे कुछ जैन श्रावको ने भी सहयोग प्रदान किया था। इन राठोड शासको का स्वर्ण से तुलकर, स्वर्ण गरीबो मे बाटने के भी सन्दर्भ मिलते है।[3]

सूरसेन राजवश .

आधुनिक भरतपुर रियासत के क्षेत्रो पर प्राचीन सूरसेन राजवश ने छठी से बारहवी शताब्दियो तक शासन किया था। इनके शासनकाल मे जैन-धर्म का प्रसार एव उन्नति होने के कतिपय साक्ष्य मिले है। कुछ सूरसेन शासको ने जैन-धर्म को स्वीकार कर इसे सरक्षण दिया तथा कई मूर्तियो की प्रतिष्ठा करवाई। प्रसिद्ध जैनाचायो ने सूरसेन प्रदेश की यात्रा की तथा कुछ ने इस क्षेत्र मे निवास भी किया था।

सूरसेन जनपद की प्राचीन राजधानी मथुरा तो जैनधर्म का प्रसिद्ध केन्द्र था, परन्तु प्राचीन स्मारको को मुस्लिमो ने तोड-फोड डाला। भरतपुर क्षेत्र मे जैनधर्म से सम्बद्ध उल्लेख दसवी शताब्दी से मिलते है। मेवाड के राजा अल्लट ने समकालीन प्रद्युम्नसूरि को सपादलक्ष एव त्रिभुवनगिरि के राज दरबारो मे सम्मानित किया गया था।[4] प्रद्युम्नसूरि के शिष्य अभयदेवसूरि ने धनेश्वरसूरि को जैनसाधु होने की प्रेरणा दी थी। धनेश्वरसूरि 'त्रिभुवनगिरि का कर्दमभूपति' के नाम से प्रसिद्ध हैं, यद्यपि कर्दम इनका नाम था कि विरुद, अज्ञात है। धनेश्वरसूरि ने राजगच्छ की स्थापना की तथा ये धार के परमार शासक वाक्पति मुञ्ज के समकालीन माने जाते है,[5] मुञ्ज की अन्तिम तिथि

१ खरतरगच्छ बृहद्गुर्वावली, पृष्ठ–१३
२ Dr K C. Jain Jainism in Rajasthan, pp 26–27
३ Nahar Jain Inscriptions, Pt I No 898
४ Peterson's Reports, 3, pp 158–62
५ जैन साहित्य नो सक्षिप्त इतिहास, पृष्ठ १९७–९८

६६७ ई० थी। इस कर्दमभूपति की पहिचान ११५५ ई० के अनगपालदेव के थाकरदा (डूगरपुर) अभिलेख[1] मे उल्लेखित राजा पृथ्वीपालदेव उर्फ भर्तृपट्ट से की जाती है। इस अभिलेख मे पृथ्वीपालदेव उर्फ भर्तृपट्ट के पुत्र त्रिभुवनपालदेव, पौत्र विजयपाल एव प्रपौत्र सूरपालदेव के भी उल्लेख हैं, यद्यपि इनका राजवश का नाम नही है, परन्तु ये सूरसेन शासक ही रहे होगे।

दिगम्बर जैन कवि दुर्गदेव ने अपनी कृति 'ऋष्ट समुच्चय' की रचना १०३२ ई० मे राजा लक्ष्मीनिवास के शासनकाल मे कुम्भनगर के शान्तिनाथ मन्दिर मे पूर्ण की थी।[2] इस कुम्भनगर की पहिचान भरतपुर के निकटवर्ती कामा से की जाती है। इसमे उल्लेखित राजा लक्ष्मीनिवास की पहिचान १०१२ के बयाना अभिलेख[3] मे वर्णित चित्रलेखा के पुत्र लक्ष्मणराज से की जाती है। राजा विजयपाल के शासनकाल के श्वेताम्बर काम्यकगच्छ के विष्णुसूरि एव महेश्वरसूरि के नामोल्लेखयुक्त बयाना के १०४३ ई० के शिलालेख[4] मे महेश्वरसूरि के निर्वाण का विवरण है। इसी विजयपाल को दुर्ग का पुर्नर्निर्माण एव विस्तार कर विजयमदिरगढ नाम देने का श्रेय दिया जाता है। काम्यकगच्छ की स्थापना भरतपुर के निकटवर्ती कामा से मानी जाती है तथा इसी क्षेत्र मे श्वेताम्बरो के इस गच्छ का विस्तार भी ज्ञात है। बयाना से प्राप्त इन जैन अभिलेखो मे नगर का नाम श्रीपथ दिया है, जो कि बयाना का प्राचीन नाम था। बयाना तहसील के नरोली ग्राम से भी ११३६ ई० की लेखयुक्त जैन प्रतिमाए[5] मिली हैं, जिससे यह क्षेत्र जैन धर्म का जीवन्त केन्द्र प्रकट होता है।

बयाना का अन्तिम सूरसेन शासक कुमारपाल था, जो कि ११५४ ई० मे सिंहासन पर बैठा। इस कुमारपाल को जैनसाधु जिनदत्तसूरि ने धार्मिक शिक्षा दी थी। यहा के शातिनाथ मन्दिर पर स्वर्णकलश एव ध्वज जिनदत्तसूरि द्वारा प्रतिष्ठित करवाने का समारोह बड़े उत्साह से मनाया गया था।[6] जिनदत्तसूरि के दो शिष्यो—जिनपालगणि एव धर्मशीलगणि ने यशोभद्राचार्य के निकट अध्ययन किया था। अपने गुरु जिनदत्तसूरि की आज्ञा मिलने पर ११८८ ई० मे त्रिभुवनगिरि के सघ को लेकर इन्होने तीर्थयात्रा की तथा अन्य सघो के साथ जिनदत्तसूरि से भेंट की।[7] त्रिभुवनगिरि के दुर्ग मे १२वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे वादिदेवसूरि ने किसी प्रकाड विद्वान् को वादविवाद मे परास्त करने का गौरव अर्जित किया था।[8] त्रिभुवनगिरि मे उपकेशगच्छ से सम्बद्ध एक प्राचीन मन्दिर भी था।[9] उपर्युक्त विभिन्न उल्लेखो से भरतपुर के निकटवर्ती क्षेत्रो मे सूरसेन राजवश के अन्तर्गत जैनधर्म की प्रतिष्ठा एव प्रसार का ज्ञान होता है।

[४]

राजस्थान की विभिन्न रियासतो मे जैन धर्म

राजस्थान के विभिन्न देशी रियासतो मे विभाजित रहने के पश्चात् भी जैन-धर्म उन्नतिशील

१ Annual Report of the Rajputana Museum, Ajmer 1915–16 p 3
२ Singhi Jain Series Vol 21 (Introduction)
३ Epigraphia Indica, Vol 22, p 120   ४ Indian Antiquary, Vol 21, p 57
५ Progress Report of the Archaeological Survey, Western Circle, 1920–21, p 116
६ खरतरगच्छ वृहदगुर्वावली, पृष्ठ–१६   ७ वही, पृष्ठ ३४
८ भारतीय विद्या, जिल्द २, भाग १, पृष्ठ ६२   ९ वही

वना रहा । मध्यकाल मे अनेक मन्दिर निर्मित हुए तथा उनमे मूर्तियो की प्रतिष्ठा की गई । अनेक पवित्र ग्र थो की प्रतिया तथा मौलिक ग्र थ लिखे गये । राजा एव राजनयिको ने जैन-साधुओ को आदर की दृष्टि से देखते हुए, जैनधर्म के प्रति उदारता और सहिष्णुता का परिचय दिया, जिसके कारण राजस्थान मे जैन धर्म एव अहिंसा का प्रभाव अक्षुण्ण वना रहा ।

मेवाड .

मेवाड के महाराणाओ तथा उनके जैन मन्त्रियो ने जैन-धर्म के प्रसार एव उन्नति हेतु कई प्रयत्न किये । मन्दिर निर्माण, मूर्तियो की प्रतिष्ठा, अहिंसा पालन की उद्घोषणा तथा जैनाचार्यो का हार्दिक स्वागत एव प्रवचन-श्रवण द्वारा मेवाड मे जैनेतर धर्मावलम्वी होते हुए भी राणाओ ने जैन-धर्म के प्रति सहिष्णुता वनाये रखी ।

राणा भर्तृभट्ट (९४३ ई०) ने भर्तृपुर[१] वसाया तथा गुहिलविहार निर्मित करवाकर चैत्रपुरीय गच्छ के वूदगणि के द्वारा उसमे आदिनाथ की मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई[२] । इसके पुत्र अल्लट के मन्त्री ने आघाट मे मन्दिर वनवाकर पार्श्वनाथ की मूर्ति की प्रतिष्ठा सन्डेरक गच्छ के यशोदेवसूरि द्वारा करवाई । जिनप्रवोधसूरि के समकालीन चित्तौड के महारावल क्षेत्रसिंह थे,[३] जिन्होने सूरिजी के करीव १२७७ ई० मे चित्तौड पदार्पण पर व्राह्मणो, सामतो और कर्णराज के साथ भव्य स्वागत किया था[४] । महाराणा समरसिंह और उनकी माता जयतल्लादेवी, देवेन्द्रसूरि के उपदेश से प्रभावित होकर उनके भक्त हो गये । चित्तौडगढ के १२७८ ई० के शिलालेख[५] से मेदपाट और चित्रकूट के स्वामी तेजसिंह की रानी जयतल्लादेवी ने वहा पार्श्वनाथ का मन्दिर वनवाया था । समरसिंह ने मन्दिर के पश्चिम मे प्रद्युम्नसूरि हेतु विहार वनाने को भूमिदान दी थी तथा भर्तृपुरीय गच्छ के जैन मन्दिर को साध्वी सुमाला के उपदेशो से प्रभावित होकर अपनी माता जयतल्लदेवी के आत्मकल्याणार्थ कुछ भूमिदान मे दी थी ।[६] देवेन्द्रसूरि के उपदेशो से प्रभावित होकर समरसिंह ने अपने राज्य मे पशुहिंसा का निषेध घोपित कर प्रजा को अध्यादेश मे मदिरा त्याग करने और न्यायपूर्ण एव धार्मिक जीवन व्यतीत करने का परामर्श भी दिया था । राणा के पुत्र तेजक ने अपनी पत्नी रत्नदेवी और पुत्र विजयसिंह के साथ जयतल्लादेवी के लिए १३०६ ई० मे एक जिनमूर्ति प्रतिष्ठित की थी, जो कि प्रतापगढ के मन्दिर के मूर्ति-लेख[७] से ज्ञात है ।

महाराणा मोकल के खजाची ने अपने स्वामी के आदेश से १४२८ ई० मे महावीर-मन्दिर वनवाया था ।[८] नागदा के पार्श्वनाथ मन्दिर को १४२९ ई० मे पोरवाल जाति के एक व्यापारी ने निर्मित करवाया था ।[९] मोकल के पुत्र महाराणा कुम्भा के शासनकाल मे कई जैन मन्दि- और

---

१ Annual Report of the Rajputana Museum, Ajmer, Yr 1914–15 No 1

२ जैन सत्य प्रकाश, वर्ष ७, दीपोत्सवाक, पृष्ठ १४६–४७

३ जैन साहित्य नो सक्षिप्त इतिहास, पृष्ठ १९३ ४ -रतरगच्छ वृहद्गुर्वावली, पृष्ठ ५६

५ Annual Report of the Rajputana Museum, Ajmer, 1922–23, No 8

६ वही, No 9 ७ वही, 1921–22, No 3

८ मध्यप्रान्त, मध्यभारत और राजपूताने के प्राचीन जैन स्मारक, पृष्ठ १३-

९ Progress Report of the Archaeological Survey, Western Circle, 1904–05 p 62

मूर्तिया वनी तथा स्वय महाराणा ने सादडी का प्रसिद्ध जैन मन्दिर बनवाया[1] जिसे राणकपुर का मन्दिर कहा जाता है। चित्तौड का प्रसिद्ध कीर्तिस्तम्भ को बघेरवाल जीजा के पुत्र पुन्नसिंह ने अपनी पुत्री की प्रेरणा से तथा महाराणा कुम्भा की अनुमति से दुर्ग के अन्दर निर्मित करवाया था।[2] रणपुर एव कमलगढ के प्रसिद्ध चौमुखा मन्दिर कुम्भा के ही शासनकाल मे बने थे। देलवाडा के जैन विहार के निकट पडे शिलालेख से विदित होता है कि महाराणा कुम्भा के शासनकाल मे धर्मचिन्तामणि मन्दिर मे पूजा हेतु १४ टका दान किये गये थे।[3] इसके शासनकाल मे एक व्यापारी सारग ने नागदा के अद्भुदजी मन्दिर मे शान्तिनाथ की मूर्ति १४३७ ई० मे प्रतिष्ठित की थी।[4] कुम्भा के कोषाधिकारी साह केल्हा के पुत्र भण्डारी वेलाक ने १४४८ ई० मे जैन तीर्थंकर शांतिनाथ का मन्दिर निर्मित करवाया था।[5] वसन्तपुर (वसन्तगढ) चैत्य मे धनसी के पुत्र भादाक ने मुनि सुन्दरसूरि के द्वारा एक जैनमूर्ति की प्रतिष्ठा १४५३ ई० मे करवाई थी।[6] अचलगढ की कांसे की आदिनाथ मूर्ति के पादपीठ अभिलेख से विदित होता है कि जब महाराजाधिराज कुम्भा का कुम्भलमेरू पर शासन था, तब डूगरपुर मे रावल सोमदास के शासनकाल मे वनी इसी प्रतिमा को तपागच्छ-सघ द्वारा आबू मे लाया गया था।[7]

राणा कुम्भा के पुत्र राणा रायमल के शासनकाल के १४६६ ई० के उदयपुर-अभिलेख से ज्ञात होता है कि महावीर और अम्बिका के मन्दिर वनवाये गये थे।[8] मेवाड के राणा रायमल के ज्येष्ठ पुत्र पृथ्वीराज के आदेश से सीहा एव समदा ने नादलाई मे आदिनाथ प्रतिमा का प्रतिष्ठा समारोह किया था।[9]

महाराणा प्रताप ने हीरविजयसूरि को मेवाडी मे पत्र लिखकर[10] धर्म-प्रचार हेतु मेवाड आने का १५७८ ई० मे निमन्त्रण दिया था। प्रताप के पुत्र अमरसिंह ने भी जैनमन्दिर को १६०२ ई० मे दान दिया था।[11] महाराणा जगतसिंह के शासनकाल मे जैनधर्म की समृद्धि मे वृद्धि हुई। १६२६ ई० मे जयमल ने सम्पूर्ण सघ सहित नादोल[12] एव नादलाई[13] मे प्रतिमा प्रतिष्ठित की थी। आचार्य महाराज देवसूरि के गुणगान मे प्रभावित होकर जगतसिंह ने उन्हें चातुर्मास हेतु उदयपुर आमन्त्रित

---

१ History of Indian and Eastern Architecture p. 240

२ अनेकात, वर्ष ८, क्रमाक ३

३ Annual Report of the Rajputana Museum, Ajmer, 1923-24, No 7

४ Progress Report of the Archaeological Survey, Western Circle, 1905-6 p 61

५ Annual Report of the Rajputana Museum, Ajmer, 1920-21, No 10

६ Annual Report of the Rajputana Museum, Ajmer, 1923-24 No 8

७ वही, 1925-26, No 8

८ Progress Report of the Archaeological Survey, Western Circle, 1905-06, p 60

९ वही, 1908-09, p 43   10 राजपूताना के जैन वीर, पृष्ठ ३४१-४२

११ Progress Report of the Rajputana Museum, Ajmer, 1907-08 p 48-49

१२ वही, 1908-09 p 46   १३ वही, p 43

करने के लिये अपने प्रधानमन्त्री झाला कल्याणसिंह को भेजा था। देवसूरि का उदयपुर मे शानदार स्वागत किया गया तथा उनके उपदेशो से प्रभावित होकर जीवहिंसा रोकने से सम्वन्धित आदेश निकाले, इनमे उदयपुर की पिछोला एव उदयसागर झील मे मछली पकडने पर रोक; महाराणा के जन्मदिन वाले मास, राज्याभिषेक की तिथि तथा भाद्रपद मास मे सम्पूर्ण राज्य मे जीवहिंसा की मनाही आदि प्रमुख हैं। वरकाना मे वार्षिक सम्मेलन मे जाने वाले लोगो से राणा ने शुल्क नही लेने के चु गीघर को आदेश दिये तथा मचिन्द दुर्ग पर राणा कुम्भा द्वारा निर्मित जैन मन्दिर को उसने सुधरवाया। जगतसिंह को उदयपुर के जैनमन्दिर मे भगवान् ऋषभदेव की प्रतिमा की पूजा करने[1] का भी श्रेय दिया जाता है।

मेवाड के राजघराने के सरक्षण मे जैनधर्म की उन्नति होती रही। महाराणा राजसिंह के प्रधानमन्त्री दयालशाह ने १६७५ ई० मे राजनगर मे जैन मन्दिर वनवाकर जैनाचार्य विजयसागर के द्वारा मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई थी।[2]

वागड

राजस्थान के डू गरपुर, वासवाडा और प्रतापगढ राज्यो का सम्मिलित क्षेत्र वागड कहलाता था। इन तीनो राज्यो मे शासको की सहिष्णुतापूर्ण नीति एव जैनानुयायी मन्त्रियो के कारण मन्दिरो का निर्माण हुआ तथा मूर्तियो की प्रतिष्ठाए भी ठाटवाट से सम्पन्न हुई। जैन समाज के प्रभाव से अहिंसा का पालन तेली तक करते ज्ञात होते है। वागड सघ का सबसे प्राचीन उल्लेख ९९४ ई० के मूर्ति-लेख से होता है।[3] वागड प्रदेश की प्राचीन राजधानी 'वटपद्र' थी, जिसकी पहिचान 'वरोद' से की जाती है। यहा पर एक चट्टान पर २४ तीर्थंकरो की प्रतिमाए उभारी गई हैं, जिन्हे १३०७ ई० के अभिलेख के अनुसार खरतरगच्छ के जिनचन्द्रसूरि ने स्थापित करवाई थी।[4] मेवाड के धुलेवा मे स्थापित केसरियाजी की प्रतिमा भी यही से ले जाई गई थी।[5]

डू गरपुर का प्राचीन नाम गिरिवर था, जिसकी स्थापना १३५८ ई० मे की गई थी। जयानन्द के 'प्रवासगीतिकात्रय' से विदित होता है कि १३७० ई० मे यहा पाच जैन-मन्दिर तथा नौ-सौ जैन परिवार थे।[6] रावल प्रतापसिंह के मन्त्री प्रहलाद ने १४०४ ई० मे एक जैन-मन्दिर वनवाया था।[7] गजपाल के शासनकाल की चार ग्र थो की हस्तलिखित प्रतिया—पञ्चप्रस्थान-विपमपद व्याख्या (१४२३ ई०), द्वाश्रय महाकाव्य सटीक (१४२८ ई०) द्वितीय खण्ड ग्र थाग्रत्रिय-सकलग्र था (१४२९ ई०) और कथाकोष (१४३० ई०), मिली हैं।[8] इसके मन्त्री साभा ने आतरी मे शान्तिनाथ का मन्दिर वनवाकर तीर्थंकर की कांसे की मूर्ति प्रतिष्ठित की थी।[9] गजपाल के वाद उसके पुत्र

---

१. राजपूताना के जैनवीर पृष्ठ ३४१ २. केशरियाजी तीर्थ का इतिहास, पृष्ठ—२७
३ Dr K C Jain Jainism in Rajasthan p 32 (जयति श्री वागट सघ)
४ डू गरपुर राज्य का इतिहास, पृष्ठ—१ ५ वही, पृष्ठ—१५
६ मेवाड राज्य का इतिहास ७ श्री महारावल रजत जयन्ती अभिनन्दन ग्र थ, पृष्ठ ३९७
८ Annual Report of the Rajputana Museum, Ajmer, 1915-16
९ श्री महारावल रजत जयन्ती अभिनन्दन ग्र थ, पृष्ठ ३९८

सोमदास के शासनकाल मे डूगरपुर मे निर्मित आदिनाथ की काँसे की विशाल प्रतिमा अचलगढ मे सपरिवार साभा सहित तपागच्छ के सघ द्वारा पधराई गई थी।[१] साभा के वाद उसका पुत्र साल्हा सोमदास का मुख्यमन्त्री वना, जिसने १४६४ ई० के अकाल के समय दो हजार व्यक्तियो को प्रतिदिन भोजन करवाया था।[२] गिरिपुर के पार्श्वनाथ मन्दिर को सुधरवाया था तथा अपने पिता साभा द्वारा निर्मित आतरी के मन्दिर मे एक मण्डप एव देवकुलिकाएँ वनवाई थी, जिसका प्रतिष्ठा समारोह १४६८ ई० मे सोमविजयसूरि द्वारा सम्पन्न हुआ था। डूगरपुर से पाच मील दूर अपने जन्म-स्थान थाना मे साल्हा ने एक विशाल जैन-मन्दिर बनवाना आरम्भ किया था, जो पूर्ण नहीं हो सका।[३] रावल सोमदास के शासनकाल मे सिद्ध-हेम वृहद-वृत्ति, श्री सुकुमाल स्वामी-चरित्रम् और काव्यकल्प लता कवि शिक्षावृत्ति लिखी गई थी।[४] इसके शासनकाल मे जैन-मूर्तियो के प्रतिष्ठा समारोह १४६२ ई० एव १४७३ ई० मे सम्पन्न हुए थे।[५] सोमदास के समय का किसी जैन साधु का स्मारक भी मिला है।[६] वासवाडा रियासत के नौगामा मे स्थित शान्तिनाथ मन्दिर के भीत्ति लेख से ज्ञात होता है कि १५१४ ई० मे राजा उदयसिह के शासनकाल मे ⁸ वड जाति के डोसी चम्पा तथा उसके पुत्रो एव पौत्रो ने यह मन्दिर निर्मित करवाया था।[७] डूगरपुर एव वासवाडा मे जैन धर्म की लोकप्रियता एव उत्थान का ज्ञान परवर्तीयुग की प्राप्त वहुसख्यक मूर्तियो से होता है।[८]

प्रतापगढ रियासत मे जैन-धर्म के उत्थान का ज्ञान देवली, झासदी, एव प्रतापगढ के जैन-मन्दिरो की १४वी और १५वी शताब्दियो की लेखयुक्त मूर्तियो से होता है। देवली मन्दिर की १३१६ ई० की पार्श्वनाथ के कास्य-मूर्तिलेख से विदित होता है कि इसे धन्धलेश्वरवाटक निवासी श्रीमाल जाति के ठाकुर खेटाक ने प्रतिष्ठित करवाया था।[९] देवली के १७१५ ई० के शिलालेख से विदित होता है कि महारावल पृथ्वीसिह के राज्यकाल मे सारंया एव जीवराज नामक महाजनो के अनुरोध पर स्थानीय तेलियो ने वर्ष मे ४४ दिन अपने कार्य को बन्द रखने का निश्चय किया था।[१०] इसी राजा के शासनकाल मे मल्लिनाथ का मन्दिर देवली मे सिघवी वर्धमान ने १७१७ ई० मे वनवाया था।[११] महारावल सामन्तसिह के राज्यकाल मे आदिनाथ का मन्दिर धनरूप, मनरूप एव अभयचन्द्र ने १७८१ ई० मे निर्मित करवाया था।[१२] प्रतापगढ मे जैनमूर्तियो का एक विशाल प्रतिष्ठा समारोह १७७८ ई० मे सम्पन्न हुआ था।

कोटा

कोटा रियासत मे वारा, कोपवर्धन (शेरगढ) श्रीनगर, अत्रु, विलास आदि जैन-धर्म के प्रसिद्ध प्राचीन केन्द्र थे। पद्मनन्दि ने वारा मे 'जम्बूद्वीपपण्णति' की रचना आठवी शताब्दी मे की थी, इस

---

१ Annual Report of the Rajputana Museum, Ajmer, 1929–30 No 3
२ वही, 1925–26, No 8 ३ डूगरपुर राज्य का इतिहास, पृष्ठ ५८
४ श्री महारावल रजत जयन्ती अभिनन्दन ग्र थ, पृष्ठ ३९९
५ डूगरपुर राज्य का इतिहास, पृष्ठ ७०–७१
६ Annual Report of the Rajputana Museum, Ajmer, 1916–17
७ वही, 1916–17 No 5 ८ वही, 1914–15 ९ वही, 1921–22 No 6
१० वही, 1934–35, No 17 ११ वही, No 18 १२ वही, No 20

तथा १५६५ ई० में उदयसिंह के शासनकाल में दो देवालय बाई गोरगडे एव लक्ष्मी के कल्याणार्थ[१] निर्मित हुए थे। अकबर के निमत्रण पर जब हीरविजयसूरि फतहपुरसीकरी जा रहे थे, तब शासक सुरतानसिंह ने उन्हे ससम्मान सिरोही रोका था तथा मास, मदिरा एव आखेट को त्यागकर एक–पत्नीव्रत की प्रतिज्ञा ग्रहण की थी और सूरि के परामर्श पर कुछ कर भी माफ किये थे।[२] इसके पुत्र महाराजा राजसिंह के समय सिरोही में चतुर्मुखा मन्दिर १५७७ ई० में बना था।[3] अखैराज धर्मदास के शासनकाल में १६६२ ई० में सिंहविजय की पादुका वीरवाडा (ब्राह्मणवाडा) मे चतुर्विधसघ द्वारा प्रतिष्ठित की गई थी[४] तथा १६६४ ई० में उदयभान एव जगमाल[५] ने आदिनाथ और शीतलनाथ की मूर्तियो की प्रतिष्ठा करवाई थी। इसी समय पेशुवा[६] में सम्पूर्ण सघ ने कुथुनाथ की प्रतिमा का प्रतिष्ठा महोत्सव किया था।

मानसिंह के शासनकाल में पीठा ने १७१४ ई० में सूरि की पादुका प्रतिष्ठित की थी तथा भट्टारक चक्रेश्वरसूरि ने जनकल्याणार्थ १७३० ई० में मडार में अन्य साधुओ के साथ प्रतिष्ठा समारोह किया था।[७] राजा शिवसिंह ने वामणवाडा ग्राम का पशु और भूमि पर लगने वाला कर वहा के जैन-मन्दिर को १८१९ ई० में जागीर के रूप में प्रदान कर दिया था।[८]

जैसलमेर

जैसलमेर के भाटी राजवश के अतर्गत इस प्रदेश में जैनधर्म का प्रसार हुआ। मरुस्थल के मध्य होने से विध्वसको से शास्त्र भण्डारो, जैन-मन्दिरो एव मूर्तियो की सुरक्षा बनी रही। मन्दिरो, मूर्तियो, जैनाचार्यों की पादुकाए, शास्त्र भण्डरो आदि की स्थापना तथा स्थानीय श्रावक सघो द्वारा जैनतीर्थों की यात्राओं से भाटी शासको की सहिष्णुता एव जैनधर्म के प्रति श्रद्धा का ज्ञान होता है। जैसलमेर राज्य की पुरानी राजधानी लोद्रवा थी। जिसके नष्ट होने पर जैसलमेर हुई। करीब ९९४ ई० में यहा के शासक सगर को खरतरगच्छ के आचार्य वर्धमानसूरि के शिष्य जिनेश्वरसूरि के वरदान से दो पुत्र–श्रीधर एव राजधर उत्पन्न हुए, फलत उसने पार्श्वनाथ का मन्दिर बनवाया था,[९] जिसका पुनर्निर्माण १६१८ ई० में सेठ थाहरूशाह ने करवाया था।[१०]

विक्रमपुर (अब बीकमपुर) खरतरगच्छीय जैनो का केन्द्र था, जहा इस गच्छ के कई आचार्य धार्मिक समारोहो में आते रहे। जिनवल्लभसूरि ने ११११ ई० में विक्रमपुर की यात्रा की थी[११] तथा जिनपतिसूरि तो ११५३ ई० में यही जन्मे थे। विक्रमपुर के कुछ जैनो ने जिनपतिसूरि से विभिन्न अवसरो पर दीक्षा ली थी तथा ११७५ ई० में इन्होने भाण्डागारिक गुणचन्द्र-गणि के स्तूप का प्रतिष्ठा समारोह[१२] सम्पन्न किया था। जिनपतिसूरि के साथ स्थानीय श्रावको ने अभयकुमार के नेतृत्व में अणहिलपट्टन से ११८५ ई० में निकलने वाले सघ में सम्मिलित होकर तीर्थयात्राए की थी।[१३]

१ वही, सख्यक ३८३ एव ३८४ २ सूरीश्वर और सम्राट अकबर, पृष्ठ १८८
३ प्रदक्षिणा जैन लेख सदोह, सख्यक २५० ४ वही, सख्यक २९८
५ वही, सख्यक २४३ एव २५७ ६ वही, सख्यक ५०४
७ वही, सख्यक १०१ एव १०३ ८ वही, सख्यक ३०४
९ Nahar Jain Inscriptions pt III No 2543 १० वही, सख्यक २५४४
११ खरतरगच्छ बृहद्गुर्वावली, पृष्ठ १३ १२ वही, पृष्ठ २४ १३ वही, पृष्ठ ३४

जिनप्रवोधसूरि ने महाराजा कर्ण के अनुरोध पर १२८३ ई० मे चातुर्मास जैसलमेर मे किया था।[1] जिनराजसूरि के उपदेशो से प्रभावित होकर राजा लक्ष्मणसिंह के शासनकाल मे यहा चिन्तामणि पार्श्वनाथ का मन्दिर १४१६ ई० मे निर्मित कर[2] लोद्रवा से पार्श्वनाथ प्रतिमा लाकर प्रतिष्ठित की गई थी तथा जैन प्रजा की राजा के प्रति श्रद्धा के कारण मन्दिर का नाम राजा के नाम पर 'लक्ष्मण विलास' रखा गया। इसके पुत्र वैरीसिंह के समय पासड ने इस मन्दिर मे सुपार्श्वनाथ की मूर्ति १४३६ ई० मे प्रतिष्ठित की थी[3] तथा १४३७ ई० मे साह हेमराज एव पूना ने सम्भवनाथ का मन्दिर वनवाया,[4] जिसमे सम्भवनाथ-मूर्ति का प्रतिष्ठा समारोह १४४० ई० मे हुआ और तभी जिनभद्र ने तीन सौ जैन प्रतिमाए प्रतिष्ठित की थी। राजा वैरीसिंह ने प्रतिष्ठा समारोह मे भाग लिया था। इसी समय साह लोला ने भी पार्श्वनाथ की खड्गासन प्रतिमा १४४० ई० मे स्थापित की थी।[5] वैरीसिंह के पुत्र चाचिगदेव के शासन काल मे सजाक,[6] सचोहराज[7] एव सज्जा[8] ने क्रमश. नन्दीश्वरपट्टिका, शत्रुञ्जय गिरनारावतार पट्टिका और नन्दीश्वरपट्टिका की प्रतिष्ठा जिनचन्द्रसूरि के द्वारा १४६१ ई० मे करवाई थी।

देवकरण के शासन मे भी जैनधर्म को प्रोत्साहन मिला था, साखवालेचा खेटा एव चोपडा पञ्चा ने १४७९ ई० मे दो मन्दिर[9] शातिनाथ और अष्टापद के वनवाये थे तथा सघवी खेटा ने सपरिवार कई वार तीर्थयात्रा की और सम्भवनाथ मन्दिर मे तपपट्टिका का प्रतिष्ठा समारोह किया। पाटन के धनपति ने १४७९ ई० मे यहा के पार्श्वनाथ मन्दिर मे शातिनाथ-विम्व की प्रतिष्ठा की थी[10] तथा हेमा[11] और भीमसी[12] ने जिनवरेन्द्र पट्टिका १४७९ ई० मे निर्मित करवाई थी। देवकरण के ही शासनकाल मे मरुदेवी की प्रतिमा[13] ऋषभ-मन्दिर मे प्रतिष्ठित की गई थी।

जैसलमेर के परवर्ती शासको के समय भी जैनधर्म की उन्नति अविरल रही। भीमसेन के शासनकाल मे सघवी पासदत्त ने १५९३ ई० मे जिनकुशलसूरि की पादुका स्थापित की थी[14] तथा पार्श्वनाथ मन्दिर मे स्तम्भ-प्रतिष्ठा १६०६ ई० मे सम्पन्न[15] हुई। कल्याणदास के राज्यकाल मे जिनसिंहसूरि ने १६१५ ई० मे जिनचन्द्रसूरि की पादुका[16] वनवाई और मत्री टोडरमल ने १६१६ ई० मे उपासरा का द्वार वनवाया[17] तथा १६२१ ई० मे जिनसिंहसूरि ने जैसलमेर पधारकर लक्ष्मणविलास मन्दिर मे लोद्रवा से लाई गई चिंतामणि पार्श्वनाथ की मूर्ति की प्रतिष्ठा सम्पन्न की।[18]

वुधसिंह के शासनकाल में गगाराम ने १७१२ ई. में तत्त्वसुन्दरगणि के धर्मोपदेश पर प्रतिमाए प्रतिष्ठित करवाई थी।[19] अखैसिंह के राज्यकाल में जिनउदयसूरि की पूज्यपादुकाए १७४९ एव १७५५ ई० में उनके अनुयायियो ने स्थापित की थी।[20] मूलराज के शासनकाल मे जिनयुक्तसूरि का

१ खरतरगच्छ-वृहदगुर्वावली, पृष्ठ ५८ २ Nahar Jain Inscriptions pt III No 2112
३ वही, पृष्ठ २११४ ४ वही, पृष्ठ २१३९ ५ वही, पृष्ठ २१४५ ६ वही, पृष्ठ २११६
७ वही, पृष्ठ २११७ ८ वही, पृष्ठ २११९ ९ वही, पृष्ठ २१५४ १० वही, पृष्ठ २१२०
११ वही, पृष्ठ २४०४ १२ वही, पृष्ठ २४०६ १३ वही, पृष्ठ २४०० १४ वही, पृष्ठ २४९४
१५ वही, पृष्ठ २५९५ १६ वही, पृष्ठ २४९७ १७ वही, पृष्ठ २४४७ १८ वही, पृष्ठ २४९८
१९ Nahar Jain Inscriptions, pt III No 2501 २० वही, पृष्ठ २५०८ व २५०९

स्तूप, १७६८ ई० मे बनवाया गया था[1] तथा पडित रूपचन्द्र के द्वारा १७८६ ई० मे थम्ब पादुका[2] और श्रावक सघ द्वारा निर्मित ऋषभदेव-मन्दिर मे १८०४ ई० मे प्रतिमा[3] की प्रतिष्ठाए सम्पन्न हुई थी। इसी तरह १७८४ ई० मे स्तम्भ प्रतिष्ठा[4] और १८१८ ई० मे एक स्तम्भ को ऊचा[5] किया गया था।

मूलराज के उत्तराधिकारी गजसिंह के शासनकाल मे आचार्य जिनउदयसूरि का स्मृति महोत्सव स्थानीय सघ ने १८१९ ई० मे मनाया था।[6] स्थानीय श्रावको ने सपरिवार तीर्थयात्रा कर वहा भोज, पूजा, दान, रथयात्रा आदि पुण्यकर्म १८३४ ई० मे सम्पन्न किये थे।[7] महारावल गजसिंह के शासनकाल मे जैसलमेर मे ओसवालो ने जिनहर्षसूरि की भग्न पादुकाओ का पुर्नानिमाण[8] किया तथा १८४० ई० मे सघवी गुमानमल ने अमरसागर के निकट भग्न जैन-मन्दिर का सस्कार करवाकर आदिनाथ की प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवायी थी।[9] इसी के शासनकाल मे जिनमहेन्द्रसूरि ने १८४४ ई मे जिनचन्द्र के शिष्य जितरगगणि की पादुका स्थापित की थी।[10]

रणजीतसिंह के शासनकाल मे जैसलमेर के जैनसघ ने १८४६ ई० मे आदिनाथ का मन्दिर बनवाकर मुनि डूगरसी के द्वारा प्रतिष्ठा सम्पन्न की थी[11] तथा १८६० ई० मे साहिबचन्द्र ने जिन-मुक्तिसूरि के द्वारा अमरसागर पर पादुका स्थापित करवाई थी।[12] इस प्रकार जैसलमेर के राजवश ने जैन-धर्म एव सास्कृतिक आयोजनो की प्रगति मे सहयोग दिया।

जोधपुर

जोधपुर के राठोड शासको ने जैन-धर्म के प्रति सहिष्णुता तथा जैनाचार्यों के प्रति श्रद्धा व्यक्त की, फलतः कई मन्दिर निर्मित हुए और जिन मूर्तियो के प्रतिष्ठा समारोह सम्पन्न हुए। जोधपुर राज्य की पुरानी राजधानी खेडा के शासक मल्लिनाथ के राठोड उत्तराधिकारियो द्वारा शासित 'नगर' जैन-धर्म का प्रसिद्ध केन्द्र था, जो जसोला से तीन मील की दूरी पर स्थित है। गोविन्दराज ने १५५९ ई० मे मोदराजगणि के परामर्श पर यहा के महावीर-मन्दिर को रडुडा के शासनकाज मे दान दिया था।[13] रावल कुषकरण के शासनकाल मे विरमपुर के सघ ने १५११ ई० के शिलालेख के अनुसार विमलनाथ मन्दिर मे रगमण्डप बनवाया था।[14] रावल मेघविजय के समय १५५७ ई० मे शातिनाथ का नलिमण्डप निर्मित हुआ था[15] तथा १५८० ई मे एक मन्दिर मे सुधार कार्य किया गया था।[16] रावल तेजसिंह के शासनकाल मे स्थानीय सघ ने शातिनाथ-मन्दिर मे सुधार कार्य करवाया था[17] तथा १६१० ई० मे ऋषभदेव-मन्दिर के अभिलेखानुसार कुछ पुर्निर्माण भी हुआ था।[18] स्थानीय जैनो ने रावल जगमल के शासनकाल मे महावीर-मन्दिर मे नाकोडा पार्श्वनाथ हेतु चतुष्किका १६२१ ई० मे बनवाई थी[19] तथा १६२४ ई० मे निर्गम चतुष्किका और तीन खिडकिया पार्श्वनाथ मन्दिर मे जुडवाई थी।[20]

१ वही, पृष्ठ २५०३ व २५०२ २ वही, पृष्ठ २५११ ३ वही, पृष्ठ २५७५
४ वही, पृष्ठ २५१० ५ वही, पृष्ठ २५०४ ६ वही, पृष्ठ २५०४ ७ वही, पृष्ठ २५३०
८ वही, पृष्ठ २५८५ ९ वही, पृष्ठ २५२४ १०, वही, पृष्ठ २४९९ ११. वही, पृष्ठ २५१८
१२ वही, पृष्ठ २५४२ १३ Nahar Jain Inscriptions, No 931
१४ Progress Report of the Archaeslogical Survey, Western Circle, 1911-12 p. 54
१५ वही १६ वही १७ वही १८ वही १९. वही २० वही

जोधपुर के राठोड शासको ने भी जैन-धर्म के प्रसार और उन्नति मे योगदान दिया था। सूर्यसिह के राज्यकाल मे वस्तुपाल ने १६१२ ई० मे पार्श्वनाथ-प्रतिमा की प्रतिष्ठा की थी।[१] गर्जसिह के समय १६२१ ई० मे भामा ने कापडा मे पार्श्वनाथ-प्रतिमा प्रतिष्ठित की थी[२] तथा जालोर मे जयमल ने १६२६ ई० मे आदिनाथ, पार्श्वनाथ एव महावीर की नवनिर्मित मूर्तियो का प्रतिष्ठा समारोह किया था। गर्जसिह के शासनान्तर्गत मेडता[3] मे सुमतिनाथ की तथा पाली[४] मे पार्श्वनाथ की मूर्तियो के प्रतिष्ठा-समारोह १६२६ ई० मे सम्पन्न हुए थे। महाराजा अभयसिंह के अधीनस्थ मारोठ मे भक्तसिह एव वैरीसाल के शासनान्तर्गत १७३७ ई० मे मूर्ति-प्रतिष्ठा समारोह हुआ था।[५] अभयसिह के पुत्र रामसिह के शासनकाल मे गिरधरदास ने १७४६ मे विलाडा मे मन्दिर बनवाया था[६] तथा इसके सामत मेडतिया राजपूत हुकमसिह के समय भट्टारक विजयकीर्ति ने १७६७ ई० में मारोठ की यात्रा की थी।[७]

बीकानेर

बीकाजी ने अपने अनुयायियो सहित जोधपुर छोडकर १४८८ ई० में बीकानेर बसाया था। इनके उत्तराधिकारियो ने जैन-धर्म के प्रति श्रद्धाभाव बनाये रखा। महाराजा रायसिह ने १५८२ ई० में अकबर से सिरोही से १०५० जैनमूर्तिया अपने मत्री करमचन्द्र के अनुरोध पर प्राप्त की थी[८] तथा करमचन्द्र द्वारा लाहोर मे आयोजित युगप्रधानपदोत्सव में भाग लेकर जिनचन्द्रसूरि को शास्त्र-प्रतिया भेट की थी।[९] जयचन्द्रसूरि के पट्टधर जयसिंहसूरि से रायसिह का निकट सम्पर्क था तथा इनके शासनकाल में हम्मीर ने नेमीनाथ की प्रतिमा १६०५ ई० मे प्रतिष्ठित की थी। कर्णसिह (१६३१ ई०) ने जैन उपासरा बनवाने हेतु भूमिदान दी थी। जैनधर्म के प्रति सहिष्णु दृष्टिकोण के कारण जैनकवि धर्मवर्धन सूरि ने महाराज अनूपसिह के राज्यारोहण के अवसर पर प्रशस्ति रची थी। जिनचन्द्रसूरि से बीकानेर के शासको—अनूपसिह, जोरावरसिह, सज्जनसिह एव गर्जसिह का पत्र व्यवहार हुआ था। महाराज सूरतसिह (१७६५ ई०) ने जैन उपासरो हेतु भूमिदान दी थी तथा दादाजी के प्रति श्रद्धा के कारण दादावाडी को १५० बीघा भूमिदान में दी थी।[१०] इनके उत्तराधिकारी रतनसिह (१८२८ ई०) ने भी जैनधर्म एवं जैनाचार्यो के प्रति आदरभाव रखा था।

जयपुर

जयपुर के कच्छावा शासको, उनके जागीरदारो और ठाकुरो आदि ने जैनधर्म को प्रश्रय दिया। इस राजवश के दीवानो में करीब पचास जैन थे। जयपुर राज्य में अनेक शास्त्रो की प्रतिया

---

१. Nahar Jain Inscriptions, No 773 २ वही, पृष्ठ ६८१ ३ वही, पृष्ठ ७८३
४ Progress Report of the Archaeological Survey, Western Circle, 1907-8, p 45
५ Dr K C Jain . Jainism in Rajasthan, p 43, F No 1
६. Nahar Jain Inscriptions, No 937
७ Dr K C Jain Jainism in Rajasthan, p 43
८ बीकानेर जैन लेख सग्रह पृष्ठ २७ ९ वही, पृष्ठ ७ (प्रस्तावना)
१० बीकानेर जैन लेख सग्रह, पृष्ठ ८-११ (प्रस्तावना)

लिखी गई, अनेक मूर्तियो की प्रतिष्ठाए हुई और कई नवीन मन्दिर बनाये गये। करमचन्द्र के शासनकाल में भविष्यदत्तचरित्र की एक प्रति १५३८ ई० में लिखी गई थी।[1] १५५६ ई० में भारमल के समय नेमीनाथ मन्दिर में पाण्डव पुराण[2] और हरिवश पुराण[3] तथा इसके उत्तराधिकारी भगवानदास के शासनान्तर्गत मालपुरा मे वर्धमानचरित[4] की प्रति लिखी गई थी। मानसिंह के शासनकाल में मालपुरा के आदिनाथ मन्दिर मे हरिवश पुराण की प्रति १५८८ ई० में लिखी गई थी[5] तथा १५६१ ई० में खण्डेलवाल थानसिंह ने पावापुरी की यात्रा हेतु सघ निकाला था।[6] चम्पावती (चात्सु) के भट्टारक चन्द्रकीर्ति ने १६०५ ई० में एक स्तम्भ स्थापित किया था।[7] मानसिंह के ही शासनकाल में राजमहल (१६०४ ई०) एव सग्रामपुरा (सागानेर) में १६०५ ई० मे हरिवश पुराण की प्रति लिखी गई थी[8] तथा १६०७ ई० में जेता ने बडी सख्या में मूर्तियो का प्रतिष्ठा समारोह मोजमावाद में किया।[9]

मिर्जा राजा जयसिह ने शाहजहा के शासनकाल मे जैनधर्म को प्रश्रय दिया था। इसके मुख्यमत्री मोहनदास ने आम्वेर में विमलनाथ का मन्दिर बनवाया था।[10] सवाई जयसिह की सेवा तीन जैन मत्रियो—रामचन्द्र छावडा, राव कृपाराम एव विजयराम छावडा ने की थी। रामचन्द्र ने शाहवाद का जैन मन्दिर बनवाया था तथा भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति के पट्ट महोत्सव मे भाग लिया था। कृपाराम ने चात्सु का जैन मन्दिर तथा जयपुर में चाकसू का चौक, का विशाल जैन मन्दिर बनवाये थे। विजयराम ने १७४० ई० में सयुक्त समकित कौमुदी लिखवाकर पडित गोवर्धन को भेंट की थी।[11]

सवाई माधोसिह का मुख्यमन्त्री जैन बालचन्द्र छावडा था, जिसने अपने पूर्ववर्ती असहिष्णु ब्राह्मण श्यामराम द्वारा भग्न जैन मन्दिरो का पुनर्निर्माण किया तथा १७६४ ई० मे इन्द्रध्वज पूजा महोत्सव' का जयपुर मे सफल आयोजन[12] करवाया, जिसमे दीवान रतनचन्द्र शाह ने भी भाग लिया और एक जैन मन्दिर बनवाया। पृथ्वीसिह के शासनकाल मे नन्दलाल ने १७६६ ई मे भट्टारक सुरेन्द्र कीर्ति के परामर्श पर सवाई माधोपुर मे बडी सख्या मे मूर्तियो का प्रतिष्ठा समारोह किया तथा जयपुर और सवाई माधोपुर मे जैन मन्दिर निर्मित करवाये[13]। दीवान केसरीसिह कासलीवाल

---

१ कस्तूरचन्द कासलीवाल प्रशस्ति सग्रह, पृष्ठ १४८ २ वही, पृष्ठ १२६ ३ वही, पृष्ठ ७७

४ वही, पृष्ठ १७० ५ वही, पृष्ठ ७३

६ Dr K C Jain Jainism in Rajasthan, p 45 F No 6

७ Annual Report of the Rajputana Museum, Ajmer, 1927-28, No 11

८ प्रशस्ति सग्रह, पृष्ठ ७२

९ Dr K C Jain Jainism in Rajasthan p 45 F N 10

१० Annual Report of Rajputana Museum, Ajmer, 1925-26, No 11 & 1933-34, No 13

११ Dr K C Jain Jainism in Rajasthan p 46 F No 1 to 5

१२ वीरवाणी, पृष्ठ २९-३०

१३. Dr K C Jain Jainism in Rajasthan p 47 F No 2

ने जयपुर का सिरमोरिया जैन मन्दिर बनवाया था। माधोसिंह के राज्यकाल मे कन्हैयाराम ने 'वैद्यो का चैत्यालय' नामक जयपुर का जैन मन्दिर निर्मित करवाया था।

बालचन्द्र छाबडा का पुत्र रायचन्द्र जगतसिंह का मुख्यमन्त्री था, जिमने तीर्थयात्रार्थ सघो का नेतृत्व किया तथा भट्टारक सुरेन्द्र कीर्ति के परामर्श पर १८०१ ई० मे जूनागढ मे यन्त्र प्रतिष्ठा की[1] और १८०४ ई० मे जयपुर मे बडी सख्या मे मूर्तियो का प्रतिष्ठा[2] समारोह सम्पन्न किया। जगतसिंह के दीवान वखतराम ने जयपुर मे यति यशोदानन्दजी के नाम से प्रसिद्ध जैन-मन्दिर तथा दुर्गापुरा मे रोडपुरा का मन्दिर बनवाये थे। इसने अपनी जागीर अनतपुरा में भी एक मन्दिर बनवाया था, जो चाकसू के निकट है।

जयपुर राज्य के सामतो ने भी जैन-धर्म की उन्नति मे योगदान दिया। जोबनेर के सरदार विजयसिंह के शासन मे जैसा ने मूर्तिया प्रतिष्ठित १६६४ ई० मे की थी।[3] मालपुरा मे मारोठ के शासक अर्जुन गौड के शासन मे दशलक्षण यन्त्र की प्रतिष्ठा १६५३ ई० मे हुई थी।[4] मूलसघ के यशकीर्ति के परामर्श पर साहजीतमल एव नथमल ने १६०४ ई० मे आदिनाथ का मन्दिर रेवासा मे बनवाया था।[5] बैराट पर अकबर के अधीनस्थ इन्द्रराज शासन कर रहा था, उसने १५८७ ई० के अभिलेखानुसार विमलनाथ का मन्दिर बनवाया था।[6] तक्षकगढ (टोडारायसिंह) मे सोलकी शासक सूर्यसेन के समय उनियारा के निकट आनवा मे सघवी कालु ने १५३६ ई० मे मूर्तिया प्रतिष्ठित की थी[7] तथा राव रामचन्द्र के शासनकाल मे यशोधर चरित्र की दो प्रतिया १५५३[8] एव १५५५ ई०[9] मे लिखी गई थी। टोडारायसिंह के महाराजा जगन्नाथ के समय १६०७ ई० मे 'आदिनाथ पुराण' की प्रति आदिनाथ मन्दिर मे लिखी गई थी।[10] तथा राजसिंह के मन्त्री वादिराज ने यहाँ १६७२ ई० मे 'वाग्भटालकाराव चूरि कविचन्द्रिका' लिखी थी।[11]

चाकसू जैनधर्म के प्राचीन केन्द्रो मे एक है, जहा विभिन्न ग्रन्थो की प्रतिया १५२५ ई० से १५५६ ई० तक लिखी गई थी।[12] इन प्रतियो मे लिखी गई प्रशस्तियो से तत्कालीन शासको का ज्ञान होता है। १७२६ ई० मे जयपुर के निकट बासखोह मे हृदयराम ने स्थानीय शासक चौहडसिंह के समय मूर्तियो की प्रतिष्ठा की थी।[13]

---

१ Dr K C Jain, Jainism in Rajasthan p 47 F N 3
२ वही F N 4 ३ वही p. 48 F N 1 ४ वही F N 2
५. Annual Report of the Rajputana Museum Ajmer, 1934-35 No 11
६ Progress Report of the Archaeological Survey, Western Circle, 1909-10 pp 44
७ वीरवाणी, ४, पृ० १०९–१० ८ कासलीवाल प्रशस्तिसग्रह पृ० १६८
९ वही, पृ० १६३ १० वही, पृ० ८९
११ जैनग्र थ प्रशस्तिसग्रह, सख्यक १४१
१२ कासलीवाल प्रशस्ति सग्रह, पृ० ६३, ५४, ९९, १७५ एव ९४
१३ Dr K C Jain Jainism in Rajasthan, p 49 F N 11

अलवर

अजवगढ,[1] नौगामा[2] एव राजगढ[3] मे ग्यारहवी शताब्दी के जैन वास्तु अवशेष मिले हैं। फिरोज तुगलक के समय मुस्लिम बने खानजादास-शासको के काल मे भी जैन-धर्म की उन्नति के प्रतीक १५-१६वी शताब्दी के वास्तु-नमूने है। मध्यकालीन तीर्थमालाओ[4] मे अलवर के रावण-पार्श्वनाथ को स्थलरूप मे तीर्थ माना गया है। अलवर के निकट पारानगर के भग्नावशेषो से यह स्थल प्राचीन जैन केन्द्र ज्ञात होता है। जैन साधुओ ने अलवर को पवित्रता के कारण मध्य युग मे धार्मिक साहित्य का सृजन किया था।[5] यहाँ १५६७ ई० मे साधुकीर्ति ने 'मौन एकादशी', १६४२ ई० मे शिवचन्द्र ने 'विदग्धमुखमण्डनवृत्ति', १६२५ ई० मे लालचन्द्र ने 'देवकुमार चौपाई', विनयचन्द्र ने १८२१ ई० मे 'महिपाल चौपाई आदि की रचना की थी तथा १५४३ ई० मे हसदूत लघुसघत्रयी और १५४६ ई० मे लघुक्षेत्रसमास की प्रति लिखी गई थी। खानजादास शासको के समय तिजारा और वहादुरपुरा मे कुछ ग्र थो की प्रतिया १५-१६वी शताब्दियो मे लिखी गई थी।[6]

१५१६ ई० के जैनशिलालेख से विदित होता है कि बहुद्रव्यपुर मे श्रीमाल सघ ने आदिनाथ चैत्य बनवाकर आचार्य पुन्यरत्न सूरि के द्वारा मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई थी।[7] अलवर मे एक श्रावक ने १५३१ ई० मे सुमतिनाथ की प्रतिमा की प्रतिष्ठा[8] सिद्धसूरि से करवाई थी तथा १६१९ ई० मे काष्ठासघ के भट्टारक भूषण ने एक मूर्ति का प्रतिष्ठा समारोह किया था।[9] आगरा निवासी ओसवाल हीरानन्द के द्वारा अलवर मे रावण-पार्श्वनाथ का मन्दिर बनवाने का उल्लेख १६२८ ई० के अभिलेख मे है।[10]

राजस्थान मे जैन मन्दिर एव मूर्तिया राजपूत शासको के कारण मुस्लिम विध्वसको से सुरक्षित रही, फिर भी इन आक्रामको ने कई मन्दिरो को भूमिसात कर दिया तथा मूर्तियो और शास्त्र भण्डारो को नष्ट किया। जैन-मन्दिरो को मुस्लिमो ने तोड-जोड कर मस्जिदो मे परिणित किया, जिसके श्रेष्ठ उदाहरण अजमेर स्थित 'ढाई दिन का झोपडा', साचोर स्थित जामा मस्जिद, जालोर की मस्जिद, शाहबाद (कोटा) की मस्जिद आदि प्रमुख है। राजस्थान के विभिन्न नगरो मे कुतुबुद्दीन ऐबक, इल्तुतमीश, अलाउद्दीन एव नासीरउद्दीन खिलजी मुगल राजकुमार कामरान, औरगजेब आदि ने कई जैन-मन्दिरो को नष्ट करवाया था, जो जैन धर्म की उन्नति एव प्रसार मे बाधक हुआ। अग्रेजो के शासन काल मे राजस्थान प्रदेश के विभिन्न रजवाडो ने पूर्ववत जैनधर्म के प्रति सहिष्णुता एव उदारता की नीति रखी, जिसके कारण राजस्थान जैनो का जनसख्या की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण प्रदेश बना रहा।

---

१ Annual Report of the Rajputana Museum, Ajmer, 1918-19 Nos 4, 9 & 10
२. वही, 1919-20, Nos 3 & 4 ३ Archaeological Survey Reports, XX, p 124
४ जैन सत्यप्रकाश, १०, पृ० ९९ ५ अरावली, १, सख्यक १२
६ श्री प्रशस्ति सग्रह पृ० ९६, १०८, ११५, १२५ तथा ३५, ५४
७ Archaeolgical Survey Reports, XX पृ० 119
८ Nahar Jain Inscriptions, No 1464 ९ भट्टारक सम्प्रदाय, सख्यक ६८६
[१]० Annual Report of the Rajputana Museum, Ajmer, 1919-20 No 15

[५]

राजस्थान में जैन सघ, गण एव गच्छ

कालप्रवाह के साथ जैनधर्म विभिन्न सम्प्रदायो मे विभक्त हो गया जो कि ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । महावीर के जीवनकाल मे भी चातुर्याम धर्म मे विश्वास रखने वाले पार्श्वनाथ के अनुयायी विद्यमान थे, जो अन्ततः महावीर द्वारा सस्थापित सघ मे समाविष्ट हो गये थे । जैनो के मुख्य दो विभाग दिगम्बर और श्वेताम्बर राजस्थान मे बडी सख्या मे निवास करते है । जैन साहित्य एव अभिलेखो से जैनधर्मावलम्बियो के विभिन्न सघ, गण एव गच्छ के उल्लेख मिलते हैं । सघ एव गण शब्द राजनीतिक इकाई के द्योतक है । भगवान महावीर और गौतमबुद्ध गणतन्त्र राज्यो से सम्बद्ध थे, फलतः उन्होने अपने धार्मिक सगठन को भी उसी आदर्श पर सस्थापित किया था । गण के प्रधान को तत्कालीन भारत मे राजनीतिक एव धार्मिक क्षेत्र मे गणधर कहा जाता था । जैनधर्म के अनुयायी विभिन्न सघ एव गण मे सगठित हो गये । कालान्तर मे गण को गच्छ नाम से अभिहित किया जाने लगा ।

कल्पसूत्र[1] एव कुषाणयुगीन अभिलेखो[2] से विभिन्न जैन गणो का ज्ञान होता है । कल्पसूत्र के अनुसार प्रथम गण—गोदास की चार शाखाए एव कुल थे, द्वितीय गण उद्देह की स्थापना आर्य-रोहण ने की थी, जिसकी चार शाखाए एव छ कुल थे, तृतीय गण उडुवाटिक की भी चार शाखाए एव तीन कुल थे, चतुर्थ गण वेशवाटिक की स्थापना कामर्द्धि ने की थी तथा इसकी भी चार शाखाए एव कुल थे, पञ्चम गण चारण की चार शाखाए एव सात कुल थे, षष्ठ गण मानव की चार शाखाए एव तीन कुल थे तथा सप्तमगण कौटिक की स्थापना सुस्थित ने की थी और इसकी सात सात शाखाए एव चार कुल थे । कौटिक गण के आभिलेखिक उल्लेख उपलब्ध हैं, इनमे माध्यमिका शाखा का उद्भव चित्तौड के निकट वर्तमान नगरी के प्राचीन नाम माध्यमिका से हुआ था, जहां सुस्थित के द्वितीय शिष्य प्रियग्रथ ने इसकी स्थापना की थी ।[3] सख्या मे ८४ गच्छ माने जाते थे, जिनकी सख्या करीब १५० तक पहुँच गई है, जो परम्पारिक मात्र है । वास्तव मे विभिन्न समय मे विभिन्न गच्छो की स्थापनाए हुई थी, इनमे सिरोही, जैसलमेर, मारवाड एव मेवाड प्रदेश मे स्थान, कुल, महानपुरुष, पुण्यकर्म आदि नामो से प्रसिद्ध गच्छो का आधिक्य ज्ञात है ।

दिगम्बर संघ एव गण

आरम्भिक अभिलेखो से विदित होता है कि राजस्थान के दिगम्बर आचार्य किसी सघ या गण से सम्बद्ध नही थे, या नाम देने की परम्परा नही थी । रूपनगर के ९६१ ई० के स्तम्भलेख मे मेघसेनाचार्य का[4] तथा १०१६ ई० के स्तम्भलेख[5] मे पद्मसेनाचार्य का उल्लेख है । झालरापाटन के १००६ ई० के स्तम्भलेख[6] मे नेमिदेवाचार्य एव वलदेवाचार्य वर्णित हैं । अलवर के नौगामा[7] मे दिगम्बर

---

१ Luders Epig Notes, I A XXXIII p 109,

२. Epigaphia Indica, Vol II, pp 382

३ Kalpsutra, S B E Vol XXII p 293

४ Progress Report of the Archaeological Survey, Western Circle, 1910–11 p 43

५ Annual Report of the Rajputana Museum, Ajmer 1912–13 No 2

६ वही, 1919–20 No 3 ७ वही, 1919–20 No 4

जैन-मूर्ति-लेखो मे आचार्य विजयकीर्ति के शिष्य नरेन्द्रकीर्ति (१११८ ई०) का और ११३८ ई० के मूर्तिलेख मे आचार्य गुप्तनन्दि का उल्लेख है। राजस्थान के परवर्ती अभिलेखो मे सघ, गरण एव गच्छ के उल्लेख मिलते है। मूलसघ, कष्ठा सघ, द्राविड सघ, माथुर सघ आदि की स्थापना दक्षिण भारत मे हुई थी, जहा से आचार्यो के साथ-साथ यह परम्परा भी उत्तर भारत मे प्रचारित हो गई।

मूलसघ

दिगम्बर जैनो का सबसे प्राचीन सघ—मूलसघ है, जिसके प्रणेता परवर्ती अभिलेखो से कुन्दकुन्दाचार्य ज्ञात होते है,[1] यद्यपि पट्टावलियो[2] मे माघनन्दी माने गये है। चतुर्थ एव पन्चम शताब्दी के दो अभिलेखो मे[3] कुन्दकुन्द एव मूलसघ के छ. आचार्यो का उल्लेख है, जिसके आधार पर कुन्दकुन्दाचार्य का समय द्वितीय शताब्दी माना जाता है। इन आरम्भिक अभिलेखो मे मूलसघ एव कुन्दकुन्दान्वय का एक साथ उल्लेख नही है, अतएव प्रथम शताब्दी मे दिगम्बर एव श्वेताम्बर भेद के समय से मूलसघ का अस्तित्व प्रकट है। गुप्तिगुप्त के प्रभाव से स्थापित बलात्कार गरण तथा पद्मनन्दि के चमत्कार से सरस्वती गच्छ के नाम से प्रख्यात गरण का मूलसघ से सम्बन्ध ग्यारहवी शताब्दी के अभिलेखो से ज्ञात होता है।[4] राजस्थान मे चौदहवी से उन्नीसवी शताब्दी के बीच के अभिलेखो मे मूलसघ के आचार्यो की लोकप्रियता तथा उनके उपदेशानुसार लिखित शास्त्र-प्रतियो, निर्मित मन्दिरो और प्रतिष्ठित मूर्तियो के उल्लेख उपलब्ध हैं। मूलसघ के परवर्ती आचार्यों का केन्द्र १०८३ मे कोटा रियासत का बारा माघचन्द्र द्वितीय ने (५३ वे आचार्य) स्थापित किया था। ७७वें आचार्य वसन्तकीर्ति (१२०८ ई०) के समय केन्द्र अजमेर हो गया, इसके पूर्व बारा से ६४वे आचार्य ने मूलसघ का केन्द्र चित्तौड से स्थानातरित कर ७४वें आचार्य ने बघेरा स्थापित कर लिया था। अजमेर मे ८४वें आचार्य पद्मनन्दि के द्वारा मूलसघ का भट्टारक केन्द्र वागड प्रदेश मे ईडर स्थापित हो गया क्योकि अजमेर से आचार्य प्रभाचन्द्र द्वितीय वागड प्रदेश मे मूर्तियो की प्रतिष्ठा करने जा नही सके थे, फलत वागड प्रदेश के जैन श्रावको ने पद्मनन्दि को सूरि पद प्रदान कर १३२८ ई० मे धार्मिक प्रधान (भट्टारक) दे दी।[5]

भट्टारक दिगम्बर जैनो हेतु धार्मिक शासक की बतौर थे। पद्मनन्दि के जीवनकाल मे ही उनके दो शिष्यो मे भेद हो गया और शुभचन्द्र ने चित्तौड मे भट्टारक गद्दी स्थापित की[6] और सकलकीर्ति गुरु के उत्तराधिकारी हुए। चित्तौड मे भट्टारक जिनचन्द्र के दो शिष्यो मे प्रभाचन्द्र चित्तौड रहे और रत्नकीर्ति ने नागौर मे गद्दी स्थापित करली।[7] नगौर मे पुन विभेद उत्पन्न हुआ तो भट्टारक धर्मचन्द्र वही बने रहे और रत्नकीर्ति द्वितीय अजमेर मे सस्थापित हो गये।[8] चित्तौड का भट्टारक केन्द्र चन्द्रकीर्ति ने चाटसु स्थानातरित कर दिया, जो कालान्तर मे सागानेर, आम्बा और आम्बेर स्थानातरित होते हुए अन्तत जयपुर में यह स्थापित हो गया।[9] पद्मनन्दि के पूर्ववर्ती स्थानीय भट्टारको का इतिवृत्त एव कृतित्व अज्ञात है।

---

१ जैन शिलालेख सग्रह, प्रथम खण्ड सख्यक ५   २ Indian Antiquary XX, p 341
३ जैन शिलालेख सग्रह, द्वितीय खण्ड, सख्यक ६० एव ६४ तथा ६५ मे छ आचार्य ४६६ ई० मे वर्णित
४ वही सख्यक २०८   ५ Dr K C Jain   Jainisum in Rajasthan p 74–75
६ वही   ७. वही   ८ वही   ९ वही

ईडरपट्ट

पट्टावलियो के अनुसार पद्मनन्दि १३२५ ई० में बागड के भट्टारक बने, जबकि मूर्ति लेखो से ज्ञात होता है कि ये १४१५ ई० तक जीवित थे। दिगम्बर पुरातत्व सग्राहलय उज्जैन के पाच मूर्ति लेखो[१] से १२५२ ई० में लाटवागड सघ के भट्टारक कल्याणकीर्ति के द्वारा मूर्तिया प्रतिष्ठित करवाने का उल्लेख है जिन्हे वागडान्वय कहा गया है, अतएव वागड प्रदेश मे भट्टारक गद्दी के सस्थापक पद्मनन्दि प्रथम भट्टारक नही थे क्योकि एक मूर्तिलेख मे[२] कल्याणकीर्ति को स्पष्ट रूप से भट्टारक कहा गया है। सम्भवत· वागड की यह भट्टारक गद्दी मूलसघ से इतर थी और मूलसघ के अनुयायियो ने अपने भट्टारक के अभाव मे पद्मनन्दि को जैन श्रावको ने भट्टारक रूप मे सूरिमन्त्र देकर १३२५-२८ ई० मे ईडर मे प्रतिष्ठित किया होगा। पद्मनन्दि और उनके पट्टधर सकलकीर्ति ने कई मूर्तियो की प्रतिष्ठा करवाई थी।[3] भट्टारक सकलकीर्ति की उल्लेखयुक्त १४३९ ई० को एक मूर्ति दिगम्बर सग्रहालय, उज्जैन मे है।[४] सकलकीर्ति के पट्टधर भुवनकीर्ति और इनके पट्टधर ज्ञानभूषण ने भी कई मूर्तिया प्रतिष्ठित करवाई थी। भट्टारक विजय कीर्ति (१५१३ ई०), शुभचन्द्र (१५१५-५६ ई०) गुणकीर्ति, वादिभूषण, (१६०४ ई०) रामकीर्ति, पद्मनन्दि द्वितीय, देवेन्द्रकीर्ति क्षेमकीर्ति (१६३९ ई०) आदि ईडर के भट्टारको के उल्लेखयुक्त मूर्तिलेख एव शास्त्र प्रतिया मिली हैं।

चित्तौडपट्ट ·

पद्मनन्दि के शिष्य शुभचन्द्र द्वारा स्थापित चित्तौड के भट्टारक पट्ट के भट्टारको ने मूर्तियो की प्रतिष्ठा एव शास्त्रो की प्रतिया लिखवाकर जैन-धर्म की अनुपम सेवा की थी। शुभचन्द्र के पट्टधर जिनचन्द्र के,उपदेश से गुजरात के शहर मु डासा मे जीवराज पापडीवाल ने १४६१ ई० मे बहुसख्यक मूर्तियो की प्रतिष्ठा कर दूर-दूर तक बँटवाई थी, इनमे से कुछ राजस्थान के मन्दिरो मे हैं। चित्तौड पट्ट के भट्टारको मे चित्तौड से प्रभाचन्द्र, धर्मचन्द्र ललितकीर्ति, चात्सु मे चन्द्रकीर्ति, देवेन्द्रकीर्ति, नरेन्द्रकीर्ति, सुरेन्द्रकीर्ति, जगतकीर्ति, देवेन्द्रकीर्ति द्वितीय, आम्बेर से महेन्द्रकीर्ति क्षेमेन्द्रकीर्ति आदि ने मूर्तियो की प्रतिष्ठा, शास्त्रो की प्रतिया एव मन्दिर निर्माण हेतु अपने अनुयायियो को प्रोत्साहित किया।[५] चित्तौड पट्ट के भट्टारको ने अपनी विद्वता एव लोकप्रियता से जैनधर्म के उत्थान मे अत्यत महत्वपूर्ण योगदान किया था।

नागौरपट्ट .

जिनचन्द्र के दो शिष्य—प्रभाचन्द्र एव रत्नकीर्ति मे मे रत्नकीर्ति ने नागौर मे अलग भट्टारक पट्ट स्थापित किया था, परन्तु इनकी मृत्यु १५१५ ई० मे अजमेर मे हुई थी, जहा इनकी छत्री बनाई गई थी। रत्नकीर्ति के पट्टधर भुवनकीर्ति हुए, जिनके पट्टधर धर्मकीर्ति के अनुयायी ने १५४२ ई० मे धर्मपरीक्षा की प्रति लिखवाई थी।[६] नागौर पट्ट के भट्टारको मे विशालकीर्ति, लक्ष्मी-

---

१ मूर्ति सख्यक—१७, २१, १३०, १६३ एव २२७ २ मूर्ति सख्यक, १६३

३ Dr K C Jain Janism in Rajasthan p 75 (४) मूर्तिसख्यक ४७

४ Dr K C Jain Jainism in Rajasthan p 83–85

५ प्रशस्ति सग्रह, पृ० २१ ६ वही पृ० १०८

चन्द्र, सहस्रकीर्ति, नेमीचन्द्र, यशकीर्ति, भानुकीर्ति, भूषणकीर्ति, यशकीर्ति आदि से सम्बद्ध उल्लेख अधिक मिले हैं। भूषणकीर्ति के दो शिष्य—धर्मचन्द्र एव रत्नकीर्ति थे। इनमे धर्मचन्द्र तो पट्टधर हुए तथा रत्नकीर्ति द्वितीय ने अजमेर मे स्वतन्त्र भट्टारक गद्दी स्थापित की। धर्मचन्द्र के पश्चात् नागौर पट्ट के भट्टारको मे देवेन्द्रकीर्ति अमरेन्द्रकीर्ति, रत्नकीर्ति तृतीय आदि के उल्लेख मिलते हैं, जिन्होने कई पुण्य कार्य सम्पादित करवाये थे।

अजमेर पट्ट

नागौर पट्ट के भट्टारक भूषणकीर्ति के शिष्य रत्नकीर्ति द्वितीय ने अजमेर मे भट्टारक पट्ट की स्थापना की थी, जिसके अनुयायी सघी जेसा ने १६६४ ई० मे जोवनेर मे मूर्तियो की प्रतिष्ठा करवाई थी।[1] रत्नकीर्ति के पट्टधर विद्याधर हुए। अजमेर पट्ट के भट्टारको मे महेन्द्रकीर्ति, विजयकीर्ति, अनन्तकीर्ति, भुवनभूषण विजयकीर्ति द्वितीय, त्रिलोककीर्ति, भुवनकीर्ति, रत्नभूषण आदि द्वारा निर्मित छतरियो व चबूतरो और मूर्तिप्रतिष्ठा के विवरण उपलब्ध हैं।[२]

काष्ठासघ :

'दशनसार'[3] के अनुसार कुमारसेन ने ६९६ ई० मे काष्ठासघ की स्थापना की थी। राजस्थान मे काष्ठासघ से सम्बद्ध प्रतिष्ठित मूर्तिया बाहर से लाई गईं अथवा अग्रवालो ने स्थापित करवाई थी। उदयपुर के निकट धुलेवा का ऋषभदेव-मन्दिर काष्ठासघ के भट्टारक धर्मकीर्ति के अनुयायी साहावीजा ने १३७४ ई० मे पुनर्निर्मित करवाया था।[४] उज्जैन के दिगम्बर जैनसग्रहालय मे १४४९ ई० मे प्रतिष्ठित मूर्ति के पाद पीठ पर श्री काष्ठासघे वागड सघे भट्टारक धर्मकीर्ति का उल्लेख है।[५] भट्टारक यशकीर्ति के अनुयायी ने १५१५ ई० मे एक सभागृह एव एक देवालय बनवाया था। काष्ठासघ के भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति के समय भोज ने नवनिर्मित मन्दिर का प्रतिष्ठा समारोह किया था तथा भूपता ने १६९७ ई० मे लघु देवालय बनवाया था।[६] राजस्थान मे प्राचीन वागड प्रदेश (डूगरपुर, वासवाडा एव प्रतापगढ) काष्ठासघ के अनुयायियो का केन्द्र था।

माथुर सघ

'दर्शनसार' के अनुसार माथुर मघ की स्थापना रामसेन ने काष्ठा सघ के दो वर्ष वाद की थी।[७] यह सघ माथुर देश वर्तमान मदुरा से सम्बन्धित दक्षिण भारत का जैनसघ था, परन्तु राजस्थान मे ग्यारहवो एव बारहवी शताब्दियो मे माथुर सघ के आचार्यो ने मूर्तिया प्रतिष्ठित करवाई थी। बघेरा के मूर्ति लेख मे इस सघ के पडित महासेन का ११५८ ई० मे उल्लेख है।[८] सागनेर मे प्राप्त ११६७ ई० मे प्रतिष्ठित मूर्ति लेख[९] तथा मागेठ मे प्राप्त ११७५ ई० के दो मूर्ति लेखो मे पडिताचार्य यशकीर्ति

---

१ Ajmer Historical and Descriptive by Haribilas Sharda p 48
२ Dr K C Jain Jainism in Rajasthan, p 86-87
३ दशनसार पृ० ३८
४ Dr K C. Jain Jainism in Rajasthan p 72
५ मूर्ति मम्यक्–३४
६ उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ४१
७ दशनसार, पृष्ठ १७
८ वीरवाणी, ६, पृष्ठ ३५५
९ वही, ५, पृष्ठ ४१

का उल्लेख है।[1] यशकीर्ति के पूर्ववर्ती माथुर सघ के आचार्य ललितकीर्ति और उनके गुरु पडिताचार्य धर्मकीर्ति का उल्लेख दिगम्बर सग्रहालय, उज्जैन का एक ११७१ ई० के मूर्ति लेख मे है।[2] ११७० ई० के विजोलिया आदि अभिलेख[3] माथुर सघ के एक महामुनि गुणभद्र तथा रूपहेली के मन्दिर स्तम्भ पर ११७६ ई० में पद्मश्री[4] का उल्लेख है। वारहवी शताब्दी के वाद से राजस्थान मे माथुर सघ के अनुयायियो का ज्ञान नही होता, सम्भवत तत्पश्चात्, माथुर सघ का अस्तित्व राजस्थान मे शेप न रहा।

श्वेताम्बर गच्छ ·

राजस्थान मे अभिलेखो एव प्रशास्तियो से विभिन्न गच्छो का ज्ञान होता है तथा कुछ गच्छो का उद्भव एव उत्थान स्थल सिरोही, मेवाड, मारवाड आदि प्रदेश रहे प्रतीत होते हैं।

वृहद गच्छ

उद्योतनसूरि अथवा सर्वदेव सूरि को आवू पर्वत पर स्थित तेली ग्राम के वटवृक्ष की छाया मे समारोहपूर्वक सूरि पद प्रदान किया गया था, फलत निर्ग्रन्थ गच्छ को वट गच्छ और वृहद गच्छ कहा जाने लगा।[5] सिरोही के कोटरा से १०८६ ई०[6] और मारवाड के नाडोल से ११५८ ई०[7] के वृहदगच्छ से सम्वन्धित आरम्भिक अभिलेख मिले हैं। १३वी १४वी शताब्दी तक सिरोही और मारवाड प्रदेश मे तथा १४वी एव १५वी शताब्दियो मे उदयपुर व जैसलमेर क्षेत्र मे यह अत्यन्त लोकप्रिय था।

खरतर गच्छ

दुर्लभराज के दरवार मे चैत्यवासियो को परास्तकर जिनेश्वर सूरि ने १०१७ ई० मे 'खरतर' विरुद प्राप्त किया था, फलत, उनका गच्छ खरतर कहलाया।[8] राजस्थान के वाहर इसका उद्भव हुआ, परन्तु यहा इसकी कई शाखायें प्रचलित हो गई, जिनमे १४वी से १९वी शताब्दियो के वीच जैसलमेर प्रदेश मे खरतर गच्छ की लोकप्रियता अधिक रही। खरतर गच्छ के दस गच्छ भेद हुए[9], इनमे प्रथम भेद जिनवल्लभ सूरि द्वारा ११०७ ई० में मधु खरतर शाखा के प्रादुर्भाव से हुआ। जिनसिंह सूरि ने १२७४ ई० लघु खरतर शाखा की स्थापना की, जो तृतीय गच्छ भेद था। धर्मवल्लभगणी ने १३६५ ई० में चतुर्थ गच्छ-भेद के द्वारा वेगड शाखा की स्थापना की। मरु देश मे आचार्य शाति सागर ने १५०७ ई० मे षष्ठ गच्छ भेद द्वारा आचारीय खरतर शाखा की स्थापना की। भावहर्पोपाध्याय ने सप्तम गच्छ-भेद द्वारा भावहर्प खरतर शाखा की तथा आचार्य जिनसागर सूरि ने अष्टम गच्छ-भेद द्वारा १६२९ ई० मे लघुवाचार्यीय खरतर शाखा की स्थापना की थी। रगविजयगणि ने १६४३ ई० मे रगविजय खरतर शाखा नवम् गच्छ-भेद द्वारा तथा दशम् गच्छ-भेद द्वारा श्रीसारोपाध्याय ने श्रीसारीय

१ Dr K C Jain Jainism in Rajasthan, p 72 F N 2, 3
२ मूर्ति सख्यक २७३
३ Epigraphia Indica, XXIV p 84
४ Annual Report of the Rajputana Museum, Ajmer, 1925-26, No 3
५ श्रमण भगवान महावीर, जिल्द ५, भाग २, स्थविरावली पृष्ठ २
६ प्राचीन लेख सग्रह १, सख्यक ३
७ Nahar Jain Inscriptions No 833 & 834
८ Indian Antiquary, Vol IX, p 248,
९ वही, XI p. 250

खरतर शाखा की स्थापना की थी। खरतर गच्छ की विभिन्न शाखाओ के आचार्यो द्वारा राजस्थान मे मूर्ति प्रतिष्ठा, तीर्थ यात्रा, मन्दिर निर्माण एव शास्त्र-प्रतिया-लेखन का कार्य सम्पादित करवाया गया। जिनवर्धन सूरि ने १४१७ ई० मे पीप्पालक गच्छ की स्थापना की थी, जो खरतर गच्छ की शाखा थी।

तपागच्छ

जगचन्द्र सूरि जावनपर्यन्त आयम्बिल करके मेवाड के शासक जैत्रसिंह द्वारा १२२८ ई० मे 'तपा' विरुद से अलकृत हुए थे, फलत निर्ग्रन्थ गच्छ का तपागच्छ नाम पड गया।[1] इनके शिष्य विजयचन्द्र सूरि ने वृद्ध पौसालिक तपागच्छ की स्थापना की थी तथा देवेन्द्रसूरि ने लघु पौसालिक तपागच्छ की स्थापना की। सिरोही, मेवाड एव जैसलमेर क्षेत्र मे तपागच्छ के अनुयायी अधिक है। कालान्तर मे खरतरगच्छ की तरह तपागच्छ की भी कई शाखायें ज्ञातव्य हैं। आचार्य महाराज विजयसेन के पश्चात् तपागच्छ के पाच भेद प्रभावशाली आचार्यो के नाम से प्रसिद्ध हुए। प्रथम शाखा आचार्य महाराज देवसूरि के नाम से देवसूरि गच्छ, द्वितीय शाखा आचार्य आनन्दसूरि के नाम से आनन्दसूरि गच्छ, तृतीय शाखा आचार्य सागर सूरि के नाम से सागर गच्छ, चतुर्थ शाखा विमलसूरि के नाम से विमलगच्छ तथा पञ्चम शाखा पन्नयास सत्य विजयजीगणि के द्वारा सवेगीगच्छ नाम से प्रसिद्ध हुई।[2]

नागौरी तपागच्छ के आचार्य श्री साधुरत्नसूरि के द्वारा १५१५ ई० में दीक्षित पार्श्वचन्द्र ने अपने नाम पर पार्श्वनाथ गच्छ की स्थापना की थी।[3] इसी प्रकार साधु कृष्णर्षि ने कृष्णर्षि गच्छ की स्थापना की थी, जिसके आरम्भिक उल्लेख १४२६ ई० के जीरावला अभिलेख[4] तथा १४६८ ई० नागौर अभिलेख[5] मे है। कृष्णर्षि गच्छ की लोकप्रियता जैसलमेर मे पन्द्रहवी शताब्दी मे ज्ञात होती है।[6] सोलहवी शताब्दी मे तपागच्छ की एक शाखा कमल कलश भी सिरोही प्रदेश मे अभिलेखो[7] से विदित होती है। नाडलाई मूर्ति लेखो से तपागच्छ की एक शाखा कुटुवपुरा गच्छ का ज्ञान होता है।

आञ्चल गच्छ

श्री विजयचन्द्र उपाध्याय द्वारा विधिपक्ष गच्छ की स्थापना की गई थी, जिसका नाम ११६६ ई० मे आञ्चल गच्छ कुमारपाल से सम्बद्ध अनुश्रुति के अनुसार पडा।[8] पन्द्रहवी शताब्दी के

---

१ श्रमण भगवान महावीर, जिल्द ५, भाग २ स्थविरावली पृष्ठ ७५।
२ श्रमण भगवान् महावीर, जिल्द ५, भाग २, स्थविरावली, पृष्ठ १७६।
३ वही
४ अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख सदोह, मस्यक १३८ एव १४१।
५ Nahar Jain Inscriptions Pt II No 1275
६ वही, Pt III
७ वही, Pt I, No 970 & 971
श्रमण भगवान् महावीर जिल्द ५, भाग-२, स्थविरावली पृ० ६५।

अभिलेखो से जैसलमेर, उदयपुर, जीरावला एव नगर मे इसके अनुयायियो तथा आचार्यो द्वारा कई मूर्तियो की प्रतिष्ठा करने के उल्लेख मिले हैं।[१]

पूर्णिमिया गच्छ एव सार्ध पूर्णिमिया गच्छ

सम्भवत पूर्णिमा से इसे पूर्णिमिया गच्छ कहा जाने लगा होगा, परन्तु इसे सार्ध पूर्णिमिया-गच्छ नाम से ११७९ ई० से अभिहित किया जाने लगा। जैसलमेर और सिरोही प्रदेश मे पन्द्रहवी शताब्दी मे इस गच्छ की लोकप्रियता अभिलेखो से विदित होती है। इस गच्छ के अनुयायियो के अभिलेख जोधपुर, नागौर, अजमेर और उदयपुर मे भी मिले हैं।[२]

पूर्णिमिया गच्छ के दो आचार्य शीलगुणसूरि एव देवभद्रसूरि आञ्चल गच्छ मे सम्मिलित हो गये थे, परन्तु ११५७ ई० अथवा ११९३ ई० में इन्होने आगमिक गच्छ के नाम से अपनी अलग सम्प्रदाय की स्थापना की थी।[3] जैसलमेर, अजमेर, जयपुर, नागौर, बाडमेर एव ओसिया मे अभिलेखो से पन्द्रहवी शताब्दी मे आगमिक गच्छ की उन्नति ज्ञात है।

कुल से सम्बद्ध गच्छ

चन्द्र कुल ही कलान्तर मे चन्द्र गच्छ मे परिवर्तित हो गया। इस गच्छ के अभिलेख ११८२ ई० का जालोर[४] से तथा ११२५ एव १४३५ ई० के सिरोही रियासत मे मिले हैं। इसी प्रकार नागेन्द्र कुल ही नागेन्द्र गच्छ के नाम से प्रसिद्ध हो गया था, इसका राजस्थान मे अस्तित्व १०३१ ई० के ओसिया अभिलेख[५] से ज्ञात होता है। तेरहवी से सोलहवी शताब्दी के बीच नागेन्द्र गच्छ के अनुयायियो द्वारा सम्पन्न पुण्यकर्मों का ज्ञान जैसलमेर, पाली, नागौर, सिरोही और उदयपुर मे प्राप्त अभिलेखो से होता है। सम्भवत निवृत्ति गच्छ भी निवृति कुल मे उद्भूत हुआ क्योकि सिरोही प्रदेश के आरम्भिक अभिलेखो मे निवृति कुल का उल्लेख है, जबकि १४१२ ई० की उदयपुर की शीतलनाथ की धातु प्रतिमा-लेख[६] मे निवृत्ति गच्छ का विवरण है।

विख्यात आचार्यों द्वारा सस्थापित गच्छ

आचार्य पिपपालाचार्य द्वारा सस्थापित पिपपालाचार्य गच्छ का अस्तित्व सिरोही रियासत मे ११५१ ई० से ज्ञात होता है। महेन्द्रसूरि के नाम से स्थापित महेन्द्रसूरि गच्छ का उल्लेख तेरहवीं शताब्दी के अजारी अभिलेख[७] से होता है। सिरोही प्रदेश मे आम्रदेवाचार्य-गच्छ के अजारी एव लोताणा से ग्यारहवी शताब्दी के अभिलेख मिले हैं, जिनसे इसका सम्बन्ध निवृत्ति कुल मे ज्ञात होता है।[८]

---

१ Dr K C Jain Jainism in Rajasthan p 59

२ वही, p 60

३ श्रमण भगवान् महावीर, जिल्द ५, भाग २, स्थविरावली, पृ० ९९।

४ Nahar Jain Inscriptions No 899

५ वही, न० ७९२। ६ प्राचीन लेख सग्रह, सम्यक १०९।

७ अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख सदोह, सख्यक ४२५।

८ वही, सम्यक ३९६, ४७०, ४७१, ४७२ एव ४७३।

मारवाड मे मेडता के १५१५ ई० के अभिलेख[1] मे प्रभाकर-गच्छ का उल्लेख है, जिसकी स्थापना प्रभाकर नामक आचार्य ने की होगी। कडाग्राशाह के नाम से १५०५ ई० मे कड़ीमति गच्छ की स्थापना हुई थी, इसका उल्लेख ओसिया के १६२६ ई० के अभिलेख[2] मे है।

धर्म घोष-गच्छ की स्थापना धर्मघोषसूरि के नाम से हुई होगी, इससे सम्बद्ध १४वी से १६वी शताब्दियो के अभिलेख जैसलमेर, उदयपुर एव नागौर मे मिले हैं।[3] भावदेवसूरि के नाम से प्रख्यात भावदेवाचार्य गच्छ तथा भावदार एव वडाहड-गच्छ का अस्तित्व जैसलमेर मे १३वी मे १५वी शताब्दियो के अभिलेखो से ज्ञात होता है।[4] राजस्थान मे इस गच्छ का सर्वप्रथम उल्लेख ११५७ ई० के सीवेरा अभिलेख[5] में है। मल्लधारी गच्छ की लोकप्रियता जैसलमेर, उदयपुर और सिरोही प्रदेश[6] के तेरहवी से सोलहवी शताब्दी के अभिलेखो से ज्ञातव्य है। विद्याधरसूरि के नाम से विख्यात विद्याधर गच्छ के चौदहवी से सत्रहवी शताब्दी के अभिलेख ओसिया, नागौर, नाणा एव जैसलगेर से मिले हैं।[7] विजय गच्छ से सम्बन्धित अभिलेख १६४२ ई० का भारज[8] से तथा १६६१ ई० का वालोतरा[9] से मिले हैं। उन्नीसवी शताब्दी मे अलवर के विजय-गच्छीय अनुयायी ने मूर्ति की प्रतिष्ठा की थी।[10] *रामसेनीय गच्छ का अस्तित्व राजस्थान में १४०१ ई० के नागौर अभिलेख[11] से ज्ञात होता है* है तथा मेवाड क्षेत्र में इस गच्छ के अनुयायियो का ज्ञान इसी शताब्दी के अभिलेखो[12] से होता है। आचार्य यशसूरि के नाम से प्रख्यात यशसूरि गच्छ का राजस्थान में अस्तित्व ११८५ ई० के अजमेर अभिलेख से सूचित होता है।[13]

स्थानीय गच्छ

पूर्व मध्य काल में सिरोही राज्य में जैन धर्म लोकप्रिय था, फलत इस राज्य के विभिन्न स्थानो के नाम पर कुछ गच्छ प्रसिद्ध हुए। ग्राम मडार से मडाहुड गच्छ प्रसिद्ध हुआ। यहा इस गच्छ का १२३० ई० का आरंभिक अभिलेख[14] मिला हैं। सिरोही राज्य में इस गच्छ के कई अभिलेख[15] मिलते हैं। जैसलमेर और उदयपुर से भी मडाहड गच्छ के १४वी एव १५वी शताब्दी के अभिलेख[16] प्रकाश मे आये हैं। इसी प्रदेश के नाणा ग्राम से नानवाल गच्छ एव भानकीय गच्छ का प्रादुर्भाव हुआ, जिनके ११ शताब्दी के कई अभिलेख सिरोही राज्य में मिले है[17] तथा १३वी से १५ शताब्दी के अभिलेख

---

१ Nahar Jain Inscriptions No 764
२ वही, न० ८६६. ३ वही pt I to III, ४ वही Pt III
५ अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख सदोह, सख्यक ३१६।
६ वही, सख्यक ८२, एव १४२।
७ वही, सख्यक ३४८ तथा Nahar Jain Inscriptions No 798, 1313 & 2278
८ अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख सदोह, सख्यक ६२०।
९ Nahar Jain Inscriptions, No 738
१० वही, No 1000 ११ वही, No 1236
१२ वही, No 1017 और 1080 १३ वही, No 530
१४ अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख सदोह, सख्यक ६६। १५ वही।
१६ Nahar Jain Inscriptions Pt I to III १७ अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख सदोह।

जैसलमेर से[1] और १५वी एव १६वी शताब्दी के अभिलेख मेवाड[2] में भी मिले है। वृहद गच्छ की एक शाखा इस राज्य के जीरावली ग्राम से जीरावली गच्छ प्रसिद्ध हुई तथा यही से १४वी शताब्दी के अभिलेख[3] मिले है। ब्राह्मण गच्छ का प्रादुर्भाव इस राज्य के वर्मान ग्राम से हुआ था, जिसका प्राचीन नाम ब्राह्मण महास्थान था। ब्राह्मण गच्छ के १२वी से १६वी शताब्दी के अभिलेखो से यह प्रदेश इस गच्छ का केन्द्र विदित होता है। वर्मान में इस गच्छ के श्रावको द्वारा ११८५ ई० मे वना महावीर मन्दिर है।[4] पाली से प्राप्त १०८७ ई० के अभिलेख[5] में इस गच्छ का उल्लेख है। ब्राह्मण गच्छ के अनुयायियो के १४वी एव १५वी शताब्दी के मेवाड मे तथा १५वी एव १६वी शताब्दी के जैसलमेर मे अभिलेख मिले हैं। सिरोही राज्य के काछोली ग्राम के नाम पर काछोली गच्छ प्रसिद्ध हुआ। यद्यपि यह पूर्णिमा गच्छ की ही शाखा थी। सिरोही प्रदेश में इसके १४वी एव १५वी शताब्दी के उल्लेख[6] मिले है।

मारवाड के ओसिया से उपकेश गच्छ का प्रादुर्भाव हुआ, जहा से १२०२ ई० का इस गच्छ से सम्वन्धित अभिलेख[7] मिला है, यद्यपि आरम्भिक अभिलेख सिरोही राज्य के अजारी ग्राम मे ११३७ ई०[8] का प्रकाश मे आया है। उपकेश गच्छ की लोकप्रियता १३वी से १६वी शताब्दी के जैसलमेर, उदयपुर एव सिरोही राज्य से प्राप्त बहुसख्यक अभिलेखो से ज्ञात होती है। मारवाड के कोरण्ट ग्राम से कोरण्टक गच्छ का उद्भव हुआ, जिसका १०३१ ई० का आरम्भिक अभिलेख सिरोही राज्य के पीण्डवाडा से मिला है।[9] यह गच्छ सिरोही राज्य एव जैसलमेर में १६वी शताब्दी तक प्रसिद्ध रहा। यशोदेवसूरि ने मारवाड के साडेराव मे सण्डेरक गच्छ की स्थापना की थी, जिसके अनुयायी सम्पूर्ण राजस्थान मे फैले है। नाडोल में १२वी शताब्दी मे यह अस्तित्व में था।[10] १४वी से १६वी शताब्दी तक मेवाड में तथा १५वी शताब्दी में जैसलमेर मे सण्डेरक गच्छ की प्रधानता थी। मारवाड के ही हतिकुण्डी से हस्तिकुण्डी गच्छ का प्रादुर्भाव हुआ, जिसका १३९६ ई० के उदयपुर अभिलेख[11] में उल्लेख है। १३वी से १६वी शताब्दी तक जैसलमेर एव उदयपुर में प्रसिद्ध चैत्रवाल गच्छ और चैत्रगच्छ का उद्भव मारवाड के चैत्रवाल नगर से हुआ होगा।[12] पल्लिवाल गच्छ और पल्लि गच्छ के नाम से विख्यात गच्छ की उत्पत्ति पाली से हुई थी, जिसके उल्लेख पाल्लि गच्छ के नाम से १४०५ ई० के जैसलमेर अभिलेख और १४५१ ई० के जयपुर अभिलेख में है[13] तथा पल्लिवाल

---

१ Nahar Jain Inscriptions Pt III

२ वही, Nos 1111, 1143 & 1031

३ अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख सदोह, सख्यक ७४ एव ११४

४ वही, सख्यक ११०

५ Nahar Jain Inscriptions, No 811

६ अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख सदोह।

७ Nahar Jain Inscriptions pt I No 791

८ अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख सदोह, सख्यक ४०४।

९ वही, सख्यक ३६६।

१० प्राचीन लेख सग्रह, सख्यक ५ एव २३।

११ वही, सख्यक ४३।

१२ Dr K C Jain Jainism in Rajasthan, p 65

१३ Nahar Jain Inscriptions, Nos 2478 & 577

गच्छ नाम से विवरण पन्द्रहवी शताब्दी के अजमेर से प्राप्त अभिलेखो में है।[1] वादिदेवसूरि के अनुयायी प्रद्मप्रभसूरि का १११७ ई० में नागौर में कठोर तप करने से नागौरिया तप बिरुद्ध प्रसिद्ध हो गया था, फलत नागौर नाम से उनका गच्छ नागपुरीय गच्छ कहा जाने लगा।

श्री पार्श्ववर्नाथ कुल की शाखा हर्षपुरीय गच्छ सम्भवत, अजमेर और पुष्कर के बीच हरसौर नामक स्थान में स्थापित हुआ होगा। इस गच्छ के अभयदेवसूरि के अनुरोध पर शाकम्भरी के चौहान शासक पृथ्वीराज प्रथम ने ११०५ ई० में रणथम्भोर के जैन मदिर पर स्वर्ण कलश प्रतिष्ठित किया था तथा इनके शिष्य मलधारी हेमचन्द्र का जयसिह सिद्धराज पर अत्यत प्रभाव था। नागौर से इस गच्छ का १४९८ ई०[2] का अभिलेख मिला है। मारवाड के मण्डोवर में ही जिनमहेन्द्रसूरि ने १७४५ ई० में खरतर गच्छ की एक शाखा मण्डोवर गच्छ की स्थापना की थी।[3]

मेवाड के ग्राम भटेवर मे भर्तृपुरीय गच्छ की स्थापना की गई थी, इस ग्राम का प्राचीन नाम भर्तृपुर था। इस गच्छ का उल्लेख तेरहवी शताब्दी के अभिलेख मे है।[4] रत्नपुरीय गच्छ की स्थापना मडाहड गच्छ की शाखा के रूप मे रत्नपुर (मेवाड) मे हुई थी, इसका उल्लेख उदयपुर की १४५३ ई० मे प्रतिष्ठित धातु प्रतिभा लेख मे है।[5] भरतपुर राज्य के कामा ग्राम से काम्यक-गच्छ का प्रादुर्भाव हुआ था, १०४३ ई० के बयाना शिलालेख[6] मे इस गच्छ के विष्णुसूरि और महेश्वरसूरि का उल्लेख है। दिल्ली के निकट रुद्रपल्लि मे ११४७ ई० मे जिनशेखराचार्य ने रुद्रपल्लीय गच्छ की स्थापना की थी[7], इसका प्रसार पन्द्रहवी शताब्दी में नागौर, बालोतरा और जैसलमेर मे ज्ञातव्य है।

खरतर गच्छ के जिनवर्धसूरि ने १४१७ ई० मे पीप्पालक गच्छ की स्थापना की थी[8], परन्तु पीप्पालक नामक ग्राम की पहिचान नही हो सकी है। इसी प्रकार जैनो की हुम्वड जाति और हुम्वड गच्छ की स्थापना किसी हुम्वड नामक स्थान से हुई थी, इस गच्छ का उल्लेख १३९६ ई० के उदयपुर अभिलेख[9] मे है। जल्येपिर गच्छ की उत्पति भी अज्ञात जोराउद्र ग्राम मे हुई थी, इसका उल्लेख ११५६ ई० के अजारी अभिलेख[10] मे है। भीमपल्लीय गच्छ का उद्भव भी किसी भीमपल्लीय ग्राम से हुआ था, जो पूर्णिमा गच्छ की शाखा थी तथा जोधपुर के १५४१ ई० के अभिलेख मे इसका उल्लेख है।[11] इसी प्रकार तपागच्छ की एक शाखा कुटुवपुरा गच्छ की उत्पत्ति किसी कुटुवपुरा ग्राम मे हुई थी, इस गच्छ द्वारा नाडलाई मे १५१२, १५१३ एव १५१४ ई० मे मूर्तिया प्रतिष्ठित हुई थी।[12]

---

१ वही, Nos 533 & 539 २ वही, न० १२९५।
३ Indian Antiquary, XI, p 249
४ Annual Report of the Rajputana Musuem, Ajmer, 1923-24, No 9
५ प्राचीन लेख सग्रह, सल्यक ४९, १२४ एव २५६।
६ Indian Antiquary, XIV, p 8 ७ वही, XI, p २४८
८ वही, p २४९ ९ Nahar Jain Inscriptions, No 1059
१० अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख सदोह, सल्यक ४०८।
११ Nahar Jain Inscriptions, No 604. १२ वही, Nos 849, 850 & 851

अन्य गच्छ :

मारवाड मे १५०८ ई० के जोधपुर अभिलेख से सिद्धान्ती गच्छ[1], नागौर के १४७७ ई० के अभिलेख से जापडाण गच्छ[2], रैनपुर के उन्नीसवी शताब्दी के स्तम्भ लेख से कवल गच्छ[3] तथा जोधपुर के ही मुनिसुव्रत मन्दिर मे १४४२ ई० के अभिलेख मे तावडार गच्छ[4] का अस्तित्व ज्ञात होता है।

जैसलमेर राज्य मे ११०५ ई० और १२८१ ई० के जैसलमेर-अभिलेखो[5] मे वाटपीय गच्छ, बारहवी और तेरहवी शताब्दी के लेखो से सरवाल गच्छ[6] तथा १३६४ ई० के मूर्ति लेख[7] से वाहड गच्छ के ईश्वरसूरि का उल्लेख है।

जयपुर मे चाञ्चाल गच्छ का १४७२ ई० के मूर्तिलेख[8], राज गच्छ के पद्मनन्द का १४५२ई से मूर्ति लेख[9] तथा छहितेरा गच्छ का १५५५ ई० के अभिलेख[10] से अस्तित्व विदित होता है।

मेवाड मे १३१७ ई० के उदयपुर अभिलेख मे प्राया गच्छ[11], ११४४ ई० के मूर्तिलेख से देवाभिदित गच्छ[12] तथा १४३९ ई० अभिलेख से निट्ठाति गच्छ[13] के अनुयायियो द्वारा पुण्यकर्म सम्पादित करने के उल्लेख है।

बारहवी शताब्दी के सिरोही राज्य[14] और पन्द्रहवी शताब्दी मे जैसलमेर[15] मे लोकप्रिय थारापद्रीय गच्छ एव थिराद्र गच्छ, सिरोही के कोटरा से प्राप्त ११५१ ई० के अभिलेख से पिप्पल गच्छ[16], जो १४वी से १६वी शताब्दी तक जैसलमेर मे प्रचारित रहा[17], सिरोही राज्य के रोहिडा से प्राप्त १४३६ ई० के अभिलेख[18] से मधुकर गच्छ, जिसके अलवर से १४७० ई०[19] और जैसलमेर से १५०६ ई०[20] अभिलेख मिले है, तथा जयपुर और नागौर मे १४वी एव १५वी शताब्दियो मे लोकप्रिय वोकडिया गच्छ[21] भी राजस्थान के जैन धर्मानुयायियो से सम्बद्ध रहे है।

जैनाचार्यों, भट्टारको, पडितो एव साधुओ ने जैन समाज के उत्थान हेतु महत्त्वपूर्ण कार्य किये। मध्य काल मे जहा एक ओर मुस्लिम आक्रामको ने मन्दिरो, शास्त्रभण्डारो एव मूर्तियो को

---

१ वही, न० ५९७ २ वही न० १२८८
३ Nahar Jain Inscriptions, No 717 ४ वही न० ६१६।
५ Nahar Jain Inscriptions, Nos 2218 & 2232
६ वही, Nos 2220-22 & 2415 ७ वही, न० 2269
८ वही, न० ११५९ ९ वही न० ११७४
१० वही, न० ११९४ ११ वही, न० १०४२
१२ वही, न० १९९८ १३ वही, न० १०७८
१४ अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख सदोह, सख्यक ९, ४५४ एव ४६६।
१५ Nahar Jain Inscriptions
१६ Nahar Jain Inscriptions, No 966 १७ वही, Pt III
१८ अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख सदोह, सख्यक ५७५।
१९ Nahar Jain Inscriptions, Pt I
२० वही, Pt III २१ वही न० ११६७, ११९९ एव १२४६

नष्ट किया तथा दूसरी ओर मराठो ने लूटमार की, फिर भी जैनाचार्यों एव भट्टारको ने जैन धर्म की उन्नति के अथक प्रयत्न किये। आचार्यों के अतिरिक्त भट्टारक सकलकीर्ति एव शुभचन्द्र भी अद्वितीय विद्वान थे, फलत जैन साहित्य का सस्कृत, प्राकृत, अपभ्र श, हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी आदि भाषाओ में सृजन हुआ। शास्त्रो की प्रतियो के सरक्षण हेतु कई शास्त्र भण्डार स्थापित किये गये तथा जैन साहित्य के अतिरिक्त व्याकरण, आयुर्वेद, गणित, ज्योतिष आदि ग्रन्थो की प्रतियाँ भी लिखवाकर सगृहीत की गई। इनके प्रभाव से विभिन्न मन्दिरो का निर्माण तथा असख्य मूर्तियो की प्रतिष्ठाए सम्पादित हुई। भट्टारको ने कई हिन्दू एव मुस्लिम शासको द्वारा अहिंसा पर अमल हेतु फर्मान निकलवाये। जैन तीर्थों की यात्रा हेतु सघ निकलवाये और तीर्थो की सुव्यवस्था करवाई।

चैत्यवासी प्रथा .

राजस्थान मे चैत्यवासी प्रथा का भी प्रभाव रहा है। जैन साधुओ हेतु वर्षा के चातुर्मास के अतिरिक्त एक स्थान पर निवास करना वर्जित है, जोकि श्रमण सस्कृति का महत्त्वपूर्ण पक्ष है, परन्तु बौद्धो की तरह जैनो में भी यति एव भट्टारक के रूप में विरागी पुरुष चैत्यवासी के रूप में प्रतिष्ठित हो गये। आचाय धमसागर[1] ने अपनी प्रट्टावली में चैत्यवासी प्रथा का प्रारम्भ ३५५ ई० से निश्चित किया है, परन्तु मुनिकल्याण विजयजी[2] के अनुसार यह प्रथा प्राचीन है और इसका सुव्यवस्थित रूप ३५५ ई मे स्पष्ट हुआ। वतमान में श्वेताम्वरो मे यति अथवा श्रीपूज्य तथा दिगम्वरो में भट्टारक मठवासी हैं, जिन्हे सम्मिलित रूप से चैत्यवासी कहा जाता है।

राजस्थान मे चैत्यवासी प्रथा के उल्लेख आठवी शताब्दी से उपलब्ध हैं। जैनाचार्य हरिभद्र-सूरि और जिनवल्लभसूरि ने लोगो के समक्ष मन्दिरो में निवास करने, उनकी सम्पत्ति का स्वय के लिये प्रयोग करने, रगीन एव सुगधित वस्त्र पहिनने, सुस्वादु भोजन करने और साधुओ को भिक्षा देने, सचित्त जल, फल और फूल का उपयोग करने, शिष्य वनाने हेतु वच्चो को क्रय करने आदि को चैत्यवासी साधुओ के कर्म निरूपित किये हैं। चैत्यवासियो के विरुद्ध वनवासियो ने शास्त्राथ किये, परन्तु राजस्थान मे चैत्यवासी प्रथा की उन्नति होती रही।

श्वेताम्वर चैत्यवासियो ने मन्दिर निर्माण और मूर्ति प्रतिष्ठा को न केवल प्रोत्साहित किया वलिक स्वय न भी इन कार्यो को सम्पन्न किया। जीरापल्ली गच्छीय रामचन्द्रसूरि ने १३५४ ई म जीरापल्ली मे देवकुलिका[3] वनवाइ थी। हेमतिलकसूरि ने अपने गुरु के हितार्थ १३८९ इ मे वर्मान म मन्दिर का रगमण्डप वनवाया था।[4] पिप्पलाचाय गच्छीय वाचक सोमप्रभसूरि ने १३६७ ई० में सुमतिनाथ की प्रतिभा अजारी में निर्मित करवाइ थी।[5] वीरप्रभसूरि ने १४१८ ई० में एक मण्डप वीरवाडा ग्राम मे वनवाया था।[6] काच्छोलीवाला गच्छीय विजयप्रभसूरि ने १४६४ इ० गुणसागर-सूरि के हिताथ सिरोही क अजितनाथ मन्दिर में देवकुलिका वनवाई थी।[7] जीरापल्ली के आदिनाथ मन्दिर मे तिलकसूरि के हिताथ भद्रेश्वरसरि ने देवकुलिका निर्मित करवाई थी।[8] नाणक गच्छीय

---

१. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ३५१,   २ वही

३ अवु दाचल प्रदक्षिणा जैन लेख सदोह, सम्यक ११६।

४ वही, सम्यक ११३   ५ वही, सम्यक ४३२

६ वही, सम्यक २७८   ७ वही, सम्यक २४६-२४८   ८ वही, सम्यक ११६

पार्श्वदेवसूरि ने वेलरा ग्राम मे लगिका[1] तथा नन्नसूरि ने वसन्तगढ मे आदिदेव की मूर्ति वनवाई थी।[2]

दिगम्बर साहित्य मे चैत्यवासी प्रथा के उद्भव के सम्बन्ध मे निश्चित जानकारी उपलब्ध नही है, परन्तु दक्षिण भारत मे आठवी शताब्दी से इस प्रथा के उल्लेख मिलते है। राजस्थान मे इन भट्टारको के पास जागीर मे ग्राम और वाग थे तथा ये मन्दिर और मूर्ति निर्माण के अतिरिक्त साधुओ को भोजन भी देते थे। चैत्यवासी होते हुए भी आरम्भिक भट्टारक नग्न रहते थे, जो सम्भवत श्वेताम्बर यति अथवा श्री पूज्यो से भिन्नता प्रदर्शित करने हेतु आवश्यक रहा हो। वर्तमान मे भट्टारक भोजन करते समय वस्त्र त्याग देते हैं, जवकि शेष समय धारण करते है। सोलहवी शताब्दी मे भट्टारक श्रुतसागर ने लिखा है कि कलिकाल मे मुस्लिम नग्न यतियो के साथ दुर्व्यवहार करते थे, फलत मण्डपदुर्ग मे वसन्तकीर्ति ने चर्या के समय वस्त्र पहिनने की अनुमति दे दी थी।[3] पट्टावली मे मूलसघ के चित्तौडपट्ट के भट्टारको मे एक वसन्तकीर्ति थे, जिनका समय १२०७ ई० ज्ञात है।[4] इस समय मुस्लिमो के आक्रमण अविरल थे, फलत भट्टारको ने चर्या के समय वाहर जाने पर वस्त्र पहिनने आरम्भ कर दिये होगे। चित्तौड, चात्सु, जालौर, अजमेर, जयपुर आदि स्थान महत्त्वपूर्ण भट्टारक पट्ट रहे हैं।

धार्मिक प्रधानता के अतिरिक्त भट्टारक आत्मकल्याणाथ पुण्यकर्म सम्पादित करवाते थे तथा आचार्यों एव पडितो को नियुक्त कर शासित करते थे। ये अपने श्रावको से विभिन्न प्रकार से धन प्राप्त करते तथा वैभवपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। धार्मिक अनुष्ठानो, मूर्ति प्रतिष्ठा, प्रतिया लेखन हेतु भट्टारक अपने अधीनस्थ आचार्यों एव पडितो की नियुक्तिया भी करते थे।

अमूर्तिपूजक

श्वेताम्बर एव दिगम्बर दोनो परम्पराओ मे अमूर्तिपूजक सम्प्रदाय का राजस्थान मे व्यापक प्रभाव है।

श्वेताम्बर परम्परा

अमूर्तिपूजक श्वेताम्बर सम्प्रदायो का विवरण इस प्रकार है—

लोका पथ

अहमदावाद मे लोकाशाह् यति ज्ञानजी के उपासरा मे शास्त्रो की प्रतिया लिखकर जीवन निर्वाह करते थे। शास्त्रो की प्रतिया लिखते-लिखते उन्हे विश्वास हो गया कि उनमे मूर्तिपूजा का प्रावधान नही है। इस तथ्य पर ज्ञानजी आदि से विवाद के पश्चात् लोकाशाह् ने अपने नाम मे १४५१ ई० मे लोकापथ की स्थापना की। लोका ने मूर्तिपूजा एव प्रतिष्ठा का विरोध और पौषध, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान एव ब्रह्मचय मे विश्वास प्रचारित किया। मुस्लिमो द्वारा मन्दिरो और मूर्तियो को नष्ट होने के कारण लोकापथ की लोकप्रियता वढने लगी। चैत्यवासियो के विलासपूर्ण जीवन और धन सचय के प्रति घृणा ने भी लोकापथ के विकास मे सहयोग दिया। लोकाशाह् ने ३२ सूत्रो को अपना आधार निरूपित कर आवश्यक सूत्र को अपने सिद्धान्तो के अनुसार प्रचारित

१ वही, लेखक ३३७ २ वही, लेखक ४४५

३ जैन साहित्य और इतिहास, पृष्ठ ३६३ ४ Indian Antiquary XX p 347

किया । सिरोही के निकटवर्ती भाण से लोका की भेंट हुई, जिसने बिना गुरु के संन्यास ग्रहणकर १५२१ ई० मे रूपकजी तथा १५३० ई० मे वृद्ध वरसिंह को अपना शिष्य बना लिया और इस प्रकार लोकाशाह के अनुयायियो ने लोका सम्प्रदाय मे साधुओ को दीक्षित कर पथ को व्यवस्थित रूप प्रदान किया ।

स्थानकवासी सम्प्रदाय

लोकापथ के कुछ अनुयायियो ने भगवान् महावीर के समान कठोर तप को विशेष महत्त्व दिया तथा सूरत के एक गृहस्थ लवजी ने साधु बनकर तदनुरूप तपस्या की । लवजी की कठोर तपस्या से प्रभावित होकर कई लोकापथी उनके अनुयायी हो गये और इस नवीन सम्प्रदाय को 'स्थानकवासी' सज्ञा दी । राजस्थान के सभी नगरो मे स्थानकवासी सम्प्रदाय के श्रावक बहुसख्यक हैं ।[1]

तेरापथी सम्प्रदाय

स्थानकवासी साधु (उनके लिये श्रावको द्वारा निर्मित) स्थानको मे वर्षावास करते हैं । इस तथा कुछ अन्य सैद्धान्तिक मान्यता भेद के कारण श्री भीखणजी ने अपना एक अलग सम्प्रदाय सस्थापित किया । इस सम्प्रदाय के साधु स्थानक के स्थान पर श्रावको के घर ठहरते हैं । इस अमूर्तिपूजक सम्प्रदाय केअनुयायी राजस्थान मे काफी है ।[2]

दिगम्बर परम्परा

अमूर्तिपूजक दिगम्बर सम्प्रदायो का विवरण इस प्रकार है—

तेरापथी सम्प्रदाय

अमूर्तिपूजक दिगम्बर तेरापथ सम्प्रदाय का प्रवर्तन तारण स्वामी ने किया था, जिनका जन्म १४४८ ई० तथा मृत्यु १५१५ ई० मे हुई थी । लोकाशाह की तरह तारण स्वामी ने भी मूर्तिपूजा का विरोध किया । इसके अनुयायी तारण द्वारा लिखित चौदह ग्रन्थो की पूजा करते हैं । राजस्थान मे भी उनके अनुयायी हैं ।

भट्टारक विरोधी सागानेर निवासी पडित अमरचन्द बडजात्या ने मूर्तिपूजक तेरापथी सम्प्रदाय की स्थापना की थी, जो सत्रहवी शताब्दी मे सम्पूर्ण राजपूताना में लोकप्रिय हो गया । इसका मूल नाम विधिमार्ग था, परन्तु विरोधियो द्वारा प्रदत्त तेरापथी नाम से ही यह सम्प्रदाय प्रसिद्ध हो गया । भट्टारको की जीवन प्रक्रिया के विरोधी, इस सम्प्रदाय का विस्तार आगरा निवासी सुधारक पडित बनारसीदास के समय अधिक हुआ । जीवन निर्माण से सम्बद्ध तेरह सिद्धान्तो के कारण भी इसका नाम तेरापथी निरूपित किया जाता है ।[3] तेरापथियो ने भट्टारको की निन्दा की तथा उनकी धार्मिक श्रेष्ठता को अस्वीकार किया तथा मूर्तिपूजा में फलो, फूलो, चन्दन और प्रक्षाल का प्रयोग अनुचित निरूपित किया क्योकि इनके प्रयोग से हिंसा होती है ।

---

१ इस सम्प्रदाय के सम्बन्ध मे आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा० का एक लेख 'राजस्थान में स्थानकवासी परम्परा' आगे के पृष्ठो मे [१६६-७४] दिया गया है । —सम्पादक

२ इस सम्प्रदाय के सम्बन्ध मे मुनि श्री नथमलजी का एक लेख 'राजस्थान मे तेरापथ सम्प्रदाय का अभ्युदय' आगे के पृष्ठो [१७५-७८] मे दिया गया है । —सम्पादक

३ जैन साहित्य और इतिहास, पृष्ठ ३६७

गुमानपथी सम्प्रदाय :

जयपुर निवासी प० टोडरमल के पुत्र गुमानराम के नाम से यह सम्प्रदाय गुमानपथी नाम से प्रसिद्ध हुआ। १८वी शताब्दी में विकसित इस सम्प्रदाय को शुद्धाम्नाय भी व्यावहारिक पवित्रता के कारण कहा जाता है।

अन्य सम्प्रदाय

बीसपंथी सम्प्रदाय

भट्टारको के अनुयायियो ने बीसपथी सम्प्रदाय नाम, विरोधी तेरापथियो से श्रेष्ठता प्रदर्शित करने हेतु दिया था। भट्टारको द्वारा प्रतिपादित मान्यताए और जल, दीपक, फूल और चन्दन द्वारा मूर्तिपूजा को इसके अनुयायी मान्य करते हैं। इस सम्प्रदाय के अनुयायी जयपुर, अजमेर, नागौर, मारोठ आदि मे अधिक हैं।

तोतापथी सम्प्रदाय

भट्टारक विरोधी तेरापथी और भट्टारक पक्षीय बीसपथियो में पारस्परिक समझौतावादी इस सम्प्रदाय को 'साढी सोलह पथी' भी कहा गया, क्योकि दोनो सम्प्रदायो के सिद्धान्तो के सम्मिश्रण को इन्होने अपनाया। यह सम्प्रदाय नागौर तक सीमित है।

[६]

विभिन्न जैन जातियाँ एव गोत्र

उत्तर भारत की विभिन्न जैन जातियो और गोत्रो की उत्पत्ति राजस्थान में हुई। इनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में कई अनुश्रुतिया प्रचलित हैं, जो प्राचीनता की द्योतक हैं, यद्यपि ऐतिहासिक दृष्टि से इन जातियो की उत्पत्ति की प्राचीनता सातवी शताब्दी से पूर्व नही ले जायी जा सकती। राजस्थान मे जैन जातियो एव गोत्रो की उत्पत्ति का समय आठवी से तेरहवी शताब्दी के बीच ज्ञात होता है, जबकि हरिभद्र सूरि, जिनवल्लभ सूरि, हेमचन्द्र सूरि आदि ने अहिंसा को प्रतिष्ठित कर राजपूतो, ब्राह्मणो और वैश्यो को बडी सख्या मे जैन धर्म मे दीक्षित किया था। जैनाचार्यों के अतिरिक्त जैन शासको और विमल एव वस्तुपाल जैसे महापुरुषो ने भी जैन धर्म को जैन धर्म के रूप मे प्रतिष्ठित करने के कई लोकोपकारी कार्य किये फलतः विभिन्न स्थानो, कुलो एव जातियो के लोगो ने जैन धर्म स्वीकार कर लिया तथा तदनुसार जैनो मे कई जातियो एव गोत्रो का प्रादुर्भाव हुआ।

ओसवाल

भारत के सभी महत्वपूण नगरो में ओसवाल जाति प्रतिष्ठित है। इस जाति का उत्पत्ति-स्थल जोधपुर से उत्तरपश्चिम में ५२ कि० मी० पर स्थित ओसिया है। नाभिनन्दनोद्धार प्रबन्ध और उपकेशगच्छ चरित के अनुसार पार्श्वनाथ की परम्परा के सप्तम पट्टधर रत्नप्रभसूरि ने वीर निर्वाण सवत् ७० (ई० पू० ४५७) में ओसवश की स्थापना की थी। भाटो के मत मे रत्नप्रभ सूरि के उपदेशो से विक्रम सवत् २२२ (१६५ ई०) में ओसवाल जाति की स्थापना उपकेशनगर में हुई थी, परन्तु ये दोनो मत अतिरजित प्रतीत होते हैं। रत्नप्रभ सूरि द्वारा राजा उप्पलदेव और उनकी प्रजा को जैन धर्म में दीक्षित करने की घटना, आठवी शताब्दी में ओसिया के किसी प्रतीहार शासक को प्रजा सहित जैन धर्मानुयायी बनाने का पुण्यकर्म किसी जैनाचार्य के द्वारा सम्पन्न होने का अनुश्रुतिपूर्ण विवरण है।

गोत्र :

जैन धर्म स्वीकार कर लेने के बाद भी ओसवालो में वैभिन्य बना रहा, जिससे परम्परानुसार उनकी १८ गोत्रें बनी थी जो कालान्तर में शाखा-प्रशाखाओ के रूप में १४४४ हो गईं । यति श्रीपाल ने ओसवालो की ६०९ गोत्रें वर्णित की हैं[1] तथा अठारहवी शताब्दी के कवि रूपचन्द्र ने ४४० मानी हैं ।[2] ओसवालो की ये गोत्रें स्थान सूचक, वैयक्तिक और कर्मानुसार प्रसिद्ध हुई हैं ।

कुछ गोत्रें अपने उत्पत्तिस्थल के नाम से प्रसिद्ध हुई । जैसलमेर मे भणसाल के रावलसागर के दो राजकुमार श्रीधर एव राजेन्द्र को जिनदत्त सूरि ने वासक्षेप प्रदान किया था, फलत राजकुमार एव उनके उत्तराधिकारी और सम्बन्धी भणसाली[3] गोत्रीय कहलाने लगे । काछोली गोत्र की उत्पत्ति सिरोही राज्य के काच्छोल ग्राम से हुई थी । खरतरगच्छ के जिनवल्लभ सूरि ने उदयपुर के महाराणा के काकरावत ग्राम के निवासी सामन्त भीमसी को जैन धर्म में दीक्षित किया था, फलत उनके कुल को काकरिया गोत्रीय कहा जाने लगा ।[4] कोरण्ट गोत्र मारवाड के कोरण्ट ग्राम से, पूगल निवासी ओसवालो के अन्यत्र बस जाने पर पूगल गोत्र, मेडता ग्राम के निवासियो से मेडतवाल गोत्र, कन्नोज से आकर बस जाने से कनौजिया गोत्र आदि की उत्पत्ति तेरहवी से पन्द्रहवी शताब्दियो के बीच होने का ज्ञान अभिलेखो से होता है ।

ओसवालो की कुछ गोत्रें धन्धे के नाम से प्रसिद्ध हुईं । राथड राव चुण्डा ने थाकरसी को खजाने का प्रभारी बनाया था, फलत वे कोठारी कहलाने लगे तथा कोपपाल का कार्य करने वाले लोग खजान्ची कहलाये । भण्डारियो के अनुसार उनके मूल पुरुष डाड्राव[5] ने ९१२ ई० मे सण्डेरक गच्छीय यशोभद्र सूरि से जैन धर्म स्वीकार किया था तथा वे भण्डार के प्रभारी थे, फलत उनके वशज भण्डारी कहे जाने लगे । घी का धन्धा करने वाले ओसवाल के वशज घीया गोत्रीय प्रसिद्ध हुए । वैद गोत्रीय लोगो के मूलपुरुष ने उदयपुर की महाराणी की आंख की चिकित्सा की थी, फलत उसे प्राप्त वद्य विरुद के कारण उसके वशज 'वेद' कहलाये ।[6] धन्धे के कारण ही चण्डालिया, बम्बी और महाजनी गोत्रो की उत्पत्ति हुई थी ।

ओसवालो मे कुछ गोत्रें प्रसिद्ध पुरुपो के नाम से भी आरम्भ हुई । आदित्यनाग गोत्र[7] दान-पुण्य एव जन-कल्याण के कार्यों मे प्रसिद्ध आदित्यनाग से आरम्भ हुई । लालसिंह पँवार को १११० ई० मे जैन धर्म मे दीक्षित कर जिनवल्लभ सूरि ने लालानी गोत्र की स्थापना की ।[8] लालसिंह का ज्येष्ठ पुत्र बलशाली (बण्ठ) था, फलत उसके वशज बाँठिया कहलाये । गदाशाह के वशज गदहिया कहलाये ।[9] लूणिया गोत्र की उत्पत्ति लूणसिह द्वारा जिनदत्तसूरि से जैन धर्म स्वीकार कर लेने से हुई । जगदेव पवार को पूर्णतलगच्छ के हेममचन्द्र सूरि ने जैन बनाया,[10] फलत उसके दो पुत्रो

---

१ जैन सम्प्रदाय शिक्षा, पृ० ६५६ २ जैन भारती, ५, अक ११
३ Nahar Jain Inscriptions, III, p 28 ४ History of Osawalas, p 353
५ Some distinguished Jainas, p 36 ६ History of Osawalas, p 166
७ भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास, पृ० ११०९ ८ जैन सम्प्रदाय शिक्षा, पृ० ६२६
९ वही, पृ० ६२८ १० Nahar Jain Inscriptions, No 2186

सूर से सुराणा तथा सांवला से[1] साखला गोत्रें प्रसिद्ध हुई । जिनदत्तसूरि से दो भाइयो—दुगड एव सुगड ने जैन धर्म को स्वीकार किया, फलत उनके वशज दुगड और सुगड गोत्रीय कहलाये ।[2] देलवाडा के शासक सागर के पुत्र बोहिथ से बोथरा गोत्र,[3] जिनकुशल सूरि से चौहान डूगरसिंह ने जैन धर्म स्वीकार किया था, फलत' उसके वशज डागा तथा दूधेरा नामक पुरुष के वशज दुधेरिया गोत्र से प्रसिद्ध हुए ।

ओसवालो की कुछ गोत्र सम्पन्न किये गये विशिष्ट कर्म के कारण भी आरम्भ हुई थी—यथा तीर्थयात्रा के लिये सघ निकालने वाले लोग सिंघवी कहलाये । ग्यारहवी शताब्दी मे नाग व्यान्तर द्वारा नारायण को वर दिया गया था, फलत वरडिया गोत्र का प्रादुर्भाव हुआ ।[4] काकू नामक व्यक्ति को नगर सेठ का विरुद मिला था, फलत उसके वशज सेठिया प्रसिद्ध हुए ।[5] पासु रत्न परीक्षा मे कुशल था, फलत उसके वशज पारख कहलाये ।[6] युद्ध भूमि से पलायन नही करने वाले के वशज नाहटा तथा माण्डलगढ के सुल्तान द्वारा झाजसिंह को राजदरबार मे कटार ले जाने की अनुमति देने से उसके वशज कटारिया कहलाये ।[7] जिनदत्त सूरि से खरतसिंह राठोड ने जैन धर्म स्वीकार किया था, इसके पुत्र अम्बदेव ने चोरो को पकड लिया, फलत वह और उसके वशज चौरडिया प्रसिद्ध हुए ।[8]

श्रीमाल

श्रीमाल जाति का मूल स्थान श्रीमाल था, जिसकी पहिचान जालौर जिले के भीनमाल से की जाती है । जैन धर्मानुयायी होने के बाद निष्क्रमण कर यत्र तत्र बसने से, ये लोग मूल स्थान से श्रीमाल प्रसिद्ध हुए । श्रीमाल जाति का सबसे आरम्भिक उल्लेख भारद्वाज गोत्रीय श्रीमाल टोडा का ७३८ ई० से सम्बद्ध है ।[9] उदयरत्न द्वारा रचित पञ्चपट रास मे ज्ञात होता है कि शक सवत् ७०० मे रत्नप्रभ सूरि श्रीमाल नगर पधारे थे और यहाँ उन्होने श्रीमाल जाति की स्थापना की ।[10] एक अनुश्रुति के अनुसार उदयप्रभसूरि ने श्रीमाल के ब्राह्मण धर्मानुयायी राजा विजयन्त और ६२ सेठो को जैनधर्मानुयायी बनाकर श्रीमाल जाति की स्थापना की थी ।[11] उपर्युक्त उल्लेखो से श्रीमाल जाति का अस्तित्व तथा उत्पत्ति सातवी अथवा आठवी शताब्दी मे होने की पुष्टि होती है ।

कालान्तर मे, श्रीमाल दो वर्गों मे विभक्त हो गये—लघु शाखा और बृहद् शाखा । श्रीमाल जाति की कई गोत्रो का विवरण अभिलेखो मे उपलब्ध है । अम्बिका गोत्र की उत्पत्ति जैनदेवी अम्बिका से है । ऐलहर,[12] गोवलिया,[13] घेवरिया,[14] गौतम,[15]

---

१ जैन सम्प्रदाय शिक्षा, पृ० ६६७   २ वही, पृ० ६३८   ३ वही, पृ० ६३९–४१
४ वही, पृ० ६२२   ५ वही, ६३४   ६ वही, पृ० ६२८
७ वही, पृ० ६३४   ८ History of Osawalas, p 509
९ जैन साहित्य सशोधक एव जैनाचार्य आत्माराम शताब्दी स्मारक ग्रथ, गुजराती विभाग, पृ० २०४
१० प्राग्वाट इतिहास, प्रस्तावना, पृ० १२   ११ श्री जैन गोत्र सग्रह, म० १३–२३
१२ Nahar Jain Inscriptions, No 1676   १३ वही, म० ४१२
१४ वही, स० ४१३   १५ वही, म० २४६४

चण्डालिया,[1] डोडा,[2] डोसी,[3] नावरा,[4] भाण्डिया,[5] मौथिया,[6] माथलपुर,[7] वहगटा,[8] श्रेष्ठी,[9] सीघाडा,[10] फोफलिया,[11] भाण्डवट,[12] मूसल,[13] सिद्ध,[14] नलुरिया, जुनीवाल, भु गटिया आदि गोत्र पन्द्रहवी शताब्दी के अभिलेखो से विदित होती है। सोलहवी शताब्दी के अभिलेखो में श्रीमाल जाति की कुछ और गोत्रो—धीना,[15] पाटाणी,[16] मुहवरणा[17] के उल्लेख उपलब्ध हैं।

पोरवाल •

श्रीमाल नगर के पूर्वी प्रवेश द्वार के निकट निवास करने वाले लोगो ने जैन धर्म स्वीकार किया था, फलत इन्हे पोरवाल कहा गया,[18] परन्तु यह मत समीचीन प्रतीत नही होता है। प्राचीन अभिलेखो और हस्तलिखित ग्र थो मे पोरवालो को प्राग्वाट भी कहा गया है,[19] जो कि मेवाड (मेदपाट) का अन्य नाम है तथा ये लोग अपना मूल स्थान मेवाड के ग्राम पुर को मानते हैं। श्रीमाल के समान पोरवाल भी लघु शाखा और बृहत शाखा मे विभक्त हैं। अभिलेखो और ग्र थो से पोरवालो की कुछ गोत्रो[20]—भूलरा, मु थलिया, लीम्बा, मण्डलिया, कुनगिरा, पटेल, नर्वट, लोलानिया, पोसग्रा, कोठारी, भण्डारी, अम्वाई, कोडकी, नाग आदि का ज्ञान होता है।

पल्लीवाल

मारवाड मे पाली पल्लीवालो का उद्गम स्थल है, जिसका प्राचीन नाम पल्लिका था। ओसिया एव श्रीमाल की तरह पल्लिका के निवासी भी आठवी शताब्दी मे रत्नप्रभ सूरि के द्वारा जैनधर्मानुयायी बनाये गये होगे।

खण्डेलवाल

राजस्थान के सीकर जिले का खण्डेला ग्राम ही खण्डेलवालो का उद्गम स्थल है। अनुश्रुति के अनुसार जिनसेनाचार्य ने विक्रम सवत् १ मे खण्डेला के चौहान शासक और उसके ८२ राजपूत सामतो एव २ स्वर्णकारो को जैनमतानुयायी बनाया था, जिनसे ८४ गोत्रो की स्थापना हुई। आठवी शताब्दि से पूर्व खण्डेलवाल जाति की उत्पत्ति मानना कठिन है। इस जाति का आरम्भिक उल्लेख जयपुर के सिंघाजी मन्दिर के ११९३ ई० के मूर्तिलेख मे है।[21]

खण्डेलवालो के ८४ गोत्रो का विवरण अतिरजित है, इनमे स्थानीय, कर्म एव उपनाम स सम्वद्ध गोत्र हैं, जिनकी सख्या धीरे-धीरे बढती रही। अजमेरा गोत्र की उत्पत्ति अजमेर से, पाटोदी

---

१ Nahar Jain Inscriptions, No 830 २. वही, स० ३८ ३ वही, स० ३९१
४ वही, स० १९९२ ५ वही, स० १९७४ ६ वही, स० १९५६
७ वही, स० १९६७ ८ वही, स० १९३२ ९ वही, स० २०८५
१० वही, स० १२२४ व १२२७ ११ वही, स० ७३७ व ८२३ १२ वही, स० ५७७
१३ वही, स० २३३३ १४ वही, स० २२९२ १५ वही, स० २४२९
१६ वही, स० ७५० १७ वही, स० २३७० १८ श्री जैन गोत्र सग्रह पृ० १३–२३
१९ ओझा निवन्ध सग्रह, पृ० २५ २० श्री जैन गोत्र सग्रह, प्रस्तावना, पृ० ५०
२१ Dr K C, Jain Jainism in Rajasthan, p 103, F. N 2

गोत्र शेखावट के पाटोडा ग्राम से, कासलीवाल मीकर के निकट कासली ग्राम से, पाटनी गोत्र खण्डेला के निकट पाटन ग्राम से, टोग्या गोत्र सभवत टोक मे तथा काला गोत्र चामू के निकट ग्राम कालादेवा से प्रसिद्ध हुई । कुछ गोत्र—वेद, सोनी, वोहरा गादि क्रमश वैद्य, स्वर्ण एव लेनदेन के धन्धे के कारण स्थापित हुई । खण्डेलवालो की कुछ गोत्र उपनाम और विरुद के कारण भी प्रसिद्ध हुई थी यथा—साहा, चौधरी, छावडा, भौंसा, बडजात्या, सेठी आदि । अभिलेखो और प्रशस्तियो से गोधा,[१] ठोल्या,[२] पहाड्या,[३] विलाला,[४] गगवाल,[५] गोदिका,[६] पाण्ड्या,[७] रावका,[८] कुरकुरा, सोगानी[९] आदि गोत्रो का ज्ञान होता है । खण्डेलवाल जाति के अधिकाश लोग मूल सघ के अनुयायी विदित होते हैं, जो कि उल्लेखनीय है ।

बघेरवाल :

इस जाति का उत्पत्ति स्थल प्राचीन अवशेषो का केन्द्र बघेरा है । बघेरा बारहवी शताब्दी मे भट्टारको का पट्ट-केन्द्र था ।[१०] एक अनुश्रुति के अनुसार दिगम्बर साधु रामसेन एव नेमसेन ने बघेरा के राजा और प्रजा को जैनानुयायी बनाया था, सभवत· यह घटना आठवी शताब्दी की होगी । प० आशाधर भी बघेरवाल थे । अभिलेखो एव प्रशस्तियो से बघेरवाल जाति की रायभण्डारी,[११] शाखवाल,[१२] शानापति,[१३] थोला,[१४] कोट्वा,[१५] प्रभा,[१६] मिरवाड्या[१७] आदि गोत्रो का ज्ञान होता है ।

अग्रवाल

राजस्थान मे अग्रवाल उन्नतिशील जाति है, इसमे जैन और ब्राह्मण दोनो धर्मों के अनुयायी हैं । एक अनुश्रुति के अनुसार पजाब के अग्रोहा स्थान के नाम से अग्रसेन ने अग्रवाल जाति की स्थापना की थी । पट्टावलियो से विदित होता है कि लोहित्याचार्य ने अग्रवालो तथा उनके राजा दिवाकर को जैन धर्मानुयायी बनाया ।[१८] लोहिताचार्य वलभी-वाचना के प्रमुख देवर्धिगणि (४५३ ई०) के अग्रज थे, जो तीस वर्ष पूर्व अर्थात् ४२३ ई० मे रहे होगे ।[१९] अग्रवाल जाति का अस्तित्व आठवी शताब्दी के पूर्व मानना कठिन है, अतएव यह अनुश्रुति विश्वसनीय नही है । अभिलेखो और प्रशस्तियो से अग्रवालो की गोयल,[२०] गर्ग,[२१] सिंघल,[२२] बसल[२३] आदि गोत्रो का ज्ञान होता है ।

अन्य जैन जातियाँ ·

दिगम्बरो की नागदा और चित्तोडा जातियाँ मेवाड के नागदा एव चित्तोड नगरो मे प्रसिद्ध

---

१ वीरवाणी, सप्तम जिल्द, पृ० १३ २ वही, पृ० १२
३ Dr K. C Jain Jainism in Rajasthan, p 105 ४ वही, F N ९
५ प्रशस्ति सग्रह, पृ० ९९ ६ वही, पृ० १६९ ७ वही, पृ० १७०
८ वही, पृ० १७७ ९ वही, पृ० ४४ एव ७७ १० Indian Antiquary, XX, p 57
११ Nahar · Jain Inscriptions, No 438 १२ वही, स० ७२७ १३ वही, स० ६२८
१४ प्रशस्ति सग्रह, पृ० १४७ १५ वही, पृ० ९८
१६ Dr K C Jain Jainism in Rajasthan, p 106 १७ वही
१८ श्री भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास, पृ० ५५० १९. वही, पृ० ५४८
२० प्रशस्ति सग्रह, पृ० ८५ २१ वही, पृ० ११९ २२ वही, पृ० ८२ २३ वही, पृ० ९७

हुई हैं, जिनके प्रादुर्भाव का समय मध्ययुग रहा होगा। इन्होने कई मदिर, मूर्ति प्रतिष्ठा एव शास्त्र प्रतियाँ लेखन वागड के मूल सघ और काष्ठा सघ के भट्टारको की प्रेरणा से सम्पादित किये थे। पन्द्रहवी शताब्दी मे भट्टारक ज्ञानभूषण ने नागद्रारास लिखकर नागदा जाति के इतिहास को प्रकाशित किया था। नरसिंहपुरा और जैसवाल दिगम्बर जातियो की उत्पत्ति मध्यकाल मे मेवाड के नरसिंह-पुरा और जैसलमेर मे हुई थी, फलत जैनाचार्यों ने इनको स्थान सूचक नाम प्रदान किया होगा।

हुम्वड

अन्य जातियो की तरह हुम्वड जाति भी किसी स्थल से सम्बद्ध रही होगी। राजस्थान मे प्राचीन वागड प्रदेश हुम्वड जाति का केन्द्र है। इस जाति का उत्पत्ति काल अन्यो की तरह आठवी शताब्दी माना जाता है। हुम्वड जाति की तीन शाखाए—लघु शाखा, वृहत शाखा, वर्षावत शाखा तथा १८ गोत्र[1]—खरजु, कमलेश्वर, काकदेश्वर, उत्तरेश्वर, मत्रेश्वर, भीमेश्वर, भद्रेश्वर, गगेश्वर, विश्वेश्वर, साखेश्वर, अम्वेश्वर, चाचनेश्वर, सोमेश्वर, रजियानो, ललितेश्वर, कासवेश्वर, बुघेश्वर और सघेश्वर विभिन्न स्रोतो से विदित होती हैं।

धर्कट

दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनो मे धर्कट जाति का अस्तित्व है। धम्मपरीक्षा के लेखक हरिषेण इसी जाति के थे, इनका समय दसवी शताब्दी माना जाता है।[2] १२३० ई० के देलवाडा अभिलेख[3] तथा आबू के दो अभिलेखो[4] मे धकट जाति का उल्लेख है, फलत इस जाति का उत्पत्ति प्रदेश राजस्थान ही प्रतीत होता है, यद्यपि वतमान मे यह जाति दक्षिण भारत मे अवस्थित है। हरिषेण द्वारा उल्लेखित सिरिउजपुरिय धक्कड कुल के आधार पर नाथूराम प्रेमी[5] धर्कट कुल को टोक के सिरोज से तथा अगरचद नाहटा[6] धकडगढ से सम्बन्धित मानते हैं क्योकि धकडगढ से ही महेश्वरी जाति की धाकड शाखा की उत्पत्ति मानी जाती है। दो प्रशस्तियो के आधार पर नाहटाजी ने धकडगढ की स्थिति श्रीमाल के निकट मानी है।[7]

श्रीमोढ

श्रीमोढ वनिये वर्तमान मे भी वैभवशाली है। श्रीमोढ ब्राह्मण अपने को श्रीमोढ नामक स्थान से सम्बन्धित मानते हैं। दोनो जातियो का उद्गम स्थल अणहिलवाड के दक्षिण मे स्थित प्राचीन नगर मोघेरा है। सोलकी सम्राट कुमारपाल के गुरु तथा प्रसिद्ध जैन विद्वान् हेमचन्द्र सूरि का जन्म श्रीमोढ जाति मे ही हुआ था। इस जाति के अभिलेख बारहवी शताब्दी से मिलते हैं।[8]

जैनो की उपर्युक्त सभी जातियो तथा गोत्रो के लोग वर्तमान राजस्थान मे अपनी सास्कृतिक धरोहर एव सस्कार को जीवित रखे हुए हैं। राजस्थान को इस बात का गौरव प्राप्त है कि अधिकाश जैन जातियो और गोत्रो का यह उत्पत्ति प्रदेश रहा है तथा यहाँ के निवासी भारत के सम्पूर्ण प्रमुख नगरो मे प्रतिष्ठापूर्वक जीवनयापन कर रहे हैं। ○

---

१ प्रशस्ति सग्रह, पृ० १२८　　२ जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ४६८
३ अनेकात, ३, पृ० १२४　　४ वही, पृ० १२८　　५. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ४६८
६ अनेकात, ४, पृ० ६१०　　७ जैन पुस्तक प्रशस्ति सग्रह, सख्यक ५२ एव ६३
८ Dr K C Jain Jainism in Rajasthan, p 109

१९ | राजस्थान में स्थानकवासी-परम्परा

○

आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा०

वीरभूमि-धर्मभूमि :

राजस्थान की वीर भूमि जो आज धर्म भूमि बनी हुई है, उसमे जैन सतो का बडा योगदान रहा है। जैन सन्तो और श्रावको ने इस प्रात के धार्मिक जागरण मे बडा उल्लेखनीय योगदान दिया है। ओसवाल समाज का तो उत्पत्ति स्थान ही राजस्थान माना जाता है। जोधपुर, उदयपुर, जयपुर और बीकानेर आदि भूतपूर्व राज्यो की शासन-व्यवस्था मे परम्परा से जैनो का बडा हाथ रहता आया था। सर्वत्र जैन आदर की दृष्टि से देखे जाते थे। देश हित मे जैनो का त्याग अजोड रहा है। भामाशाह का त्याग इतिहास मे आज भी अमर स्मृति बनाये हुये है। राजस्थान के पश्चिमी अचल मे श्वेताम्बर जैनो और पूर्वी अचल मे दिगम्बर जैनो का, सर्वतोमुखी विकास मे प्रमुख भाग रहा प्रतीत होता है।

स्थानकवासी समाज के सतो ने भी इधर काफी काम किया। गुजरात से सम्बन्धित होने के कारण लोकागच्छ की परम्परा राजस्थान मे बहुत शीघ्र फैल गई। जालोर, सिरोही होते नागौर, बीकानेर और जैतारण मे लोकागच्छ की गद्दिया प्रतिष्ठापित हो गई। क्रियाउद्धार[1] के क्रातिकारी माध्यम द्वारा बाह्याडम्बर के विरोध मे एक देशव्यापी लहर उठी। गुजरात से उद्भूत वह लहर राजस्थान मे आसन जमा बैठी। सोलहवी-सतरहवी सदी मे यहा लोकागच्छ के अतिरिक्त पोतियाबध परम्परा का भी प्रसार होने लगा था।

उस समय स्थानकवासी सन्त जो बावीस सम्प्रदाय या ढूढिया नाम से पुकारे जाते थे का प्रसार अल्प-स्वल्प था। जहा-तहा यति वर्ग साधुओ के प्रवेश को हर प्रकार से रोकना चाहता था, फिर भी यत्र-तत्र जो आडम्बर विरोधी तत्त्व थे, सन्तो के त्याग, तप के प्रभाव ने उनके मन मे आदर उत्पन्न किया और उनके सहयोग से शनै -शनै सन्तो का प्रचार क्षेत्र बढने लगा।

---

१ प्रमुख क्रियोद्धारक थे—पूज्य आचार्य सर्वश्री जीवराजजी, लवजी, धर्मसिहजी, धर्मदासजी, हरजी और धन्नाजी।

—सम्पादक

पूज्य श्री अमरसिंह जी म० सा० बड़े प्रभावशाली आचार्य हुए हैं। आपने बडे-बडे राजा-महाराजाओ को प्रतिबोध दिया। दिल्ली के बादशाह को प्रतिबुद्ध कर आपने रजवाडो मे हिसाबदी के हुक्म प्रसारित करवाये। आपने स० १८११ मे स्थानकवासी सम्प्रदायो का मेडता मे एकीकरण किया। आपके साधु-समुदाय मे पूज्य श्री जीतमल जी म० बडे विद्वान, कलाप्रिय, कवि और उर्दू-फारसी के ज्ञाता थे। आपकी परम्परा मे अभी प्रवर्तक प० श्री पुष्कर मुनि जी म० सा०, श्री देवेन्द्र मुनि जी म० सा० आदि सन्त और श्री महासती श्री शीलकवर जी आदि सतिया हैं। भण्डारी श्री रघुनाथदास जी आपके भक्त थे।

पूज्य श्री जीवराज जी म० की परम्परा मे श्री नानकराम जी म० और श्री स्वामीदासजी म० दोनो बडे विद्वान सन्त हुए हैं। पूज्य श्री नानकराम जी म० बडे क्रिया पात्र थे। अजमेर के आस-पास के क्षेत्रो मे आपका अधिक विराजना रहा। आपके साधु-परिवार मे श्री माधोजी म० बडे कठोर क्रियापात्र थे। मास-मास की तपस्या आप बहुत बार किया करते थे। परिषह सहन के लिए आप शीतकाल मे प्रात और गर्मी की ऋतु मे दोपहर को विहार करते थे।

पुष्कर में उस समय जैन साधुओ को पण्डे लोग आने नही देते थे। एक बार श्री माधोजी म० को पुष्कर जाते देखकर पण्डो ने घेर लिया और कहा—बाबाजी! आराम से जीना हो तो पीछे लौट जाओ, नही तो हम तुम्हारी हड्डिया बिखेर देंगे। इस पर महाराज श्री नाग-पहाड मे ध्यान लगा कर बैठ गये। २५ दिन तक उपवास मे रहे। अन्त मे पुष्कर निवासियो को सूचना मिली कि पण्डो के सताने से एक जैन सत पहाड मे तपस्या कर रहे हैं और इसी पाप के फलस्वरूप हमारे नगर मे बीमारी चल पडी है। तब सब लोगो ने महाराज के पास जाकर क्षमा मागी और उनको नगर में पधारने की विनती की। इस पर तपस्वी महाराज ने शान्त भाव से गाव मे आकर पारणा किया। लोगो पर बडा प्रभाव पडा।

माधोजी के अनन्तर भी कई प्रभावशाली सन्त हुए। आपकी परम्परा मे वयोवृद्ध श्री पन्नालाल जी म० सा० राजस्थान मे बीसवी सदी के सन्त हो गए हैं। आपने अपने ओजपूर्ण उपदेश

और तपोवल से कई जगह देवी-देवो के नाम से होने वाली पशु हिंसा वन्द की और समाज-सुधार के कार्य किये। आपने समाज मे धर्म-प्रवृत्ति को निरन्तर जागृत रखने हेतु स्वाध्याय सघ की स्थापना की। श्री नानकराम जी म० की सम्प्रदाय मे सैंकडो साधु-साध्वी हुए। अभी प० श्री हगामीलाल जी म० सा०, एव प्रवर्तक श्री कुन्दनमल जी म० सा० आदि सन्त विद्यमान हैं।

श्री स्वामीदास जी म० की परम्परा मे कई विद्वान एव प्रभावशाली सन्त हुये हैं। श्री बखतावरमल जी म० उनमे बडे चमत्कारी सन्त थे। गोडवाड प्रान्त मे उनका वडा प्रभाव था। वे अच्छे साधक और वचनसिद्ध पुरुष थे। वर्तमान मे आपकी परम्परा मे मुनि श्री कन्हैयाल जी 'कमल' आदि सत हैं।

पूज्य श्री शीतलदास जी म० की परम्परा भी राजस्थान और प्रमुखत मेवाड मे धर्म का प्रचार-प्रसार करती रही है। पूज्य श्री प्रतापमल जी म० इस परम्परा मे प्रभावशाली सत हुए हैं। तपस्वी श्री वेणीदास जी म० ने करीव ५० वर्ष तक छाछ के आधार पर तप किया। एक वार आपने वनेडा के नगर द्वार मे खडे रहने का व्रत किया। आपका अभिग्रह था कि बनेडा के राजा अपने पोते के साथ आवें और भवर जी कहे—"वेणा! वेठणो व्हे तो बैठ, नही तो चल जा," तो वैठना अन्यथा खडे रहना। तपस्वी जी का वह सकल्प कुछ दिनो पश्चात पूरा हुआ। नगर मे धर्म की प्रभावना हुई। वर्तमान मे इस परम्परा की महासती जसकवर जी म० अच्छा धर्म प्रचार कर रही हैं। वेगू के पास जोगणिया देवी के नाम पर होने वाली हजारो मूक प्राणियो की हिंसा वद कराने मे उनके उपदेश का वडा प्रभाव रहा। इस परम्परा के उ०प्र० श्री मोहन मुनिजी और मुनि श्री महेन्द्रकुमार जी 'कमल' धर्म-प्रचार का अच्छा कार्य कर रहे हैं।

पूज्य श्री जीवराज जी म० की परम्परा मे दूसरी शाखा श्री नाथूराम जी म० की रही है। अलवर, कोटा, भरतपुर, वीकानेर आदि मे अच्छा धर्म-प्रचार किया। इस परम्परा मे सन्तो की तरह, महासत महाकवर जी, महासती भूर सुन्दरी जी आदि कई सतिया भी अच्छी धर्म प्रचारिकाए एव विदुषिया हुई हैं। वर्तमान मे इस परम्परा के 'सुत्तागमे' के सम्पादक मुनि पुप्फ-भिक्खू और विश्वधर्म सम्मेलन के प्रवर्तक प० मुनि सुशीलकुमार जी धर्म-प्रचार मे वहुत अच्छा योगदान दे रहे हैं। वीसवी सदी के दूसरे चरण के बाद इस समुदाय के साधुओ का अधिकाशत राजस्थान के वाहर भ्रमण होता रहा है।

पूज्य श्री जीवराज जी म० के समान राजस्थान मे दूसरी सन्त-परम्परा पूज्य श्री धन्ना जी म० की रही है। पूज्य श्री धन्ना जी म० राजस्थान स्थित साचोर मालवाडा के निवासी थे। आपका जन्म पोरवाल वश के वाघामूथा जो वहा के कामदार थे, उनके यहा हुआ। आप वाल्यकाल से ही धार्मिक रुचि वाले थे। सत्सग से आप कुछ वर्ष पोतियावध की श्रद्धा मे भी रहे। फिर पूज्य श्री धर्मदास जी म० का उपदेश श्रवण कर आपने पूरी तरह ससार त्याग कर मुनि धर्म स्वीकार किया। आपका राजस्थान क्षेत्र मे व्यापक प्रचार रहा। आपके ७ विद्वान शिष्य हुए। उन्होने चतुर्मुखी भ्रमण कर मारवाद के गाव-गाव मे धर्म का सन्देश पहुचाया। आप वडे तपस्वी और रसविजयी सन्त थे। एकान्तर तप के साथ आपने पांचो ही विगय का त्याग कर रक्खा था। स० १७३२ की एक प्रशस्ति से यह प्रमाणित होता है कि आपका मेडता के आसपास अच्छा धर्म-प्रचार हो चुका था। यह चतुर्मास भी आपने मेडता मे किया और स० १७८४ मे आपने समाधिपूर्वक देहत्याग भी मेडता में ही किया।

पूज्य श्री धन्ना जी म० के शिष्यो मे पूज्य श्री भूधर जी म० बहुत ही प्रभावशाली महापुरुष हुए हैं। आप बडे तपस्वी क्षमाशूर और प्रतापवान थे। आपका जन्म सोजत के मुणोत श्री माणकचन्द जी के यहा हुआ। वर्षों आपने राजकीय सेवा की। पूज्य श्री धन्ना जी म० के सत्सग से प्रतिबोध पाकर आप दीक्षित हुए। आपने देश प्रदेश मे घूम-घूम कर धर्म का बडा उद्योत किया। मरुधरा के सेवाधिकारी भण्डारी खीवसी की प्रेरणा से आप दिल्ली पधारे और वहा आपने शाहजादी के प्राण बचाये। आपके सत्य ज्ञान से प्रभावित हो, भण्डारीजी ने जैन-धर्म स्वीकार किया, और सोजत के कोट के मोहल्ले का स्थान जो मस्जिद मे परिवर्तित था, समाज को धर्म ध्यानार्थ दिलाकर, उसे स्थानक रूप में बदल दिया। आपके अनेको विद्वान शिष्य हुए। उन्होने मारवाड के कोने-कोने मे घूमकर जालौर, साचोर, सिवाना, बालोतरा, पाली, पीपाड, जोधपुर, फलोदी, बीकानेर, थली सर्वत्र साधु-धर्म का प्रभाव जमाया और हजारो लोगो को सत्य-धर्म मे दीक्षित किया। आपके ६ शिष्यो मे पूज्य श्री रघुनाथ जी म०, पूज्य श्री जयमल जी म०, पूज्य श्री कुशला जी म० और पूज्य नारायण जी म० बडे प्रभावक महापुरुष हुए।

पाच-पाच की तपस्या करते हुए आप मेडता चातुर्मास हेतु पधारे और वही पर स० १८०४ की विजयदशमी के दिन स्वर्गवासी हो गये।

पूज्य श्री भूधर जी म० के पट्टधर पूज्य श्री रघुनाथ जी म० और पूज्य श्री जयमल्ल जी म० सघ का सचालन करने लगे। साधु-साध्वियो के विशाल समुदाय का सुयोग्य रीति से शासन करते हुए चारो भाइय का परिवार खूब फला-फूला।

पूज्य श्री भूधर जी म० के शिष्यो मे श्री रघुनाथ जी म० बडे भाग्यशाली और प्रतापी थे। आप अमर होने की अभिलाषा लिए चामुण्डा को अपना सिर चढाने जा रहे थे। पर पूज्य श्री भूधर जी के उपदेश से प्रभावित हो, आपने सयम धर्म स्वीकार किया। आपके शासनकाल मे लगभग २२५ साधु-साध्विया श्रुत-चारित्र-धर्म का प्रचार-प्रसार कर रहे थे। गुरुदेव पूज्य श्री भूधर जी म० के स० १८०४ मे स्वर्गागमन के बाद पूज्य श्री रघुनाथ जी म०, पूज्य श्री जयमल जी म० और पूज्य श्री कुशलजी म० आदि शिष्य एव शिष्यानुशिष्य हजारो साधु-साध्विया विशेष तत्परता से धर्म व सम्प्रदाय की सेवा मे जुट गये।

पूज्य श्री जयमल जी म० ने गुरुदेव के स्वर्गवासान्तर ही आजीवन शयन—निद्रा लेना छोड दिया। पूज्य श्री कुशल जी म० सा० भी गुरु भाई का पूरा साथ देते रहे। विद्वान और प्रभावशाली सन्तो से पूज्य श्री रघुनाथ जी म०, पूज्य श्री चौथमल जी म०, पूज्य श्री जयमल जी म०, पूज्य श्री महाचन्द जी म०, पूज्य श्री रूपचन्द जी म० और पूज्य श्री कुशल जी म० के अलग-अलग सघाडा चलने लगे।

पूज्य श्री रघुनाथ जी म० की परम्परा मे पूज्य श्री टोडरमल जी म०, श्री दीपचन्द जी म०, श्री सन्तोष जी म०, श्री छगनमल जी म०, श्री मानमल जी म० और श्री बुद्धमल जी म० अच्छे तपस्वी और विद्वान सन्त हुए। श्री रूपचन्द जी म० की परम्परा मे श्री जेठमल जी म० बडे चर्चा-वादी थे। उन्होंने अहमदाबाद मे चर्चाकर 'समकितसार' ग्रन्थ की रचना की। वर्तमान में इस परम्परा के मरुधर केसरी श्री मिश्रीमल जी म० सा० विद्यमान हैं।

पूज्य श्री जयमल जी म० सा० की परम्परा मे पूज्य श्री रायचन्द जी म० सा०, श्री आसकरण जी म० सा० आदि अच्छे कवि और विद्वान सन्त हुए है। पूज्य श्री जयमल जी म० परम-विरागी, तपस्वी, कवि एव विविध शास्त्रो के ज्ञाता थे। वर्तमान मे आपकी परम्परा के स्वामी व्रजलाल जी म०, श्री मिश्रीलाल जी म० 'मधुकर', श्री जीतमल जी म०, श्री लालचन्द जी म०, आदि सत विद्यमान हैं।

पूज्य श्री कुशल जी म० की परम्परा मे पूज्य श्री गुमानचन्द जी म०, पूज्य श्री रतनचन्द जी म०, पूज्य श्री हमीरमल जी म०, स्वामी कनीराम जी म०, पूज्य श्री कजोडीमल जी म०, स्थविर श्री नन्दराम जी म० और तपस्वी श्री बालचन्द जी म० बडे प्रभावशाली सन्त थे।

आचार्य श्री रतनचन्द जी म० के समय जोधपुर नरेश श्री विजयसिंह जी और श्री तखतसिंह जी के राज्यकाल मे मेहता अखैचन्द जी, लखमीचन्द जी दीवान थे, जो पूज्य श्री के परम भक्त थे।

श्री कनीराम जी म० बडे वादलब्धि वाले थे। पूज्य श्री महा तेजस्वी सन्त थे। उनके बाद आचार्य श्री विनयचन्द जी म० बहुश्रुत व परम स्मृतिधर थे। श्री नन्दलाल जी म० भी बडे विद्वान लेखक थे। उनके समय मे पूज्य श्री लाल जी म०, पूज्य श्री माधव मुनि जी म० सा०, पूज्य श्री ज्ञानचन्द जी म० आदि कई विशिष्ट सन्त और महासती श्री वरजू जी, महासती श्री आणदा जी, महासती श्री महाकंवर जी, महासती श्री झमकू जी, महासती श्री नन्दकवर जी, महासती श्री रगू जी, महासती श्री रिद्धू जी, महासती श्री केशर जी, महासती श्री छोगा जी, महासती श्री इन्द्रकवर जी, महासती श्री ज्ञानकवर जी, महासती श्री मल्लाव जी, महासती श्री जडाव जी, महासती श्री अमरकवर जी, महासती श्री धनकवर जी, महासती श्री केशर जी आदि सतिया भी अच्छी प्रभाव-शालिनी हुई हैं।

पूज्य श्री शोभाचन्द जी म०[1] बडे शान्त सरल एव विनयमूर्ति, निराडम्बरी आचार्य थे। आपके आचार्यकाल मे स्वामी जी श्री चन्दनमलजी म० विद्वान एव प्रभावशाली सत थे।

पूज्य श्री हरजी म० की मुख्य दो परम्पराए है। एक कोटा समुदाय की परम्परा और दूसरी पूज्य श्री हुकमीचन्द जी म० की परम्परा। कोटा समुदाय की परम्परा के श्री गणेशमल जी म०, ने जो 'खादीवाले' के नाम से प्रसिद्ध हैं, दक्षिण मे विशेष धर्म-प्रचार किया। श्री रामकुमार जी म० के शिष्य श्री रामनिवास जी म० का माधोपुर विशेष विचरण-क्षेत्र रहा है। पूज्य हुकमीचन्द जी

---

१ इस लेख के लेखक आचार्य श्री हस्तीमल जी म० सा० इन्ही के शिष्य हैं। आप वर्तमान मे इस परम्परा के आचार्य हैं। आपकी प्रेरणा से सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के अन्तर्गत स्वाध्यायी सघ नैतिक शिक्षण और धर्म-जागरण का अच्छा कार्य कर रहा है। आपकी ही प्रेरणा से गठित अ० भा० वीर निर्वाण साधना समारोह समिति ने जीवन को सयमित, सस्कारी और व्यसन-मुक्त बनाने की दिशा मे सराहनीय कार्य किया है। वर्तमान मे इस परम्परा मे प० श्री लक्ष्मीचन्द जी म० ने स्थानकवासी परम्परा के कवियो पर अच्छा कार्य किया है। साध्वी श्री मैनासुन्दरी जी ओजस्वी व्याख्याता हैं। —सम्पादक

म० की परम्परा मे पूज्य श्री लाल जी म० परम विरागी बाल-ब्रह्मचारी आचार्य थे। उन्होने राजस्थान मे धर्म की अच्छी प्रभावना की। इस परम्परा के पूज्य आचाय श्री जवाहरलाल जी म० व जैन दिवाकर श्री चौथमल जी म० सा० ने राजस्थान के राजा-महाराजाओ मे अच्छी धर्म-प्रभावना की। मेवाड के महाराणा फतेहसिहजी एव भूपालसिहजी आपके भक्त थे। वर्तमान श्रमण सघ के उपाचार्य श्री गणेशीलाल जी म० इसी परम्परा से सम्बन्ध थे। वर्तमान में आचार्य श्री नानालाल जी म० की प्रेरणा से बलाई जाति मे सस्कार-शुद्धि का प्रभावशाली कार्य हो रहा है।

स्थानकवासी सन्तों के धर्माचार की विशेषता यह थी कि ये जातिवाद से दूर, शास्त्रानुकूल १२ कुल की गोचरी और सब लोगो को उपदेश देते। जो लोग बहिष्कार करते वे भी धीरे-धीरे त्याग-तप स प्रभावित हो, अनुयायी होने लगे। ये लोग बाजार की हट्टो, नगरद्वारो और छतरियो मे निर्भय हो सार्वजनिक धर्म-उपदेश करते और घोर तप एव आतपन से अपने विरोधियो के दिल जीतते। इन्होने कइयो से चर्चाए भी की और बोध दिया। आजकल लाखो लोग इस परम्परा के मानने वाले विद्यमान हैं।
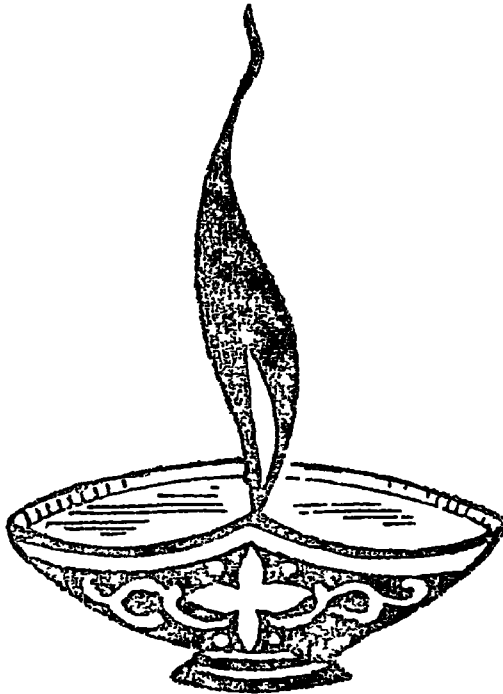
२० | राजस्थान में तेरापंथ सम्प्रदाय का अभ्युदय

○

मुनि नथमल

विक्रम की उन्नीसवी शताब्दी के पूर्वार्ध (सवत् १८१७) मे एक विचार क्रान्ति घटित हुई। फलस्वरूप आचार्य भिक्षु की प्रतिभा ने तेरापथ को जन्म दिया। उस समय पूज्य रघुनाथजी स्थानकवासी परम्परा के सुप्रसिद्ध आचार्य थे। सत भीखणजी उनके पास दीक्षित हुए। कुछ विचार-भेद के कारण वे उस परम्परा मे मुक्त हो गए। उनकी अन्तर्मुखी वृत्ति, अनासक्ति, विरक्ति, तपस्या और चतुर्मुखी प्रतिभा से जनता आकर्षित हुई। तेरापथ का उद्भव हो गया।[1]

जैन धर्म की दो मुख्य शाखाएँ—श्वेताम्बर और दिगम्बर पहले मे प्रचलित थीं। श्वेताम्बर शाखा मे सवेगी और स्थानकवासी ये दो प्रशाखाए थी। तेरापथ के उद्भव के बाद तीन प्रशाखाए हो गई। शाखा-प्रशाखा का होना विकास का स्वाभाविक क्रम है। मेरी दृष्टि मे शतशाखी वृक्ष विशाल और रमणीय होता है। तेरापथ ने जैन परम्परा की विशालता और रमणीयता मे वृद्धि की है। आचार्य भिक्षु ने जिस सगठन की स्थापना की, उसकी अपनी कुछ मौलिक विशेषताए हैं। उसकी तीन मुख्य आधार शिलाए हैं—निष्कर्म, हृदय-परिवर्तन, सापेक्षता।

निष्कर्म

शरीर-धारणा के लिए कर्म की अनिवार्यता है। शुद्ध चेतना के जागरण के लिए निष्कर्म की अनिवार्यता है। कर्म और निष्कर्म का सन्तुलन ही धर्म का मर्म है। कोरा कर्म होता है, वहा स्पर्धा और सघर्ष के स्फुलिंग उछलते हैं। कोरा निष्कर्म होता है, वहा सघ नही होता, परम्परा नही होती। परम्परा, सघ और साधना तीनो की समन्विति के लिए कर्म और निष्कर्म दोनो की समन्विति अपेक्षित है। आचार्य भिक्षु ने स्पर्धा और सघर्ष के वातावरण को देख निष्कर्म को प्रधानता दी। इसीलिए उनके अध्यात्मवादी या निवृत्तिपरक विचारो को समझने मे कुछ कठिनाइया

---

१ प्रारम्भ मे श्री भिक्षुगणी अपने साथी साधुओ सहित १३ की सख्या मे थे। राजस्थानी भाषा मे तेरह को तेरा कहा जाता है। इस दृष्टि मे यह पथ तेरापथ नाम मे प्रसिद्ध हुआ। बाद मे आचार्य भिक्षु ने इसे आध्यात्मिक अर्थ देते हुए कहा—हे प्रभो! यह तेरा अर्थात् तुम्हारा ही पथ (रास्ता) है। दूसरा अर्थ उन्होने यह लगाया कि पाच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्ति, इन तेरह नियमो का जो पालन करे, वह तेरापथ। —सम्पादक

हुई थी। आचार्य भिक्षु ने आचार्य कुंदकुंद की आध्यात्मिक परम्परा को नए सन्दर्भ मे उज्जीवित किया। स्थूल व्यवहार के स्तर पर चलने वाले लोग उसकी गहराई तक नही पहुँच सके। उन्हे वह धारा व्यवहार का उन्मूलन करने वाली लगी। इसलिए उसका विरोध भी हुआ। किन्तु सचाई यह है कि आचार्य भिक्षु ने तेरापथ के माध्यम से अध्यात्म की तर्कशुद्ध पद्धति प्रस्तुत की। सुप्रसिद्ध विद्वान डा० शतकरी मुकर्जी ने एक प्रसग मे कहा—'आचार्य भिक्षु मारवाड मे जन्मे, यदि वे जर्मनी मे जन्मे होते तो उनका दर्शन काट से कम महत्त्व का नही होता।'

आचार्य भिक्षु ने निष्कर्म को केवल सैद्धातिक रूप मे ही प्रतिष्ठित नहीं किया। उसे व्यवस्था के स्तर पर भी प्रतिष्ठा दी। कर्म की बहुलता कामना की बहुलता से जुडी रहती है। निष्काम और निष्कर्म अलग-अलग नही होते। निष्कर्म होगा, वहा निष्काम होगा और निष्काम होगा, वहा निष्कर्म होगा। 'पद के लिए उम्मीदवार नही बनूंगा'—यह व्यवस्थासूत्र निष्कर्म और निष्काम दोनो की फलश्रुति है। पद कार्य के लिए है, सेवा के लिए है, प्रतिष्ठा के लिए नही है—इस सिद्धान्त के आधार पर तेरापथ के चतुर्थ आचार्य श्री जयाचार्य ने पद के समर्पण की व्यवस्था की। 'अग्रणी साधु-साध्वी चातुर्मास के बाद आचार्य के पास आयें तब पद का समर्पण करदें'। इस व्यवस्था के अनुसार लगभग सवा सौ अग्रणी साधु-साध्विया आचार्य के पास उपस्थित होते ही इस व्यवस्था को दोहराते हैं—'मैं, मेरे सहगामी साधु (या साध्वी) तथा पुस्तकें आपके चरणो मे प्रस्तुत हैं, आप जहा रखेंगे, वही हम रहेंगे। यह समर्पण या ममकार-विसर्जन की अन्त प्रेरणा तेरापथ को नई शक्ति और नई स्फूर्ति प्रदान करती है।

हृदय–परिवर्तन

आचार्य भिक्षु ने यह स्वीकार किया कि साध्य और साधन दोनो की शुद्धि हुए बिना धर्म नही हो सकता। इस सिद्धान्त की व्याख्या मे हृदय-परिवर्तन का सिद्धान्त विकसित हुआ। हृदय-परिवर्तन के लिए विराट् प्रेम का होना जरूरी है। जिसके हृदय मे क्रूरता छिपी रहती है, वह हृदय-परिवर्तन करने मे सफल नही होता।

गोकुलदास नानजी भाई गाधी ने लिखा है कि आचार्य भिक्षु का साध्य-साधन की शुद्धि और हृदय-परिवतन का सिद्धान्त बीज श्रीमद्रायचन्द्र के पास पहुचा और श्रीमद् के माध्यम से वह महात्मा गाधी तक पहुचा। मेरी दृष्टि मे साधन शुद्धि पर आचार्य भिक्षु और महात्मा गाधी ने जितना विशद चिंतन किया है, उतना अन्य चिंतको ने नही किया।

आचार्य भिक्षु ने सघ का विधि-पत्र लिख साधुओ की स्वीकृति के लिए उनके सामने प्रस्तुत कर दिया। उन्होंने कहा—'जिन्हें इन मर्यादाओ में विश्वास हो, वे इस विधि-पत्र को अपनी स्वीकृति दें और जिन्हें विश्वास न हो, वे सकोचवश इसे स्वीकार न करें।' यह हृदय-परिवर्तन का सिद्धान्त सर्वत्र मान्यता प्राप्त कर चुका है। वैचारिक परिवतन राजनीतिक परिवर्तन से अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

सापेक्षता

जैन धर्म मे सामुदायिक साधना की पद्धति बहुत पहले से मान्य है। इसीलिये जैन परम्परा में सघ का बहुत महत्त्व रहा है। आचाय भिक्षु ने इस महत्त्व का मूल्याकन किया और सापेक्षता के

आधार पर सघ की व्यवस्था की। तेरापथ की साधु-सस्था ने सेवा के क्षेत्र से अनेक कीर्तिमान स्थापित किये। समता और सापेक्षता एक-दूसरे के पूरक है। तेरापथ ने अपनी व्यवस्था मे समता को इतना विकसित किया कि उसे जानकर श्री जयप्रकाश नारायण ने कहा था—'तेरापथ की सघ-व्यवस्था मे सवा सोलह आना समाजवाद है।' धर्म का मूल समता है। भगवान् महावीर ने इसे सर्वाधिक महत्त्व दिया था। यह कटु सत्य है कि श्रावक समाज ने इस व्यवस्था का अनुगमन नही किया।

आचार्य भिक्षु की वाणी अनुभव की वाणी थी। उन्होने अनेक ग्रन्थ लिखे। वे राजस्थानी साहित्य के गौरव ग्रन्थ हैं। उनके चतुर्थ उत्तराधिकारी जयाचार्य ने लाखो पद्य लिखे। उनका गद्य साहित्य भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। आचार्य तुलसी और उनके शिष्य मण्डल ने अनेक रचनाए की हैं। उन्होने साहित्य जगत् को प्राकृत, सस्कृत, हिन्दी और राजस्थानी मे अनेक ग्र थ दिये हैं। एक साथ इतनी वडी सख्या मे साधु-साध्वियो की साहित्यिक प्रतिभा का विकसित होना कोई नियति का योग ही है।

अणुव्रत आन्दोलन

आचार्य भिक्षु ने धर्म की व्यापकता स्वीकार की। भगवान् महावीर की वाणी के आधार पर उन्होने कहा—धर्म वेशातीत और सम्प्रदायातीत है। इस स्वीकृति ने तेरापथ के वर्तमान नवम् आचार्य,[1] आचार्य तुलसी को अणुव्रत आन्दोलन के प्रवर्तन की प्रेरणा दी। अणुव्रत आन्दोलन किसी सम्प्रदाय और उपासना पद्धति से आवद्ध नही है। वह शुद्ध अर्थ मे धर्म की आचार-सहिता है। वह सार्वकालिक और सार्वदेशिक है। इस आन्दोलन ने धर्म-समन्वय के मच की भूमिका निभाई है और सव सम्प्रदायो के लोगो ने इसे अपनाया है।

अनुशासन का प्रतीक मर्यादा महोत्सव :

तेरापथ के आचार्य अनुशासन को अत्यधिक महत्त्व देते रहे हैं। उनके अनुसार अनुशासन-युक्त सघ ही वास्तव मे सघ होता है। जो अनुशासनयुक्त नही होता, वह कोरा अस्थियो का ढेर मात्र होता है। तेरापथ के श्रमण-श्रमणी संघ ने भी अपनी अनुशासन प्रियता के द्वारा सघ को शक्तिशाली वनाया है। प्रति वर्ष चातुर्मास के वाद आचार्य के पास आना, मर्यादाओ का पुनरावर्तन करना और आचार्य के निर्देशानुसार पुन विहार करना—समर्पण के सजीव चित्र हैं, जो भाग्य से ही किसी विरल सगठन की भित्ति पर आलेखित होते हैं। तेरापथ विक्रम सवत् १८२० से प्रति वर्ष मर्यादा का महोत्सव मना रहा है।

अध्यात्म ज्योति :

अनुशासन यत्र है। वह व्यक्ति की चेतना को नियत्रित कर अन्तर की ज्योति को आवृत्त कर देता है। व्यवहार की भूमिका मे उसका मूल्य हो सकता है पर सत्य की भूमिका पर उसे मूल्य

---

१. नौ आचार्यों का क्रम इस प्रकार है—
१. श्री भिक्षुगणी, २. श्री भारमल स्वामी, ३. श्री रायचन्द स्वामी, ४ श्री जीतमल स्वामी, (जयाचार्य) ५ श्री मघवागणी, ६ श्री माणकगणी, ७ श्री डालगणी, ८ श्री कालूगणी, ९ श्री तुलसीगणी
—सम्पादक

प्राप्त नही होता । वहा मूल्य होता है अन्तर्मुखी वृत्ति का, जो अनुशासन को आतरिकता प्रदान करती है । आचार्य श्री तुलसी ने अध्यात्म साधना (या योग साधना) के विकास की दिशा मे कुछ विशिष्ट प्रयत्न किए हैं । जैन परम्परा मे ध्यान के नये उन्मेष लाने मे, ये प्रयत्न बहुत मूल्यवान होंगे।

कला-कौशल .

'सत्य' हमारे अन्तर मे होता है, 'शिव' हमारे परिपार्श्व मे होता है और 'सुन्दर' हमारे कार्य मे अभिव्यक्त होता है । कोई भी सगठन परिपूर्ण नही होता । विश्व की कोई भी रचना पूर्ण नही होती । अपूर्णता से पूर्णता की दिशा में बढने का प्रयत्न ही 'सत्य शिव सुन्दर' की उपलब्धि है । तेरापथ के साधु-साध्वी समाज ने कला के क्षेत्र में विशेष प्रगति की है । सूक्ष्माक्षर की लिपि, सिलाई, रगाई, धर्मोपकरणो का निर्माण—इन्हे आध्यात्मिक मूल्य न दिया जाय, फिर भी एकाग्रता और कौशल का मूल्य अवश्य दिया जायगा ।

हमने सत्य के पक्ष में आध्यात्मिक और सगठन के पक्ष में व्यावहारिक जीवन जीना स्वीकार किया है, इसलिये हमारे सघ ने दोनो क्षेत्रो में समन्वित गति की है । तेरापथ का विकास राजस्थान के लिए गौरव और जैन परम्परा के लिये महत्त्वानुभूति का विषय है । कोई भी तटस्थ इतिहासकार इस वास्तविकता को स्वीकृति दिये बिना रह नही सकता ।

तृतीय खण्ड

राजस्थान का सांस्कृतिक विकास
और
जैनधर्मानुयायी

२१ | राजस्थान में जैन-धर्म की सांस्कृतिक भूमिका

○

श्री रावत सारस्वत

नया चिन्तन • नया बोध :

ब्राह्मण धर्म की रूढिग्रस्तता ने जब दर्शन और धर्म के क्षेत्र में नये चिन्तन को प्रेरणा दी तब सागर मथन से उद्भूत रत्नो की भाति भ० महावीर का तत्त्व चिन्तन एक क्रातिकारी विचार के रूप मे प्रकट हुआ जिसने भारतीय समाज की गुणग्राह्यता को आकृष्ट किया और समाज की वरिष्टतम स्थितियो के विभिन्न समुदाय उस नव्य धारा मे दीक्षित हुए।

प्राय इसी समय से राजस्थान मे जैन-धर्म का प्रसार रहा है। कालक्रम से राजस्थान की ऐतिहासिक घडियो के साथ जैन धर्मावलम्बियो के सम्बन्ध खोजने के प्रयत्न किये जा सकते हैं। पर गुप्तकाल से पहिले की ऐतिहासिक सामग्री अत्यल्प मात्रा मे मिलने के कारण ऐसे प्रयास मे विशेष सफलता मिलना दुष्कर है फिर भी लगभग आठवी—नवी शताब्दी मे इस निरतर साहचर्य के साक्ष्य प्रचुर मात्रा मे प्राप्य हैं।

प्राच्य ग्रंथागार :

जैन-धर्म के सास्कृतिक वैभव की स्थूल सिद्धियाँ तो हमारे वे प्राच्य ग्रथागार हैं, जहाँ प्राकृतिक और मानवी दोनो प्रकार के आक्रमणो से सुरक्षित कर, जैन पडितो ने उपाश्रयों, मन्दिरो आदि मे इस अति महत्त्वपूर्ण साहित्य को छिपाये और सभाले रखा। इसके साथ ही वे जैन मूर्तियाँ, देवालय और धातु तथा शिलाओ पर उत्कीर्ण काल लिपिया भी हैं जो राजस्थान के इतिहास और सस्कृति की अमूल्य धरोहर हैं। विशेषत जैसलमेर, जालौर, बीकानेर, आमेर और अन्य अनेक प्राचीन नगरो, कस्बो तथा गाँवो मे—जहाँ-जहाँ किसी श्रद्धालु जैन-धर्मी का निवास था अथवा किसी विद्या-व्यसनी जैन मुनि का विहार-स्थल रहा, वहाँ-वहाँ इस विशाल हस्तलिखित भण्डार की ग्लावलियाँ

सुरक्षित रूप से प्राप्य है। सच पूछें तो शायद ही कोई ऐसा जैनधर्मियो का गाव रहा हो जहाँ कुछ-न-कुछ मात्रा मे जैन साहित्य और जैन सस्कृति के अन्य उपादान नही प्राप्य हों।

देवमूर्तियां और कलाप्रियता ·

आबू, राणकपुर, नाकोडाजी, ऋषभदेव, श्रीमहावीरजी, सागानेर, आमेर, राजोरगढ, जयपुर, लाडनू, बीकानेर, जैसलमेर, सिरोही, जालोर आदि अनेकानेक ऐतिहासिक स्थलो पर और कालोपेक्षित सहस्रो खण्डहरो मे जैन देवालय और देव मूर्तिया प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध है। यह बडी प्रसन्नता का विषय है कि जहां-जहां जैन देवालय हैं उन्हे विधिपूर्वक और रख-रखाव से सभाला और सुरक्षित किया गया है। इसी प्रकार अनगिनत देवमूर्तिया भी प्रतिष्ठा प्राप्त की हुई पूजित और अर्चित हैं।

प्राय· सुनने और देखने मे आता है कि खुदाई आदि के समय भूमिगत जैन मूर्तियां प्रकट होती है और उन्हे देवोचित प्रतिष्ठा के साथ देवालयो मे समारोह पूर्वक आसीन किया जाता है। स्पष्ट है कि इन मूर्तियो को भावनाशील एव श्रद्धालु धर्मावलम्बियो ने आततायियो के भय से, क्षति-ग्रस्त होने से बचाने के उद्देश्य से, स्वय भूमिगत किया होगा। अन्य देवालयो मे विध्वस्त और विकृत मूर्तियो को देखने से इस धारणा मे सदेह का कोई भ्रम नही रह पाता।

ग्र थागारो, मूर्तियो और देव भवनो के सगठन और निर्माण के साथ साथ जैन धर्मावलम्बियो ने अपने भौतिक बल-वैभव और कलाप्रेम के कारण बडे-बडे भव्य भवन, उद्यान, तडाग, बावडिया और अनेक अन्य विहार-स्थल भी खडे किए। जैनेतर साहित्य और कलाओ को भी उनका प्रश्रय मिला — ऐसे दृष्टान्त कम मात्रा मे नही है।

धर्म-श्रवण और तीर्थयात्रा

एक और उल्लेखनीय तथा अति महत्त्वपूर्ण पक्ष जीवन पद्धति से सम्बन्धित है, जिसमे जैनाचार्यों के नियमित धर्मोपदेशो के प्रभाव से श्रावक समाज और सभी अवस्था के नर-नारियो का तप-नियम-सयम की प्रक्रिया के साथ गतिशील होना प्रमुख है। जिस समाज मे वीतराग व्यक्तियो का सम्मान और उनके ज्ञान एव अनुभव से लाभान्वित होने की भावना होती है, वह समाज कभी भी अध पतन के कगारो की ओर नही जा सकता। यही कारण है कि भौतिक प्राप्तियो मे लिप्त रहते हुए भी जैन धर्मावलम्बी आज भी अपेक्षाकृत रूप से अधिक वैभव सम्पन्न और सुसस्कृत तथा सुखी हैं। इस सारी स्थिति के पीछे परोक्ष रूप से इस प्रवचन-श्रवण और साधुओ के प्रति सम्मान की परम्परा भी एक मुख्य कारण है। मनुष्य, जो कुछ निरतर सुनता है, पढता है, वही उसके मस्तिष्क के अर्द्ध-चैतन्य क्षेत्रो मे समाकर, उसे अज्ञात रूप से प्रेरित करता है। इसलिए सुनने और पढने का महत्त्व चिन्तन-मनन तथा क्रिया-प्रक्रिया की सारी गलियो मे व्याप्त हो जाता है।

ऋषि, मुनि एव देव दर्शनार्थ तीर्थ यात्रा को जो धार्मिक महत्त्व प्राय सभी धर्मों मे दिया

गया है, उसकी परम्परा मे जैन-धर्म भी पीछे नही है। सैकडो वर्षों के उपाख्यानो तथा यात्रा-विवरणो से इन जैन यात्रा सघो की जानकारी मिलती है। इन साहसपूर्ण यात्राओ के वर्णन वडे मनोरजक हैं।

साहित्य, सगीत और ज्ञान-विज्ञान

लोक भाषा, साहित्य और सगीत को प्रोत्साहित और प्रवर्द्धित करने का सराहनीय कार्य भी जैनो के द्वारा सम्पन्न हुआ। धार्मिक प्रवचनो को लोक तक पहुचाने के लिए लोक द्वारा सहज वोधगम्य भाषा का माध्यम अपनाने की व्यावहारिकता जैन धर्माचार्यों की सूझ थी। सस्कृत की जकडी हुई रूढियो मे फँसे पडित अपने ज्ञान को हवा महलो मे ही समेट कर उसे पाडित्य प्रदर्शन और साधन सुविधा सम्पन्न लोगो तक ही सीमित वना पाये। सस्कृत-ज्ञान को जन साधारण तक पहुचाने के लिए भाषा सरिता की नई धाराओ मे अवगाहन नही किया गया। जैन आचार्यों ने न केवल लोक भाषा को अपनाया और उसमे प्रवचन व साहित्य सृजन किया, अपितु उन्होने लोक साहित्य की सामग्री और लोक गीतो की धुनो को आधार बनाकर भी हित-साधन किया। ऐसे भूले-विसरे लोक गीतों की हजारो धुने जैन साहित्य मे ढालों के रूप मे सुरक्षित हो गई हैं। इन सवसे हमारी सास्कृतिक परम्परा के पद चिह्न विगत काल के अधकार मे भी सरलता से पहिचाने जा सकते हैं।

साहित्येतर विद्याओ मे भी आयुर्वेद, ज्योतिष, तत्र-मत्र, इतिहास, सगीत, भूगोल, भाषा तथा अन्य अनेक विषय भी जैन विद्वानो द्वारा समुन्नत और प्रवुद्ध होते आये हैं। तत्कालीन समाजो के अविच्छिन्न और उपादेय घटको के रूप मे जैन-धर्म के विविध समुदाय सदैव अपना योगदान करते रहे हैं। उनकी इसी सक्रिय रुचि का परिणाम है कि विभिन्न विषयो मे उनकी गति रहती आई है।

साक्षरता और ज्ञान-विज्ञान के प्रचार-प्रसार के पुनीत कार्य मे तो शायद ही कोई दूसरा वर्ग हो जिसने इतनी सेवायें की हो। नियमित स्वाध्याय, हस्तलिखित पुस्तको की प्रतियो का लेखन, अध्यापन, प्रवचन आदि वातें इस दिशा मे अनुकरणीय कही जा सकती हैं जो सैंकडो वर्षों से विना व्यवधान के चली आई हैं।

राष्ट्रप्रेम और राष्ट्रसमृद्धि :

जैन समाज के अनेक प्रतिष्ठित व्यक्ति बहुसख्यक भूतपूर्व रियासतो मे समय-समय पर दीवानगी तथा अन्य उच्च एव महत्त्वपूर्ण पदो पर आसीन रहे हैं। उन्होने तत्कालीन नरेशो को अपने वुद्धि-कौशल एव व्यवहार चातुर्य से राज्य-सचालन मे मदद दी है। राज्य के द्रव्य सवधी सकटो मे तो उनका सहयोग सदैव सराहनीय रहा है। इसके साथ ही तत्कालीन धर्माचार्यों ने भी देशी राज्यो के हित मे मुगल सम्राटो तक को प्रभावित किया है, जो एक सर्वज्ञात तथ्य है। राजपूतो के ही मुख्य थोक से धर्म परिवर्तित कर जैन वनने वाले अनेक जैन परिवारो ने युद्धो मे भी अपना कौशल दिखाया है और अनेक लडाइयो मे विजय प्राप्त की है।

इस प्रकार जीवन के विभिन्न क्षेत्रो मे जैन समाज का योगदान उल्लेखनीय कहा जा सकता है। जहाँ तक उद्योग-व्यवसाय का सवध है, यह तो उनकी बपौती ही रही है। वहुसख्यक जैनों के

कारण देशी राज्यो मे समृद्धि का ौर दौरा बना रहा है। सोने-चादी और जवाहरात का धधा करने वाले धनी सेठ प्राय इसी समाज के रहते आये हैं।

सास्कृतिक सौष्ठव :

जीवन के शाश्वत सत्य को पहिचानने और उसे काम मे, व्यवहार मे, वचन मे और लक्ष्यो मे समादृत और समाहित करते रहने का जो कार्य जैन-धर्म ने निस्पादित किया है, वह किसी भी धर्म के लिए एक आदर्श है। राजस्थान की धरती की गध लिए, यहा के सास्कृतिक सौष्ठव की सभी विशेषताओ के साथ जैन-धर्म ने राजस्थान मे एक ऐसी सास्कृतिक भूमिका का निर्वाह किया है, जो हर युग मे चिरस्मरणीय रहेगी।

१

ुर ह श्रौर

२२ जैन मूर्तिकला

•
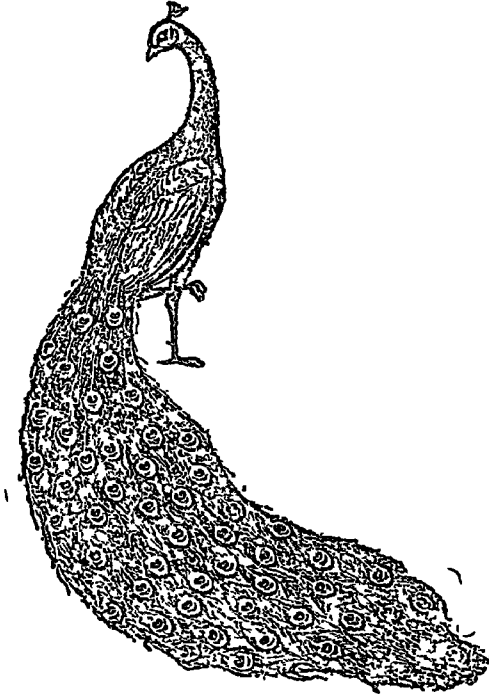
डॉ० रत्नचन्द्र ल

पिछले २५ वर्षों मे पुरातात्विक शोध, खोज एव खनन द्वारा राजस्थान की प्राचीन मूर्तिकला पर पर्याप्त प्रकाश पडा है। बीकानेर क्षेत्र मे सिन्धु सभ्यता से सम्बद्ध कई स्थान खोजे गये। इनमे कालीबगा के प्राचीन टीले से प्राप्त मूर्तिया बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस युग की कोई जैन प्रतिमा अभी तक नही मिली है। यह स्थिति बाद मे भी दिखाई देती है। अजमेर क्षेत्र मे "वरली" के ईसा पूर्व के शिलालेख के विषय मे कुछ विद्वान यह धारणा रखते है कि यह भगवान् महावीर के निर्वाण के ८४ वर्ष बाद का था जबकि कुछ लोगो की यह धारणा है कि इसमे ८४ खम्भो वाले भवन का उल्लेख किया गया है।

इसके बाद की शु ग-कुषाण या गुप्तयुगीन कोई जैन मूर्ति राजस्थान मे कही भी उपलब्व नही हुई है। इससे यह निष्कर्ष नही निकाला जा सकता है कि उस समय इस प्रदेश मे प्रतिमाये अविद्यमान थी। सम्भवत भावी शोध-खोज द्वारा इस दिशा मे कुछ प्रकाश पड सके।

उदयपुर जिले मे "जगत" नामक ग्राम से हमे शिर विहीन मातृका की एक मूर्ति मिली थी जिसे उदयपुर सग्रहालय मे तुरन्त सुरक्षित कर दिया गया। यहा मातृका के दाहिने हाथ मे आम्रलुम्बि है व बाए हाथ से शिशु गोद मे पकड रखा है। ये दोनो अभिप्राय जैन देवी अम्बिका मे देखने को मिलते हैं यद्यपि जगत ग्राम की इस मूर्ति मे कोई ऐसा चिन्ह उपलब्ध नही है जिसके कारण इसे जैन सज्ञा दी जा_सके। यह मूर्ति छठी शताब्दी ईसवी मे बनी होगी।

धातु मूर्तिकला

गुजरात से इसी समय की कतिपय जैन धातु प्रतिमाये मिली हैं जो बडोदा सग्रहालय की शोभा बढा रही हैं। कोई आश्चर्य नही कि निकट भविष्य मे राजस्थान से भी तत्कालीन प्रतिमायें मिल जावें। तारानाथ ने मरु प्रदेश के कलाविद "शृ गधर" का उल्लेख किया है जो महाराज शीलादित्य का आश्रित था। इस श्रुति के आधार पर पश्चिम राजस्थान मे कला-कौशल की जानकारी मिलती है।

सिरोही जिले मे 'वसन्तगढ-पिण्डवाडा' नाम के स्थान पर कई जैन धातु प्रतिमायें मिली थीं जो भारतीय शिल्प की अनुपम थाती सिद्ध हो रही है । इनमे शारदा सरस्वती की मूर्ति बहुत भव्य है जहा देवी के मुकुट के मध्य मे सूर्य का चक्र बना है व बाजू मे मकराकृतिया लम्बी नाक, चौडा माथा, मोटे होठ, लम्बी आखें मूर्ति की शोभा बढाने मे पूर्णतया समर्थ हैं । यह जैन मूर्ति अकोटा से प्राप्त सरस्वती प्रतिमा की तुलना मे किसी भी प्रकार कम आकर्षक नही है । कला सौष्ठव की दृष्टि से यह ईसा की सातवी शती मे बनी होगी ।

सम्वत् एव अभिलेख सहित अन्य जिनाकृति तो बहुत अलौकिक हैं । यह भी वसतगढ से मिली थी । कायोत्सर्ग मुद्रा मे खडे हुये जिन भगवान की चरण चौकी पर सम्वत् ७४४ का लेख खुदा है जिसमे यह स्पष्ट अ कित है कि इन दो पवित्र जिनाकृतियो के निर्माण का श्रेय शिल्पी 'शिव-नाग' को प्राप्त है जो साक्षात् पितामह अर्थात् ब्रह्मा समान कुशल था । इसी के साथ एक अन्य मूर्ति मिली है जो कायोत्सर्गमुद्रा स्थित भगवान आदिनाथ की है जिनके सिर पर घु घराले बाल हैं जो कन्धो पर लटक रहे हैं । ये दोनो धातु मूर्तिया ईसा की ७वी शती की कला की साक्षी है व राजस्थान के जैन कला कौशल का बखान करती हैं । इस वर्ग की अन्य प्रतिमायें आज भी सिरोही मे सुरक्षित हैं ।

राजस्थान मे जैन धातु मूर्तिकला को पर्याप्त प्रश्रय मिला । पूर्व मध्य, मध्य एव उत्तर मध्य युग मे तो बहुत सी जैन मूर्तिया बनी जो आज राजस्थान के कोने-कोने मे पूजान्तर्गत हैं । अहाड, बीकानेर व जोधपुर के राजकीय सग्रहालयो मे सुरक्षित जैन मूर्तिया भी इस दिशा मे उल्लेखनीय हैं । इन प्रारम्भिक मूर्तियो मे चौकी पर ग्रह सख्या आठ होती थी जो कालान्तर मे 'नौ' होने लगी । ईसा की १५वी शती मे डू गरपुर नगर का तो जैन मूर्ति निर्माण मे बहुत योगदान रहा । अचलगढ दुर्ग पर इस समय की बनी कई विशाल धातु मूर्तिया पूजान्तर्गत हैं जिनके शिलालेखो द्वारा उनके शिल्पी बन्धुओ का भी उल्लेख मिलता है ।

जोधपुर नगर से ३४ मील दूर 'ओसिया' ग्राम के प्राचीन मन्दिर सर्व प्रख्यात हैं । इनमे ८वी शती ईसवी का महावीर मन्दिर प्रतिहार 'वत्सराज' के राज्य काल मे बना था । इसके बाह्य भाग की प्रतिमाये पर्याप्त मात्रा मे बची हैं जिनमे एक मूर्ति 'चक्रेश्वरी' की भी है । अभी हाल मे जीर्णोद्धार कार्य द्वारा यहा कई जिनाकृतिया खुदाई से निकली हैं जो स्थानिक जैन विद्यालय के स्टोर मे रखी हैं । इनमे दो जीवत स्वामी की हैं ।

गत वर्ष भरतपुर नगर के पास "कुम्हेर" नामक ग्राम से भी चक्रेश्वरी की भव्य मूर्ति मिली थी जो वहा तहसील कार्यालय मे सुरक्षित करदी गई है । जोधपुर मे ही 'घपियाला' ग्राम का नाम सम्वत् ९१८ के शिलालेख मे 'रोहिंसकूत' मिलता हे । यहा 'खोखी माता की साल' का निर्माण प्रतिहार नरेश द्वारा कराया गया था । इसकी ताक में प्राकृत भाषा का महत्त्वपूर्ण शिलालेख जडा है जिसके एक ओर सिंहारूढ अम्बिका की आकृति बनी है । राजस्थान की अम्बिका देवी मूर्तियो मे यह बहुत महत्त्वपूर्ण है ।

इसी प्रकार डीडवाना से प्राप्त काले पत्थर की बनी विष्णु मूर्ति भी उल्लेखनीय है जहा चतुर्बाहु देव पद्मासन मे विराजमान हैं उनके नीचे के दोनो हाथो मे वनमाला है । ऐसी ही एक

प्रतिहार युगीन मूर्ति 'आवानेरी' स्थल पर भी पडी है। यहा विष्णु के हाथो मे शख, चक्र, गदा व पद्म का सर्वथा अभाव है। ऐसा प्रतीत होता है कि जैन विचार धारा के प्रभाव से विष्णु की ऐसी ध्यानस्थ मूर्तिया राजस्थान मे बनाई गई थी जो हर वर्ग के अनुयायियो द्वारा पूजी जाती हो। यह सब समन्वय का सूचक है। मारवाड के एक मध्यकालीन शिलालेख मे 'ब्रह्म-श्रीधर-शकरा ये जिन जगति विश्रुत' द्वारा भी यह स्पष्ट है। यहा ब्रह्मा विष्णु व महेश को 'जिन' सज्ञा प्रदान की गई है। विविधता मे एकता का भाव यहा स्पष्टरूपेण झलकता है।

सच्चिका देवी .

इसी श्रृ खला मे यह भी स्मरणीय है कि ईसा की १२वी शती मे राजस्थान के जैन बन्धु महिषमर्दिनी दुर्गा को 'सच्चिका' देवी के नाम से पूजते थे। कुछ वर्ष पूर्व हमे जोधपुर सग्रहालय मे ऐसी सगमरमर की मूर्ति देखने को मिली थी जिसकी चौकी पर सम्वत् १२३४ का लेख खुदा था। इसमे देवी महिषमर्दिनी को सच्चिका सम्बोधित कर यह बताया गया कि इसकी प्रतिष्ठा एक जैन साध्वी द्वारा की गई थी। 'ओसिया' ग्राम के प्रख्यात सचियामाता मन्दिर के गर्भगृह मे आज भी महिषासुरमर्दिनी की मूर्ति जैन बन्धुओ द्वारा पूज्य है। इसके पीछे की ताको मे चामुण्डा-चण्डी-भैरव-शीतला की मूर्तियो के अतिरिक्त प्रधान ताक मे महिषमर्दिनी की प्रतिमा जडी है, जिसके नीचे सम्वत् १२३७ का शिलालेख यह बताता है कि देवी का नाम 'सच्चिका' था। उपकेश गच्छ पट्टावलि नामक ग्रन्थ मे भी इसका सविस्तार वर्णन उपलब्ध है कि किस प्रकार जैनाचाय रत्नप्रभसूरि ने हिंस देवी को 'सच्चिका' सज्ञा प्रदान कर जैन धर्म की ओर प्रेरित किया था। 'लोदरवा' (जैसलमेर) के जैन मन्दिर मे पूजान्तर्गत एक गणेश प्रतिमा की चौकी के शिलालेख मे भी सच्चिका-पूजन का उल्लेख किया गया है। इस दृष्टि से ओसिया व जोधपुर सग्रहालय की सच्चिका की प्रतिमायें भारतीय शिल्प की महत्त्वपूर्ण निधिया हैं। ओसिया का सचियामाता मन्दिर तो ओसवाल बन्धुओ का इष्ट स्थल है।

कला-सौष्ठव

जैन कला सौष्ठव की दृष्टि से मारवाड मे 'धाणाराव' से ३ मील दूरस्थ 'राता महावीर' का १०वी शती का जिनालय विशेषरूपेण उल्लेखनीय है। इसके बाह्य भागो पर जडी हुई विद्यादेवी व अन्य जैन मूर्तिया देलवाडा, आबू की तुलना मे किसी भी प्रकार कम आकर्षक नही है। आबू के मन्दिर मे एक शिला पर दो शिल्पी सरस्वती शारदा के दोनो ओर नमस्कार मुद्रा मे खडे दिखाई देते है। दोनो ही सरस्वती के अमर उपासक थे। इन कुशल कारीगरो द्वारा ही राजस्थान मे आबू के मन्दिर का निर्माण हुआ था। दूसरी ओर पाली जिले मे १५वी शती मे महाराणा कुम्भा के राज्य-काल मे चतुर्मुख प्रासाद का निर्माण राणकपुर मे हुआ था जो आज भी जैन शिल्प का अनुपम भण्डार है।

राजस्थान के भरतपुर क्षेत्र से 'सर्वतोभद्र' आदिनाथ की दिगम्बर मूर्ति विशेषरूपेण उल्लेखनीय है। इसमे 'समवसरण-विधि' के अनुपम जटाधारी आदिनाथ भगवान को ही चारो ओर प्रदर्शित किया है जो राजस्थान की पूर्व मध्ययुगीन कला की महत्त्वपूर्ण देन है। अब यह मूर्ति भरतपुर सग्रहालय मे सुरक्षित है। इसी प्रकार प्रताप सग्रहालय उदयपुर की कुबेर मूर्ति महत्त्वपूर्ण है जो ईसा की ८वी ९वी शती की कृति है। यह 'पारेवा' पत्थर को उकेर कर बनाई गई है। यहा कुम्भोदर कुबेर

के पीछे गजवाहन विद्यमान है । उनके दाहिने हाथ मे बिजौरी फल व बाये मे नकुलाकृति वाली रुपयो की थैली है जिसे नोली कहा जाता है । कुबेर के शीर्ष मुकुट के बीच लघु जिनाकृति व उसके भी ऊपर एक अन्य लघ्वाकृति से इस मूर्ति के जैनभाव की पुष्टि होती है । यहा शिल्पी ने इन जिनाकृतियो को उकेर कर इसे जैन बन्धुओ के लिए इष्ट रूप मे प्रस्तुत किया है जो राजस्थानी जैन मूर्तिकला की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है ।

नागौर जिले मे 'खीवसर' से प्राप्त व जोधपुर सग्रहालय मे सुरक्षित एक विशालकाय प्रस्तर मूर्ति तो अलौकिक है । यह ईसा की १०वी ११वी शती मे बनी थी । यहा भगवान महावीर को सिर पर मुकुट व शरीर पर अन्य आभूषणो सहित दर्शाया गया है जो उनके 'जीवतस्वामी' स्वरूप का प्रतीक है । इस आशय की एक पाचवी-छठी शती की धातु मूर्ति बडौदा सग्रहालय की शोभा बढा रही है । जैन साहित्य मे इस वर्ग की प्रतिमाओ को जीवतस्वामी कहा गया है । ऐसी एक प्रस्तर मूर्ति सिरोही के जिनालय मे गर्भगृह के बाहर विद्यमान है व एक धातु मूर्ति जोधपुर नगर मे पूजान्तर्गत है । पश्चिम भारत की ये विशिष्ट मूर्तिया जैन शिल्प की महत्त्वपूर्ण निधिया है । ऐसी कुछ मूर्तिया ओसिया के महावीर मन्दिर मे भी रखी है ।

इन फुटकर उदाहरणो द्वारा यह सिद्ध हो जाता है कि राजस्थान के भिन्न-भिन्न स्थानो से प्राप्त जैन मूर्तिया भारतीय कला के क्षेत्र मे कितनी महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकती है । निश्चय ही भावी शोध-खोज द्वारा इस दिशा मे उत्तरोत्तर नवीन तथ्यो के प्रकाश में आने की पूर्ण सम्भावना है । राजस्थान के सैकडो जैन मन्दिरो में तो भारतीय कला की असख्य कृतिया सरक्षित की जा चुकी हैं जो कलाविदो के आकर्षण का केन्द्र बन गई हैं ।

२३ जैन मन्दिर : शिल्प और स्थापत्य
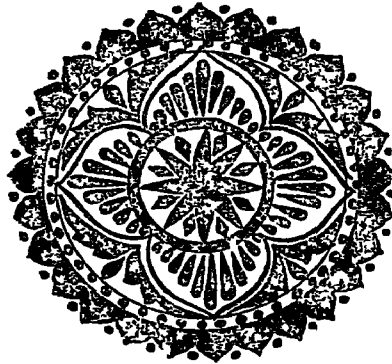
श्री पूर्णचन्द्र जैन

सास्कृतिक विरासत :

विश्व के इतिहास मे भारत का बहुत ऊचा व बडा स्थान है। वह उसकी प्राचीनता से अधिक, विश्व-मानव को उसने जो वडी देन दी, उस कारण है। अभी तक जिसे हम दो-अढाई हजार वर्ष का इतिहाससम्मत काल मानते थे, मोहनजोदडो व हरप्पा की खुदाई ने उसे पाच-सात हजार वर्ष प्राचीन तो सिद्ध कर दिया है। एक लेखक के शब्दो मे अब हम भी सुमेर, अवकाद और वेवि-लोनियनो के मुकावले मे अपने खण्डहरो की बुजुर्गी से भी अपना वडप्पन प्रमाणित कर सकते है। कहना नही होगा कि भारतीय सस्कृति के इतिहास मे उसकी तीन—जैन, वैदिक और बौद्ध धाराओ का ही वडा भाग है तथा इस दृष्टि से जैन-सस्कृति विश्व के इतिहास मे अपनी विशेषता रखती है।

भारतीय धर्म और सस्कृति की परम्परा मे श्रमण-सस्कृति का अपनी प्राचीनता, अपने विशिष्ट तत्वज्ञान तथा दर्शन और अपनी कलाप्रियता तथा साहित्यिक अस्मिता, राष्ट्रीय भावना और राष्ट्र के लिए की गई सेवाओ आदि के कारण विशेष महत्व का गौरवमय स्थान है। हिंसा, काम आदि मानवीय मानसिक व चित्त की दुर्वलताओ पर तप, साधना और सयम द्वारा विजय पाने के सिद्धात पर आधारित जैन सस्कृति की भारतीय सस्कृति पर वडी छाप है। इसका पुनर्जीवन और पुनरोदय पार्श्वनाथ और महावीरस्वामी द्वारा पूर्वी भारत मे मगध व विहार मे हुआ। लेकिन वाद में इसका विकासक्षेत्र मुख्यत पश्चिमी और दक्षिण भारत रहा। मुसलमान काल मे और उससे पूर्व भी पुष्य (पुष्य) मित्र जैसे राजाओ की धर्मान्धता तथा शकराचार्य जैसे विद्वानो की एकाग दृष्टि और कट्टरता के कारण जैनो को स्थानान्तरण करना पडा। जैन जहा-जहा और जव-जव पहुचे वहा-वहा और उस-उस समय मे उन्होने अपनी शिल्प, स्थापत्य, चित्र, साहित्यसृजन आदि सम्बन्धी कला-भावना, धर्माराधना तथा सेवा और तन, मन, धन की उत्सर्ग भावना का विशेप उज्ज्वल उदाहरण प्रस्तुत किया है। गहराई से देखेंगे तो भारतीय शिल्प, स्थापत्य, भारतीय चित्रकला, भारतीय वाङ्मय और साहित्य मे जैन-वीरो और कर्म-वीरो की वहुत वडी देन रही है, और जैन सस्कृति की शिल्प, स्थापत्य, साहित्य आदि की सामग्री के इतिहास से ही भारतीय सस्कृति का एक शृखलावद्ध इतिहास वन सकता है। इस ओर कम दृष्टि गई है। इस कारण भी भारत का इतिहास क्रमबद्ध नही-सा मिल रहा है।

पश्चिम भारत मे वर्तमान मालवा प्रदेश, गुजरात और राजस्थान जैन-धर्म और सस्कृति के विस्तार-विकास के क्षेत्र रहे हैं। राजस्थान मे मुख्यत मारवाड, मेवाड, मेवात, हाडौती आदि क्षेत्र है। मारवाड मे जोधपुर व बीकानेर के उत्तरी भाग जागल प्रदेश आदि शामिल हैं जिनकी राजधानी कभी अहिछत्रपुर (वर्तमान नागौर) थी। इसीके पास सपादलक्ष क्षेत्र था। आज का जैसलमेर, माड, वल्ल व भवाणी नाम से प्रसिद्ध था। मेवाड को मेदपाट तथा उसके कुछ हिस्से व श्रीमाल-भिन्नमाल आदि को प्राग्वाट कहते थे। चित्तौड या चित्रकूट के आसपास का क्षेत्र शिवी कहलाता था, जिसकी राजधानी माध्यमिका थी। अलवर आदि क्षेत्र मेवात मे थे जिसको उत्तरीय कुरु भी कहा जाता था। प्राग्वाट के कुछ क्षेत्र गुजरात मे भी थे और एक तरह गुजरात व राजस्थान बहुत कुछ मिलेजुले थे।

राजस्थान के सस्कृतिक विकास मे जैन सस्कृति का महत्त्वपूर्ण हाथ रहा है। शासन और राजनैतिक क्षेत्रो को देखें, साहित्य के क्षेत्र को देखें अथवा शिल्प-स्थापत्य आदि क्षेत्र को तो राजस्थान के सर्वागीण विकास और निर्माण मे जैन क्षत्रिय शासको, वैश्य महामात्यो, अमात्यो, मन्त्रियो, दण्ड-नायको और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि मे से जैनधर्म स्वीकार कर दीक्षा-सस्कार ग्रहण करने वाले श्रमण, साधु, यति, साध्वी वर्ग का उस बारे मे बहुत उज्ज्वल गौरवमय हाथ रहा है। आततायियो से सघर्ष करने मे, कला और साहित्य के सृजन, सरक्षण और प्रोत्साहन मे, अकाल आदि से उत्पन्न सकटकाल के समय तन मन-धन से राहत व सेवा कार्य मे, कूटनीतिक और राजनीतिक सम्बन्धो के बनाने-बिगाडने मे, इस प्रकार समग्र मानवीय, सामाजिक व सास्कृतिक जीवन मे जैनियो का हाथ रहा था। हरिभद्रसूरि, रत्नप्रभसूरि, जिनदत्तसूरि, हेमचन्द्रआचार्य, बप्पभट्टसूरि, सप्रति, कुमारपाल, वस्तुपाल, तेजपाल, धरणाशाह, ठक्कर फेरू, भामाशाह आदि इसके ज्वलत उदाहरण हैं। जैन आचार्य और साधुओ ने राजाओ सहित समग्र जनता को धर्मोपदेश दिया था। कई गच्छपति अनेक क्षत्रिय वशो के कुल गुरु थे और शासन को जनहितकारी व धर्मपरायण बनाने में इनका बडा हाथ रहा था। तीर्थों और मन्दिरो की प्रतिष्ठापना के लिये भी यह लोग प्रेरक शक्ति थे।

तीर्थ और मन्दिर

अन्य धर्मों और सस्कृतियो की भाति जैन धर्म व सस्कृति के भी अनेक तीर्थ और मन्दिर है। राजस्थान के जैन मन्दिर भी जैन सस्कृति के उत्कर्ष, प्रकर्ष और जैन धर्मानुयायियो की उपासना, दानशीलता, वैभवशालिता आदि के प्रतीक है। इन मन्दिरो के निर्माण में धर्म-गुरुओ व धर्माचार्यों की प्रेरणा तो मुख्य रही ही है, साथ ही गृहस्थ या श्रावक की सेवा भावना और कलाप्रियता का भी उसमें बहुत बडा स्थान है। अकाल या ऐसे अवसरो पर पीडित जनता को सहायता पहुँचाने की भावना भी कभी-कभी रही होगी। अपने वैभव व सत्ता के प्रदर्शन की भावना का कितना हाथ रहा, यह कहना कठिन है, किन्तु पिछले पाच-सात शताब्दियो में मूर्तियो व मन्दिरो के लेखो में जिस प्रकार व्यक्ति के नाम, वश आदि की प्रशस्ति के आलेखन का क्रम चला है, उससे यह इन्कार सर्वथा नही किया जा सकता है कि वैभव व सत्ता के प्रदर्शन का लोभ इन कला-कृतियो के निर्माण में कार्य नही कर रहा था। कलाकर, जिसकी आत्म विस्मृति या तल्लीनता, आख-हाथ अगुलिया आदि की एकाग्रता, तन्मयता और साधना ने धर्म व सस्कृति की प्रतीक इस सौन्दर्य-सृष्टि का निर्माण किया, उसकी नामा-वली या वशावली की प्रशस्ति का अभाव या उसका कही-कही पर प्रसगोपात उल्लेख मात्र भी उपर्युक्त बात की सम्पुष्टि करता है। लेकिन यह बात जैन मूर्तियो, लेखो, कलास्थानो पर ही नही, अन्य कला-

कृतियो, स्थापत्य व शिल्प के गौरवशाली गिने जाने वाले स्थानो आदि के सम्बन्ध में भी लागू है।

जैन धर्म या श्रमण-सस्कृति का अतिम लक्ष्य मोक्ष है और उसकी प्राप्ति के लिये सादे जीवन, कठोर तपश्चर्या, धर्माचरण, सयम-साधना, भक्ति-उपासना आदि की श्रद्धा के द्वारा कर्म-क्षय का ही मार्ग बताया गया है। यह जहा एक ओर देश में चारो तरफ फैले वैष्णव, शैव, तान्त्रिक आदि की भक्ति व उपासना पद्धति के प्रभाव का परिणाम है वहा दूसरी ओर यह भी बतलाता है कि जैन धर्म और सस्कृति समाज के प्रति उदासीन नही रही है। एक लेखक के शब्दो मे इसीलिये कलाकारो ने अपने मानसिक भावो द्वारा मन्दिरो को ऐसा अलकृत किया कि साधक आतरिक सौन्दर्य की उपासना के साथ बाहरी पृथ्वीगत सौन्दर्य, नैतिक और पारस्परिक अन्तश्चेतना जगानेवाले उपकरणो के द्वारा वीतरागत्व की ओर बढ सके। फिर भी यह विचारणीय है कि जैन मन्दिरो मे भी जो आडम्बर, शृगार, चमत्कार प्रदर्शित करने व फल-परचे देने की प्रवृत्ति बढ रही है वह जैन दर्शन और धर्म भावना के कितनी अनुकूल व कितनी प्रतिकूल है।

शिल्प और स्थापत्य :

जो भी हो, राजस्थान के जैन मन्दिर अपनी उत्कृष्टतम स्थापत्य, शिल्पकला, वैभव व समृद्धि-पूर्ण भूमिका, शान्त व पवित्र भावनाओ को जगानेवाले अपने अन्तर्बाह्य वातावरण, ग्रथसाहित्य आदि के सरक्षण और साधना के केन्द्रस्थान होने के कारण भारत की सस्कृति के इतिहास मे अद्वितीय स्थान रखते हैं। उन मन्दिरो की गणना कराना तो यहा कठिन है, पर उनके कुछ सक्षिप्त उल्लेख की जरूर आवश्यकता है। इन मन्दिरो मे अधिकाश क्या, लगभग सभी ही जगह उत्तर भारत मे प्रचलित रही आर्य या नागर शैली की स्थापत्य व शिल्पकला है। कही-कही दक्षिण की द्राविड शैली का भी मिश्रण है। कला-पूर्ण, बढिया खुदाई, कुराई और जडाई से अलकृत तोरणद्वार, शिखर, गुम्बज, ध्वज, आदि की विशेषता बाहर से ही बतला सकती है कि यह जैन मन्दिर है। मूल-नायक की मूर्तिया अधिकाश बढिया सफेद पत्थर की हैं। कई जगह काले, लाल व पीले पत्थर की और बालुका की भी मूर्तिया हैं और सोने, चादी, ताम्बे आदि धातुओं तथा हीरा, पन्ना, स्फटिक आदि मूल्यवान पत्थर या जवाहिरातो की भी छोटी मूर्तिया हैं। मूर्तियो के लिये पीतल, कासा, शीशा आदि व मिश्र धातुए ठीक नही मानी जाती, पर कई मन्दिरो मे पीतल की बडी-छोटी मूर्तिया भारी सख्या मे हैं।

मूर्तिया अधिकाश पद्मासनस्थित हैं, लेकिन कई जगह अर्द्ध पद्मासन और खडी कायोत्सर्ग की मुद्रा मे स्थित मूर्तिया भी है। मन्दिरो के अन्दर के विभिन्न भाग, द्वार-मडप, शृगार-चौकी, गूढ-मडप, गर्भगृह आदि अत्यधिक कलापूर्ण और भाव-चित्रादि से अलकृत बने हुए हैं। मूलवेदी के बाहर के सभामडप की छत मे कही-कही तो एक जीवित सात्विक सौन्दर्यसृष्टि, पुष्पावली-वल्लरी आदि के समूह और वाद्य-यन्त्र धारण की हुई तथा नृत्य मुद्रा मे स्थित पुतलिकाओ द्वारा करदी गई है, जिसे देखकर इस देश के ही नही, विदेश व दूर-दूर के कलाविद् भी मन्त्रमुग्ध रह जाते हैं। मूल-मन्दिरो मे तीर्थंकरो की ही मूर्तिया रहती हैं, लेकिन बाहर और प्रकोष्ठ मे अम्बिका, चक्रेश्वरी, सरस्वती, क्षेत्रपाल, भैरव व भोमिया की मूर्तिया, मन्दिर के बाहर-भीतर स्थापित की जाने लगी और पूजी जाने लगी। राणकपुर आदि कुछ एक मन्दिरो के द्वार-स्तम्भो, शिखर मडप आदि मे नग्न स्त्री-पुरुषो की मूर्तिया या तक्षण-कृतिया भी हैं, वह भी इस प्रभाव का परिणाम ही दीखता है। इस प्रकार की कारीगरी का कुछ लोग जीवन के समग्र दर्शन व चित्रण की दृष्टि से औचित्य मानते हैं पर

यह तर्क समाज हित की दृष्टि से उपयोगी व उचित नही माना जा सकता ।

जैन तीर्थों मन्दिरो और विशेषत स्थापत्य व शिल्पकला की उत्कृष्टता की दृष्टि से तथा ऐतिहासिक महत्व को देखते हुए चित्रकूट (चित्तौड), जावालिपुर (जालोर), जैसलमेर, नागौर, राणकपुर, अर्बुदाचल (कु भारिया, जीरावला सहित), हस्तिकु ड (हटू डी), धुलैवा (केसरिया नाथ), चवलेश्वर, वरकाणा, घाणेराव, पिंडवाडा, महावीरजी, सागानेर, आमेर, अजमेर, आदि स्थान प्रसिद्ध हैं । आबू पर्वत पर विक्रम १०८८ सवत्सर मे बनवाया हुआ विमलशाह का 'विमलवसही' प्रासाद और १२८७ मे वस्तुपाल तेजपाल मत्रीश्वर की ओर से शोभनदेव शिल्पी द्वारा निर्मित 'लुणिगवसही' प्रासाद तो जगत् प्रसिद्ध हैं । प्रसिद्ध इतिहासकार जेम्स टाड ने इन मन्दिरो को देखकर सन्त साइराक्यूज की भाति कहा था कि एराका ! (Eraka) अर्थात् मैं ढू ढता था वह मिलगया । राणकपुर मे धरणाशाह द्वारा बनवाया गया सहस्र से ऊपर कलापूर्ण स्तम्भो की छटावाला मन्दिर भी भारत की उत्कृष्ट कला का एक नमूना है । उसी प्रकार कु भारिया के मन्दिर मे भी शिल्प के उत्कृष्ट नमूने है । इतिहासज्ञ फार्बस के कथन के अनुसार यहा किसी समय बडा नगर रहा था जिसमे ३६० जैन मन्दिर थे, किन्तु नगर भूकम्प से नष्ट हो गया । अभी वहा ५ जैन मन्दिर हैं, जो आलीशान और ऐतिहासिक हैं तथा आबू के देलवाडा मन्दिर जैसी दिग्मूढ करने वाली वहा की स्थापत्यकला है ।

जोधपुर के पास मडोर पर भी एक हजार वर्ष पुराना जैन मन्दिर बताया जाता है । जैन मन्दिरो मे अनेक स्थानो पर उनके साथ ही ग्रन्थ-भडार भी हैं जिनमे अलभ्य, अति प्राचीन ताडपत्रादि के व अन्य हस्तलिखित ग्रन्थरत्न सग्रहित हैं । जैसलमेर का जैन ग्रन्थ-भण्डार तो प्रसिद्ध ही है, जो यवन आक्रमणो के समय सुरक्षा की दृष्टि से पाटन आदि स्थानो से लाया गया था । ऐसे ग्रन्थ-भण्डार नागौर, अजमेर, जयपुर, बीकानेर आदि जगहो पर अनेक मन्दिरो मे हैं, जहा ग्रन्थ, चित्र, ताम्रपत्र, लेख आदि काफी सामग्री किसी समय रक्षा, उपयोग, ज्ञानवृद्धि आदि की दृष्टि से एकत्रित की गई होगी, किन्तु आज उपेक्षा व प्रमाद के कारण अरक्षित पडी है, और कीडे-मकोडे, चूहे-दीमक द्वारा जिसके नष्ट होने की आशका है ।

मुसलमानो से रक्षा के लिये कई जगह जैन मन्दिरों के पास मस्जिदो की मीनारे भी खडी की गई हैं । इन्हें धर्मसमन्वय की प्रतीक मानना तो गलत होगा, किन्तु इनसे रक्षा करने के एक तरीके की दूरदर्शिता तो प्रकट ही है । फिर भी कई मन्दिरो, जैसे चित्तौड के कीर्तिस्तम्भ आदि पर जैन मूर्तियो का जगह-जगह अग-भग व खण्डन किया गया है । यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि कुछ बडे प्रसिद्ध जैन मन्दिरों के लिये जैन-सम्प्रदायो मे आपस मे ही झगडे व तनातनी है और कही-कही पर जैनेतर लोगो ने भी जैन मन्दिरो पर अपना कब्जा कर लिया है और अपने या सम्प्रदाय के आराध्य देव की मूर्ति की स्थापना कर उसे अपना मन्दिर बना लिया है । भारतीय सस्कृति, कला और साहित्य की रक्षा की दृष्टि से राजस्थान के जैन मन्दिरो का बडा ऐतिहासिक तथा गौरवमय स्थान है । जैनियो पर तो इनके सरक्षण और इन सम्बन्धी प्रमाणिक विस्तृत विवरण के सग्रह की दुहरी जिम्मेदारी है, लेकिन जैनेतर लोगो पर भी इस अलभ्य निधि की ओर पूरा ध्यान देने का उत्तरदायित्व है ।

---

२४ राजस्थान के प्रमुख जैन मन्दिर

[१]
श्वेताम्बर जैन मन्दिर[1]

श्री जोधसिंह मेहता

देलवाडा आबू के जैन मन्दिर—वि० स० १०८८ मे विमलवसहि ने देलवाडा मे १८ करोड ५३ लाख रुपयो की लागत मे सूत्रधार कीर्तिधर से अपने नाम से, 'विमलवसहि' नामक मन्दिर का निर्माण करवाया। इस मन्दिर मे भगवान श्री ऋषभदेव की मूर्ति विराजमान है। यह मन्दिर बहुत ही कलापूर्ण है। इसमे स्थान-स्थान पर २५९ शिलालेख खुदे हुए है। सवसे प्राचीन लेख स० ११११ का है। विमलवसहि मन्दिर के मुख्य द्वार के सामने विमलशाह की हस्तिशाला है जिसमे समवसरण, सगमरमर के १० हाथी और विमल मन्त्री की अश्वारोही मूर्ति है।

लूणवसहि का मन्दिर—विमलवसहि मन्दिर के पार्श्व मे दूसरा मन्दिर 'लूणवसहि' है। इस मन्दिर को वस्तुपाल तेजपाल ने वनवाया था। इस मन्दिर का नाम उन्होने वडे भाई के नाम पर रक्खा। स० १२८७ मे आचार्य श्री विजयसेनसूरि ने इस मन्दिर मे भगवान नेमिनाथ की मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई थी।

अन्य दर्शनोय मन्दिरो मे भगवान् श्री महावीर स्वामी का मन्दिर, गुर्जर श्री भीमाशाह का पीत्तलहर मन्दिर और भगवान् चिन्तामणि पार्श्वनाथ का मन्दिर मुख्य हैं। पीत्तलहर मन्दिर मे १०८ मन पीतल की भगवान् ऋषभदेव की मूर्ति है।

देलवाडा आबू के मन्दिर अपनी कलात्मकता एव महीन कारीगरी के लिए विश्वविख्यात है।

अचलगढ के मन्दिर—देलवाडा से ४ मील दूर आबू पवत पर ४,६०० फीट ऊंचाई पर अचलगढ स्थित है। यहा पर आदिनाथ भगवान् का दो मजिला चौमुखा मन्दिर है। इसमे विराजमान मूर्तिया पच धातु से निर्मित हैं। चतुर्मुख मन्दिर सवसे उन्नत शिखर पर है। इसके नीचे के स्थान पर भगवान् श्री ऋषभदेव का स० १७२१ का अन्य मन्दिर हैं। दूसरा मन्दिर गढ के दरवाजे के पास भगवान् कुन्थुनाथ का स० १५२७ का है। यहा मूल नायक भगवान् की कांसे की मूर्ति है तथा अन्य पच धातु प्रतिमाएँ हैं। गढ के नीचे तलहटी मे भगवान् शान्तिनाथ का विशाल और कलामय मन्दिर है जिसे गुजरात के राजा कुमारपाल ने वनवाया था।

---

१ पाठको की जानकारी के लिये यह विवरण लेखक के विस्तृत लेख के आधार पर सक्षिप्त करके प्रस्तुत किया जा रहा है।
—सम्पादक

मारवाड की छोटी पचतीर्थी के मन्दिर—आबू रोड से २८ मील दूर पिंडवाडा है जहा से मारवाड की छोटी और बडी पचतीर्थी की जाती है। यहाँ श्री महावीर भगवान् के बावन जिनालय वाले मन्दिर मे धातु की दो बडी कायोत्सर्ग मे खडी जिन मूर्तिया हैं। एक पर वि० स० ७४४ का प्राचीन खरोष्ठी लिपि का लेख है। छोटी पचतीर्थी मे नाणा, दियाणा, नादिया, बामनवाडजी और अजारी के तीर्थ स्थल आते हैं।

मारवाड की बडी पचतीर्थी के मन्दिर—इसका केन्द्र स्थल सादडी (मारवाड) है। राणकपुर, मुछाला महावीरजी, नारलोई, नाडोल और वरकाणा पार्श्वनाथजी, ये पाचो तीर्थ सादडी के सन्निकट हैं।

राणकपुर—सादडी से ६ मील दूर स्थित यह मन्दिर अपनी कलात्मकता के लिए प्रसिद्ध है। यह १४४४ कलाकृत स्तभो पर आश्रित है। इसमे ८४ भोयरे और ७२ देवकुलिकायें हैं। इसका निर्माण सेठ धरणाशाह ने करवाया। मूलनायक आदीश्वर भगवान् के सामने की दीवाल पर एक शिलालेख है जिसमे मेवाड के राणा बप्पा रावल से लेकर ४१ पीढी तक की वशावली का चित्रण है। यहा पर पार्श्वनाथ की कायोत्सर्ग मुद्रा मे बडी कलात्मक मूर्ति है। तीन मजिल का यह चौमुखा मन्दिर ४८०० वर्ग फीट क्षेत्र मे विस्तृत है। यहाँ नेमिनाथ और सूर्य देवता के मन्दिर भी हैं, जो स्थापत्यकला की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

नारलोई—यहाँ कुल ११ मन्दिर है। आदीश्वर भगवान् का १००० वर्ष पुराना मन्दिर स्थापत्य-कला की दृष्टि से श्रेष्ठ है।

नाडोल तीर्थ—यहा प्राचीन, कलात्मक एव विशाल पद्मप्रभुजी का मन्दिर है। यहा कभी ९९९ जैन मन्दिरो का घटनाद होता था। कहा जाता है कि यहा वि० स० ३०० मे आचार्य श्री मानदेवसूरि ने प्रसिद्ध लघु शाति स्तव की रचना की थी।

वरकाणा पार्श्वनाथ तीर्थ—इस मन्दिर का निर्माण वि० स० १२११ के पूर्व का माना जाता है। यहा प्रतिवर्ष पौष कृष्णा दशमी को मेला भरता है।

राता महावीरजी—जवाई बाध रेलवे स्टेशन से १४ मील पूर्व मे यहा २४ जिनालयवाला श्री महावीर जी का मन्दिर है। इसमे राता (लाल) रग की मूर्ति है।

कोरटा तीर्थ—यह तीर्थ एरनपुरा छावनी से ६ मील है। यहा शिखरबध भगवान् महावीर का मन्दिर है।

सिरोही—वामणवाडजी से करीब ८ मील पर यह क्षेत्र है। इसमे १८ जैन मन्दिर हैं। १५ मन्दिर एक ही मोहल्ले मे होने से वह बस्ती देहराशरी कहलाती है। इनमे चौमुखा जी का मन्दिर प्रसिद्ध है।

मीरपुर तीर्थ—यह तीर्थ सिरोही से अणादरा के मार्ग पर है। यहा पहाड के नीचे प्राचीन भव्य और कलापूर्ण तीर्थस्थान है।

सुवर्णगिरि तीर्थ—यह तीर्थ स्थान जालोर जिले मे है। इसे सोनागढ भी कहते हैं। यहा भगवान् महावीर का गगनचुम्बी मन्दिर है।

नाकोडा तीर्थ—यह बालोतरा रेलवे जकशन से ६ मील दूरी पर है। यहा मूलनायक श्री पार्श्वनाथ भगवान् की मूर्ति है। इस मन्दिर मे दो बडे भोहरे है जिसमे १२वी से १७वी शताब्दी की मूर्तिया हैं। यहा ऋषभदेव, शान्तिनाथ भगवान् के विशाल कलामय मन्दिर है। यहा के अधिष्ठायक देव नाकोडा भैरवजी वहुत प्रसिद्ध और चमत्कारी हैं।

भिन्नमाल—प्राचीन काल मे हजारो शिखर बध जैन मन्दिर यहा पर थे। इस समय यहा चार जैन मन्दिर प्रसिद्ध है। श्री शातिनाथ भगवान् का मन्दिर, श्री पार्श्वनाथ भगवान् का मन्दिर, श्री सुपार्श्वनाथ भगवान् का मन्दिर और श्री शातिनाथ भगवान् का दूसरा मन्दिर।

साचोर—राणीवाडा स्टेशन से ३० मील दूर साचोर तीर्थ है। यहा भगवान् महावीर का भव्य मन्दिर है।

कापरडा तीर्थ—यह जोधपुर से ३२ मील पर है। यहा भगवान् श्री स्वयभूपार्श्वनाथ के मन्दिर की स्थापना वि० स० १६७८ मे हुई थी। जैतारण निवासी भाणजी भडारी ने इस मन्दिर का निर्माण करवाया था। यह भारत का एक मात्र जैन मन्दिर है जो चतुर्मुख के साथ-साथ चार मजिल का है।

पाली—इस नगर मे ६ जैन मन्दिर हैं। जिनमे से नवलखा पार्श्वनाथ का मन्दिर वावन जिनालय वाला प्रसिद्ध है।

घाघाणी तीर्थ—यह जोधपुर से दक्षिण पूर्व मे २० मील की दूरी पर है। यहा पद्मप्रभु जी का मन्दिर है। यह तीर्थ २२०० वर्ष पुराना माना जाता है। यह भूमि से ७२ फीट ऊचा है।

ओसियाजी—जोधपुर से ४० मील दूर स्थित ओसिया मे भगवान् महावीर का प्रसिद्ध गगनचुम्बी मन्दिर है। ओसवाल जैनियो की उत्पत्ति का मूल स्थान यही ओसिया नगरी माना जाता है।

नागौर—यहाँ सात जैन मन्दिर हैं जिनमे मे वि० स० १५१५ का घूमट बध श्री शातिनाथ भगवान् का मन्दिर प्राचीन है।

फलोधी तीर्थ—यह मेडता रोड जकशन से २ फर्लांग दूर है। यहा मूलनायक श्री पार्श्वनाथ भगवान् की श्याम वर्णीय मनोज्ञ प्रतिमा है। यहा वि० स० १२२१ का लेख मिलता है।

जैसलमेर—यहा के किले पर आठ मन्दिरो मे लगभग ६००० जिन मूर्तिया हैं। यहा का सवसे प्रसिद्ध चिन्तामणि पार्श्वनाथ का मन्दिर है। यहा १८ उपाश्रय और ७ ज्ञान भडार हैं। जिनमे श्री जिनभद्र सूरि ज्ञान भडार वृहत और प्रसिद्ध है।

जैसलमेर की पचतीर्थी मे जैसलमेर, अमरसागर, लोद्रावा पोकरन और ब्रह्मसागर के मन्दिर गिने जाते हैं।

बीकानेर—यहाँ लगभग ३० जैन मन्दिर हैं। जिनमे भगवान् अजितनाथ का मन्दिर प्राचीन गिना जाता है। यहा पर ४-५ ज्ञान भडार हैं।

जोधपुर—यहा पर छोटे-बडे १७ मन्दिर हैं, जिनमे से स० १६०० का शिखरबद भगवान् श्री केशरियानाथ का मन्दिर प्रसिद्ध है। दूसरा मन्दिर भैरों बाग मे भगवान् श्रीपार्श्वनाथ जी का है। जूनी मडी मे भगवान् महावीर का सवत् १८०० का जैन मन्दिर है। यहा पर एक ग्र थ भडार भी है।

मेवाड के जैन तीर्थ—मेवाड की पचतीर्थी मे श्री केसरियाजी, नागद्रह, देलवाडा, दयालशाह का किला और करेडा माने जाते हैं। मेवाड मे करीब ३५० जैन मन्दिर हैं जिनमे से मुख्य इस प्रकार हैं।

उदयपुर—यहा कुल ३६-३७ मन्दिर हैं। इनमे बावन जिनालय वाला श्री शीतलनाथ जी का मन्दिर, भगवान वासूपूज्य जी का काच का मन्दिर, ऋषभदेव जी का मन्दिर और सहस्रफणा पाश्वनाथ जी का मन्दिर उल्लेखनीय हैं।

पुर (आहाड) तीर्थ—उदयपुर शहर से २ मील दूर आहाड है। यहा ऋषभदेव भगवान, शातिनाथ भगवान, शखेश्वर पार्श्वनाथ और सुपार्श्वनाथ भगवान के मन्दिर हैं। ये १००० वर्ष पुराने भव्य और कलाकृत हैं। इसी प्राचीन नगरी मे राणा जैत्रसिह (स० १२७०–१३०८) के समय में हेमचन्द्र श्रेष्ठि ने सब जैन आगमो को ताडपत्र पर लिखवाया था।

श्री केसरिया जी—उदयपुर से ४० मील दक्षिण मे धुलेव गाव में यह तीर्थ स्थित है। यहा भगवान ऋषभदेव की श्याम मूर्ति बहुत प्राचीन और मनोज्ञ है। चैत्र कृष्णा अष्टमी को यहा बडा भारी मेला लगता है, जिसमें भील लोग काफी मात्रा में आते हैं। ये लोग केसरियाजी को कालाजी कहते हैं। यहा का सबसे प्राचीन शिलालेख स० १४३१ का है। मन्दिर का स्थापत्य भव्य और कलामय है।

श्री अद्‌बदजी या नागद्रह (नागदा) तीर्थ—उदयपुर से १३ मील दूर एकलिंगजी के बस मार्ग पर यह तीर्थ स्थित है। यहा मूलनायक श्री शातिनाथ भगवान की अद्‌भुत और विशाल मूर्ति है जो ६ फीट ऊची है, जिसको अद्‌बद जी कहते हैं। यहा खुमाण रावल का अनोखा मन्दिर भी है। यहा 'सास-बहू' का वैष्णव मन्दिर स्थापत्यकला की दृष्टि से सर्वोत्तम है।

देलवाडा—यह उदयपुर से १८ मील दूर है। यहा पाँच मन्दिर हैं। इस तीर्थ के अधिकनर मन्दिर और शिलालेख पन्द्रहवी-सोलहवी शताब्दी के हैं। यहा के मन्दिरो का स्थापत्य देलवाडा आबू के विश्वविख्यात मन्दिरों के स्थापत्य से मिलता है।

दयालशाह का किला—उदयपुर से ४३ मील दूर बस मार्ग पर राजनगर कस्बे में एक ऊची पहाडी पर यह स्थित है। यहा वीर मन्त्री दयालशाह ने नौ मजिला चतुर्मुख जिन प्रासाद निर्माण कराया और इसमे ऋषभदेव भगवान् की मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई थी। मन्दिर की कारीगरी महीन और मनोहर है। यहा पर 'राज प्रशस्ति' नामक २५ सर्ग का पाषाण शिलालेख है जो भारत का सबसे बडा शिलालेख है। राणा राजसिंह ने जितना धन राजसमन्द बधवाने में व्यय किया, उतना ही धन उनके मत्री दयालशाह ने इस मन्दिर के निर्माण में व्यय किया था।

करेडा पार्श्वनाथ—भोपालसागर स्टेशन से करीब १ मील पर करेडा पार्श्वनाथ नामक विख्यात बावन जिनालय वाला विशाल मन्दिर है। इस मन्दिर के कुछ लेख १२वीं

और १९वी सदी तक के हैं। यहा पौष वदी १० को प्रतिवर्ष बडा मेला लगता है। स्थापत्य कला की दृष्टि से इस मन्दिर की अपनी विशेषता है।

चित्तौडगढ़—यह प्राचीन तीर्थ चित्रकूट के नाम से विख्यात है। इस दुर्ग पर बनी शृंगार चवरी जिसका असली नाम अष्टापदावतार शान्ति जिन चैत्य है। इसमे चौवीस जैन तीर्थंकरो की अष्टापद रचना बनी हुई है। स्थापत्य कला की दृष्टि से यह बेजोड है। सतवीस देवरा—पहले सत्ताईस जिनालयो का मन्दिर था। वि० स० १५०५ में कर्माशाह की देख-रेख में इसका निर्माण हुआ था। मूलनायक ऋषभदेव की श्याम मूर्ति यहाँ विराजमान है। जैन कीर्तिस्तम्भ सात मजिला और ८० फुट ऊचा है। चौदहवी सदी का यह स्मारक जैन शिल्प कला का अद्भुत नमूना है। इसके पास भगवान् महावीर का सुन्दर मन्दिर है।

चवलेश्वर पार्श्वनाथ —भीलवाडा से २६ मील दूर चवलेश्वर पार्श्वनाथ तीर्थ है। यहा भगवान् पार्श्वनाथ की मूर्ति अति प्राचीन है। पौष बदी दशमी को यहा मेला भरता है।

बिजोलिया —भीलवाडा से लगभग ४४ मील दूर विजोलिया ग्राम है यहा भूतल मे आच्छादित भगवान् पार्श्वनाथ का मदिर है।

कुंभलगढ़ :—कर्नल टॉड ने यहा के तीन मजिले कलाकृत जैन मन्दिर का वर्णन किया है जिसका जीर्णोद्धार महाराजा फतेहसिंहजी ने करवाया था। इसके अतिरिक्त यहा दुर्ग पर तीन मन्दिर और हैं—बावनजिनालय का वि स १५१५ का, वि स १६०८ का, व सुन्दर खुदाई वाला मोलेरा का जैन मन्दिर जिसमे पीतल की मूर्तिया हैं।

अजमेर —यहाँ पाच श्वेताम्बर मन्दिर हैं जिनमे से २ बडे मन्दिर सभवनाथ भगवान् के लगभग स० १८०० के हैं। शेष दो मन्दिर श्री गौडी पार्श्वनाथ के और ऋषभ भगवान् के स १८५० के हैं। यहा ढाई दिन का झोपडा प्रसिद्ध स्थान है। वहा पर भी पहले जैन मन्दिर था। नगर के बाहर विशाल दादाबाडी है, जहा खरतरगच्छ के प्रसिद्ध आचार्य श्री जिनचन्द्रसूरि की छतरी है।

किशनगढ़ —यहा पाच मन्दिर हैं। दो मन्दिर भगवान् श्री आदिनाथ और श्री शान्तिनाथ के स १६९८ के हैं। कस्बे के बाहर दादाबाडी है।

जयपुर :—यहा पर ९ श्वेताम्बर जैन मन्दिर हैं। उनमे से भगवान् श्री ऋषभदेवजी का, श्री केसरियाजी का, श्री सुमतिनाथजी का (स १७८४), भगवान् श्री पार्श्वनाथजी का (स १८००) और श्री महावीर स्वामी के मन्दिर प्रसिद्ध हैं।

आमेर —यहा श्री चन्द्रप्रभ स्वामी का शिखरबद्ध स १८७७ का मन्दिर है।

अलवर —यहा पर दो श्वेताम्बर जैन मन्दिर हैं, जिनमे से एक स १८०० का श्री सघ द्वारा निर्माण करवाया हुआ विशाल पार्श्वनाथ मन्दिर है। इसके भोहरे मे बडी-बडी विशालकाय मूर्तिया हैं। दूसरा आधुनिक जैन मन्दिर बस स्टेण्ड के पास है।

श्री नागेश्वर तीर्थ —झालावाड जिले मे नागेश्वर (उन्हैल) गाव के बाहर श्री नागेश्वर पार्श्वनाथ तीर्थ है। इस तीर्थ मे नीले वर्ण की फण वाली खडी श्री नागेश्वर पार्श्वनाथ प्रभु की नौ फीट की सैकडो वर्ष पुरानी प्रतिमा है।

[२]

दिगम्बर जैन मन्दिर[1] पं० अनूपचन्द

सावलाजी का मन्दिर, आमेर :—इसमे भ नेमिनाथ की श्याम पाषाण की स० ११२० की मूर्ति है। कहा जाता है कि इसे हेमराज छावडा ने बनवाया था। भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति के समय मे यहा भट्टारक गादी स्थापित हुई। इसके साथ ही यहाँ विशाल शास्त्र भडार भी स्थापित किया गया।

सघीजी का मन्दिर, सागानेर :—यह मन्दिर १२वी शताब्दी का बना हुआ है। अपनी स्थापत्य एव वास्तुकला के लिये यह प्रसिद्ध है।

गोदीको का मन्दिर, सागानेर ·—यहा सगमरमर की वेदी मे कुराई का बारीक कार्य दर्शनीय है।

चाकसू की नसिया :—चाकसू से डेढ मील दूर पहाडी पर जैन नसिया हैं। इस छोटी-सी पहाडी पर मन्दिर, चरण-चिह्न आदि हैं। सम्वत् १६२२ मे भट्टारक जगत्कीर्ति ने चाकसू मे पट्ट स्थापित किया।

पाटोदी का मन्दिर, जयपुर —यह बीस पथ आम्नाय का प्रमुख मन्दिर है जो चौकडी मोदीखाने मे स्थित है। इसका निर्माण जोधराज पाटोदी ने करवाया था। यहा भगवान् आदिनाथ की प्रतिमा स्थापित है। आमेर के पश्चात् जयपुर के इसी मन्दिर मे भट्टारक गादी की स्थापना स० १८१५ मे हुई, जिस पर क्षेमकीर्ति प्रथम भट्टारक हुए। इस मन्दिर मे एक विशाल और महत्त्व-पूर्ण हस्तलिखित ग्र थ भण्डार भी है। यहा स्वर्णाक्षरी, रजताक्षरी तथा ताडपत्रीय ग्र थो की प्रतियो का भी सग्रह है।

सिरमोरियो का मन्दिर, जयपुर ·—इसका निर्माण सम्वत् १८१३ मे श्री केशरीसिंह कासलीवाल ने कराया था। इस मन्दिर की नीव जयपुर नरेश महाराजा माधवसिंह ने अपने हाथ से रक्खी थी। यह मन्दिर कला की दृष्टि से अद्वितीय है। इसमे सबसे प्राचीन मूर्ति श्वेत पाषाण की सम्वत् १२२७ की है।

बड़े दीवानजी का मन्दिर, जयपुर —यह जैन सस्कृत कॉलेज के निकट है। इसे दीवान अमरचन्द के पिता शिवजीलाल ने बनवाया था। इसमे भगवान् ऋषभदेव की श्याम पाषाण की भव्य प्रतिमा है। इसी मन्दिर के प्रागण मे स्व० प० चैनसुखदासजी प्रतिदिन शास्त्र वाचन करते थे।

महावीर स्वामी का मन्दिर, जयपुर —गोपालजी के रास्ते मे स्थित यह मन्दिर कालाडेहरा के मन्दिर के नाम से भी जाना जाता है। इसमे १२वी शताब्दी की महावीर स्वामी की खडगासन प्रतिमा है। यहा भगवान् महावीर के पूर्वभवो का सचित्र वणन उपलब्ध है, साथ ही अच्छा शास्त्र भण्डार भी है।

---

१ यह सक्षिप्त विवरण लेखक के विस्तृत लेख के आधार पर तैयार किया गया है। —सम्पादक

सघीजी का मन्दिर, जयपुर —इसमे काच की वेदी पर हरे पाषाण की पार्श्वनाथ प्रतिमा है। यहा भी शास्त्र भण्डार है।

पार्श्वनाथ मन्दिर(सोनियों का) जयपुर '—खवास जी के रास्ते मे स्थित इस मन्दिर मे सम्वत् १८६१ की भ० पार्श्वनाथ की विशालकाय खड्गासन प्रतिमा है। यहा प्राचीन ग्र थो का अच्छा सग्रह है।

वधीचन्दजी का मन्दिर, जयपुर :—घी वालो के रास्ते मे स्थित यह मन्दिर गुमान पथ आम्नाय का है। यहा एक विशाल शास्त्र भण्डार है जिसमे प टोडरमलजी के स्वय के हाथ की 'मोक्ष मार्ग प्रकाश' एव 'आत्मानुशासन' की मूल पाडुलिपिया उपलब्ध हैं। इस मन्दिर मे बैठकर प टोडर-मलजी ग्र थ रचना किया करते थे।

तेरहपथी बडा मन्दिर, जयपुर —यह तेरापथ आम्नाय का मन्दिर है। इसमे अनेक प्राचीन प्रतिमाए हैं। इस मन्दिर मे दो विशाल शास्त्र भण्डार है। बडे मन्दिर के भण्डार मे २६२९ ग्र थ तथा बाबा दुलीचन्द के भण्डार मे ८५० ग्र थो का सग्रह है। इसमे १६वी शताब्दी का सचित्र आदि पुराण है, जिसमे करीब ३०० चित्र है। यहा प सदासुख, जयचन्द छाबडा, जोधराज गोदीका आदि के स्वय के हाथ के लिखे हुए ग्र थ है।

पाड्या लूणकरण का मन्दिर, जयपुर .—यह मन्दिर ठाकुर पचेवर के रास्ते मे स्थित है। इसमे हाथी, भैंसे, चकवे, कबूतर आदि वाहनो पर बैठे शासन देवताओ की तथा चक्रेश्वरी और अम्बा माता की भव्य प्रतिमाए हैं। इसमे एक विशाल शास्त्र भण्डार भी है।

दि० जैन मन्दिर आदर्श नगर, जयपुर —मुलतान से आये जैनियों के सहयोग से यह मन्दिर बना है। मन्दिर अत्यधिक सुन्दर और कलापूर्ण है। इसमे विशाल शास्त्र भण्डार भी है। इसमे एक कीर्तिस्तम्भ (महावीर स्तूप) भी बन रहा है।

राणाजी की नसिया —जयपुर से ३ मील दूर खानिया नामक स्थान पर सगमरमर की विशाल नसिया हैं। इसी के प्रागण मे आचार्य वीर सागर जी का स्मारक (चरण चिह्न) है।

चूलगिरि क्षेत्र —राणाजी की नसिया के पीछे पहाड पर चूलगिरि क्षेत्र है। यहा भ० पार्श्व-नाथ की खड्गासन प्रतिमा है। मन्दिर के अहाते मे चारो ओर चौबीस तीर्थंकरो के चरण चिह्न तथा मूर्तिया है। यहा का प्राकृतिक दृश्य बडा मनोरम है। इस क्षेत्र की स्थापना आचार्य देशभूषणजी महाराज ने सन् १९६६ मे की थी।

जयसिंहपुरा खोर का दि० जैन मन्दिर —यह मन्दिर जयपुर से रामगढ रोड पर बध की घाटी से डेढ मील दूर जयसिंहपुरा खोर मे है। इसका निर्माण स० १७८० मे कवरपाल गोधा ने करवाया था। यहा भगवान् श्रेयासनाथ की स० १६६४ की प्रतिमा प्रतिष्ठित है।

रामगढ का मन्दिर जयपुर मे २८ मील दूर रामगढ का विशाल बाध है। बाध मे ३ मील दूर रामगढ गाव के जैन मन्दिर मे भूगर्भ से प्राप्त १२वी शताब्दी की मनोज्ञ पाषाण प्रतिमाए है।

पदमपुरा क्षेत्र —जयपुर से २२ मील की दूरी पर शिवदासपुरा के निकट इस अतिशय क्षेत्र का प्रादुर्भाव वि० स० २००१ में हुआ था। यहा पद्मप्रभु भगवान् की चामत्कारिक मूर्ति भूगर्भ से प्राप्त हुई थी। यहाँ विशाल कलापूर्ण मन्दिर का निर्माण-कार्य चल रहा है।

भट्टारकजी की नसिया :—जयपुर से २ मील दूर टोक रोड पर रामबाग के पास ये नसिया स्थित हैं। इसमे भट्टारक महेन्द्रकीर्ति, क्षेमेन्द्रकीर्ति तथा सुरेन्द्रकीर्ति के चरण प्रतिष्ठित हैं। इसकी स्थापना स० १८५३ व १८८१ मे हुई थी।

दि० जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी :—यह प्रसिद्ध अतिशय क्षेत्र है। यहाँ भगवान् महावीर की मनोज्ञ और आकर्षक मूर्ति है। महावीर जयन्ती के अवसर पर यहाँ प्रतिवर्ष एक विशाल मेला लगता है। यह एक ऐसा तीर्थ स्थान है जहा बिना किसी जातिगत भेदभाव के यात्री दर्शनार्थ आते हैं। यहा दर्शनार्थियो से प्राप्त धनराशि का उपयोग, प्राचीन साहित्य के सरक्षण, प्रकाशन, छात्र-वृत्ति, विधवा सहायता, धर्म प्रचार आदि सद्कार्यों मे होता है। यहा तीन शिखरो वाला कलापूर्ण मन्दिर, मानस्तम्भ, आदि दर्शनीय स्थल हैं।

चमत्कार क्षेत्र आलनपुर —सवाई माधोपुर स्टेशन से २ मील दूर आलनपुर गाव मे एक भव्य जिनालय है। इसमे भूगर्भ से प्राप्त बिचलौर की चमत्कार पूर्ण प्रतिमा है।

दीवानजी का मन्दिर, सवाई माधोपुर —वि स १८२६ मे सवाई माधोपुर मे विशाल पच कल्याणक महोत्सव हुआ था। उसमे हजारो प्रतिमाए प्रतिष्ठित हुईं। उस समय की अनेक मूर्तिया इस मन्दिर मे हैं। यह तीन शिखर वाला मन्दिर है। यहा विशाल ग्रन्थ भण्डार भी है। यहा नसियां सहित ९ मन्दिर हैं जो कलापूर्ण हैं।

जैन मन्दिर, खण्डार :—सवाई माधोपुर से २० मील दूर खण्डार का किला है। इस किले का मन्दिर महत्वपूर्ण है। किले के रास्ते मे कुछ दूरी की चढाई पर चट्टान मे उकेरी गई अनेक छोटी प्रतिमाए भी हैं।

रणथम्भोर का जैन मन्दिर —इस मन्दिर की पाषाण प्रतिमाए १२वी शताब्दी से भी पूर्व की हैं।

ती दि० जैन मन्दिर, भरतपुर :—यहा का पचायती दिगम्बर जैन मन्दिर प्रसिद्ध है। यहाँ स० १२७२ की विशाल पाषाण प्रतिमाए हैं। इसके शास्त्र भडार मे ८०० हस्तलिखित ग्रन्थो का सग्रह है।

पचायती जैन मन्दिर, करौली —यह मन्दिर भी बडा प्रसिद्ध है। यहाँ काच का सुन्दर काम है। यहा अच्छा ग्रन्थ भण्डार भी है। बयाना की स्टेशन की नसिया भी उल्लेखनीय हैं। यहाँ सीमधर स्वामी की १२वी सदी की प्रतिमा है।

पचायती बडा मन्दिर, कोटा —यह मन्दिर रामपुरा मे स्थित है। यहा काफी प्राचीन मूर्तिया हैं। यह मन्दिर काच के काम के लिए प्रसिद्ध है।

झालरापाटन का शांतिनाथ मन्दिर —यहा भगवान् शातिनाथ का विशाल मन्दिर। है

इसमे चारो ओर देवरिया बनी हुई हैं जिनमे अनेक धातु और पाषाण की मूर्तिया विराजमान हैं।

अतिशय क्षेत्र चांदखेड़ी —झालरापाटन से कुछ दूरी पर चादखेडी है। यहा नदी के किनारे मन्दिर मे भगवान् आदिनाथ की पाषाण प्रतिमा है। यह प्रसिद्ध अतिशय क्षेत्र है।

जैन मन्दिर केशोरायपाटन (बूंदी):—यह मन्दिर बूंदी रोड रेल्वे स्टेशन से २ मील चम्बल नदी के किनारे स्थित है। यहा की प्रतिमाए काफी प्राचीन है। यहा केशवराय (श्रीकृष्ण) का विशाल कलापूर्ण मन्दिर भी है।

इसके अतिरिक्त डूंगरपुर, सागवाडा, बासवाडा, गलियाकोट, सलूम्बर मे भी विशाल, कलापूर्ण, प्राचीन जैन मन्दिर हैं।

बीसा हुमड़ दि० जैन मन्दिर, उदयपुर —यह मन्दिर विशालकाय और कलापूर्ण है।

धानमण्डी (उदयपुर) का अग्रवाल जैन मन्दिर, खण्डेलवाल मन्दिर, सभवनाथ मन्दिर, ग्रथ भण्डारो की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

सेठजी की नसिया, अजमेर —यहा स्टेशन के नजदीक सेठजी की नसिया है। यहा की चित्रकारी का कार्य उल्लेखनीय है। चौक मे विशाल मानस्तम्भ है तथा मन्दिर मे मनोज्ञ प्रतिमाए। शहर मे सेठजी का काच का मन्दिर तथा भट्टारकीय बीस पथी मन्दिर और विशाल शास्त्र भण्डार महत्त्वपूर्ण हैं।

शांतिनाथ मन्दिर, आवा (टोंक) —आवा नगर मे भगवान् शातिनाथ का मन्दिर है। यहा सवत् १५६३ की प्रतिष्ठित शांतिनाथ भगवान् की श्वेत पाषाण प्रतिमा है। पास की पहाडी पर भट्टारक शुभचन्द्र, धर्मचन्द्र आदि की निषेधिकाए हैं।

इसके अतिरिक्त केकडी के पास बघेरा मे भी आकर्षक प्रतिमाएँ है।

अग्रवाल जैन नसिया, टोंक —यहा भूगर्भ से प्राप्त १३वी शताब्दी की विशाल २६ प्रतिमाए हैं जो दर्शनार्थियो के लिये आकर्षण का केन्द्र है। यहा आचार्य जिनसेन के चरण भी हैं।

दीवान जी की नसिया तथा बीस पथी मन्दिर, सीकर:—यहा दीवान जी की विशाल नसियां है। यहा छात्रावास व साधु-मुनियो के आवास की अच्छी व्यवस्था है। यहा बीस पथी मन्दिर का बाह्य स्वरूप बडा भव्य है।

दि० जैन मन्दिर, लाडनू —यह भारत का कलापूर्ण जैन मन्दिर है।

भट्टारकीय मन्दिर, नागौर —यह मन्दिर शास्त्र भण्डार के लिये प्रसिद्ध है। इसमे लगभग १२ हजार हस्तलिखित प्राचीन ग्रन्थ हैं।

बडा मन्दिर नरायणा —यहा १२वीं-१३वी शताब्दी की मनोज्ञ और कलापूर्ण मूर्तिया हैं।

छोटा मन्दिर, नरायणा—यहा सवत् ११३५ की पाषाण की बाहुबलि की ३½ फीट की प्रतिमा है। यहा सवत् ११०२ की श्वेत पाषाण की सरस्वती की भी मूर्ति है।

दि० जैन अतिशय क्षेत्र, तिजारा —यहा पार्श्वनाथ का प्राचीन मन्दिर है।

जैन मन्दिर, मौजमाबाद.—इस मन्दिर का निर्माण सवत् १६५० के आस-पास हुआ था। यह शिखरवन्द मन्दिर विशाल और कलापूर्ण है।

२५ जैन चित्रकला

•

श्री परमानन्द चोयल

अजन्ता व राजस्थानी चित्रकला :

पर्सीब्राउन ने अजन्ता व राजस्थानी चित्रकला के बीच का काल, जो कि जैन चित्रकला का काल है, भारतीय कला का अन्धकार युग बताया है।[१] डब्ल्यू जी आर्चर भी यही बात दोहराते हैं जब वे ये शब्द लिखते हैं—'The early glowing rapture is totally wanting and it is as if we have entered a dark age of Indian Art'[२] भारतीय कला समीक्षक श्री रायकृष्णदास ने तो यहा तक कह दिया है कि ये चित्र 'कुपड चित्रकारों' के बनाये हुये हैं।[3] काफी समय तक वे इसके नामकरण पर विवाद प्रस्तुत करते हैं, फिर मानवाकृतियो का नख शिख वर्णन करते हुए इसके विकृत आलेखन की ओर ध्यान दिलाते है तथा अन्त मे अपने सम्पूर्ण आक्रोश के साथ इसका अपभ्र श शैली नाम रख देते है।[४]

वास्तव मे इस तरह के विद्वान् अजन्ता के मानदण्डों से ही हर चित्र शैली को तोलने का प्रयत्न करते हैं, इसीलिये जैन चित्रकला के साथ जिस न्याय को अपेक्षा थी, ये लोग नही कर पाये हैं। जिन्होने चित्रकला प्रक्रिया, तकनीको एव विधाओ का गहराई से अध्ययन किया है, जो आलोचना के नाम पर केवल ऐतिहासिक तिथियाँ ही नही गिनते रहे हैं तथा जो सौन्दर्य को आदमी-औरत के चेहरे मोहरो मे न देखकर कला तत्त्वो के माध्यम से सरचना मे पहचानने का प्रयत्न करते है, उनके लिये जैन चित्रकला एक नया ही अर्थ बोध उपस्थित करती है।

जैन चित्रकला :

जैन चित्रकला का काल ११वी शती से १६वी शती तक रहा है। इस बीच जैन धर्म से सम्बन्धित चित्र एव अजैन चित्र बनते रहे, जिनकी शैली एक समान है। अत जैन चित्रकला को, समग्र शैली-प्रसार के परिप्रेक्ष्य मे देखना चाहिये। विद्वानो ने जहा यह बात निभाई है, उनकी समालोचना का ढग वहा बिल्कुल बदल गया है। उदाहरण के लिये बासिल ग्रे का यह—कथन यह शैली १५वी-१६वी

---

१ हेरिटेज ऑफ इण्डियन पेन्टिग २ इण्डियन पेन्टिग

३ भारत की चित्रकला ४ वही

शती मे अपने चरमोत्कर्ष पर थी, अकबर काल मे यह इतनी शक्तिशाली थी कि अकबर ने अपने पुस्तकालय विभाग के लिये गुजराती कलाकारो को चुना था,[1] श्री रायकृष्णदास द्वारा जैन चित्रकला के कलाकारो के 'कुपड' होने की बात के पूर्णतया विरुद्ध बैठना है। इसी सन्दर्भ मे बासिल ग्रे की निम्न पक्तिया भी उल्लेखनीय हैं—[2]

"It showed from the beginning a livear, wiriness and vigour which was developed with great virtuosity, fine draughtsmanship which was combined rather strongly with bold massing of vibrant colours, red, blue and gold and with highly decorative designs in cloths and other textiles"

मारिये बुसाग्लि के मतानुसार जैन चित्रकला 'कुछ अर्थों मे एकदम नवीन एव पूर्ण क्रान्तिकारी शैली थी जिसने चित्रकला के विकास मे एक नया ही प्रकरण जोडा है।"[3]

रचना-प्रक्रिया एव गठन

हर काल की कला अपने मे प्राचीन व नवीन दोनो कलाओ के तत्त्व समेटे होती है। शैली का गठन एक जटिल प्रणाली है जिसमे कई प्रभावो का समावेश होता है, जैसे सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक आदि। इन अवस्थाओ के अनुसार ही शैली आदर्श, प्रतीकात्मक, लाक्षणिक अथवा ग्रामीण आदि स्वरूप धारण कर लेती है। जैन चित्रकला की समस्यायें अजन्ता से भिन्न है, अत उसका बाह्य स्वरूप भी अजन्ता से भिन्न होना स्वाभाविक है। फिर अजन्ता के चित्र भीत पर बडे-बडे धरातलो मे धारावाहिक कथात्मक शैली की विशद योजना लेकर बनाये गये थे। भित्ति-चित्र परम्परा जैन काल मे लगभग लुप्त हो गई थी। भीत के स्थान पर बहुत छोटे आयताकार ताड-पत्रो पर व १४वी शती मे कागज के निर्माण के बाद थोडी-सी बडे नाप की आयताकार पुस्तको मे छोटे-छोटे चित्र बनने लगे थे। इसलिए दोनो शैलियो की रचना-प्रक्रिया एव गठन भिन्न प्रकार था। उनकी आवश्यकतायें भिन्न थी।

अजन्ता काल मे भारत बाहरी प्रभावो से इतना आक्रान्त नही था जितना जैन काल मे हो गया था। मुगलो के हमले भारत मे मोहम्मद गजनी के समय से ही लगातार हो रहे थे। उसके कारण व उनके भारत मे जमने की प्रवृत्ति के कारण उनकी सभ्यता व सस्कृति का यहा की कला पर प्रभाव पडने लगा था। लघुचित्रो व सचित्र पुस्तको का व्यापक रूप से प्रचलन भारत का इस्लाम के सम्पर्क मे आने के बाद ही माना जाना चाहिये। लघुचित्रो (miniatures) पर आरम्भ मे अवश्य ही परसिया का प्रभाव पडा है।[4] अत जैन चित्रो की सृजन प्रक्रिया मे परम्परागत कला से आशातीत अन्तर हो आया है। फिर भी इस शैली मे बीज रूप मे भारतीय परम्परा विद्यमान है।

मुनि श्री जिनविजयजी ने जैसलमेर के ज्ञान भण्डारो से जैन कला के वे नमूने खोज निकाले हैं जो अजन्ता-एलोरा-कला व जैन कला का सम्बन्ध जोड देते हैं। लकडी की करीब १४ सचित्र तख्तिया आपने ढूढ निकाली है, जिनमे कमल की बेल वाली पटली अत्यन्त विलक्षण है, जो अजन्ता

१ राजपूत पेन्टिंग पृ० ३ २ राजपूत पेन्टिंग, पृ० ३
३ इन्डियन मिनियेचर, पृ० ४३ ४ इण्डियन मिनियेचर, पृ० २२ मारियो बुसाग्लि

शैली की याद दिलाती है। एक चित्र मे मकर के मुख से निकलती कमल बेल बनाई है जो साची, अमरावती व मथुरा की कला-परम्परा से जैन कला को जोडती है।

सूक्ष्म दृष्टि से जाचने पर पता लगता है कि लघुचित्रण विधि मे भी भित्ति-चित्रण परम्परा अश मात्र मे विद्यमान थी। रेखाओ का प्रयोग भी शास्त्रोक्त है, जैसा कि भित्ति-चित्रो मे देखने को मिलता है—स्पष्ट व प्रवाहात्मक। सिफ रग-ब्रुश के सचालन मे अन्तर आ गया है। अजन्ता का चित्र-धरातल बडा था। अत रेखा खेंचते समय कलाकार को ब्रुश बहुत दूर से पकडकर भुजा के पूर्ण घुमाव के साथ हाथ चलाना पडता था और आकृतियो मे छाया व प्रकाश के आधार पर शारीरिक बनावट (modelling) के अनुकूल रेखाओ को मोटा व पतला बनाना होता था जबकि जैन पुस्तक-चित्रो मे इसके विपरीत (अत्यन्त छोटे चित्र स्थल के कारण) ब्रुश को बिलकुल आगे से लगभग बालो के पास से पकडकर हथेली व उगली के बल पर रेखाए खेंचनी पडती थी। आकृतिया सपाट तलो वाली होती थी जिनको बाधने के लिये लोच की आवश्यकता नही थी, फिर राजस्थानी व मुगल चित्रो के समान सास रोककर बारीक कारीगरीनुमा रेखायें खेंचने का न तो अवकाश था न श्रेय। इस कारण जैन चित्रो की रेखाए अपने मे भिन्न स्वरूप लिये हुए हैं। उनकी क्षिप्रता के अन्तर्गत ऐसा अटूट प्रवाह छिपा है कि उनकी कलात्मकता मे किसी प्रकार भी सन्देह नही किया जा सकता। एक प्रकार की दह लिपि-शैली (calligraphic) थी जिसका अपना ही सौन्दर्य होता है।

जैन पुस्तक-चित्रो मे भारतीय कला का सब प्रथम परिवर्तित रूप दिखाई देता है। यहा भारतीय व ईरानी तत्त्व घुल मिल गये हैं। तत्कालीन अभिरुचि एव नवीन आवश्यकताओ ने कला का बाना बदल दिया था। छाया प्रकाश व शारीरिक गढन (modelling) का अब पूर्ण अभाव हो गया। आकृतिया सपाट व समतल हो गई, जिनमे लाल, नीले, पीले, चटकदार द्वि विधात्मक रग भरे जाने लगे।[१] वैज्ञानिक दृष्टिक्रम (perspective) के बजाय मानसिक दृश्या का प्रयोग किया जाने लगा। सारे चित्र को विभिन्न तलों मे विभक्त कर दिया गया और मानसिक मन स्थिति के अनुसार सयोजित कर दिया गया। इस प्रकार की अभिव्यक्ति मे आकृतियो के यथार्थ स्वरूप का अतिरजन या विघटन हो गया जिनमे अमूर्त चित्ररचना के लक्षण झलकने लगे जैसा कि ७वी व ८वी शती की आइरिश कला, १२वी शती की रोमन कला एव २०वी शती के आधुनिक काल की पिकासो की कला में दिखाई देता है।[२] इनकी रेखाए स्वतन्त्र, एक दूसरे को क्रास करती, कोणात्मक तथा वेगवती थी। जैसे-जैसे कलाकार को तकनीकी अधिकार मिलने लगा, जटिल आकृतिया भी एक ही प्रवाह से युक्त अटूट रेखाओ मे बधने लगी। इनमे स्थिर व विश्रामास्थित आकृतियाँ प्रमुख हैं।

विघटन का तरीका मिलते ही मानवाकृति के विभिन्न अगों को सुन्दरतम 'विजुअल' (visual) स्थिति मे प्रस्तुत करने की उत्प्रेरणा जागने लगी जैसा कि सवा चश्म चेहरे, लम्बी

१ प्रारम्भ मे पृष्ठभूमि में लाल रग भरा जाता था बाद में परसिया के अधिक सम्पर्क के कारण सोने का रग भरा जाने लगा। नीला रग (लाजवर्द) भी परसिया से ही मगाया जाता था।

२ इण्डियन पेंटिंग पृ० ५-६ डब्ल्यू. जा आर्चर

नुकीली नाक (एक ओर से देखने की स्थिति मे--क्योकि सम्मुख स्थिति के चेहरे मे नाक का नुकीलापन व लम्बाई की गरिमा दृश्या के कारण लुप्त हो जाती हैं), नाक से लेकर कान तक खिचे मोटे व लम्बे नयन जिनके मध्य टिकी छोटी-छोटी गोल पुतलियाँ, चेहरे की सीमान्त रेखा को पार करती पृष्ठ भूमि मे लटकती आख[1], छोटी गोल ठुड्डी, उभरा वक्ष (सामने की स्थिति मे), क्षीण कटि व पूर्ण गोलाकार नितम्ब आदि के अकन मे दिखाई देता है।

यह एक प्रकार का शैलीकरण (stylization) था जैसा कि मिश्र की कला मे भी भासित होता है। इसमे दो विपरीत स्थितियो के अ ग को एक साथ सुस्पष्ट दिखाने की जिज्ञासा थी जो पिकासो व ब्राक की १९०५ के आस-पास की घनवादी कला जैसी थी।[2] इन चित्रो के रग भित्ति-चित्रो से समतोष्ण व विविध न होकर उष्ण व सीमित थे। तले सपाट व गहरे रगो मे पटे हुए। चटकीली लाल या सुनहरी पृष्ठभूमि के विरोध मे स्पष्ट स्थूल रेखाओ से मडित आकृतिया उभरने लगी। यथार्थ का सदर्भ टूट जाने से ये आकृतिया न रहकर अब रेखाओ से अनुबधित विरोधी रगो के सुसयोजित तले मात्र रह गये जैसा कि हेनरी मातिस की फॉवी कला मे देखने को मिलता है।[3]

जैन अथवा गुजराती चित्र सर्वप्रथम तालपत्रो मे बने मिलते हैं। ये सब चित्र पुस्तको मे बने मिलते हैं। मुगलकला व राजस्थानी कला के आरम्भ तक छिन्न चित्र व भित्ति चित्र बनाने की प्रथा समाप्त हो गई थी। यह शैली पोथियो की हस्तलिखित लिपि के अनुरूप थी मानो अक्षरो के स्वरूपो से ताल-मेल बैठाने के लिये ही इसकी रचना की गई हो।[4] आकृतियो की सरचना मे शायद जैन धर्म का भी आग्रह रहा हो। जैन धर्म के अनुसार आदमी-औरत, पशु-पक्षी कीडे-मकोडे, पेड-पौधे आदि सभी मे जान होती है जिनमे असीम शक्ति होती है अतः इन सभी को एक धरातल पर गिना जाना चाहिये। इसीलिये चित्र धरातल मे आलेखन के समय सब प्रकार के अभिप्रायो के साथ एक समान अलकरण की भावना रही है। कलात्मकता की दृष्टि से जैन चित्रकला बिजन्टियम या रेवेरा की कला के समान गिनी जा सकती है जो एक ओर तो परम्परा से जुडी हुई है व दूसरी ओर उसका विरोध भी करती दिखाई देती है।[5]

जैन चित्रशैली .

जैन चित्र शैली के दो रूप दिखाई देते हैं—जैन व अजैन।[6] प्रारम्भ मे जैन धर्म से सबधित चित्र प्रकाश मे आये। ये श्वेताम्बर जैन धर्म मे सबधित चित्र थे। निशीथाचूर्णि, अगसूत्र, कथारत्न-

---

१ यह आख जो वास्तव मे सवा चश्म चेहरे मे यथार्थ स्थिति मे बहुत ही कम दीखती है, परन्तु कलाकार आख के मूल सौंदर्य को प्रस्तुत करना चाहता था। चेहरे के सदर्भ से हटाकर, इसीलिये उसके मन में दूसरी आख भी पूर्णाकार बनाने की प्रेरणा जागी। यहा वैज्ञानिक दृश्या का उल्लघन किया गया है तथा मानसिक दृश्या का प्रयोग अपनाया गया है।

२ इण्डियन मिनियेचर, पृ० ३७ मारियो बुसाग्लि।

३ फ्रेंच का कलाकार जिसने २०वी शती मे फॉवीवाद आन्दोलन चलाया था।

४ इण्डियन मिनियेचर, पृ० ४३ मारियो बुसाग्लि। ५ वही, पृ० ५१।

६ अजैन कथानको के चित्रण की शैली अजैन शैली कही जाती है पर ११वी से १७वी शती तक भी चित्र शैली एक सी रही है, केवल शनै-शनै वह विकासोन्मुख होती रही।

सागर, सग्रहणीसूत्र, उत्तराध्ययनसूत्र, कालका कथा, कल्पसूत्र व नेमीनाथ चरित्र आदि की एकाधिक सचित्र पोथिया रची जाने लगी। गुजरात व राजस्थान इनकी रचना के केन्द्र थे। राजस्थान मे उदयपुर, बीकानेर तथा जोधपुर इन कलाकारो का स्थान था जिन्हें 'गुरुओ' की जाति का कहा जाता है। राजस्थान मे बहुत अल्प पारिश्रमिक लेकर जैनपोथियो मे चित्र बनाना इनका व्यवसाय था।[1] बीकानेर के मथेरन या मथेर भी जैन चित्र लिखते थे क्योकि उनके पास आज भी चित्र लिखने का सादा कागज मिल जाता है। इनका कहना है कि ये 'कल्पसूत्र' पर या चौवीस तीर्थंकरो की 'चौवीसी' पर चित्र लिखते थे।[2] नागौर, जालोर, जोधपुर, बीकानेर, खेरडी, उदयपुर आदि जगह जैन पुस्तकें अधिक लिखी गई। जोधपुर के एक जैन भण्डार मे पालम (दिल्ली) मे चित्रित पुस्तक मिली है। ऐसे ही पालम मे बने ग्र थ श्री रामगोपाल विजयवर्गीय, श्री सग्रामसिंह व श्री मोतीचन्द्र खजाची के सग्रहो मे है। गुजरात म खभात, पाटण, अहमदाबाद व सूरत इसके केन्द्र थे।

राजस्थान व गुजरात से बाहर भी इस शैली का प्रसार रहा है जहा जैन व अजैन दोनो प्रकार की सचित्र पुस्तकें लिखी जाती रही हैं। सारा भाई माणिकलाल नवाब ने 'चित्र कल्प द्रुम' ग्र थ मे अथक परिश्रम से विभिन्न क्षेत्रो के बने सैकडो दुर्लभ चित्रो को सकलित कर सुलभ बना दिया है। इसमे माडू मे (मध्यप्रदेश) रचित चित्र भी शामिल हैं, जौनपुर (उत्तर प्रदेश) के चित्र भी हैं। १४६५ ई० का जौनपुर मे वेणीदास गौड कायस्थ का रचित एक जैन ग्र थ श्री नवाब ने खोज निकाला है। और भी जौनपुर के तीन कल्पसूत्रो पर आपने प्रकाश डाला है।[3] जौनपुर मे बना एक ग्र थ स्वर्णाक्षरो मे लिखा हुआ है जो बडौदा के नरसिंह जी के ज्ञान मन्दिर मे है।

अजैन चित्रो मे वसत विलास, लौरिक चदा, गीत गोविंद, बालगोपाल स्तुति, भागवत् पुराण, चौर पचाशिका आदि ग्र थो का आलेखन गुजरात, मालवा, राजस्थान, पालम (दिल्ली) व उत्तर-प्रदेश में होता रहा है। १४५१ ई० की गुजरात के शासक अहमदशाह कुतुबुद्दीन के समय की ४३६ इ च लम्बी व ९२ इ च चौडी वसत विलास की खर्रेनुमा प्रति श्री एन सी मेहता ने खोज निकाली है। यह कालिदास की 'ऋतु सहार' रचना पर आधृत है तथा कथात्मक शैली मे इसका चित्रण हुआ है।[4] शैली की दृष्टि से अजैन चित्र भी एक ही परम्परा मे आते हैं। ये चित्र बाद के समय के हैं अत. इनकी शैली अधिक परिष्कृत होने लगी थी। गत्यात्मक कथानकों के आग्रह के कारण यहा आकृतियो की जकडन टूट गई है।

१२९९ ई० मे मुस्लिम सल्तनत के जम जाने के बाद भी स्थानीय अर्थ व्यवस्था व्यापारियो के हाथ मे थी। अत चित्र रचना व पुस्तक निर्माण मे बाधा नही आई। अब लाल के स्थान पर नीली या सुनहरी पृष्ठभूमि बनाई जाने लगी। १५वी शती के चित्रो मे परसिया की तुर्कमान शैली

---

१ आकृति, १९६६, अक २, जैन चित्रकला—श्री रामगोपाल विजयवर्गीय।

२ आकृति, १९६६, अक २, जैन चित्रकला—श्री रामगोपाल विजयवर्गीय।

३ भारत की चित्रकला—श्री रायकृष्णदास।

४ स्टडीज इन इण्डियन पेंटिंग, पृ० १६, एन सी, मेहता।

का स्पष्ट प्रभाव झलकता है।[1] जिसके लक्षण थे–छाया, प्रकाश का अभाव, दृश्या का उन्मुक्त प्रयोग, गहराई की कमी आदि। जैनो का परसिया से व्यापारिक सबध था। इनके रग विशेषतौर पर नीला, (लाजवर्दी–'लेपिज–लाजली') परसिया से मगाये जाते थे।

विषय विभिन्नता के साथ ही रेखाओ मे भी विविधता व गोलाई आने लगी। कपडे झीने व पारदर्शक बनाये जाने लगे जो तरह्-तरह के बेल बूटो से सुसज्जित होते थे। अकन मे धैर्य बढने लगा। आकृतियो का 'स्पेस' मे उचित स्थान होने लगा तथा वे और भी स्पष्ट उभरने लगी—उनके आसनो में गति व वैविध्य आने लगा। रग की श्रेणिया (टोन्स) बढ गई तथा अब वे अधिक सतुलित तलो में सयोजित होने लगे। शैली का आग्रह १६वी शती में यथार्थ की ओर झुकता सा दिखने लगा, फिर भी तले एक दूसरे पर बनाना नही छूटा। आकृतिया वैसे ही सौंदर्यमूलक सूत्र के अनुसार विघटित होती रही। अभी भी चित्र द्वैविधात्मक ही बनते थे। इस शैली की महत्ता आने वाली चित्रकला की भूमि तैयार करने में थी। इस शैली ने भारतीय कला को नये आयाम दिये हैं–वे आयाम जिसके लिये यूरोप के कलाकार १९वी शती के अन्तिम चरण में व २०वी शती के प्रारम्भ में प्रयत्न करते रहे। राजस्थानी चित्रकला निश्चय ही जैन चित्र शैली की देन है। इसकी मौलिकता व शक्ति को भुलाया नही जा सकता।

१　इण्डियन पेंटिग, डब्ल्यू. जी आर्चर।

२६ लोककला और लोकसंस्कृति

डॉ० महेन्द्र भ

जैनी लोग धर्मजीवी होते हैं। उनका सारा जीवन धार्मिक ताने-वाने से गुथा हुआ होता है। व्रत, उपवास, अनुष्ठान, तपस्या, ईश-आराधना एव अन्यान्य धार्मिक क्रियाकलापो तथा विश्वासो मे समर्पित भाव से अपने तन-मन-धन को लगाने मे ही उन्हे आनन्द की अनुभूति होती है। साहित्य, सगीत, सस्कृति एव कला के उन्नयन तथा प्रचार-प्रसार मे जितना योग जैनियो का रहा है उतना अन्य किसी का नही। जैन ग्रन्थ-भण्डारो मे सरक्षित विपुल एव समृद्ध सामग्री यदि विस्मृत कर दी जाय तो हमारे इतिहास की सास्कृतिक पीठिका का नक्शा ही नगण्य हो जायगा। जैन मन्दिरो का कलात्मक शिल्प और वास्तुकारीगरी की कही कोई समता नही। मन्दिरो के भितिचित्र, हस्तचित्र तथा काष्ठ-चित्रो के सरक्षण एव विकास मे भी इनका बेजोड योग रहा है।

सांस्कृतिक अभिरुचि :

जैनी लोग प्रारम्भ से ही वणिक अधिक रहे हैं। अपने व्यापार द्वारा विपुल धन कमाकर अधिकाधिक पैसा अपने धर्म-कर्मों तथा सास्कृतिक अभिरुचियो मे खर्च करने को उनकी तबियत रहती है। लोक-सस्कार जितने उत्साह और आनन्दपूर्वक जैनियो मे मनाये जाते हैं उतने अन्य जातियो मे नही। अन्य जातिया स्वत मनोरजित होती हैं, स्वय नाचती गाती हैं परन्तु जैनियो के यहा अन्यान्य कलापेशा जातिया जो-जो अपना हुनर कर्म करती हैं, वे अपनी-अपनी कला की उत्कृष्ट कृतिया ऐसे प्रसगो पर प्रस्तुत करती हैं। विवाह-शादी पर चित्रकार भाँति-भाँति के चितराम दीवालो पर अकित करता है। विवाह के लिये ये चित्र मागलिक समझे जाते हैं इसीलिए इनके बिना विवाह की शुरूआत हो ही नहीं सकती। यो अब तक की खोजो के अनुसार ससार को प्राचीन से प्राचीनतम कलाओ के उदाहरण भितिचित्रो के ही प्राप्त हुए हैं। ये भितिचित्र चाहे पुरातनगुफाओ के हो, चाहे धर्मस्थानो, राजप्रासादो अथवा सेठ श्रीमतो की हवेलियो के हो, कलात्मक अकनो मे सर्वाधिक महत्त्व इन्ही भित्तिचित्रो का रहा है। प्राचीन ग्र थो मे ऐसे वर्णन भी मिलते हैं जबकि श्रेष्ठिजन अपने उद्यानो में विविध प्रकार की काष्ठ, प्रस्त, चित्र तथा लेप्य कारीगरी से आलीशान चित्रशालाए बनवाते थे। अ गाग 'नाया धम्म कहाओ' मे मणिकार श्रेष्ठिनन्द राजगृह के उद्यान मे एक इसी प्रकार की चित्रशाला बनवाता है जिसमे सैकडो स्तम्भ और नानाप्रकार की लकडी, चूना, रग व मिट्टी तथा विविध प्रकार के द्रव्यो की आकृतियों का निर्माण कराता है।

विवाह के विविध प्रसगो पर गाने बजाने वाले कलावत पनपे, ढोल बजाने वाला ढोली, बाकिया बजाने वाला बाकियादार तथा ताशेवालो को सरक्षरण मिला कारण कि गाजे-बाजे के बिना विवाहश्री का रग ही फीका रह जाता है। इसी प्रकार कु कु म के तिलक के लिए कलात्मक चोपडे, लडकी को देने के लिये कलात्मक बाजोट, दूल्हे के बादने के लिए कलात्मक तोरण, कलात्मक खाट, कलात्मक रोडीथभ, कलात्मक पेटियो की आवश्यकताए पूरी करने के लिए खैरादियो को धन्धा मिला और उनकी सम्पूर्ण कलात्मक काष्ठकलाओ को सरक्षरण मिला। विविध नृत्यमुद्राओ तथा वाद्य-भगिमाओ मे देवदासियो के सुन्दर कलात्मक अकन मदिरो मे तथा घरो मे सजावट के प्रसाधन बने। कठपुतलियो की हजारो वर्षों की परम्परा को जीवित रखने मे भी जैनियो का ही विशेप योग रहा है। विवाह-शादियो तथा अन्यान्य मौको पर ये पुतली वाले अपनी पुतलिया लेकर आते और उनके विविध करतब दिखाकर इनाम-इकराम पाते थे। आज तो यहा की यह धरोहर विदेशो तक को लुभाने-चकित करने मे कामयाब हुई हैं। प्रतिवर्ष विदेशो से आने वाले सैलानी इनके खेल देखकर दातो तले अगुली दबाते हैं। भारतीय लोककला मण्डल उदयपुर जैसी सस्था ने तो इन्हीं पुतलियो के आधार पर पारम्परिक पुतलियो का सर्वोच्च अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त किया था।

लोक साहित्य का सृजन और सरक्षरण

लोक साहित्य के सरक्षरण मे भी जैनियो का कम योग नहीं रहा। पवाडे, फागू, चर्चरी, वेली, रास, हीयाली आदि की विपुल रचनाकर इन्होने लोक जीवन की इन समृद्ध विधाओ को विकसित और सरक्षित कर इन्हे लुप्त होने से बचाया। महाराणा कुम्भा के सम्मानित गुरु हीरानन्द सूरि पहुँचे हुए जैन कवि थे जिन्होने स० १४८५ मे विद्याविलास पवाडा बनाया जो लोककथा सम्बन्धी राजस्थानी का पहला काव्य माना जाता है। सुप्रसिद्ध प्रेमाख्यान ढोलामारू के प्राचीन दोहो को एकत्र कर जैन कवि कुशललाभ ने ढोलामारू की चौपाई की रचना की। इसी प्रकार कवि हीरकलश की 'सिहासन बतीसी', हेमानन्द की 'वैताल पचीसी' तथा 'भोजचरित्र चौपाई' भी लोककथाओ पर आधारित हैं। राजा विक्रम की लोककथाओ के सम्बन्ध की रास की रचना मे मगल माणिक्य ने विशेष नाम कमाया। इससे भी अधिक कार्य हुआ लोककथाओ और लोकगीतो की देशियो के आधार पर लोकसाहित्य के विपुल सृजन का। समय-सुन्दर, राजलाभ, महिमसमुद्र, हीरकलश, हेमानन्द, समयप्रमोद, ज्ञानविलास, जिनहर्ष, जयनिधान, धर्मसी, हस प्रमोद, देपाल आदि कवियो का हीयाली साहित्य आज भी उत्कृष्ट साहित्य की लोकधरोहर बना हुआ है। विवाह शादियो मे आज भी पग-पग पर जँवाई को हीयालियो के अर्थ छुडाने पडते हैं। यदि जँवाई इनके अर्थ नही छुडा सकता है तो उसे गीत मे गालिया तक दी जाती हैं। मुकलावे पर जब जँवाई को ताले मे दे दिया जाता है तो प्रातः बाहर बैठी औरतें नानाप्रकार की हीयालिया गाती हैं जिनका भीतर से जँवाई को जवाब देना होता है। इसी प्रकार भोजन के समय भी कई प्रकार की आरसिया-पारसिया गाई जाती हैं।

लेखन-कला :

लेख लिखने के आधारपत्रो का भी अपना एक कलात्मक इतिहास है। इन आधारों में वल्कल, काष्ठ, दन्त, लोह, ताम्र, रजत आदि का उल्लेख प्राप्त होता है। इन पर लेखन की पद्धतिया भी कई थीं। इन पद्धतियों में अक्षर खोदकर लिखने की उत्कीर्णन पद्धति, सीऊर लिखने की स्यूत

पद्धति, बुनकर लिखने की व्यूत पद्धति, छेदकर लिखने की छिन्न पद्धति, भेदकर लिखने की भिन्न पद्धति, जला कर लिखने की दग्ध पद्धति, तथा ठप्पा देकर लिखने की सक्रान्तित पद्धति विशेष रूप मे प्रचलित थी। महीन से महीन लेखन लिखने की कला मे भी जैनियो मे मुख्यत जैनसाधु का मुकाबला कोई नही कर सकता।

लोकनाट्य ख्याल-तमाशे

नाटको तथा ख्याल-तमाशो के क्षेत्र मे भी जैनियो का उल्लेखनीय योग रहा है। रास चर्चरी, फागुसज्ञक काव्य ग्रन्थो मे भी इनका उल्लेख मिलता है। ये नाटक गेय एव अभिनेय होते थे, जो किन्ही मागलिक प्रसगो, उत्सवो, गुरु-आगमनो तथा मन्दिर की प्रतिष्ठा के मौको पर खेले जाते थे। प्रदर्शको के साथ-साथ दर्शक भी एकरस होकर उनके साथ गाते थे। इन खेलो मे डडियो का प्रयोग विशेष रहता था तथा नृत्य के समय तालियो का बडा जोर था। फाग काव्य फागुन मे विशेष रूप से खेले जाते थे इसलिए इनका यह नाम चल पडा प्रतीत होता है।

नाटको तथा खेल तमाशो का यह जोर तो आज भी देखने को मिलता है। गन्धर्व जाति के लोग अपने सभी ख्याल जैन-मन्दिरो अथवा जैनियो की बस्ती मे ही करते हैं। जैनियो के अतिरिक्त ये कही अपना मच नही माडते। इनका पडाव मन्दिरो मे रहता है। जैनियो के वही ओसरे के अनुसार इनके खाने-पीने की व्यवस्था होती है और व्रत-नियमो मे भी जैनियो की तरह ये बधे होते हैं। ये लोग रात्रिभोजन भी नही करते और बडे सात्विक होते हैं। इनके सभी ख्याल धार्मिक आख्यानो से सम्बन्धित होते हैं। इन्हे प्रदर्शित करने के लिए तख्तो का मच बनाया जाता है जो तीन ओर से खुला होता है। इस पर एक साधारण सा चदोवा तान दिया जाता है। प्रारम्भ मे सभी पात्र स्तुति-वदन के लिए मच पर आते हैं। मच के एक ओर गाने बजाने वाले बैठ जाते हैं। इन्ही के पास इनका पोथीवाचक प्रेरक बैठा रहता है जो प्रत्येक पात्र से सम्बन्धित बोल सुनाकर पात्र को गाईड करता रहता है। ये लोग मुख्यत श्रीपाल-मैनासुन्दरी, सुरसुन्दरी, चन्दनबाला, सोमासती अजना, सत्यवान राजा हरिश्चन्द्र आदि का खेल करते हैं। अलवर, भरतपुर तथा जयपुर मे इन लोगो की अच्छी बस्ती है।

राजस्थान में ख्यालो की बडी समृद्ध परम्परा रही है। ये ख्याल यहा गायकी, नृत्य-अदायगी तथा रगशिल्प की दृष्टि से विभिन्न शैलियो मे प्रदर्शित किये जाते हैं। इनके सरक्षण मे भी जैनियो का भारी योग रहा है। जैनियो मे कई अच्छे लेखक भी हुए हैं जिन्होने पारम्परिक रगतो मे ख्यालो की उत्कृष्ट रचना की। ये ख्याल आज भी यहा प्रदर्शित होते हैं। तुर्रा-कलगी के ख्यालो के पीछे तो जैनियो ने सैकडो रुपयो की निछरावल तक करदी। सुप्रसिद्ध सत चौथमलजी महाराज ने ख्यालो की धुनो मे धार्मिक कथानको पर कई चरित्र लिखे जिन्हे वे अपने व्याख्यानों मे नियमित रूप से गा-सुना कर लोगो को आनन्दमग्न कर देते थे। उनके व्याख्यान मे जात-पात धर्म-कर्म का कोई भेदभाव नही रहता था। हजारो की तादाद मे सारा गाव उन्हें सुनने के लिए टूट पडता था।

उदयपुर मे ख्याल-तमाशो का एक समय बडा जोर था। जसवत सागर ने अपने उदयपुर वर्णन मे इनका बडे विस्तार से उल्लेख किया है। उसने यहा तक लिख दिया कि—

दूहा दसरावें दीवाली पैं, तमाशा गणगौर।
एसहु उदयापुर पछैं, ख्याल नही इन ठौर॥

इसी उदयपुर मे एक कवि देवीलाल हुए जिन्होने कई ख्यालो की सरस रचना की। इनका एक गुटका कुछ वर्ष पूर्व मेरे देखने मे आया था जो लगभग सौ वर्ष पुराना था। इसमे छोटे-छोटे कोई आठ ख्याल लिखे हुए थे। सौ-डेढ-सौ वर्ष पूर्व के देवीलाल की भाति आज भी उदयपुर मे एक देवीलाल और हैं—श्री देवीलाल सामर, जिन्होने न केवल ख्याल तमाशो की रचना ही की अपितु भारतीय लोक कलामडल की स्थापना कर न केवल राजस्थान मे न केवल हिन्दुस्तान मे वल्कि विदेशो तक मे यहा की लोककला को प्रतिष्ठित कर वेनजीर मिसाल कायम कर दी। यहा के कला विषयक कई प्रकाशन भी अपने क्षेत्र के अग्रणी सिद्ध हुए है। अब तो विश्वविद्यालयो मे पठन-पाठन मे भी इनका उपयोग होने लगा है।

लोक चित्रकारी

जैसा कि पहले कहा जा चुका है चित्रकारी के क्षेत्र मे जैनियो का जो योग रहा है, वह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कहा जा सकता है। पाप-पुण्य धर्म-अधर्म, सत्य-झूठ सुकर्म-कुकर्म सदाचार-दुराचार से सम्वन्धित सैकडो-हजारो प्रकार के शिक्षात्मक चित्रो द्वारा समाज को सदाचार तथा सुसस्कृतमय वनाने मे निश्चय ही निराली भूमिका निर्मित हुई है और इससे मनुष्य सरल तथा सयमी जीवन जीने की ओर प्रवृत्त हुआ फलत अधिकाधिक सेवा तथा धर्माचरण की ओर उसका तन, मन तथा धन लगा। यही कारण है कि जितने भी धार्मिक कर्म प्रतिष्ठान हमे देखने को मिलते हैं उनमे से अधिकाश जैनियो द्वारा निर्मित-प्रवर्तित हैं।

कुछ वर्ष पूर्व जैनियो द्वारा निर्मित मुझे चित्रमय एक ऐसा सापसीढी का खेल प्राप्त हुआ जिसमे सभी ७२ खडो के विविध नाम अकित किये हुए है। इनमे सवसे ऊपर गजलोक शिवलोक, बैकुठ तथा ब्रह्मलोक हैं। सीढियो से प्राप्त होने वाले लोको मे चन्द्रलोक, सूरजलोक इन्द्रलोक, अमरापुर तपलोक तथा दिगपाल लोक प्रमुख हैं। ये सीढिया भी हरिभक्ति, देवतपस्या पूजाव्रतधारी, माता-पिता की भक्ति, दयाभाव, परमारथ जैसे स्थान-खण्डो से प्रारम्भ होती है। सापो के काटने वाले खडो मे परनारी मिथुन, विश्वासघात, झूठ-चुगली गौ-हत्या, अधर्मी, मिथ्यावान, पशुहत्या, ब्रह्महत्या जैसे खण्ड हैं जिनसे स्पष्ट है कि यदि मानव में उपर्युक्त दुर्गुण हैं तो उसकी दुर्गति स्वाभाविक है और यह पतन साँप के द्वारा उसे ठेठ तलातल, रसातल, नरक, पलीतयोनी जैसे स्थानो पर पहुचाता है जहा मनुष्य को भारी यातनाओ की चक्की में पीसना पडता है। सापसीढी जैसे सैकडो चित्रो में मनुष्य के अच्छे-बुरे कर्म के अनुसार फल-चक्र मिलेंगे। पृथ्वी तथा अन्य ग्रहो के सम्वन्ध के भी अनेक चित्र मिलते है। तेरापथी साधुओ ने चित्रकारी तथा लिपिकारी में विशेष कौशल प्रकट किया है।

धर्मस्थानो का साहित्य :

कहने का तात्पर्य यह कि लोककला लोकसस्कृति और लोकसाहित्य का कोई क्षेत्र और कोई विधा ऐसी नही जिसे जैनियो का सरक्षण और सृजन में योग नही प्राप्त हुआ हो। जैनलेखको ने अपने-अपने समय की कथा, कहानियो एव गीतो को धर्म का वाना पहनाकर जो सरक्षण दिया उससे तत्कालीन समाज, सभ्यता एव सस्कृति का भी भलीप्रकार अध्ययन-अनुसधान किया जा सकता है। धर्मस्थानो में धार्मिक लोकसाहित्य की आज भी इतनी विधाए मिलती हैं कि उन्हे देख-सुनकर हमें चकित होना पडता है। इनमें से कुछ भजन तवन, ढालें ख्यावने, पालणे, लेखे, थोरे, गणधर,

विरहमान, सपने, बधावे, स्तुतिया, थोकडे, आख्यान, गरभचितारणीयें, चूदडियां, कूकडे, पटोदिये, बारहमासे, तिथिगीत, चौक, सरवरण, भामटडे गरबे, लावणिया आदि का सग्रह मैंने स्वय ने किया है। अब तक इस सग्रह की ओर हमारा घ्यान नही के बराबर गया है। इस ओर अधिक सग्रह और सधान की आवश्यकता है।

लोककला के विविध रूप :

जैनियो का कला-सस्कृति के क्षेत्र में ही नही अन्यान्य समाज, जाति तथा वर्ग विशेष के उन्नयन-विकास में भी भारी योग रहा है। भीलो के सुप्रसिद्ध गवरीनाट्य में अन्य भारत गाथाओ के साथ वेलावाणिया का भारत भी सुप्रसिद्ध है। इससे भी जैनियो की कलाभिरुचि और समाज सेवा का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। बाबा रामदेवजी के समय दला तथा लाखा वाणिया हुए जिनके लिखे कई भजन आज भी रामदेवजी की पूजक जातियो में सुनने को मिलते हैं। लोक सस्कृति के विशिष्ट स्वरूपो में *थापो, भूमि अलकरणो तथा मेंहदी माडनो के प्राचीन हस्त पन्ने भी जैनियों* के सग्रहो में विपुल रूप में मिलते हैं। लगभग ढाई सौ वर्ष पुराने त्यौहारो के चौक पूरने से सम्बन्धित बहुरगी माडनें, पलगो के पायो पर के रागरागनियो के लोकचित्र, दरियो पर विविध नृत्य मुद्राए तथा पशु-पक्षियो की बडी सुन्दर बुनावट भी मेरे देखने में आई है। प्रतिदिन के प्रयोग-उपयोग में आने वाली हर छोटी से छोटी चीज को लोककलात्मक अकन देकर उसे अधिकाधिक आकर्षक और नयन-सुखी रूप देने में शायद ही जैनियो की कोई समता कर सके।

भाषा और साहित्य

२७ जैन साहित्य की विशेषताएँ

०

डॉ० नरेन्द्र भानावत
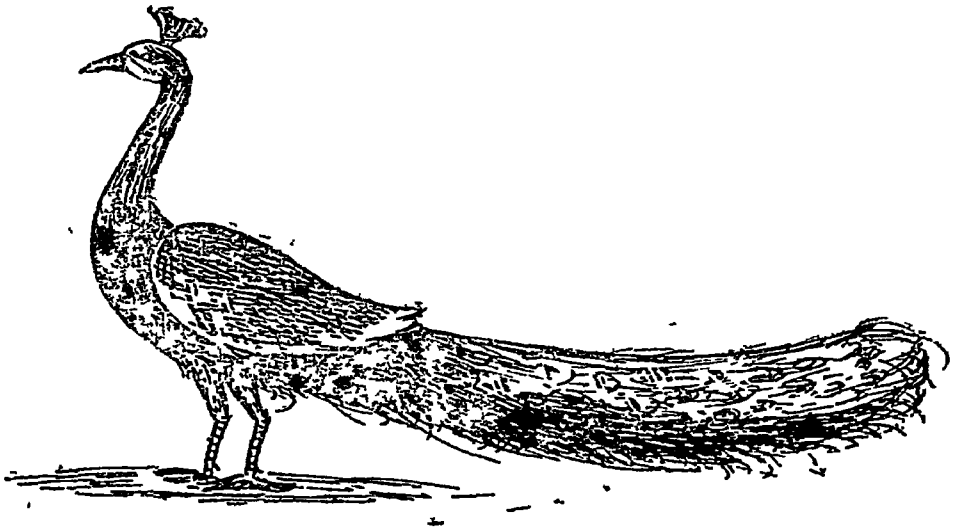
(१) विविध और विशाल

जैन साहित्य विविध और विशाल है। सामान्यतः यह माना जाता है कि जैन साहित्य मे निर्वेद भाव को ही अनेक रूपो और प्रकारो मे चित्रित किया गया है। यह सच है कि जैन साहित्य का मूल स्वर शान्त रसात्मक है पर जीवन के अन्य पक्षो और सार्वजनीन विषयो की ओर से उसने कभी मुख नही मोडा है। यही कारण है कि आपको जितना वैविध्य यहा मिलेगा, कदाचित अन्यत्र नही। एक ही कवि ने शृगार की पिचकारी भी छोडी है और भक्ति का राग भी अलापा है। वीरता का ओजपूर्ण वर्णन भी किया है और हृदय को विगलित कर देने वाली करुणा की वरसात भी की है। साहित्य के रचनात्मक पक्ष से आगे वढकर उसने उसके वोधात्मक पक्ष को भी सम्पन्न वनाया है। व्याकरण, ज्योतिष, वैद्यक, मन्त्र, तन्त्र इतिहास, भूगोल, दर्शन, राजनीति आदि वाग्मय के विविध अग उसकी प्रतिभा का स्पर्श कर चमक उठे हैं।

विषय की दृष्टि से सम्पूर्ण जैन साहित्य दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है (१) आगम साहित्य और (२) आगमेतर साहित्य। आगम साहित्य के दो प्रकार हैं। अर्थआगम और सूत्रआगम। तीर्थंकर भगवान् द्वारा उपदिष्ट वाणी अर्थागम है। तीर्थंकरो के प्रवचन के आधार पर गणधरो द्वारा रचित साहित्य सूत्रागम है। ये आगम आचार्यों के लिये अक्षय ज्ञानभण्डार होने से 'गणिपिटक' तथा सख्या मे वारह होने से 'द्वादशागी' नाम से भी अभिहित किये गये हैं। प्रेरणा की अपेक्षा मे ये अग-प्रविष्ट कहलाते हैं। द्वादशागी के अतिरिक्त जो अन्य उपाग, छेद, मूल और आवश्यक हैं वे पूर्वधर स्थविरो द्वारा रचे गये हैं और अनग प्रविष्ट कहलाते हैं।

आगमेतर साहित्य के रचयिता जैन आचार्य, विद्वान सन्त आदि हैं। इसमे गद्य और पद्य के माध्यम से जीवनोपयोगी सभी विषयो पर प्रकाश डाला गया है। यह वैविध्यपूर्ण जैन-साहित्य अत्यन्त विशाल है। हिन्दी के आदिकाल का अधिकाश भाग तो इसी से धनी है। यह साहित्य निर्माण की प्रक्रिया आज तक अनवरत रूप से जारी है। इसका प्रकाशन बहुत कम हुआ है। इसके प्रकाशन की अत्यन्त आवश्यकता है। ज्यो-ज्यो यह विद्वानो की दृष्टि मे आयेगा त्यो त्यो साहित्य के इतिहास पर नया प्रकाश पडता जायेगा।

(२) विभिन्न काव्य रूपो का निर्माण :

जैन साहित्य की यह विविधता विषय तक ही सीमित नही रही उसने रूप और शैली मे भी अपना कौशल प्रकट किया। आगमेतर साहित्य को अभिव्यक्ति की दृष्टि से दो भागो मे विभक्त कर सकते है (१) पद्य और (२) गद्य। ये विविध रूपो मे विकसित हुए। पद्य साहित्य के सौ से अधिक काव्य रूप देखने को मिलते है। सुविधा की दृष्टि से समस्त पद्य साहित्य के चार वर्ग किये जा सकते हैं। चरित काव्य, उत्सव काव्य, नीति काव्य और स्तुति काव्य। चरित काव्य मे सामान्यत· किसी धार्मिक पुरुष, तीर्थंकर आदि की कथा कही गई है। ये काव्य, रास, चौपाई, ढाल, पवाडा सधि, चचरी, प्रवन्ध, चरित, सम्बन्ध, आख्यानक, कथा आदि रूपो मे लिखे गये हैं। उत्सव काव्य विभिन्न पर्वों और ऋतु विशेष के बदलते हुए वातावरण के उल्लास और विनोद को चित्रित करते हैं। फागु, घमाल, बारहमासा, विवाहलो धवल, मगल आदि काव्य रूप इसी प्रकार के है। इनमे सामान्यतः लौकिक रीति नीति को माध्यम बनाकर उनके लोकोत्तर रूप को ध्वनित किया गया है। नीति-काव्य जीवनोपयोगी उपदेशो से सम्बन्धित है। इनमे सदाचारपालन, कषायत्याग, व्यसनत्याग, ब्रह्मचर्य, व्रत, पच्छक्खाण, भावना, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, दान, दया, सयम, आदि का माहात्म्य तथा प्रभाव वर्णित है। सवाद, कक्का, मातृका बावनी, छत्तीसी, कुलक, हीयाली आदि काव्य रूप इसी प्रकार के है। स्तुतिकाव्य महापुरुषो और तीर्थंकरो की स्तुति से सम्बन्धित हैं। स्तुति, स्तवन, स्तोत्र, सज्झाय, वीनती, नमस्कार, चौबीसी, बीसी आदि काव्यरूप स्तवनात्मक ही है।

स्थूल रूप से गद्य साहित्य के भी दो भाग किये जा सकते है। मौलिक गद्य सृजन और अमौलिक गद्य, टीका, अनुवाद आदि। मौलिक गद्य सृजन धार्मिक, ऐतिहासिक, कलात्मक आदि विविध रूपो मे मिलता है। धार्मिक गद्य मे सामान्यत कथात्मक और तात्विक गद्य के ही दर्शन होते हैं। ऐतिहासिक गद्य गुर्वावलि, पट्टावली, वशावलि, उत्पत्तिग्रन्थ, दफ्तर वही, टिप्पण आदि रूपो मे लिखा गया है। इन रूपो मे इतिहास-धर्म की पूरी-पूरी रक्षा करने का प्रयत्न किया गया है। आचार्यों आदि की प्रशस्ति यहा अवश्य है पर वह ऐतिहासिक तथ्यो की हत्या नही करती। कलात्मक गद्य वचनिका, दवावैत, वात, सिलोका, वर्णक, सस्मरण आदि रूपो मे लिखा गया है। अनुप्रासात्मक झकारमयी शैली और अन्तर्तुकात्मकता इस गद्य की अपनी विशेपता है। आगमो मे निहित दर्शन और तत्व को जनोपयोगी बनाने की दृष्टि से प्रारम्भ मे निर्युक्तिया और भाष्य लिखे गये। पर ये पद्य मे थे। बाद मे चलकर इन्ही पर चूर्णिया लिखी गई। ये गद्य मे थी। निर्युक्ति, भाष्य और चूर्णि साहित्य प्राकृत अथवा सस्कृत मे ही मिलता है। आगे चलकर टीकायुग आता है। ये टीकाए आगमो पर ही नही लिखी गई वरन् निर्युक्तियो और भाष्यो पर भी लिखी गई। ये टीकाए सामान्यत पुरानी हिन्दी मे लिखी मिलती है। इनके दो रूप विशेष प्रचलित हैं टव्वा और बालावबोध। टव्वा मे सक्षिप्त रूप है जिसमे शब्दो के अर्थ ऊपर, नीचे या पार्श्व मे लिख दिये जाते है। पर बालावबोध मे व्याख्यात्मक समीक्षा के दर्शन होते हैं। यहा निहित सिद्धान्त को कथा और दृष्टान्त दे-देकर इस प्रकार विवेचित किया जाता है कि बालक जैसा मन्द बुद्धि वाला भी उसके सार को ग्रहण कर सके। पद्य और गद्य के ये विभिन्न साहित्य रूप जैन-साहित्य की ही अपनी विशेपता है।

(३) लोकभाषा का प्रयोग ·

जैन-साहित्यकार सामान्यत साधक और सत रहे हैं। प्रवचन, व्याख्यान, लोकोपदेश उनके

दैनिक कार्यक्रम का अग रहा है। साहित्य उनके लिए विशुद्ध कला की वस्तु कभी नहीं रहा, वह धार्मिक प्रचार और साधना का अग बनकर आया है। यही कारण है कि अभिव्यक्ति मे सरलता, सुबोधता और सहजता का सदा आग्रह रहा है। भाषा विज्ञान का यह सामान्य नियम रहा है कि जब-जब साहित्यकारो ने किसी भाषाविशेष को व्याकरण के जटिल नियमो मे बाधा है तब-तब जन-साधारण ने सामान्य लोक-भाषा को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। जब वैदिक सस्कृत कठोर नियमो मे जकड दी गई तब प्राकृत लोकभाषा के रूप मे प्रचलित हुई। जैन-साहित्य के मूल-स्रोत सारे आगम प्राकृत भाषा मे ही रचे गये है। यह वह युग था जब इन जनपदीय भाषाओ का तिरस्कार किया जाता था और अधम पात्रो के मुख से सस्कृतादि नाटको मे प्राकृत के बोल उच्चरित करवाये जाते थे। पर महावीर ने इस बात की परवाह नही करते हुए अपनी अमरवाणी का उद्घोष प्राकृत के माध्यम से ही किया। जब प्राकृत को भी नियमो की कठोर कारा मे बन्दी बना दिया गया तब जैन-साहित्यकार अपनी बात अपभ्र श मे कहने लगे। जब अपभ्र श से हिन्दी, राज-स्थानी, गुजराती आदि भाषाए विकसित हुई तो जैन-साहित्यकार अपनी बात इन्ही जनपदीय भाषाओ मे सहज भाव से कहने लगे। यह भाषागत उदारता उनकी प्रतिभा पर आवरण नही डालती वरन् भाषाओ के ऐतिहासिक विकासक्रम को सुरक्षित रखे हुए है।

(४) समन्वयात्मक सहज-सरल शैली :

जैन-साहित्यकार साहित्य को कलाबाजी नही समझते। वे उसे अकृत्रिम रूप से हृदय को प्रभावित करने वाली आनन्दमयी कला के रूप मे देखते है। जहा उन्होने लोक-भाषा का प्रयोग किया वहा भाषा को अलकृत करने वाले सारे उपकरण ही लोक जगत् से ही चुने है। जैनेतर साहित्यकारो ने (विशेष कर चारणी शैली मे लिखित साहित्य) जहा भाषा को विशेष प्रकार के शब्द चयन द्वारा, विशेष प्रकार के अनुप्रास प्रयोग (वयण सगाई आदि) द्वारा और विशेष प्रकार के छन्दानुबन्ध द्वारा एक विशेष प्रकार का आभिजात्य गौरव और रूप दिया है वहा जैन-साहित्यकार भाषा को अपने प्रकृत रूप मे ही प्रभावशाली और प्रेषणीय बना सके है। यहा अलकारो के लिए आग्रह नहीं। वे अपने आप परम्परा से युगानुकूल चले आ रहे है। शब्दो मे अपरिचित-सा अकेलापन नही, उनमे पारिवारिक सम्बन्धो का सा उल्लास है। छन्दो मे तो इतना वैविध्य है कि सभी धर्मो, परम्पराओ और रीति-रिवाजो से वे सीधे खिचे चले आ रहे है। ढालो के रूप मे जो देशिया अपनाई गई है उनमे कभी तो "मोहन मुरली वागे छै" और कभी 'गोकुल नी गोवालणी मही वेचवा चाली'। लोकोक्तियो और मुहावरो का जो प्रयोग किया गया है, वे शास्त्रीय कम और लौकिक अधिक है। पर इस विश्लेषण से यह न समझा जाये कि उनका काव्यशास्त्रीय ज्ञान अपूर्ण था या बिलकुल ही नही था। ऐसे कवि भी जैन जगत् मे हो गये हैं जो शास्त्रीय परम्परा मे सर्वोच्च ठहरते है, आलकारिक चमत्कारिता, शब्दक्रीडा और छन्दशास्त्रीय मर्यादा पालन में जो होड लेते प्रतीत होते है। पर यह प्रवृत्ति जैन साहित्य की सामान्य वृत्ति नही है। शैलीगत समन्वय भावना के दर्शन वहा स्पष्ट हो जाते है, जहा वे नायक को मोहन और नायिका को गोपी कह देते है। लगता है जिस समय वैष्णव धर्म और वैष्णव साहित्य का अत्यन्त व्यापक प्रचार था, उस समय जन-साधारण को अपने धर्म की ओर आकर्षित करने के लिए जैन साहित्यकारो ने अपने साहित्य मे कृष्ण, राधा. गोपी, गोप, गोकुल, मुरली, यशोदा, जमुना, आदि शब्दो को स्थान दे दिया। विभिन्न देशिया तो लगभग वैष्णव प्रभाव को ही सूचित करती है।

(५) नायक-नायिका की परिकल्पना ·

जैन-साहित्य मे जो नायक आये है उनके दो रूप है मूर्त्त और अमूर्त्त । मूर्त्त नायक मानव है । अमूर्त्त नायक मनोवृत्ति विशेप । मूर्त्त नायक साधारण मानव कम, असाधारण मानव अधिक है । यह असाधारणता आरोपित नही, अर्जित है । अपने पुरुषार्थ, शक्ति और साधना के बल पर ही ये साधारण मानव विशिष्ट श्रेणी मे पहुच गये है । ये विशिष्ट श्रेणी के लोग त्रेसठशलाका पुरुष के नाम से प्रसिद्ध है । इनमे तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव और प्रतिवासुदेव सम्मिलित है । इनके अतिरिक्त सोलह सतिया, स्थूलिभद्र, जम्बूस्वामी, सुदर्शन, गजसुकुमाल, श्रीपाल, धन्ना, आपाढ-भूति, शालिभद्र, आदि आध्यात्म पुरुष भी आलेख्य योग्य है । ये पात्र सामान्यत राजपुत्र या कुलीन वशोत्पन्न होते है । सासारिक भोगोपभोग की सभी वस्तुए इन्हे सुलभ होती है । पर ये सस्कारवश या किसी निमित्त कारण से विरक्त हो जाते है और प्रवृज्या अगीकार कर लेते है । दीक्षित होने के बाद इन पर मुसीबतो के पहाड टूटते है । पूर्व जन्म के कर्मोदय कभी उपसर्ग बनकर, कभी परीषह बनकर सामने आते है । कभी-कभी देवता रूप धारण कर इनकी परीक्षा लेते है, इन्हें अपार कष्ट दिया जाता है पर ये अपनी साधना से विचलित नही होते । परीक्षा के कठोर आघात इनकी आत्मा को और अधिक मजबूत, इनकी साधना को और अधिक स्वर्णिम तथा इनके परिणामो को और अधिक उच्च बना देते है । अन्ततोगत्वा सारे उपसर्ग शान्त होते हैं, वेशधारी देव परास्त होकर इन के चरणो मे गिर पडते हैं और पुष्पवृष्टि कर इनके गौरव मे चार चाद लगा देते है । ये पात्र केवल-ज्ञान के अधिकारी बनते है, लोक-कल्याण के लिए निकल पडते है और अन्तत परमपद मोक्ष की प्राप्ति कर अपनी साधना का नवनीत पा लेते है । प्रतिनायक परास्त होते है पर अन्त तक दुष्ट बन-कर नही रहते । उनके जीवन मे भी परिवर्तन आता है और वे नायक के व्यक्तित्व की किरण से सस्पर्श पा अपनी आत्मा का कल्याण कर लेते हैं ।

अमूर्त्त नायक मे 'जीव' या 'चेतन' को गिना जा सकता है तथा नायिका 'सुमति' को । अमूर्त्त प्रतिनायको मे 'मोह' सबसे बलशाली है और प्रतिनायिका मे 'कुमति' को रख सकते है । सामान्यत रूपक के काव्यो मे ही अमूर्त्त नायक-नायिका की परिकल्पना की गई है । इनमे जीव को राजा बनाकर मोहरूपी शत्रु के साथ युद्ध करने का भाव खडा किया जाता है और अन्तत चेतन राजा अपने आन्तरिक गुणो से शत्रु-सेना को परास्त कर मुक्ति-रूपी गढ का अधिपति बन बैठता है । सुमति कुमति का द्वन्द्व भी युद्ध-रूपक ही है । यहा पात्रो की मन स्थितियो का सघर्ष न दिखाकर सद्-असद् वृत्तियो का स्थूल सघर्षमात्र दिखाया गया है । अन्तत असद् प्रवृत्तिया पराजित होती है और सद् प्रवृत्तिया फलती-फूलती हैं।

(६) सुखान्त-भावना .

जैन-साहित्य के मूल मे आदर्शवादिता है । वह सघर्ष मे नही, मगल मे विश्वास करता है । यहा नायक का अन्त मृत्यु मे नही होता, वह किसी से पराजित नही होता । यहा कथाओ का निर्माण ही धार्मिक दृष्टि से किया गया है । इसलिए प्रत्येक नायक को विषम परिस्थितियो मे डालकर अपने आचार, पुण्य, दान, दया, ब्रह्मचर्य आदि गुणो के कारण अन्त मे हसते हुए दिखाया गया है । यही कारण है कि अपरिग्रही, वैरागी, ससारत्यागी, भोगोपरत, नायक को कथा के अन्त मे परमपद दिला-कर बडा वैभवशाली, अनन्तबल, अनतज्ञान, अनन्तशक्ति और अनन्त सौन्दर्य का धनी बताया है ।

लगता है कि यहा सामान्य रूप से प्रत्येक जैन कवि ने इन बडे-बडे भव्य रूपको का सहारा लिया है। तात्विक-सिद्धान्तो को लौकिक व्यवहारो के साथ 'फिट' बैठाकर ये कवि गूढ से गूढ दार्शनिक भाव को बडी सरलता के साथ समझा सके है। निर्गुण सन्त कवियो की तरह विरोधमूलक वैचित्र्य और उलटबाँसियो के दर्शन यहा नही के बराबर है। फिर भी इतना अवश्य है कि कुछ कवियो ने चित्रालकार काव्य लिखकर अपनी चमत्कारप्रियता का परिचय दिया है। मयूरबन्ध, खड्गबन्ध, छतरीबन्ध, धनुषबन्ध, हस्तीबन्ध, भुजाबन्ध, स्वस्तिकबन्ध, आदि काव्य प्रकार इस सन्दर्भ मे द्रष्टव्य है।

(१०) शान्तरस की प्रधानता

जैन-साहित्य मे यो तो सभी रस यथास्थान अभिव्यजित हुए हैं पर अगीरस शान्तरस ही है। जैन धर्म की मूल भावना आध्यात्मप्रधान है। वह ससार से विरक्ति और मुक्ति से अनुरक्ति की प्रेरणा देती है। शान्तरस का स्थायी भाव निर्वेद है। यही कारण है कि प्राय प्रत्येक कथा-काव्य का अन्त शान्त रसात्मक ही है। इतना सब कुछ होते हुए भी जैन-साहित्य मे शृगार रस के बडे भावपूर्ण स्थल और मार्मिक प्रसग भी देखने को मिलते हैं। विशेष कर विप्रलभ शृगार के जो चित्र हैं वे बडे मर्मस्पर्शी और हृदय को विदीर्ण करने वाले है। मिलन के राशि-राशि चित्र वहा देखने को मिलते है जहा कवि 'सयमश्री' के विवाह की रचना करता है। यहा जो शृगार है वह रीति-कालीन कवियो के भावसौन्दर्य से तुलना मे किसी प्रकार कम नही है। पर यह स्मरणीय है कि यहा शृगार शान्त रस का सहायक बनकर ही आता है। इससे नायक विरत ही होता है। इस शृगार-वर्णन मे मन को सुलाने वाली मादकता नही, वरन् आत्मा को जागृत करने वाली मनुहार है। शृगार की यह प्रतिक्रिया आवेगमयी बनकर नायक को शान्तरस के समुद्र की गहराई मे बहुत दूर तक पैठा देती है।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि जैन-साहित्य की यह विचारधारा केवलमात्र आदर्शवाद कहकर टाली नही जा सकती। आज के इस भौतिक युग ने वैज्ञानिक प्रगति द्वारा जहा चरण को गति दी है, वहा दिशा नही, जहा मस्तिष्क को ज्ञान दिया है, वहा विवेक नही, जहा मन को शक्ति दी है वहा भक्ति नही। ऐसे समय मे इस साहित्य के चिन्तन-मनन द्वारा विषमता मे समता स्थापित करने की प्रक्रिया आरम्भ की जा सकती है।

२८ | प्राकृत जैन साहित्य

○

डॉ० के० ऋषभचन्द्र

उपलब्ध सामग्री के अनुसार आठवी शताब्दी से राजस्थान में प्राकृत साहित्य सर्जन के प्रमाण मिलते हैं। यह प्रवृत्ति सत्रहवी शताब्दी तक चलती रही और ग्यारहवी से तेरहवी शताब्दी का काल समृद्ध रहा।

एक परम्परा के अनुसार ऐसा कहा जाता है कि वीरसेनाचार्य ने चित्तौड में ही 'षट्खडागम' और 'कषाय-प्राभृत' सीखा था। उनके बाद साहित्य सृजन में जिनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा वे है हरिभद्रसूरि, उद्योतनसूरि, जिनेश्वरसूरि, जिनदत्तसूरि, जिनप्रभसूरि इत्यादि। प्राकृत साहित्यकारो में श्वेताम्बरो की सख्या दिगम्बरो से काफी अधिक रही है। इन जैन साहित्यकारो में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वणिक भी रहे है परन्तु ब्राह्मणो की सख्या अधिक रही है। वणिको में श्रीमाली और पोरवाल जाति का भी नाम आता है। साधुओ ने ही साहित्य रचना में मुख्य योगदान दिया है फिर भी एक दो गृहस्थो के नाम भी आते हैं। महिलाओ में गुण समृद्धि महत्तरा का नाम उल्लेखनीय है।

जिन-जिन स्थलो का प्राकृत साहित्य सर्जन से सम्बन्ध है उनमें जालौर और चित्तौड प्रमुख है। अन्य स्थलो के नाम इस प्रकार दिये जा सकते है—जैसलमेर, बीकानेर, साचौर, नागौर, कोटा, चन्द्रावती, नारनोल, ब्राह्मणवाडा, भिवाणा, कुंभेरगढ, डीडवाणा, मेडता, नरभ्र, मरुपुर, साभर, लाडनू, फलोदी, अहिच्छत्र (नागौर), सागवाडा, छत्रपल्ली, कुचेरा इत्यादि।

वर्ण्य विषय

जिन-जिन मुख्य विषयो पर लिखा गया वे है—जैन दर्शन, जैन धर्म, जैन आचार और जैन कथा साहित्य। उनका विस्तार से विषय-भेद इस प्रकार किया जा सकता है—दर्शन, योग, सम्यक्त्व, आगम, साधु-आचार, उनकी दैनिक चर्या और कर्तव्य, श्रावक आचार, दैनिक विधि और कर्तव्य, धर्म, कर्म, भूगोल, ज्योतिष, शकुन, व्यापार विषयक भविष्य, पूजा पाठ, मन्दिर-प्रतिमा निर्माण, तीर्थ, तिथि, पर्व, स्तुति इत्यादि। कथा साहित्य तो बडे ही विपुल परिमाण में रचा गया। इसमें धर्मोपदेश और लोकोपदेश मुख्य तत्त्व रहे है। इस साहित्य मे धार्मिक कथाओ के अतिरिक्त अनेक लौकिक कथाए भी मिलती है। व्यग्यपूर्ण कथाओ का भी अभाव नही है। चरित और प्रणय कथाओ का सर्जन भी पर्याप्त हुआ है। प्रेमकथाओ मे साहित्यिक और काव्य पक्ष उभर आया है। उदाहरण

के लिए समराइच्च कहा कुवलयमाला और सुरसुन्दरी चरित उल्लेखनीय हैं। इसके अलावा व्याकरण और नाटक साहित्य की भी रचना हुई है।

प्रमुख साहित्यकार

१. हरिभद्रसूरि —वे एक युगप्रधान व्यक्ति थे। इनका समय आठवी शताब्दी माना जाता है। वे चित्तौड के रहने वाले थे। उनका जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ था और वे राजपुरोहित थे। वे आचार्य जिनभटसूरि के शिष्य थे और याकिनी महत्तरा के धर्म पुत्र थे। 'विरहाक' उनका उपनाम था। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्हे अनेक दर्शनो का ज्ञान था और उन्होने साहित्य के अनेक क्षेत्रो मे कार्य किया। वे उद्योतनसूरि के दार्शनिक गुरु थे। उन्होने प्राकृत और सस्कृत मे अनेक ग्रन्थो की रचना की। जिस तरह वे एक उत्तम दार्शनिक थे, उसी प्रकार एक कुशल कथाकार भी थे। उन्होने जैन धर्म के लिए जो कार्य किया, वह चिरस्मरणीय रहेगा। उनका विहार क्षेत्र चित्तौड के आस-पास राजस्थान और गुजरात का प्रदेश रहा है। उन्होने भिन्नलाल मे पोरवाड जाति को जैन बनाया था। उनकी प्राकृत रचनाए दर्शन, धर्म, आचार, कथासाहित्य-रूपकात्मक, व्यग्यात्मक और उपदेशात्मक, भूगोल, ज्योतिष, आगम इत्यादि से सबधित अनेक विषयो पर उपलब्ध होती हैं जिनका सक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है—

धर्म सग्रहणी —इस ग्रथ मे धर्म का स्वरूप निक्षेपो द्वारा वर्णित है। इसमे चार्वाक दर्शन का खडन भी है। जीव, ज्ञान, कर्म आदि पर अनेकान्त दृष्टि से विचार किया गया है और एकान्त-नित्यवाद, क्षणिकवाद और अज्ञानवाद का खडन किया गया है।

योगशतक —निश्चय योग और व्यवहार योग को समझाते हुए बतलाया गया है कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र रूपी मोक्ष है जिसको व्यवहार योग अर्थात् सम्यग्चारित्र से प्राप्त किया जाता है। पातजलयोग शास्त्र की तुलना मे इसका अध्ययन करने योग्य है।

सम्यक्त्वसप्तति —इसमे सम्यक्त्व का स्वरूप समझाया गया है। आत्मा के लक्षण और अस्तित्व पर चर्चा है।

श्रावक प्रज्ञप्ति :—इसमे श्रावक धर्म का विवेचन है और यह सर्वप्रथम स्वतत्र रचना है। कोई इसे उमास्वामिकृत बतलाते हैं।

श्रावक धर्म विधि '—इसमे भी श्रावकों की दैनिक विधि का प्रतिपादन है और सम्यक्त्व-मिथ्यात्व पर वर्णन है।

पचवस्तु प्रकरण :—इसमे साधुओ के आचार का वर्णन है। दीक्षा की विधि, दिनचर्या, गच्छाचार, अनुज्ञा और सलेखना इसके विषय हैं।

पचाशक प्रकरण —इसमे ५०-५० गाथाओ के १९ विभाग हैं जिनमें श्रावक और मुनि आचार सबधी प्राय सभी विषयो का समावेश हो गया है।

सबोध प्रकरण —इसमे सच्चे देव और सच्चे गुरु के लक्षण बतलाये गये हैं। उस समय मे आचार की शिथिलता आ जाने के कारण कुगुरुओ और उनके दूषणो पर व्यग्यात्मक प्रहार किया गया है।

विंशतिविंशिका —इसमें दर्शन, धर्म, आचार से सम्बन्धित २० विंशिकाए हैं। इसका ही एक भाग योगविंशिका है जिसमें योगशुद्धि का विवेचन किया गया है।

समराइच्च कहा —यह धर्म कथाकार एक महान् ग्रन्थ है। इसमें कषायो के परिणाम बतलाये गये है। इसमें अवान्तर कथाए भी है। पूर्वजन्म, कर्म, निदान, व्रत और धर्मोपदेश से परिव्याप्त है। गद्यात्मक ग्रन्थ होते हुए भी अनेक स्थानो पर पद्यात्मक अ श जडे हुए हैं। कही-कही पर काव्यात्मक वर्णन भी मिलते है। यह अपने ढग का एक अपूर्व ग्रन्थ है जो उपदेशात्मक उपन्यास के रूप मे प्रथम ग्रन्थ है।

धूर्ताख्यान —इसमें धूर्तों के पांच आख्यान हैं। इसमे अतिरजित पौराणिक कथाओ पर विनोदात्मक ढग से व्यग्य किया गया है।

उपदेशपद :—यह कथासाहित्य का अनुपम भडार है। इसमे आत्मोन्नति के उपदेश, लौकिक कथायें, दृष्टान्त, उदाहरण, रूपक, सवाद, सुभाषित और उक्तिया देखने को मिलती हैं।

लघुसघयणी :—इसका दूसरा नाम जम्बूद्वीप सग्रहणी है। जिसमें जम्बूद्वीप का वर्णन है परन्तु अनुपलब्ध है।

लग्न शुद्धि —यह एक ज्योतिष ग्रन्थ है। इसका दूसरा नाम लग्नकुण्डलिका है।

आगमिक टीकाएँ :—प्रज्ञापना, दशवैकालिक, अनुयोग द्वार, नन्दी सूत्र और आवश्यक की टीकाओ में जो कथा भाग है उसे प्राकृत में सुरक्षित रखा है।

महानिशीथ सूत्र :—उन्होने महानिशीथ सूत्र का सशोधन भी किया था।

२. उद्योतनसूरि —ये क्षत्रिय घराने के थे। इनके पिता का नाम वटेश्वर और प्रपिता का नाम उद्योतन था। वे श्वेताम्बर थे और तत्त्वाचार्य के शिष्य थे। उन्होने आचार्य वीरभद्र से सिद्धान्त में और आचार्य हरिभद्र से प्रमाण और न्याय में शिक्षा प्राप्त की थी। उनका अपरनाम दाक्षिण्य-चिह्न था। उन्होने जालौर (जावालिपुर) मे अपना महा कथा ग्रन्थ 'कुवलयमाला' ई स ७७९ मे पूरा किया था। यह काव्यात्मक शैली मे लिखा गया एक चम्पू ग्रन्थ है। इसमे कुवलयचन्द्र और कुवलयमाला की प्रणय कथा है। इस मुख्य कथा के अतिरिक्त इसमे करीब २५ अवान्तर कथाओ का समावेश हुआ है। क्रोध, मान, माया, लोभ और मोह के दुष्परिणामो को समझाने के लिए पाच विशेष पात्रो का सृजन किया गया है। इसमे कही-कही पर अपभ्र श, पैशाची और सस्कृत भाषा का प्रयोग हुआ है। उस समय मे प्रचलित भारत की अनेक भाषाओ के नमूने इसमे विद्यमान हैं। सास्कृतिक सामग्री का यह अद्वितीय भण्डार है।

३ जयसिंहसूरि .—ये श्वेताम्बर थे और कृष्णमुनि के शिष्य थे। उन्होंने ई० स० ८५८ मे नागौर मे 'धर्मोपदेशमाला विवरण, की रचना की थी। उनकी अन्य रचना 'श्री नेमिनाथ चरित' है। धर्मोपदेशमाला विवरण मे ९८ गाथायें हैं और इन शिक्षाप्रद गाथाओ पर गद्य मे १५० से भी अधिक कथाए कही गई हैं। बीच मे कही-कही पर सस्कृत का भी उपयोग हुआ है। इन कथाओ के द्वारा दान, शील, तप, अहिंसा, सत्य, सयम इत्यादि की महिमा बतायी गयी है।

४. पद्मनन्दि :—ये दिगम्बर थे और बालनन्दि के शिष्य थे। उन्होने बारा (जिला कोटा) मे 'जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सग्रह' की रचना की थी। उनका समय १०वी-११वी शताब्दी माना जाता है। इस ग्रन्थ मे २३८९ गाथाए हैं। इसमे जम्बूद्वीप का जैन भूगोल दिया गया है। 'त्रिलोकप्रज्ञप्ति' और 'त्रिलोकसार' का प्रभाव इस पर स्पष्ट है। इसमे भ० महावीर से आचार्य परम्परा भी दी गयी है। उनकी अन्य रचना 'धर्मरसायण' है जिसमे १९३ गाथाओ मे धर्म का प्रतिपादन किया गया है।

५. दुर्गदेव —ये दिगम्बर थे और वे सयम (सजय) देव के शिष्य थे। उन्होने सन् १०३२ में कुभनगर (कुभेरगढ–भरतपुर) मे 'रिष्ट-समुच्चय' की रचना की थी। इसमे २६१ शौरसेनी गाथाए हैं। इसका दूसरा नाम 'कालज्ञान' है। इसमे मृत्यु-सूचक रिष्टो का वर्णन है जो शरीर, घटना, प्रकृति, स्वप्न आदि से सम्बन्धित सकेतो और सख्या तथा अक्षरो की आकृति के आधार पर भविष्यवाणी करते हैं। इस ग्रन्थ का आधार 'मरणकडिका' बतलाया गया है। यह ग्रन्थ अपने आप मे एक अनोखी रचना है। इनका दूसरा ग्रन्थ 'अर्घकाण्ड' है जिसके आधार से व्यापारी इस बात का पता लगा सकते हैं कि कौनसी वस्तु सस्ती होगी और कौनसी वस्तु महगी होगी। इसमे १४९ शौरसेनी गाथाए हैं।

६ बुद्धिसागरसूरि —ये जिनेश्वरसूरि के भाई और वर्धमानसूरि के शिष्य थे। उन्होने सन् १०२३ मे जालोर मे प्राकृत और सस्कृत भाषा पर व्याकरण लिखा था। उस ग्रन्थ का नाम 'पचग्रन्थी' अथवा 'बुद्धिसागर व्याकरण' था।

७. जिनेश्वरसूरि —ये ब्राह्मण कुल के थे और मध्यदेश (बनारस) के रहने वाले थे। वे वर्धमानसूरि के शिष्य थे जिन्होने खरतरगच्छ की स्थापना की थी। उन्होने डीडवाणा मे सन् १०५२ मे 'कथानक-कोष प्रकरण' की रचना की थी। इसमे ३० मूल गाथाए हैं और गद्यात्मकवृत्ति मे करीब ४० कथाए हैं। इसमे वैयावच्य, दान, पूजा इत्यादि पर कथाए लिखी गयी है। जगह-जगह सस्कृत और अपभ्रश गाथाए भी मिलती है। उनकी दूसरी कृति 'पचलिंगीप्रकरण' है जिसमे १०१ गाथाए हैं। इसकी रचना जालौर में की गयी थी। इसमें सम्यकत्व और उसके पाच गुण प्रशम, सवेग, निर्वेद, अनुकम्पा और आस्था पर विचार किया गया है। उनका एक अन्य ग्रन्थ 'षट्स्थान प्रकरण' है। इसमें १०३ गाथाए हैं और यह श्रावक के षडावश्यको पर लिखा गया है।

८. धनेश्वर —ये जिनेश्वरसूरि के शिष्य थे। उन्होने चन्द्रावती (आबू) में सन् १०३८ में 'सुरसुदरीचरित' की रचना की थी। १६ परिच्छेदो में विभक्त यह एक प्रेम कथा है। इसमें यत्र-तत्र अपभ्रश और ग्राम्यभाषा के शब्द मिलते हैं। इसमें अनेक अवान्तर कथाए भी हैं और यह काव्य-गुणो से सिंचित है। कुल मिलाकर ४००० गाथाए इसमें आती हैं।

९ जिनचन्द्रसूरि —ये जिनेश्वरसूरि के शिष्य थे। उन्होने सन् १०६८ में 'सवेगरगशाला' की रचना की थी। यह उपदेशात्मक कथा ग्रन्थ है। इसमे १००५३ गाथाए है। इसका मुख्य रस शान्त है और सवेग-जनक कथाएं कही गयी हैं।

१०. जिनवल्लभसूरि —ये कुर्चपुर (कुचेरा–मारवाड) की गादी के अध्यक्ष आचार्य जिनचन्द्र के शिष्य थे। उन्हें चित्तोड मे आचार्य पद से सुशोभित किया गया था। उन्होंने अपने कुछ ग्रन्थ चित्तोड, नागौर, नरवर और मरुपुर के जिनालयो मे उत्कीर्ण करवाये थे। उन्होंने 'सवेगरगशाला'

का सशोधन किया तथा 'पिंडविशुद्धि' की १०३ गाथाओ में रचना की। उनकी दूसरी रचना 'द्वादशकुलक' है जिसमे सम्यक्त्व, मिथ्यात्व, सम्यग्ज्ञान और कपाय आदि विषयो पर लिखा गया है। इनका ग्रन्थ ग्रन्थ 'सूक्ष्मार्थ सिद्धान्त विचार सार' अथवा 'सार्धशतक' कर्म-विषयक है। 'आगमिक वस्तु विचार सार प्रकरण', प्रौषधविधि प्रकरण' 'भावारिवारणस्तोत्र' और 'अजितशान्तिस्तव' इनकी अन्य रचनाए मानी जाती हैं। इनका समय ११वी-१२वी शताब्दी माना जाता है।

११. जिनदत्तसूरि :—ये मारवाड के कल्पवृक्ष माने जाते हैं। लोक ख्याति के कारण उन्हें 'दादा' की पदवी से सुशोभित किया गया था। वे जिनवल्लभसूरि के पट्टधर थे। चित्तौड में सन् १११२ मे उन्हें आचार्य पद मिला था। उनका स्वर्गवास सन् ११५४ मे अजमेर मे हुआ। वोकानेर, नागौर, जालौर और नारनोल इनके विशेष विहार क्षेत्र थे। उनके 'गणधर सार्धशतक' में प्रसिद्ध आचार्यों के जीवन-चरित मिलते हैं। उनका 'सुगुरुपारनन्त्र्यम्' स्तुत्यात्मक ग्रन्थ है। उनके अन्य ग्रन्थ 'चैत्यवदनकुलक', 'सदेहदोहावली', 'गणधर सप्तति', 'सर्वाधिष्ठायिस्तोत्र', 'विघ्नविनाशि स्तोत्र', इत्यादि हैं।

१२. हेमचन्द्र —ये अभयदेवसूरि के शिष्य थे। उन्होने सन् १११३ मे मेडता और छत्रपल्ली मे 'भवभावना' नामक ग्रन्थ लिखा था। ५३१ गाथाओ मे यह बारह भावनाओ पर लिखा गया है। सस्कृत गद्य और अपभ्र श पद्य भी इसमें मिलते हैं। पद्यात्मक टीका मे अनेक धार्मिक और लौकिक कथाए आती हैं। 'उपदेशमाला प्रकरण' उनका दूसरी ५०५ गाथाओ की रचना है जिसमें दान, शील, तप इत्यादि से कर्मों की निर्जरा समझायी गयी हैं।

१३. सिंहकवि ·—ऐसा उल्लेख है कि सिंहकवि ने १२वी शताब्दी मे बमणवाड (ब्राह्मण-वाट) सिरोही मे 'पज्जुण्णकहा' लिखी थी।

१४. जिनचन्द्रसूरि :—इनका जन्म विक्रमपुर (जैसलमेर) मे सन् ११०४ में हुआ था। ये जिनदत्तसूरि के शिष्य थे। उनकी रचना 'व्यवस्थाकुलक' में ७४ गाथाए हैं जिसमें साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविकाओ के कर्तव्य और गुरु के आदर के बारे में लिखा गया है।

१५. नेमिचन्द्र भण्डारी ·—ये मरुकोट के रहने वाले थे। ये जिनपतिसूरि के श्रावक थे। उनका समय १२वीं-१३वी शताब्दी माना जाता है। उन्होने 'षष्टिशतक' की रचना की जिसमें सुगुरु, सम्यक्त्व, सुभक्त, जिनपूजा इत्यादि का वर्णन है।

१६ यशश्चन्द्र :—ये शाकम्भरी (साभर) के वणिक पद्मचन्द्र के पुत्र थे। उन्होंने 'मुद्रित कुमुदचन्द्र' नाटक सस्कृत में १२वीं शताब्दी में लिखा था। उस नाटक में प्राकृत भाषी पात्र भी हैं। देवसूरि और कुमुदचन्द्र के बीच में हुआ वाद इसका विषय है।

१७ जिनप्रभसूरि —ये श्रीमाल वश के थे। उनके गुरु जिनसिंहसूरि लाडनू के श्रीमाल वश के थे। उन्होने अहिछत्रा, सत्यपुर (साचोर), फलोदी इत्यादि में विहार करके 'विविधतीर्थकल्प' नामक ग्रन्थ सस्कृत-प्राकृत में सन् १३३२ में लिखा था। इसमें स्तुति, जीवन-चरित, कथा और तीर्थ के विषय हैं। यह गद्य पद्यात्मक ऐतिहासिक प्रबन्ध है। 'विधिमार्गप्रपा' उनका दूसरा सस्कृत-प्राकृत गद्य-पद्य ग्रन्थ हैं। उनके अन्य लघुग्रन्थ 'तीर्थयात्रास्तोत्र', 'स्तुतित्रोटक' और 'देवपूजाविधि हैं। इन्हें किढवाणा में सन् १२८४ में आचार्य-पद मिला था।

१८. जिनकुशलसूरि :—ये सिवाणा के थे और जिनचन्द्रसूरि के शिष्य थे। उन्हे सन् १३२० मे नागौर मे वाचनाचार्य बनाया गया था। उन्होने 'जिनचद्रसूरि चतु सप्ततिका' की ७४ गाथाओ में रचना की थी। यह एक ऐतिहासिक चरित ग्रन्थ है।

१९. गुणसमृद्धिमहत्तरा :—राजस्थान के प्राकृत साहित्यकारो में यदि किसी महिला (साध्वी) का नाम मिलता है तो मात्र गुणसमृद्धिमहत्तरा का है। वे जिनचन्द्रसूरि की शिष्या थी। उन्होने ५०४ गाथाओ मे 'अजनासुन्दरी चरित' सन् १३५० मे जैसलमेर में लिखा था।

२०. जिनहर्षगणि :—इन्होने १५वी शताब्दी में चित्तौड में 'रत्नशेखरी कथा' गद्य-पद्य मे लिखी थी। इसमें सस्कृत अपभ्र श पद्य भी मिलते है। इस कथा में तिथि और पर्वों के अवसर पर किये गये धार्मिक अनुष्ठान का फल बतलाया गया है। यह एक राजकुमार और राजकुमारी की प्रणय कथा है।

२१ हीरकलश :—इन्होने नागौर में सन् १५६४ में 'ज्योतिषसार' नामक प्राकृत ग्रन्थ का उद्धार किया था।

२२. भट्टारक शुभचन्द्र :—ये दिगम्बर थे और सागवाडा के भट्टारक थे। वे जिनभूषण के शिष्य थे और बलात्कारगण के थे। वे बडे विद्वान् थे। उन्होने 'शब्दचितामणि' नामक प्राकृत व्याकरण लिखा। 'अगपण्णत्ति' उनका दूसरा ग्रन्थ है जिसमें अग, पूर्व और आगमिक साहित्य का विवरण है। उनका समय १६वी शताब्दी माना जाता है।

२३. समयसुन्दर :—इनका जन्म साचौर में हुआ था। वे पोरवाल थे। वे गुजराती-राजस्थानी के भाषा-कवि थे। उन्होने सन् १६३० में 'गाथा सहस्री' की रचना की थी। इसमें ८५५ उपदेशात्मक धार्मिक गाथाओ का सग्रह प्राचीन जैन-अजैन साहित्य से किया गया है। उन्होने अपनी रचनाए मेडता और जालौर में की थी।

ज्ञान भण्डारो का योग :

राजस्थान के ज्ञान भण्डारो ने जैन शास्त्र और जैन साहित्य को सुरक्षित रखने मे महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। वहा पर अनेक प्राकृत रचनाए भी सुरक्षित रही हैं। कुछ रचनाए तो अन्य स्थल पर अप्राप्य रही हैं और कुछ अप्रकाशित रही है। जिन-जिन प्राकृत ग्रन्थो की प्राचीनतम प्रतिया जैसलमेर के भण्डार मे मिलती हैं उनके नाम इस प्रकार हैं —अगविज्जा, विमलसूरि का पउमचरिय, सघदास कृत वसुदेवहिंडी, जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण का विशेषावश्यकभाष्य, उद्योतनसूरि की कुवलयमाला, शीलाक का चउप्पन्नमहापुरिसचरिय, कुतूहल की लीलावईकहा, जिनेश्वरसूरि का कथाकोपप्रकरण, जिनचन्द्रसूरि की सवेगरगशाला, साधारणकवि की विलासवती कथा, गुणसमृद्धि-महत्तरा का अजनासुन्दरीचरित इत्यादि।' जयसिंहसूरि के 'णेमिणाह चरिय' के कुछ अश भी जैसल-मेर भण्डार मे ही मुनि–जिनविजयजी को प्राप्त हुए थे। जैसलमेर के वृहद् ज्ञान भण्डार की स्थापना १५वी शताब्दी मे जिनभद्रसूरि ने ही की थी। पद्मनन्दि के जम्बूदीवपण्णत्तिसगहो की प्राचीनतम प्रति आमेर के शास्त्र भण्डार में सुरक्षित रहीहै। इस प्रकार राजस्थान के जैन ज्ञान भण्डारो की भी प्राकृत साहित्य को अपनी विशिष्ट देन रही है।

---

२६ | अपभ्रंश जैन साहित्य

डॉ० प्रेमसुमन जैन

अपभ्र श साहित्य ७वी से १२वी शताब्दी तक देश के विभिन्न विभागो मे मुख्यत जैनाचार्यों द्वारा लिया गया है। अपभ्र श की अधिकाश रचनाओ का सम्बन्ध राजस्थान से है। क्योकि उनके लेखको-जैनाचार्यों का कार्यक्षेत्र प्रमुखरूप से पश्चिमी भारत था। अपभ्र श की उन कुछ प्रमुख रचनाकारो और उनकी रचनाओ का परिचय यहा प्रस्तुत है, जिनका किसी-न-किसी रूप मे राजस्थान से सम्बन्ध रहा है।

१ हरिषेण :—राजस्थान मे चित्तौड जैन सस्कृति का प्रमुख केन्द्र रहा है। सस्कृत-प्राकृत के प्रकाण्ड विद्वान् सिद्धसेन, ऐलाचार्य, वीरसेन एव हरिभद्रसूरि जैसे आचार्यों के कार्य-क्षेत्र होने का सौभाग्य चित्तौड को प्राप्त है। अपभ्र श भाषा के प्रमुख विद्वान् हरिषेण भी इस नगरी की शोभा थे। उनके 'धम्मपरिक्खा' नामक ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि हरिषेण के दादा हरि मेवाड देश के रहने वाले थे और सिरि उजपुर के धक्कड कुल के थे। हरि के गोवर्द्धन नाम का एक पुत्र हुआ, जिसकी पत्नी का नाम धनवती था। इनके पुत्र आचार्य हरिषेण थे, जिन्होने वि० स० १०४४ (९४३ ई०) मे 'धम्मपरिक्खा' की रचना की थी। इस ग्रन्थ की रचना कवि ने अचलपुर मे की थी। इस समय चित्तौड छोडकर वे यहा आ बसे थे।

आमेर शास्त्र भण्डार मे 'धम्मपरिक्खा' की कई प्रतिया उपलब्ध हैं। इस ग्रन्थ मे ११ सधिया है, जिनमे, २३८ कडवक हैं। लेखक ने बुद्धि की सार्थकता प्रदान करने के लिए इस ग्रन्थ को लिखा है। इसमे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरुषार्थ की प्राप्ति के उत्तम साधन का प्रतिपादन है। अन्य धर्मों की इसमे समीक्षा की गयी है।[1]

२ धनपाल (प्रथम) —कवि धनपाल ने राजस्थान के साचोर नामक नगर में स्थित महावीर जिनालय सम्बन्धी एक रचना अपभ्र श मे की है, जिसका नाम सत्यपुरीय महावीर उत्साह है। ये धनपाल महाराजा भोज के सभाकवि थे तथा सस्कृत, प्राकृत के भी पण्डित थे। इनकी इस रचना से महमूद गजनी द्वारा मूर्तिभजन की एक घटना का पता चलता है, जिसमे वह सफल नही हुआ था। यह रचना विक्रम की ११वी शताब्दी की प्रतीत होती है।

---

१ सोमानी, रामवल्लभ, महाकवि हरिषेण, वीरवाणी, अप्रैल १९६६, पृ० ५२-५५

३ धनपाल (द्वितीय) —१०-११वी शताब्दी मे अपभ्र श के प्रसिद्ध कवि एक अन्य धनपाल हुए हैं। इन्होने 'भविसयत्तकहा' नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा है। यद्यपि इनकी रचना मे किसी स्थान-विशेष का उल्लेख कवि की जन्म भूमि के रूप नही किया गया है किन्तु इस समय कवि राजशेखर के अनुसार समस्त मरुभूमि मे अपभ्र श का प्रयोग होता था। अत सभव है, ये धनपाल मारवाड प्रदेश मे किसी नगर के निवासी रहे होगे। धाकडवश का होने के कारण धनपाल को राजस्थान का माना जा सकता है। क्योकि धाकड (धकट) राजस्थान की मूल जाति थी।[1]

४ धाहिल —धाहिल १०वी शताब्दी के अपभ्र श कवि थे। इनका सम्बन्ध महाकवि माघ के वश से है। अत ये श्रीमाल वशी गुर्जर वैश्य थे। इनकी जन्मभूमि भिन्नमाल रही होगी। इन्होने 'पउमसिरी चरिउ' की रचना किस स्थान पर की इसका पता नही चलता। इनकी यह रचना धार्मिक होते हुए भी रम्य और रोमाण्टिक है।

५ लक्खण —लक्खण कवि ने वि० स० १२९५ मे 'जिनदत्त चरिउ' की रचना की। इनकी वृत्ति से ज्ञात होता है कि ये त्रिभुवनगिरि के निवासी थे। इसकी पहिचान जयपुर के समीप 'तहणगढ' से की जाती है।

६ सिंह —बारहवी शताब्दी के सिंह कवि ने 'पज्जुन्नकहा' नामक अपभ्र श काव्य की रचना बम्भणवाड मे की थी, जो सिरोही मे है।

७ विनयचन्द्र —१३वी शताब्दी मे विनयचन्द्र नाम के दो अपभ्र श के कवि हुए हैं। विनयचन्द्रसूरि ने 'नेमिनाथ चतुष्पदिका' लिखी, जिसकी प्रति जैसलमेर भण्डार मे है तथा विनयचन्द्र ने 'उपदेशमाला कल्याण' कृति लिखी, जिसकी प्रतिया नागौर के ग्रन्थ भण्डार मे हैं। अत एक कवि का जैसलमेर और दूसरे का नागौर कार्यक्षेत्र रहा होगा। विनयचन्द्र ने चूनडी आदि भी लिखी है।

८ जिनदत्तसूरि —जिनदत्तसूरि युग प्रधान जैनाचार्य थे। इन्होने प्राकृत के ग्रन्थो के अतिरिक्त अपभ्र श की तीन रचनाए लिखी हैं—चचरी, उपदेश रसायन-रास और कालस्वरूप कुलकम्। चर्चरी इन्होने वागड देश में लिखी थी। इनका जन्म वि० स० ११३२ में तथा मृत्यु वि० स० १२११ में अजमेर में हुई। अत जीवन पर्यन्त ये राजस्थान में भ्रमण कर साहित्य-सृजन करते रहे। इनके जीवन एव कार्य आदि के सम्बन्ध में श्री अगरचन्द नाहटा ने विशेष प्रकाश डाला है।[2] जिनदत्तसूरि की ये तीनों रचनाए 'अपभ्र श काव्यत्रयी' के नाम से प्रकाशित हो चुकी हैं।

९ जिनप्रभसूरि —जिनप्रभसूरि ने अपभ्र श में नाणप्पयास (ज्ञानप्रकाश) की रचना की है। इसमें ११३ पद्य हैं। 'कुलक' के नाम से प्रसिद्ध इस कृति में ज्ञान का प्रतिपादन है। इनकी अपभ्र श की दूसरी कृति धम्माधम्मवियार है। इसमें १८ पद्य हैं, जिनमें धर्म, अधर्म का स्वरूप स्पष्ट किया गया है। इन्होने 'सावगविहि' नाम की भी एक रचना की है जो दोहा-छन्द में अपभ्र श के ३२ पद्यो की है। जिनप्रभसूरि सस्कृत-प्राकृत के भी अच्छे साहित्यकार थे। आपने दिल्ली पति महमूद तुगलक को भी अपनी प्रतिभा से प्रभावित किया था। अत आप लगभग १४वीं शताब्दी के विद्वान् हैं। यद्यपि आपकी रचनाओं में रचना-स्थलो का सकेत नहीं है। किन्तु खरतरगच्छ की परम्परा में होने के कारण आप भी राजस्थान के रहे होगे।

१ डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन अपभ्र श भाषा और साहित्य, पृ० ७४

२. द्रष्टव्य—युगप्रधान जिनदत्तसूरि

१० अमरकीर्ति —अमरकीर्ति १३वी शताब्दी (१२१७ ई०) के विद्वान् थे। आपकी 'चवकम्मोवएस' एव 'पुरन्दरविधानकथा' अपभ्रंश कृतिया आमेर शास्त्र भण्डार में उपलब्ध है। आपके ग्रन्थो में गोदहयनगर एव महियड नामक स्थानो का उल्लेख है, जो पश्चिमी भारत के नगर थे। सभव है, आपका कार्यक्षेत्र राजस्थान एव गुजरात रहा हो।

११ श्रीचन्द्र .—श्रीचन्द्र ११-१२वी शताब्दी के अपभ्रंश कवि थे। आपकी 'कथाकोश' एव 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' दो कृतिया प्राप्त हैं। इनमे श्रीमालपुर (सिरिमालपुर) नगर का उल्लेख है। इससे ये राजस्थानी कवि प्रतीत होते है।

१२ यशकीर्ति —१५वी शताब्दी के अपभ्रंश कवियो में यशकीर्ति प्रमुख कवि थे। आपने १४४० ई० में 'हरिवश पुराण तथा १४४३ ई० में 'पाण्डवपुराण' की रचना की थी। 'पाण्डवपुराण' हसराज के अनुरोध पर नागौर में तथा 'हरिवशपुराण' जलालखा के राज्य इन्द्रपुर में लिखा गया था।[1] इन दोनो ग्रन्थो की पाण्डुलिपिया आमेर और नागौर के शास्त्र भण्डारो में उपलब्ध है। यश कीर्ति ने गुर्जरदेश के सिद्धपाल के अनुरोध पर 'चन्दप्पहचरिउ' की भी रचना की थी।

१३ विबुध श्रीधर – श्रीधर १२वी शताब्दी के प्रसिद्ध कवि थे। आपने 'पासनाहचरिउ', 'सुकुमालचरिउ' एव 'भविसयत्तचरिउ' ये तीन रचनाए अपभ्रंश में लिखी हैं। अतिम रचना इन्होने माथुरवशीय नारायणसाहु की प्रेरणा से लिखी थी। एक ग्रन्थ में वलड नगर का भी उल्लेख है। अत राजस्थान और गुजरात दोनो समान रूप से इनका कार्यक्षेत्र रहा होगा।

अपभ्रंश के इन प्रमुख कवियो के अतिरिक्त धवल (पासनाहचरिउ), देवसेनगणि, (सुलोचनाचरिउ), हरिभद्र (सनत्कुमारचरिउ), लक्ष्मदेव (णमिणाहचरिउ), धनपाल (बाहुबलि-चरित), जयदेव (भावनासधि) आदि अन्य कवियो का सम्बन्ध भी राजस्थान एव गुजरात से रहा है। यहा के राजाओ और श्रीमन्तो की साहित्य के प्रति रुचि एव सरक्षण-भावना के कारण सस्कृत, प्राकृत की भाति अपभ्रंश-साहित्य भी पर्याप्त समृद्ध हुआ है।

राजस्थान के ग्रन्थ भण्डारो मे उपलब्ध अपभ्रंश रचनाए

अपभ्रंश साहित्य की अधिकाश रचनाए राजस्थान के ग्रन्थ भण्डारो में ही प्राप्त हुई हैं। यह इस बात का द्योतक है कि राजस्थान अपभ्रंश भाषा की कृतियो के सृजन मे जितना समृद्ध है, उतना ही उनकी सुरक्षा और प्रचार-प्रसार के क्षेत्र में भी। डॉ० कासलीवाल ने ऐसी सौ अपभ्रंश रचनाओ का विवरण दिया है, जो राजस्थान में उपलब्ध है।[2] अभी हाल में डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्री ने समस्त राजस्थान के ग्रन्थ भण्डारो में उपलब्ध अपभ्रंश साहित्य की ९६८ प्रतियो का विशेष विवरण अपने ग्रन्थ में दिया है।[3]

---

१ Dr Kasliwal, Jain Granth Bhandaras in Rajasthan, p 140

२ जैन ग्रन्थ भडारस् इन राजस्थान, परिशिष्ट, ३

३ डॉ० शास्त्री, अपभ्रंश भाषा और साहित्य की शोध-प्रवृत्तिया, तृतीय अध्याय, पृ० ११२-१३

३ संस्कृ जैन साहित्य

डॉ० प्रेमसुमन जैन

सस्कृत जैन साहित्य के निर्माण की पृष्ठभूमि ·

यद्यपि जैन आगमो की भाषा अर्द्धमागधी एव शौरसेनी प्राकृत तथा आगमोत्तर साहित्य की अधिकाश रचनाए भी प्राकृत मे लिखी गई है। किन्तु जनसमुदाय की रुचि के प्रति जैन आचार्यों की जागरूकता के कारण सस्कृत भाषा को भी वही प्रतिष्ठा दी गयी है जो प्राकृत व अपभ्रंश को। जिस समय से समाज मे वैदिक एव बौद्ध सस्कृत साहित्य का प्रभाव अधिक बढा उसी समय से जैन साहित्य मे भी सस्कृत को स्थान मिलने लगा। धर्म एव दर्शन के क्षेत्र मे तर्क-पद्धति के विकास के कारण तथा वैदिक व बौद्ध आचार्यों से वाद-विवाद करने की दृष्टि से जैन आचार्यों ने सस्कृत को अधिक महत्त्व देना प्रारम्भ कर दिया। यह प्रवृत्ति ईसा की दूसरी सदी से आठवी सदी तक अधिक पायी जाती है। पश्चिमी भारत मे जैन विद्वानो मे आचार्य सिद्धसेन दिवाकर एव हरिभद्र के सस्कृत ग्रन्थ इस प्रवृत्ति के परिणाम कहे जा सकते हैं।

८वी शताब्दी के बाद पश्चिम भारत मे लिखित जैन सस्कृत ग्रन्थो की रचना की पृष्ठभूमि मे यहा की राजनैतिक, सामाजिक एव धार्मिक स्थिति अधिक प्रभावशाली रही है सामान्यतया जैनाचार्यों ने जिन प्रेरक तत्त्वो के कारण जैन सस्कृत साहित्य का निर्माण किया है, उनमे प्रमुख है—(१) जैन-धर्म के सिद्धान्तो के प्रसार की भावना, (२) प्रभावशाली राजा, राजमन्त्री, गुरु अथवा श्रावको की प्रार्थना, (३) धार्मिक महापुरुषो का यशोगान। इनके अतिरिक्त एक कारण यह भी दृष्टिगत होता है कि बहुत से जैन आचार्य मूलत ब्राह्मण थे। सस्कृत का अध्ययन वे बचपन से ही कर चुके थे अत अपने ज्ञान एव प्रतिभा के विकास के लिए भी उन्होने जैन सस्कृत साहित्य के निर्माण को माध्यम चुना होगा।

प्रचार-प्रसार के साधन

पश्चिमी भारत मे सस्कृत साहित्य के प्रचार-प्रसार मे जैन विद्वानो का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। उन्होने केवल सस्कृत मे जैन ग्रन्थ ही नही लिखे अपितु उनके प्रचार एव प्रसार व सुरक्षा की पृष्ठभूमि भी तैयार की है। जिस प्रकार राजस्थान के राजाओ द्वारा राज्य के ग्रन्थ भण्डारो (पोथी खाना) को साहित्यिक गतिविधियो का केन्द्र बना दिया गया था, उसी प्रकार जैन आचार्यों ने भी मन्दिरो व उपासरो मे जैन ग्रन्थ भण्डारो की स्थापना कर उन्हें सस्कृत शिक्षा व लेखन का केन्द्र

बना दिया था। इन ग्रन्थ भण्डारो में नये ग्रन्थ लिखे जाते थे, पुराने ग्रन्थो की प्रतिलिपिया तैयार की जाती थी तथा दूर-दूर से महत्त्वपूर्ण ग्रन्थो को लाकर पुस्तकालय को विकसित किया जाता था ताकि लेखको को एक ही स्थान पर सदर्भ ग्रन्थ उपलब्ध हो जाय। इस प्रकार पश्चिमी भारत का जैन सस्कृत साहित्य इन ग्रन्थ भण्डारो की समुचित सुविधाओ का ही परिणाम है।

जनसमुदाय मे सस्कृत भाषा के प्रसार के लिए जैनाचार्यों ने इन ग्रन्थ भण्डारो में शिक्षा केन्द्र खोल दिये थे, जिनमें बच्चो को प्रारभ से ही सस्कृत और प्राकृत पढाई जाती थी। सस्कृत के अध्ययन मे जैन-अजैन की रचनाओ का भेद नही किया जाता था। इस क्षेत्र मे हेमचन्द्र, भट्टारक शुभचन्द्र, प्रभाचन्द्र, ज्ञानभूषण आदि आचार्यो का योगदान महत्त्वपूर्ण है। इनके सान्निध्य मे सौ-सौ छात्र रह कर सस्कृत सीखते थे। सस्कृत शिक्षा के प्रचार मे उन श्रावको का योगदान भी सराहनीय है जो आचार्यों और शिष्यो को सैकडो ग्रन्थो की प्रतिलिपि करा कर भेंट करते थे ताकि उनका अध्ययन निर्विघ्न सम्पन्न हो सके।[1]

जैन सस्कृत साहित्य के निर्माण एव प्रसार मे पश्चिमी भारत के राजाओ व राज्य मन्त्रियो का सरक्षण भी एक प्रमुख कारण रहा है। गुजरात के तो अनेक राजाओ व मन्त्रियो ने जैनाचार्यो के ग्रन्थ निर्माण के लिए सुविधाए ही नही बल्कि प्रेरणा भी दी है। सिद्धराज, कुमारपाल, वस्तुपाल आदि के नाम इस क्षेत्र मे स्मरणीय रहेगे। जैन सस्कृत साहित्य का विकास समय-समय पर आयोजित शास्त्रार्थ के कार्यक्रमो के कारण भी हुआ है, जिसमे अजैन, दिगम्बर, श्वेताम्बर सभी सस्कृत के आचार्य सम्मिलित होते थे। पश्चिमी भारत के कई जैनाचार्यो ने ऐसे वाद-विवादो मे विजयी होने के लिए अनेक चमत्कारिक सस्कृत ग्रन्थो की रचना की है। महाकवि समयसुन्दर का 'अष्टलक्षी' नामक ग्रन्थ इस बात का प्रमाण है।

क्रमिक विकास

जैन सस्कृत साहित्य के लेखन का प्रारम्भ आचार्य उमास्वाति के 'तत्वार्थसूत्र' से होता है, जिस पर आगे चलकर सस्कृत मे बृहत्काय टीकाए लिखी गई हैं।[2] किन्तु पश्चिमी भारत मे जैन सस्कृत साहित्य का लेखन कब से प्रारम्भ हुआ? सर्वप्रथम सस्कृत रचना कौनसी है? यह कहना कठिन है। क्योकि बहुत कम प्राचीन सूचनाओ मे उनके रचना-स्थल आदि का उल्लेख मिलता है। दूसरे पश्चिमी भारत के जैन सन्त गुजरात, राजस्थान, मालवा आदि स्थानो मे भ्रमण करते रहते थे। अत उन्होने कहा पर रह कर ग्रन्थ रचना की इसका पता अन्य स्रोतो से लगाना पडता है। ऐतिहासिक सामग्री से ज्ञात होता है कि चित्तौड अनेक जैन आचार्यो का कार्यक्षेत्र रहा है।[3] उनमे से ५वी सदी के आचार्य सिद्धसेन दिवाकर सस्कृत के प्राचीन लेखक कहे जा सकते है। सिद्धसेन दिवाकर ने जैन न्याय पर 'न्यायावतार' नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा है। इनके बाद आठवी सदी के आचाय हरिभद्र के पूर्व तक पश्चिमी भारत में जैन सस्कृत साहित्य का कोई ग्रन्थ लिखा गया हो, ऐसा उल्लेख नही मिलता। आठवी सदी के बाद प्रचुर मात्रा मे जैनाचार्यों के द्वारा सस्कृत के ग्रन्थ लिखे गये है।[4]

---

१ प्रभावकचरित—हेमचन्द्र प्रबन्ध आदि

२ भारतीय सस्कृति के विकास मे जैन धर्म का योगदान—डॉ० हीरालाल जैन

३ वीरभूमि चित्तौड–श्री रामवल्लभ सोमानी, चतुर्थ अध्याय

४ जैनसिद्धान्तभाष्य, ६ २, १६ १

आचार्य हरिभद्र चित्तौड के राजा जितारि के राजपुरोहित थे। आपने लगभग सौ ग्रन्थों की रचना की है।[1] जिनमे 'षट्दर्शनसमुच्चय', 'अनेकान्तजयपताका', 'अष्टक-प्रकरण' आदि प्रमुख सस्कृत ग्रन्थ हैं। जैन सस्कृत साहित्य के इतिहास में आचार्य हरिभद्र प्रथम लेखक हैं जिन्होने जैनागमो एव पूर्वाचार्यों की प्रसिद्ध कृतियो पर सस्कृत में टीकाए लिखने का सूत्रपात किया है। आचार्य हरिभद्र की परम्परा को दसवी सदी के उत्तरार्द्ध (स० ९६२) में श्रीमाल नगर (भीनमाल) के निवासी आचार्य सिद्धर्षि ने आगे बढाया है। आपकी 'उपमितिभवप्रपचकथा' भारतीय सस्कृत साहित्य की अनुपम कृति है। सिद्धर्षिरचित 'श्रीचन्द्रकेवलीचरित', 'उपदेशमालाटीका' और 'न्यायावतारविवृत्ति' आदि अन्य रचनाए भी प्राप्त हैं।

ग्यारहवी सदी में राजस्थान मे खरतरगच्छ के आचार्यों का प्राधान्य शुरू हो जाता है। जिनेश्वरसूरि (स० १०८०) और बुद्धिसागरसूरि ने मौलिक सस्कृत ग्रन्थो के निर्माण को आगे बढाया। बुद्धिसागर ने 'पचग्रन्थवृत्ति' नामक जैनन्याय का ग्रन्थ लिखा। इस गच्छ के अन्य आचार्यों में जिनवल्लभसूरि का 'शृ गारशतक'[2] एव 'प्रश्नोत्तरषटीशतक' तथा जिनदत्तसूरि की सस्कृत रचनाए अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इन सभी आचार्यों ने प्राकृत में भी अनेक ग्रन्थो की रचना की थी। बारहवीं सदी के विद्वानो में वादिदेवसूरि का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनका 'स्याद्वादरत्नाकर' जैनन्याय का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। ये वाद-विवाद करने में भी कुशल थे।

तेरहवी सदी के विद्वानो मे जिनपालसूरि (सं० १२१४-७७) विशेष उल्लेखनीय हैं। कहा जाता है कि इन्होने ६ शास्त्रार्थों मे विजय प्राप्त की थी। इन्होने सस्कृत टीकाए तथा स्तोत्र लिखे हैं। इनके शिष्यो मे जिनपाल, सुमतिगणि, पूर्णभद्र एव जिनेश्वरसूरि सस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे। जिनपाल उपाध्याय का 'सनत्कुमार महाकाव्य' तथा पूर्णभद्र का 'धन्यशालिभद्रचरित' उत्कृष्ट काव्यात्मक कृतिया हैं। इसी समय दिगम्बर आचार्य आशाधर ने अनगार एव सागारधर्मामृत तथा वाग्भट्ट ने 'नेमिनिर्वाण', 'काव्यानुशासन' आदि रचनाओ द्वारा संस्कृत साहित्य को समृद्ध किया है। १४वी सदी मे जैन विद्वानो के द्वारा सस्कृत के महाकाव्य अधिक लिखे गये तथा प्राचीन ग्रन्थो पर टीकाए भी की गई। लक्ष्मीतिलक (स० १३११) का 'प्रत्येकबुद्धचरित', चन्द्रतिलक का (स० १३१२) 'अभयकुमारचरित', विवेकसमुद्र (१३३४) का 'नरवर्मचरित' एव 'पुण्यसागरकथा' तथा जिनप्रभसूरि का 'श्रेणिकचरित' आदि इस युग की पसिद्ध सस्कृत रचनाए कही जा सकती हैं। लगभग इसी समय नयचन्द्रसूरि ने 'हमीरमहाकाव्य' का निर्माण किया। सम्भवत उन्होने इसकी रचना राजस्थान मे की थी।[3] यह कथात्मक एव ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

१५वी एव १६वी सदी के सस्कृत ग्रन्थो मे रचना-स्थल का उल्लेख नही है। किन्तु उनमें से अधिकाश पश्चिमी भारत मे लिखे गये होगे। १७वी सदी मे जैन विद्वानो द्वारा अधिक मात्रा मे सस्कृत साहित्य लिखा गया है। आचार्य समयसुन्दर (१६५०) ने लगभग पाच सौ छोटी-बडी रचनाए की हैं जिनमें १४ सस्कृत के ग्रन्थ राजस्थान में लिखे गये हैं। इस शतक मे तपागच्छीय जैन विद्वानो की सस्कृत सेवा महत्त्वपूर्ण है। हर्षकीर्ति व पद्मसुन्दर के सस्कृत ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं।

---

१ हरिभद्र के प्राकृत-कथा-साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन

२ 'सस्कृत के ६० शतक'—वरैया स्मृति ग्रन्थ, पृ० ५३४ पर अगरचन्द नाहटा का लेख द्रष्टव्य है।

३ राजस्थानी साहित्य की गौरवपूर्ण परम्परा, पृ० ३५, श्री अगरचन्द नाहटा

१८वी सदी के जैन सस्कृत विद्वानो में उपाध्याय मेघविजय का योगदान महत्त्वपूर्ण है। आपका सप्तसधान महाकाव्य विस्मयकारी है जिसमे रामकृष्ण एव पाच तीर्थंकरो के चरित का एक साथ वर्णन है। यशोविजय इस युग के दूसरे उल्लेखनीय आचार्य हैं जिन्होने सस्कृत ग्रन्थो के द्वारा जैन-न्याय को पुन व्यवस्थित रूप प्रदान किया है।

उन्नीसवी सदी में जैन विद्वानो द्वारा सस्कृत साहित्य बहुत कम लिखा गया है। सभवत क्षेत्रीय भाषाओ एव हिन्दी भाषा की लोकप्रियता इसका कारण रही हो। फिर भी जैन आचार्यों की सस्कृत के प्रति रुचि बनी रही है। तेरापथी सम्प्रदाय के इतिहास से यह स्पष्ट होता है कि उनके प्रारम्भिक आचार्यों ने बडे परिश्रम के साथ सस्कृत का ज्ञान अर्जित किया एव सस्कृत लेखन को अपने मुनि समुदाय मे जागृत किया। उसी का परिणाम है कि लगभग २०० सस्कृत ग्रन्थो का प्रणयन इस सम्प्रदाय के मुनियो द्वारा हो चुका है।[1] आज भी आचार्य तुलसी के शिष्य अन्य भाषाओ के अतिरिक्त सस्कृत साहित्य की रचना में सलग्न हैं। अन्य जैन सम्प्रदायो के विद्वानो द्वारा भी वर्तमान युग में कुछ सस्कृत ग्रन्थ लिखे गये हैं

जैन सस्कृत साहित्य की प्रमुख विधाएं

पश्चिमी भारत के जैन विद्वानो ने साहित्य की प्राय सभी विधाओं में सस्कृत के ग्रन्थ लिखे हैं। यद्यपि दार्शनिक एव धार्मिक साहित्य का प्राधान्य अधिक है, फिर भी उन्होने चरित, पुराण, काव्य, नाटक, स्तोत्र आदि विधाओ के माध्यम से धर्म, दर्शन, इतिहास, भूगोल, गणित, ज्योतिष, व्याकरण, कोष, छन्द, अलकार आदि अनेक विषयो के साहित्य का सृजन किया है, जो भारतीय साहित्य के इतिहास मे उल्लेखनीय है। इन सभी विधाओ से सम्बन्धित जैन सस्कृत साहित्य का यहा परिचय देना सम्भव नही है। इन विधाओ को जैन विद्वानो ने नया स्वरूप प्रदान किया है।

महाकाव्य . जैन विद्वानो द्वारा पौराणिक, ऐतिहासिक एव शास्त्रीय तीनो प्रकार के महाकाव्य लिखे गये हैं, जिन पर प्राचीन सस्कृत एव प्राकृत महाकाव्यो का प्रभाव है। जैन सस्कृत महाकाव्यो की निजी विशेषताए भी हैं। यथा—इनमे भाषा को अधिक सरल बनाया गया है तथा देशज शब्दो का उपयोग किया गया है। अवान्तर कथाओ का सयोजन किया गया है। नायक का साधारणीकरण दृष्टिगत होता है तथा काव्यरस की अपेक्षा धर्मभाव का प्राधान्य है। जैन सस्कृत महाकाव्यो की इन प्रवृत्तियो का क्षेत्रीय भाषाओ एव हिन्दी के महाकाव्यो पर भी पर्याप्त प्रभाव पडा।

पुराण : जैन विद्वानो ने सस्कृत मे पुराण-साहित्य के लेखन मे भी पर्याप्त उत्साह दिखाया है। आचार्य रविषेण (६७८ ई०) ने सर्वप्रथम 'पद्मपुराण' लिखा। तदन्तर राजस्थान के अनेक जैन विद्वानो ने इसमे योगदान दिया है। आचाय हेमचन्द्र, भासग, सकलकीर्ति, जिनदास, ब्रह्म जिनदास, शुभचन्द्र आदि के पुराण, सस्कृत साहित्य के अनुपम ग्रन्थ हैं।[2] किन्तु जैन सस्कृत पुराणो मे तीर्थंकर के जीवनचरित के साथ अन्य प्रसिद्ध व्यक्तियो के जीवन का भी वर्णन होता है तथा इनकी वर्णन शैली एव भाषा इतनी काव्यात्मक है कि इन्हे पुराण कहने के बजाय काव्य कहना अधिक उपयुक्त है। हरिवशपुराण (जिनसेन) को तो जैन सस्कृत साहित्य का महाभारत कहा जा सकता है।

---

१ भिक्षु स्मृति-ग्रन्थ

२ जैन ग्रन्थ भण्डारस इन राजस्थान, पृ० १३८, डॉ० के० सी० कासलीवाल

चरित : जैन सस्कृत चरित-साहित्य को काव्य एव कथा-साहित्य के मध्य मे रखा जा सकता है। सस्कृत चरित-साहित्य के द्वारा भापा को प्राय सरल बनाने का प्रयत्न किया गया है। जिससे जो व्यक्ति काव्य की क्लिष्ट भापा नहीं समझ सकते वे चरित ग्रन्थो के अध्ययन द्वारा अपना मनोरजन एव ज्ञानवर्द्धन कर सकें। लगभग ६वी सदी से १७वी सदी तक यह साहित्य सस्कृत मे पश्चिमी भारत मे लिखा जाता रहा, जिसकी अनेक प्रतिया ग्र थ भण्डारो मे प्राप्त होती हैं। सस्कृत के चरित ग्रन्थो मे प्राय' तीर्थंकरो की जीवनी पर प्रकाश डाला गया है।

कथा - सस्कृत मे कथा ग्र थ प्राकृत की अपेक्षा कम लिखे गये है। लेकिन धार्मिक सिद्धातो को समझाने के लिए कथाओ का सबसे अधिक उपयोग किया गया है। पश्चिमी भारत के जैन विद्वानो ने भी इस माध्यम को अपनाया है। महेन्द्रसूरि (११३० ई०) की 'नर्मदासुन्दरी कथा', नरचन्द्र सूरि का 'कथारत्नसागर', राजशेखर का 'कथासग्रह', सोमचन्द्र मणि (१४४७ ई०) का कथामहोदधि, सोमकीर्ति की 'सप्तव्यसन कथा' तथा गुणकरसूरि की 'सम्यक्त्व कौमुदी' आदि रचनाए सस्कृत के अन्य कथा साहित्य से कम नही हैं। पचतन्त्र की कथात्मक शैली का जैन सस्कृत साहित्य के इन कथाग्र थो द्वारा पर्याप्त विकास हुआ है।

नाटक जैन सस्कृत नाटको का लेखन अन्य विधाओ की अपेक्षा बाद मे प्रारभ हुआ है। सम्भवत. जैनाचार्य नाटक आदि विनोदो को धर्म की दृष्टि से हेय समझते थे। अत उनके लेखन की ओर उनका प्रयत्न कम रहा। फिर भी १२वी सदी से जैन विद्वानो द्वारा सस्कृत के अनेक नाटक लिखे गये हैं। रामचन्द्र-गुणचन्द्र के 'रघुविलास', नवलविलास' आदि जयसिंहसूरि का 'कम्मीरमदमर्दन' तथा मेघप्रभाचार्य का 'धर्माभ्युदय' आदि पश्चिमी भारत मे लिखित जैन सस्कृत साहित्य के प्रमुख नाटक है। 'अनर्घराघव' नाटक पर तीन जैन विद्वानो ने सस्कृत टीकाए भी लिखी हैं।[1] जैन सस्कृत नाटको द्वारा केवल मनोरजन ही नही होता अपितु धर्म-दर्शन के अनेक सिद्धान्तो का स्पष्टीकरण भी होता है।

पश्चिमी भारत मे लिखित जैन सस्कृत साहित्य मे इन उपर्युक्त विधाओ के अतिरिक्त स्तोत्र, सुभापित, नीति, सन्देशकाव्य आदि विधाओ का पर्याप्त साहित्य मिलता है, जो यद्यपि काव्यात्मक दृष्टि से अधिक रसात्मक नही है फिर भी जीवन मे उसकी उपयोगिता अधिक है। जैन समाज मे भक्तिवाद के प्रचार मे इस प्रकार के साहित्य ने अधिक प्रभाव डाला है।

ज्योतिष एव गणित ज्योतिष एव गणित से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थ जैन विद्वानो ने सस्कृत मे लिखे हैं। 'सूर्यप्रज्ञप्ति', 'चन्द्रप्रज्ञप्ति' एव 'ज्योतिष्करण्ड' प्राकृत के इन ग्रन्थो पर मलयगिरि ने सस्कृत मे टीकाए लिखी है। हरिभद्रसूरि ने 'लग्नसिद्ध', नरचन्द्र ने 'नारचन्द्रज्यातिशशास्त्र' तथा 'हर्षकीर्ति' ने 'ज्योतिशशास्त्र', जन्मपत्रीपद्धति 'लग्नविचार' नामक स्वतन्त्र ज्योतिषग्रन्थ लिखे है। गणित के क्षेत्र मे महावीराचार्य (८वी सदी) का 'गणितसारसग्रह', श्रीधराचार्य का 'गणितसार' तथा राजादित्य का 'व्यहारगणित' आदि रचनायें उल्लेखनीय हैं। ये ग्रन्थ भारतीय ज्योतिष तथा गणित के अध्ययन के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

---

१ जैन ग्रन्थ भण्डार्स इन राजस्थान, पृ० १७१, डॉ० कासलीवाल

जैनेतर सस्कृत ग्रन्थो पर टीकाए

पश्चिमी भारत के जैन विद्वानो ने अनेक ग्रन्थो पर सम्कृत टीकाए लिखकर सम्कृत साहित्य की अमूल्य सेवा की है। इससे एक ओर जहा प्रसिद्ध कवियो की सस्कृत रचनाए समाज मे अधिक लोकप्रिय हुई हैं, दूसरी ओर उन कृतियो का मूल-स्वरूप भी सुरक्षित रह गया है। कालिदास, हर्ष, माघ, भारवि, भट्टि, सोमेश्वर आदि के प्रसिद्ध ग्रन्थो की अनेक पाण्डुलिपियां जैन ग्रन्थ भण्डारो मे प्राप्त है।[१] इन पर जिन जैन विद्वानो ने सस्कृत मे टीकाए लिखी है उनमे प्रकाशवर्ष (किरातार्जुनीयम्), धर्ममेरु, सुमतिविजय, चारित्रवर्द्धन (रघुवश), गुणरत्न (काव्यादश), मल्लिनाथ, विनयचन्द्र (मेघदूत आदि), जिनराजसूरि (नेषधचरित) आदि टीकाकारो के नाम उल्लेखनीय हैं।[२] यह जैनविद्वानो का एक तरफ प्रयत्न था। यदि इसी प्रकार ब्राह्मण विद्वान् जैन-प्राकृत साहित्य के ग्रन्थो पर टीकाए लिखते तो आज जैन साहित्य इतना उपेक्षित नही रहता।

राजपुरुषो एव श्रावको द्वारा सस्कृत-सेवा .

समय-समय पर पश्चिमी भारत मे अनेक राजपुरुष ऐसे हुए है जिन्होने जैन विद्वानो को राज्याश्रय एव अन्य सुविधाए प्रदान कर उन्हे सस्कृत साहित्य के लेखन मे सहयोग प्रदान किया है। स्वय भी अनेक ग्रन्थो की रचना की है। इस क्षेत्र मे गुजरात के राजाओ एव राज्यमत्रियो का प्रमुख योगदान रहा है। सिद्धराज जयसिंह, कुमारपाल, वस्तुपाल-तेजपाल आदि के नाम उल्लेखनीय है। वस्तुपाल का निजी पुस्तकालय सस्कृत, प्राकृत के ग्रन्थो से समृद्ध था। उसने विद्वानो की सुविधा के लिए तीन नगरो में पुस्तकालय भी स्थापित किये थे।[3] समय-समय पर इन राजाओ द्वारा वादविवाद प्रतियोगिताए आयोजित होती रहती थी जिनमे जैनविद्वान् भी भाग लेते थे और सस्कृत की रचनाओ द्वारा चमत्कार दिखाते थे। जैन गृहस्थो का मुक्त-हस्त से दिया गया दान सस्कृत साहित्य की सुरक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण था। कुछ श्रावको ने सस्कृत की रचनाए भी लिखी हैं, यथा—सेठपुत्र पद्मानन्द का 'वैराग्यशतक' तथा नेमिचन्द्र भण्डारी के ग्रन्थ आदि।

जैन विद्वानो द्वारा लिखित सस्कृत अभिलेख •

पश्चिमी भारत के कुछ जैन विद्वानो का राज्यो से घनिष्ठ सम्बन्ध था। राजाओ की सभा में रहने के कारण वे उनके अभिलेख आदि लिखने का कार्य भी करते थे। कुमारपाल का चित्तौड अभिलेख (११५० ई०), बिजोलिया अभिलेख (११६८ ई०) तथा सून्धा अभिलेख (१३१९ ई०) दिगम्बर जैन विद्वानो द्वारा सस्कृत मे लिखे गये हैं।[४] इस प्रकार के अन्य अभिलेख भी खोजे जा सकते हैं जो न केवल ऐतिहासिक महत्त्व के है, अपितु उनका काव्य पक्ष भी अध्ययन के योग्य है।

---

१ जैन ग्रन्थ भण्डार्स इन राजस्थान, पृ० २१७

२ मधुमती-जैनेतर सस्कृत साहित्य, श्री अगरचन्द्र नाहटा का लेख।

३ प्रबन्धकोष, पृ० १२९, वस्तुपालचरित, पृ० ८०

४ राजस्थान थ्रू द एजेज–डॉ० दशरथ शर्मा, पृ० ५२४

३१ राजस्थानी जैन साहित्य

डॉ० (श्रीमती) शान्ता भानावत

राजस्थानी भाषा और साहित्य को समृद्ध बनाने में जैन साहित्यकारों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। जैन साधु-साध्वियों का मुख्य दैनन्दिन कार्य-क्रम जनता को उनकी अपनी भाषा मे धर्मोपदेश देना रहा है। इस दृष्टि से वे जिस-जिस क्षेत्र मे गये, उस-उस क्षेत्र की भाषा मे साहित्य रचना करते रहे। यही कारण है कि उनकी भाषा पर स्थानीय प्रभाव सर्वाधिक देखने को मिलता है। राजस्थानी साहित्य की पद्य और गद्य दोनो विधाओ मे सैकडो साहित्यसेवियो ने सहस्राधिक रचनाएँ की। उन सबका विवरण प्रस्तुत करना यहाँ सभव नही है। अत प्रमुख साहित्यकारो का सक्षिप्त परिचय ही यहाँ दिया जा रहा है। साहित्य-रचना का यह क्रम तेरहवी शती से लेकर अद्यावधि यथावत् चालू है। युग प्रभाव से उसके कथ्य और शिल्प मे युगानुरूप परिवतन अवश्य आया है, पर मूल दृष्टि अध्यात्मप्रधान ही रही है।

१. शालिभद्र सूरि : ये राजगच्छ आम्नाय के प्रमुख आचाय थे। देशी भाषा में उपलब्ध रास ग्र थो मे 'भरतेश्वर बाहु बलि रास' की गणना प्राचीनतम रास के रूप में की जाती है। इसकी रचना सवत् १२४१ के फाल्गुन मास की पचमी तिथि को पूरी हुई थी। इनका एक अन्य रास 'बुद्धि रास' भी प्रसिद्ध है।

२. आसिग (आसगु) . इनके द्वारा रचित रचनाओ मे 'जीव दया रास' और 'चन्दन बाला रास' प्रमुख हैं। चन्दन बाला रास का रचना काल १२५७ के आसपास का है। प्रमाणो द्वारा स्पष्ट हुआ है कि इन दोनो रासो की रचना राजस्थान मे हुइ थी।

३. सुमतिगणि : ये जिनपति सूरि के शिष्य कहे जाते हैं। इनकी कई रचनाएं उपलब्ध हैं जिनम से 'गणधर साध शतक वृत्ति' सवत् १२९५ की रचित है। 'नेमिनाथ रास' आपकी प्रारभिक रचना है।

४. देल्हड़ ये श्वेताम्बर श्रावक प्रतीत होते हैं। इनकी रचनाओं मे 'गयसुकुमाल रास' का प्राचीनता की दृष्टि से बडा महत्त्व है। रचनाकार ने श्री देवेन्द्र सूरि की प्रेरणा से इसकी रचना की। श्री देवन्द्र सूरि सभवत तपागच्छ के सस्थापक जगच्चन्द्र सूरि के शिष्य थे। जगच्चन्द्र सूरि का समय १३०० वि० के सन्निकट है, अत इस रास का रचनाकाल १३वीं शताब्दी माना जा सकता है।

५. जयसागर : ये दरडा गोत्रीय खरतरगच्छीय महोपाध्याय थे। इनका जन्म सवत् १४५० के आसपास हुआ। 'विज्ञप्ति त्रिवेणी' इनकी महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक रचना है। राजस्थानी भाषा मे रचित 'जिनकुशल सूरि सप्ततिका' का तो आज भी लोग पाठ करते हैं। इनकी छोटी-बडी कई रचनाएँ हैं, यथा—चौबीस जिन स्तवन, वेग्रर स्वामी रास, अष्टापद तीर्थ बावनी, गौतमस्वामी चतुष्पादिका, नेमिनाथ विवाहलो, अजितनाथ विनती, नेमिनाथ भावपूजा स्तोत्र, वीर प्रभु विनती, श्रीमधर स्वामी विनती आदि।

६. देपाल : इनका रचनाकाल सवद् १५०१ मे १५३४ तक रहा है। ये नरसी मेहता के समकालीन थे। इनकी कुछ रचनाएँ इस प्रकार हैं—जावड भावड रास, चदनबाला चरित्र चौपई, जबू स्वामी पच भव वर्णन चौपई, स्थूलभद्र फाग, पार्श्वनाथ जीराउला रास, थावच्चा कुमार भास, श्रेणिक राजा रास, नवकार प्रवन्ध, पुण्य-पाप फल चौपई आदि।

७. ऋषिवर्धन सूरि ये आचल गच्छ नायक जयकीर्ति सूरि के शिष्य थे। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—नल दवयती रास, जिनेन्द्रातिशय पचाशिका। इनका रचनाकाल सवत् १५१२ के लगभग रहा है।

८. मतिशेखर : ये उपकेशगच्छीय शीलसुन्दर के शिष्य थे। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—धन्नारास, नेमिनाथ बसत फुलडा, कुरगडु महर्षि रास, मयणरेहा सती रास, इलापुत्र चरित्र, नेमिगीत आदि।

९. पद्मनाभ ये १५-१६वीं शताब्दी के प्रतिभाशाली विद्वान् और प्रसिद्ध कवि थे। इनका चित्तौड से विशेष सम्बन्ध रहा। सघपति डूँगर के अनुरोध पर सवत् १५४३ मे इन्होंने बावनी (डूँगर-बावनी) की रचना की, जिसके विषय-नीति, व्यावहारिकता आत्म-दर्शन आदि हैं।

१०. धर्म सुन्दर गणि : ये खरतरगच्छीय जिनसागर सूरि की पट्ट-परम्परा मे विवेकसिंह के शिष्य थे। इनकी प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं—सुमित्रकुमार रास, कुलध्वज कुमार रास, अवति सुकुमाल स्वाध्याय, रात्रि भोजन रास, प्रभाकर गुणाकर चौपई, शकुन्तला रास, सुदर्शन रास आदि।

११ सहज सुन्दर : ये उपकेशगच्छीय उपाध्याय रत्नसूरि के शिष्य थे। इनकी प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं—इलायचीपुत्र सज्झाय, गुण रत्नाकर छन्द, ऋषिदत्तारास, रत्नसार कुमार चोपई, आत्मराज रास, शुक साहेली कथा रास, जबू अंतरग रास, यौवन-जरा सवाद, परदेशी राजा नो रास, आख-कान सवाद, गरभवेलि आदि।

१२ पार्श्वनाथ सूरि : ये नागपुरीय तपागच्छ के साधुरत्न के शिष्य थे। लोक भाषा में गद्य और पद्य दोनो मे, प्रभूत रचनाओ की सृष्टि कर, इन्होने जैन धर्म की महान् सेवा की। इनका जन्म सवत् १५३८ और स्वर्गवास १६१२ माना जाता है। इनकी छोटी-बडी कई रचनाएँ हैं। प्रमुख रचनाएँ हैं—साधु वंदना, पाक्षिक छत्तीसी, चारित्र मनोरथ माला, श्रावक मनोरथ माला, वस्तुपाल तेजपाल रास, आत्म शिक्षा, आगम छत्तीसी, गुरु छत्तीसी, विवेक शतक, आदीश्वर स्तवन विज्ञप्तिका, सधना चरित्र सज्झाय, वीतराग स्तवन ढाल आदि।

१३ ठक्कुरसी इनका समय सोलहवी शती रहा है। ये अपने समय के प्रसिद्ध विद्वान और कवि थे। इनके पिता का नाम देल्ह था जो स्वय अच्छे कवि थे। ये चाटसू के रहने वाले पहाडिया गोत्र के थे। अब तक इनकी ६ रचनाएँ उपलब्ध हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—पार्श्वनाथ शकुन सत्तावीसी, मेघमाला व्रतोद्यापन, कृपण गीत, शील बत्तीसी, पचेन्दिय वेलि (सवत् १५५०), गुणवेलि, नेमि राजमति वेलि, चिन्तामणि जयमाल, सीमधर स्तवन आदि।

१४. बूचराज ये १६वी शताब्दी के प्रसिद्ध कवि थे। इनकी उल्लेखनीय रचनाएँ हैं—मयणजुज्झ, सतोष तिलक, जयमाल, चेतन पुद्गल, धमाल आदि।

१५ छीहल ये सोलहवी शती के उत्तरार्द्ध के कवि हैं। ये अग्रवाल जैन थे। इनके पिता का नाम नाथू था। ये अपने समय के प्रसिद्ध जैन विद्वान और कवि थे। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—पच सहेली (सवत् १५७५), आत्म प्रतिबोध जयमाल, उदर गीत, बावनी या छीहल बावनी (सवत् १५८४), पथी गीत या वेलि गीत।

१६ विनयसमुद्र ये बीकानेर के रहने वाले व उपकेशगच्छीय वाचक हरसमुद्र के शिष्य थे। इनका रचना काल सवत् १५८३ से सवत् १६१४ तक रहा है। ये अपने समय के प्रसिद्ध कवि व विद्वान थे। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—विक्रम पचदण्ड चौपाई, अम्बड चौपाई (सवत् १५६६), मृगावती चोपाई, चित्रसेन पद्मावती रास, सग्राम सूरि चौपाई, चन्दनबाला रास, नमि राजर्षि सधि, इलापुत्र रास आदि।

१७ राजशील ये खरतरगच्छीय साधु हर्ष के शिष्य थे। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—विक्रम खापर चरित चौपाई (सवत् १५६३), अमरसेन वयरसेन चौपाई (संवत् १५६४), उत्तराध्ययन छत्तीस गीत, सिदुर प्रकरण बालावबोध (गद्य रचना) आदि।

१८ पुण्यसागर . ये खरतरगच्छाचार्य जिनहस सूरि के शिष्य थे। ये अपने समय के प्रौढ विद्वानो मे अग्रगण्य थे। स० १६५० मे इन्होने जैसलमेर मे जिनकुशलसूरि की पादुकाए प्रतिष्ठित की थी। इनकी आयु लगभग ८०-६० वष की रही होगी। इनकी प्रमुख रचनाए हैं—सुबाहुसधि, (स [illegible]), मुनिमालिका, प्रश्नोतर काव्यवृति, (१६४०), जम्बू द्वीप पन्नति वृत्ति (१६४५), नमि [illegible]र स्तवन, आदिनाथ स्तवन, अजित स्तवन, श्री जिनचन्द्रसूरि, अष्टकम् आदि।

चौपाई, वीरागद चौपाइ, माल शिक्षा चौपाई, शीलवावनी, स्थूलिभद्र धमालि चौपाई, भोज प्रबन्ध, देवदत्त चौपाई, सत्य की चौपाई, अजना सुन्दरी चौपाई, महावीर पचकल्याण स्त०, मृगाक पद्मावती रास, पद्मावती पद्म श्री रास, अमरसेन वयरसेन चौपाई, आदि।

२१. हीरकलश : ये खरतरगच्छीय सागरचन्द्रसूरि शाखा के विद्वान् और कवि थे। इनका जन्म स० १५९५ मे और मृत्यु स० १६५७ के लगभग हुई। ये अपने समय के प्रख्यात कवि और ज्योतिष के पडित थे। इनकी प्रमुख रचनाए इस प्रकार हैं—सामायिक बत्तीस दोष कुलक (१६१५) दिनमान कुलक, जम्बू स्वामी चरित्र (१६१६), कुमति विध्वसन चौपाई, मुनिपति चौपाई (१६१८) सर्वजिन गणधर सख्या विनती, राजसिंह रत्नावती सधि, वृहद गुर्वावली (१६१९), वीर परम्परा नामावली, सोलह स्वप्न सज्झाय, समकित गीत, सप्त व्यसन गीत, खरतर आचरण गीत, आराधन चौपाई, मोती कपासिया सवाद, जोइसहीर, आदि।

२२. कनकसोम · ये खरतरगच्छीय अमर माणिक्य के शिष्य थे। इनका रचनाकाल १६२५-१६५५ तक रहा है। इनकी प्रमुख रचनाए हैं—जइतपद वेलि, जिनपालित जिन रक्षित रास, आषाढभूति चौपाई, हरिकेशी सधि, आर्द्र कुमार चौ०, मगलकलश रास, थावच्चा सुकोशल चरित्र, कालिकाचार्य कथा, जिनचन्द्रसूरि गीत, नेमि फाग आदि।

२३ हेमरत्न सूरि : ये पूनमियागच्छ वाचक पद्मराज के शिष्य थे। इनका रचनाकाल १६०३ से १६४५ तक रहा है। इनकी प्रमुखकृतियो मे से कुछ के नाम इस प्रकार हैं—शीलवती रास, महीपाल चौ०, अमरकुमार चौ०, गोरावादल चौ०, लीलवती रास, जगदम्वा वावनी आदि।

२४ ब्रह्म रायमल्ल · ये अच्छे विद्वान् थे और भट्टारक अनन्तकीर्ति के शिष्य थे। इनका समय सत्रहवी शती रहा है। इनकी प्रद्युम्न रास, श्रीपाल रास, भविष्यदत्त कथा, हनुमत रास, सुदर्शन रास, नेमीश्वर रास आदि रचनाए प्रमुख हैं।

२५. हर्षकीर्ति · ये सत्रहवी शती के कवि थे। इनकी 'पचगतिवेलि', प्रसिद्ध कृति है। अन्य कृतियो मे छह लेश्या कवित्त, कर्म हिंडोलना, नेमिनाथ राजमति गीत, नेमीश्वर गीत आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके द्वारा लिखे हुए कई पद भी मिलते हैं।

२६. विद्याभूषण ये रामसेन परम्परा के साधु थे। इन्होने सोजत नगर में 'भविष्यदत्त रास' की रचना सवत् १६०० मे पूरी की।

२७ रत्नकीर्ति : ये सूरत गद्दी के भट्टारक थे। स० १६४३ में इनका पट्टाभिषेक हुआ और स० १६५६ तक ये भट्टारक रहे। राजस्थान से इनका काफी सम्बन्ध रहा। ये अपने समय के प्रसिद्ध कवि एव साहित्यकार थे। इनकी उपलब्ध रचनाओ मे प्रमुख हैं—नेमीनाथ फाग, नेमिनाथ वारहमासा, नेमिनाथ हिंडोलना एव नेमीश्वर रास। इनके कई पद भी मिलते हैं।

२८ गुणविनय · ये महोपाध्याय जयसोम के शिष्य थे। इनका रचनाकाल सवत् १६५४ से १६७६ तक है। सस्कृत के अनेक ग्रथो पर आपने टीकाए लिखी हैं। इनकी कतिपय राजस्थानी रचनाओ के नाम इस प्रकार हैं—कयवना सधि, कलावतीरास, अजना प्रबन्ध, ऋषिदत्ता चौपाई, जीवस्वरूप चौ०, नलदमयती रास आदि।

२९ समयसुन्दर · ये सत्रहवी शताब्दी के प्रमुख कवि थे। इनका जन्म सवत् १६२० के लगभग माना जाता है। इनके पिता का नाम रूपसी और माता का नालादे था। ये जिनचद्र सूरि के

शिष्य थे। इनका अष्टलक्षी साहित्य ससार का बेजोड ग्रन्थ है। ये सस्कृत, गुजराती और राजस्थानी के बडे भारी विद्वान् थे। अब तक इनकी छोटी-मोटी ४०० रचनाए उपलब्ध हुई हैं। इनकी रचनाओ का सग्रह 'समयसुन्दर कृति कुसुमाजलि' नाम से बीकानेर से प्रकाशित हुआ है। 'सीताराम चौपाई' इनकी प्रसिद्ध रचना है जो छप चुकी है। सवत् १७०२ मे अहमदाबाद मे इनका निधन हुआ।

३०. सहजकीर्ति ये हेमनन्दन के शिष्य थे। इन्होने सस्कृत और राजस्थानी दोनो मे रचनाए की। इनका रचनाकाल १६६१ मे १६९७ तक है। राजस्थानी मे रचित कतिपय रचनाओ के नाम इस प्रकार हैं—सुदर्शन चौ०, कलावती चौ० देवराज बच्छराज चौ०, शान्तिनाथ विवाहलो, शीलरास, हरिश्चन्द्र रास आदि।

३१ श्रीसार ये रत्नहर्ष के शिष्य थे। इनका रचनाकल स० १६८१–१६८९ तक रहा है। राजस्थानी मे इनकी कतिपय रचनाओ के नाम इस प्रकार हैं—जिनराजसूरि रास, पार्श्वनाथ रास, जय-विजय चौ०, आनन्द श्रावक सधि, श्रीसार बावनी, उपदेश सत्तरी और स्तवनादि।

३२ जिनराजसूरि ये जिनसिंह सूरि के पट्टधर आचार्य थे। इनका जन्म सवत् १६४७ मे बीकानेर मे हुआ। सस्कृत मे इनकी 'नैषध काव्य' पर छत्तीस हजार श्लोक प्रमाण टीका है। राजस्थानी मे इनकी कतिपय रचनाए इस प्रकार हैं—शालिभद्र चौ०, चौबीसी, बीसी, शील बत्तीसी कर्म बत्तीसी, रामसीता रास, गजसुकुमाल रास, आदि। इनकी रचनाओ का एक सग्रह 'जिनराजसूरि कृति कुसुमाजलि' के नाम से बीकानेर से प्रकाशित हो चुका है।

३३ जोधराज गोदीका इनका जन्म स० १६७५ के आसपास हुआ। इनका निवास स्थान सागानेर था। इनकी प्रमुख रचनाए है—धर्म सरोवर, सम्यकत्व कौमुदी, प्रवचन सार भाषा, प्रीतकर चरित्र, भाव दीपिका, कवरपाल बत्तीसी, आदि।

३४ जिनहर्ष ये खरतरगच्छीय प० शान्ति हर्ष के शिष्य थे, दीक्षा से पूर्व इनका नाम जसराज था। इनकी समस्त कृतियो का परिमाण एक लाख श्लोको के लगभग है। इनके बडे–बडे रासो की सख्या लगभग ५०-६० है। १७०४ से १७३६ की कालावधि कवि ने राजस्थान मे व्यतीत की। इस समय की इनकी मुख्य रचनाएँ है—चदनमलया गिरी चौ०, विद्याविलास रास, मगल कलश चौ०, नदबहुतरी, गजसुकुमाल रास, कुसुम श्री रास, मृगापुत्र चौ० आदि। सम्वत् १७३६ के बाद का कवि का समय पाटण (गुजरात) मे बीता। वहा रचित रचनाओ की भाषा पर गुजराती का प्रभाव अधिक है।

३५. लाभवर्द्धन . ये जिनहर्ष के गुरु भाई थे। इनका रचनाकाल स० १७२३ से १७७० तक रहा है। इनकी प्रमुख रचनाए हैं—विक्रम प्रबन्ध चौ०, लीलावती रास, विक्रम पचदड चौ०, लीलावती गणित रास, धर्मबुद्धि-पापबुद्धि चौ०, पाडव चौ०, शकुन दीपिका चौ० आदि।

३६ लब्धोदय ये ज्ञानसार के शिष्य थे। इनका रचनाकाल सवत् १७०७ से लगभग १७५० तक रहा। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—पद्मिनी चौ०, मलयसुन्दरी चौ०, गुणावली चौ० आदि।

३७ धर्मवर्द्धन खरतरगच्छ के विजय हर्ष के ये शिष्य थे। इनका रचनाकाल स० १७

से लगभग सवत् १७६० तक रहा है। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—श्रेणिक चौ०, अमरसेन वयरसेन चौ०, धर्म बावनी, छप्पय बावनी, शीलरास, श्रीमती चौढालिया, दशारणभद्र चौ० आदि। इनकी कृतियो का सग्रह बीकानेर से प्रकाशित हो चुका है।

३८ **कीर्तिसुन्दर** ये धर्मवर्द्धन के शिष्य थे। इनका रचनाकाल स० १७५७ से लगभग १७६५ तक रहा है। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—अवती सुकुमाल चौ०, अभयकुमार चौढालिया, चौबोली चौढालिया, माकड रासो आदि।

३९ **कुशलधीर** ये जिनमाणिक्य सूरि शाखा के कल्याणधीर के शिष्य थे। इनका रचनाकाल स० १६९६ से १७२९ तक रहा है। इनके शिष्य कुशललाभ भी अच्छे कवि थे। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—वनराजर्षि चौ०, धर्म बुद्धि चौ०, मल्लिस्तवन आदि।

४० **जिनसमुद्र सूरि** इनका रचना काल स० १७०६ से लगभग १७४० तक रहा है। इन्होने सवा लाख प्रमाण श्लोको की रचना की। इनकी प्रमुख रचनाओ के नाम है—हरिबल चौ०, आतमकरणी सवाद, इलाचीकुमार, गुणसुन्दर चौ०, वसुदेव चौ०, ऋषिदत्ता चौ० आदि।

४१ **विनयचन्द** ये ज्ञान तिलक के शिष्य थे। इनका रचनकाल स० १७५२ से लगभग स १७६० तक रहा है। इनकी प्रमुख रचनाओ के नाम हैं—उत्तमकुमार रास, ग्यारह अ ग सज्झाय आदि।

४२. **जयमल्ल** कविवर जयमल्ल जी का जन्म स० १७६५ भादवा सुदि १३ को लाबिया (जोधपुर) नामक गाव मे हुआ। इनके पिता का नाम मोहनलाल जी समदडिया तथा माता का महिमा देवी था। स० १७८८ मे इन्होने स्थानकवासी आचार्य श्री भूधर जी म० के पास दीक्षाव्रत अ गीकार किया। ये राजस्थानी के अच्छे कवि हैं। इनकी ७१ रचनाओ का सकलन मुनि श्री मधुकरजी मा० सा० ने 'जयवाणी' नाम से किया है, जो आगरा मे प्रकाशित हुआ है। इनके अतिरिक्त आपकी और भी रचनाएँ विभिन्न शास्त्र भडारो मे प्राप्त हुई हैं, जिनमे कुछ इस प्रकार हैं—चन्दनवाला की सज्झाय, श्रीमतीजी की ढाल, मल्लिनाथ चरित, अ जना रो रास, क्रोध की सज्झाय, मनुष्य जन्म की सज्झाय, नवतत्व की ढाल, लघु साधु वदना, वज्र पुरन्दर चौढालिया, सुरपिता का दोहा आदि। श्रीमती उषा बाफना ने डॉ० नरेन्द्र भानावत के निर्देशक मे इन पर 'सतकवि आचार्य श्री जयमल्ल 'व्यक्तित्व और कृतित्व' नामक लघु शोध प्रवन्ध लिखा था जिसका प्रकाशन जयध्वज प्रकाशन समिति मद्रास ने किया है।

४३ **सत भीखण** तेरापथ सम्प्रदाय के आद्य सस्थापक आचार्य भिक्षु का जन्म स० १७८३ मे कटालिया ग्राम मे हुआ। ये स० १८०८ मे आचार्य श्री रघुनाथ जी से दीक्षित हुए पश्चात् सम्वत् १८१७ मे इन्होने तेरापथ नाम के स्वतत्र मत का प्रवर्तन किया। ये राजस्थानी के महान् साहित्यकार थे। इन्होने ३५ हजार श्लोक प्रमाण ग्रन्थ रचना की। इनकी समस्त रचनाओ का सग्रह भिक्षु ग्रन्थ रत्नाकर नाम से तेरापथी महासभा, कलकत्ता द्वारा दो भागो मे प्रकाशित हुआ है।

४४ **शोभजी** ये स्वामी भीखण जी के निष्ठावन श्रावक थे। इनका जन्म चोरडिया परिवार मे हुआ। ये मेवाड के केलवा नामक स्थान के निवासी थे और रजवाडे मे काम करते थे। इन्होने कई अध्यात्मप्रधान सरस पद और ढाले लिखी हैं।

४५. दौलतराम कासलीवाल : ये अपने समय के उत्कृष्ट कवि, गद्य लेखक और महान् विद्वान् थे। इनका समय स० १७४६ से १८२६ रहा है। इन्होने करीब १८ ग्रन्थो की रचना की। पद्म पुराण, हरिवश पुराण, पुण्यास्रव कथाकोश आदि इनकी गद्य कृतिया हैं और विवेक विलास, अध्यात्म बारहखडी एव जीवधर चरित इनकी प्रमुख पद्यात्मक कृतिया हैं।

४६. टोडरमल ये जयपुर के निवासी थे। इनका समय स० १७८० से १८२७ तक रहा प्रतीत होता है। अपनी अलौकिक प्रतिभा एव व्युत्पन्न मति के कारण ये अपने समय के सर्वाधिक प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् थे। भाषा-टीका लिखकर आपने ढूढाडी गद्य को काफी समृद्ध बनाया। गोम्मटसार भाषा, आत्मानुशासन भाषा, त्रिलोकसार भाषा, मोक्षमार्ग प्रकाशक आपकी प्रसिद्ध कृतिया हैं।

४७. खुशालचद काला : ये सागानेर के निवासी थे। इनका जन्म स० १७५५ के आसपास हुआ था। ग्रन्थ-रचना मे इनकी विशेष रुचि थी। हरिवश पुराण, पद्म पुराण, यशोधर चरित, उत्तर पुराण, वर्धमान पुराण,जम्बू स्वामी चरित्र, चौवीस महाराज पूजा आदि इनकी प्रमुख रचनाए हैं।

४८. जयचन्द छाबडा . इनका जन्म फागी ग्राम में स० १७९५ में हुआ था। वाद मे ये जयपुर आकर रहने लगे। ये अच्छे विद्वान् थे। इनकी १६ से भी अधिक कृतिया हैं। प्रमुख रचनाओ के नाम इस प्रकार हैं—तत्वार्थ सूत्र भाषा वचनिका, सर्वार्थ सिद्धि भाषा वचनिका, द्रव्य सग्रह भाषा, समयसार भाषा, अष्ट पाहुड भाषा, आप्त मीमासा भाषा, देवागमस्तोत्र भाषा, परीक्षा मुख भाषा आदि। इन्होने प्राकृत एव सस्कृत ग्रन्थो का भाषानुवाद किया और इनके प्रचार मे महान् सहायक बने।

४९ रायचन्द इनका जन्म स० १७९६ की आश्विन शुक्ला एकादशी को जोधपुर मे हुआ। इनके पिता का नाम विजयचन्द धाडीवाल तथा माता का नदादेवी था। सवत् १८१४ की आषाढ शुक्ला एकादशी को १८ वर्ष की अवस्था मे इन्होने पीपाड शहर मे स्थानकवासी आचार्य श्री जयमल्ल जी से दीक्षाव्रत अगीकार किया। ६५ वर्ष की आयु मे स० १८६१ की चैत्र सुदी द्वितीया को इनका स्वर्गवास हुआ। ये अपने समय के प्रख्यात कवि और प्रभावशाली आचार्य थे। इनकी २०० से अधिक रचनाए उपलब्ध हैं। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—आषाढभूति मुनि को पचढालियो, आठकर्मों पर चौपाई, आठ प्रवचन माता को चौढालियो, एवन्ता ऋषि की ढाल, कलावती की चौपाई, करकडू की चौपाई, गौतमस्वामी को रास चन्दनबाला की ढाल, जम्बू स्वामी की सज्झाय, मेतार्य मुनि को चौढालियो आदि। इन्होने पच्चीसी सज्ञक अनेक रचनाएँ लिखी। कुमारी स्नेहलता माथुर ने 'कवि रायचद और उनकी पच्चीसी सज्ञक रचनाए' विषय पर लघु शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया है जो अब तक अप्रकाशित है।

५०. आसकरण इनका जन्म जोधपुर राज्य के तिवरी गाव में हुआ था। इनके पिता का नाम रूपचन्द बोथरा तथा माता का गगादेवी था। इन्होंने सम्वत् १८३० मे आचार्य रायचन्द जी म० सा० के नेश्राय मे श्रमण दीक्षा अगीकार की। इनकी छोटी वडी कई अध्यात्मिक भावपूर्ण रचनाएँ हस्तलिखित भडारो मे सुरक्षित हैं। अब तक जिन रचनाओं की जानकारी मिली है उनमे से

कुछ के नाम इस प्रकार हैं–दस श्रावको की ढाल, केशी गौतम चर्चा ढाल, साधुगुण माला, भरत जी री रिद्धि, छोटी साधु वन्दना, गजसिंह जी का चौढाल्या, श्री धन्नाजी की सात ढाला, पूज्य रायचन्द जी म० के गुणो की ढाल आदि ।

५१ सवलदास इनका जन्म स० १८२८ मे भाद्रपद शुक्ला द्वादशी को पोकरण मे हुआ । इनके पिता का नाम आनन्द राज जी लूणिया और माता का सुन्दर देवी था । १४ वर्ष की अवस्था मे बुचकला ग्राम मे इन्होने आचाय श्री रायचद जी से मुनि दीक्षा धारण की । ६१ वर्ष की आयु मे सवत् १९०३ मे वैशाख शुक्ला नवमी को सोजत मे इनका स्वर्गवास हुआ । इनकी कई रचनाए व पद आ० विनयचन्द्र ज्ञान भडार मे सुरक्षित हैं ।

- ५२. दुर्गादास इनका जन्म स० १८०६ मे मारवाड जक्शन के पास सालरिया गाव मे हुआ । इनके पिता का नाम शिवराज तथा माता का सेवादेवी था । १५ वर्ष की लघुवय मे सवत् १८२१ मे इन्होने स्थानकवासी आचार्य कुशलाजी म० के समीप दीक्षा अगीकार की । ये एक समर्थ कवि थे । इनकी रचनाओ का अभी पूरा पता नही चला है । स्फुट रूप से पद, सज्झाय, ढालें आदि रचनायें मिलती हैं । 'गौतम रास' और 'ऋषभ चरित' इनकी अपेक्षाकृत बडी रचनायें हैं ।

५३ लालचन्द इनका जन्म कोटा राज्यान्तर्गत कातरदा नामक गाव मे हुआ । ये कोटा परम्परा के आचार्य श्री दौलतराम जी म० के शिष्य थे । इनकी रचनाए यत्र तत्र बिखरी पडी हैं । जिन रचनाओ की अब तक जानकारी मिली है, इनमे मुख्य हैं—महावीर स्वामी चरित, जबू चरित, चन्द्रसेन राजा की चौपाई, अठारह पाप के सवैया, बीस बिरहमान का स्तवन, विजय कवर, विजया कुवरी चौढालिया, लालचद बावनी आदि ।

५४. बखतराम साह ये चाटसू (राजस्थान) के निवासी थे । इनके पिता का नाम पेमराम था । इन्होने 'मिथ्यात्व खडन' और 'बुद्धि विलास' की रचना की । 'मिथ्यात्व खडन' स० १८२१ की रचना है । इसमे १४२३ दोहा, चौपाई, छन्द हैं । इसी प्रकार 'बुद्धि विलास' स० १८२७ की रचना है । इसमे १५२३ दोहा-चौपाई है । इन रचनाओ के अतिरिक्त इनके पद भी पर्याप्त सख्या मे मिलते हैं ।

५५. नवलराम ये १८वी शताब्दी के कवि थे और बसवा (राजस्थान) के रहने वाले थे । महापडित दौलतराम कासलीवाल की प्रेरणा से इनको साहित्यिक रुचि हुई । 'वर्धमान पुराण' इनकी स० १८२५ की रचना है । इसके अतिरिक्त इनकी रचनाओ मे 'जय पच्चीसी', विनती, रेखता आदि के नाम उल्लेखनीय है । अब तक इनके २०० मे अधिक पद भी प्राप्त हो चुके हैं । इनके अधिकाश पद भक्तिपरक हैं ।

५६. रत्नचन्द्र : इनका जन्म स० १८३४ वैशाख सुद पचमी को जयपुर राज्य के कुड नामक गाव मे हुआ । इनके पिता का नाम लालचन्द्रजी और माता का हीरादेवी था । इनकी दीक्षा सम्वत १८४८ मे हुई और स० १८४९ से इन्होने काव्य रचना करनी प्रारम्भ कर दी । ये आचार्य श्री गुमानचन्द्रजी म० सा० के शिष्य थे । इनके द्वारा अनेक पद लिखे गये हैं, जो स्तुति, उपदेश और धर्म कथा, तीन भागो मे बाटे गये हैं । स्तुतिपरक पद्यो मे तीर्थंकरो की स्तुति की गई है । औपदेशिक भाग मे पुण्य-पाप, आत्मा-परमात्मा, बन्ध-मोक्षादि भावो का सुन्दर चित्रण किया गया है । धर्म कथा

खण्ड में जीवन को उदात्त बनाने वाली पद्यात्मक कथाए है। इनकी रचनाओ का सग्रह सम्यग्ज्ञान प्रचारक मडल, जयपुर मे 'श्री रत्नचन्द्र पद मुक्तावली नाम से प्रकाशित हुआ हे। इसका सम्पादन प० मुनि श्री लक्ष्मीचन्दजी म० सा० ने किया है।

५७ बुधजन ये जयपुर के रहने वाले थे। इनकी अब तक १७ रचनाए प्राप्त हो चुकी हैं। इनका रचनाकाल सवत् १८५४ से १८९५ रहा है। 'तत्वार्थ वोध' बुधजन सतसई, सबोध पचासिका, पचास्तिकाय, बुधजन विलास, आदि इनकी प्रमुख रचनाए हैं। 'बुधजन विलास' मे इनकी स्फुट रचनाओ का सग्रह है।

५८ सदासुख कासलीवाल इनका जन्म स० १८५२ के लगभग जयपुर मे हुआ। इनके पिता का नाम दुलीचन्दजी था। ये प० टोडरमल की परम्परा मे होने वाले प्रमुख विद्वान थे। इनका निधन स० १९२३ मे हुआ। इन्होने अधिकाश ग्र थ भाषानुवाद के रूप मे ही लिखे है, जिनमे तत्वार्थ-सूत्र की अर्थ प्रकाशिका टीका, समयसार की हिन्दी गद्य टीका, रत्नकरण्ड श्रावकाचार भाषा टीका आदि प्रमुख हैं।

५९ चौथमल ये आचार्य श्री रघुनाथजी के शिष्य मुनि श्री अमीचन्दजी के शिष्य थे। इनका जन्म स० १८०० मे मेडता के निकट भवाल मे हुआ। इनके पिता श्री रामचन्द्रजी व माता गुमानबाई धर्मज्ञ थी। इन्होने स० १८१० मे दीक्षा अगीकृत की। ७० वर्ष का सयम-पालन के वाद स० १८८० मे इनका निधन हुआ। ये सुमधुर गायक और कवि थे। इनकी प्रमुख रचनाए हैं—जयवन्ती की ढाला, जिनरिख-जिनपाल, सेठ सुदर्शन, नन्दन मणियार, सनतकुमार चौढालिया, महाभारत ढाल सागर, रामायण, श्रीपाल चरित्र, दमघोष चौपाई आदि।

६० जीतमल (जयाचार्य) ये तेरापथ सप्रदाय के चतुर्थ आचार्य थे। इनका जन्म स० १८६० में रोहट (मारवाड) नामक स्थान पर हुआ। इन्होने सम्वत् १८६९ में ९ वर्ष की अल्पायु में प्रव्रज्या ग्रहण की। तेरापथ सम्प्रदाय की नीव दृढ करने में इनका बडा हाथ रहा। इनका लगभग तीन लाख श्लोक परिमाण वाला विशाल साहित्य है। इनकी सर्वोत्कृष्ट कृति 'भगवती सूत्र' का राजस्थानी में रूपान्तरण है जो अनेक राग-रागनियो में है। इनका कथा-साहित्य भी बहुत विशाल है। अन्य रचनाओ मे प्रमुख हैं—भिक्षु जसरसायन, हेमनवरसा आदि। इनकी समस्त कृतियो का सक्षिप्त परिचय तेरापथी महासभा, कलकत्ता ने प्रकाशित किया है। स० १९३८ में इनका देहावसान जयपुर मे हुआ।

६१ कनीराम ये पूज्य दुर्गादासजी म० के शिष्य मुनि श्री दुलीचन्दजी के शिष्य थे। इनका जन्म स० १८५९ में खिवसर (जोधपुर) में हुआ। इनके पिता का नाम किसनदास तथा माता का नाम राऊदेवी था। स० १८७० में ये दीक्षित हुए। ये अत्यन्त सेवाभावी और चर्चावादी सत थे। स० १९३६ में इनका स्वर्गवास हुआ। इनकी 'सिद्धान्त सार' व 'ब्रह्मविलास' (इसमें ८७ ढाले है) प्रसिद्ध रचनाए हैं। इन्होने कई पद भी लिखे हैं।

६२ सुजानमल इनका जन्म वि० १८९६ में हुआ। इनके पिता का नाम ताराचन्दजी और माता का नाम राई बाई था। इन्होने स० १९५१ में आचार्य श्री विनयचन्दजी म० सा० के पास दीक्षा अगीकृत की। ये सुमधुर गायक और सरस कवि थे। इनकी रचनाओ का सग्रह सम्यग्ज्ञान

प्रचारक मण्डल जयपुर से 'सुजानपद सुमन वाटिका' नाम से प्रकाशित हुआ है। इसका सम्पादन प० मुनि श्री लक्ष्मीचन्दजी म० सा० ने किया है।

६३. **महाचन्द** ये सीकर के रहने वाले थे और भट्टारक भानुकीर्ति की परम्परा मे पाण्डे थे। इनकी त्रिलोकसार पूजा सबसे बडी रचना है, जिसका रचनाकाल सम्वत् १६१५ है। इन्होने कितने ही पदो की रचना की थी। इनके अधिकाश पद भक्ति, स्तुति एव उपदेशात्मक है।

६४ **नेमिचन्द्र** इनका जन्म वि० स० १६२५ मे आश्विन शुक्ला चतुर्दशी को वगडुन्दा (मेवाड) मे हुआ। इनके पिता का नाम देवीलाल लोढा और माता का नाम कमलादेवी था। ये जैनाचार्य श्री अमरसिंहजी म० सा० की परम्परा के छठे पट्टधर श्री पूनमचन्दजी म० सा० के शिष्य थे। ये आशु कवि थे और चलते-फिरते वार्तालाप मे या प्रवचन मे शीघ्र ही कविता बना लिया करते थे। इनकी रचनाओ का एक सग्रह श्री पुष्कर मुनि ने 'नेमवाणी' नाम से सम्पादित किया है जिसका प्रकाशन तारक गुरु ग्रन्थालय, पदराडा (उदयपुर) से हुआ है।

६५. **श्रावक कवि विनयचन्द्र** इनका जन्म जोधपुर भोपालगढ के बीच एक छोटे से ग्राम देईकडा मे हुआ। इनके पिता का नाम गोकुलचद कुम्भट था। ये आचार्य श्री हम्मीरमलजी के निष्ठावान श्रावक थे। ये प्रज्ञाचक्षु थे। इनकी 'विनयचन्द चौवीसी' प्रसिद्ध रचना है जिसे कवि ने स० १६०६ मे पूरी की थी। इनकी अन्य रचनाए हैं—पूज्य हमीर चरित्र, आत्मनिंदा, पट्टावली, फुटकर पद आदि।

६६ **माधव मुनि** . ये धमदासजी म० की परम्परा मे आचार्य श्री नन्दलालजी म० के शिष्य थे स० १६४० के लगभग इन्होने दीक्षा अगीकृत की। ये प्रखर चर्चावादी सन्त थे। स० १६८१ मे गाडोला (जयपुर) गाव के निकट इनका स्वर्गवास हुआ। ये सरस कवि थे। इनके कई पद मिलते हैं।

६७ **जेठमल** ये जयपुर के निष्ठावान श्रावक और प्रतिष्ठित जौहरी थे। इनके पिता का नाम श्री भूधरसिंहजी था। ये प्रसिद्ध सगीतज्ञ और चित्रकार थे। 'जम्बू चरित' इनकी प्रसिद्ध रचना है जो प्रकाशित हो चुकी है। आपके कई पद भी रचित मिलते हैं जो बडे ही भावपूर्ण हैं।

साध्वी परम्परा की कवयित्रियाँ

भारतीय धर्म परम्परा मे साधुओ की तरह साध्वियो का भी विशेष योगदान रहा है। इन जैन साध्वियो ने साहित्य-निर्माण और उसके सरक्षण मे महत्त्वपूर्ण योग दिया है। यहा प्रमुख कवयित्रियो के सम्बन्ध मे सक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है—

६८ **विनयचूला** ये आगमगच्छीय हेमरत्नसूरि के समुदाय की शिष्या है। इन्होने सम्वत् १५१३ के आसपास 'श्री हेमरत्नसूरि गुरुफागु' नामक ११ पद्यो की रचना की। इसमे अमरसिंहसूरि के पट्टधर हेमरत्न सूरि का परिचय दिया गया है।

६६ **पद्मश्री** इनका सम्बन्ध आगमगच्छीय समुदाय से रहा है। श्री मोहनलाल दलीचद देसाई ने 'जैन गुर्जर कविओ' भाग ३, खण्ड १ के पृष्ठ ५३५ पर इनकी एक रचना 'चारुदत्त चरित्र' का उल्लेख किया है। पुष्पिका मे लिखा है कि इसे आगमगच्छीय धर्मरत्न सूरि ने स० १६२६ चैत्र वदि १४ के दिन लिपिवद्ध किया। यह २५४ छन्दो की रचना है।

७०. हेमश्री : ये वडतपगच्छ के नयसुन्दरजी की शिष्या थी। 'जैन गुर्जर कविश्रो' भाग १ के पृ० २८६ पर इनकी एक रचना 'कनकावती श्राख्यान' का उल्लेख मिलता है। यह ३६७ छन्दो की रचना है। इसकी रचना सम्वत् १६४४ वैशाख सुदी ७ मंगलवार को की गई।

७१. हेमसिद्धि : इनका सम्बन्ध खरतरगच्छ से था। श्री श्रगरचन्द नाहटा ने श्रपने 'ऐतिहासिक जैन काव्य सग्रह' के पृष्ठ २१० श्रौर २११ पर इनके दो गीतो का पाठ दिया है। पहली रचना है—'लावण्य सिद्धि पहुतणी गीतम्' इस रचना मे साध्वी लावण्य सिद्धि का परिचय दिया गया है। दूसरी रचना 'सोमसिद्धि निर्वाण गीतम्' है। इसमे १८ पद्य हैं। यह रचना कवित्वपूर्ण है। इसमें कवयित्री का सोमसिद्धि के प्रति गहरा स्नेह श्रौर भक्तिभाव प्रकट हुश्रा है।

७२. विवेकसिद्धि · ये लावण्य सिद्धि की शिष्या थी। नाहटाजी ने ऐतिहासिक जैन काव्य सग्रह' के पृ० ४२२ पर उनकी एक रचना 'विमल सिद्धि गुरुणी गीतम्' प्रकाशित की है। इस रचना के श्रनुसार विमल सिद्धि मुलतान निवासी माल्हू गोत्रीय शाह जयतसी की पत्नी जुगतादे की पुत्री थी। वीकानेर मे इनका स्वर्गवास हुश्रा।

७३. विद्यासिद्धि . नाहटाजी ने 'ऐतिहासिक जैन काव्य सग्रह' के पृ० २१४ पर इनकी रचना 'गुरुणी गीतम्' प्रकाशित की है। प्रारम्भ की पक्ति न होने से गुरुणी का नाम ज्ञात नही हो सका है। बाद की पक्तियो से सूचित होता है कि ये गुरुणी साउसुखा गोत्रीय कर्मचन्द की पुत्री थी श्रौर जिनसिंह सूरि ने इन्हें पहुतणी पद दिया था। यह रचना सवत् १६९९ भाद्र कृष्णा २ को रची गयी।

७४ हरकू बाई इनका सम्बन्ध स्थानकवासी परम्परा से रहा है। श्राचार्य श्री विनय चन्द्र ज्ञान भण्डार जयपुर मे पुष्ठा स० १०५ मे ८८वी रचना 'महासती श्री श्रमरूजी का चरित्र' इनके द्वारा रचित मिलती है। इसकी रचना सवत् १८२० मे किशनगढ मे की गई। इन्ही की एक रचना 'महासतीजी चतरूजी सज्झाय' नाम से नाहटाजी ने 'ऐतिहासिक काव्य सग्रह' मे पृष्ठ स० २१४, २१५, पर प्रकाशित की है।

७५. हुलासा : ये भी स्थानकवासी परम्परा से सम्बन्धित हैं। श्राचाय विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार, जयपुर मे पृष्ठा स० २९८ मे ५०वी रचना 'क्षमा व तप ऊपर स्तवन' इनकी रचित मिलती है। इसकी रचना सम्वत् १८८७ मे पाली मे हुई थी।

७६. सरूपा बाई ये स्थानकवासी परम्परा के पूज्य श्रीमलजी म० से सम्बन्धित हैं। नाहटाजी ने 'ऐतिहासिक काव्य सग्रह' मे पृ० १५६—१५८ पर इनकी एक रचना 'पूज्य श्रीमलजी की सज्झाय' प्रकाशित की है।

७७. जडावजी ये स्थानकवासी परम्परा के श्राचार्य श्री रत्नचद्रजी महाराज के सम्प्रदाय की प्रमुख रभाजी की शिष्या थी। इनका जन्म सवत् १८९८ मे सेठो की रीया मे हुश्रा था। सम्वत् १९२२ मे ये दीक्षित हुई। नेत्र ज्योति क्षीण होने से सम्वत् १९५० से श्रन्तिम समय सम्वत् १९७२ तक ये जयपुर मे ही स्थिरवासी बन कर रही। इनकी रचनाश्रो का एक सकलन 'जैन स्तवनावली' नाम से प्रकाशित हुश्रा है। इसमे इनकी स्तवनात्मक, कथात्मक, उपदेशात्मक श्रौर तात्विक रचनाए सग्रहित हैं। रूपक लिखने मे इन्हे विशेष सफलता मिली है।

७८. श्रार्या पार्वता . इनका सम्बन्ध स्थानकवासी परम्परा के पूज्य श्री श्रमरसिंहजी महाराज की सम्प्रदाय से है। इनका जन्म श्रागरे के निकट सेडा भादपुरी गाव मे चौहान रजपूत

बलदेवसिंह की पत्नी धनवती की कुक्षि से सम्वत् १६११ मे हुआ। जैन मुनि कु वरसेनजी के प्रतिबोध से सम्वत् १६२४ मे इन्होने साध्वी हीरादेवी के पास दीक्षा ग्रहण की। 'जैन गुर्जर कविओ' भाग ३, खण्ड १, पृष्ठ ३८६ पर इनकी निम्नलिखित चार रचनाओ का उल्लेख है—वृत मण्डली, अजित सेन कुमार ढाल, सुमति चरित्र, अरिदमन चौपाई। इनकी हस्तलिखित प्रतिया बीकानेर मे श्रीपूज्य जिनचारित्रसूरिजी के सग्रह मे है। इनकी कई गद्य कृतिया भी प्रकाशित हैं।

७६. भूरसुन्दरी इनका सम्बन्ध स्थानकवासी परम्परा से है। इनका जन्म सम्वत् १६१४ मे नागौर के समीप बुसेरी नामक गाव मे हुआ। इनके पिता का नाम अखयचदजी राका तथा माता का नाम रामा बाई था। ११ वर्ष की अवस्था मे साध्वी चम्पा जी से इन्होने दीक्षा अगीकार की। इनके प्रमुख प्रकाशित ग्रथ इस प्रकार हैं—भूर सुन्दरी जैन भजनोद्धार, भूर सुन्दरी विवेक विलास, भूर सुन्दरी बोध विनोद, भूर सुन्दरी आध्यात्म बोध, भूर सुन्दरी ज्ञान प्रकाश, भूर सुन्दरी विद्या विलास। इनकी रचनाए मुख्यत स्तवनात्मक और उपदेशात्मक है।

८०. रत्नकवर ये स्थानकवासी परम्परा के पूज्य श्री अमोलक ऋषि जी महाराज के सम्प्रदाय की प्रवर्तिनी रही हैं। सम्वत् १६६२ में ५१ ढालो में निबद्ध इनकी एक रचना 'श्री रत्नचूड-मणिचूड चरित्र' प्रकाशित हुई है।

आज भी विभिन्न सम्प्रदायो मे कई जैन साध्वी कवयित्रिया काव्य-साधना मे लीन हैं। तेरापथ सम्प्रदाय की हिन्दी कवयित्रियो के सम्बन्ध में एक निबन्ध उदयपुर से प्रकाशित होने वाली 'शोध पत्रिका' के जनवरी १६६६ अक में प्रकाशित हुआ है। इस निबन्ध में डॉ० नरेन्द्र भानावत ने साध्वी जयश्री, साध्वी मजुला, साध्वी स्नेह कुमारी, साध्वी कमल श्री, साध्वी रत्न श्री, साध्वी कानकुमारी, साध्वी फूलकुमारी, साध्वी मोहना, साध्वी कनक प्रभा, साध्वी यशोधरा, साध्वी सुमन श्री और साध्वी कनक श्री की काव्य-रचनाओ का सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया है।

जैन काव्यधारा का प्रतिनिधित्व करने वाली इन साध्वी कवयित्रियो का हिन्दी कवयित्रियो में एक विशिष्ट स्थान है। इन्होने अपनी काव्य-माधुरी से निर्मल, निर्विकार और सदाचारमय जीवन जीने की प्रेरणा दी है।

३२ जैन चरित एवं चम्पू काव्य

•

डॉ० छविनाथ त्रिपाठी

आठवी शती से पूर्व न तो राजस्थान का प्रयोग एक प्रदेश-विशेष के अर्थ मे मिलता है, न उस समय के प्रचलित 'मरु' से ही आधुनिक राजस्थान का समग्र चित्र उभरता है।[1] साहित्य-सृजन की दृष्टि से पन्द्रहवी शती तक राजस्थान का जो वृहत्तर रूप सामने आता है, उसकी सीमा-रेखाएँ आगरा, यौधेय प्रदेश, सौराष्ट्र तथा राष्ट्रकूट तक फैली हुई दिखाई पडती हैं। इस शती से पूर्व की जैन कृतियो के सम्बन्ध मे यह निर्णय करना अत्यन्त कठिन है कि इनमे से कितनी राजस्थान मे लिखी गई या कौन-कौन सी रचनाए राजस्थानी जैन कवियो की देन हैं। कवियो के स्पष्ट इतिवृत्त के अभाव मे केवल इस तथ्य को ही प्रमुखता नही दी जा सकती कि राजस्थान के किसी जैन-भण्डार मे उपलब्ध होने के कारण ही वह राजस्थानी है, अथवा राजस्थान से बाहर उपलब्ध होने के कारण वह किसी राजस्थानी जैन कवि की रचना नही है। अधिकाश जैन रचनाए जैन-मुनियो की देन है और ये मुनि किसी भी एक स्थान से बध कर नही रहे, नही अपने भ्रमण मे इन्होने कोई प्रादेशिक सीमा का बन्धन स्वीकार किया।

जैन कवियो का मुख्य वर्ण्य त्रिषष्ठि शलाका पुरुषो का चरित रहा है, किन्तु इसका क्षेत्र विस्तृत होते-होते जैन मुनियो और श्रावक-श्राविकाओ के चरित-वर्णन तक पहुँच गया है। जनरुचि को आकृष्ट करने के लिए उन्होने धर्मकथाओ मे काम कथाओ का समावेश किया और अत्यन्त निपुणता से धार्मिक प्रभाव की स्थापना के लिए साधन के रूप मे उनका उपयोग किया।[2] जैन कवियो के लिए काव्य-सृजन भी धार्मिक-साधना का एक अग था। जिन-वचन का ज्ञान, भावन और सवेग ही इनकी दृष्टि मे धर्म है[3] तथा काव्य के सृजन, पठन या श्रवण से इन तीनो की ही सिद्धी होती है। शलाका पुरुषो का चरित धार्मिक चरित है, अत धर्म का ज्ञान, भावन और सवेग इनमे सहज ही उपलब्ध हो जाता है।

---

१ 'मरु'—पउम चरिउ ३०।२, ८२।६

२ काम कहारत हितयस्स जणस्स सिंगार कहा वमेण धम्म चेव परिकहेमि।

—वसुदेव हिण्डी

३ एसो पुण जिणवर वयणाववोहओ जाय मवेग कारणो भावणामइओ मुह दारणिज्जो धम्मोति। कुवलयमाला, पृ० ३ पक्ति ११।

प्राकृत जैन चरित-काव्य-परम्परा

जैन चरित काव्यो का आरम्भ विमल सूरि के पउम चरिउ और हरिवस चरिउ से माना जाता है । पउम चरिउ ११८ पर्वों मे शलाका पुरुष राम का चरित प्रस्तुत करता है जैन परम्परा मे प्राकृत की यह रचना वही स्थान रखती है जो वैष्णव-परम्परा मे वाल्मीकि के रामायण को प्राप्त है । डॉ० जगदीशचन्द्र जैन के कथनानुसार इसमे आख्यायिका के गुण अधिक हैं ।[1] विमल सूरि की दूसरी रचना अभी प्रकाश मे नही आई है । यह स्पष्ट है कि ईस्वी सन् की प्रथम शती से ही जैन चरित काव्य उपलब्ध होने लगते है । यद्यपि डॉ० जैन ने विमल सूरि के बाद ग्यारहवी शती के गुणपाल के जम्बु-चरिय का ही विवरण दिया है, किन्तु कुवलयमाला की शरण ली जाय तो अपने पूर्ववर्ती कवियो का उल्लेख करते हुए उद्योतन सूरि ने देवगुप्त के त्रिपुरुष चरित्र, प्रभजन के यशोधर चरित तथा रविषेण के पद्मचरित नामक प्राकृत काव्यो की चर्चा की है ।[2] पाचवी शती के ही प्रवरसेनकृत सेतुबन्ध और शूद्रक कृत कामदत्ता उपलब्ध है । अत कुवलयमाला के पूर्व का यह काल जैन-चरित काव्यो से शून्य नही है ।

प्राकृत के चम्पू काव्यो मे प्रथम स्थान कुवलयमाला (७७९ ई०) को ही प्राप्त है । यह एक वृहत् चम्पू काव्य है । इसके गद्य भाग की अलकृति एव गाढ बद्धता इसे चम्पू काव्य ही सिद्ध करती हैं । कवि ने इसे कामार्थ-सभव धर्म कथा होने के कारण स्वय सकीर्ण कथा कहा है ।[3] जैन चरित एव चम्पू काव्यो की भाति नानाविध जीव-परिणाम, भाव-विभाव आदि इसमे भी वर्णित हैं,[4] तथा इसका भी मूल भाव निर्वेद और रस शान्त ही है । आदि और अन्त मे जिन तथा सिद्धादिको की वन्दना तो है ही, अन्त मे कथाश्रवण का फल भी निर्दिष्ट है । इससे स्पष्ट है कि पौराणिक चरित-काव्यो का प्रभाव इस पर भी है । भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से इसके कई स्थल अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं ।[5]

ग्यारहवी शती से कुछ पूर्व की रचना जम्बुचरिय है । गुणपाल की इस कृति मे सोलह उद्देश हैं और यह गद्य-पद्य मिश्रित चम्पू शैली मे लिखी गई है । वास्तव मे यह रचना प्राकृत-साहित्य की उस धारा का प्रतिनिधित्व करती है जो युग-भावना के कारण अपनी सरलता से प्राकृत और अपभ्र श के चरित काव्यो को एक धरातल पर प्रतिष्ठित करती है । मिश्र शैली मे लिखे होने के कारण ही यह चम्पू काव्य नही है । इसकी तुलना सस्कृत की गद्य-पद्य मिश्रित पचतन्त्र, हितोपदेश और वैताल पचविशतिका आदि से की जा सकती है । कवि ने इसे धर्मकथा कहा है ।[6] कुवलयमाला का इस पर प्रचुर प्रभाव है । परवर्ती जैन चरित काव्यो मे से पात्रो की जैन धर्म मे दीक्षा देनेवाली तथा त्रिषष्ठि शलाका पुरुषो एव स्थविरो के चरित प्रस्तुत करने वाली रचनाओ मे प्राकृत और अपभ्र श की कडी जोडने वाली कृति के रूप मे ही यह मूल्यवान है ।

---

१ प्राकृत साहित्य का इतिहास पृ० ५२८

२ कुवलयमाला–पृ० ३, प० २८ तथा ४।१

३ ता एसा धम्म कहा पि होउण कामत्थ सभवे सकिण्ण तण पत्ता । कु० मा पृ. ४

४. कुवलयमाला ४।२१–२६ प०

५ वही, पृ० १५१–५४ तथा १६७–७६

६ जम्बुचरिय १।२१

कुवलयमाला और जम्बुचरिय के बीच मे केवल वसुदेव हिण्डी और समरादित्य कथा ही गद्य-पद्य मिश्रित रचनाए दिखाई पडती है। पहली पाचवी शती की रचना है और दूसरी हरिभद्रसूरि की आठवी शती की कृति है। वसुदेव हिण्डी मे अनेक जैन कथायें सकलित हैं और गद्य के बीच-बीच मे कही-कही पद्य उपलब्ध होते है, किन्तु मात्रा की दृष्टि से समरादित्य कथा मे आर्या, द्विपदी और विपुला आदि छन्दो का प्रयोग उससे अधिक है। दसवी से पन्द्रहवी शती तक अनेक कथा एव कथा कोष ग्रन्थ प्रस्तुत किए गये।[1] इनमे कही-कही पर पद्य-प्रयोग मिल जाता है किन्तु इन्हे चम्पू काव्य नही कहा जा सकता।

प्राकृत के अन्य चम्पू काव्यो मे पासनाह चरिय की रचना गुणचद्र गणि ने ११११ ई० मे की थी। इसमे पाच प्रस्ताव हैं। इसका गद्य भाग प्रौढ और समस्त पदावली सम्पन्न है तथा इसके पद्यो मे छन्दो की विविधता दिखाई पडती है।

इन कतिपय प्राकृत चम्पू काव्यो के अतिरिक्त पद्यबद्ध अनेक प्राकृत चरित काव्य उपलब्ध होते है।[2] प्राय सभी चरित काव्य जैन धार्मिक उद्देश्यो की पूर्ति करते हैं। ग्यारहवी से चौदहवी शती तक के इन चरित काव्यो मे से अधिकाश तीर्थंकरो के चरित ही प्रस्तुत करते है। गणधरो और अन्य चरित्रो मे रत्नचूड, सुदर्शना, जयन्ती, मनोरमा, पुहवीचन्द, मुनि सुव्रत, सरण कुमार, तथा मल्लिनाथ के चरित्र मुख्य है। शील एव धर्म दृष्टि का प्रतिपादन इनका मुख्य लक्ष्य है। भाषा की दृष्टि से ये प्राकृतापभ्र श की रचनाए हैं।

संस्कृत के जैन चरित और चम्पू

सस्कृत के जैन महाकाव्यो मे सातवी शती का एक मात्र काव्य धनजय कृत शत्रुञ्जय है। इसमे १४ सर्ग हैं और यह जैन दृष्टिकोण का प्रतिपादक होते हुए भी सस्कृत-काव्य-परम्परा का अनुसरण करता है।

विक्रम सवत् १०१६ मे सोम देव सूरि ने यशस्तिलक चम्पू लिखा। कवि राष्ट्रकूट के राजा कृष्ण तृतीय का समकालिक था जैन उत्तर पुराण इसका स्रोत है। कथा का अधिकाश भाग काल्पनिक है और पुनर्जन्म के विश्वास पर आधारित है। प्रारम्भिक चार आश्वासो मे कथा अविच्छिन्न गति से आगे वढती है, पर अन्तिम तीन आश्वास जैन धर्म के 'उपासकाध्ययन' का वर्णन करते हैं। इस कृति द्वारा सोमदेव के गहन अध्ययन, प्रगाढ-पाडित्य, भाषा पर स्वच्छन्द प्रभुत्व एव काव्य-क्षेत्र मे नये-नये प्रयोगो की उनकी अभिरुचि का परिचय मिलता है।[3] कवि ने इसे चरित, महाकाव्य और चम्पू कहा है।

ग्यारहवी शती के हरिचन्द द्वारा धर्मशर्माभ्युदय मे तीर्थंकर धर्मनाथ का चरित २१ सर्गो मे प्रस्तुत किया गया और सभवत इसी कवि द्वारा जीवधर चम्पू की रचना की गई। इसका स्रोत भी गुणभद्र का उत्तर पुराण है। धार्मिक भावना और कवित्व पूर्ण अभिव्यक्ति का इसमे मजुल समन्वय

---

१ द्रष्टव्य-प्राकृत मा० का इति० पृ० ३७१ से

२ वही—पृ० ५२८ से

३ चम्पू काव्य का आलोचनात्मक एव ऐतिहासिक अध्ययन, पृ० १०५ और २६५

हुआ है। कवि ने इस चरित को दुरितहन्ता कहा है और अन्त मे जीवन्धर द्वारा रत्नत्रय की उपलब्धि का उल्लेख किया है।[1]

बारहवी और तेरहवी शती के चरित काव्य मुख्यत तीर्थंकरो के चरित प्रस्तुत करते है, वाग्भट्ट द्वारा नेमि का चरित लिखा गया। अभयदेव कृत जयन्त विजय, अमरचन्द्र कृत बाल भारत, वीरनन्दी कृत चन्द्रप्रभ चरित, देवप्रभकृत पाण्डव चरित, वस्तुपाल कृत नरनारायणानन्द तथा बालचन्द्र सूरि कृत वसन्त विलास उल्लेखनीय रचनाए हैं।

तेरहवी शती मे ही आशाधर ने भरतेश्वराभ्युदय और उनके शिष्य अर्हदास ने पुरुदेव चपू तथा मुनि सुव्रत काव्य लिखे। ये कृतिया सोनागिरि के भण्डार मे उपलब्ध हुई है। कुछ ही समय बाद लिखे गये भरतेश्वर बाहुबलि रास को ध्यान मे रखते हुए आशाधर के भरतेश्वराभ्युदय चपू का महत्त्व बढ जाता है। इसी काल का एक जैनाचार्य विजय चपू भी उपलब्ध होता है, जिसके कवि का नाम ज्ञात नही है।

हेमचद्र ने बारहवी शती मे कुमारपाल चरित प्रस्तुत किया जिसके बीस सर्ग सस्कृत मे और आठ सर्ग प्राकृत मे है। तेरहवी शती के नयनचद्रसूरि ने हम्मीर महाकाव्य लिखा और इन दोनो ऐतिहासिक काव्यो ने सामान्य श्रावक-श्राविकाओ के चरित लिखने की ओर कवियो का ध्यान आकृष्ट किया।

तेरहवी से अठारहवी शती तक सस्कृत के अनेक चरित काव्य जैन कवियो द्वारा लिखे गए। ये चरित काव्य मुख्यत पौराणिक चरित काव्य ही है, जो आदि पुराण या उत्तर पुराण को आधार मानकर लिखे गये। अनेक उपकथाओ का समावेश, उपदेश तत्त्व की प्रमुखता, वातावरण चित्रण की अपेक्षा सीधे कथा का आख्यान, वस्तु शैथिल्य, कर्म फल एव जन्मान्तर वर्णन द्वारा चरित्रोत्थान की अभिरुचि, रत्नत्रय के साधन पर बल, कथारुढि का अनुसरण तथा कथानक की रोचकता को सुरक्षित रखते हुए जैन सिद्धान्तो का प्रतिपादन आदि इन चरित काव्यो की विशेषताए हैं। डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री ने वर्धमान (स० १४२०) के वराग चरित से लेकर धर्मचद (स० १७२६) के गौतम चरित तक ३५ बडे और ७ लघु चरित काव्यो का विवरण दिया है।[2] उन्ही के शब्दो मे—

'अहिंसा धर्म और कर्म सस्कारो की प्रबलता का विश्लेषण करने के लिए हनुमान, सुदर्शन, श्रीपाल और यशोधर की कथा वस्तु मे काट-छाट कर पौराणिक चरित काव्यो का प्रणयन इस युग की एक प्रमुख साहित्यिक प्रवृत्ति है।' 'पौराणिक चरित काव्यो मे यत्र-तत्र अलकार, प्रकृति-चित्रण, कथा विस्तार एव पौराणिक मान्यताओ का निर्देश उपलब्ध होता है, पर लघु प्रबन्ध काव्यो मे केवल कथा का विस्तार ही उपलब्ध होता है। अलकार और वस्तु वणन अत्यन्त सक्षेप मे अकित रहते है। कथा का विभाजन लघु प्रबन्धो मे ६ सर्ग से कम ही है।'[3]

सस्कृत और प्राकृत के ये चरित काव्य जैन कवियो द्वारा रचित तो है ही, इनमे से अधिकाश वर्तमान राजस्थान तथा कुछ वृहत्तर राजस्थान या उसके कवियो की रचनाए है।

---

१ जीवधर चपू १।१२ तथा अन्तिम श्लोक लम्भ ११।
२ बाबू छोटे लाल जैन स्मृति ग्रन्थ—पृ० १११–११४
३ वही पृ० ११४

अपभ्र श के चरित काव्य

जैन चरित काव्य की दृष्टि से ही नही, अपितु हिन्दी-साहित्य की दृष्टि से भी आठवी शती अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। महाकवि स्वयभू ने पउम चरिउ की रचना कर ठीक वैसी ही काव्य-परम्परा की नीव डाली, जैसी सस्कृत मे वाल्मीकि और प्राकृत मे विमलसूरि ने डाली थी। पाच काण्डो और नब्बे सन्धियो मे विभक्त पउम चरिउ की अन्तिम सात सन्धियो के रचियता स्वयभू के पुत्र त्रिभुवन हैं। पउम चरिउ का पर्याप्त अध्ययन किया जा चुका है और किया जा रहा है, तुलसी के रामचरित मानस के साथ इसका तुलनात्मक अध्ययन भी किया गया है, फिर भी इसका गम्भीर अध्ययन अभी बाकी है। इस काव्य के सम्बन्ध मे निम्न लिखित तथ्यो की ओर मैं अध्येताओ का ध्यान आकृष्ट करना चाहूगा—

(१) स्वयभू ने रड्डा बन्ध मे यह चरित प्रस्तुत किया है, अत काण्डो का विभाजन कवि कृत नही है, इस दृष्टि से भारतीय विद्या भवन और ज्ञानपीठ के सस्करण काव्य-बध को स्पष्ट नही करते। कवि ने काव्य का विभाजन आश्वासो मे किया है और उन्हे तीर्थ माना है। कवि ने आश्वासो के अन्त मे ऐसे घत्ते दिए है, जिनमे कवि का नाम आ जाता है।[1]

(२) स्वयभू ने सर्वप्रथम पउम चरिउ की अडतालीसवी सन्धि मे रास का स्वरूप प्रस्तुत किया है। रिपुदारण रास (वि० ६६२) को सामने रखकर यह देखा जा सकता है कि वह प्रथम रास नही है। स्वयभू ने ही लघु रासो का स्वरूप सर्वप्रथम प्रस्तुत किया है।[2]

(३) बरवै का प्रयोग सर्वप्रथम रहीम ने नही किया। स्वयभू ने अजना के विलाप के समय बरवै का प्रयोग किया है। दसवी सन्धि मे अति बरवै भी है। स्वयभू ने लगभग पचास प्रकार के छन्दो का उपयोग किया है, जिनमे दोहा, रोला, चौपाई बरवै आदि वे अनेक छन्द भी हैं, जिनको मध्यकाल के हिन्दी कवियो ने अधिक प्रश्रय दिया है।[3]

स्वयभू का रिट्ठणेमि चरिउ भी ११२ सन्धियो का काव्य है, जिसमे ६६ स्वयभू कृत, ११ त्रिभुवन कृत तथा २ जसकीर्ति कृत हैं। यह जैन हरिवश पुराण है। स्वयभू कृत अशो मे कवित्व के साथ धार्मिकता है, परन्तु त्रिभुवन और जसकीर्ति के अशो में धार्मिकता अधिक उभरी है।

दसवी शती के दो महाकवियो ने जैन चरित और चम्पू काव्यो को दो दिशाएँ प्रदान की। सोमदेव सूरि का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। पुष्पदन्त ने यशस्तिलक चम्पू के सदृश कथानक को लेकर ही जसहर चरिउ की रचना की। इनके अन्य चरित काव्य तिसट्ठि महापुरिस गुणालकारु और णायकुमार चरिउ हैं। पुष्पदन्त भी कृष्ण तृतीय के आश्रित थे। दोनो ही कवियो का सम्बन्ध राजनगर से विशिष्ट प्रतीत होता है। राष्ट्र कूट दरबार में अनेक राजस्थानी जैन कवि थे जिनका सबध वर्तमान राजस्थान के पश्चिमी भाग से था।

---

१ आश्वासों के अन्त मे 'स इ भुज्जन्त धिय' है। पउम च० ७।१४, २०।१२ आदि।

२ विस्तृत विवरण के लिए द्रष्टव्य-सप्त सिन्धु, व० १३।अक ३।मार्च १९६६ में प्रकाशित मेरा लेख—महाकवि स्वयभू की काव्य दृष्टि।

३. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २४३।

ग्यारहवी से पन्द्रहवी शती तक के चरित एव अन्य प्रकार की कृतियो की एक सूची डॉ० हरीश ने प्रस्तुत की है।[1] इस काल मे जो चरित काव्य लिखे गए हैं वे मुख्यतः उत्साह, घोर, रास, चरित, चतुष्पदिका या चउपई सधि, फागु, विवाहलउ तथा गुर्वावली के रूप मे प्रस्तुत किए गए हैं।

इस काल की बहुचर्चित कृतियो मे शालिभद्र सूरि कृत भरतेश्वर बाहुवली रास (स० १२४१) है। इसे हिन्दी का आदि काव्य माना जाने लगा है। इसमे भरत और बाहुबली के युद्ध तथा बाहुबली के विजय को देखकर भरत द्वारा चक्ररत्न के प्रयोग के उपरान्त बाहुबली के निर्वेद का वर्णन किया गया है। सारा काव्य रास छद मे है और कवित्व तथा वर्णन-कौशल एव अलकार-प्रयोग की दृष्टि से प्रौढ कृति के रूप मे मान्यता प्राप्त कर चुका है। इसके ठीक विपरीत स्थूलिभद्र फागु (स० १३९०) शृगार रसानुप्राणित शान्त रस की रचना है। जिनपद्म सूरि की यह रचना भी एक घटनात्मक है। विनयचन्द्र सूरि की नेमिनाथ चउपई (स० १३५८) अपनी सवाद शैली और बारहमासा के प्रयोग के कारण ख्यात हुई है। जो अन्य कृतियाँ विवेचना का विषय बनी है, उनमे नेमिनाथ फागु, पचपाण्डव चरित रास, ज्ञान पचमी चौपाई तथा जम्बू स्वामी चरित मुख्य हैं। विशुद्ध ऐतिहासिक कृतियो मे सत्यपुरीय महावीर उत्साह, सघपति समरारास, पट्टाभिषेक रास, पेथडरास आदि उल्लेखनीय है।

विक्रम की ग्यारहवी से पन्द्रहवी शती तक की राजस्थानी या हिन्दी कृतियो मे चम्पू काव्यो के अभाव का मुख्य कारण गद्य का अविकसित होना ही है। चौदहवी शताब्दी के आरम्भ से ही जैन मुनियो ने बालावबोधो के द्वारा गद्य को स्थिर रूप देना प्रारम्भ किया। चम्पू काव्य के लिए गद्य और पद्य दोनो भागो का प्रौढ एव अलकृत होना आवश्यक है। जैन मुनियो के गद्यात्मक प्रयोगो मे से एक जिनवर्धन सूरि की गुर्वावली (स० १४८२) है जिसमे महावीर से लेकर सोमसुन्दर सूरि तक अनेक गुरुओ का विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसी समय माणिक्यचद्र सूरि ने पृथ्वीचद्र वाग्विलास (स० १४७८) का सृजन कर हिन्दी चम्पू काव्य का आदर्श प्रस्तुत किया। इसमे नायिका, तप एव भावना आदि का प्रौढ, अलकृत एव तुकान्त शैली मे उच्च कोटि का वर्णन किया गया। चम्पू काव्यो की हिन्दी में परम्परा विकसित नही हुई। राजस्थानी मे भी वार्ता और वचनिका तथा दवावैत मे मिश्र शैली का प्रयोग अजैन कवियो ने किया, किन्तु उसके गद्य भाग की दुर्बलता ने उन कृतियो को चम्पू काव्य के स्तर तक नही पहुँचने दिया। इस मिश्र शैली की परम्परा मे जिन कुछ कृतियो की चर्चा की जा सकती है उनमे किशना जी के सदैवच्छ सावलिगा री वात (स० १७९६) तथा जीवण-दास की इसी नाम की वारता उल्लेखनीय है। पूर्व भव वर्णन के कारण इनमे जैन-विश्वास तो दिखाई पडता है किन्तु इनकी शैली चारण शैली ही है। जीवणदास की कृति मे गद्य के बीच-बीच मे दोहे हैं। उन्नीसवी शती के आरम्भ की एक विशुद्ध जैन कृति वस्तुपाल रचित जिनलाभ सूरि की दवावैत है, जिसमे गद्य के बीचबीच मे गीतो का प्रयोग किया गया है। इसका गद्य भाग भी मनोरम है।

सोलहवीं शती के बाद के राजस्थानी चरित काव्य :

राजस्थानी का स्वतन्त्र विकास विक्रम की पन्द्रहवी शती मे ही आरम्भ हो चुका था। सधारू का प्रद्युम्न चरित आगरा मे लिखा गया था और रइधू ने अपने पाच चरित काव्यो तथा

---

१ आदिकालीन हिन्दी साहित्य शोध, पृ० २५५-२६२।

हरिवश पुराण की रचना ग्वालियर मे की। सधारू ने स० १४११ मे तथा रइधू ने स० १४५० और स० १५४६ के मध्य अपने चरित काव्य प्रस्तुत किए। राजस्थान से बाहर के इन दोनो कृतिकारो को राजस्थानी कवियो मे गिना जाता है। डॉ० हीरालाल माहेश्वरी ने राजस्थानी भाषा और साहित्य मे देपाल को सोलहवी शती का आदि कवि माना है।[1] वस्तुत॰ तेजपाल ने स० १५०० मे अपना सभवनाथ चरित भादानक (सभवत वर्तमान भादरा) में लिखा। चरित काव्य की दृष्टि से देपाल की रचनाओ से इसे पहले गिना जाना चाहिए। सोलहवी शती के आरम्भ से ही जो कृतिया मिलती हैं, उनमे कवियो ने प्राय कृति के रचना-स्थल का उल्लेख भी किया है। एक ही कवि की अनेक कृतियो मे से कुछ में तो ऐसे सकेत निश्चित रूप से मिलते हैं और उनके आधार पर निर्णायक रूप में यह कहा जा सकता है कि ये कृतियाँ राजस्थान में ही लिखी गई हैं।

सोलहवी शती के आरम्भ से ही चरित काव्यो को—रास, चौपई, चरित, प्रबन्ध अवली और ढाल या सधि के रूप में—प्रस्तुत किया गया है। ये चरित काव्य एक ओर तो पौराणिक चरितो या *शलाका पुरुषो के चरित को प्रस्तुत करते हैं तो दूसरी ओर श्रावक-श्राविकाओ, गुरुओ मुनियो* एव ऐतिहासिक पात्रो तक उसका क्षेत्र विस्तृत कर देते है। हीरानन्द सूरि और कुशललाभ ने तो इन चरित काव्यो का क्षेत्र लोक-कथानको तक पहुचा दिया है। सोलहवी शती और परवर्ती काल मे चरित काव्य मुख्यत चौपई या चौपाई तथा रास छन्दो मे लिखे गए। सन्धि और ढाल उनके बन्ध-कौशल रहे। चरित नामधारी काव्यो में भी यही शैली अपनाई गई है। इन चरित काव्यो की सख्या सहस्रो में है जिनकी सूची यहा प्रस्तुत नही की जा सकती। कुछ प्रमुख कवियो और उनकी कृतियो में चरित काव्यो की सख्या एव रचनाकाल आदि की एक झाकी ही यहां प्रस्तुत की जा रही है[2]—

स०	कवि का नाम	रचना-काल (स०)	ग्रन्थ-सख्या
१	देपाल	१५०१–१५=४	५ रास, ४ चौपई, १ प्रबन्ध, १ फाग
२	ऋषिवर्धन	१५१२	१ रास
३	मतिशेखर	१५१४–१५३७	३ रास, १ चरित्र
४	धर्म समुद्र गणि	१५६७–१५८४	५ रास, १ चौपई
५	सहज सुन्दर	१५७०–१५९५	८ रास, १ चौपई, १ छन्द
६	पार्श्व चद्र सूरि	१५५४–१६१२	१ रास, २ चौपई, २ बन्ध
७	मुनि पुण्य रतन (प्रथम)	१५८६	१ रास
८	विनय समुद्र	१५९९–१६३६	६ रास, ६ चौपई, १ चरित्र, १ सधि

१ राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० २५०।

२ यह सूची डॉ० नरेन्द्र भानावत द्वारा सपादित श्री विनयचद्र ज्ञान भण्डार, ग्रन्थ सूची भाग-१ के आधार पर प्रस्तुत की गई है। आरम्भ के १७ कवियो का विवरण डॉ० माहेश्वरी ने भी दिया है।

स०	कवि का नाम	रचना-काल (स०)	ग्रन्थ सख्या
९	राजशील	१५६३-१५९४	२ चौपई
१०	पुण्य सागर	१६०४-१६४५	१ रास, १ चौपई, १ सधि
११	कुशल लाभ	१६१६-१६२५	२ रास, २ चौपई, १ सधि
१२	मालदेव	१६१२	१ रास, १० चौपई, १ वन्ध
१३	हीर कलश	१६१५-१६५६	९ चौपई, १ चरित, १ गुर्वावली, १ सधि
१४	कनक सोम	१६२५-१६५५	२ रास, २ चौ०, १ च०, १ सधि, १ कथा
१५	हेमरत्न सूरि	१६१६-१६७३	५ चौपई
१६	गुण विनय	१६५७-१६७६	५ रास, ७ चौपई, १ प्रवन्ध, १ सन्धि
१७	समय सुन्दर	१६७२-१७२२	१ रास, ६ चौपई, १ चरित्र, १ ढाल
१८	जयवन्त सूरि	१६४३	१ रास
१९	जिनचन्द	१६६७	१ चौपई
२०	केशराज	१६८०	१ चरित्र
२१	मुनि श्री सार	१६८४	१ सन्धि
२२	रिखलालचद	१६९३	१ चौपई
२३	भुवन कीर्ति (प्रथम)	१७०६	१ रास, १ चरित्र
२४	खेम हर्ष	१७०९	१ रास
२५	मोहन विजय	१७१२-१७८३	१ चौपई, ३ चरित्र
२६	गजकुशल	१७१४	१ चौपई
२७	ज्ञान सागर	१७१४-१७२५	१ रास, १ चौपई, १ चरित्र
२८	जिन हर्ष	१७१७-१७४०	३ चौपई, १ ढाल
२९	न्याय सागर	१७२४	१ रास, १ ढाल
३०	मानसागर	१७२४-१७४७	१ चौपई, १ चरित्र
३१	भावप्रमोद गणि	१७२६	१ चौपई
३२	मति कुशल (प्र०)	१७२८	१ चौपई
३३	सुमतिवल्लभ (प्र०)	१७२९	१ चौपई
३४	रायचन्द	१७३१	१ ढाल
३५	जयरगगणि	१७३१	१ चौपई
३६	तत्त्वहस	१७३१	१ चौपई, १ चौढालिया
३७	यश विजय	१७३७	१ रास
३८	विनय विजय	१७३८	१ चरित (गद्य)
३९	लाभवर्धन	१७४२-१७६७	१ चतुष्पदी, १ चरित्र
४०	आनन्द-निधान	१७४८	१ चौपई प्रबन्ध
४१	आनन्द सागर (प्र०)	१७४८	१ चौपई
४२	समय सुजान	१७४९	१ सन्धि

स०	कवि का नाम	रचना-काल (स०)	ग्रन्थ-सख्या
४३	जयतिलक सूरि	१७५१	१ चरित्र
४४	कीर्ति सुन्दर	१७५६	१ चौपई, १ ढाल
४५	प्रीतिसागर	१७६३	१ चौपई
४६	दौलतराम	१७६७	१ रास
४७	रायमल	१७६६	१ कथा पद्य
४८	हीर मुनि	१७७५	१ रास
४६.	पूनमचन्द	१७८०	२ रास
५०	केशराज	१७८५	१ रास, १ ढाल
५१	जिनोदय सूरि		१ चौपई
५२	राम विजय	१८१४	१ चरित्र
५३	रायचन्द	१८२०-१८८१	१ रास, ५ चौ०, ६ च०, १३ ढा०, १ कथा
५४	रत्नशेखर सूरि	१८३२	१ चरित्र
५५	रिख सालदेव		१ चरित्र
५६.	आसकरण	१८३६-१८५६	१ चौपई, २ चरित्र, ५ ढाल
५७.	सबलदास	१८६०-१६००	२ चौपई, ४ चरित्र, ३ ढाल
५८	रत्नचन्द्राचार्य	१८५२	१ चरित
५६	भगत विमल	१८५२	१ चौपई
६०	जयसार	१८७२	१ चौपई
६१	विनयचद्र	१८६५-१८८७	२ रास, २ चौपई
६२	सेवक	१८६०	१ चरित्र
	हीरा सेवग		१ चौपई
६३.	चौथमल	१८१६-१८६८	४ चरित्र (१ गद्य)
६४	जयमल	१८०२-१८७०	५ चरित्र, ५ ढाल
६५	कुशलचद	१६०४	१ चरित
६६	मुनि मनिराम	१६०६	१ ढाल

इन कवियो के अतिरिक्त ऐसे अनेक राजस्थानी जैन कवि हैं जिनकी कृतियो मे रचना काल या रचना-स्थल का उल्लेख नही मिलता। ऐसे कवियो मे हर्ष कुशल, रूप विजय, खेतसी, आनन्द निधान, विभव सुजस आदि के नाम उल्लेखनीय हैं, जिन्होने रास, चरित या चौपई मे चरित काव्यो का सृजन किया है। ऊपर के ६६ कवियो की भी उन रचनाओं को छोड दिया गया है जिनकी छन्द-सख्या पचास से कम है।

इस सक्षिप्त सर्वेक्षण से कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं—

१ जैन चरित काव्यो का प्रारम्भ प्रथम शती से हुआ और विक्रम की बीसवी शती तक उसकी अखण्ड और अविच्छिन्न धारा दिखाई पडती है।

२ इन चरित काव्यो का सृजन प्राकृत मे आरम्भ हुआ। अपभ्रंश मे उसे सर्वाधिक विस्तार मिला तथा अनेक कवियो ने सस्कृत मे भी चरित काव्य प्रस्तुत किए। चम्पू काव्य का सृजन सस्कृत मे ही हुआ। प्राकृत मे कथा नामक काव्य तो चम्पू शैली के उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, परन्तु चरित नामधारी काव्यो मे कुछ गद्य स्थल उपलब्ध होने पर भी वे चम्पू-काव्यत्व के स्तर को पूरा नही करते। चम्पू-काव्य-धारा के अवसान का मुख्य कारण राजस्थानी गद्य का १४वी शती तक प्रौढ रूप सामने न आना है। पन्द्रहवी शती के उपरान्त जब गद्य का विकास हुआ तो गद्यात्मक कृतियो मे पृथ्वीचन्द्रवाग्विलास, कालकाचार्य कथा आदि ने गद्य के स्वरूप को ही प्रौढ बनाया। मिश्र शैली की वचनिका, दवावैत और वार्ताओ के रूप मे आने वाली कृतियो मे अजैन कृतिया ही मुख्य हैं। कान्हड दे प्रबन्ध आदि मे कुछ गद्य स्थलो के कारण वे चम्पू काव्य नही बन जाते।

३ जैन चरित काव्यो मे विमल सूरि, स्वयभू, सोमदेव सूरि और पुष्प दन्त तथा हेमचन्द्र की कृतियो ने आधार भूमि तैयार की और परवर्ती कवियो ने उनसे प्रचुर प्रेरणा ली।

४ बारहवी शती से पन्द्रहवी शती के अन्त तक का काल चरित काव्यो की दृष्टि से सन्धि काल माना जा सकता है। सस्कृत के चरित काव्य तो शलाकापुरुषो, तीर्थंकरो या स्थविरो के चरित प्रस्तुत करते रहे किन्तु प्राकृत और प्राकृतापभ्रंश मे चरित-क्षेत्र का विस्तार हुआ। इस कडी मे चन्द्र प्रभ का विजयचन्द्र केवली चरित्र (११२७) उल्लेखनीय है। भरतेश्वर बाहुबली रास और स्थूलि-भद्र फाग को प्रचुर लोकप्रियता मिली है।

५ स्वयभू ने सर्वप्रथम रास का आदर्श आठवी शती मे प्रस्तुत किया और चरित काव्यो के लिए भी यह एक लोकप्रिय धारा बन गई। पन्द्रहवी शती मे पौराणिक चरितो के लिए भी दोहे-चौपाई की शैली प्रमुख बन गई, किन्तु रास परम्परा की लोकप्रियता ज्यो की त्यो बनी रही।

६ सम्वत् १५०० के पूर्व की अधिकाश जैन-कृतिया भी राजस्थान मे ही लिखी गईं किन्तु अधिकाश के विवरण के अभाव में उन्हे बृहत्तर राजस्थान की उपलब्धियो के रूप मे ही ग्रहण करना पडता है।

७ सोलहवी शती के बाद के उपलब्ध चरित काव्यो मे से अधिकाश कृतियो पर रचना-काल और रचना-स्थल का उल्लेख मिलता है और निर्णायक रूप मे इन कृतियो को राजस्थान का जैन चरित-काव्य कहा जा सकता है।

८ पन्द्रहवी से बीसवी शती तक के कवियो मे रचना परिमाण की दृष्टि से मतिशेखर, धर्म समुद्रगणि, सहज सुन्दर, पार्श्वचन्द्रसूरि, विनय समुद्र, मालदेव, हीरकलश, कनक सोम, हेमरत्न सूरि, गुण विनय, समय सुन्दर, जिनहर्ष, मोहन विजय, रायचन्द, आसकरण, सबलदास, विनयचद्र, चौथमल और जयमल को प्रथम वर्ग मे रखा जा सकता है। इनमे से प्रत्येक ने कई-कई चरित काव्य लिखे हैं।

९ पन्द्रहवी शती में भाषा और काव्य-सृजन की शैली मे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए और सोलहवी शती से बीसवी शती तक मुख्य रूप से—रास, चौपई, चरित, बन्ध या प्रबन्ध तथा सन्धि या ढाल के रूप में ही चरित काव्य लिखे जाते रहे हैं। अजैन कवियो के लौकिक और ऐतिहासिक

कथानको की ओर झुकने पर भी कुछ जैन कवियो को अपवाद रूप में छोडकर अधिकाश इस ओर नही झुके ।[1]

१० इन सभी चरित काव्यो का उद्देश्य दान, शील और भावना के साथ-साथ चरित्रोत्थान का स्वरूप उपस्थित करना ही रहा है, अत इनका स्वर तो धार्मिक रहा ही है, सबका पर्यवसान भी निर्वेद या शान्त रस मे ही हुआ है ।

११. ऊपर दी गई सूची मे पचास छन्दो से बडी रचनाओ को ही लिया गया है फिर भी उनके विश्लेषण से पता चलता है कि चौपई या चतुष्पदिका के नाम से प्रस्तुत चरित काव्यो की सख्या सर्वाधिक (९१) है । उसके बाद के क्रम मे रास (५६) चरित (४१), ढाल (३४), सन्धि (८) तथा प्रबन्ध (६) या बन्ध को गिना जा सकता है । स्पष्ट है कि चरित काव्यो मे चौपई और रास को ही प्रमुखता मिली है । ये चरित रास है, उपदेश रसायन रास जैसे रास नही ।

१२ पौराणिक और लोकप्रिय स्थविरो के चरित्रो मे—राम, सीता, अजना और हनुमान तथा हरिवश, बलभद्र प्रद्युम्न, सुभद्रा, द्रौपदी और देवकी के चरित से सम्बन्धित काव्य मिलते हैं । लोकप्रियता की दृष्टि से अजना का चरित्र आकर्षण का विषय रहा है । तीर्थंकरो मे नेमि इस काल मे भी अधिक वर्ण्य बने हैं । गणधरो एव स्थविरो मे गौतमस्वामी, जम्बूस्वामी तथा गज सुकमाल तथा स्थूलिभद्र के चरित कवियो ने अधिक अपनाएँ हैं । शेष सभी चरित्र या तो मुनियो के हैं या श्रावक-श्राविकाओ के । इनमे राजा, सेठ, लोक कथानको के कुछ पात्र या धर्मबुद्धि जैसे कुछ काल्पनिक पात्र भी हैं । इन सभी कथानको मे उद्देश्य की एकरूपता बनी हुई है ।

इस प्रकार राजस्थान के जैन चरित एव चम्पू काव्यो मे भाषा और शैलीगत परिवर्तन तो युगानुसार होते गए है, पर जैन कवियो ने, विशेषत राजस्थानी जैन कवियो ने चरित-काव्य-सृजन की अखण्ड परम्परा को कभी भी टूटने नही दिया है ।

---

१ राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० २४६-४८ तक ४५ लोक कथानकों पर आश्रित कृतियों का उल्लेख किया गया है ।

३३ | राजस्थानी जैन कथा साहित्य

श्री श्रीचन्द्र जैन

जैन कथावाड्मय

जैन कथावाड्मय का इतिहास उतना ही पुरातन है जितना जैन तत्वज्ञान और जैन सिद्धान्त का इतिहास है। अनेकानेक कथाएँ तो जैन वाड्मय का सबमे प्राचीन भाग समझे जाने वाले आगमो मे ही वर्णित हैं। इन आगम-सूचित कथाओ की वस्तु का आधार लेकर, बाद मे होने वाले आचार्यों ने अनेक स्वतत्र कथा ग्रन्थ रचे और मूल कथावस्तु मे फिर अनेक अवान्तर कथाओ का सयोजन कर इस साहित्य को खूब ही विकसित और विस्तृत बनाया। इन कथाग्रन्थो मे से कुछ तो पुराणो की पद्धति पर रचे हुए हैं और कुछ आख्यायिकाओ की शैली पर। उपलब्ध ग्रन्थो मे पुराण-पद्धति पर रचा हुआ सबसे प्राचीन और सबसे बडा प्राकृत कथा-ग्रन्थ 'वसुदेवहिंडी' है। इस ग्रन्थ की कथा के उपक्रम का आधार तो हरिवश अर्थात् यदुवश मे उत्पन्न होने वाला वसुदेव दशार है जो सस्कृत पुराण, महाभारत और हरिवश मे वर्णित कृष्ण वसुदेव का पिता है। परन्तु गुणाढ्य की 'वृहत्कथा' की तरह इसमे सैकडो ही अवान्तर कथाएँ गुम्फित कर दी गई हैं, जिनमे प्राय सब ही जैन तीर्थंकरो के तथा अन्यान्य चक्रवर्ती आदि शलाका पुरुषो के एव अनेक ऋषि, मुनि, विद्याधर, देव, देवी आदि के चरित भी वर्णित हैं। 'वसुदेवहिंडी' की कथाएँ प्राय सक्षेप मे और साररूप मे कही गई है। इन कथाओ मे से कुछ कथाओ को चुन-चुनकर, पीछे के आचार्यो ने छोटे-बडे ऐसे अनेक स्वतन्त्र कथा ग्रन्थो की रचनाएँ की और उन सक्षिप्त कथाओ को और भी अधिक पल्लवित किया।[१]

राजस्थानी साहित्य :

इसी प्राचीन परम्परा को सभाले हुए अनेक राजस्थानी जैन कथाओ की रचना हुई तथा पद्यात्मक एव गद्यात्मक दोनो शैलियो मे रचित राजस्थानी कथाओ की भी पर्याप्त सख्या है। राजस्थानी भाषा अपभ्र श की जेठी बेटी मानी जाती है। अत कई शताब्दियो तक राजस्थानी रचनाओ पर अपभ्र श का प्रभाव रहा और अपभ्र श की परम्परा राजस्थानी साहित्य को सर्वाधिक रूप मे प्राप्त हुई है। तेरहवी शती मे राजस्थानी साहित्य का स्वतत्र विकास हुआ माना जाता है और तब से लेकर अब तक राजस्थानी साहित्य का निर्माण बराबर होता रहा है।[२]

---

१ जिनेश्वर सूरि विरचित कथाकोष प्रकरण, पृ० ६७–६८

२ राजस्थानी साहित्य की गौरवपूर्ण परम्परा श्री अगरचद नाहटा, पृ० ४४

यह तो हमे स्वीकार करना चाहिए कि राजस्थानी साहित्य के निर्माण मे चारणो एव जैन विद्वानो का प्रमुख रूप मे सहयोग रहा है और आज भी इनकी साहित्यिक सेवा बडे गौरव से स्मरण की जाती है । राज्याश्रित होने के कारण चारणो का राजस्थानी साहित्य विशेषत तत्कालीन राजस्तवनपरक है लेकिन जैन मुनियो एव जैन विद्वानो ने जनता के हित को प्रधानता देकर ऐसा राजस्थानी साहित्य लिखा जो सार्वभौमिक होने के कारण कालजयी तथा युग-परिचायक होकर भी युगपरिधि मे सदा परे है । इस प्रकार का जैन राजस्थानी साहित्य कथात्मक है अवश्य, लेकिन सामान्य जनता इसे सुविधा से याद कर सके एव विभिन्न धार्मिक अवसरो पर इसे भक्ति विभोर होकर सामूहिक रूप मे गा सके, अत ऐसे साहित्य का बाहुल्य है जो लघु होकर भी विभिन्न राग रागनियो मे गुम्फित हो । फलत रास, फागु, चर्चरी, विवाहला, सधि, धवल, वेलि, रेलुका, सम्वाद, बारहमासा, सिलोका, हियाली आदि बहुसख्यक है, ऐसे काव्य रूप हैं जिनमे आराध्यो की महिमा है, प्रणम्य सती देवियो की आराधना है, धार्मिक कथाओ का गुम्फन है, धर्म-जागृति की तीव्र लालसा है और पुण्य-प्रसार की उत्कठा है ।

राजस्थानी जैन कथाओ का उद्देश्य

मानव-मन अत्यत चपल होता है और उसे स्थिर रखने के लिए ही इसान ने न मालूम कबसे कितने प्रयत्न किये हैं । साधु-सन्तो ने कथाओ के द्वारा एक ओर मनोरजन के प्रयास किये हैं तो दूसरी ओर धार्मिक साधना का प्रसार-प्रचार करके मानव की दुष्प्रवृत्तियो के दमनार्थ जो उपाय प्रस्तुत किये है वे स्तुत्य हैं । लौकिक जीवन की विविध वासनाओ का उल्लेख इन कथाओ मे विद्यमान है लेकिन इन्हे शनै शनै परिष्कृत करने के भी यहाँ उपाय बताए गए हैं । धर्म, अर्थ, काम एव मोक्ष के स्वरूप की विशुद्ध व्याख्या करते हुए कथाकारो ने मानव को आकर्षक ढग से सासारिक जीवन बिताते हुए मोक्ष के पथ का अनुसरण करने की पूर्ण प्रेरणा दी है । इन जैन कथाओ मे धर्म की सर्वत्र प्रमुखता है और भौतिकता के परित्याग के हेतु विविध सम्बोधन-प्रबोधन हैं । धार्मिक सिद्धान्त बडे गूढ होते है जो साधारण जनता की समझ मे सुगमता से नही आ पाते । अत विभिन्न क्षेत्रो मे भ्रमण करते हुए इन सत-साधुओ ने जनता की इस कमजोरी को पहिचाना और प्रचलित रूढियो के सहारे कई रोचक कथाओ की यथावसर सृष्टि की तथा गहन सिद्धान्तो को बडी सरलता से बोधगम्य बनाया । नारी के यहाँ अनेक रूप चित्रित किए गए हैं । वह स्वाभिमानी है, कठोर-आराधना-परायणा भी है, तथा सघर्षप्रिय भी है लेकिन कथाकारो ने नारी की सहज प्रवृत्तियो को उद्घाटित कर उसके प्रशस्त मानवीय स्वरूप को अधिक चित्रित किया है ।

राजस्थानी जैन कथाओ की विशेषताएँ

प्रथमत तेरहवी शताब्दी से अब तक प्रत्येक शताब्दी के प्रत्येक चरण की रचनाएँ मिलने के कारण भाषा के विकास की पूरी शृ खला मिल जाती है । दूसरी विशेषता है अनेक विधाओ या शैलाओ को अपनाना । तीसरी विशेषता है प्राचीन गद्य की प्रचुरता । चौथी विशेषता है ऐतिहासिक रचनाओ की अधिकता । जैनाचार्यो, मुनियो, श्रावको, तीर्थों आदि के सम्बन्ध मे छोटी-बडी सैकडो रचनाएँ हैं जिनमे जैन इतिहास के साथ राजस्थान और भारत के इतिहास एवं भूगोल पर भी अच्छा प्रकाश पडता है । जैन मुनि वर्ष मे केवल वर्षा काल के चार महीनो तक एक जगह रहते हैं, अन्य

समय घूमते रहते हैं। इसलिए उनकी रचनाओ में अनेक स्थानो, वहां के शासको एव निवासियो का उल्लेख मिल जाता है। ग्रन्थो की रचना एव लेखन-प्रशस्तियो मे भी अनेक ऐतिहासिक सूत्र ऐसे प्राप्त होते हैं जिनका अन्यत्र कही मिलना सभव नही।

पाचवी विशेषता —चारण कवियो की साहित्यिक शैली और भाषा रूढ-सी है पर जैन रचनाओ मे बोलचाल की सरल भाषा का उपयोग अधिक होने से भाषा के प्रान्तीय भेदो और बोलियो की अनेकता के उदाहरण मिल जाते हैं।

छठी विशेषता —जैन रचनाओ का उद्देश्य जनसाधारण को नीति और धर्म की ओर आकर्षित और अग्रसर करने का रहा है। अत नैतिक जीवन के उत्थान और धर्म की प्रेरणा, जैन एव अध्यात्म की प्रेरणा जैन रचनाओ से जितनी मिलती है उतनी अन्यत्र दुर्लभ है। चारणादि कवियो ने वीर-रस और शृंगार रस का साहित्य अधिक लिखा है और जैन कवियो ने शान्त रस का। इससे दोनो की रचनाए परस्पर पूरक सी हैं।

सातवी विशेषता —लोक कथाओ और लोक गीतो की देशियो को अधिकाधिक अपनाकर लोक साहित्य का बहुत बडा सरक्षण किया गया है। हजारो विस्मृत लोक गीत और कथाए जैन रचनाओ द्वारा ही सुरक्षित रह सकी हैं। जैनेतर साहित्य की सुरक्षा मे भी जैन लेखको का बडा भारी योगदान है।[1]

इसके अतिरिक्त अन्य कई विशेषताए है जिनका उल्लेख सक्षेप मे इस प्रकार किया जा सकता है[2] —

(१) यथार्थवाद एव आदर्शवाद का समन्वय, (२) अध्यात्मवाद का प्राधान्य, (३) आजीविका के साधनो का विवरण, (४) जीवन के लौकिक एव पारलौकिक पक्षो का निरूपण, (५) पाप-पुण्य की रोचक व्याख्या, (६) विशुद्ध शृंगार का चित्रण, (७) प्रकृति की मनोरम अभिव्यजना, (८) ऐतिहासिक तत्वो का निष्पक्ष निरूपण, (९) कल्पना का समुचित उपयोग, (१०) लोक-प्रचलित उदाहरणो की स्वीकृति एव प्रयोग, (११) शान्त रस की व्यापकता, (१२) सासारिक वैभव की क्षण भगुरता, (१३) कर्म सिद्धान्त का समर्थन, (१४) कौतूहल का पर्याप्त सम्मिश्रण, (१५) विविध विषयो की समुचित चर्चा, (१६) कहानी की सुखद समाप्ति, (१७) सूक्तियो का प्रयोग, (१८) पुरातन परम्पराओ आदि का उल्लेख, (१९) विविध यात्राओ का उल्लेख, (२०) रूपको एव प्रतीको का उपयोग, (२१) साधु-सन्तो की तपस्या का मार्मिक विवरण, (२२) उपसर्ग-सहन की क्षमता का चित्रण, (२३) स्थानीय रगत का पुट, (२४) सशक्त वातावरण की सृष्टि, (२५) सत्य, शिव, सुन्दर की व्यापक अभिव्यक्ति, (२६) कृत्रिमता का अभाव, (२७) श्रमण सस्कृति का प्रभावोत्पादक चित्रण, (२८) स्वप्न विचार, रत्न-परीक्षा, बुद्धि-परीक्षण आदि की यथावसर चर्चा,

---

१ श्री अगरचन्द नाहटा राजस्थानी साहित्य की गौरवपूर्ण परम्परा।

२ इस सम्बन्ध मे डॉ० नरेन्द्र भानावत का 'राजस्थानी साहित्य कुछ प्रवृत्तिया' पुस्तक मे 'राजस्थान, वात साहित्य—एक पर्यालोचन' निबन्ध द्रष्टव्य है, पृष्ठ २०–४३।

(२६) व्यसनो के परित्यागार्थ उपयुक्त प्रबोधन, (३०) ज्योतिष, योग, मत्र-तत्रादि की समयानुकूल उपयोगिता का समर्थन, (३१) नवरसो का समावेश ।

राजस्थानी जैन कथाओ का वर्गीकरण

सागर की तरगो के समान ये कथाए अनन्त हैं[1] अत इन्हे किसी विशिष्ट परिधि मे आवद्ध करना कठिन है, फिर भी इन्हें इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है —

(१) राज कथा, (२) चोर कथा, (३) महामात्य कथा, (४) सेन कथा, (५) भय कथा, (६) युद्ध कथा, (७) अन्न कथा, (८) पान कथा, (९) वस्त्र कथा, (१०) शयन कथा, (११) माला कथा, (१२) गध कथा, (१३) ज्ञाति कथा, (१४) यान कथा, (१५) ग्राम कथा, (१६) निगम कथा, (१७) नगर कथा, (१८) जनपद कथा, (१९) स्त्री कथा, (२०) पुरुष कथा, (२१) शूर कथा, (२२) विशाखा कथा (बाजारू गप्पें), (२३) कुभ स्थान कथा (पनघट की कहानिया), (२४) पूर्व-प्रेत कथा, (२५) निरर्थक कथा, (२६) लोकाख्यायिका, (२७) समुद्राख्यायिका-दीर्घ निकाय १।८।

राजस्थानी जैन कथाओ की प्ररूढिया ।

कथाओ के निर्माण मे प्ररूढियो का विशेष महत्त्व है । जिस प्रकार गृह के आकार को स्थूल रूप देने के लिए ईंट, पत्थर, चूना, लकडी आदि की आवश्यकता पडती है, उसी प्रकार कथा के स्वरूप मे स्थिरता लाने एव उसे विशेष मनोरजक बनाने के लिए तथा उसमे रोमास की अभिवृद्धि के हेतु प्ररूढियो का प्रयोग अत्यावश्यक माना गया है । प्ररूढि को अभिप्राय भी कहते हैं । इसे अग्रेजी मे मोटिफ नाम से अभिहित किया जाता है । डॉ० श्यामाचरण दुबे इस अभिप्राय को कथा का मूल भाव मानते हैं । डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी इसे कथानक रूढि के रूप मे स्वीकार करते हैं ।[2]

राजस्थानी जैन कथाओ की कतिपय प्ररूढियाँ निम्नलिखित हैं —

(१) विलीन होते हुए मेघ को, श्वेत केश को, शव को, विजली की चमक को, वृद्ध को, नृत्य करती हुई स्त्री की मृत्यु को, या कोढी को देखकर विरक्त होना ।
(२) अवधि ज्ञानी मुनि के द्वारा आयु की समाप्ति जानकर मुनि दीक्षा ग्रहण करना ।
(३) जल यात्रा करते समय जहाज का भग हो जाना तथा काष्ठ फलक के सहारे नायक-नायिका की प्राण रक्षा ।
(४) शिकार खेलते हुए राजा का मूर्छित होना तथा घोडे का निर्जन वन में पहुचना ।
(५) भविष्यवाणी और आकाशवाणी की योजना ।
(६) स्वप्न-दर्शन के माध्यम से प्रेम का प्रस्फुटन ।
(७) शकुनापशकुन के द्वारा शुभाशुभ भविष्य का सकेत ।
(८) मत्र-तत्र जादू-टोना आदि का प्रभाव ।

---

१ देखिए—श्री अगरचन्द नाहटा के लेख—प्राचीन जैन राजस्थानी गद्य साहित्य (शोधपत्रिका) एव आदिकालीन राजस्थानी जैन साहित्य (परम्परा) ।

२ जैन कथाओ का सास्कृतिक अध्ययन श्रीचन्द्र जैन, पृ० ४२ ।

(९) स्वकीय पापो की आलोचना करते हुए विरक्त होना।
(१०) मत्रो के द्वारा सर्प-दश का शमन होना।
(११) मत्रित पादुकाओ से आकाश मे उडना।
(१२) श्मशान मे पुत्र-जन्म।
(१३) राजकुमार के चुनाव मे हाथी द्वारा माल्यार्पण।
(१४) जलदेवी द्वारा आशीर्वाद।
(१५) अग्नि कुड मे कूद कर निर्दोषता प्रमाणित करना।
(१६) सौतेली माता के दुर्व्यवहार से गृह-परित्याग।
(१७) शिशु को सन्दूक मे बद करके जल मे प्रवाहित करना।
(१८) साधु के आशीष से रोग का नष्ट होना।
(१९) गधोदक से कुष्ठ रोग की समाप्ति।
(२०) पद-प्रक्षालन से पति की पहिचान।
(२१) पद-स्पर्श से बद किवाडो का खुलना और इस प्रकार सच्चरित्रता प्रमाणित करना।
(२२) पूर्व पुण्य के द्वारा समस्त कलाओ मे निपुणता प्राप्त करना।
(२३) मरणासन्न पशु-पक्षी का णमोकार मत्र सुनकर स्वर्ग मे जाना।
(२४) पशु-पक्षियो का मानव-वाणी मे बोलना।
(२५) विदेश मे पति की मृत्यु हो जाने पर घर के वृक्ष का सूख जाना।
(२६) भव्य पशु-पक्षियो (हिंसक) द्वारा मुनि-उपदेश से मास-भक्षण का त्याग।
(२७) पुण्य के प्रभाव से आग का जल मे परिवर्तित हो जाना।
(२८) स्वमित्र के प्रबोधनार्थ स्वर्ग से देवता का मध्यलोक तथा अधोलोक मे आना।
(२९) जल मे लिखे गए मत्र का पाँव से मिटाना तथा इस पाप से नरक जाना।
(३०) शास्त्राभ्यास तथा मुनि-दर्शन से जाति स्मरण ज्ञान होना।
(३१) चौपड खेलते हुए अगूठी का अपहरण।
(३२) पौरुष की विविध परीक्षाए।
(३३) साधु निन्दा से कोढी बन जाना एव पश्चात्ताप से रोग-मुक्ति।
(३४) कुपित सिंह का मत्र के प्रभाव से शात हो जाना।
(३५) प्रभु स्मरण से विष का अमृत बनना।
(३६) पहेलिकाए पूछकर बुद्धि की परीक्षा।
(३७) भक्तामर स्तोत्र से कारागार-मुक्ति।
(३८) अतिशयधारी मुनि के प्रभाव से छ ऋतुओं का एक साथ आविर्भाव।
(३९) शीलवती के उपसर्ग को दूर करने के लिए स्वर्ग से इन्द्र का मध्यलोक मे आना।
(४०) मिथ्या भाषण से स्वय जीभ का कटकर गिरना।
(४१) किंजल्क जाति के पक्षी के प्रभाव से महामारी दुर्भिक्ष अपमृत्यु आदि रोगो का शमन।
(४२) साकेतिक भाषा का प्रयोग।

(४३) द्यूत मे पराजित होकर पति का गृह-त्याग तथा पत्नी की चतुराई से पति का स्वदेश आगमन ।

(४४) आराध्य की आराधना से सन्तान-प्राप्ति ।

(४५) विद्यालय मे सह पठन से युवक-युवती का प्रेम अकुरित होना ।

(४६) विशेष आकर्षण से विवाह के लिए हठ ।

(४७) रात मे किसी वृक्ष के नीचे लेटे हुए व्यक्ति का पेड पर बैठे हुए देवी-देवता के वार्तालाप का सुनना ।

(४८) पति द्वारा दीवाल अथवा वस्त्र पर कुछ सदेश लिखकर विदेश चला जाना ।

(४९) पुरुषवेश मे वधू का स्वपति की खोज मे परिभ्रमण ।

(५०) अधेरी रात मे शृगाल द्वारा विपत्ति के आगमन की सूचना ।

(५१) विविध लोक-विश्वासो का यथावसर उल्लेख ।

(५२) वृक्षो का वार्तालाप ।

(५३) अति मानवीय शक्ति का उपयोग ।

(५४) उबलते हुए तेल मे हाथ डालकर अपनी सच्चाई सिद्ध करना ।

(५५) आत्म-दाह की धमकी ।

(५६) मेघ, वायु, सूर्य, चन्द्रमा आदि के द्वारा सन्देश प्रेषण ।

(५७) जलते हुए दीपक का सहसा बुझ जाना और घर के प्रधान की मृत्यु होना ।

(५८) अशुभ कर्मोदय से काष्ठ की मोरनी का टगे हुए हार का निगलना ।

(५९) सुन्दरी के पद-प्रहार से वृक्षो का पुष्पित होना ।

(६०) पशु के द्वारा णमोकार मत्र का शुद्ध उच्चारण ।

(६१) साध्वी के अवलोकन मात्र से सूखे कूप का निर्मल जल से भर जाना ।

३४ | जैन आयुर्वेदिक साहित्य

०

श्री राजेन्द्रप्रकाश आ० भटनागर

जैन साधुओ और धनिको ने राजस्थान मे भारतीय कला, विज्ञान, शिक्षा और ज्ञान को अक्षुण्ण बनाये रखने मे अद्वितीय योगदान किया है। जैन यतियो ने 'उपासरो' के माध्यम से इस कार्य को जीवित रखा। ये 'उपासरें' शिक्षा और वैद्यक-चिकित्सा के लोकप्रिय केन्द्र थे। इनमे रहते हुए जैन यति शिक्षा देने के साथ-साथ चिकित्सा-कार्य द्वारा जनसामान्य को अनुप्राणित करते रहे है।

जैन आगम साहित्य मे वर्णित आयुर्वेद सवधी सदर्भो का पर्यालोचन डॉ० जगदीशचन्द्र जैन ने अपने शोधप्रवध "जैन आगम साहित्य मे भारतीय समाज" मे पृष्ठ ३०७–३१८ पर किया है।

जैन आयुर्वेद की परम्परा .

जैन आयुर्वेद को 'प्राणावाय' कहा जाता है। जैन तीर्थंकरो की वाणी अर्थात् उपदेशो को विपयो के अनुसार स्थूलरूप से बारह भागो मे विभाजित किया गया है, इन्हे 'द्वादशाग' कहते हैं। इनमे से अतिम अ ग 'दृष्टिवाद' कहलाता है। दृष्टिवाद के पाच भेद होते हैं—१ परिकर्म, २ सूत्र, ३ पूर्वगत, ४ अनुयोग और ५ चूलिका। पूर्व १४ हैं। इनमे से १२वें पूर्व का नाम 'प्राणावाय (प्राणायु) है। कायचिकित्सा आदि आठ अ गो मे सपूर्ण आयुर्वेद का प्रतिपादन, भूतशाति के उपाय, विषचिकित्सा और प्राण-अपान आदि वायुओ के शरीरधारण करने की दृष्टि से कर्म का विभाजन का जिसमे वर्णन किया गया है, उसे 'प्राणावाय' कहते हैं।

"कायचिकित्साद्यष्टागायुर्वेद भूतिकर्मजागुलिप्रक्रम ।
प्राणापानविभागोऽपि यत्र विस्तरेण वर्णितम्तत् प्राणावायम् ॥"

—तत्त्वार्थराजवार्तिक, अ १ सू २०

इस 'पूर्व' मे मनुष्य के आभ्यतर–मानसिक और आध्यात्मिक तथा बाह्य-शारीरिक स्वास्थ्य के उपायो जैसे यम-नियम, आहार-विहार और औषधियो का विवेचन है। साथ ही, दैविक, भौतिक, अधिभौतिक, जनपदध्वसी रोगो की चिकित्सा का विस्तार मे विचार किया गया है।

दिगम्बराचार्य उग्रादित्य ने अपने प्रसिद्ध वैद्यकग्रन्थ "कल्याणकारक" मे 'प्राणावाय' ननत वैद्यक-ज्ञान के अवतरण और परम्परा का सुन्दर निदर्शन किया है।

जब भरत चक्रवर्ती आदि भगवान् आदिनाथ के समवसरण मे मनुष्यो के रोगरूपी दु खो की मुक्ति का उपाय पूछने के लिए उपस्थित हुए, तब भगवान् ने उन्हे पुरुष, रोग, औषध और काल, इन चार वस्तुओ के रूप मे समस्त आयुर्वेद को बाटकर, उनके भेद-प्रभेद बताते हुए, सम्पूर्ण आयुर्वेद का ज्ञान प्रकटित किया । इस ज्ञान को सर्वप्रथम गणधरो और प्रति-गणधरो ने सीखा । उनसे श्रुतकेवलियो ने और श्रुतकेवलियो से बाद मे होने वाले अन्य मुनियो ने क्रमश प्राप्त किया ।

'प्राणावाय' की इस प्राचीन परम्परा का आयुर्वेद के अन्य ग्र थो में उल्लेख नही मिलता । 'प्राणावाय' के ग्रन्थो मे मद्य, मास व मधु का प्रयोग नही है । शल्यकर्म व हिंसा भी नही दिखाई देती । सभी योग वानस्पतिक व खनिज द्रव्यो से निर्मित है ।

कालान्तर मे 'प्राणावाय' की परम्परा स्वतन्त्र नही रहकर, उसका साहित्य आयुर्वेदीय ग्रन्थो मे ही समाविष्ट हो गया ।

जैन आयुर्वेदिक साहित्य की विशेषताएँ :

प्रस्तुत निबन्ध में राजस्थान के जैनसम्प्रदायानुयायी साधुओ आदि के द्वारा भारतीय चिकित्सा-विज्ञान—आयुर्वेद सम्बन्धी रचे गये साहित्य के सम्बन्ध मे परिचय उपस्थापित करने का प्रयास किया गया है । यह साहित्य अधिकाशत मध्ययुग मे रचा गया । मुझे कोई हस्तलिखित ग्रन्थ वि० १६वी शती से पूर्व का निर्मित, उपलब्ध नही हुआ । इस साहित्य से सम्बन्धित विशेषताओ को निम्न बिन्दुओ में प्रकट किया जा सकता है—

(१) यह साहित्य (जैन साधुओ आदि के द्वारा निर्मित) प्राय देशी भाषा—राजस्थानी, राजस्थानी मिश्रित गुजराती अथवा राजस्थानी मिश्रित हिन्दी में लिखा हुआ मिलता है । फिर भी कुछ ग्रन्थ सस्कृत में रचित भी प्राप्त हुए है ।

(२) ये ग्रन्थ अधिकाश में सग्रहात्मक हैं । कुछ मौलिक कृतियो की रचना भी हुई । सग्रहग्रन्थ विशेषकर चिकित्सा सम्बन्धी योगो के सकलन के रूप में हैं ।

(३) इनमे से कुछ ग्रन्थ तो ऐसे हैं, जो मध्यकाल में राजस्थान के वैद्यक-व्यवसाय के मुख्य आधार बने रहे । राजस्थान में इन ग्र थो का ही पठन-पाठन विशेष रूप से हुआ और वैद्य-समुदाय में इनके योगो का ही विशेष प्रचलन रहा । ऐसे अग्रणी और सर्वमान्य ग्र थो में हर्षकीर्तिसूरिकृत योग-चिंतामणि और हस्तिरुचिगणिकृत वैद्यवल्लभ विशेष उल्लेखनीय हैं ।

(४) देशी भाषा में लिखे गये अनेक ग्रन्थो में लोक-प्रचलित औषधियो और उनके नामों का भी प्रयोग हुआ है । इससे तत्कालीन प्रचलित 'लोक-वैद्यक' का अच्छा परिचय प्राप्त होता है । साथ ही, स्थानीय वोली में प्रचलित अनेक वनोपधियो का नवीनरूप से ज्ञान भी होता है, जिनका उल्लेख प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रन्थो में उपलब्ध नही होता । इस दृष्टि से यह समूचा साहित्य नि सदेह अधिक उपादेय है ।

(५) इस साहित्य में कुछ नवीन औषधियो और योगो के प्रयोग वर्णित हैं, जो वस्तुत अनुसधेय हैं ।

(६) कुछ ग्रन्थो में वैद्यक-औषधियो के साथ रोगो के इलाज में मान्त्रिक प्रक्रियाओ का भी उल्लेख मिलता है। सामुद्रिकविद्या, ज्योतिष, अ गविद्या और कामशास्त्र के वैद्यकविद्या की सम्पुष्टि में अनेक ग्रन्थ प्राप्त होते हैं।

(७) इन ग्रन्थो में प्राप्त योग प्राय छोटे-छोटे, अचूक और अनुभूत हैं। अत. चिकित्साक्षेत्र में उनकी अधिक मान्यता और सफलता सिद्ध हुई है।

राजस्थान का जैन आयुर्वेदिक साहित्य :

यहा कालक्रम से जैन आयुर्वेद ग्र थकार और ग्र थो का परिचय दिया जा रहा है—प्रथम सस्कृत के, फिर राजस्थानी भाषा के ग्र थो का।

आयुर्वेद के सस्कृत ग्रंथकार और ग्रथ

१ आशाधर —इनका नाम राजस्थान के आयुर्वेदज्ञ जैन विद्वानो में सर्वप्रथम मिलता है। ये बहुश्रुत प्रतिभासम्पन्न और महान् ग्र थकर्ता के रूप में जैन साहित्याकाश में जगमगाते नक्षत्र है। इनका न्याय, व्याकरण, काव्य, अलकार, योग, वैद्यक आदि अनेक विषयो पर अधिकार था। अपने ग्र थो (त्रिषष्टि-स्मृति, जिनयज्ञकल्प आदि) में इन्होने अपने स्थान और वश के विषय में प्रशस्ति दी है इससे ज्ञात होता है कि ये मडलकर (माडलगढ, जिला भीलवाडा) नामक दुर्ग के निवासी थे। ई० ११६३ में जब गजनी के शासक मोहम्मद गोरी का अधिकार अजमेर प्रात पर भी हो गया तो मुसलमानो के आक्रमणो से रक्षा के लिए ये अनेक परिवारो सहित धारानगरी (मालवा) में आकर रहने लगे। इनके पिता का नाम सल्लक्षण, माता का नाम रतनी, पत्नी का नाम सरस्वती और पुत्र का नाम छाहड था। ये व्याघ्रेरवालवशीय (बघेरवालवशीय) जैन वैश्य श्रावक थे। जैन धर्म के उदय (उत्कर्ष) के लिए ये धार को छोडकर २० मील दूर 'नलकच्छपुर (नालछा) मे आकर आजीवन रहे। आशाधर की रचनाओ मे मालवा के राजा विंध्यवर्मा, अर्जुनवर्मा, देवपाल और जैतुगिदेव का उल्लेख मिलता है, जिनके द्वारा उन्हे सम्मान प्राप्त हुआ था। ये गृहस्थ रहते हुए भी ससार से उपरत रहे। नाथूराम प्रेमी ने इनका जन्मकाल वि स १२३५ के लगभग प्रमाणित किया है।[१] इनकी सब रचनाए वि. स १२६० से १३०० के बीच की मिलती हैं। इनका उपलब्ध अ तिमग्रन्थ 'अनगारधर्मामृत टीका' वि स १३०० का है।

आशाधर के २० से भी अधिक ग्रन्थ मिलते है जो अधिकाश मे जैन सिद्धान्त, न्याय, व्याकरण पर हैं। इनके एक वैद्यक ग्रन्थ का भी उल्लेख मिलता है। वाग्भट के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अष्टागहृदय' पर इन्होने 'उद्योतिनी' या 'अष्टागहृदयोद्योतिनी' नामक टीका सस्कृत मे लिखी थी। यह ग्रन्थ अब अप्राप्य है। पीटर्सन ने अपनी सूची मे और ऑफ्रेक्ट ने अपने 'कॅटेलोगस केटेलोगोरम'[२] मे इस ग्रन्थ का उल्लेख तो किया है, परन्तु किसी हस्तलिखित प्रति का सदर्भ नही दिया है। 'अष्टाग-हृदय' पर हेमाद्रि (लगभग १२६० ई०) के बाद आशाधर ने ही टीका लिखी थी। निश्चित ही यह एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ रहा होगा। यदि इसकी कही कोई प्रति मिल जाय तो 'अष्टागहृदय' के व्याख्या

---

१ जैन साहित्य और इतिहास, पृ० १३३

२ Catalogus Catalogorum, Part I, p 36

साहित्य मे उससे महत्त्वपूर्ण वृद्धि होगी। इस टीका का उल्लेख हरिशास्त्री पराडकर[1] और पी० के० गोडे[2] ने भी किया है।

२ हर्षकीर्तिसूरि —(वि स १६६५ के आसपास) ये नागपुरीय (नागौरी) तपागच्छीय श्री चन्द्रकीर्तिसूरि के शिष्य थे। इनका काल विक्रम की सत्रहवी शती का उत्तरार्ध ज्ञात होता है। इनके अधिकाश ग्रन्थ सस्कृत भाषा मे मिलते हैं, कुछ ग्रन्थ देशी भाषा मे भी प्राप्त होते हैं। श्री मोहनलाल द० देसाई ने "जैन गुर्जर कविओ" भाग १, पृ० ४७० पर इनके अपने गुरु के नाम की सारस्वत व्याकरण की टीका, नवस्मरण की टीका, सिन्दुरप्रकर टीका, शारदीय नाम माला कोष, धातुतरगिणी, योगचिंतामणि, वैद्यकसारोद्धार, वैद्यकसार सग्रह, श्रुतबोधवृत्ति, विजयपहुत्त और बृहत् शाति पर वृत्ति, स० १६६३ मे अनित्कारिका विवरण और स० १६६८ मे कल्याणमदिरस्तववृत्ति आदि सस्कृत मे रचे। अनेक ग्रन्थो का उल्लेख किया है।

श्री देसाई ने इनके धातुरत्नमाला, योगचिंतामणि, वैद्यकसारोद्धार और वैद्यसारसग्रह नामक चार वैद्यक ग्रन्थो का उल्लेख किया है। वस्तुत अतिम तीन नाम एक ही ग्रन्थ के हैं। 'धातुरत्न-माला' की कोई प्रति हमारे देखने मे नही आयी। योगचिंतामणि के ही वैद्यकसारोद्धार और वैद्यकसार सग्रह अन्य नाम हैं। इसका रचनाकाल वि स १६६६ से किंचित पूर्व होना चाहिए। इस ग्रन्थ मे फिरग, चोपचीनी, अफीम और पारद का वर्णन उपलब्ध होने से डॉ० जोली ने भी इसका यही काल माना है। (J Jolly, Indian Medicine, पृ० ४) यह ग्रन्थ प्रकाशित हो चुका है। इस ग्रन्थ के प्रारम्भ मे वैद्य और रोगी के लक्षण, नाडी, मूत्र, नेत्र, मुख, जिह्वा, मल, स्पर्श और शब्द परीक्षाए, आयुर्विचार, आयुलक्षण, कालज्ञान, देशज्ञान, मानपरिभाषा, शारीरिक, सप्तकला, सप्त आशय, सप्त धातु, उपधातु और त्वचा का वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् क्रमश प्रथमादि षष्ठ अध्यायो मे पाक (३४), चूर्ण (६१), गुटिका (५६), क्वाथ (६४), घृत (२१), तेल (२२) के अन्वर्थ योगो का सग्रह किया गया है। सातवें मिश्रकाधिकार मे गुग्गुलुप्रकरण, (८ योग), शखद्राव, गधकविधि, शिलाजतु, स्वर्णादि धातु मारण, मृगाँकरस, ताम्र, बग, नाग, सार, मडूर, अभ्रक का मारण और गुण, धातुसत्वपातन, पारद शोधन, आदि रसशास्त्र सबधी विषय, सिद्धरसौषधिया (२५), आसव-अरिष्ट (६), लेप (३७), पचकर्म, रक्तमोक्ष, वाष्पस्वेदन, विषचिकित्सा, स्त्रीचिकित्सा, गर्भनिवारण, गर्भपातन प्रभृति विविध विषय, तथा अत मे कर्मविपाकप्रकरण दिया गया है। ग्रन्थ की प्राचीनतम ह०प्र० वि० स० १६६६ की मिली है। कुछ ह० प्रतिया सटीक, बालावबोध और मस्तवक प्राप्त होती हैं। इससे ग्रन्थ की उपयोगिता अधिक प्रतीत होती है।

३ हसराज मुनि —ये खरतरगच्छीय वर्द्धमानसूरि के शिष्य थे। इनका काल सत्रहवी शती ज्ञात होता है। इन्होने नेमिचन्द्र कृत प्राकृत 'द्रव्यसग्रह' पर बालावबोध लिखा था। इनकी अन्य रचना 'ज्ञानद्विपचाशिका-ज्ञानबावनी' भी मिलती है। इनका भिषक्चक्रचित्तोत्सव जिसे 'हसराजनिदानम्' भी कहते है, चिकित्सा विषयक ग्रन्थ है।

यह ग्रथ हसराजकृत भाषाटीका सहित वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित हुआ है

---

१ हरिशास्त्री पराडकर, अष्टागहृदय, उपोद्घात, पृ २६

२. पी० के० गोडे, अष्टागहृदय, (बम्बई १६३६), इंट्रोडक्शन, पृ ६

साहित्य मे उससे महत्त्वपूर्ण वृद्धि होगी। इस टीका का उल्लेख हरिशास्त्री पराडकर[1] और पी० के० गोडे[2] ने भी किया है।

२ हर्षकीर्तिसूरि —(वि स १६६५ के आसपास) ये नागपुरीय (नागौरी) तपागच्छीय श्री चन्द्रकीर्तिसूरि के शिष्य थे। इनका काल विक्रम की सत्रहवी शती का उत्तरार्ध ज्ञात होता है। इनके अधिकाश ग्रन्थ सस्कृत भाषा मे मिलते हैं, कुछ ग्रन्थ देशी भाषा मे भी प्राप्त होते हैं। श्री मोहनलाल द० देसाई ने "जैन गुजर कविओ" भाग १, पृ० ४७० पर इनके अपने गुरु के नाम की सारस्वत व्याकरण की टीका, नवस्मरण की टीका, सिन्दुरप्रकर टीका, शारदीय नाम माला कोष, धातुतरगिणी, योगचितामणि, वैद्यकसारोद्धार, वैद्यकसार सग्रह, श्रुतबोधवृत्ति, विजयपहुत्त और बृहत् शाति पर वृत्ति, स० १६६३ मे अनिल्कारिका विवरण और स० १६६८ मे कल्याणमदिरस्तववृत्ति आदि सस्कृत मे रचे। अनेक ग्रन्थो का उल्लेख किया है।

श्री देसाई ने इनके धातुरत्नमाला, योगचिंतामणि, वैद्यकसारोद्धार और वैद्यसारसग्रह नामक चार वैद्यक ग्रन्थो का उल्लेख किया है। वस्तुत अतिम तीन नाम एक ही ग्रन्थ के है। 'धातुरत्न-माला' की कोई प्रति हमारे देखने मे नही आयी। योगचिंतामणि के ही वैद्यकसारोद्धार और वैद्यकसार सग्रह अन्य नाम है। इसका रचनाकाल वि स १६६६ से किंचित पूर्व होना चाहिए। इस ग्रन्थ मे फिरग, चोपचीनी, अफीम और पारद का वर्णन उपलब्ध होने से डॉ० जोली ने भी इसका यही काल माना है। (J Jolly, Indian Medicine, पृ० ४) यह ग्रन्थ प्रकाशित हो चुका है। इस ग्रन्थ के प्रारम्भ मे वैद्य और रोगी के लक्षण, नाडी, मूत्र, नेत्र, मुख, जिह्वा, मल, स्पर्श और शब्द परीक्षाए, आयुर्विचार, आयुलक्षण, कालज्ञान, देशज्ञान, मानपरिभाषा, शारीरिक, सप्तकला, सप्त आशय, सप्त धातु, उपधातु और त्वचा का वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् क्रमश प्रथमादि षष्ठ अध्यायो मे पाक (३४), चूर्ण (६१), गुटिका (५९), क्वाथ (६४), घृत (२१), तेल (२२) के अव्यर्थ योगो का सग्रह किया गया है। सातवें मिश्रकाधिकार मे गुग्गुलुप्रकरण, (८ योग), शखद्राव, गधकविधि, शिलाजतु, स्वर्णादि धातु मारण, मृगांकरस, ताम्र, बग, नाग, सार, मडूर, अभ्रक का मारण और गुण, धातुसत्वपातन, पारद शोधन, आदि रसशास्त्र सबधी विषय, सिद्धरसौषधिया (२५), आसव-अरिष्ट (६), लेप (३७), पचकर्म, रक्तमोक्ष, वाष्पस्वेदन, विषचिकित्सा, स्त्रीचिकित्सा, गर्भनिवारण, गर्भपातन प्रभृति विविध विषय, तथा अत मे कर्मविपाकप्रकरण दिया गया है। ग्रन्थ की प्राचीनतम ह०प्र० वि० स० १६६६ की मिली है। कुछ ह० प्रतिया सटीक, बालावबोध और मस्तबक प्राप्त होती हैं। इससे ग्रन्थ की उपयोगिता अधिक प्रतीत होती है।

३ हसराज मुनि —ये खरतरगच्छीय वर्द्धमानसूरि के शिष्य थे। इनका काल सत्रहवी शती ज्ञात होता है। इन्होने नेमिचन्द्र कृत प्राकृत 'द्रव्यसग्रह' पर बालावबोध लिखा था। इनकी अन्य रचना 'ज्ञानद्विपचाशिका ज्ञानबावनी' भी मिलती है। इनका भिषक्चक्रचित्तोत्सव जिसे 'हसराजनिदानम्' भी कहते हैं, चिकित्सा विषयक ग्रन्थ है।

यह ग्रथ हसराजकृत भाषाटीका सहित वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित हुआ है

---

१ हरिशास्त्री पराडकर, अष्टागहृदय, उपोद्घात, पृ २९

२ पी० के० गोडे, अष्टागहृदय, (बम्बई १९३९), इंट्रोडक्शन, पृ ६

है। इनके वैद्यचिन्तामणि ग्रंथ के अन्य नाम 'वैद्यकसारोद्धार' और 'समुद्रसिद्धान्त' या 'समुद्रप्रकास-सिद्धान्त' दिये गये हैं। यह एक सग्रहग्रन्थ है। इसमें रोगो के निदान और चिकित्सा का पद्यबद्ध समुच्चय किया गया है।

३ लक्ष्मीवल्लभ :—ये खरतरगच्छीय शाखा के उपाध्याय लक्ष्मीकिर्ति के शिष्य थे। ये बीकानेर के रहने वाले प्रतीत होते हैं। ये अठारहवी शती के द्वितीय पाद में मौजूद थे। इनकी अधिकाश रचनाए वि स १७२० से १७५० के बीच में लिखी गई थी। इनका अन्य नाम 'राजकवि' भी मिलता है।

श्री देसाईजी ने 'जैनगुर्जर कवियो' भाग १ पृ २४३ पर इनकी रचनाओ का उल्लेख किया है—यथा रतनहास-चौपाई' १७२५, 'अमर कुमार चरित्ररास' 'विक्रमादित्य पचदड रास' स. १७२७, 'रात्रिभोजन चौपाई' स १७३८। इनकी वैद्यक पर दो कृतियां मिलती हैं—कालज्ञान और मूत्रपरीक्षा कालज्ञान शभुनाथकृत सस्कृत के 'काल ज्ञानम्' का पद्यवद्ध भाषानुवाद है। इसका रचनाकाल स० १७४१ है। ग्रन्थ मे कुल पाच समुद्देश (अध्याय) और कुल १७८ पद्य है। मूत्रपरीक्षा लेखक की अतिसक्षिप्त कृति है (पत्र १), कुल पद्य ३७ है। प्राप्त हस्तलिखित प्रति का लेखनकाल स० १७५१ है। सभवत यह किसी सस्कृत ग्र थ का भापानुवाद है।

४. मुनि मान :—ये खरतरगच्छीय भट्टारक जिनचद के शिष्य वाचक सुमतिसुमेर के शिष्य थे और बीकानेर के रहने वाले थे। वैद्यक पर इनकी दो रचनाए प्रसिद्ध हैं—कविविनोद और कवि-प्रमोद। इनकी अन्य रचना 'वैद्यकसार सग्रह' भी बतायी जाती है।

कविविनोद रोगो के निदान और औपधि के सम्बन्ध में लिखा गया है। इसमें दो खण्ड हैं, प्रथम में कल्पनाए हैं तथा दूसरे में चिकित्सा दी गई है। इसका निर्माण लाहौर में सम्वत् १७४५ में किया गया था। कविप्रमोद बहुत वडी कृति है (कुल पद्य २९४४)। इसमें नौ उद्देश (अध्याय) है। इसका रचनाकाल सम्वत् १७४६ है। यह स्वय कवि द्वारा इसी नाम से संस्कृत में प्रणीत ग्रन्थ का पद्यमय भाषानुवाद है। वाग्भट, सुश्रुत, चरक, आत्रेय, खरनाद, भेड के ग्रन्थो का सार लेकर इसका प्रणयन किया गया था। यह कवित्त और दोहा छदो में बनाया गया है।

५ जोगीदास —ये बीकानेर निवासी थे तथा बीकानेर के महाराजा अनूपसिंह और सुजानसिंह द्वारा राज्याश्रित व सम्मानित श्वेताम्बर जैन जोसीराय मथेन के पुत्र थे। जोसीराय को सुजानसिंह के शासनकाल मे वर्पासन, सासणदान और शिरोपाव देकर सम्मानित किया गया था। स्वय जोगीदास सुजानसिंह के पुत्र महाराजा जोरावरसिंह के शासन मे सम्मानित हुए थे। इनका अन्य नाम 'दास कवि' भी मिलता है। इन्होने वैद्यकसार की रचना बीकानेर के महाराजा जोरावर-सिंह की आज्ञा से स० १७६२ मे बीकानेर मे की थी।

६ समरथ —ये श्वेताम्बर खरतरगच्छ के सागरचन्द्रसूरि सन्तानीय मतिरत्न के शिष्य थे। दीक्षितावस्था का इनका नाम 'समयमाणिक्य' रखा गया। ये बीकानेर क्षेत्र के निवासी थे। इनके अनेक ग्रन्थ मिलते हैं, यथा केशवदास की ब्रजभापा मे रचित 'रसिकप्रिया' पर सस्कृत मे टीका (स० १७५५), 'बावनीगाथा', 'मल्लिनाथ पचकल्याणकस्तवन' आदि। वैद्यक पर 'रसमजरी भाषा टीका' मिलती है। यह ब्राह्मण वैद्यनाथ के पुत्र शालिनाथ द्वारा प्रणीत संस्कृत के 'रसमजरी' ग्रंथ की

श्रायुर्वेद के राजस्थानी ग्रंथकार श्रौर ग्रंथ

१. रामचन्द्र —ये खरतरगच्छीय यति थे। इनके गुरु का नाम पद्मरग गणि था। पद्मरग के गुरु पद्मकीर्ति हुए श्रौर पद्मकीर्ति के गुरु जिनसिंह सूरिराज हुए। जिनसिंहजी दिल्ली के शाहसलेम (सलीमशाह सूर) के काल में मौजूद थे श्रौर श्रपने उपदेशो से बादशाह को दयावान बना दिया था। उनको मुगल सम्राट श्रकबर श्रौर सलीम दोनो के द्वारा सम्मान प्रदान किया गया था। रामचद्र यति श्रौरगजेब के शासनकाल मे मौजूद थे। इसका समय वि. स १७२०-५० माना जाता है।

वैद्यक श्रौर ज्योतिष पर इनका श्रच्छा श्रधिकार था। इनके पूर्व गुरु भी वैद्यक मे निष्णात थे। वैद्यक पर 'रामविनोद' श्रौर वैद्यविनोद' की तथा ज्योतिप पर 'सामुद्रिक भापा' नामक ग्र थ की रचना की थी। इनके काव्यसबधी चार ग्र थ भी मिलते हैं—'समेदशिखरस्तवन' (स० १७५०), बीकानेर श्रादिनाथस्तवन' (स० १७३०), दश पच्चक्खाण स्तवन' (स० १७२१) मूलदेव चौपाई (स० १७११)। ये सब ग्रन्थ राजस्थानी-हिन्दी मे पद्यमय है। कुछ फुटकर भक्तिपरक पद्य भी मिलते हैं।

(१) रामविनोद :—(वि स १७२०) यह चिकित्साविषयक ग्रन्थ है। यह कृति स. १७२० मिगसर सुदी १३ बुधवार को समाप्त हुई थी। इसे सक्कीनगर (सिन्ध) मे बनाया गया था।

(२) वैद्यविनोद —इस ग्रन्थ की रचना-समाप्ति स १७२६ बसत ऋतु वैशाख पूर्णिमा को हुई थी। उस समय श्रौरगजेब का शासनकाल था।

यह ग्रन्थ मरोटकोट (बीकानेर राज्य) मे रचा गया था। यह शार्ङ्गधरसहिता का पद्यमय भाषानुवाद है। इसमे कुल २५२५ पद्य हैं। यह ग्रन्थ तीन खण्डो मे विभक्त है, उनकी पद्यसख्या क्रमश ४५६, १२६२, ७७७=२५२५ है। सामान्य जनता के सुखबोध के लिए लेखक ने इसकी रचना की थी।

(३) नाडी परीक्षा श्रौर (४) मानपरिमाण :—रामचद्र यति की ये दोनो रचनाए पृथक् से भी मिलती हैं, किन्तु रामविनोद की किसी-किसी प्रति मे मानपरिमाण के पद्य उसी मे सम्मिलित मिलते हैं। श्रत ये दोनो रचनाए स्वतन्त्र न होकर 'रामविनोद' के ही श्र श या पृथक् पृथक् श्रध्याय हैं।

(५) सामुद्रिक भाषा —यह स० १७२२ माघ कृष्णा ६ की रचना है। इसमे कुल २११ पद्य हैं। इसमे राजस्थानी भापा मे सामुद्रिकशास्त्र के श्रनुसार स्त्री श्रौर पुरुष के लक्षणो का वर्णन किया गया है। इस ग्रन्थ मे दो प्रकाश हैं—प्रथम में, ११७ पद्यो में नरलक्षण श्रौर द्वितीय में, ९४ पद्यो में नारीलक्षण बताये गये हैं। यह ग्र थ मेहरा नामक स्थान पर रचा गया था।

२ जिनसमुद्रसूरि —ये श्वेताम्बरी वेगडगच्छ शाखा के श्राचार्य थे। इनके गुरु का नाम जिणचदसूरि श्रौर उनके गुरु का नाम जिनेश्वरसूरि था। ये जैसलमेर क्षेत्र के निवासी थे। इनका काल विक्रम की सत्रहवी शती का श्र तिम काल ज्ञात होता है। इनके शिष्यो का नाम महिमहर्ष श्रादि था। इनकी रचनाएं राजस्थानी श्रौर श्रपभ्र श भापा में मिलती है। इनका वैद्यक पर एक ग्रंथ 'वैद्यचिन्तामणि' मिलता है। भर्तृहरिवैराग्यशतक की 'सर्वार्थसिद्धिमणिमाला' नामक श्रपभ्र श-टीका तथा 'तत्त्वप्रबोधनाटक' भी मिलते हैं। श्रन्य छोटी रचनाए 'नेमनाथ बारहमास' श्रादि भी मिलती

है। इनके वैद्यचिन्तामणि ग्रंथ के अन्य नाम 'वैद्यकसारोद्धार' और 'समुद्रसिद्धान्त' या 'समुद्रप्रकास-सिद्धान्त' दिये गये है। यह एक सग्रहग्रन्थ है। इसमें रोगो के निदान और चिकित्सा का पद्यवद्ध समुच्चय किया गया है।

३ लक्ष्मीवल्लभ :—ये खरतरगच्छीय शाखा के उपाध्याय लक्ष्मीकिर्ति के शिष्य थे। ये बीकानेर के रहने वाले प्रतीत होते हैं। ये अठारहवी शती के द्वितीय पाद में मौजूद थे। इनकी अधिकाश रचनाए वि स १७२० से १७५० के बीच में लिखी गई थी। इनका अन्य नाम 'राजकवि' भी मिलता है।

श्री देसाईजी ने 'जैनगुर्जर कवियो' भाग १ पृ २४३ पर इनकी रचनाओ का उल्लेख किया है—यथा रतनहास-चौपाई' १७२५, 'अमर कुमार चरित्ररास' 'विक्रमादित्य पचदड रास' स. १७२७, 'रात्रिभोजन चौपाई' स १७३८। इनकी वैद्यक पर दो कृतियां मिलती हैं—कालज्ञान और मूत्रपरीक्षा कालज्ञान शभुनाथकृत सस्कृत के 'काल ज्ञानम्' का पद्यवद्ध भाषानुवाद है। इसका रचनाकाल स० १७४१ है। ग्रन्थ मे कुल पाच समुद्देश (अध्याय) और कुल १७८ पद्य है। मूत्रपरीक्षा लेखक की अतिसक्षिप्त कृति है (पत्र १), कुल पद्य ३७ हैं। प्राप्त हस्तलिखित प्रति का लेखनकाल स० १७५१ है। सभवत यह किसी सस्कृत ग्रंथ का भापानुवाद है।

४. मुनि मान —ये खरतरगच्छीय भट्टारक जिनचद के शिष्य वाचक सुमतिसुमेर के शिष्य थे और बीकानेर के रहने वाले थे। वैद्यक पर इनकी दो रचनाए प्रसिद्ध हैं—कविविनोद और कवि-प्रमोद। इनकी अन्य रचना 'वैद्यकसार सग्रह' भी वतायी जाती है।

कविविनोद रोगो के निदान और औपधि के सम्बन्ध में लिखा गया है। इसमें दो खण्ड हैं, प्रथम में कल्पनाएं हैं तथा दूसरे में चिकित्सा दी गई है। इसका निर्माण लाहौर में सम्वत् १७४५ में किया गया था। कविप्रमोद वहुत वडी कृति है (कुल पद्य २९४४)। इसमें नौ उद्देश (अध्याय) है। इसका रचनाकाल सम्वत् १७४६ है। यह स्वय कवि द्वारा इसी नाम से सस्कृत में प्रणीत ग्रन्थ का पद्यमय भापानुवाद है। वाग्भट, सुश्रुत, चरक, आत्रेय, खरनाद, भेड के ग्रन्थो का सार लेकर इसका प्रणयन किया गया था। यह कवित्त और दोहा छदो में वनाया गया है।

५. जोगीदास —ये बीकानेर निवासी थे तथा बीकानेर के महाराजा अनूपसिंह और सुजानसिंह द्वारा राज्याश्रित व सम्मानित श्वेताम्बर जैन जोसीराय मथेन के पुत्र थे। जोसीराय को सुजानसिंह के शासनकाल मे वर्षासन, सासणदान और शिरोपाव देकर सम्मानित किया गया था। स्वय जोगीदास सुजानसिंह के पुत्र महाराजा जोरावरसिंह के शासन मे सम्मानित हुए थे। इनका अन्य नाम 'दास कवि' भी मिलता है। इन्होने वैद्यकसार की रचना बीकानेर के महाराजा जोरावर-सिंह की आज्ञा से स० १७६२ मे बीकानेर मे की थी।

६ समरथ —ये श्वेताम्वर खरतरगच्छ के सागरचन्द्रसूरि सन्तानीय मतिरत्न के शिष्य थे। दीक्षितावस्था का इनका नाम 'समयमाणिक्य' रखा गया। ये बीकानेर क्षेत्र के निवासी थे। इनके अनेक ग्रन्थ मिलते है, यथा केशवदास की व्रजभापा मे रचित 'रसिकप्रिया' पर सस्कृत मे टीका (स० १७५५), 'वावनीगाथा', 'मल्लिनाथ पचकल्याणकस्तवन' आदि। वैद्यक पर 'रसमजरी भापा' टीका' मिलती है। यह ब्राह्मण वैद्यनाथ के पुत्र शालिनाथ द्वारा प्रणीत संस्कृत के 'रसमजरी' ग्रंथ की

पद्यमय भाषाटीका है। इसका रचना काल स० १७६४ है। यह रसविद्या सम्बन्धी ग्रंथ है। इस मे कुल १० अध्याय हैं।

७. दीपचन्द्र वाचक —सस्कृत ग्रंथो के सदर्भ मे इनका परिचय पूर्व मे दिया जा चुका है। अहिच्छत्रानगर (वर्तमान नागौर) के निवासी रामचन्द्र के पौत्र और महिधर के पुत्र कल्याणदास ने सस्कृत मे 'बालतन्त्र' की रचना की थी। 'बालतन्त्र भाषावचनिका' नाम से इसकी भाषाटीका इन्होने की। इसमे बालचिकित्सा का वर्णन कुल १५ पटलो मे हुआ है।

८. चैनसुख यति —ये खरतरगच्छीय जिनदत्तसूरि शाखा के लाभनिधान के शिष्य थे। इनका निवास स्थान फतहपुर (सीकर) था। इनके शिष्य चिमनीरामजी ने फतहपुर मे स० १८६८ मे इनकी छतरी (समाधि) बनाई थी। फतहपुर (शेखावटी) मे इनकी परम्परा के यति आज भी विद्यमान है। ये अच्छे वैद्य थे। इनके वैद्यक पर दो ग्रन्थ राजस्थानी मे मिलते है—'सतश्लोकी भाषा टीका और 'वैद्यजीवनटबा' सतश्लोकी भाषा टीका बोपदेवकृत 'सतश्लोकी' की गद्य मे (राजस्थानी) भाषा टीका है। इसकी रचना महेश की आज्ञा से इन्होने रतनचन्द्र के लिए की थी। इसका रचनाकाल स० १८२० है।

९. पीताम्बर —ये विजयगच्छीय आचार्य विनयसागरसूरि के शिष्य थे। विनयसागरसूरि अच्छे उपदेशक और रससिद्ध कवि थे। ये मेवाड के महाराणा राजसिंह के शासनकाल मे विद्यमान थे। यह काल मेवाड के सास्कृतिक इतिहास मे स्वर्णकाल माना जाता है और इस काल मे साहित्य, सगीत, शिल्प व चित्रकला का विशिष्ट विकास हुआ। स० १७२५ मे औरगजेब के मेवाड पर आक्रमण से मेवाड को दुर्दिन देखने पडे। विनयसागरसूरि के लिए पीताम्बर के ग्रन्थ मे—'वैद्यविद्या विशारद' आदि विरुद प्रयुक्त होने से उनका अच्छा चिकित्सक होना प्रमाणित होता है। पीताम्बर मेवाड के ही निवासी थे। और उन्होने अपना ग्रन्थप्रणयन भी उदयपुर मे किया था। इनका एक ही ग्रन्थ मिलता है, जो गुटके के रूप मे सकलित है। इस प्रकलन का नाम स्वय लेखक ने 'आयुर्वेदसार-सग्रह' स्वीकार किया है। इसका रचनाकाल स० १७५९ है। इसमे शताब्दियो से अनेक कुशल अनुभवी आचार्यों द्वारा अनुभूत प्रयोगो का सग्रह किया गया है। सम्पूर्ण प्रयोग वानस्पतिक हैं और सरलता से प्राय सर्वत्र उपलब्ध हो जाते हैं। कुछ रस-प्रयोग (रस व धातुओ से निर्मित प्रयोग) भी दिये गये हैं। जिन विशिष्ट विद्वानो से योग प्राप्त हुए थे, उनके नाम भी सकलनकर्ता ने उल्लेखित किये है, जैसे खीमसी, जोशी भगवानदास, ठाकुरशी नाणावाल, बालगिरि आदि। परीक्षित प्रयोगो को लौकिक भाषा (मेवाडी) मे प्रस्तुत करना इस सकलन का प्रयोजन था। इसमे मेवाड के राज-परिवार मे प्रयुक्त होने वाले योग भी सगृहीत किये गये है। ठाकरसी नाणावाल और जोशी भगवानदास ये दोनो उस समय मे उदयपुर के विख्यात चिकित्सक और रसायनशास्त्री थे। ये दोनो ही गुसाई भारती के शिष्य और राजवैद्य थे। यह ग्रन्थ उदयपुर मे रचा गया है। अत इनमे विशेषरूप से मेवाड मे प्राप्त होने वाली वनस्पतियो का प्रचुर प्रयोग दर्शाया गया है, जैसे 'गाठियाझड'। यह वातनाशक व अस्थिसंधानक है और एकलिंगजी के समीप राठासन की पहाडी पर बहुत होती है। लेखक ने धातुस्तभन प्रयोगो मे 'सिंहवाहनी गुटिका' का प्रयोग लिखा है, जिसे महाराणा कुम्भा सेवन करते थे। इसमे द्रव्य साधारण है, परन्तु यह उत्तम गुणकारी है। इसी प्रकार राजा जगन्नाथ की 'कामेश्वर गुटिका' भी वर्णित हैं। विषनाशक प्रयोगों मे 'वाद्यबालविषनाश' के प्रयोग उल्लेखनीय हैं।

१०. ज्ञानसार :—ये खरतरगच्छीय जिनलाभसूरि के शिष्य रत्नराज के शिष्य थे। इनका जन्म वि० स० १८०१ मे बीकानेर राज्यान्तर्गत जागूल के समीप जैंगलेवास नामक ग्राम मे हुआ था। इनके पिता का नाम उदयचन्द्रजी साड और माता का नाम जीवनदे था। इनकी दीक्षा स० १८१२ मे खरतर जिनलाभसूरि के शिष्य रायचन्द्र (रत्नराजगणि) के पास हुई थी। इन्होने अपने अनुभव और परिश्रम से ही शास्त्राभ्यास किया। यह एक मस्त योगी, कवि और आध्यात्मिक पुरुष थे। बीकानेर के राजा सूरतसिंह, जयपुर नरेश प्रतापसिंह, जैसलमेर के रावल गजसिंह और जोरावरसिंह इनके भक्त और अनुरागी थे। स० १८६६ के लगभग इनका स्वर्गवास हुआ था। इनका प्रसिद्ध नाम 'नारायणी बावा' था। सदासुख, हरसुख आदि इनके शिष्य थे। इनकी रचनाए प्राय हिंदी मे और क्वचित् राजस्थानी मे मिलती हैं। वैद्यक के वाजीकरण पर इनका 'कामोद्दीपन ग्रन्थ' राजस्थानी-हिन्दी में मिलता है। इस ग्रन्थ की रचना इन्होने स० १८५६ वैशाख शुक्ल ३ को जयपुर मे महाराजा प्रतापसिंह (माधवसिंह के पुत्र) के शासनकाल मे गुरु रत्नराज की प्रेरणा और आग्रह से की थी।

११. प० लक्ष्मीचद जैन —ये नैनचन्द के शिष्य, मोतीराम के शिष्य, श्रीलाल के शिष्य थे। ये जैन श्रावक थे और पत्रारी शहर के निवासी थे। इनकी एक वैद्यककृति 'लक्ष्मीप्रकाश' के नाम से मिलती है। इस कृति की यह विशेपता है कि इसमे प्रयुक्त लगभग सभी योग स्वानुभवमूलक हैं, जिसकी सूचना लेखक ने स्थान-स्थान पर दी है। इसमें प्रथम रोग का निदान, पूर्वरूप लक्षण का और फिर शास्त्रीय चिकित्सा का वर्णन है। जिन व्यक्तियो से लेखक को योग प्राप्त हुए थे, उनका भी उल्लेख उसने किया है। इस ग्रन्थ के निर्माण मे वाग्भट, माधवनिदान, भावप्रकाश, योग चिंतामणि आदि ग्रन्थो की सहायता ली गई है। इस ग्रन्थ का रचना काल वि सम्वत् १९३७ है।

१२ मलूकचन्द :—ये खरतरगच्छीय जैन श्रावक थे। सम्भवत इनका बीकानेर क्षेत्र निवास स्थान था। श्री अगरचद नाहटा ने इनका समय १९वी शताब्दी माना है। इनकी 'वैद्यहुलास' कृति मिलती है। यह यूनानी चिकित्सा शास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'तिव्व सहावी' का भाषा मे पद्यमय अनुवाद है। इसमें कुल ५१८ पद्य हैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि राजस्थान के जैन यतिमुनियो की आयुर्वेद को महान् देन रही है। अनेक व्यक्तिगत ग्रंथागारो में अभी भी जैनानुयायियो द्वारा रचित सैकडो आयुर्वेदिक ग्रथ खोजे जा सकते हैं। प्रस्तुत निबन्ध में उनमें से कतिपय ग्रंथो और उनके रचनाकारो का सक्षिप्त परिचय मात्र दिया गया है।

३५ हस्तलिखित जैन ग्रंथ भंडार

श्री अगरचन्द नाहटा

जैनधर्म का राजस्थान मे खूब प्रचार रहा है। गाव-गाव मे साधु-साध्वी विचरते थे। आगे चल कर चैत्यवासी आचार्य, भट्टारक व यति तो कई ग्राम नगरो मे स्थायी रूप से रहने लगे। उन यति एव मुनियो ने बहुत बडा साहित्य निर्माण किया और लाखो हस्तलिखित प्रतिया अपने हाथ से लिखी और श्रावक-श्राविकाओ को उपदेश देकर लहियो से लिखवाईं। उन हस्तलिखित प्रतियो के सग्रह का काम 'ज्ञानभडार' के रूप मे प्रसिद्ध है। जहा-जहा जैनाचार्य और यति, मुनि रहते थे उनके पास हस्तलिखित, प्रतियो का सग्रह होता ही था। इसलिये राजस्थान मे हस्तलिखित प्रतियो के सग्रह रूप ज्ञानभडार हजारो की सख्या मे थे। पर मुद्रण युग मे छपी हुई पुस्तकें बिना परिश्रम व थोडे ही मूल्य मे अच्छे रूप मे मिल जाने लगी। तब हस्तलिखित प्रतियो का पठन-पाठन रूप उपयोग कम होता चला गया। फलत बहुत से लोगो ने कोडियो के मोल अपना सग्रह बेच डाला। इसी तरह लाखो प्रतिया राजस्थान से अग्रेजो के राज्य मे अन्य प्रदेशो और विदेशो मे चली गईं। मुसलमानी साम्राज्य के समय अनेक ग्र थ भडार नष्ट हो गये। उचित सारसभाल के अभाव मे हजारो प्रतिया चूहो और दीमको की भक्ष्य बन गईं। वर्षा और सर्दी के प्रभाव से हजारो प्रतियो के पत्र चिपककर थेपडे बन गये। उन्हे जलाने के काम मे ले लिया गया। इसी तरह हजारो प्रतिया पानी मे भिगोकर कूटे के काम मे ले ली गईं। इतना जबर्दस्त विनाश होने के उपरान्त भी राजस्थान मे अभी लाखो हस्तलिखित प्रतिया बच गई है। ज्ञानभडारो का सरक्षण जैनाचार्यों और श्रावको ने बहुत सावधानी से किया। नई प्रतिया लिखवाते ही रहे और यति लोग स्वय भी लिखते रहते थे। इसी का परिणाम है कि इतना बडा सग्रह राजस्थान मे ही बचा हुआ है। जैसलमेर मे अन्य प्रातो से लाकर भी ग्र थ सुरक्षित किये गये थे।

राजस्थान मे दिगम्बर[1] और श्वेताम्बर दोनो सप्रदायो के अनेको विशाल ग्र थ भडार हैं। इनमे से श्वेताम्बर ज्ञान भडारो का ही यहा सक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है। इन भडारो मे कुछ तो व्यक्ति विशेष के पास है, कुछ सघ की देखरेख मे हैं। व्यक्तिगत सग्रह बहुत से बिक गये और

---

१ दिगम्बर ग्र थ भण्डारो की विशेष जानकारी के लिए डॉ० कासलीवाल का 'जैन ग्र थ भण्डार्स इन राजस्थान' ग्र थ द्रष्टव्य है। —सम्पादक

अब भी विकते ही जा रहे है। सघ की देखरेख वाले भडार व्यक्तिगत सग्रही की अपेक्षा अधिक बचे रहे हैं। गत ५० वर्षों मे मेरी जानकारी मे ही बीकानेर के कई सग्रह अब नही रहे। २० वर्ष पहिले हमारा 'बीकानेर जैन लेख सग्रह' नामक ग्रथ प्रकाशित हुआ था। उसकी विस्तृत भूमिका मे हमने बीकानेर के करीब ३० श्वेताम्बर हस्तलिखित ज्ञान भण्डारो का सक्षिप्त विवरण दिया था। राजस्थान के हस्तलिखित ग्रथ भण्डारो के सम्बन्ध मे मेरा एक विस्तृत लेख 'मरुभारती' मे प्रकाशित हुआ था। जैसलमेर और बीकानेर के ज्ञानभण्डारो के सम्बन्ध मे तो हमारे स्वतत्र लेख भी प्रकाशित हो चुके है। जयपुर के डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल ने तो राजस्थान के ग्रथ भण्डारो पर शोध प्रबन्ध ही लिख डाला है जो जैन साहित्य शोध सस्थान श्री महावीरजी तीर्थ क्षेत्र कमेटी जयपुर से (अग्रेजी मे) प्रकाशित हो चुका है। दिगम्बर ग्रथ भण्डारो की सूचिया तैयार करने व प्रकाशित करने का काम भी उक्त सस्था से काफी अच्छे रूप मे हुआ है। श्वेताम्बर ग्रथ भण्डारो मे विनयचन्द्र ज्ञान-भण्डार जयपुर की सूची का एक भाग प्रकाशित हुआ है। इसका सम्पादन डॉ० नरेन्द्र भानावत ने किया है। बहुत वर्ष पहिले रत्न प्रभाकर ज्ञान भण्डार ओसिया की एक सूची प्रकाशित हुई थी। चूरु की सुराणा लाइब्रेरी की सूची बनी जरूर थी, पर प्रकाशित नही हो सकी। अन्य राजस्थान के श्वेताम्बर ज्ञान भण्डारो की सूची प्रकाशित नही हुई। कई महत्त्वपूर्ण ज्ञानभण्डारो की सूचियाँ हमने भी तैयार की हैं। स्वर्गीय हरिसागर सूरिजी ने भी बीकानेर के क्षमा कल्याण ज्ञानभण्डार व उदयपुर के खरतरगच्छीय ज्ञानभण्डार की सूची बनाई थी। जैनेतर एव राजकीय हस्तलिखित ग्रथ सग्रहालयो मे भी हजारो जैन प्रतिया है जिनमे से कुछ की सूची जैनेतर ग्रथो के साथ प्रकाशित भी हो चुकी है। कई ग्रथ भण्डारो की सूची अभी तक बनी ही नही हैं। कइयो की पुराने ढग की सूची बनी हुई है जिसमे केवल ग्रथ का नाम व पत्र सख्या ही लिखी रहती है। कही-कही रचयिता का नाम भी लिख दिया जाता है। आवश्यकता है विवरणात्मक सूची बनाने और प्रकाशित करने की।

अब सर्वप्रथम बीकानेर के ही जैन ज्ञानभण्डारो यानि हस्तलिखित प्रतियो के सग्रहालयो का विवरण दिया जा रहा है क्योकि अपना निवास स्थान होने से उसकी ही सबसे अधिक जानकारी मुझे है। मेरी दृष्टि मे राजस्थान मे हस्तलिखित प्रतियो का सग्रह सबसे अधिक मैंने ही किया है फलत. बीकानेर मे १ लाख हस्तलिखित प्रतिया सग्रहीत हैं, जो राजस्थान के अन्य किसी भी नगर या स्थान मे नही हैं। हस्तलिखित प्रतियो की खोज और सग्रह का मुझे गत ४५ वर्षों से व्यसन सा पड गया है। इसी के फलस्वरूप ६० हजार हस्तलिखित प्रतिया मैंने अपने अभय जैन ग्रथालय मे अब तक सग्रह करली हैं और वह सग्रह दिनो दिन बढता ही जा रहा है। क्योकि उचित दामो मे जहा कही से भी जितनी भी हस्तलिखित प्रतिया मुझे मिलती हैं उनको खरीद कर अपने ग्रथालय मे सुरक्षित रखने मे मैं आगे पीछे नही देखता। वास्तव मे ऐसी ही धुन से इतना बडा काम हो सकता है।

अभय जैन ग्रथालय मेरे बडे भाई अभयराजजी नाहटा, जिनका केवल २२ वर्ष की आयु मे ही जयपुर मे स्वर्गवास हो गया था, उनकी स्मृति मे स्थापित किया गया है। इस ग्रथालय के विकास की कुछ जानकारी 'सम्मेलन पत्रिका' मे प्रकाशित की जा चुकी है। इस ग्रथालय मे केवल जैन ग्रथ ही नही है। वेद, पुराण, उपनिषद्, काव्य, नाटक, छद, ज्योतिष, वैद्यक, मत्रतत्र आदि सभी विषयो के ग्रथो का सग्रह किया गया है। राजस्थान से ही नही मध्य प्रदेश पजाब और दक्षिण भारत से भी विविध लिपियो व विविध भाषाओ के ग्रथ सग्रहीत किये गये है। इनमे बहुत से ऐसे भी ग्रथ हैं जिनको

विश्वभर मे अन्य कोई प्रति प्राप्त नही है। दुर्लभ और महत्त्वपूर्ण ग्र थो की सख्या तो सैकडो नही हजारो पर हैं। जहा कही भी जो भी महत्त्व की रचना मिली उसकी फोटू कॉपी और नकल करवाकर के सग्रहीत करने का प्रयत्न किया गया है। वैसे साधारण और अपूर्ण ग्र थ भी बहुत से हैं। फुटकर पत्र भी हजारो हैं। तो गुटके भी हजार से अधिक सख्या मे हैं जिनमे से १-१ गुटके मे छोटी-मोटी १०-२० ही नही, पचासो और सैकडो रचनाये भी लिखी हुई हैं। अपने सारे जीवन की यही सबसे बडी उपलब्धि मै मानता हू। एक भी हस्तलिखित पत्र इधर-उधर पडा देखता हू तो मुझे इतना दर्द होता है कि उसको लेने व सुरक्षित रखने मे मैं नही चूकता। सोचता हूँ प्रति के लिखने वाले ने कितना श्रम और समय लगाया और किस आशा के साथ अपनी इच्छित सामग्री उपयोग और परोपकार के लिये लिखकर रखी, वह यो ही बर्बाद हो जाय तो इससे बडी कृतघ्नता व मूर्खता क्या होगी। इसकी मैं कल्पना ही नही कर सकता।

बीकानेर मे खरतरगच्छ का प्रभाव बहुत अधिक रहा है। यहा के ओसवालो की २७ गवाड मानी जाती हैं। उसमे १३ गवाड तो केवल खरतरगच्छ के अनुयायियो की ही थी। बाकी १४ मे भी खरतरगच्छ वालो के साथ-साथ तपागच्छ, पायचदगच्छ, कवलागच्छ और लौंकागच्छ सभी का समावेश हो जाता है। खरतरगच्छ के दो श्रीपूज्यो की गद्दी बीकानेर मे है। पहली गद्दी के श्रीपूज्यजी भट्टारक कहलाते हैं और दूसरी गद्दी के आचार्य। सवत् १६८६ मे जिनराजसूरि और जिनसागरसूरि से खरतरगच्छ की ये दोनो शाखायें अलग हुईं। पहली शाखा का स्थान 'बडा उपासरा' है और ठीक उसी के पीछे आचार्य शाखा का उपासरा है। इन दोनो उपासरो मे पहले सैकडो यति रहते थे। १७वी शताब्दी मे भी यहा अच्छा ज्ञानभण्डार था। बीकानेर के महाराजा रायसिंहजी ने भी कुछ जैन हस्तलिखित प्रतिया अकबर प्रतिबोधक युग प्रधान जिनचन्द्रसूरिजी को बहरायी थी। सवत् १६४६ मे लाहौर मे बहराई हुई ऐसी कुछ प्रतिया हमारे देखने मे आई हैं, जो बीकानेर के ज्ञानभण्डार मे रखी गई होगी। पर वह प्राचीन ज्ञानभण्डार सुरक्षित नही रह सका इधर-उधर हो गया। बडा उपासरा श्रीपूज्यजी के सग्रह मे करीब ४००० हस्तलिखित प्रतिया थी। वे 'राजस्थान प्राच्य विद्याप्रतिष्ठान' मे बीकानेर की शाखा मे दे दी गई है। सवत् १६५८ मे हिमतूजी (हितवल्लभगणी) ने बडी दीर्घ दृष्टि से बडे उपासरे मे एक ज्ञानभण्डार स्थापित किया। इसमे ६ यतियो का सग्रह है जिनमे महिमा भक्ति और दानसागर इन दो यतियो का तो परम्परागत बडा सग्रह करीब ३-३ हजार, कुल ६ हजार प्रतियो का है। इसके अतिरिक्त वर्द्धमान, अभयसिंह, जिनहर्षसूरि, अबीरजी, भुवनभक्ति, रामचन्द्र, मेहरचन्द्र आदि की प्रदत्त प्रतिया करीब ४ हजार मिलाकर इस वृहद् ज्ञानभण्डार मे करीब १० हजार हस्तलिखित प्रतिया सुरक्षित हैं। यह खरतरगच्छ सघ का भण्डार है, जिसका मैं भी एक ट्रस्टी हूँ। कई महिने तक निरन्तर परिश्रम करके इसकी विवरणात्मक सूची मैंने बनाई, जिसका सशोधन पूज्य श्री पुण्य विजयजी जैसे जैन ज्ञानभण्डारो के मर्मज्ञ विद्वान् के हाथ से हो चुका है। प्रतियो पर सफेद मोटा कागज लपेटकर के सुन्दर अक्षरो मे नाम पत्र सख्यादि लिखे हुए हैं। एक ताडपत्रीय प्रति भी है। १५-१६वी शताब्दी की कई महत्त्वपूर्ण सग्रह प्रतिया हैं। १७वी से २०वी के पूर्वार्द्ध तक की तो हजारो प्रतिया हैं ही। कई गुटके भी बडे महत्त्वपूर्ण है। विद्या प्रेमी ६ यतियो के परम्परागत सग्रह होने के कारण यह खरतरगच्छीय वृहद् ज्ञानभण्डार बडे महत्त्व का है।

मुनि जिनविजयजी की प्रेरणा से बीकानेर के कुछ महत्त्वपूर्ण श्वेताम्बर ज्ञानभण्डार

राजस्थान सरकार के सरक्षण मे दे दिये गये है। राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान की शाखा के रूप मे यह जैन यतियो का सग्रह अभी स्टेडियम मे रखा हुआ है जिसमे २१ हजार हस्तलिखित प्रतिया है। बीच मे जब मेरे ग्रथालय का मकान बन रहा था और प्रतियो को रखने की असुविधा थी तो मैंने राजस्थानी चित्रकला के प्रेमी व सग्राहक श्री मोतीचन्दजी खजान्ची को हस्तलिखित प्रतिया सग्रह करने की प्रेरणा दी और उन्होने थोडे ही वर्षों मे करीब ८ हजार प्रतिया सग्रहीत कर ली। जिसे उन्होने राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के उक्त सग्रह मे दे दी हैं। इसी तरह बडे उपासरे के श्रीपूज्यजी का महत्त्वपूर्ण ज्ञानभण्डार जिसमे करीब ४ हजार प्रतिया हैं और दूसरा इसी तरह का बडा महत्त्वपूर्ण सग्रह उपाध्याय जयचन्दजी का (श्री जैन लक्ष्मी मोहनशाला ज्ञानभण्डार) तथा अन्य कई यतियो का सग्रह राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान को बीकानेर मे ही सरक्षण के लिये दे दिया गया है। यह सग्रह भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसकी सूची का भी १ भाग तो प्रकाशनार्थ तैयार किया हुआ पडा है। प्रतिष्ठान के सचालको को उसे शीघ्र ही प्रकाशित करना चाहिये।

बीकानेर के विश्वविख्यात अनूप सस्कृत लाइब्रेरी मे भी हजारो जैन हस्तलिखित प्रतिया हैं। इस लाइब्रेरी के अन्य कई विभागो के तो सूचीपत्र छप भी गये हैं। उनमें भी बहुत से जैन ग्रथ हैं, पर एक स्वतन्त्र जैन विभाग है उसकी सूची अभी तक प्रकाशित नही हुई है, ठीक से बनी भी नही है। पहले केवल ग्रथो के नाम व पत्र सख्या की सूची बनी थी वह भी कही इधर-उधर हो गई। महाराजा अनूपसिंहजी के विद्या प्रेम से आकर्षित होकर बडगच्छ, पायचदगच्छ, खरतरगच्छ आदि के आचार्यों एव यतियो ने हजारो प्रतिया महाराजा को दे दी थी। वे महत्त्व की तो हैं ही पर उसमे कुछ जैन ग्रथ ऐसे भी हैं जो अन्यत्र कही भी नही मिलते।

बडे उपाश्रय मे श्रीपूज्यजी और अन्य कई यतियो के पास कुछ हस्तलिखित सग्रह अब भी है ही। आचार्य शाखा के उपाश्रय का कुछ सग्रह तो इधर-उधर हो गया। फिर भी कुछ बचा होगा। जिनकृपाचद्रसूरिजी का महत्त्वपूर्ण ज्ञानभण्डार भी उनके यति-शिष्य ने बेच दिया। बीकानेर के अन्य ग्रथ भण्डार इस प्रकार है —

गोविन्द पुस्तकालय —गोविन्दरामजी भीखनचदजी भसाली की कोटडी में एक ग्रथालय है। जिसमें गोविन्दरामजी ने मुद्रित ग्रथो के साथ-साथ करीब १७०० हस्तलिखित प्रतिया भी सग्रह कर रखी हैं।

सेठिया जैन लाइब्रेरी —अगरचन्द भैरोदान सेठिया जैन पारमार्थिक सस्था के अतर्गत यह पुस्तकालय छात्रावास और जैन औषधालय से ऊपर के बडे हॉल मे रखा हुआ है। इसमे मुद्रित ग्रथो का तो बहुत अच्छा सग्रह है ही पर करीब १५०० हस्तलिखित प्रतिया भी हैं। स्वर्गीय भैरोदानजी सेठिया ने बहुत सी हस्तलिखित प्रतिया तो स्वय ने लिखवाई थी और बहुत सी पुरानी भी खरीद ली थी।

क्षमा कल्याणजी का ज्ञानभण्डार —सुगनजी के उपाश्रय मे १९वी शताब्दी के सवेगी उपाध्याय क्षमा कल्याणजी के सग्रह की करीब ७०० हस्तलिखित प्रतिया इस ज्ञानभण्डार मे हैं।

हेमचन्द्रसूरि पुस्तकालय —आसानियो बाठियो की गवाड मे पायचन्दगच्छ के श्रीपूज्यजी के उपासरे के सग्रह मे करीब १२०० हस्तलिखित प्रतिया हैं।

कुशलचन्द्रगणि पुस्तकालय —रामपुरियो की गवाड मे अवस्थित पायचन्दगच्छ के उपाश्रय मे स्थित इस पुस्तकालय मे मुद्रित ग्र थो के साथ-साथ करीब ४५० हस्तलिखित प्रतिया हैं।

पन्नीवाई के उपाश्रय का ज्ञानभण्डार —राव गोपालसिहजी के जसवत भवन के पास की गली के उपासरे मे करीब ३०० हस्तलिखित प्रतिया हैं।

छतिबाई उपासरे का ज्ञानभण्डार —नाहटो की गवाड के सुपार्श्वनाथजी के मन्दिर से सलग्न उपासरे मे करीब ३०० प्रतिया है।

कोचरो के उपाश्रय का ज्ञानभण्डार —इसमे करीब ३० बडल हस्तलिखित ग्र थ हैं। जिसकी सूची बनी हुई नही है।

इनके अतिरिक्त बोथरो की गवाड मे जेठीबाई के ज्ञानभण्डार मे करीब ५०० हस्तलिखित प्रतिया है। इसी गवाड मे मगलचन्दजी मालू के यहा भी शताधिक प्रतिया है। इसी तरह मानमलजी कोठारी, शिवचन्दजी भावक और रामपुरिया-परिवार आदि के पास तथा कुछ यतियो के पास हस्तलिखित प्रतिया हैं। कुल मिलाकर बीकानेर मे १ लाख से भी अधिक हस्तलिखित प्रतिया हैं।

हस्तलिखित प्रतियो का सग्रह बीकानेर के बाद जोधपुर और जयपुर का उल्लेखनीय है। जोधपुर मे राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान का प्रधान कार्यालय और भवन है। उसमे करीब ४० हजार हस्तलिखित प्रतिया हैं। जिसमे हजारो प्रतिया जैनो की लिखी हुई है। इसी तरह राजस्थानी शोध सस्थान चौपासनी मे भी १५,००० से अधिक हस्तलिखित प्रतिया हैं और जोधपुर महाराजा के पुस्तक प्रकाश मे भी अच्छा सग्रह है। जिनमे जैन प्रतिया भी काफी है।

स्वतत्र जैन ज्ञानभण्डारो के रूप मे भी जोधपुर मे कई अच्छे सग्रह हैं। जिनमे केशरियानाथजी मन्दिर और अन्य एक जैन मन्दिर का ज्ञानभण्डार अच्छा है। स्थानकवासी सप्रदाय के जैन रत्न पुस्तकालय और मुनि मगलचन्दजी का सग्रह तो मेरी जानकारी मे हैं। पर मरुधर केशरीजी का ज्ञानभण्डार भी अच्छा होना चाहिये पर मैं उसे देख नही पाया। स्वर्गीय कानमलजी नाहटा ने भी मुझे कहा था कि स्थानकवासी सप्रदाय का एक अच्छा सग्रह उनकी देखरेख मे है। पर उसे भी मैं देख नही पाया। राजवैद्य चाणोद के गुरसा उदैचन्दजी के यहा भी पहले सग्रह था पर अब शायद नही रहा। वैसे और भी कई जैन मन्दिरो व स्थानको आदि मे सग्रह होगा।

जयपुर मे वहा के महाराजा की लाइब्रेरी पोथीखाना बहुत बडी है। उसमे १८,००० हस्तलिखित प्रतिया होने का सुना था। पर प्रतियो को दिखाने की कोई व्यवस्था नही है न पूरी सूची ही देखने को मिली। वहा के राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान की शाखा मे जयपुर के श्रीपूज्य धरणेन्द्रसूरिजी ने अपना सग्रह दे दिया है जिसमे २ हजार से अधिक प्रतिया हैं।

जयपुर के स्वतत्र जैन ज्ञानभण्डारो मे दिगम्बर जैन मन्दिरो के शास्त्र भण्डार विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। जिनकी सूची श्री महावीरजी तीर्थ कमेटी के शोध-सस्थान द्वारा प्रकाशित भी हो चुकी है। आमेर का भट्टारकीय भण्डार भी उक्त शोधसस्थान मे ही रखा हुआ है।

श्वेताम्बर शास्त्र भण्डारो मे सर्वाधिक उल्लेखनीय लाल भवन (चौडा रास्ता) का आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञानभण्डार है। इसमे स्थानकवासी आचार्य श्री हस्तीमलजी म० की प्रेरणा व प्रयत्न से

इधर कुछ वर्षों मे ही बहुत बडा व अच्छा सग्रह हो गया है। इसमे ३० हजार हस्तलिखित प्रतिया है। यहा के ज्ञानभण्डार की सूची का एक भाग तो प्रकाशित भी हो चुका है। इसका सम्पादन डॉ० नरेन्द्र भानावत ने किया है।

जयपुर के पुराने सग्रहो मे खरतरगच्छ का पचायती भण्डार कुदीगर भैरु के खरतरगच्छ उपाश्रय मे हैं। इसमें करीब ३,००० हस्तलिखित प्रतिया थी। अब कितनी रही यह पुरानी सूची से मिलान करने पर ही निश्चय हो सकेगा। सग्रह वहुत अच्छा है। हरिसागरसूरिजी आदि ने इसकी सूची भी अच्छे रूप में वनाई थी। इसी उपासरे में और सामने के शिवजीराम भवन में स्वर्गीय मुनि श्री कान्ति सागरजी की हस्तलिखित प्रतियो का सग्रह है। खरतरगच्छ के श्रीमालो के उपाश्रय में भी सग्रह है पर मैं उसे देख नही पाया। इसी तरह तपागच्छ उपाश्रय में भी कुछ सग्रह है।

दिगम्बर सप्रदाय का सबसे वडा और महत्त्वपूर्ण नागौर का भट्टारकीय शास्त्र भण्डार है। कुछ वर्ष पहले तो यह बद पडा था। डॉ० एल० पी० टैसीटोरी ने इसको देखने का काफी प्रयत्न किया था। पर तत्कालीन भट्टारकजी ने शास्त्र भण्डार खोला ही नही और आगे दीवार और खडी कर दी। कुछ वष पहिले जैन ज्ञानभण्डारो के महान् उद्धारक पूज्य मुनि पुण्यविजयजी बीकानेर से नागौर पधारे तब मैं भी वहा गया था उस समय मैंने भट्टारकजी से अनुरोध किया कि वे अपना शास्त्र भण्डार पूज्य मुनिश्री को दिखादें। मेरे लेखो व साहित्य प्रेम से वे प्रभावित थे। फलत उन्होने शास्त्र भण्डार दिखाने की स्वीकृति दे दी। मैं मुनिश्री पुण्य विजयजी को लेकर वहा पहुँचा। वर्षों से वन्द उस शास्त्र भण्डार को खोलने पर हमे वडा हर्ष हुआ कि हस्तलिखित प्रतियो के वडे-वडे गट्ठर इस तरह कसकर के बाधकर रखे हुए है कि उनमें १ भी प्रति खराब नही हुई। इस सुरक्षित ज्ञान-भण्डार में प्राचीन व महत्त्वपूर्ण करीब १२,००० हस्तलिखित प्रतिया व १ हजार गुटके हैं। दिगम्बर सम्प्रदाय का मेरी जानकारी में एक शास्त्र भण्डार (इतना वडा) और कोई नही है। भण्डार खोलने के वाद दिगम्बर जैन मन्दिर में सलग्न सरस्वती मन्दिर वना करके उसमें यह रखा गया और सूची भी वनवाई गई। इस सूची के प्रकाशित होने पर अपभ्रश आदि ग्र थो की वहुत ही महत्त्वपूर्ण जानकारी प्रकाश में आयेगी। यहा की हस्तलिखित प्रतियो की लेखन प्रशस्तिया भी ऐतिहासिक दृष्टि से बडे महत्त्व की हैं।

भट्टारको के पास परम्परागत वहुत ही महत्त्वपूर्ण ज्ञानभण्डार रहा करते थे। जिनमें से आमेर के भट्टारकीय भण्डार का उल्लेख ऊपर किया गया है। इसी तरह का अन्य भट्टारकीय भण्डार अजमेर के दिगम्बर जैन मन्दिर में भी सुरक्षित है। उसमें भी कई दुर्लभ और महत्त्व के ग्र थ है। अजमेर में श्वेताम्बर जैन मन्दिर और जैन स्थानक आदि मे भी हस्तलिखित प्रतियो का सग्रह है। अभी दादावाडी में खरतरगच्छ की लखनऊ गद्दी के श्रीपूज्यजी का जिनदतसूरि सेवा सघ को दिया हुआ ज्ञानभण्डार भी रखा हुआ है जिसकी सूची मैंने और मेरे भतीजे भवरलाल ने ३ दिनरात लगाकर वना डाली है। करीब १२०० प्रतिया हैं। स्थानकवासी मुनि श्री हगामीलालजी के सग्रह की सूची अभी वनी नही है।

वीकानेर राज्य के अन्य कई स्थानो पर भी उल्लेखनीय श्वेताम्वर जैन ज्ञानभण्डार है। जिनमें से सरदार शहर के तेरहपथी सभा और श्रीचन्द गणेशदास गधैया की हवेली म वहुत अच्छा सग्रह हैं। उपकेश (कवला)गच्छ के श्रीपूज्यजी और यति प्रेमसुन्दरजी आदि के सग्रह इन दानो ज्ञान-

भण्डारो मे पहुच गये। ये सग्रह भी महत्त्वपूर्ण हैं। तेरहपथी सभा की सूची तो पहले बनी हुई थी। गधइयो के यहा की सूची भी अब प्राय बन गई है। सरदार शहर के अन्य १-२ व्यक्तियो के पास भी हस्तलिखित प्रतियो का सग्रह है पर उनकी सूची शायद बनी हुई नही हैं।

चूरू में सुराणा लाइब्रेरी और खरतरगच्छीय यतिजी का ज्ञानभण्डार बहुत अच्छा है। सुराणा लाइब्रेरी की तो बहुत वर्ष पहले सुभकरणजी सुराणा ने कलकत्ते में सूची बनाई भी थी। पर वह प्रकाशित नही हो पाई। खरतरगच्छीय यतिजी के मन्दिर के निकटवर्ती उपाश्रय के सग्रह की सूची तो बनी हुई है। पर प्रतियो को देखने व उपयोग करने की सुविधा ट्रस्टियो की ओर से नही दी जाती। ट्रस्टियो से अनुरोध है कि वे उपयोग करने की सुविधा शीघ्र प्रदान करें। सुजानगढ में भी ३ उल्लेखनीय सग्रह हैं। जिनमें से पन्नेचन्दजी सिंघी के मन्दिर का ज्ञानभण्डार और दानचन्दजी के ग्रथालय का सग्रह तो सुव्यवस्थित है पर वहा के प्रसिद्ध वैद्य लौंकागच्छीय यति रामलालजी के पास लौंकागच्छ व श्रीपूज्यजी का ज्ञानभण्डार अच्छा है पर हम उसे देख नही पाये। खरतरगच्छ के यतिजी के उपासर में भी शायद कुछ सग्रह हो। रतनगढ में यतिजी का अच्छा सग्रह था। वह अब वैदो की लाइब्रेरी में होगा। राजलदेसर मे भी उपकेशगच्छ के यतिजी के पास कुछ सग्रह मैंने देखा था पर अब किसके पास रहा यह मालूम नही। बीदासर के खरतरगच्छीय यतिजी के यहा भी कुछ हस्तलिखित बडल थे। लाडनू में तेरहपथी सम्प्रदाय का परम्परागत हस्तलिखित प्रतियो का सग्रह है।

जोधपुर राज्य में कई स्थानो में श्वेताम्बर ज्ञानभण्डार अच्छे हैं। पाली में खरतरगच्छ की आद्यपक्षीय शाखा के श्रीपूज्यजी का अच्छा सग्रह था। वहा के जैन स्थानक, खरतरगच्छ व तपागच्छ मन्दिर उपासरे में तीन भण्डार है और बुवकियाजी के पास सग्रह था। बालोतरा में खरतरगच्छ की भावहर्षीय शाखा का अच्छा ज्ञानभण्डार था। पर अब बिक चुका है। यहा के खरतरगच्छीय अन्य यतिजी के पास अब भी सग्रह है। बाडमेर के खरतरगच्छीय मन्दिर या उपाश्रय में तथा यति नेमचन्दजी के यहा सग्रह है। घाणेराव में हिमाचलसूरिजी का अच्छा ज्ञानभण्डार है पर सूची बनी हुई नही है। लोहावट में खरतरगच्छ के आचार्य हरिसागरसूरिजी का अच्छा ज्ञानभण्डार है, उसकी सूची भी बनी हुई है। इसमें कई प्रतिया नई लिखाई हुई हैं। बहुत सी खरीद करके सग्रह की हुई हैं। ओसिया के वर्द्धमान-जैन-विद्यालय में स्थित रत्नप्रभाकर ज्ञानभण्डार की हस्तलिखित प्रतियो की सूची छपी हुई है। फलोदी में सघ और साध्वीजी के छोटे तीन ज्ञानभण्डार हैं। मेडता में पचायती ज्ञानभण्डार पहले बहुत अच्छा था। अब भी कुछ बचा हुआ है, पर सूची बनी हुई नही है। स्थानक में भी थोडी सी हस्तलिखित प्रतिया होगी।

सिरोही मे तपागच्छ के उपासरे आदि मे कुछ प्रतिया हैं। सिरोही राज्य के तपागच्छ के श्रीपूज्यजी का ज्ञानभण्डार अच्छा होना चाहिये। पर मैंने देखा नही है।

कोटा मे खरतरगच्छ उपाश्रय, महो० विनयसागरजी, सेठजी, विजयगच्छ के श्रीपूज्यजी, के ज्ञानभण्डार हैं जिसमे खरतरगच्छ का ज्ञानभण्डार और विनयसागरजी का अच्छा है।

श्वेताम्बर ज्ञानभण्डारो मे सर्वाधिक प्रसिद्ध जैसलमेर का जिनभद्रसूरि ज्ञानभण्डार है, जिसका कुछ वर्ष पहिले मुनि जिनविजयजी ने बडे अच्छे रूप मे उद्धार करके नई सूची भी प्रकाशित करवादी

है। ताडपत्रीय और कागज की प्राचीनतम और दुर्लभ ग्र थो की प्रतिया यही हैं। थाहरुमा, तपागच्छ, खरतरगच्छ आचार्य शाखा के उपाश्रय और लोकागच्छ के उपाश्रय मे भी अच्छा सग्रह है।

फतेहपुर के खरतरगच्छीय यतिजी और झु झुनू के खरतरगच्छ के उपाश्रय मे कई हस्तलिखित प्रतिया है। किशनगढ के श्वेताम्बर जैन मन्दिर मे एव स्थानक मे भी कुछ हस्तलिखित बडल रखे हुए हैं।

आहोर मे राजेन्द्रसूरिजी का ज्ञानभण्डार बहुत अच्छा है। सोजत आदि अन्य कई स्थानो मे भी होगे। पीपाड का जयमल ज्ञानभण्डार, यति चतुरविजयजी का सग्रह भी उल्लेखनीय है, और भी कई ज्ञानभण्डार ऐसे हैं जिनकी पूरी जानकारी नही मिल सकी है।

राजस्थान के सबसे अधिक ज्ञानभण्डार जोधपुर और बीकानेर राज्य मे हैं। दिगम्बर भण्डारो के सम्बन्ध मे तो इधर मे काफी जानकारी प्रकाश मे आ चुकी है। जैन साहित्य शोध-सस्थान, जयपुर से मुझे राजस्थान के दिगम्बर ग्र थ भण्डारो की जो सूची प्राप्त हुई है। उसके अनुसार ६८ ज्ञानभण्डारो की सूचिया अब तक बन चुकी हैं, जिनमे सबसे अधिक शास्त्र भण्डार, जयपुर मे ही हैं। करीब २०,००० हस्तलिखित प्रतिया जयपुर के दिगम्बर शास्त्र-भण्डारो मे हैं। उनके अतिरिक्त अजमेर, अलवर, दूनी, आवा, बू दी, नैणवा, डबलाना, इन्द्रगढ, फतेहपुर, भरतपुर, डीग, कामा, टोडारायसिह, कोटा, बयाना, बैर, उदयपुर, बसवा, भादवा, डू गरपुर, मालपुरा, करौली, दौसा, नरायणा, साभर, माधवपुर, खण्डार, महावीरजी, उणियारा, अलीगढ, (टोक) आदि स्थानो मे छोटे-बडे अनेको शास्त्र-भण्डार हैं। लेख विस्तारभय से केवल स्थानो का उल्लेख मात्र करके ही सतोष करना पडता है।

श्वेताम्बर सम्प्रदाय मे तीन उपसम्प्रदाय हैं। मूर्ति पूजक, स्थानकवासी और तेरापथी, इनमे से तेरापथी सम्प्रदाय के ज्ञानभण्डार तो बहुत ही कम हैं। लाडनू, सुजानगढ, सरदारशहर, चूरू, रतनगढ़, मे हस्तलिखित प्रतियो का अच्छा सग्रह है। इनमे से लाडनू का तो तेरापथ के आचार्य श्री तुलसीजी की देखरेख मे हैं। बाकी शास्त्र सग्रह तेरापथी सभा एव श्रावको के सग्रह मे हैं।

स्थानकवासी सम्प्रदाय का राजस्थान मे अच्छा प्रभाव रहा है। गत २००-२५० वर्षों मे इस सम्प्रदाय के मुनियो एव आर्यिकाओ ने हजारो प्रतिया स्वय लिखी व इधर-उधर से यतियो आदि के जो भी ग्र थ सग्रह प्राप्त हुए, उनको अपनी देखरेख मे सुरक्षित रखा। इनमे से कई शास्त्र-भण्डारो की सूचिया बन गई हैं। पर बहुत से अभी बिना सूची के पडे है। मरुधर केशरी मुनि मिश्रीमलजी से बातचीत करने पर मालूम हुआ कि स्थानकवासी मुनि जयमलजी व रघुनाथजी के समुदाय के बहुत से महत्त्वपूर्ण हस्तलिखित ग्र थ-सग्रह हैं। मरुधर केशरीजी के देखरेख मे ही उन्होने जोधपुर, सोजत आदि मे जो ज्ञानभण्डार बतलाये, उनमे १० से २० हजार हस्तलिखित प्रतिया होगी पर अभी तक प्रयत्न करने पर भी मैं उनकी देखरेख के एक भी भण्डार को देख नही पाया। आवश्यकता है—उन सब ज्ञानभण्डारो की सूचिया बनाकर प्रकाशित करवाई जायें। आचार्य श्री हस्तीमलजी ने इस दिशा मे अच्छा काम किया है। उनसे पूछने पर डॉ० नरेन्द्र भानावत ने जो भण्डारो के नाम भेजे हैं वे इस प्रकार है—रघुनाथ ज्ञानभण्डार, सोजत सिटी, जयमल ज्ञानभण्डार, पीपाड सिटी, जयमल ज्ञानभण्डार

जोधपुर, जैन रत्न पुस्तकालय, जोधपुर, मगलचन्दजी ज्ञानभण्डार, जोधपुर, ऋषि-परम्परा सम्बन्धित ज्ञानभण्डार, प्रतापगढ, जैन श्वेताम्बर स्थानकवासी ज्ञानभण्डार, अलवर, जैन दिवाकरजी से सम्बन्धित ज्ञानभण्डार, ब्यावर, नानकरामजी की सम्प्रदाय से सम्बन्धित ज्ञानभण्डार लाखनकोटडी, अजमेर, स्थानकवासी ज्ञानभण्डार भिनाय । इनके अतिरिक्त फलोदी, बालोतरा, बाडमेर, पिंडवाडा, सादडी, किशनगढ, लोहावट आदि मे भी ज्ञानभण्डार है ।

इनके अतिरिक्त हमने कुछ ज्ञानभण्डार कई वर्ष पहले देखे थे, जैसे भीनासर के बहादुरमल जी बाठिया व चम्पालालजी वैद का सग्रह, देशनोक मे डोसीजी के पास, छापर मे पूनमचन्दजी व मोहनलालजी दुधेडिया के पास, अलाय व किशनगढ के जैन मन्दिर मे, मेडता मे पचायती भण्डार, मारवाड जकशन मे यतिजी के पास, गढ सिवाने मे खरतरगच्छ ज्ञानभण्डार, झु झुनू के जैन उपासरे मे, उदयपुर मे हाथीपोल की जैन धर्मशाला, शीतलनाथ मन्दिर आदि मे, चित्तौड मे राजस्थान प्राच्य-विद्या-प्रतिष्ठान के शाखा कार्यालय में । जैतारण में पहले अच्छा ज्ञानभण्डार था । अब इसकी क्या स्थिति है, पता नही । किशनगढ के जैन मन्दिर में कुछ बडल पडे हैं । चोहटण के महात्मा के पास कुछ प्रतिया है । जसोल आदि में कई यतियो के पास अच्छा सग्रह सुना है ।

इस तरह राजस्थान के जैन ग्र थ भण्डारो में अब भी लाखो हस्तलिखित प्रतिया सुरक्षित है । राजस्थान के जैन समाज, प्रातीय सरकार एव विश्वविद्यालय आदि जैन जैनेतर सभी हस्तलिखित ज्ञानभण्डारो के सर्वे का काम बडे पैमाने पर कई वर्षों तक करें, तो सैकडो अज्ञात कवियो, हजारो अप्रकाशित ग्र थो व अज्ञात रचनाओ की जानकारी प्रकाश में आयेंगी एव भारत भर के विश्व-विद्यालयो के शोधकार्य के लिये एक नया द्वार खुल जायेगा ।

३६ ग्रन्थों की सुरक्षा में राजस्थान के जैनों का योगदान
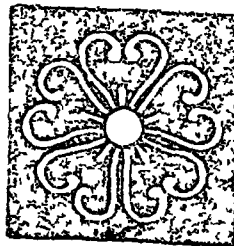
डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल

सारे देश मे हस्तलिखित ग्रन्थो का अपूर्व सग्रह मिलता है। उत्तर से दक्षिण तक तथा पूर्व से पश्चिम तक सभी प्रान्तो मे हस्तलिखित ग्रन्थो के भण्डार स्थापित हैं। इनमे सरकारी क्षेत्रो मे पूना का भण्डारकर ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट, तजोर की सरस्वती महल लायब्रेरी, मद्रास विश्वविद्यालय की ओरियन्टल मेन्यूस्क्रिप्टस लायब्रेरी और कलकत्ता की बगाल ऐशियाटिक सोसाइटी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सामाजिक क्षेत्र मे अहमदावाद का एल० डी० इन्स्टीट्यूट, जैन सिद्धान्त भवन आरा, पन्नालाल सरस्वती भवन, बम्बई, जैन शास्त्र भण्डार कारजा, लीवडी, सूरत, आगरा, देहली आदि के ग्रन्थ भण्डारो के नाम लिये जा सकते है। इस प्रकार सारे देश मे इन शास्त्रो भण्डारो की स्थापना की हुई है। जो साहित्य सरक्षण एव सकलन का एक अनोखा उदाहरण है।

लेकिन हस्तलिखित ग्रन्थो के सग्रह की दृष्टि से राजस्थान का स्थान सर्वोपरि है। मुस्लिम शासन काल मे यहा के राजा-महाराजाओ ने अपने-अपने निजी सग्रहालयो मे हजारो ग्रन्थो का सग्रह किया और उन्हे मुसलमानो के आक्रमण से अथवा दीमक एव सीलन से नष्ट होने मे बचाया है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् राजस्थान सरकार ने जोधपुर मे जिस प्राच्यविद्या शोध प्रतिष्ठान की स्थापना की थी उसमे एक लाख से भी अधिक ग्रन्थो का स ग्रह हो चुका है जो एक अत्यधिक सराहनीय कार्य है। इसी तरह जयपुर, बीकानेर, अलवर जैसे कुछ भूतपूर्व शासको के निजी सग्रह मे भी हस्तलिखित ग्रन्थों का महत्त्वपूर्ण स ग्रह है जिनमे स स्कृत ग्रन्थो की सर्वाधिक स ख्या है। लेकिन इन सबके अतिरिक्त राजस्थान मे जैन ग्रन्थ भण्डारो को स ख्या सर्वाधिक है और उनमे स ग्रहीत ग्रन्थो की स ख्या तीन लाख से कम नही है।

ग्रथो की सुरक्षा एव स ग्रह की दृष्टि से राजस्थान के जैनाचार्यों साधुओ, यतियो एव श्रावको का प्रयास विशेष उल्लेखनीय है। प्राचीन ग्रन्थों की सुरक्षा एव नये ग्रन्थो के सग्रह मे जितना ध्यान जैन समाज ने दिया उतना अन्य समाज नही दे सका। ग्रन्थों की सुरक्षा मे उन्होने अपना पूर्ण जीवन लगा दिया और किसी भी विपत्ति अथवा सकट के समय ग्रन्थो की सुरक्षा को प्रमुख स्थान दिया। जैसलमेर, जयपुर, नागौर, बीकानेर, उदयपुर एव अजमेर मे जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ भण्डार है वे सारे देश मे अद्वितीय हैं तथा इनमे प्राचीनतम पाण्डुलिपियो का सग्रह है। इन शास्त्र भण्डारो मे

ताडपत्र एव कागज पर लिखे हुए प्राचीनतम पाण्डुलिपियो का सग्रह मिलता है। सस्कृत भाषा के काव्य, चरित, नाटक, पुराण, कथा एव अन्य विषयो के ग्रन्थ ही इन भण्डारो मे सग्रहीत नही है किन्तु प्राकृत तथा अपभ्र श के अधिकाश ग्रन्थ एव हिन्दी राजस्थानी का विशाल साहित्य इन्ही भण्डारो मे उपलब्ध होता है। यही नही कुछ ग्रन्थ तो ऐसे हैं जो इन्ही भण्डारो में उपलब्ध होते हैं, अन्यत्र नही।

ग्रन्थ भण्डारो मे बडे-बडे पडित लिपिकर्ता होते थे जो प्राय ग्रन्थो की प्रतिलिपिया किया करते थे। जैन भट्टारको के मुख्यालयो पर ग्रन्थ लेखन का कार्य अधिक होता था। इस दृष्टि से आमेर, नागौर, अजमेर, सागवाडा, जयपुर, कामा आदि के नाम विशेष रूप मे उल्लेखनीय हैं। ग्रन्थ लिखने मे काफी परिश्रम करना पडता था। पीठ झुके हुए, कमर एव गर्दन नीचे किये हुए, आखें झुकाये हुए कष्ट पूर्वक ग्रथो को लिखना पडता था। इसलिये कभी-कभी प्रतिलिपिकार नम्न श्लोक लिख दिया करते थे ताकि पाठक, ग्रन्थ का स्वाध्याय करते समय अत्यधिक सावधानी रखें।

राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डार प्राचीनतम पाण्डुलिपियो के लिये प्रमुख केन्द्र हैं। जैसलमेर के जैन शास्त्र भण्डार मे सभी ग्रन्थ ताडपत्र पर हैं जिसमे सवत् ११९७ मे लिखा हुआ 'ओघ निर्युक्ति वृत्ति' सबसे, प्राचीनतम ग्रन्थ है। इसी भण्डार मे उद्योतन सूरि की कृति 'कुवलयमाला' सवत् ११३९ की कृति है। राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो मे यद्यपि ताडपत्र एव कागज पर ही लिखे हुए ग्रन्थ मिलते हैं लेकिन कपडे एव ताम्रपत्र पर भी लिखे हुए ग्रन्थ मिलते हैं। जयपुर के एक शास्त्र भण्डार मे कपडे पर लिखे हुए प्रतिष्ठा-पाठ की प्रति उपलब्ध हुई है जो १७वी शताब्दी की लिखी हुई है और पूर्णत सुरक्षित है। इन भण्डारो मे कपडो पर लिखे हुए चित्र भी उपलब्ध होते हैं जिनमे चार्ट के द्वारा विषय का प्रतिपादन किया गया है। प्राय प्रत्येक मन्दिर मे ताम्रपत्र एव सप्तधातु पत्र भी उपलब्ध होते हैं।

इन भण्डारो मे ग्रन्थ लेखक के गुणो का भी वर्णन मिलता है जिसके अनुसार इसमे निम्न गुण होने चाहिये—

सर्वदेशाक्षराभिज्ञः सर्वभाषा विशारद ।
लेखक कथितो राज्ञ सर्वाधिकरणेषु वै ।।

मेधावी वाक्पटु धीरो लघुहस्तो जितेन्द्रिय ।
परशास्त्र परिज्ञाता, एव लेखक उच्यते ।।

ग्रन्थ लिखने मे किस-किस स्याही का प्रयोग किया जाना चाहिये, इसकी भी पूरी सावधानी रखी जाती थी ताकि अक्षर खराब नही हो, स्याही नही फूटे तथा कागज एक दूसरे के नही चिपके। ताडपत्रो के लिखने मे जो स्याही काम मे ली जाने वाली है, उसका वर्णन देखिये—

सहवर भृ ग त्रिफला, कासीस लोहमेव तोली।
समकज्वाल वोलयुता, भवति मसि ताडपत्राना ।।

जैसलमेर के ग्रन्थ भण्डार मे कई महत्त्वपूर्ण पाडुलिपिया सुरक्षित हैं। महाकवि दण्डी के 'काव्यादर्श' की पाण्डुलिपि सम्वत् ११६१ की उपलब्ध है जो इस ग्रन्थ की अब तक उपलब्ध ग्रन्थो मे

सबसे प्राचीन है। अन्य प्राचीनतम पांडुलिपियो मे अभय देवाचार्य की विपाक सूत्र वृत्ति (सन् ११२८), जयकीर्ति सूरि का छन्दानुशासन (सन् ११३५), अभय देवाचार्य की भगवती सूत्र वृत्ति (सन् ११३८), विमल सूरि द्वारा विरचित 'पउम चरिय' (सम्वत् ११९८) मुख्य है। 'पउम चरिय, की यह पाण्डुलिपि महाराजाधिराज श्री जयसिंह देव के शासनकाल मे लिखी गयी थी। वर्द्धमान सूरि की व्याख्या सहित 'उपदेश पद प्रकरण' को पाण्डुलिपि जिसका लेखन अजमेर मे सम्वत् १२१२ मे हुआ था, इसी भण्डार मे सग्रहीत है। चन्द्रप्रभ स्वामी चरित (यशोदेव सूरि) की भी प्राचीनतम पाण्डुलिपि इसी भण्डार मे सुरक्षित है, जिसका लेखन काल सम्वत् १२१७ है तथा जो ब्राह्मण गच्छ के पण्डित अभय कुमार द्वारा लिपिवद्ध की गयी थी। इसी तरह 'भगवती सूत्र (सम्वत् १२३१), व्यवहार सूत्र (सम्वत् १२३६), महावीर चरित (सम्वत् १२४२) तथा 'भव भावना प्रकरण' की सम्वत् १२९० की भी प्राचीनतम प्रतिया इसी भण्डार मे सग्रहीत हैं। ताडपत्र के समान कागज पर उपलब्ध होने वाले ग्रन्थो मे भी इन भण्डारो मे प्राचीनतम पाण्डुलिपिया उपलब्ध होती है जिनका सरक्षण अत्यधिक सावधानी पूवक किया गया है। नये मन्दिरो मे स्थानान्तरित होने पर भी जिनको सम्हाल कर रखा गया तथा दीमक, सीलन आदि से बचाया गया। इस दृष्टि से मध्य युग मे होने वाले भट्टारको का सर्वाधिक योगदान रहा।

जयपुर के दि० जैन तेरहपथी वडा मन्दिर के शास्त्र भण्डार मे 'समयसार' की सम्वत् १३२९ की पाण्डुलिपि है जो देहली मे गयासुद्दीन वलवन के शासनकाल मे लिखी गयी थी। योगिनीपुर जो देहली का पुराना नाम था उसमे इसकी प्रतिलिपि की गयी थी। सम्वत् १३९१ मे लिखित महाकवि पुष्पदन्त के 'महापुराण' के द्वितीय भाग 'उत्तर पुराण' की एक पाण्डुलिपि आमेर शास्त्र भडार जयपुर मे सग्रहीत है। यह पाण्डुलिपि भी योगिनीपुर मे मोहम्मद साह तुगलक के शासनकाल मे लिखी गयी थी।

यहा एक वात और विशेष ध्यान देने की है और वह यह है कि जैनाचार्यों एव श्रावको ने अपने शास्त्र भण्डारों मे ग्रन्थो की सुरक्षा मे जरा भी भेद भाव नही रखा। जिस प्रकार उन्होने जैन ग्रन्थो की सुरक्षा एव उनका सकलन किया उसी प्रकार जैनेतर ग्रन्थो की सुरक्षा एव सकलन पर भी विशेप जोर दिया। घोर परिश्रम करके जैनेतर ग्रन्थो की प्रतिलिपिया या तो स्वय ने की अथवा अन्य विद्वानो से उनकी प्रतिलिपि करवायी। आज वहुत से तो ऐसे ग्रन्थ हैं जिनकी पाण्डुलिपियाँ केवल जैन शास्त्र भण्डारो मे ही मिलती हैं। इस दृष्टि से आमेर, जयपुर, नागौर, वीकानेर, जैसलमेर, कोटा, वून्दी एव अजमेर के जैन शास्त्र भण्डारो का अत्यधिक महत्त्व है। जैन विद्वानो ने जैनेतर ग्रन्थो की सुरक्षा ही नही की किन्तु उन पर वृत्तिया, टीका एव भाष्य भी लिखे। उन्होंने उनकी हिन्दी मे टीकायें लिखी और उनके प्रचार-प्रसार मे अत्यधिक योग दिया। राजस्थान के इन जैन-शास्त्र भण्डारो मे काव्य, कथा, व्याकरण, आयुर्वेद, ज्योतिष, गणित विपयो पर सैकडो रचनायें उपलब्ध होती है। यही नही, स्मृति, उपनिपद एव सहिताओ का भी भण्डारो मे सग्रह मिलता है। जयपुर के पाटौदी के मन्दिर मे ५०० से अधिक ऐसे ही ग्रन्थों का सग्रह किया हुआ उपलब्ध है।

मम्मट के 'काव्य प्रकाश' की सम्वत् १२१५ की एक प्राचीनतम पाण्डुलिपि जैसलमेर के शास्त्र भण्डार मे ही सग्रहीत है। यह प्रति शाकभरी के कुमारपाल के शासनकाल मे अणहिलपट्टन

मे लिखी गयी थी । सोमेश्वर कवि की 'काव्यादर्श' की सम्वत् ११८३ की एक ताडपत्रीय पाण्डुलिपि भी यही के शास्त्र भण्डार मे सग्रहीत है। कवि रूद्रट के 'काव्यालकार' की इसी भण्डार मे सम्वत् १२०६ की ताडपत्रीय पाण्डुलिपि उपलब्ध होती है । इस पर नमि साधु की सस्कृत टीका है । इसी विद्वान् द्वारा लिखित टीका की एक प्रति जयपुर के आमेर शास्त्र भण्डार मे सग्रहीत है । इसी तरह कुन्तक के 'वक्रोक्ति जीवित', वामन के 'काव्यालकार', राजशेखर के 'काव्य मीमासा' उद्‌भट कवि के 'अलकार सग्रह', की प्राचीनतम पाण्डुलिपिया भी जैसलमेर, बीकानेर, जयपुर, अजमेर एव नागौर के शास्त्र भण्डारो में सग्रहीत हैं । कालिदास, माघ, भारवि, हर्ष, हलायुध एव भट्टी जैसे सस्कृत के शीर्षस्थ कवियो के काव्यो की प्राचीनतम पान्डुलिपिया भी राजस्थान के जैन शास्त्र भन्डारो मे सग्रहीत है । यह नही, इन भण्डारो मे कुछ काव्यो की एक से भी पाण्डुलिपिया हैं । किसी-किसी भण्डार मे तो यह सख्या २० तक भी पहुँच गयी है । जैसलमेर के शास्त्र भण्डार मे कालिदास की 'रघुवश' की १४वी शताब्दी की प्रति है । इन काव्यो पर गुणरतनसूरि, चरित्रवर्द्धन, मल्लिनाथ, समयसुन्दर, धर्ममेरू, शान्तिविजय जैसे कवियो की टीकाओ का उत्तम सग्रह हैं । 'किरातार्जुनीय' काव्य पर प्रकाशवर्ष की टीका की एक मात्र प्रति जयपुर के आमेर शास्त्र भण्डार मे सग्रहीत है । प्रकाशवर्ष ने लिखा है कि वह कश्मीर के हर्ष का सुपुत्र है । उदयनाचार्य की 'किरणावली' की एक प्रति टीका सहित आमेर शास्त्र भण्डार जयपुर मे उपलब्ध है । 'साख्य सप्तति' की पाण्डुलिपि भी इसी भण्डार मे सग्रहीत है, जो सम्वत् १४२७ की है । इसी ग्रन्थ की एक प्राचीन पाण्डुलिपि, जिसमें भाष्य भी है, जैसलमेर के शास्त्र भण्डार में उपलब्ध है और वह सम्वत् १२०० की ताडपत्रीय प्रति है । इसी भण्डार में 'साख्य तत्व कौमुदी' (वाचस्पति मिश्र) तथा ईश्वरकृष्ण की 'साख्य सप्तति' की अन्य पाण्डुलिपियाँ भी उपलब्ध होती हैं । इसी तरह 'पातजल योगदर्शन भाष्य' की पाण्डुलिपि भी जैसलमेर के भण्डार में सुरक्षित हैं । 'प्रशस्तपाद भाष्य' की एक १२वी शताब्दि की पाण्डुलिपि भी यही के भण्डार में मिलती है ।

अलकार शास्त्र के ग्रन्थो के अतिरिक्त कालिदास, मुरारी, विशाखदत्त एव भट्टनारायण के सस्कृत नाटको की पाण्डुलिपिया भी राजस्थान के इन्ही भण्डारो मे उपलब्ध होती है । विशाखदत्त का 'मुद्राराक्षस' नाटक, मुरारी कवि का 'अनघराघव', कृष्ण मिश्र का 'प्रबोध चन्द्रोदय' नाटक, महाकवि सुबधु की 'वासवदत्ता' आख्यायिका की ताडपत्रीय प्राचीन पाण्डुलिपिया जैसलमेर के भण्डार मे एव कागज पर अन्य शास्त्र भण्डारो मे सगृहीत हैं ।

अपभ्र श का अधिकाश साहित्य जयपुर, नागौर, अजमेर एव उदयपुर के शास्त्र भण्डारो मे मिलता है । महाकवि स्वयभू का 'पउमचरिउ' एव 'रिट्ठणेमिचरिउ' की प्राचीनतम पाण्डुलिपियाँ जयपुर एव अजमेर के शास्त्र भण्डारो मे सग्रहीत हैं । 'पउमचरिउ' की सस्कृत टीकायें भी इन्ही भण्डारो मे उपलब्ध हुई हैं । महाकवि पुष्पदन्त का 'महापुराण' 'जसहरचरिउ', 'णाय कुमार चरिउ' की प्रतिया भी इन्ही भण्डारो मे मिलती हैं । अब तक उपलब्ध पाण्डुलिपियो मे 'उत्तर पुराण' की सम्वत् १३६१ की पाण्डुलिपि सबसे प्राचीन है और वह जयपुर के ही एक भण्डार मे सग्रहीत है । महाकवि नयनन्दि की 'सुदसण चरिउ' की जितनी सख्या मे जयपुर के शास्त्र भण्डारो मे पाण्डुलिपिया सग्रहीत हैं, उतनी अन्यत्र कही नही मिलती । नयनन्दि ११वी शताब्दि के अपभ्र श के कवि थे । इनका एक अन्य ग्रन्थ सयल विहिविहाण' काव्य की एक मात्र पाण्डुलिपि जयपुर के आमेर शास्त्र

भण्डार मे सग्रहीत है। इसमे कवि ने अपने से पूर्व होने वाले कितने ही कवियो के नाम दिये हैं। इसी तरह शृ गार एव वीर रस के महाकवि वीर का 'जम्बूसामि चरिउ' भी राजस्थान मे अत्यधिक लोकप्रिय रहा था और उसकी कितनी ही प्रनिया जयपुर एव आमेर के शास्त्र भण्डारो मे उपलब्ध होती हैं। अपभ्र श मे सबसे अधिक चरित काव्य लिखने वाले महाकवि रइधू के अधिकाश ग्रन्थ राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो मे उपलब्ध हुये है। रइघू ने २० से भी अधिक चरित काव्य लिखे थे और उनमे आधे से अधिक तो विशालकाय कृतिया है। इसी तरह अपभ्र श के अन्य कवियो मे महाकवि यश कीर्ति, पडित लाखू, हरिपेण, श्रुनकीर्ति, पद्मकीर्ति, महाकवि श्रीधर, महाकवि सिंह, धनपाल, श्रीचन्द, जयमित्रहल, नरसेन अमर कीर्नि, गणि देवसेन, माणिक्यराज एव भगवतीदास जैसे पचासो कवियो की छोटी-वडी सैकडो रचनाये इन्ही भण्डारो मे सग्रहीत हैं। १८वी शताब्दी मे होने वाले अपभ्र श के अन्तिम कवि भगवतीदास की सम्वत् १७०० की कृति 'मृगाकलेखाचरित' की पाण्डुलिपि भी आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर में सग्रहीत है। भगवतीदास हिन्दी के अच्छे विद्वान थे, जिनकी २० से भी अधिक रचनायें उपलब्ध होती है।

सस्कृत, प्राकृत एव अपभ्र श के समान ही जैन ग्रन्थ भण्डारो में हिन्दी एव राजस्थानी भापा के ग्रन्थो की पूर्ण सुरक्षा की गयी। यही कारण है कि राजस्थान के इन ग्रन्थ भण्डारो में हिन्दी एवं राजस्थानी भापा की दुर्लभ कृतिया उपलब्ध हुई है और भविष्य में और भी होने की आशा है। हिन्दी के वहुचर्चित ग्रन्थ 'पृथ्वीराज रासो' की प्रतियाँ कोटा, वीकानेर, एव चूरू के जैन भण्डारो में उपलब्ध हुई है। इसी तरह 'वीसलदेव रासो' की कितनी ही पाण्डुलिपिया अभय जैन ग्रन्थालय वीकानेर एव खरतरगच्छ जैन शास्त्र भण्डार कोटा में उपलब्ध हो चुकी है। प्रसिद्ध राजस्थानी कृति 'क्रिसन रुकमणि री वेलि' पर जो टीकायें उपलब्ध हुई हैं, वे भी प्राय सभी जैन शास्त्र भण्डारो में सरक्षित हैं। इसी तरह 'विहारी सतसई', 'रसिकप्रिया', 'जैतमीरासो', 'वैताल पच्चीसी', 'विल्हण चरित चौपई की प्रतिया राजस्थान के विभिन्न शास्त्र भण्डारो में सग्रहीत है। हिन्दी की अन्य रचनाओ में राजसिंह कवि के 'जिनदत्त चरित' (सम्वत् १३५४) सधारू कवि के 'प्रद्युम्नचरित' (सम्वत् १४११) की दुर्लभ पाण्डुलिपिया भी जयपुर के जैन शास्त्र भण्डारो में संग्रहीत हैं। ये दोनो ही कृनिया हिन्दी के आदिकाल की कृतिया हैं, जिनके आधार पर हिन्दी साहित्य के इतिहास की कितनी ही विलुप्त कडियो का पता लगाया जा सकता है। कवीर एव गौरखनाथ के अनुयायियो की रचनायें भी इन भण्डारो में सग्रहीत हैं जिनके गहन अध्ययन एवं मनन की आवश्यकता है। 'मधुमालती कथा', 'सिंहासन वत्तीसी', 'माधवनल प्रवन्ध कथा', 'ढोलामारू रा दूहा' की प्राचीनतम पाण्डुलिपिया भी राजस्थान के इन जैन भण्टारो में सग्रहीत है।

वास्तव में देखा जाये तो राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो ने हिन्दी एव राजस्थानी के जितने ग्रन्थो को सुरक्षित रखा है, उतने ग्रन्थो को अन्य कोई भी भण्डार नही रख सके हैं। जैन कवियो की सैंकडो गद्य-पद्य रचनायें इनमें उपलब्ध होती हैं जो काव्य, चरित, कथा, रास, वेलि, फागु, घमाल, चौपई, दोहा, वारहखडी, विलास, गीत, सतसई, पच्चीसी, वत्तीमी, सतावीसी, शतक आदि के नाम से उपलब्ध होती हैं। जयपुर के लाल भवन स्थित आचार्य श्री विनयचद्र ज्ञानभण्डार में स्थानकवासी परम्परा के शताधिक कवियो की सैंकडो पाडूलिपिया सुरक्षित हैं जो मध्य युगीन काव्य-रूपो के अध्ययन की दृष्टि से वड़ी महत्त्वपूर्ण है।

१३वी शताब्दी से लेकर १९वी शताब्दी तक निवद्ध कृतियो का इन भण्डारो में अम्बार लगा है, जिनका अभी तक प्रकाशित होना तो दूर रहा, वे पूरी प्रकाश में भी नही आ सकी हैं। अकेले ब्रह्म जिनदास ने पचास से भी अधिक रचनायें लिखी हैं, जिनके सम्बन्ध में विद्वत जगत् अभी तक अन्धकार मे ही है। अभी हाल में ही महाकवि दौलतराम की दो महत्त्वपूर्ण रचनाओ—'जीवन्धर स्वामी चरित' एव 'विवेक विलास' का प्रकाशन हुआ है। कवि ने १८ रचनायें लिखी हैं और वे एक से एक उच्चकोटि की हैं। दौलतराम १८वी शताब्दी के कवि थे और कुछ समय उदयपुर के महाराणा जगतसिंह के दरबार में रह चुके थे।[1]

पाण्डुलिपियो के अतिरिक्त इन जैन भण्डारो मे कलात्मक एवं सचित्र कृतियो की सुरक्षा भी हुई है। कल्पसूत्र की कितनी ही सचित्र पाण्डुलिपिया, कला की उत्कृष्ट कृतिया स्वीकार की गयी हैं, कल्पसूत्र की एक ऐसी ही प्रति जैसलमेर के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है। कला प्रेमियो ने इसे १५ वी शताब्दी की स्वीकार की है। आमेर शास्त्र भडार, जयपुर में एक 'आदिनाथ पुराण' की सवत् १४६१ की पाण्डुलिपि है। इसमें १६ स्वप्नो का जो चित्र है, वह कला की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। इसी तरह राजस्थान के अन्य भण्डारो मे 'आदि पुराण', 'जसहर चरिउ', 'यशोधर चरित', 'भक्ताभर स्तोत्र', 'णमोकार माहात्म्य कथा' की जो सचित्र पाण्डुलिपिया हैं, वे चित्रकला की उत्कृष्ट कृतिया हैं। ऐसी कृतियो का सरक्षण एव लखन दोनो ही भारतीय चित्रकला के लिये गौरव की बात है।

१ देखिये—दौलतराम कासलीवाल · व्यक्तित्व एवं कृतित्व—डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल।

३७ | जैन पत्र और पत्रकार

◉

डॉ० भँवर सुराणा

जैन पत्र .

स्वतन्त्रता से पूर्व राजस्थान मे समाचार पत्र निकालना, समाचार पत्रो को सम्वाद भेजना अथवा समाचारपत्र मगा कर पढना और पढाना बडे साहस का कार्य था। बाईस देशी राजाओ और उनके अधिकारियो का यह दृष्टिकोण था कि यदि जनता मे ज्ञान प्राप्ति की जिज्ञासा उत्पन्न हो गई तो उनके उत्पीडक, शोषक रूप के प्रति विद्रोह जागृत होगा, जिसका परिणाम उनके अपने स्वार्थों और अधिकारो पर आघात के रूप मे होगा। राजस्थान के जातीय-धार्मिक पत्रो ने समाज सुधार के प्रयत्न किये, तत्सम्बन्धी साहित्य सृजा और उसके माध्यम से लोगो के मन मे स्वतन्त्रता की अलख जगाई। समाज सुधार के साथ ही साथ उन्होने प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से विदेशी शासन के प्रति विद्रोह का, सघर्ष का स्वर मुखर किया, प्रतिबोध दिया और स्वशासन के प्रति जनता मे जागरण का शख फूका।

इन जातीय पत्रो ने राजस्थान मे लेखको, कवियो का एक ऐमा समुदाय निर्मित किया जो किसी भी प्रदेश के लेखको तथा कवियो की तुलना मे अधिक सक्षम और सशक्त अभिव्यक्ति मे सम्मानित स्थान प्राप्त कर सकता है।

राजस्थान मे सबमे पुराने जीवित समाचार पत्रो मे 'जैनगजट' अजमेर का नाम आता है जो जैन दर्शन से सम्बन्धित लेखादि के अतिरिक्त जैन समाज की, विशेप रूप से दिगम्बर जैन समाज की गतिविधियो के सम्बन्ध मे समाचार प्रकाशित करता है। इस साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन सन् १८९५ ई० मे प्रारम्भ हुआ था।

१९२३ मे श्री दुर्गाप्रसाद ने 'अहिंसा प्रचारक' साप्ताहिक का अजमेर से प्रकाशन प्रारम्भ किया था। अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स का मुखपत्र 'कान्फ्रेन्स प्रकाश' भी ब्यावर व अजमेर से १९२४ मे प्रकाशित हुआ। ब्यावर मे धीरजभाई तुरखिया के सम्पादन मे जब यह पत्र निकलता था तब इसमे हिन्दी और गुजराती मे धर्म-दर्शन सम्बन्धी लेख एव समाचार

प्रकाशित होते थे। मुनियो के चातुर्मास, तपस्या तथा प्रवचनो के प्रकाशन पर अधिक जोर दिया जाता था। साधवाचार एव व्यवहार के विभिन्न प्रश्नो पर विचार-विमर्श एव मत-विमत भी प्रकाशित किये जाते थे। मूलत इस पत्र का उद्देश्य श्वेताम्बर स्थानकवासी समाज के विभिन्न सम्प्रदायो-आम्नायो के अनुयायियो और मुनियो, आचार्यों को सघवद्ध करने का प्रयत्न करना था जिसमे वह बहुत सफल रहा।

'खण्डेलवाल जैन हितेच्छु' खण्डेलवाल जैन समाज का १९२५ मे प्रकाशित मुख पत्र था जिसका प्रकाशन स्थल खण्डेलवाल जैन महासभा के अध्यक्ष व मन्त्री के चुनाव के साथ बदल जाता रहा है। कभी वह अजमेर से, कभी जयपुर से, कभी अलवर से तो कभी किशनगढ से उसका प्रकाशन होता था। समाज सुधार, रूढियो पर प्रहार इस पत्र का लक्ष्य रहा है। साथ ही साथ समाज की गतिविधियो के प्रचार-प्रसार के माध्यम के रूप मे भी उसका प्रयोग किया जाता रहा है। कविता और कहानी भी उसमे प्रकाशित किये जाते रहे है।

आबूरोड से प्रकाशित 'मारवाड जैन सुधारक' के सम्बन्ध मे विशेष विवरण प्राप्त नही है। वह १९२५ मे प्रकाशित हुआ था और उसका वार्षिक मूल्य दो रुपया था। उसी वर्ष अजमेर से 'जैन-जगत' के प्रकाशन का भी उल्लेख मिलता है। उसका भी वार्षिक मूल्य २) रुपया था।

जयपुर से रायसाहब केसरलाल अजमेरा जैन द्वारा १९३२ मे 'सुधारक' मासिक प्रकाशित किया गया। उसका भी मूल स्वर वही रहा जो पिछले पत्रो का था।

अजमेर से श्री मानमल जैन ने १९४१ मे 'वीरपुत्र' मासिक प्रकाशित किया था। इस मासिक पत्र मे जैन-धर्म से सम्बन्धित कथाओ को सुवोध ढग से प्रस्तुत किया जाने के अतिरिक्त कविताओ तथा चित्रो के माध्यम से भी जैन इतिहास को प्रस्तुत किया जाता था। इसका वार्षिक मूल्य ३) रुपया था तथा वह मोटे टाइप मे बहुरग में प्रकाशित होता था। दीपावली तथा महावीर जयती पर उसके विशेपाक भी प्रकाशित होते थे। आर्थिक दृष्टि से यह मासिक पत्र श्री जैन पर अत्यधिक बोझ ही बना रहा यद्यपि वे सभी सम्प्रदायो से सहयोग कर चलने के हामी थे। श्री जैन ने स्वतन्त्रता सग्राम में भी अपना दायित्व निभाया और दो बार जेल गये थे।

सन् १९४३ मे आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा० की प्रेरणा से श्री जैनरत्न विद्यालय भोपालगढ से 'जिनवाणी' मासिक का प्रकाशन हुआ जो वाद में जोधपुर से प्रकाशिन होने लगा। सर्वश्री चम्पालाल कर्णावट, शान्तिचन्द्र मेहता, चादमल कर्णावट, पारसमल प्रसून आदि इसके प्रारम्भिक सम्पादको में से थे। इसमें हिन्दी के साथ अग्रेजी का भी एक विभाग रहता था। जैन दर्शन, इतिहास व साहित्य की दृष्टि से यह महत्त्वपूर्ण पत्र था। श्री विजयमल कुम्भट का इसे बडा सहयोग रहा। सन् ५८ के लगभग यह जयपुर से प्रकाशित होने लगा। श्री भवरलाल बोथरा इसके व्यवस्थापक थे। जयपुर आने पर डॉ० नरेन्द्र भानावत ने अपने सम्पादन मे इसे साहित्यिक स्तर प्रदान किया। इसके प्रवन्ध सम्पादको में श्री नथमल हीरावत व श्री प्रेमराज बोगावत का विशेष सहयोग रहा।

निम्बाहेडा मे १९५२ में 'शाश्वतधर्म' मासिक का प्रकाशन श्री सोभागसिंह गोखरू ने प्रारम्भ किया। अब यह मन्दसौर से प्रकाशित होता है। १९५४ में 'वीरपुत्र' के सम्पादक-प्रकाशक मानमल

जैन ने 'ओसवाल' का प्रकाशन किया। उसी वर्ष श्री सी० एल० कोठारी ने अजमेर से ही 'जैन कल्याण' मासिक प्रकाशित किया। १९६३ मे जयपुर से महावीर प्रसाद कोटिया ने 'जैन सगम' प्रकाशित किया। माणक चोरडिया ने अजमेर से १९६४ मे 'ओसवाल समाज' मासिक प्रस्तुत किया। फतहचन्द महात्मा ने चित्तौडगढ से 'महात्मासदेश' मासिक प्रकाशित किया। उसे दो वर्ष पश्चात् ही 'महात्मा वन्धु' के नाम से प्रकाशित किया। १९६७ मे अजमेर से 'जैन दर्शन' और साहित्य के सम्वन्ध मे मिश्रीलाल ने 'श्रेष्ठी समाज' त्रैमासिक का प्रकाशन किया। १९५२ मे जोधपुर से श्वेताम्वर स्थानकवासी समाज के श्री पदमसिह जैन ने 'तरुण जैन' साप्ताहिक का प्रकाशन किया जो अपने सम्प्रदाय का मुख्य समाचार पत्र था। उस पत्र से इन्दौर तथा अन्य स्थानो के पत्रकार भी सम्वन्धित रहे। 'तरुण जैन' मे जैन धर्म सम्वन्धी कविताए, लेख आदि भी प्रकाशित होते थे। इस समय मे लाला पदमसिह जैन के पुत्र फतहसिह उसको सचालित कर रहे है। इस पत्र से लम्वे समय तक मैं भी लेखक के रूप मे सम्वन्धित रहा। इन्ही दिनो विलाडा (मारवाड) से विजयमोहन जैन एव अन्य मित्रो ने 'वीर लौकाशाह' साप्ताहिक का प्रकाशन आरम्भ किया जिसमे मुख्यत. जैन मुनियो, आचार्यों के प्रवास-वर्षावास के समाचार प्रकाशित होते थे। वीकानेर से १९५५ मे वख्शी चम्पालाल जैन ने अहिंसा-पशुवलि निषेध के पक्ष को लेकर 'अभय सन्देश' का प्रकाशन किया। १९५६ मे जालोर से 'मरुधर केसरी' का प्रकाशन आरम्भ हुआ जो आजकल प्रकाशित नही होता है। १९६४ मे जोधपुर से जैन प्रहरी' साप्ताहिक का प्रकाशन हुआ। वह भी आजकल वन्द है।

पाक्षिक पत्रो मे जैन धर्म-तत्त्व दर्शन से सम्वन्धित 'अहिंसा' (जयपुर) प० इन्द्रचन्द्र शास्त्री के सपादन मे १९५३ मे प्रकाशित हुआ। १९५६ मे श्री सुमेरमल कोठारी ने चूरू से 'सुमति' का प्रकाशन किया। श्री जुगराज सेठिया व अन्य लोगो ने वीकानेर से 'श्रमणोपासक' पाक्षिक १९६३ मे प्रकाशित करना प्रारम्भ किया। यह अ० भा० साधुमार्गी जैनसघ का मुख पत्र है और नियमित रूप से प्रकाशित हो रहा है। मुनियो-आचार्यों के प्रवचन, धर्म सम्वन्धी लेख, दर्शन सम्वन्धी लेख, मुनियो-आचार्यों सम्वन्धी समाचार, समाज की गतिविधियो से सम्वन्धित समाचारो का प्रकाशन इस पत्र की विशेपता है। वर्तमान मे डॉ० शान्ता भानावत इससे सम्वन्धित है। वालोतरा से १९६४ मे एक पाक्षिक पत्र 'श्री नाकोडा अधिष्ठायक भैरव' लक्ष्मणदास के सम्पादन मे प्रकाशित हुआ। जयपुर से प्रकाशित 'वीरवाणी' (आद्य सम्पादक श्री चैनसुखदास जी न्यायतीर्थ) सम्पादक श्री भवरलाल न्यायतीर्थ, भीलवाडा मे प्रकाशित 'धर्मज्योति' (मासिक), लाडनू-जैन 'विश्वभारती' की त्रैमासिक 'अनुसधान पत्रिका' (अव तुलसीप्रज्ञा) स० डॉ० महावीर राज गेलडा, लाडनू से ही प्रकाशित 'युवादृष्टि', स कमलेश चतुर्वेदी, विजयसिह कोठारी जोधपुर से प्रकाशित शाति ज्योति', पहले जयपुर से और अव दिल्ली से प्रकाशित मासिक 'कथालोक', महावीरजी से मुमुक्षु महिला आश्रम से प्रकाशित 'महिला जागरण', महावीरजी से ही प्रकाशित 'श्रेयोमार्ग', जयपुर से प्रकाशित श्री रामरतन कोचर द्वारा सम्पादित 'वल्लभ सन्देश' (मासिक), जोधपुर से प्रकाशित 'जैन शासन' आदि अन्य उल्लेखनीय पत्र हैं। अभी हाल ही मे जोधपुर से 'विश्वेश्वर महावीर' (मासिक) प्रकाशित होने लगा है। इसके प्र० सम्पादक हैं श्री प्रकाश जैन वाठिया।

जैन पत्रकार •

राजस्थान मे क्रान्ति का अलख जगाने वाले प० अर्जुनलालजी सेठी को कौन भुला सकता

है ? महामना बाल गगाधर तिलक के 'केसरी' से उनका बहुत निकट का सम्पर्क रहा है। उनके शिष्यो मे से कई फासी के फन्दे को चूम गये। जोधपुर के राजा द्वारा 'दस नम्बरी' घोषित स्वतन्त्रता के यज्ञ मे आहूति देने वाले श्री आनन्दराज सुराणा, श्री जयनारायणजी व्यास के 'तरुण राजस्थान' के मूल सहयोगी थे। राजद्रोह के मुकदमो और काल कोठरियो मे रख कर उनको जो यातनायें दी गईं उनकी कल्पना मात्र से ही आज मन और मस्तिष्क सिहर उठता है। चित्तौडगढ के श्री भीमराज घडोल्या मेवाड मे स्वतन्त्रता के लिये चलाये जा रहे आन्दोलनो के समाचार, रियासत से बाहर के समाचार-पत्रो मे प्रकाशनार्थ भेजते थे और परिणामस्वरूप उनको राज्यसेवा से निष्कासित कर दिया गया। काकाजी शोभालालजी गुप्त अजमेर मे स्वतन्त्रता से पूर्वकाल मे अनेक पत्रो से सम्बद्ध रहे। उसके पश्चात् वे वर्षों 'दैनिक हिन्दुस्तान', नई दिल्ली से सम्बद्ध रहे। अजमेर के श्री जीतमलजी लूणिया गाधीवाद की ओर उन्मुख हुए और गाधीजी तथा नेहरूजी से सम्बन्धित अनेक प्रकाशनो का उन्होने सम्पादन किया। अजमेर के ही श्री मोहनराज भण्डारी 'दैनिक नवज्योति' के साथ ही साथ 'मीरा' आदि अनेक पत्रो से सम्बन्धित रहे। 'आजाद', अजमेर के सम्पादक घीसूलाल पाण्ड्या ने समाजसुधार के कार्यों मे अपने पत्र के माध्यम से अधिक रुचि ली। श्री जीवनसिंह चौधरी ने भीलवाडा से 'दो-अक्टूबर' साप्ताहिक निकाला और अब भी उसे चला रहे हैं। 'जनता साप्ताहिक' से श्री यशवतसिंह नाहर लम्बे अर्से तक सबद्ध रहे। जोधपुर मे 'ललकार' साप्ताहिक गुरुकुल प्रेस से श्री विजयमल कु भट के सचालन मे निकलता था और उसके सम्पादक थे श्री शातिचन्द्र मेहता। आजकल यह पत्र श्री गोविन्दसिंह लोढा प्रकाशित कर रहे हैं और श्री मेहता चित्तौडगढ से 'ललकार' अलग से प्रकाशित कर रहे हैं। श्री पदमसिंह जैन का 'तरुण जैन' साप्ताहिक समाज सुधार की दिशा मे प्रमुखपत्र था। आजकल उनके पुत्र फतहसिंह जैन उसका सम्पादन कर रहे हैं। जोधपुर मे श्री श्रीपाल सिंघी 'अभयदूत-साप्ताहिक' और 'कृषिलोक' प्रकाशित कर रहे हैं। श्री माणक चोपडा 'जनगण दैनिक' निकाल रहे हैं और श्री शातिलाल सिंघी 'कन्ट्रोलर' के सम्पादक हैं। उदयपुर मे श्री कृष्णमोहन खाब्या 'कोलाहल' साप्ताहिक चला रहे हैं और श्री बहादुरसिंह सरूपरिया 'साधना' इन्फोरमेशन सर्विस चला रहे हैं। भारतीय लोक कला मण्डल के मासिक पत्र 'रगायन' का सम्पादन डॉ० महेन्द्र भानावत कर रहे हैं। यहीं से 'लोककला' अर्धवार्षिकी का भी प्रकाशन होता है जिसके सम्पादक हैं श्री देवीलाल सामर और डॉ० महेन्द्र भानावत। इनमे विशेष रूप से लोककलाओ पर अधिकृत सामग्री का प्रकाशन किया जाता है। चित्तौडगढ मे श्री रघुवीर जैन प्रात के अनेक समाचारपत्रो तथा 'समाचार भारती' के प्रतिनिधि हैं। वही से श्री गणेशलाल कूकडा 'उजाले की ओर' साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन कर रहे हैं। भीलवाडा मे श्री जीवनसिंह बाफना 'प्राग्वाट' साप्ताहिक के सम्पादक-सचालक है। देवगढ़ से प्रकाशित 'शारदा' से श्री शकर जैन व श्री हीरालाल कटारिया सम्बद्ध रहे।

जयपुर मे जैन पत्रकारो की परम्परा बहुत पुरानी है। रायसाहब केसरीमल अजमेरा जैन ने अग्रेजी–हिन्दी मे राजस्थान हेरल्ड प्रकाशित किया था। श्री सिद्धराज ढड्ढा, श्री जवाहरलाल जैन और श्री पूर्णचन्द्र जैन वर्षों 'लोकवाणी' व 'युगान्तर' मे सम्बद्ध रहे। श्री गुलाबचन्द काला का 'जयभूमि'—साप्ताहिक अनेक पत्रकारो का दीक्षास्थल था। श्री प्रवीणचन्द्र छाबडा, श्री मिलापचद डडिया आदि ने वहीं पत्रकारिता के पहले पाठ पढे। श्री कमलकिशोर जैन 'राष्ट्रदूत' मे कार्यरत रहे, सम्प्रति अभी राजस्थान सरकार मे जन सम्पर्क विभाग मे सयुक्त निदेशक हैं। श्री सोभागमल जैन

अभी भी 'राष्ट्रदूत' मे उपसम्पादक के पद पर हैं। श्री मोतीचद कोचर 'लोकवाणी' के सम्पादकीय विभाग मे रहे अब प्रेस ट्रस्ट आफ इण्डिया के वरिष्ठ सवाददाता हैं। श्री ईश्वरमल बाफना 'लोक-जीवन' साप्ताहिक से सम्बन्धित रहे है। श्री मिलापचद डडिया आजकल इकोनोमिक टाइम्स के सवाददाता है। उन्होने 'समृद्धि' साप्ताहिक भी प्रकाशित किया था और एक फीचर सर्विस सिंडिकेट इडियाना भी प्रारम्भ की थी। श्री महावीर प्रसाद जैन 'फायनेन्सियल एक्सप्रेस' के सवाददाता हैं। श्री राजमल साघी 'समाचार-भारती' के राजस्थान के ब्यूरोप्रमुख हैं। श्री सरदार मल जैन 'ग्रामराज' साप्ताहिक के सम्पादक है। श्री निर्मलकुमार सुराणा 'युगचरण' साप्ताहिक के सम्पादक हैं और श्री फतहचद जैन 'पूर्वोदय' के। श्री तेजसिंह झीरीवाल 'वीकली स्टेटमेन्ट' के सम्पादक हैं और श्री ज्ञानचद्र चोरडिया' 'अन्तर्मन की ओर' के सम्पादक। श्री धनपतिसिंह टु कलिया आकाशवाणी मे उपसमाचार सम्पादक हैं और श्री एम आर सिंघवी समाचार सम्पादक के पद पर। श्री सत्यप्रकाश जैन आकाशवाणी पर विशेष सवाददाता है और बख्शी भागचद आकाशवाणी मे रिपोटरकम अनाउन्सर हैं। 'राजस्थान पत्रिका' दैनिक में श्री कर्पू रचद्र कुलिश, श्री विजय भडारी, श्री कानमल ढढ्ढा कार्यरत हैं। श्री विद्याविनोद काला जवाहरातो से सम्बन्धित एक मासिक पत्र प्रकाशित करते हैं। श्री भँवरमल सिंघी का नाम समाज सुधार से सम्बन्धित पत्रो के साथ जुडता आया है। श्री मनोहरलाल काला ने जयपुर मे ही 'उदय' का सम्पादन किया। महेन्द्र जैन वर्षों कथालोक का सपादन करते रहे हैं। 'परिवारिका' त्रैमासिक की सम्पादिका सुश्री कमला जैन थी। महेन्द्र मधुप सप्रेषण, राजधर्म-रोहतक से सम्बद्ध रहे हैं। श्री जिनेन्द्रकुमार जैन दैनिक 'यगलीडर' के सम्पादक हैं। श्री कैलाशचन्द्र वैद 'वीर अर्जुन' के प्रतिनिधि हैं। 'वल्लभ सन्देश' श्री रामरतन कोचर प्रकाशित कर रहे हैं। प्रतापचन्द पाटनी ने 'चित्र सवाद' निकाला था। शिवराज जैन 'युग की आवाज' के सम्पादक थे। 'ज्वाला' साप्ताहिक मे श्री गुमानमल जैन कार्यरत हैं। कोटा के श्री नाथूलाल जैन, हीरालाल जैन काग्रेस तथा प्रजामण्डल से सम्बन्धित पत्र-पत्रिकाओ के प्रकाशन और प्रसारण से सम्बन्धित रहे हैं। श्री वाघमल वाठिया ने कोटा से 'मशाल' और 'चोइस' पत्र प्रकाशित किये। कानोड के श्री विपिन जारोली और श्री उदय जैन 'वसुमति' से सम्बद्ध रहे है। भीलवाडा के श्री सुभाष नाहर 'नीरा' के सम्पादक थे। कोटा मे उम्मेदमल नाहटा ने 'स्वदेश' का प्रकाशन किया।

विलाडा के श्री विजयमोहन जैन ने साप्ताहिक 'वीर लोंकाशाह' प्रकाशित किया जो आजकल बन्द है। श्री चिमनसिंह लोढा और गजेन्द्र कुमार जैन ने ब्यावर से 'वीर राजस्थान' साप्ताहिक और 'झलक' प्रकाशित किया था। वीकानेर मे श्री नेमीचन्द आचलिया अजमेर से प्रकाशित 'राजस्थान' से सम्बद्ध थे। वीकानेर मे राजा के विरुद्ध लेख लिखने पर उनको भीषण कारावास का दण्ड भोगना पडा। जोधपुर मे श्री लक्ष्मीमल्ल सिंघवी तथा जगदीश ललवाणी 'लहर' के सम्पादक रहे। अजमेर मे श्री प्रकाश जैन 'लहर' मासिक का सम्पादन कर रहे हैं। बीकानेर में श्री शुभू पटवा 'सप्ताहान्त' साप्ताहिक प्रकाशित कर रहे हैं। श्री अगरचन्द नाहटा—'राजस्थान भारती' व अन्य कई पत्रो के सम्पादक मडल से सम्बद्ध रहे हैं। जोधपुर मे श्री नेमीचन्द्र जैन 'भावुक', 'नव निर्माण', चेतन प्रहरी' 'साहित्य प्रवाह' पत्रो से सम्बद्ध रहे हैं। सयुक्त राजस्थान समाचार वाहिनी का भी उन्होंने श्रीगणेश किया था। आजकल वे नवभारत टाईम्स तथा हिन्दुस्तान समाचार के सवाददाता हैं। उदयपुर की सुधी प्रमिला सरूपरिया 'तूलिका' पत्रिका से सम्बद्ध रही है। वोरून्दा के कोमल कोठारी 'वाणी'

अव 'लोकसस्कृति' के सम्पादक हैं। आप साहित्य और पत्रकारिता दोनो क्षेत्रो मे समान रूप से जाने-माने विद्वान है। जोधपुर के प्रेम भडारी 'सहकार सवाद' तथा 'कविताएँ' के सम्पादक रहे है। बीकानेर मे श्री ज्ञानप्रकाश जैन ने 'शुचि' का प्रकाशन किया था। मिश्रीमल जैन तरगित ने जोधपुर से 'चुलबुला' मासिक प्रकाशित किया था। कोटा की 'चिदम्बरा' के सम्पादक मडल मे श्री अनपचन्द जैन रहे है। उदयपुर के श्री सग्रामसिंह मुरडिया ने 'टैगोर' मासिक प्रकाशित किया था। जोधपुर से माणक मेहता 'जलते दीप' दैनिक और साप्ताहिक प्रकाशित करते है। वहीं से देवराज मेहता ने 'नया राज्य' भी प्रकाशित किया। भीलवाडा के डालचन्द वोर्दिया ने 'ग्राम समाज' निकाला। उदयपुर मे भूपेन्द्रसिंह कोठारी ने 'युगदृष्टा' का प्रकाशन प्रारम्भ किया। केकडी से सुगनचन्द जैन ने 'केकडी पत्रिका' निकाली। जोधपुर के रतनरूपचन्द भण्डारी 'त्रिवेडो' और सुरेन्द्रसिंह लोढा 'जन प्रहरी' प्रकाशित कर रहे हैं। शिवगज के प्रकाश लोढा 'अर्बुद देव' प्रकाशित करते है। वाडमेर से मीठालाल चोपडा 'चोपडा साप्ताहिक' प्रकाशित कर रहे हैं। उदयपुर व कलकत्ता से ओकारलाल वोहरा 'विशाल राजस्थान' व 'विशाल भारत' का प्रकाशन कर रहे है। वालोतरा के मदनेश वाफना 'सीमात टाईम्स' के सम्पादक है। पाली से माणकचन्द राका ने 'हलकारा' प्रकाशित किया। उदयपुर की श्रीमती रूपकुमारी मेहता ने पाक्षिक 'गोरा वादल' निकाला। कोटा के क्रान्तिचन्द्र जैन कई दैनिक पत्रो के सवाददाता है। डूगरपुर मे 'वागडवाणी' पाक्षिक श्री गम्भीरचन्द जैन प्रकाशित करते हैं। उगमलाल कोठारी 'नेता' तथा शान्तिलाल जैन 'उदयपुर टाईम्स' उदयपुर से प्रकाशित कर रहे हैं।

राजसमन्द के श्री देवेन्द्रकुमार कर्णावट 'सस्थान' से सम्बद्ध है। जोधपुर के श्री पदम मेहता ने 'जय जननी' साप्ताहिक प्रकाशित किया। कानोड के श्री विपिन जारोली 'काव्याजलि' वार्षिक का प्रकाशन करते हैं तथा वे 'वीरभूमि' चित्तौडगढ से भी सम्बद्ध है। छोटी सादडी के श्री सूर्यभानु पोरवाल राजस्थान के अनेक पत्रो को सवाद भेजते रहते है।

जयपुर से सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल की ओर से 'जिनवाणी' मासिक का प्रकाशन, 'जैन दर्शन और साहित्य' को जनसाधारण तक पहुचाने की दृष्टि से होता है। डॉ० नरेन्द्र भानावत वर्षों से इससे सम्बद्ध रहे है, वे वर्तमान मे इसके मानद सम्पादक है और सम्पादक है श्रीमती (डॉ०) शाता भानावत। इसे साहित्यिक स्तर का पत्र बनाने मे इनका विशेष योग रहा है। इस मासिक पत्र के स्वाध्याय, सामायिक, तप, ध्यान, श्रावक धर्म, साधना आदि विशिष्ट विषयो पर महत्त्वपूर्ण विशेषाक प्रकाशित हो चुके है जिनमे अधिकारी विद्वानो और सतो ने इन विषयो का सागोपाग विवेचन प्रस्तुत किया है। इसके सामान्य अको मे साधु-सन्तो के चातुर्मास, स्वाध्याय सघो का विवरण व जैन समाज की सास्कृतिक गतिविधियो के प्रमुख समाचार भी प्रकाशित किए जाते है।

जयपुर की राजस्थान जैन सभा पिछले १३ वर्षो से प्रति वर्ष महावीर जयन्ती के अवसर पर एक स्मारिका का प्रकाशन करती है। उसके सस्थापक सम्पादक प्रसिद्ध जैन विद्वान् प० श्री चैन-सुखदासजी न्यायतीर्थ थे। पिछले वर्षो मे इसके सम्पादन मे श्री प्रकाश पाटनी आदि ने भी सहयोग दिया। वर्तमान मे श्री भवरलालजी पोल्याका उसका सम्पादन करते है। जयपुर के श्री पदमचन्द साह 'तीर्थंकर समाचार समिति' से सम्बद्ध हैं। राजसमन्द के श्री देवेन्द्र कुमार हिरन 'मेवाड कान्फ्रेंस' प्रकाशित करते हैं। श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ सघ, जयपुर प्रतिवर्ष पर्युषण के अवसर पर

'मणिभद्र' प्रकाशित करता है। श्री महावीर नवयुवक मण्डल, जयपुर द्वारा गत तीन वर्षों से 'महावीर निर्वाण स्मारिका प्रकाशित होती रही है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि जैन पत्रो तथा पत्रकारो मे दो धारायें काम करती रही है। एक धारा के पत्र और पत्रकार मूलतः जैन-धर्म, दर्शन और समाज तथा जैन सस्कृति से ही सम्बद्ध है अथवा रहे है। दूसरी धारा से सम्बन्धित पत्र और पत्रकार राष्ट्रीय, राजनीतिक और सामाजिक परिवेश मे लोक जागरण, सास्कृतिक चेतना और समसामयिक प्रश्नो से जुडे हुए है। प्रथम धारा से सम्बद्ध पत्रो एव पत्रकारो ने जैन समाज, उसकी धार्मिक प्रवृत्तियो, नैतिक शिक्षण, आचरण शुद्धता, समाज सुधार आदि प्रश्नो पर तो अपनी प्रतिबद्धता दिखाई ही है, उन्होने जैन साहित्य और दशन को जन-जन तक पहुचाने मे भी बहुमूल्य सहायता दी है। इन दोनो धाराओ के सम्मिलित प्रयास से राजस्थान के जनजीवन के परिष्कार मे जैन पत्रो एव पत्रकारो ने जो योग दिया है, वह कभी भुलाया नही जा सकेगा।

३८ आधुनिक जैन साहित्य की प्र ृत्ति ाँ

•

श्री महावीर कोटिया
डॉ० (श्रीमती) शान्ता भानावत

साहित्य की मूलभूत प्रेरणा और जैन साहित्य ·

समाज, धर्म और साहित्य—तीनो परस्पराश्रित है। जिस प्रकार साहित्य को उसकी सामाजिक पृष्ठभूमि से अलग करके नही समझा जा सकता, उसी प्रकार समाज विशेष की आध्यात्मिक विचारधारा को समझे बिना भी उसके साहित्य का अध्ययन अधूरा है। तात्पर्य यह कि साहित्य की भावभूमि गहरे रूप मे धार्मिक विचारधारा से प्रभावित रही है। प्राकृत, सस्कृत, अपभ्र श तथा आधुनिक भारतीय भाषाओ मे जो विपुल जैन साहित्य उपलब्ध है, उस सबमे धार्मिक विचारधारा तथा मान्यताओ का प्रस्तुतिकरण मुख्य रहा है। चाहे काव्य-रूप कुछ भी रहा हो—पुराण, काव्य, नाटक, कथा-कहानी, चरित—सभी प्राथमिक रूप मे धार्मिक है। धार्मिक सिद्धान्तो के साये मे ही वहा कहानी विकसित हुई है, उस पर काव्य रचना हुई है और उसकी सीमा मे ही काव्य के विविध तत्त्वो का विकास हुआ है। जैन साहित्यिक कृतियो मे शान्त-रस-राजत्व इसी पृष्ठभूमि पर समझा जा सकता है। वहा सभी भावो का समापन निर्वेद मे हुआ है और सभी रसो की पूर्णाहुति शान्तरस मे।

हिन्दी जैन-साहित्य का प्रारम्भ और उसकी प्रवृत्तिया

हिन्दी भाषा मे जैन-साहित्यिक रचनाएँ १२वी शताब्दी ई० के उत्तरार्द्ध से उपलब्ध हैं। तब से लेकर अब तक के जैन-साहित्य पर अगर हम दृष्टिपात करें तो प्राचीन साहित्य मे और इधर के कुछ वर्षो मे प्रकाशित साहित्य मे प्रवृति-मूलक अन्तर स्पष्ट दिखाई देते हैं। पुराने साहित्य की कतिपय विशेपताएँ हैं—(क) मुख्यत प्रवन्ध काव्यात्मक होना। इनमें छोटी प्रवन्ध रचनाएँ—जो रास, फागु, वेलि, चउपई, चरित आदि नामो से अभिहित की गई हैं, अधिक महत्वपूर्ण एव मौलिक हैं। (ख) वृहदकाय छन्दवद्ध रचनाएँ, जो पुराण तथा चरित सज्ञक हैं, प्राय सस्कृत ग्रन्थो के पद्यानुवाद है। (ग) पद्यानुवाद की तरह ही गद्यानुवाद की प्रवृत्ति भी प्राचीन जैन-साहित्य की एक प्रमुख प्रवृति रही है। (घ) जैन-कवियो द्वारा भक्तिपरक मुक्तक पदो की रचना तथा (ङ) तीर्थंकरो के भक्ति परक, लयात्मक, छन्दवद्ध पूजा काव्य की रचना।

आधुनिक जैन-साहित्य ·

परन्तु पिछले लगभग ५ दशक के जैन-साहित्य पर दृष्टिपात करें तो हमें इसके एक नये

स्वरूप के ही दर्शन होते हैं। जैन-साहित्य का यह नया स्वरूप समानान्तर भारतीय-साहित्य में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने में पूर्णत. समर्थ है। अपनी प्राचीन धार्मिकता की परम्परा से जुडा होने पर भी आज यह साहित्यिक गुणो से अधिक सम्पन्न ह। आधुनिक जैन-साहित्यकार कथा-सूत्रो के लिए तथा अपनी भावात्मक व वैचारिक प्रेरणा के लिए अपने परम्परागत साहित्य का ऋणी है, परन्तु अधुनातन साहित्यिक प्रवृत्तियो को अपनाते हुए वह अपने परम्परागत साहित्य को जन-साधारण के निकट ले आया है। यह आज के जैन-साहित्यकार की उपलब्धि है। इससे पहले का जैन-साहित्य जैन-धार्मिको की सकुचित-सीमा मे ही आबद्ध होकर रह गया था। उसका पठन-पाठन भी जैन-धार्मिक स्थलो पर ही होता रहा हे, जैनेतर समाज उसके विपुल दाय से अनभिज्ञ ही रहा, परन्तु आज यह स्थिति बदल रही है। जैन-साहित्यकारो द्वारा उपन्यास, एकाकी, कहानी आदि के नये साचे मे ढाला जाकर और नया नाम धारण करके आज यह साहित्य जनसाधारण मे सुलभ हो रहा है और समसामयिक साहित्य के समानान्तर खडा हो रहा है। आज के जैन-साहित्य के लिए 'मात्र धार्मिक साहित्य' का लेबल बेमानी है, आज यह पहले साहित्य है, पीछे और कुछ।

जैन साहित्य की नई प्रवृत्तिया

इधर जो जैन-साहित्य प्रकाशित हो रहा है, उसके आधार पर हम आधुनिक जैन-साहित्य की कतिपय प्रवृत्तियो की ओर आसानी से सकेत कर सकते है। यहा पहले हम इन प्रवृत्तियो का उल्लेख कर रहे है और साथ ही लेख के परिशिष्ट भाग के रूप मे आधुनिक साहित्य-प्रकाशन की एक सूची (विधा के अनुसार) दे रहे है। यह सूची प्रवृत्तियो का स्वरूप स्पष्ट कराने की दृष्टि से है।

प्रमुख प्रवृत्तिया

(१) प्रबन्ध काव्य—महाकाव्य तथा खण्ड काव्यो की रचना—प्राचीन जैन-साहित्य से कथानको का चयन कर—विशेषत जैन-परम्परा में मान्य त्रिषष्ठि शलाका पुरुषो के पुराणो तथा चरित साहित्य में वर्णित कथानको को आधार रूपो मे लेकर आधुनिक महाकाव्यो तथा खण्ड काव्यो की रचना की गई है।

(२) प्राचीन जैन कथाओ को आधुनिक कहानी के शिल्प मे प्रस्तुत करना—आगमो, चरित-ग्रन्थो, पुराणो आदि में इतस्तत उपलब्ध अनेक जैन-कथाओ को आधुनिक कहानी के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। ऐसे बहुत से कहानी सकलन इधर प्रकाशित हुए है। जैन विचारधारा का आधार लेकर कुछ कहानिया स्वतन्त्र रूप से भी लिखी गई है।

(३) जैन आगमिक पौराणिक तथा ऐतिहासिक प्रसगो के आधार पर नाटको एव रग-मचीय व रेडियो एकाकियो की रचना।

(४) प्रसिद्ध जैन-आख्यानो, शलाका पुरुषो व ऐतिहासिक जैन-विभूतियो को आधार बनाकर उपन्यास रचना। ऐसे कतिपय उपन्यास इधर के कुछ वर्षो मे प्रकाशित हुए हैं।

(५) लघु-उपन्यास लेखन की एक नई प्रवृति पिछले कुछ ही वर्षों मे हिन्दी साहित्य मे प्रमुख रूप से उभर कर सामने आ रही है। पाकेट बुक प्रकाशन ने इस प्रवृति को अधिक लोकप्रियता प्रदान की है। जैन-साहित्य मे भी यह प्रवृत्ति पनप रही है।

(६) जैन-सिद्धान्तो, जैन-तीर्थंकरो आदि से सम्बन्धित स्वतत्र मुक्तक कविताओ की रचना।

(७) जैन-सिद्धान्तो, जैन विचारधारा तथा दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने वाले तथा उनकी आधुनिक व्याख्या करने वाले निबन्धो की रचना। इस प्रकार का विपुल जैन-साहित्य पत्र-पत्रिकाओ तथा स्वतत्र सग्रहो के रूप मे प्रकाशित हुआ है।

(८) प्राचीन जैन-साहित्य इसके पुरस्कर्ताओ तथा जैन साहित्यिक प्रवृत्तियो पर शोधपरक प्रबन्ध व अन्य समीक्षात्मक एव परिचयात्मक पुस्तको का प्रणयन। इस प्रकार का साहित्य भी विपुल मात्रा मे प्रस्तुत किया गया है। इस प्रवृत्ति को बढावा मिलने का एक प्रमुख कारण विश्व-विद्यालयो मे जैन विषयो को लेकर डॉक्टरेट करने वाले अनेक विद्यार्थी हैं।

(९) प्रवचनात्मक साहित्य की एक नई प्रवृत्ति भी साहित्यिक क्षेत्र मे आजकल उभर रही है। विशिष्ट व अधिकारी विद्वानो के विषय विशेष पर भाषण आयोजित करना तथा उनका सकलन प्रकाशित करना एक आम बात हो गई है। आचार्य रजनीश का सम्पूर्ण साहित्य इसी कोटि का है। गाधीजी के साहित्य का भी एक बडा भाग इसी तरह का है। जैन साहित्य मे भी यह प्रवृत्ति प्रमुख रूप से उभर रही है। साधु-सन्तो के प्रवचन सुसम्पादित होकर पत्र-पत्रिकाओ मे प्राय प्रकाशित होते रहते हैं तथा उनके सकलन भी प्रकाशित हो रहे हैं। इसमे एक दृष्टि यह भी है कि जो बहुत से श्रद्धालु श्रावक किन्ही परिस्थितियोवश प्रत्यक्ष प्रवचनो का लाभ नही उठा पाते, वे इन्हे पढकर उसकी पूर्ति कर लेते हैं।

(१०) फिल्मी तर्ज पर गेय गीतो व भजनो की रचना की प्रवृत्ति। इस तरह के गीत तथा भजन मन्दिरो मे व धार्मिक समारोहो मे प्रचुरता से गाए जाने लगे हैं।

(११) आगम ग्रन्थो अन्य प्राचीन महत्त्वपूर्ण सैद्धान्तिक ग्रन्थो, ग्रन्थ सूचियो, प्राचीन कवियो के पद सग्रहो तथा ग्रन्थावली-सम्पादन आदि की एक महत्त्वपूर्ण प्रवृति भी आधुनिक जैन-साहित्य मे परलक्षित हो रही है।

(१२) प्रभावशाली जैनाचार्यों एव तपस्वी मुनियो की जीवनियो का प्रकाशन भी आधुनिक जैन-साहित्य मे लोकप्रिय विधा के रूप मे स्थान पाने लगा है।

राजस्थान प्रदेश का आधुनिक जैन साहित्य .

ऊपर हमने आधुनिक हिन्दी जैन-साहित्य की सामान्य प्रवृत्तियो का सक्षेप मे सकेत किया है। ये प्रवृत्तिया आज के समग्र जैन-साहित्य का प्रतिनिधित्व करती हैं। सम्पूर्ण देश मे इस प्रकार का विपुल जैन-साहित्य पिछली कुछ दशाब्दियो मे प्रकाशित हुआ है तथा हो रहा है। प्रस्तुत लेख की सीमा राजस्थान प्रदेश है, अत यहा हम राजस्थान प्रदेश के आधुनिक जैन-साहित्य की एक सूची दे रहे हैं। इस सूची के निर्माण मे मुख्यत निम्न तथ्यो को हमने ध्यान मे रखा है—(क) साहित्यकार, राजस्थान मे पैदा हुआ हो अथवा रह रहा हो। (ख) कृति का प्रकाशन राजस्थान मे हुआ हो। (ग) सूची मे केवल प्रकाशित ग्रन्थो (अप्रकाशित शोध प्रबन्धो को भी) का ही समावेश किया गया है। (घ) सूची-निर्माण उपर्युक्त प्रवृत्तियो के आधार पर है अर्थात् प्रत्येक प्रवृत्ति के शीर्षकान्तर्गत उस प्रवृत्ति से सम्बन्धित प्रमुख प्रकाशित ग्रन्थों का नामोल्लेख किया गया है।[1]

---

१ हमे जिन ग्रन्थो की सूचना व जानकारी प्राप्त हो सकी, उन्ही को इस सूची मे सम्मिलित किया जा सका है। बहुत से ग्रन्थो का नामोल्लेख सूचना के अभाव मे रह गया है।

इस सूची के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि एक ओर जहा आधुनिक जैन साहित्य मे सृजनात्मक ललित साहित्य, यथा-नाटक, एकाकी, उपन्यास, कहानी एव प्रबन्ध काव्यो की रचना तथा प्रकाशन सीमित मात्रा मे हुआ है, वहा सम्पादित साहित्य, प्रवचन-साहित्य, निबन्ध आदि का प्रणयन तथा प्रकाशन पर्याप्त मात्रा मे सभव हो सका है।

प्रमुख प्रकाशित ग्रथो की विधापरक सूची

१ प्रबन्ध काव्य

आचार्य श्री तुलसी—भरत मुक्ति, अग्नि परीक्षा, आपाढभूति, श्री कालूयशोविलास। श्री गणेश मुनि—विश्व ज्योति महावीर। श्री नैनमल जैन—पवनाजना। मरुधर केसरी श्री मिश्रीमल जी महाराज—पाण्डव यशोरसायन, सकल्प विजय, मरुधर केसरी ग्रथावली भाग १-२। श्री मोतीलाल मार्तण्ड—ऋषभ चरितसार। श्री चन्दन मुनि—रयणवाल कहा (प्राकृत)। आचार्य श्री हस्तीमल जी म०—जैन आचार्य चरितावली।

२. कविता-सग्रह

श्री गणेश मुनि शास्त्री—वाणी-वीणा, महक उठा कवि सम्मेलन, सुबह के भूले, गीतो का मधुवन, सगीत रश्मि, गीत झकार। डॉ० नरेन्द्र भानावत—माटी कुकुम, आदमी मोहर और कुर्सी, श्री कन्हैयालाल सेठिया—मेरा युग, दीपकिरण, प्रतिबिम्ब, प्रणाम, मर्म, मीझर कूकू। आचार्य श्री तुलसी—श्री कालू उपदेश वाटिका। मुनि श्री महेन्द्रकुमार जी 'कमल'—श्रमण सस्कृति के ढाई हजार स्वर, प्यासे स्वर, मन के मोती, प्रकाश के पथ पर, फूल और अगारे, विधि के खेल। मुनि श्री बुद्धमल जी—मन्थन, आवर्त्त। मुनि श्री मोहनलाल शार्दूल—पथ के गीत, आदमी की राह, मुक्तधारा। मुनि मोहन 'सुजान'—प्यास और दर्पण। मुनि रूपचन्द—कला-अकला, अर्द्धविराम खुले आकाश मे, गुलदस्ता, इन्द्र धनुप। मुनि मोहनलाल 'आमेट'—तथ्य और कथ्य। मुनि चन्दनमल—मञ्जूषा। साध्वी श्री कनक प्रभा—सरगम। साध्वी श्री मञ्जुला—चेहरा एक हजारो दर्पण। साध्वी श्री सघमित्रा—साक्षी है शब्दो की, बूद बन गई गंगा। साध्वी सुमन श्री—सासो का अनुवाद, सशय का चौराहा। मुनि श्री नथमल—फूल और अगारे। मरुधर केसरी मुनि श्री मिश्रीमल जी—उपदेश बावनी, बुध विलास। श्री केवल मुनि—गीत गुञ्जार, मेरे गीत, मधुर गीत, गीतावली, गीत-लहरिया, गीत-सौरभ। श्री प्रकाश जैन—अन्तर्यात्रा। आचार्य श्री हस्तीमल जी म०—गजेन्द्र मुक्तावली भाग १-२। मुनि दुलीचन्द—खुली आवाज, मंगलमुक्ता। मुनि मधुकर—गुजन। मुनि वत्सराज—आँख और पाख।

३ उपन्यास

श्री महावीर कोटिया—आत्मजयी, कूणिक, (दोनो लघु-उपन्यास)। श्री ज्ञान भारिल्ल—तरगवती, शूली और सिंहासन, भटकते-भटकते। आचार्य अमृतकुमार—कपिल। कमला जैन 'जीजी'—अग्नि पथ। डॉ० प्रेम सुमन जैन—चितेरो के महावीर।

४ कहानी सग्रह, प्रेरक प्रसग एव गद्य काव्य

श्री गणेश मुनि शास्त्री—प्रेरणा के बिन्दु, जीवन के अमृत कण। आचार्य श्री हस्तीमल जी म०—धार्मिक कहानिया। डॉ० नरेन्द्र भानावत—कुछ मणिया कुछ पत्थर। श्री देवेन्द्र

मुनि—खिलती कलिया मुस्कराते फूल, प्रतिध्वनि, फूल और पराग, बोलते चित्र, बुद्धि के चमत्कार , अमिट रेखाएँ, महकते फूल। मुनि श्री महेन्द्रकुमार जी प्रथम—जैन कहानिया भाग १ से २५। श्री मधुकर मुनि—जैन कथामाला भाग १-६। श्री भगवती मुनि निर्मल—लो कहानी सुनो, लो कथा कह दू। मुनि श्री छत्रमल—कथा कल्पतरु। श्री रमेश मुनि—प्रताप कथा कौमुदी भाग १-४, महावीर के पावन प्रसग। मुनि श्री महेन्द्र कुमारजी 'कमल'—भगवान् महावीर के प्रेरक सस्मरण (पद्यबद्ध)। श्री महावीर कोटिया—बदलते क्षण। श्री शान्तिचन्द्र मेहता—सौदर्य-दर्शन। श्री चन्दन मुनि—अन्तर्ध्वनि। मुनि श्री चन्द्र 'कमल'—पद-चिह्न, रश्मियाँ। मुनि बुधमल्ल—आखो ने कहा।

५ नाटक व एकाकी .

डॉ० नरेन्द्र भानावत—विष से अमृत की ओर। महेन्द्र जैन—महासती चन्दन बाला।

६ जीवनी साहित्य

श्री शोभाचन्द्र भारिल्ल, डॉ० इन्द्रचन्द्र शास्त्री—पूज्य श्री जवाहरलाल जी महा० की जीवनी, सोलह सती। प० रत्न मुनि श्री लक्ष्मीचन्द जी महाराज—मुक्ति के पथ पर, (सुजानमलजी महा० सा० की जीवनी), तपस्वी मुनि श्री बालचन्द्र जी महाराज। प० दुखमोचन झा—अमरता का पुजारी (आचाय श्री शोभाचन्द जी महा० की जीवनी), आदर्श विभूतियाँ। श्री हीरा मुनि—जय शोभाचन्द। श्री राजेन्द्र मुनि—रा० केसरी पुष्कर मुनि जी महाराज। आर्या प्रेमकुवर—महासती श्री जसकुवर एक विराट व्यक्तित्व। मुनि समन्तभद्र—विश्व चेतना के मनस्वी सत, (मुनि श्री सुशील कुमार जी की जीवनी)। श्री मधुकर मुनि— ज्योतिर्धर जय। मुनि नथमल—आचार्य भिक्षु दी मैन एण्ड हिज फिलॉसफी, आचार्य तुलसी लाइफ एण्ड फिलॉसफी। श्री देवकुमार जैन—पूज्य गणेशाचाय जीवन-चरित्र। श्री अगरचन्द भवरलाल नाहटा—युग प्रधान श्री जिनचन्द्रसूरि। मुनि श्री 'महेन्द्रकुमारजी 'कमल'—दिव्य तपोधन (तपस्वी श्री वेणीचन्द्र जी म० की जीवनी)।

७ निबन्ध, समालोचना, शोध प्रबन्ध आदि

आचार्य श्री हस्तीमल जी म०—जैन धर्म का मौलिक इतिहास भाग १-२। श्री गणेश मुनि शास्त्री-आधुनिक विज्ञान और अहिंसा, अहिंसा की बोलती मीनारें, इन्द्रभूति गौतम—एक अनुशीलन। डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल—तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ, प० टोडरमल व्यक्तित्व और कर्तृत्व। डॉ० नरेन्द्र भानावत—भगवान् महावीर आधुनिक सदभ मे (स०), साहित्य के त्रिकोण, राजस्थानी साहित्य कुछ प्रवृत्तिया, राजस्थानी वेलि साहित्य। श्री देवेन्द्र मुनि—भगवान् महावीर एक अनुशीलन, ऋषभदेव—एक परिशीलन, भगवान पार्श्व—एक समीक्षात्मक अध्ययन, भगवान् अरिष्टनेमि और कमयोगी श्री कृष्ण, धम और दशन, साहित्य और सस्कृति, सस्कृति के अचल मे, चिन्तन की चादनी, अनुभूति के आलोक मे, विचार रश्मिया, विचार और अनुभूतिया। श्री पुष्कर मुनि—ओकार एक अनुचिन्तन। डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल—महाकवि दौलतराम कासलीवाल—व्यक्तित्व एव कर्तृत्व, शाकम्भरी प्रदेश के सास्कृतिक विकास मे जैन धर्म का योगदान, जैन ग्रथ भण्डास इन राजस्थान। मुनि श्री नथमल—जैन दशन मनन और मीमासा, अहिंसा तत्त्व-दर्शन, उत्तराध्ययन एव दशवैकालिक का समीक्षात्मक अध्ययन, मैं मेरा मन मेरी

शान्ति, चेतना का ऊर्ध्वारोहण, भिक्षु विचार दर्शन, श्रमण महावीर, सत्य की खोज अनेकान्त के आलोक मे। श्री उमेश मुनि 'अणु'—श्रीमद् धर्मदास जी म० और उनकी मालव शिष्य परम्पराएँ। डॉ मोहनलाल मेहता—जैन धर्म दर्शन, जैन आचार जैन साईकोलॉजी, जैन कल्चर, जैन फिलॉसफी, जैन साहित्य का वृहद इतिहास भाग २-३।

मुनि विद्यानन्द—पिच्छि-कमण्डलु। मुनि दुलहराज—लॉर्ड महावीर लाइफ एण्ड टीचिंग, एपोटोम ऑफ जैनिज्म। मुनि शुभकरण—उडीसा मे जैन धर्म। प० उदय जैन—वीर विभूति। डॉ० शान्ता भानावत—महावीर री ओलखाण (राजस्थानी भाषा मे) मुनि श्री नगराज—जैन दर्शन और आधुनिक विज्ञान, आगम और त्रिपिटक, एक अनुशीलन, अहिंसा-विवेक, महावीर और बुद्ध की समसामयिकता, अणुव्रत जीवन दर्शन, अहिंसा-पर्यवेक्षण। मुनि बुद्धमल—तेरापथ का इतिहास, श्रमण सस्कृति के अञ्चल मे। आचार्य श्री तुलसी—धर्म एक कसौटी, एक रेखा, मेरा धर्म केन्द्र और परिधि, अणुव्रत के सन्दर्भ मे, भगवान महावीर। श्री श्रीचद रामपुरिया—तीर्थंकर वर्द्धमान, अर्हत् अरिष्टनेमि और वासुदेव कृष्ण। डॉ० के० सी० जैन—लॉर्ड महावीर एण्ड हिज टाइम्स, जैनिज्म इन राजस्थान। श्री चादमल सीपाणी—इतिहास की खोज। श्री गोपीचन्द धाडीवाल—धर्म और ससार का स्वरूप, अध्यात्म विज्ञान योग प्रवेशिका। प० भद्रकर विजय जी गणि—परमेष्ठि नमस्कार। मुनि कल्याण विजय जी—वीर निर्वाण सवत् और जैन-काल-गणना, भगवान् महावीर। प० महेन्द्र कुमार—जैन दर्शन। मुनि सुखलाल—अणुव्रत की कसौटी पर। श्री उदय मुनि—प्रिय निबन्धोदय भाग १-२, आगमो मे तीर्थंकर चरित्र। श्रीमती उषा बापना—सत कवि जयमल्ल व्यक्तित्व और कृतित्व। प० चैनसुखदास—जैन दर्शनसार, भावना विवेक। प० इन्द्रलाल शास्त्री—धर्म-सोपान, अहिंसा तत्त्व, तत्त्वालोक, आत्म वैभव। मुनि श्री कान्तिसागर—खण्डहरो का वैभव, खोज की पगडडिया। डॉ० नेमिचद शास्त्री—हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन भाग १–२, आचार्य हेमचन्द्र और उनका शब्दानुशासन, भारतीय ज्योतिष, तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा भाग १–४। श्री अगरचद नाहटा—प्राचीन काव्यो की रूप परम्परा, राजस्थानी साहित्य की गौरवमयी परम्परा। डॉ० कमलचद सोगानी—जैन इथिक्स। महोपाध्याय विनयसागर—खरतर गच्छ का इतिहास। डॉ० प्रेमसुमन जैन—कुवलयमालाकहा का सास्कृतिक अध्ययन। डॉ० हरीश—आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य। डॉ० बी० एल० जैन—सकलकीर्ति–एक अध्ययन।

डॉ० श्यामशकर दीक्षित—तेरहवी–चौदहवी शताब्दी के जैन सस्कृत महाकाव्य। डॉ० शाता जैन—जैन मिस्टीसिज्म। डॉ० छगनलाल शास्त्री–भिक्षु साहित्य का समालोचनात्मक अध्ययन। डॉ० लालचद जैन—ब्रजभाषा के जैन प्रबन्ध-काव्य। डॉ० मदन गोपाल शर्मा—सधारु कृत 'प्रद्युम्न चरित' काव्य के सन्दर्भ मे प्रद्युम्न चरित काव्य-परम्परा का तुलनात्मक और समीक्षात्मक अध्ययन। डॉ० सत्यनारायण स्वामी—महाकवि समयसुन्दर और उनकी राजस्थानी रचनाएँ। डॉ० ब्रजनारायण पुरोहित—तेरापन्थ सम्प्रदाय का राजस्थानी और हिन्दी साहित्य। डॉ० ईश्वरप्रसाद शर्मा—महाकवि जिन हर्ष एक अनुशीलन। कु० शकुन्तला बाकीवाला—जयपुर क्षेत्रीय जैन रास-काव्य। कु० स्नेहलता माथुर—सत कवि रायचद्र की पच्चीसी सज्ञक रचनाएँ। श्रीमती कुसुम पाटनी—महाकवि दौलतराम व्यक्तित्व और कृतित्व। कु० मधु माथुर—सन्तकवि तिलोक ऋषि व्यक्तित्व और कृतित्व।

८. प्रवचन साहित्य

आचार्य श्री जवाहरलाल जी महाराज—जवाहर किरणावली भाग १-३५, जवाहर विचार-सार। आचार्य श्री हस्तीमल जी म०—आध्यात्मिक आलोक भाग १ से ४, आध्यात्मिक साधना भाग १-२, प्रार्थना प्रवचन। श्री पुष्कर मुनि—जिन्दगी की मुस्कान, साधना का राज मार्ग, रामराज, मिनख पणारो मोल। आचार्य श्री तुलसी—प्रवचन डायरी भाग १-४। श्री मधुकर मुनि—साधना के सूत्र, अन्तर की ओर भाग १-२। महासती श्री उमराव कुँवर जी,-'अर्चना' अर्चना और आलोक। साध्वी श्री मैना सुन्दरी जी—दुर्लभ अ ग चतुष्ट्य। आचार्य श्री गणेशी लाल जी महाराज—जैन सस्कृति का राजमार्ग, आत्मदर्शन। आचार्य श्री नानालाल जी महाराज—पावस प्रवचनभाग १-४, ताप औरतप, समता-दर्शन और व्यवहार। मरुधर केसरी मुनि श्री मिश्रीलाल जी—जैन धर्म मे तप स्वरूप और विश्लेषण, प्रवचन प्रभा, प्रवचन सुधा, धवलज्ञान धारा, साधना के पथ पर, जीवन ज्योति। जैन दिवाकर मुनि श्री चौथमल जी जैन दिवाकर दिव्य ज्योति भाग १-२१। श्री समरथमल जी महाराज—समर्थ समाधान भाग १-२। श्री हीरालाल जी म० हीरक प्रवचन भाग १-१०।

९ प्राचीन साहित्य सम्बन्धी सम्पादित ग्रथ

मुनि श्री जिनविजय जी—विविध गच्छीय पट्टावली सग्रह, खरतरगच्छ पट्टावली सग्रह। प० मुनि श्री लक्ष्मीचद जी महाराज—सुजान पद सुमन वाटिका, श्री रत्नचद्र पद मुक्तावली। आचार्य श्री हस्तीमल जी म०—पट्टावली प्रबन्ध सग्रह। डॉ० नरेन्द्र भानावत—आचार्य श्री विनयचद्र ज्ञान भण्डार ग्रन्थ सूची भाग १, राजस्थानी गद्य विकास और प्रकाश। डॉ० कस्तूर-चद कासलीवाल, अनूपचद न्यायतीर्थ—राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थ सूची भाग १-५। डॉ० कासलीवाल—प्रशस्ति-सग्रह, हिन्दी पद सग्रह। प० चैनसुखदास न्यायतीर्थ—प्रद्युम्न चरित, अर्हंत् प्रवचन। डॉ० माता प्रसाद गुप्त, डॉ० कासलीवाल—जिणदत्त चरित। श्री अगरचद नाहटा—बीकानेर जैन लेख सग्रह, समयसुन्दर कृति कुसुमाञ्जलि, सीताराम चौपई, ऐतिहासिक जैन काव्य सग्रह, कविवर धर्मवर्द्धन ग्रन्थावली, श्री ज्ञानसार ग्रन्थावली, श्री जिनहर्ष ग्रन्थावली। भवरलाल नाहटा—समयसुन्दर रासत्रय, जिनराज सूरि कृति कुसुमाञ्जलि, विनयचद्र कृति कुसुमाञ्जलि। मुनि दुलहराज—भरत बाहुबलि महाकाव्य। मरुधर केसरी श्री मिश्रीमल जी महाराज—कर्म ग्रन्थ। श्री मधुकर मुनि—जयवाणी। श्रीचद्र रामपुरिया—तेरापन्थ आचार्य चरितावली भाग १-२, भिक्षु ग्र थ रत्नाकर भाग १-२, नव पदार्थ। मुनि कल्याण विजय जी—पट्टावली पराग सग्रह, तपागच्छ पट्टावली। डॉ० प्रेमसुमन जैन—प्राकृत चयनिका, अपभ्र श काव्य धारा। महोपाध्याय विनयसागर—प्रतिष्ठा लेख सग्रह। श्री मोहनलाल बाठिया, श्रीचद चोरडिया—लेश्याकोश, क्रियाकोश। श्री धन मुनि 'प्रथम'—वक्तृत्व-कला के बीज, भाग १ से ९। श्री प्रेमराज बोगावत, प्रेम भडारी—भक्तामर, रत्नाकर पच्चीसी व सामायिक पाठ।

•••

प्रशासन और राजनीति

३६ | देशी रियासतों के शासन-प्रबन्ध में जैनियों का सैनिक राजनीतिक योगदान

डॉ० देव कोठारी

पृष्ठभूमि

जैनधर्म मूलत· अहिंसावादी होने के कारण उसके अनुयायियो पर प्राय यह आक्षेप लगाया जाता रहा है कि उनमे सैनिक और राजनीतिक योग्यता का अभाव है और यह एक धर्म भीरु जाति है, जो तलवार उठा कर शौर्य प्रदर्शित नही कर सकती है एव कूटनीतिक दॉव-पेचो द्वारा राष्ट्र रक्षा व उसके निर्माण के पुनीत कार्य मे हिस्सा नही बटा सकती है। व्यापार-वाणिज्य के माध्यम से धन अर्जित करने के सन्दर्भ मे ही इस जाति का प्राय मूल्याकन किया जाता रहा है, किन्तु वीर प्रसविनी राजस्थान वसुन्धरा के स्वर्णिम इतिहास के कई ऐसे कहे-अनकहे पृष्ठ है, जिन पर इतिहासज्ञो की दृष्टि नही पडी है, फलस्वरूप जैनधर्म के अनुयायी वीरो व नरपगुवो के बाहुबल, कुशाग्र बुद्धि, विवेक, कूट-नीतिक दूरदर्शिता एव सर्वस्व न्यौछावर करने की उनकी त्यागमय लालसा को इतिहास मे उचित तथा प्रामाणिक स्थान नही मिल पाया है।

राजस्थान के मध्ययुगीन इतिहास मे जैन धर्मानुयायी अनेक ऐसे पराक्रमी पुरुषो के सन्दर्भ प्राप्त होते हैं, जिन्होने अनेक युद्धो का योग्यतापूर्वक नेतृत्व या सचालन ही नही किया, अपितु अनेक राज्यो की स्थापना, सुरक्षा व स्थायित्व मे मदद की तथा अशाति, विपत्ति और अस्थिरता के समय मे कई प्रसिद्ध राज्यो एव उनके तत्कालीन शासको की सत्ता को अपने प्राणो की आहुतिया देकर भी कायम रखा। ऐसे समय मे अगर ये चाहते तो उस समय की परिस्थितियो का लाभ उठाकर किसी भी राज्य के स्वय स्वामी हो सकते थे और अपने वश या नाम से नवीन राज्यो की स्थापना कर सकते थे, लेकिन राष्ट्र-रक्षार्थ उन्होने कभी विश्वासघात नही किया। अपनी बुद्धि और बाहुबल के द्वारा उन्होंने जो कुछ किया, अपने स्वामी या राज्य की रक्षार्थ किया। तात्पर्य यह कि स्वामी-भक्ति, राजनीति, कूटनीति, अर्थनीति, युद्धनीति आदि के द्वारा इन जैन वीरो ने तत्कालीन राज्य-प्रवन्ध व इतिहास-निर्माण मे अपनी सम्पूर्ण योग्यता व कुशलता के द्वारा अपूर्व तथा महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। जिससे प्रभावित होकर समकालीन व परवर्ती राजा-महाराजाओ ने उन्हे तथा उनके परिवार को खास रुक्को व ताम्रपत्रो के द्वारा गाव, जमीन आदि भेट की, उन्हे रक्षक के रूप मे सम्बोधित किया तथा उनकी सेवाओ की मुक्तकठ से प्रशसा की।

स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व राजस्थान की देशी रियासतो विशेषकर मेवाड और मारवाड (अर्थात् जोधपुर व बीकानेर) राज्यो के राज्य प्रबन्ध मे जैन मतावलम्बियो के सैनिक व राजनीतिक योगदान की विपुल सामग्री रुक्को, ताम्रपत्रो, पट्टे-परवानो, शिलालेखो, काव्य ग्रन्थो, गीतो, वशावलियो, ख्यातो, वातो तथा भाटो की वहियो मे विद्यमान है, जिसका अगर शोधपरक व तटस्थ दृष्टि से मूल्याकन प्रस्तुत किया जाये तो मेवाड, जोधपुर, बीकानेर तथा अन्य राज्यो के इतिहास की अनेक लुप्त कडिया जुड सकती हैं।

इनकी इन्ही योग्यताओ से प्रभावित होकेर मेवाड व मारवाड ही नही राजस्थान के अन्य राज्यो के तत्कालीन शासको ने जैनियो को सर्वोच्च पदो पर आरूढ किया तथा राज्य प्रबन्ध की दैनन्दिन गतिविधियो से वे निश्चित होकर रहे। इनके प्रति शासको के अगाध विश्वास का अनुमान इन्ही तथ्यो से लगाया जा सकता है कि जैनियो को पीढी-दर-पीढी अपने पदो पर आसीन रखा, खजाने की चाविया उनके पास रहने दी, सामरिक महत्त्व के किलो व गढो को उनके नेतृत्त्व मे सौंपा, सेनानायको के पद पर नियुक्त कर शत्रु के विरुद्ध सघर्ष मे सैन्य सचालन का दायित्व दिया, सुलह व सन्धि वार्ताओ तथा राज-काज के अन्य छोटे-मोटे कामो मे भी जैन समुदाय की सेवाए बडे पैमाने पर प्राप्त की।

इन सेवाओ मे जैन समुदाय की विभिन्न जातियों का योगदान रहा है, जिनमे मेहता, कावडिया, सिंघी-सिंघवी, भण्डारी, कोठारी, बच्छावत, मुहणोत, लोढा, बाफना, गाधी, बोलिया, गलूडिया, कोचर मेहता, बेद मेहता, कटारिया मेहता, राखेचा, समदडिया मूथा, आदि प्रमुख हैं।

शासन व्यवस्था के विभिन्न पद :

राज्य प्रबन्ध के सुचारु व कुशल सचालन के लिये मेवाड व मारवाड मे शासन-व्यवस्था को विभिन्न पदो के अधीन विभाजित कर रखा था, यथा—

(१) प्रधान (२) दीवान (३) फौजबक्शी
(४) किलेदार (५) मुत्सद्दी (६) अन्य

इन सब मे प्रधान का पद सर्वोच्च था। आगल भाषा मे प्रधान को Prime-minister कह सकते हैं। ये राजा या महाराजा के प्रति सीधा उत्तरदायी तथा राजा के बाद राज्य का कर्त्ता-धर्त्ता होता था। इसलिये अत्यन्त विश्वासपात्र, बुद्धिमान, सतुलित, गभीर, विवेकशील, चतुर, नीति-निपुण एव दूरदर्शी व्यक्ति को ही इस पद पर नियुक्त किया जाता था किन्तु राजा की इच्छा के अनुसार इसे नियुक्ति के बाद हटाया भी जा सकता था। ऐसी स्थिति मे जैनियो का इस पद पर नियुक्त होना उनकी विलक्षण प्रतिभा का ही परिचायक था।

दीवान का पद प्रधान से नीचे या अधीन होता था। दीवान को आग्ल भाषा मे Minister के नाम पर से पुकार सकते है। प्रधान का पद सम्पूर्ण राज्य मे एक ही होता था, जबकि दीवान विभिन्न कार्यों व विभागो के अनुसार एकाधिक हो सकते थे। ये भी शासक के प्रति ही उत्तरदायी होते थे, किन्तु इनका सीधा सम्बन्ध प्रधान से होता था। कालान्तर मे धीरे-धीरे प्रधान व दीवान की उपर्युक्त परम्परा समाप्त हो गई और प्रधान व दीवान का पद एक ही माना जाने लगा अर्थात् प्रधान व दीवान शब्द एक दूसरे के पर्यायवाची हो गये।

फौजबक्शी को Commander-in-Chief या सेनापति अथवा सेनानायक कहा जा सकता है। इस पद के अधीन सेना का भार रहता था। यत्र-तत्र युद्धो मे सेना का सचालन, राज्य तथा प्रजा की सुरक्षा करना इनका मुख्य कार्य था।

किलेदार किसी गढ या किले (Fort) के प्रभारी (Incharge) होते थे। किले की सुरक्षा एव सम्पूर्ण प्रवन्ध-व्यवस्था करना किलेदार का प्रमुख कार्य होता था। किले व किले के निवासियो की सुरक्षा के लिये इनके पास भी सेना होती थी। अत्यन्त विश्वासपात्र, रणकुशल एव अनुभवी व्यक्ति को ही किलेदारी का दायित्व दिया जाता था।

मुत्सद्दी, एक प्रकार से प्रशासनिक व्यक्ति होता था, जिसमे हिसाब-किताव, कानून-कायदे, कार्यालयी कार्य की दक्षता एव सैनिक गुणो का होना आवश्यक था।

अन्य प्रकार के पद वे थे, जिनमे हाकिम, अहलकार, कामदार आदि सम्मिलित थे। समस्त पदो पर नियुक्ति-वियुक्ति समकालीन शासक के विश्वास पर निर्भर होती थी।

सैनिक व राजनीतिक योगदान

उपर्युक्त समस्त पदो पर जैनियो का प्रभुत्व सर्वाधिक था, यह राजस्थान के इतिहास व इतिहास से सम्बन्धित सामग्री के विवरण मे स्पष्ट है। इस निवन्ध मे मेवाड (चित्तौडगढ-उदयपुर) तथा मारवाड (जोधपुर-बीकानेर) के विशेष सन्दर्भ के साथ अन्य राज्यो मे इन्ही जैन प्रधानो, दीवानो, फौजवक्शियो, किलेदारो व मुत्सद्दियो द्वारा राज्य प्रवन्ध मे उनके द्वारा किये गये सैनिक व राजनीतिक योगदान का प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है। ऐसे महापुरुषो की अब तक ज्ञात सख्या लगभग दो सौ है, अत सबका वृत्तान्त यहा प्रस्तुत करना सभव नही है, इसलिये कतिपय प्रमुख चरित्रो के सक्षिप्त विवरण के साथ साथ अन्यो की राज्यानुसार मात्र सकेतात्मक सूचना ही दी जा रही है—

(क) मेवाड राज्य

राजस्थान का दक्षिणी भाग अर्थात् उदयपुर, चित्तौडगढ व भीलवाडा जिले का क्षेत्र मेवाड के नाम से अभिहित किया जाता है। मेवाड का प्राचीन इतिवृत्त तथा उसकी शौर्य गाथाए इतिहास प्रसिद्ध हैं। पहले मेवाड की राजधानी चित्तौडगढ थी, किन्तु महाराणा उदयसिंह (वि० स० १५९४–१६२८) के समय मे उदयपुर नगर बसाकर इसे मेवाड की राजधानी बनाया गया, तब से स्वतन्त्रता प्राप्ति तक उदयपुर ही मेवाड की राजधानी रहा। इस मेवाड के राज्य प्रबन्ध मे जैनियो के सैनिक व राजनीतिक योगदान का महत्त्वपूर्ण विवरण उपलब्ध होता है, यथा—

जालसी मेहता · मेवाड के इतिहास मे जालसी मेहता का उल्लेख विक्रम की चौदहवी शताब्दी के आरम्भ मे मेवाड उद्धारक एव अनन्य स्वामीभक्त के रूप मे मिलता है। उस समय मेवाड पर अलाउद्दीन खिलजी का अधिकार था और उसने जालोर के मालदेव सोनगरा को चित्तौड दुर्ग सुपुर्द कर रखा था।[1] हमीर तब सिसोदे गाव का स्वामी था। उसने अपने पैतृक दुर्ग चित्तौड को पुन अपने अधिकार मे करने के उद्देश्य से मालदेव के अधीनस्थ इलाके को लूटना एव उजाडना आरम्भ किया। अल्लाउद्दीन की मृत्यु के पश्चात् जब दिल्ली सल्तनत की दशा बिगडने लगी और उधर से किसी

---

१ ओझा—राजपूताने का इतिहास (उदयपुर खण्ड), प्रथम भाग, पृ० ४९९

प्रकार की मदद की आशा न देखी तो मालदेव ने अपनी पुत्री का विवाह हमीर से कर दिया,[1] ताकि वह उसके अधीन प्रदेश को लूटना व उजाडना बन्द करदे। नव-विवाहिता पत्नी ने हमीर को सलाह दी कि अपने पिता से इस अवसर पर वह किसी तरह का धन आदि नही मागे अपितु उसके दूरदर्शी कामदार जालसी मेहता को माग ले, जिससे उसकी मनोकामना पूरी हो सकती है। हमीर ने ऐसा ही किया और मालदेव से जालसी को माग लिया।[2]

कुछ समय पश्चात् हमीर की इस रानी से क्षेत्रसिंह (जो बाद मे महाराणा खेता कहलाया) नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। ज्योतिषियो की सलाह के अनुसार चित्तौड के क्षेत्रपाल की पूजा (बोलवा) के निमित्त महाराणी को अपने पुत्र क्षेत्रसिंह के साथ चित्तौड जाना पडा।[3] जालसी मेहता भी उस समय साथ मे था। इस समय तक मालदेव की मृत्यु हो चुकी थी और उसका पुत्र जेसा सोनगरा चित्तौड का स्वामी था। जालसी ने यह उपयुक्त अवसर देखा, उसने कूटनीति से काम लेकर लोगो को जेसा सोनगरा के विरुद्ध उभारना आरभ किया, जब जालसी को विश्वास हो गया, वातावरण हमीर के पक्ष मे हो गया है, एव स्थिति अनुकूल है तो उसने हमीर को पूरी तैयारी के साथ अपने विश्वस्त सैनिको को लेकर चित्तौड आने का गुप्त सदेश भेजा। योजना के अनुसार हमीर चित्तौड पहुचा। किले का दरवाजा खोल दिया गया एव घमासान युद्ध के बाद चित्तौड पर हमीर का अधिकार हो गया।[4] जालसी महता की इस राजनीतिक दूरदर्शिता एव सैनिक कुशलता से प्रसन्न होकर हमीर ने उसे अच्छी जागीर दी तथा उसकी प्रतिष्ठा बढाई।[5] इस प्रकार जालसी के सहयोग से हमीर वि स १३८३ मे मेवाड का महाराणा बना और उसके बाद स्वतन्त्रता प्राप्ति तक मेवाड पर इसी सिसोदिया वश का आधिपत्य रहा, जिसमे महाराणा कु भा, सागा, प्रताप और राजसिंह जैसे शक्तिशाली व इतिहास प्रसिद्ध शासक हुए।

भारमल कावडिया भारमल व उसके पूर्वज अलवर के रहने वाले थे। महाराणा सागा (वि स १५६६–१५८४) ने भारमल की सैनिक योग्यता तथा राजनीतिक दूरदर्शिता से प्रसन्न होकर तत्कालीन सैनिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रणथम्भोर के किले का किलेदार नियुक्त किया।[6] बाद मे जब हाडा सूरजमल (बू दीवाले) को रणथम्भोर की किलेदारी मिली,[7] उस समय भी भारमल के हाथ मे एतबारी नौकरी और किले का कुल कारोबार रहा।[8] महाराणा उदयसिंह (वि स० १५९४–१६२८)

---

१ ओझा–राजपूताने का इतिहास (उदयपुर खण्ड), प्रथम भाग, पृ० ५०३

२ (i) कर्नल जेम्स टॉड–एनल्स एण्ड एन्टिक्विटीज ऑव राजस्थान, हिन्दी सस्करण, पृ० १५९
(ii) कविराजा श्यामलदासकृत 'वीर विनोद' मे (प्रथम भाग पृ० २९५ पर) जालसी का नाम मौजीराम मेहता दिया गया है, जो अशुद्ध है। (द्रष्टव्य–ओझा–राजपूताने का इतिहास, प्रथम भाग पृ० ५०६)

३ बाबू रामनारायण दूगड–मेवाड का इतिहास, प्रकरण चौथा, पृ० ६८

४ कर्नल टॉड कृत एनल्स एण्ड एन्टिक्विटीज ऑव राजस्थान, (हिन्दी) पृ० १५९–६०

५ ओझा राजपूताने का इतिहास, द्वितीय भाग (उदयपुर), पृ० १३२४

६ वीर विनोद, द्वितीय भाग, पृ० २५२

७ ओझा–राजपूताने का इतिहास, द्वितीय भाग (उदयपुर), पृ० ६७२ एव १३०२

८ वीर विनोद, द्वितीय भाग, पृ० २५२

ने भारमल की सेवाओ से प्रसन्न होकर वि स १६१० मे अपना प्रमुख सामन्त बनाकर एक लाख का पट्टा दिया था ।[1] इस प्रकार एक किलेदार के पद से प्रमुख सामन्त के पद पर पहुँचना निश्चय ही भारमल की स्वामिभक्ति एव योग्यता का परिचायक था ।

भामाशाह एव ताराचन्द ये दोनो भाई भारमल के पुत्र थे । हल्दीघाटी के प्रसिद्ध युद्ध मे महाराणा प्रताप (वि स १६२८-५३) की सेना के हरावल के दाहिने भाग की सेना का नेतृत्व करते हुए लडे थे एव अकबर की सेना को शिकस्त दी थी ।[2] भामाशाह की राजनैतिक एव सैनिक योग्यता को देख कर महाराणा प्रताप ने उसे अपना प्रधान बनाया । इसने महाराणा प्रताप की सैनिक टुकडियो का नेतृत्व करते हुए गुजरात मालवा, मालपुरा आदि इलाको पर आक्रमण किये एव लूटपाट कर प्रताप को आर्थिक सहायता पहुँचाई ।[3] लूटपाट से प्राप्त धन का ब्योरा वह एक बही मे रखता था और उस धन से राज्य खर्च चलाता था । उसके इस दूरदर्शी एव कुशल आर्थिक प्रबन्ध के कारण प्रताप इतने लम्बे समय तक अकबर के शक्तिशाली साम्राज्य के विरुद्ध सघर्ष कर सके थे । महाराणा अमरसिंह के राज्यकाल (वि स १६५३-१६७६) मे भामाशाह तीन वर्ष तक प्रधान पद पर रहा और अन्त मे प्रधान के पद पर कार्य करते हुए ही इसका देहावसान हुआ ।

ताराचन्द भी एक कुशल सैनिक एव अच्छा प्रशासक था । यह भी मालवा की ओर प्रताप की सेना लेकर शत्रुओ को दबाने तथा लूटपाट कर आतक पैदा करने के लिये गया था । एक बार जब वह मालवा की ओर से लौट रहा था तो उसे व उसके साथ के सैनिको को अकबर के सेनापति शाहबाज खा व उसकी सेना ने घेर लिया । ताराचन्द बडी वीरतापूर्वक लडता हुआ बस्सी (चित्तौड के पास) तक आया किन्तु यहा पर वह घायल होकर गिर पडा । बस्सी के स्वामी देवडा साईंदास इसे अपने किले मे ले गया एव वहा घावो की मरहम पट्टी की व इलाज किया ।[4] प्रताप ने ताराचन्द को गोडवाड परगने मे स्थित सादडी गाव का हाकिम नियुक्त किया, जहा पर रहकर इसने नगर की ऐसी व्यवस्था की कि शाहबाज खा जैसा खूखार योद्धा व सेनापति भी इस नगर पर कब्जा न कर सका । इसी तरह ताराचन्द यहा रहकर नाडोल की ओर से होने वाले अकबर की सेना के आक्रमणो का भी बराबर मुकाबला करता रहा ।[5] सादडी मे इसने अनेक निर्माण कार्य कराये, एव प्रसिद्ध जैन मुनि हेमरत्न से 'गोरा बादल पद्मिनी चौपाई' की रचना कराई ।

रगोजी बोलिया : महाराणा प्रताप के उत्तराधिकारी महाराणा अमरसिंह (वि स १६५३-७६) की राज्य सेवा मे नियुक्त रगोजी बोलिया ने अमरसिंह एव बादशाह जहागीर के मध्य प्रसिद्ध मेवाड-मुगल सन्धि कराने मे प्रमुख भूमिका निभाई तथा मेवाड व मुगल साम्राज्य के मध्य चल रहे लम्बे सघर्ष को सम्मानजनक ढग से बन्द करा कर अपनी दूरदर्शिता व कूटनीतिज्ञता का परिचय दिया । सन्धि सम्पन्न हो जाने के बाद महाराणा अमरसिंह ने प्रसन्न होकर रगोजी को चार गाव, हाथी

---

१ (i) महाराणा प्रताप स्मृति ग्रन्थ, पृ० ११४
(ii) ओसवाल जाति का इतिहास, पृ० ७२ पर भारमल को महाराणा उदयसिंह द्वारा प्रधान बनाने का उल्लेख है ।

२ महाराणा प्रताप स्मृति ग्रन्थ, पृ० ११४, ३ वही, पृ० ११५

४ ओझा राजपूताने का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० १३०३

५. मरुधर केसरी अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० १७५-७६

पालकी आदि भेंट दिये व दीवान के पद पर आसीन किया। इस पद पर कुशलतापूर्वक कार्य करते हुए इसने मेवाड के गावो का सीमाकन कराया और मेवाड के गावो के जागीरदारो की रेख भी निश्चित्त की। जहागीर ने भी प्रसन्न होकर रगोजी को ५२ बीघा जमीन देकर सम्मानित किया।[1] रगोजी ने मेवाड व मुगल साम्राज्य के मध्य सन्धि कराने मे जो अहम भूमिका निभाई, उस सम्बन्ध के डिंगल गीत प्रसिद्ध हैं।

सिंघवी दयालदास यह मेवाड के प्रसिद्ध व्यापारी सिंघवी राजाजी एव माता रयणादे का चतुर्थ पुत्र था। एक बार महाराणा राजसिंह (वि स. १७०६-३७) की इनकी ही एक राणी ने हत्या करवा कर अपने पुत्र को मेवाड का महाराणा बनाने का षडयन्त्र रचा। षडयन्त्र का एक कागज दयालदास को मिल गया उसने तत्काल महाराणा राजसिंह से सम्पर्क कर उनकी जान बचाई। दयालदास की इस वफादारी से प्रसन्न होकर महाराणा ने इसको अपनी सेवाओ मे रखा तथा अपनी योग्यता से वढते-वढते यह मेवाड का प्रधान बन गया।[2] जब औरगजेब ने वि स १७३६ मे मेवाड पर चढाई कर सैंकडो मन्दिर तुडवा दिये[3] और बहुत आर्थिक नुकसान पहुँचाया तो इस घटना के कुछ समय बाद महाराणा राजसिंह ने दयालदास को सेना देकर बदला लेने के लिये मालवा की ओर भेजा। दयालदास ने अचानक धार नगर पर आक्रमण कर उसे लूटा, मालवे के अनेक शाही थानो को नष्ट किया आग लगाई और उनके स्थान पर मेवाड के थाने बैठा दिये। लूट से प्राप्त धन को प्रजा मे बाटा एव अन्य बहुत सा धन ऊँटो पर लाद कर दयालदास मेवाड को लौट आया।[4] तथा महाराणा को नजर किया।

महाराणा जयसिंह (वि स १७३७-१७५५) के शासनकाल मे वि. स १७३७ मे चित्तौडगढ के पास शाहजादा आजम एव मेनापति दिलावर खा की सेना पर रात्रि के समय दयालदास ने भीपण आक्रमण किया, किन्तु मुगल सेना सख्या मे अधिक थी, दयालदास बडी बहादुरी से लडा किन्तु जब उसने देखा कि उसकी विजय अनिश्चित है तो मुसलमानो के हाथ पडने से बचाने के लिये अपनी पत्नी को अपने ही हाथो मौत के घाट उतार दिया और उदयपुर लौट आया, फिर भी उसकी एक लडकी, कुछ राजपूत तथा सामान मुसलमानो के हाथ लग गया।[5] ऐसे वीर और पराक्रमी दयालदास की योग्यता एव कूटनीतिज्ञता का विस्तृत वर्णन राजपूत इतिहास के ग्रन्थो के अतिरिक्त फारसी के समकालीन हस्तलिखित ग्रन्थो, यथा—"वाकया सरकार रणथभोर" एव "औरगजेबनामा" मे भी मिलता है। जैन-धर्म के उत्थान मे भी दयालदास द्वारा सम्पन्न किये गये महान् कार्यो का विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है।

मेहता अगरचन्द महाराणा अरिसिंह द्वितीय (वि स १८१७-२९) का शासनकाल मेवाड के इतिहास मे गृहकलह तथा सघर्ष का काल माना जाता है। ऐसे सकटमय समय मे मेहता पृथ्वीराज के सबसे बडे पुत्र मेहता अगरचन्द ने मेवाड राज्य की जो सेवाए की वे अद्वितीय हैं। अगरचन्द की

१ वरदा (त्रैमासिक), भाग १२, अक ३, पृ० ४१-४७
२ ओझा-राजपूताने का इतिहास, द्वितीय भाग (उदयपुर) पृ० १३०५
३ वही, पृ० ८७०-७१
४ जती मान कृत राजविलास (महाकाव्य), विलास ७, छन्द ३८
५ (i) वीर विनोद, द्वितीय भाग, पृ० ६५०
(ii) ओझा-राजपूताने का इतिहास, द्वितीय भाग (उदयपुर), पृ० ८९५

दूरदर्शिता, कायकुशलता तथा सैनिक गुणो से प्रभावित होकर महाराणा अरिसिंह ने इसे माडलगढ (जिला भीलवाडा) जैसे सामरिक महत्त्व के किले का किलेदार एव उस जिले का हाकिम नियुक्त किया,[१] इसकी योग्यता को देखकर उसके वाद इसे महाराणा ने अपना सलाहकार तथा तत्पश्चात् वि स १७९६ मे दीवान के पद पर आरूढ किया और बहुत बडी जागीर देकर सम्मानित किया। मेवाड इस समय मराठो के आक्रमणो से त्रस्त तथा विपम आर्थिक स्थिति से ग्रस्त था। अगरचन्द ने अपनी प्रशासनिक योग्यता व कूटनीति के बल पर इन विकट परिस्थितियो पर बहुत कुछ सफलता प्राप्त की।[२] महाराणा अरिसिंह की माधवराव सिन्धिया के साथ उज्जैन मे हुई लडाई मे अगरचन्द वीरतापूर्वक लडता हुआ घायल हुआ एव कैद कर लिया गया। बाद मे रूपाहेली के ठाकुर शिवसिंह द्वारा भेजे गये बावरियो ने उसे छुडाया। माधवराव सिन्धिया द्वारा उदयपुर को घेरने के समय तथा टोपल मगरी व गगार की लडाइयो मे भी अगरचन्द महाराणा के साथ रहा। अरिसिंह की मृत्यु के पश्चात् महाराणा हमीरसिंह द्वितीय (वि स १८२९-१८३४) के समय मेवाड की विकट स्थिति सभालने मे यह बडवा अमरचन्द के साथ रहा। महाराणा भीमसिंह (वि स० १८३४-१८८५) ने इसे प्रधान के पद पर नियुक्त किया। अम्बाजी इगलिया के प्रतिनिधि गणेशपन्त के साथ मेवाड की हुई विभिन्न लडाइयो मे भी अगरचन्द ने भाग लिया।[3] अगरचन्द द्वारा मेवाड के महाराणाओ एव मेवाड राज्य के लिये की गई सेवाओ से प्रसन्न होकर उपर्युक्त तीनो महाराणाओ ने समय-समय पर अगरचन्द को विभिन्न रुक्के प्रदान किये, उनसे तथा "मेहताओ की तवारीख" से अगरचन्द के सैनिक व राजनीतिक योगदान की पुष्टि होती है।

मेहता मालदास • ड्योढीवाले मेहता वश मे मेहता मेघराज की ग्यारहवी पीढी मे मेहता मालदास को एक कुशल योद्धा, वीर सेनापति एव साहसी पुरुप के रूप मे सदा स्मरण रखा जायेगा।[४] मेवाड के महाराणा भीमसिंह (वि स १८३४-१८८५) के शासनकाल मे मराठो के आतक को समाप्त करने के उद्देश्य से तत्कालीन प्रधान सोमचन्द गाधी ने जब मराठो पर चढाई करने का निश्चय किया तो इस अभियान के दूरगामी महत्त्व को अनुभव कर मेहता मालदास के सेनापतित्व मे मेवाड व कोटा की सयुक्त सेना मराठो को परास्त करने के लिए भेजी गई। उदयपुर से कूच कर यह सेना निम्बाहेडा निकुम्भ, जीरण आदि स्थानो को जीतती हुई जावद पहुँची, जहा पर नाना सदाशिवराव ने पहले तो इस सेना का प्रतिरोध किया किन्तु बाद मे कुछ शर्तों के साथ जावद छोड कर चला गया। होल्कर राजमाता अहिल्याबाई को मेवाड के इस अभियान का पता चला तो उसने तुलाजी सिंधिया एव श्री भाई के अधीन पाच हजार सैनिक जावद की ओर भेजे। नाना सदाशिवराव के सैनिक भी इन सैनिको से आ मिले। मन्दसौर के मार्ग से यह सम्मिलित सेना मेवाड की ओर बढी। मेहता मालदास के सेनापतित्व मे सादडी के राजराणा सुल्तानसिंह, देलवाडे का राजराणा कल्याणसिंह, कानोड का रावत जालिमसिंह और सनवाड के बाबा दौलतसिंह आदि राजपूत योद्धा भी मुकाबला करने के लिये आगे बढे। वि स० १८४४ के माघ माह मे हडक्यारवाल के पास भीपण भिडन्त हुई। मालदास ने

---

१ ओझा-वही, पृ० १३१४

२ शोध प्रत्रिका, वर्ष १८, अक २, पृ० ८१-८२

३ ओझा-राजपूताने का इतिहास, द्वितीय भाग (उदयपुर), पृ० १३१४-१५

४ शोधपत्रिका, वर्ष २३, अक १, पृ० ६५-६६

अपनी सेना सहित मराठो के साथ घमासान सघर्ष किया और अन्त में वीरतापूर्वक लडता हुआ रणागण में शहीद हो गया[1]। मेहता मालदास के इस पराक्रम की कथाए आज भी मेवाड में प्रचलित हैं।

मेहता मालदास अदम्य योद्धा और श्रेष्ठ सेनापति ही नही योग्य प्रशासक भी था[2] समकालीन कवि किशना आटा कृत 'भीम विलास'[3] तथा पीछोली एव सीसारमा स्थित सुरह व शिलालेख[4] मे मेहता मालदास के कार्यों का उल्लेख उपलब्ध होता है।

मेवाड के राज्य प्रबन्ध मे जैनियो के सैनिक व राजनीतिक योगदान के अन्तर्गत उपर्युक्त कतिपय महत्त्वपूर्ण जैन पुरुषो का सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है। इनके अतिरिक्त भी अनेक जैन महापुरुष हुए हैं, जिनके मूल्यवान योगदान का मेवाड सदा ऋणी रहा है, उपर्युक्त के साथ उनका सकेतात्मक उल्लेख निम्न है :—

प्रधान एव दीवान

(१) नवलखा रामदेव :—महाराणा क्षेत्रसिंह (वि स १४२१-३९) एव महाराणा लक्षसिंह (वि स १४३९-५४) के समय मे प्रधान।

(२) नवलखा सहणपाल :—महाराणा मोकल (वि स १४५४-९०) तथा महाराणा कुभा (वि स १४९०-१५२५) के समय मे प्रधान।

(३) तोलाशाह —महाराणा सागा (वि स १५६६-८४) के समय मे प्रधान।

(४) कर्माशाह .—महाराणा रत्नसिंह द्वितीय (वि स १५८४-८८) के समय मे प्रधान।

(५) बोलिया निहालचन्द .—वि सं १६१० मे चित्तौड मे महाराणा उदयसिंह (वि सं १५९४-१६२८) के समय प्रधान।

(६) कावड़िया भामाशाह —महाराणा प्रताप (वि सं १६२८-५३) एव अमरसिंह (वि स. १६५३-७६) के काल मे प्रधान।

(७) कावडिया जीवाशाह .—अपने पिता भामाशाह की मृत्यु के बाद महाराणा अमरसिंह (वि. स १६५३-७६) के समय मे प्रधान।

(८) रगोजी बोलिया —महाराणा अमरसिंह एवं महाराणा कर्णसिंह (वि स १६७६-८४) के समय मे दीवान।

(९) कावडिया अक्षयराज —महाराणा कर्णसिंह के समय मे प्रधान।

(१०) सिंघवी दयालदास .—महाराणा राजसिंह (वि स १७०९-३७) एवं महाराणा जयसिंह (वि. स १७३७-४५) के समय मे प्रधान।

(११) शाह देवकरण '—महाराणा जगतसिंह द्वितीय (वि स १७९०-१८०८) के समय मे प्रधान।

१ ओझा—राजपूताने का इतिहास, द्वितीय भाग (उदयपुर), पृ० ९८७-८८

२ टॉड—एनल्स एण्ड एन्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान, पृ० ३५०

३. भीम विलास, छन्द सं २९२-९७, हस्त प्रति स १२३, साहित्य संस्थान, उदयपुर

४ द्रष्टव्य—वीरविनोद, पृ० १७७४-७५ एव १७७७-७८

(१२) मेहता अगरचन्द :—महाराणा अरिसिंह (वि. स. १८१७-२९), महाराणा हमीरसिंह द्वितीय (वि सं १८२९-३४) तथा महाराणा भीमसिंह (वि. सं १८३४-८५) के समय मे प्रधान ।

(१३) मोतीराम वोलिया —महाराणा अरिसिंह (वि स १८१७-२९) के समय मे कुछ समय तक प्रधान रहे ।

(१४) एकलिंगदास वोलिया :—महाराणा अरिसिंह के समय मे कुछ समय तक दीवान, किन्तु उम्र छोटी होने से आपके काका मौजीराम कार्य देखते थे ।

(१५) सोमचन्द गाधी :—महाराणा भीमसिंह (वि स. १८३४-८५) के समय मे प्रधान रहे ।

(१६) सतीदास गाधी :—अपने वडे भाई सोमचन्द की मृत्यु के वाद महाराणा भीमसिंह के समय मे ही प्रधान ।

(१७) शिवदास गाधी :—महाराणा भीमसिंह के समय मे ही प्रधान ।

(१८) मेहता देवीचन्द :—मेहता अगरचन्द के पौत्र थे महाराणा भीमसिंह ने वि. स १८५६ मे प्रधान वनाया ।

(१९) मेहता रामसिंह —वि स १८८१ मे महाराणा भीमसिंह ने अंग्रेज सरकार की सलाह पर प्रधान नियुक्त किया ।

(२०) मेहता शेरसिंह —महाराणा भीमसिंह के समय थोडे-थोडे समय के लिये तीन-चार वार प्रधान रहे । तथा महाराणा स्वरूपसिंह (वि स १८९९-१९१८) के समय मे भी रहे ।

(२१) मेहता गोकुलचन्द :—महाराणा स्वरूपसिंह (वि सं १८९९-१९१८) के समय मे शेरसिंह के वाद ये प्रधान रहे ।

(२२) कोठारी केसरीसिंह —महाराणा स्वरूपसिंह के समय मे वि सं १९१६-२६ तक प्रधान रहे ।

(२३) मेहता पन्नालाल —महाराणा शभूसिंह (वि स १९१८-३१) ने वि. स १९२६ मे प्रधान वनाया ।

(२४) कोठारी बलवन्तसिंह :—महाराणा फतहसिंह (वि सं १९४१-८७) के समय मे महकमाखास का प्रधान ।

(२५) मेहता भोपालसिंह :—महाराणा फतहसिंह के समय में कोठारी वलवन्तसिंह के त्यागपत्र देने के वाद ।

किलेदार एवं फौजवक्शी

(१) मेहता जालसी :—महाराणा हमीर प्रथम के समय में ।

(२) मेहता चीलजी —महाराणा सागा (वि सं १५६६-८४), वनवीर (वि स १५९३-९७) तथा महाराणा उदयसिंह (वि सं १५९४-१६२८) के समय में चित्तौडगढ का किलेदार ।

(३) कावडिया भारमल —महाराणा सागा के समय में रणथम्भोर का किलेदार ।

(४) मेहता मालदास —महाराणा भीमसिंह (वि सं. १८३४-८५) के समय में फौजवक्शी ।

इसी प्रकार वोल्या रुद्रभान, सरदारसिंह तथा मेहता नाथजी भी फौजवक्शी रह चुके हैं ।

(ग) जोधपुर राज्य

भारत में जोधपुर राठौड़ राजपूतों का प्राचीन राज्य माना जाता है। इसकी राजधानी पहले मण्डोर और तत्पश्चात् जोधपुर रही। [illegible] राज्य की गाथा [illegible] रहा।

राव समरा एवं नरा भण्डारी -- नाडोल के चौहान वंशी [illegible] के वंशज राव समराजी भण्डारी (जिनके पूर्वजों ने जैन धर्म स्वीकार कर लिया था) तथा इनके पुत्र राव नरा भण्डारी का जोधपुर राज्य की स्थापना में बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका है जो इतिहास में [illegible] है।

जब मण्डोर के शासक राव रणमल की चित्तौड़गढ़ में वि. स. १५०० में हत्या कर दी गई[1], तो उसका पुत्र राव जोधा अपने साथ के सैनिकों को लेकर मेवाड़ से भाग निकला, किन्तु चूण्डा के नेतृत्व में मेवाड़ की सेना ने उसका पीछा किया और उस पर कई आक्रमण किये जिसमें जोधा के कई सैनिक मारे गये[2]। जीलवाड़ा नामक गांव तक पहुंचते-पहुंचते जोधा के साथ केवल सात सैनिक शेष रह गये।

जीलवाड़ा में जोधा की राव समरा भण्डारी से भेट हुई। समरा ने जोधा के संकट को अनुभव कर उनका साथ देने का निश्चय किया तथा अपने पुत्र नरा भण्डारी के साथ पच्चास वीर योद्धा देकर जोधा को मारवाड की ओर रवाना कर दिया। समरा स्वयं वहीं रह कर मेवाड की सेना का प्रतिरोध करने लगा। अन्त में अपने तीन सौ वीर सैनिकों के साथ लडता हुआ मारा गया[3]।

नरा भण्डारी के साथ जोधा किसी तरह मण्डोर पहुँचा किन्तु मेवाड की सेना ने आक्रमण कर मण्डोर को भी अपने अधिकार मे कर लिया। जोधा थली प्रदेश के काहूनी गाव में जाकर रहने लगा[4]। जोधा के इस विपत्तिकाल म राव नरा भण्डारी बराबर उसके साथ रहा एव सेना के सगठन में जुट गया। पर्याप्त सेना इकट्ठा हो जाने के पश्चात् मण्डोर पर आक्रमण किया गया। घमासान युद्ध के बाद वि स १५१० मे जोधा का मण्डोर पर अधिकार हो गया[5]। इस युद्ध में नरा भण्डारी ने अपूर्व शौर्य का परिचय दिया। बाद में जोधा ने जब मेवाड पर आक्रमण किया, उस समय भी नरा उसके साथ रह कर बहादुरी से लडा था।

राव नरा भण्डारी के सहयोग से जोधा ने मण्डोर विजय के पश्चात् वि स १५१५ मे पास ही की चिडियाटूक पहाडी पर नये गढ की नीव डाली तथा उसकी तलहटी मे अपने नाम से जोधपुर नगर बसाया[6]। उस प्रकार जोधपुर राज्य की स्थापना मे राव समरा एव नरा भडारी की अविस्मरणीय सेवाओ को भुलाया नही जा सकता है।

---

१ ओझा—जोधपुर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० २२३-२५

२ ओझा—जोधपुर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग पृ० २३५-३६

३ इस घटना से सम्बन्धित डिंगल मे एक गीत प्रसिद्ध है—

राव जोधारे कारणे समरे माजी कीध चढ।
चवाण वेढ दिवाणसु, नाडले नाडूलगढ ॥

४ ओझा—जोधपुर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० २३६,   ५ वही, पृ० २३९

६ ओझा—जोधपुर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० २४१

भण्डारियो की ख्यात एवं जोधपुर की ख्यात मे राव नरा भण्डारी के वीरतापूर्ण कार्यों की प्रशसा की गई है। राव जोधा ने भी नरा के सहयोग एव सेवाम्रो का वडा सम्मान किया। उसे प्रधान के पद पर नियुक्त किया तथा साठ हजार की जागीर के रूप मे भण्डारियो की ख्यात के अनुसार रोहट, वीसलपुर, मजल, पलासगी, वूधाड, जार्जावाला और बनाड नामक सात गाव उसे भेंट मे दिये।

मुहणोत नैणसी —मुहणोत नैणसी का जन्म वि स १६६७ की मार्ग शीर्ष शुक्ला ४ को हुआ[1]। इसके पिता का नाम जयमल और माता का नाम सरूपदे था। नैणसी के तीन भाई और थे— सुदरदास, आसकरण और नरसिंहदास।

नैणसी ने दीवान पद प्राप्ति से पूर्व जोधपुर राज्य की ओर से कई महत्वपूर्ण लडाईयो, में भाग लिया तथा सेना का नेतृत्व किया। वि० स० १६६४-६५ मे फलोधी की लडाई[2], वि स १७०० मे राडधरा की लडाई[3], वि स १७०३ मे सोजत के रावत नारायण का दमन[4], तथा वि स १७०६ मे पोकरण पर अधिकार[5] करने मे नैणसी के अतुल्य शौर्य व कुशल सैन्य-सचालन को नही भुलाया जा सकता। नैणसी की इस योग्यता एव सेवाओ से प्रसन्न होकर जोधपुर के तत्कालीन शासक महाराणा जसवन्तसिंह प्रथम (वि स १६६४-१७३५) ने मियाँ फरासत खा को वि स १७१४ मे हटाकर नैणसी को अपने राज्य का दीवान बनाया[6]। वि स १७२३ तक वह इस पद पर योग्यतापूर्वक कार्य करता रहा।

महाराजा जसवन्तसिंह को मुगल सम्राट औरगजेब की ओर से प्राय अन्यत्र युद्धो मे भाग लेना पडता था अथवा किसी प्रान्त का सूबेदार बनकर अपने राज्य से बाहर रहना पडता था। ऐसी स्थिति मे मुहणोत नैणसी ही राज-काज देखता था। उस समय नैणसी के पास प्राय सब अधिकार थे। यहा तक कि वह किसी को जागीर तक दे सकता था किन्तु महाराजा जसवन्तसिंह पत्रो द्वारा समय-समय पर राज्य कार्य सम्बन्धी निर्देश अवश्य दे दिया करते थे।

जनता के सुख-दु ख की बातें भी नैणसी गौर से सुनता था। वि स १७१८ के पौष मास मे मेडता परगने के लगभग दस गावो के जाट एकत्रित होकर नैणसी के पास आये और तत्कालीन लाग व बेगार की पद्धति के बारे में विरोध प्रकट किया। नैणसी ने उनके विरोध को गौर से सुना और सच्चाई को अनुभव कर लाग व बेगार माफ कर दी तथा तत्काल मेडता परगने के हाकिम भण्डारी राजसी के पास तत्सम्बन्धी हुक्म भेजा।

नैणसी तलवार और कलम दोनो का धनी था। इसने तत्कालीन जोधपुर राज्य का व्यापक सर्वेक्षण कराया। जोधपुर के साथ ही अन्य राज्यो के ऐतिहासिक व सास्कृतिक तथ्यो व आकडो को

१ रामनारायण दूगड—मुहणोत नैणसी की ख्यात, प्रथम भाग, (परिचय) पृ० १
२ बदरीप्रसाद साकरिया—मुहता नैणसी की ख्यात, भाग चतुर्थ, पृ० २७
३ ओझा—जोधपुर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० ४१८, ४ वही, पृ० ४२०
५ साकरिया—मुहता नैणसी की ख्यात, भाग चतुर्थ, पृ० २७, ६ वही, पृ० २८

एकत्र किया। इस सम्बन्ध में नैणसी के दो ग्रन्थ ख्यात व विगत के रूप में भी उपलब्ध हैं।[1]

सिंघी इन्द्रराज — महाराजा भीमसिंह (वि० सं० १८४६–६०) के अन्तिम दिनों में उपद्रवी सरदारों का दमन करना,[2] जालोर पर जोधपुर का आधिपत्य जमाना,[3] भीमसिंह की मृत्यु के पश्चात् मानसिंह को जोधपुर का राज दिलाना[4] तथा महाराजा मानसिंह (वि० सं० १८६०–१९००) को बाद की विपत्तियों में लगातार सहयोग देते हुए अपने प्राणों का भी उत्सर्ग कर देना आदि योग्य योद्धा व दूरदर्शी कूटनीतिज्ञ के रूप में सिंघी इन्द्रराज का जोधपुर राज्य के इतिहास में अद्वितीय स्थान है।

मानसिंह को जोधपुर की गद्दी पर आरूढ़ कराने में सिंघी इन्द्रराज द्वारा की गई बहुमूल्य सेवाओं से प्रसन्न होकर महाराजा मानसिंह ने उसे मुसाहिब के पद पर नियुक्त किया।[5] जब मेवाड़ की राजकुमारी कृष्णाकुमारी से विवाह के प्रश्न को लेकर उदयपुर, जोधपुर तथा जयपुर राजघरानों में टकराहट पैदा हो गई और स्थिति युद्ध तक आ पहुँची तो उस समय सिंघी इन्द्रराज ने सम्पूर्ण स्थिति को बड़ी बुद्धिमानी से सम्भाला। महाराजा मानसिंह पचास हजार की विशाल सेना लेकर मेवाड़ पर चढ़ाई करने के लिए जोधपुर से रवाना हुए तो सिंघी इन्द्रराज ने मानसिंह को रोक लिया और स्वयं बीस हजार सैनिकों का नेतृत्व ग्रहण कर कृष्णाकुमारी का टीका जयपुर जाने से रोकने हेतु आगे बढ़ा। इसकी सूचना जब टीका ले जाने वालों के पास पहुँची तो वे शाहपुरा (मेवाड़) जाकर रुक गये। इन्द्रराज शाहपुरा पर चढ़ आया किन्तु शाहपुरावालों ने टीका पुनः उदयपुर भेजने की शर्त के साथ इन्द्रराज को वहां से रवाना कर दिया।[6] कुछ समय पश्चात् सिंघी इन्द्रराज ने जयपुर के दीवान रायचन्द से मिल कर और कूटनीति का सहारा लेकर जोधपुर व जयपुर के मध्य समझौता करा लिया। समझौते के अनुसार राजकुमारी कृष्णा कुमारी से दोनो में से कोई भी विवाह न करेगा तथा जोधपुर के महाराजा मानसिंह की कन्या का विवाह जयपुर के महाराजा जगतसिंह के साथ तथा जगतसिंह की बहन का विवाह मानसिंह के साथ किया जायेगा।[7]

परन्तु यह समझौता अधिक दिनो तक टिक न सका और जयपुर का महाराजा जगतसिंह विशाल सेना लेकर चढ आया। इधर महाराजा मानसिंह ने झूठी शिकायतो को सच मान कर सिंघी इन्द्रराज को कैद कर लिया।[8] किन्तु जब जयपुर की सेना के आक्रमणो से जोधपुर नगर की रक्षा करना असम्भव हो गया तो महाराजा मानसिंह ने इन्द्रराज को कैद से रिहा कर समयोचित प्रबन्ध

---

१ ये दोनो ग्रन्थ 'मुहता नैणसी री ख्यात' एव 'मारवाड रा परगणा री विगत' के नाम से राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर से प्रकाशित हो चुके हैं। ख्यात का हिन्दी अनुवाद भी नागरी प्रचारिणी सभा काशी से छप चुका है।

२ ओझा-जोधपुर राज्य का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० ७७२, ३ वही, पृ० ७७५-७६

४ रेउ-मारवाड का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० ४०१-४०२

५ ओझा जोधपुर राज्य का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० ७७८

६ वही, पृ० ७८८-८९ ७ वही, पृ० ७८९

८ (i) ओझा-जोधपुर राज्य का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० ७९१

(ii) जगदीशसिंह गहलोत—मारवाड राज्य का इतिहास, पृ० १८९

करने की आज्ञा दी।[1] सिघी इन्द्रराज ने फिर कूटनीति से काम लिया। उसने जोधपुर के गढ को मानसिंह के अधिकार मे रख कर शहर को जयपुर की सेना के हवाले कर दिया। अमीर खा पिडारी को तीस हजार रुपये देकर इन्द्रराज ने अपनी ओर मिला लिया और भण्डारी पृथ्वीराज तथा अमीर खा को सेना के साथ जयपुर पर आक्रमण करने व ढूढाड मे लूट-खसोट करने भेजा। कुछ समय बाद इन्द्रराज भी सेना लेकर इनसे आ मिला।[2] इन्होने सयुक्त रूप से जयपुर आदि को लूटा। इसकी सूचना जब महाराजा जगतसिंह को जोधपुर मे मिली तो वे जोधपुर का घेरा छोड कर जयपुर की ओर लौट चले। इन्द्रराज और अमीर खा विजयी होकर जब जोधपुर लौटे तो महाराजा मानसिंह ने इन्द्रराज का बडा सम्मान किया। खास रुक्का देकर गौरव बढाया, प्रधान का पद दिया एव जागीर दी।[3]

यही नही, सिघी इन्द्रराज ने धौकलसिंह व सवाईसिंह के मामले मे शुरू से ही महाराजा मानसिंह का साथ दिया तथा बीकानेर की लडाई मे भी जोधपुर की सेना का नेतृत्व किया। परन्तु इन्द्रराज पर महाराजा मानसिंह के इस अत्यधिक विश्वास एव निर्भरता को देख कर अन्य राजपूत सरदार उससे अप्रसन्न रहने लगे। उन्होने अमीर खा पिडारी को लालच देकर अपनी ओर मिला लिया तथा इन्द्रराज की हत्या करवा दी।[4] महाराजा मानसिंह इस घटना से इतना अधिक दुखी हुआ कि उसने राज्य-कार्य करना और बाहर आना-जाना तक छोड दिया।[5] इन्द्रराज की स्वामिभक्ति व सेवाओ के बदले मे महाराजा ने उसके पुत्र सिघी फतहराज को पच्चीस हजार की जागीरी, दीवानगी तथा महाराजकुमार की बराबरी का सम्मान और तत्सम्बन्धी रुक्का प्रदान किया। तथा उन्होने इन्द्रराज की स्मृति मे राजस्थानी मे काव्य की रचना करके उसके प्रति श्रद्धाजलि भी अर्पित की—

गेह छुटो कर गेड, सिंह जुटो फूटो समद ।
अपनी भूप अरोड, अडिया तीनु इन्दडा ॥
गेह साकल गजराज, घहै रह्यो सादुल धीर ।
प्रकटी वाजी वाज, अकल प्रमाणे इन्दडा ॥
पडतो घेरो जोधपुर, अडता दला अथभ ।
आप डीगता इन्दडा, थे दीयो भुज थभ ॥

जोधपुर राज्य के इतिहास मे उपर्युक्त प्रकार के जैन महापुरुषो की सख्या लगभग १४१ है। इन सबका विवरण यहा प्रस्तुत करना सम्भव नही है। मात्र सक्षिप्त सकेतात्मक विवरण इस प्रकार है—

---

१ रेउ-मारवाड का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० ४०९, २ वही, पृ० ४१०-११
३ (i) वही, पृ० ४१२ (ii) ओसवाल जाति का इतिहास, पृ० ६०-६१
(iii) ओझा—जोधपुर राज्य का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० ८०५
४ रामकर्ण आसोपा—मारवाड का मूल इतिहास, पृ० २७६-७७
५. गहलोत—मारवाड राज्य का इतिहास, पृ० १९३

प्रधान एवं दीवान

१ भण्डारी नराजी—समराजी का पुत्र। वि स [illegible] में दीवान व बाद में प्रधान रहे। राव जोधा के समय में।

२ मुहणोत महाराजजी—अमरसीजी का पुत्र। राव जोधा के समय में दीवान तथा प्रधान रहे।

३ भण्डारी नाथाजी—नराजी का पुत्र। वि स [illegible] में राव जोधा के समय में प्रधान रहे।

४ भण्डारी ऊदाजी—नाथाजी का पुत्र। वि स १५४८ मे राव सातल के समय मे दीवान व प्रधान रहे।

५ भण्डारी गोराजी—ऊदाजी का पुत्र। राव गांगा (वि स १५७२–८८) के समय मे दीवान व प्रधान।

६ भण्डारी धनोजी—डावरजी का पुत्र। राव चन्द्रसेन (वि स १६१९–३७) के समय मे दीवान।

७ भण्डारी लूणाजी—गोराजी का पुत्र। वि स १६५१–५८ तक दीवान व प्रधान, मोटाराजा उदयसिंह (वि स १६४०–५१) तथा महाराजा सूरसिंह (वि स १६५१–७६) के समय मे।

८ भण्डारी मानाजी—डावरजी का पुत्र। मोटाराजा उदयसिंह एव महाराजा सूरसिंह के समय मे दीवान व प्रधान।

९ भण्डारी इमीरजी—मोटाराजा उदयसिंह के समय मे दीवान।

१० भण्डारी रायचन्दजी—जोधाजी का पुत्र। मोटाराजा उदयसिंह के समय मे दीवान।

११ कोचर मूथा वेलाजी—जाजरजी का पुत्र। महाराजा सूरसिंह के समय मे दीवान।

१२ भण्डारी ईसरदासजी—महाराजा सूरसिंह के समय मे दीवान।

१३ भण्डारी भानाजी—मानाजी का पुत्र। वि स १६७१–७५ मे महाराजा सूरसिंह के समय मे दीवान व प्रधान।

१४ भण्डारी पृथ्वीराजजी—महाराजा सूरसिंह के समय मे वि. स १६७५-७६ मे प्रधान।

१५ भण्डारी लूणाजी—गोराजी का पुत्र। वि स १६७६-८१ मे प्रधान।

१६ सिंघवी शहामलजी—महाराजा गजसिंह (वि १६७६-१६९४) के समय मे दीवान।

१७ मुहणोत जयमलजी—नैनसी का पिता। वि स १६८६ मे दीवान।

१८ सिंघवी सुखमलजी—वि स १६९०-९७ तक दीवान। महाराजा गजसिंह और जसवतसिंह के समय मे।

१९ भण्डारी रायमलजी—लूणाजी का पुत्र। वि स १६९४ से १६९७ की पौष कृष्णा ५ तक। महाराजा जसवतसिंह के समय मे दीवान।

२० सिंघवी रायमलजी—शोभाचन्दजी का पुत्र । वि. स १६९७ की पौष कृष्णा ५ से दीवान ।

२१ भण्डारी ताराचन्द नारायणोत—वि स १७१४ मे दीवान ।

२२ मुहणोत नैणसी—जयमल का पुत्र । महाराजा जसवन्तसिंह के समय मे वि स १७१४ से १७२३ तक ।

२३ भण्डारी विट्ठलदासजी—भगवानदास का पुत्र । वि स १७६२ मे दीवान तथा वि स १७६५ की श्रावण शुक्ला १३ से वि स १७६६ की कार्तिक वदी ६ तक दीवान व प्रधान । महाराजा अजीतसिंह के समय मे ।

२४ भण्डारी खींवसीजी—रासा भण्डारी का पुत्र । महाराजा अजीतसिंह के समय मे, वि स १७६६ से १७७० के मध्य दीवान व प्रधान ।

२५ भण्डारी रघुनाथजी रायचन्दोत—वि स० १७६७ मे दीवान तथा वि स० १७७० के चैत्र वि. स १७८१ की फागुन वदी १२ तक दीवान ।

२६ भण्डारी माईदासजी—देवराज का पुत्र । वि स १७६९ मे दीवान ।

२७ समदड़िया मूथा गोकुलदासजी—वि. स १७६९ मे दीवान एव वि स. १७८१ मे ।

२८ भण्डारी रघुनाथसिंहजी—रायचन्द का पुत्र । वि स. १७८२ से ८५ तक पुनः दीवान ।

२९ भण्डारी अमरसिंहजी—खींवसीजी का पुत्र । वि स १७८५ की आषाढ सुदी १४ से वि स १७८८ तक तथा वि स १७९९ की कार्तिक सुदी १ से वि स. १८०१ के ज्येष्ठ तक । महाराजा अभयसिंह वि स (१७८१-१८०६) के समय मे दीवान ।

३० सिंघवी अमरचन्दजी—सायमलजी का पुत्र । वि स १७९३ आसोज सुदी १० से वि स १७९४ चैत्र सुदी ७ तक । महाराजा अभयसिंह के समय मे दीवान ।

३१ भण्डारी गिरधरदासजी—रतनसिंह का भाई । वि स १८०१ के ज्येष्ठ से वि स १८०४ के भाद्रपद तक । महाराजा अभयसिंह के समय मे दीवान ।

३२ भण्डारी मनरूपजी - पोमसीजी का पुत्र । वि स १८०४ के भाद्रपद से वि स १८०६ के मार्गशीर्ष तक । महाराजा अभयसिंहजी के समय मे दीवान ।

३३ भण्डारी सूरतरामजी—मनरूपजी का पुत्र । वि स. १८०६-७ मे दीवान ।

३४. भण्डारी दौलतरामजी—थानसीजी का पुत्र । वि स १८०६-७ मे दीवान ।

३५. भण्डारी सवाईरामजी—रतनसिंह का पुत्र । वि स १८०७ की आश्विन शुक्ला १० से वि स १८०८ के श्रावण कृष्णा २ तक । महाराजा वख्तसिंह (वि स १८०८-०९) के समय मे दीवान ।

३६ सिंघवी फत्तेचन्दजी—सरूपमल का पुत्र । वि स १८०८ के श्रावण कृष्णा २ से वि स. १८१८ की आश्विन कृष्णा १४ तक । तथा वि स १८२३ की चैत्र शुक्ला ५ से वि स १८३७ की आश्विन शुक्ला १० तक । कुल २५ वर्ष तक दीवान । महाराजा विजयसिंह के समय मे ।

३७ भण्डारी नरसिंहदासजी—भेरुदास का पुत्र । वि स १८१९ के ज्येष्ठ सुदी ५ से १८२० की ज्येष्ठ सुदी ५ तक । महाराजा विजयसिंह (वि स १८०९-५०) के समय में दीवान ।

३८ मुहणोत सूरतरामजी—भगवतसिंह का पुत्र । वि. स १८२० की ज्येष्ठ शुक्ला ५ से वि स १८२३ की आश्विन शुक्ला ९ तक । महाराजा विजयसिंह के समय में दीवान ।

३९ —दीवान पद खालसे रहा, किन्तु वि स १८३७ से १८४७ तक दीवान का सारा काम सिंघी फतेचन्द के पुत्र ज्ञानमलजी देखते थे ।

४० सिंघवी ज्ञानमलजी—फतेचन्द का पुत्र । वि स १८४७ की मार्गशीर्ष शुक्ला २ से माघ शुक्ला ५ तक दीवान । महाराजा विजयसिंह के समय में ।

४१ भण्डारी भवानीदासजी—[illegible] का पुत्र । वि स १८४७ के माघ शुक्ला ५ से वि स १८५१ की वैशाख कृष्णा १४ तक दीवान । महाराजा विजयसिंह तथा भीमसिंह (वि स १८५०-६०) के समय में ।

४२ भण्डारी शिवचन्दजी—शोभाचन्द का पुत्र । वि स १८५१ की वैशाख कृष्णा १४ से वि स १८५४ की आश्विन शुक्ला १४ तक तथा वि स १८५५ की कार्तिक शुक्ला ११ से वि स १८५६ की वैशाख शुक्ला ११ तक दीवान । महाराजा भीमसिंह के समय में ।

४३ —वि स १८५४ आश्विन शुक्ला १ से १८५५ की श्रावण कृष्णा ६ तक दीवान पद खालसे रहा, किन्तु कार्य जोधराजजी के पुत्र सिंघवी नवलराजजी देखते थे ।

४४ सिंघवी नवलराजजी—जोधराज का पुत्र । वि स १८५५ के श्रावण कृष्णा ६ से कार्तिक कृष्णा ९ तक दीवान । महाराजा भीमसिंह के काल मे ।

४५ मुहणोत सरदारमलजी—सवाईराम का पुत्र । वि स १८५६ वैशाख शुक्ला ११ से वि स १८५८ के आश्विन शुक्ला ३ तक दीवान । महाराजा भीमसिंह के समय मे ।

४६ —वि स १८५८ के आश्विन शुक्ला ३ से वि स १८५९ के भाद्रपद कृष्णा २ तक दीवान का पद खालसे रहा किन्तु काम सिंघवी जोधराजजी देखते थे ।

४७ भण्डारी गगारामजी—जसराज का पुत्र । वि स. १८६० के मार्ग शीर्ष कृष्णा ७ से ज्येष्ठ कृष्णा ४ तक दीवान ।

४८ मुहणोत ज्ञानमलजी—सूरतराम का पुत्र । वि स १८६० के ज्येष्ठ कृष्णा ४ से वि स १८६२ के आश्विन शुक्ला ४ तक दीवान । महाराजा मानसिंह (वि स १८६०-१९००) के समय मे ।

४९ कोचर मेहता सूरजमलजी—सोजत निवासी । वि. स १८६२ के आश्विन शुक्ला ४ से वि. स १८६४ के आश्विन शुक्ला ८ तक । महाराजा मानसिंह के समय मे दीवान ।

५० सिंघवी इन्द्रराजजी—भीवराज का पुत्र । वि स १८६४ के आश्विन शुक्ला ८ से वि स. १८७२ के आश्विन शुक्ला ८ तक । महाराजा मानसिंह के शासन काल मे दीवान ।

५१ —वि स १८७२ के कार्तिक शुक्ला १ से माघ शुक्ला ३ तक दीवान पद खालसे रहा किन्तु काम मेहता अखेचन्दजी देखते थे ।

५२ सिघवी फतेराजजी—इन्द्रराजजी का पुत्र। अलग-अलग समय मे कुल सात बार महाराजा मानसिह के समय मे दीवान रहे, यथा—वि स १८७२ के माघ शुक्ला ३ से भाद्रपद शुक्ला १३ तक। वि स १८७३ की कार्तिक शुक्ला १२ से वैशाख शुक्ला १४ तक। वि स १८७६ की आषाढ वदी ६ से वि स १८८१ की चैत्र सुदी ४ तक। वि स १८८५ के कार्तिक कृष्णा १ से वि स १८८६ के श्रावण कृष्णा ३० तक। वि स १८८७ से वि स. १८८८ के चैत्र शुक्ला ६ तक। वि स १८९२ के माघ कृष्णा १० से वैशाख शुक्ला १३ तक। वि स १८९४ के आश्विन शुक्ला ७ से वि स १८९५ के चैत्र शुक्ला १ तक।

५३. मेहता अखेचन्दजी—खीवसी का पुत्र। वि स० १८७३ के वैशाख शुक्ला ५ से वि स० १८७४ श्रावण शुक्ला ३ तक दीवान। महाराजा मानसिह के समय मे।

५४ मेहता लक्ष्मीचन्दजी—अखेचन्द का पुत्र। ये महाराजा मानसिह और महाराजा तख्तसिह (वि. स० १९००-२९) के समय मे कुल चार बार दीवान पद पर अलग-अलग समय मे रहे यथा—वि० स० १८७४ श्रावण शुक्ला ३ से वि स० १८७६ वैशाख शुक्ला १४ तक। वि. स० १८९९ चैत्र शुक्ला १ से वि. स० १९०० के फाल्गुन कृष्णा ३ तक। वि स० १९०० के ज्येष्ठ से वि स० १९०२ के कार्तिक शुक्ला ९ तक। वि स० १९०३ आश्विन शुक्ला ३ से वि स० १९०७ आश्विन कृष्णा ७ तक।

५५ —वि. स० १८७६ वैशाख शुक्ला १४ से आषाढ कृष्णा ९ तक दीवान पद खालसे रहा, किन्तु काम सोजत निवासी मेहता सूरजमलजी करते थे। इसी तरह वि स० १८८१ की चैत्र शुक्ला ४ से वि स० १८८२ की पौष शुक्ला २ तक दीवान पद खालसे रहा। काम सिघवी फोजराजजी देखते थे।

५६ सिघवी इन्द्रमलजी—जोरावरमलजी का पुत्र। वि स० १८८२ की पौष शुक्ला २ से वि स० १८८५ कार्तिक कृष्णा १ तक दीवान। महाराजा मानसिह के समय मे।

५७. —वि स १८८६ के श्रावण मे १८८७ तक दीवान पद खालसे किन्तु काम सिघवी गुलराजजी के पुत्र फोजराजजी देखते थे।

५८ सिघवी गभीरमलजी—फतेमल का पुत्र। वि स० १८८८ चैत्र शुक्ला ९ से वि स० १८८९ चैत्र कृष्णा १३ तक, वि स० १८९२ से १८९४ तक, वि स० १८९५ से वि स० १८९७ तक तथा वि स० १९०० मे कुल चार बार अलग अलग समय मे तथा महाराजा मानसिह के काल मे दीवान रहे।

५९ मेहता जसरूपजी—नाथजी के कामदार थे। वि स० १८८९ चैत्र कृष्णा १३ से वि स० १८९० कार्तिक शुक्ला ४ तक दीवान। मानसिहजी के समय मे।

६० —वि स० १८९० कार्तिक शुक्ला ४ से वि स० १८९१ श्रावण कृष्णा १४ तक दीवान पद खालसे रहा। काम भण्डारी लखमीचन्दजी देखते थे महाराजा मानसिह के समय मे।

६१ भण्डारी लखमीचन्दजी—कस्तूरचन्द का पुत्र। वि स० १८९१ श्रावण कृष्णा १४ से वि स० १८९२ माघ कृष्णा १० तक। वि० स० १८९४ श्रावण कृष्णा ४ से आश्विन शुक्ला ४ तक तथा वि स० १८९७ वैशाख शुक्ला १२ से वि स० १८९८ चैत्र कृष्णा १४ तक। कुल तीन बार दीवान महाराजा मानसिह के समय मे रहे।

६२ सिंघवी इन्द्रमलजी—जीतमल का पुत्र। वि स० १८८७ आश्विन कृष्णा १२ से वैशाख शुक्ला १२ तक दीवान महाराजा मानसिंह के समय मे।

६३ कोचर बुधमलजी—मेहता सूरजमल का पुत्र, नागौर निवासी। वि स० १८९८ चैत्र कृष्णा १४ से वि० स० १८९९ भाद्रपद शुक्ला १२ तक, मानसिंह के समय मे दीवान रहे।

६४. सिंघवी गुलराजजी—इन्द्रराज का पुत्र। वि स० १८९९ भाद्रपद शुक्ला १२ से मार्गशीर्ष कृष्णा ६ तक। मानसिंह के समय मे दीवान।

६५ —वि स० १९०२ कार्तिक शुक्ला ९ से माघ कृष्णा ९ तक दीवान पद खालसे रहा किन्तु काम सिंघवी फोजराज, भण्डारी शिवचन्द, मेहता गोपालदास आदि देखते थे।

६६ भण्डारी शिवचन्दजी—लखमीचन्द का पुत्र। वि स० १९०२ माघ कृष्णा ९ से वि स० १९०३ आश्विन शुक्ला ३ तक महाराजा तख्तसिंह (वि स० १९००–२९) के समय मे दीवान।

६७ मेहता मुकुन्दचन्दजी—लखमीचन्द का पुत्र। वि स० १९०७ आश्विन शुक्ला ७ से कार्तिक कृष्णा ४ तक। वि स० १९०९ मार्गशीर्ष कृष्णा १ से वि स० १९१० माघ शुक्ला ९ तक। वि स० १९१६ आषाढ कृष्णा ८ से वि स० १९१९ श्रावण कृष्णा १ तक तथा वि स० १९२० से वि स० १९२२ द्वितीय ज्येष्ठ कृष्णा ९ तक। कुल चार बार दीवान। महाराजा तख्तसिंह के समय मे।

६८ रावराजमल लोढ़ा—राव रिधमल का पुत्र। वि स० १९०७ चैत्र कृष्णा १० से वि स० १९०८ भाद्रपद शुक्ला १३ तक दीवान। महाराजा तख्तसिंह के समय मे।

६९. —वि स० १९०८ भाद्रपद शुक्ला १३ से पौष शुक्ला २ तक दीवान पद खालसे रहा किन्तु काम मेहता मुकुन्दचन्द, सिंघवी फोजराज, मेहता विजयसिंह आदि देखते थे। महाराजा तख्तसिंह के समय मे।

७० मेहता विजयसिंहजी—कृष्णगढ निवासी मेहता करणमल का पुत्र। वि स १९०८ पौष शुक्ला २ से वि स० १९०९ आश्विन कृष्णा १ तक। वि स० १९१३ पौष शुक्ला १० से वि स० १९१५ पौष शुक्ला ९ तक। वि स० १९२५ कार्तिक शुक्ला ५ से मार्गशीर्ष शुक्ला ५ तक दीवान अलग-अलग समय मे। तख्तसिंह के काल मे।

७१ रा. ब. मेहता विजयसिंह—वि स० १९२९ कार्तिक शुक्ला १४ से वि स० १९३१ फाल्गुन शुक्ला ९ तक। तथा वि स० १९३३ माघ शुक्ला १५ से १९४९ भाद्रपद शुक्ला १३ तक महाराजा जसवतसिंह द्वितीय (वि स० १९२९-५२) के काल मे दीवान।

७२. मेहता गोपाललाल तथा मेहता हरजीवनदास गुजरात वाले—वि स० १९१५ मे महाराजा तख्तसिंह के समय मे दीवान। अकेले मेहता हरजीवनदास वि स० १९३१-३२ मे भी दीवान रहे महाराजा जसवतसिंह द्वितीय के समय मे।

७३ रा. ब लोढा सरदारमलजी—वि स० १९३३ भाद्रपद शुक्ला ८ से माघ शुक्ला १५ तक महाराजा जसवन्तसिंह द्वितीय के समय मे दीवान।

७४ मेहता सरदारसिंहजी—विजयसिंह का पुत्र। वि स० १९४९ भाद्रपद शुक्ला १३ से

वि. स० १९५८ आषाढ शुक्ला ३ तक दीवान। महाराजा जसवन्तसिंह तथा सरदारसिंह (वि स० १९५२-६७) के समय मे।

७५ —दीवान पद निम्नानुसार खालसे रहा—वि स० १९१० मे किन्तु काम मेहता गोपालदास, मेहता हरजीवनदास एव मेहता शकरलाल देखते थे। वि स० १९१३ मे पौष मास मे किन्तु काम मेहता विजयसिंह, राजमल लोढा, मेहता हरजीवन देखते थे। वि स०१९-१९ के श्रावण चैत्र मे किन्तु काम मेहता हरजीवनदास, सिंघवी रतनराज, आदि देखते थे। वि स० १९२३ कार्तिक से वि स० १९२४ के भाद्रपद तक किन्तु काम वेद मेहता, प्रतापमल, मेहता मुकुन्दचन्द, मेहता गोपाललाल तथा भण्डारी पचानदास देखते थे। वि स० १९२५ ज्येष्ठ से १९२६ आश्विन तक, काम मेहता विजयमलजी देखते थे। वि स १९२९ मे किन्तु काम मेहता हरजीवनदास, विजयसिंह, सिंघवी, समरथराज आदि देखते थे।

फौज बक्शी

१. मुहणोत सूरतरामजी—वि स० १८०८ श्रावण कृष्णा ३ से वि स० १८१३ की श्रावण कृष्णा १३ तक। महाराजा बख्तसिंह एव विजयसिंह के समय मे।

२ भण्डारी दौलतरामजी—थानसिंह का पुत्र। वि स० १८१३ श्रावण कृष्णा १३ से वि. स० १९१९ तक। महाराजा विजयसिंह के समय मे।

३ सिंघवी भींवराजजी—लखमीचन्द का पुत्र। वि स० १८२४ फालगुन कृष्णा ११ से वि स० १८३० तक तथा वि स० १८३२ भाद्रपद शुक्ला १४ से वि स० १८४७ ज्येष्ठ शुक्ला ४ तक। महाराजा विजयसिंह के समय मे।

४. सिंघवी हिन्दूमलजी—चन्द्रभाण का पुत्र। वि० स० १८३० चैत्र कृष्णा १२ से वि स० १८३२ भाद्रपद शुक्ला १४ तक। महाराजा विजयसिंह के समय मे।

५. सिंघवी अखेराजजी—भीवराज का पुत्र। वि स० १८४७ ज्येष्ठ से वि स० १८५१ श्रावण शुक्ला ११ तक तथा वि स० १८५६ चैत्र कृष्णा ६ से वि स० १८५७ की प्रथम ज्येष्ठ सुदी १२ तक कुल दो वार। महाराजा विजयसिंह एव भीमसिंह के समय मे।

६. भण्डारी शिवचन्दजी—वि स० १८५१ श्रावण शुक्ला ११ से वि स० १८५५ श्रावण कृष्णा १४ तक। महाराजा भीमसिंह के समय मे।

७ भण्डारी भवानीरामजी—दौलतराम का पुत्र। वि स० १८५५ श्रावण कृष्णा १४ से वि स० १८५६ चैत्र कृष्णा ६ तक महाराजा भीमसिंह के काल मे।

८. सिंघवी मेघराजजी—अखेराज का पुत्र। वि स० १८५७ प्रथम ज्येष्ठ शुक्ला १२ से वि स० १८७२ कार्तिक कृष्णा १४ तक तथा वि स० १८७६ द्वितीय ज्येष्ठ कृष्णा १२ से वि स० १८८२ माघ शुक्ला १२ तक महाराजा भीमसिंह एव मानसिंह के समय मे।

९. भण्डारी चतुर्भुजजी—वि स० १८७२ कार्तिक कृष्णा १४ से वि स० १८७४ द्वितीय श्रावण शुक्ला ६ तक महाराज मानसिंह के शासनकाल मे।

१० भण्डारी अगरचन्दजी—शिवचन्द का पुत्र। वि स० १८७४ द्वितीय श्रावण शुक्ला ६ से वि स० १८७६ द्वितीय ज्येष्ठ कृष्णा १२ तक महाराजा मानसिंह के समय मे।

होने का उल्लेख प्राप्त होता है।[1] किन्तु डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने ख्यातो की बात के उपर्युक्त वृतान्त का अवश्य समर्थन किया है और यह भी लिखा है कि वरसिंह, मेहता नापा तथा लाखणसी आदि को बीका ने बीकानेर राज्य के दायित्वपूर्ण पदो पर भी नियुक्त किया था।[2]

इन दोनो ही विवरणो से यह स्पष्ट है कि बीकानेर राज्य की स्थापना मे वच्छराज तथा वेदलाला, लाखणसी, कोठारी चौथमल, बच्छावत नरसिंह, वरसिंह आदि जैन महापुरुषो के रूप मे राव बीका को काफी सहयोग प्राप्त हुआ।

मेहता कर्मचन्द बच्छावत

उपर्युक्त वच्छराज की चौथी पीढ़ी मे संग्रामसिंह हुआ। यह संग्रामसिंह भी बीकानेर के महाराजा कल्याणमल (वि सं० १५९८-१६३०) का तथा महाराजा रायसिंह (वि सं० १६३० ६८) का दीवान रहा। इसकी मृत्यु के पश्चात् महाराजा रायसिंह ने उसके पुत्र कर्मचन्द को दीवानगिरी की खिलअत दी तथा सिरोपाव, हाथी, पालकी आदि भेंट स्वरूप प्रदान की। वि सं० १६२८ के श्रावण शुक्ला ११ को कर्मचन्द के यहा रायसिंह गोठ जीमने गया, उस समय कर्मचन्द ने रायसिंह को पाच हजार रुपये नजर किये।[3] महाराजा कल्याणमल तक बीकानेर राज्य के सम्बन्ध मुगल साम्राज्य मे अधिक अच्छे नही थे। उन दिनो मुगल सत्ता से बिगाड रखना राज्य के हित मे नही था। कर्मचन्द इस तथ्य की गहराई को अनुभव करता था, अत उसने महाराजा रायसिंह को दिल्ली की बादशाहत से सम्बन्ध सुधारने की सलाह दी ताकि राज्य को स्थायित्व व शान्ति प्राप्त हो सके।[4] रायसिंह ने सलाह की उपयोगिता स्वीकार की और बादशाह अकबर से सम्बन्ध सुधारने का प्रयास किया, जिसमे काफी सफलता प्राप्त हुई। मेवाड के महाराणा उदयसिंह की पुत्री जसमादे से रायसिंह के विवाह के अवसर पर विवाह की सम्पूर्ण व्यवस्था का दायित्व कर्मचन्द ने ही निभाया।[5] वि सं० १६४५ मे बीकानेर के वर्तमान किले का निर्माण कार्य आरंभ कराया जो वि सं० १६५० मे पूर्ण हुआ। इस निर्माण कार्य की देख-रेख का सम्पूर्ण दायित्व भी महाराजा रायसिंह ने कर्मचन्द को ही सौंपा।[6]

कर्मचन्द कुशल प्रशासक ही नही, अपितु योग्य योद्धा भी था। नागपुर से मिर्जा इब्राहिम जब ससैन्य बीकानेर पर आक्रमण करने आया तब कर्मचन्द ने उसका वीरतापूर्वक मुकाबला कर उसे पुन. लौटने के लिए मजबूर कर दिया। गुजरात की चढाई और मिर्जा मुहम्मद हुसैन को हराने मे भी कर्मचन्द महाराजा रायसिंह के साथ रहा। सोजत, जालोर तथा सिन्ध की विजय मे भी कर्मचन्द का योगदान काफी स्मरणीय व महत्त्वपूर्ण रहा।

कर्मचन्द पर बादशाह अकबर की भी विशेष कृपा थी। किन्ही कारणो से महाराजा रायसिंह जब कर्मचन्द से अप्रसन्न हो गया तो यह दिल्ली जाकर अकबर के पास ही मृत्यु पर्यन्त रहा।[7]

---

१ ओझा—बीकानेर राज्य का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० ७५२, २ वही पृ० ७५२
३ डॉ० दशरथ शर्मा—दयालदास री ख्यात, भाग २, पृ० ९१
४ वही, पृ० ९१–९२, ५ वही, पृ० १०७
६ ओझा—बीकानेर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० १७९
७ ओझा—राजपूताने का इतिहास द्वितीय भाग (उदयपुर), पृ० १३१३

होने का उल्लेख प्राप्त होता है ।[1] किन्तु डा० गौरीशकर हीराचन्द ओझा ने बच्छावतो की ख्यात के उपर्युक्त वृतान्त का अवश्य समर्थन किया है और यह भी लिखा है कि वरसिंह, वेद मेहता लाला तथा लाखणसी आदि को बीका ने बीकानेर राज्य के दायित्वपूर्ण पदो पर भी नियुक्त किया था ।[2]

इन दोनो ही विवरणो से यह स्पष्ट है कि बीकानेर राज्य की स्थापना मे बच्छराज तथा वेदलाला, लाखणसी, कोठारी चौथमल, बच्छावत नारसिंह, वरसिंह आदि जैन महापुरुषो के रूप मे राव बीका को काफी सहयोग प्राप्त हुआ ।

मेहता कर्मचन्द बच्छावत

उपर्युक्त बच्छराज की चौथी पीढी मे सग्रामसिंह हुआ । यह सग्रामसिंह भी बीकानेर के महाराजा कल्याणमल (वि स० १५९८-१६३०) का तथा महाराजा रायसिंह (वि स० १६३०-६८) का दीवान रहा । इसकी मृत्यु के पश्चात् महाराजा रायसिंह ने उसके पुत्र कमचन्द को दीवानगिरी की खिलअत दी तथा सिरोपाव, हाथी, पालकी आदि भेंट स्वरूप प्रदान की । वि. स० १६२८ के श्रावण शुक्ला ११ को कर्मचन्द के यहा रायसिंह गोठ जीमने गया, उस समय कर्मचन्द ने रायसिंह को पाच हजार रुपये नजर किये ।[3] महाराजा कल्याणमल तक बीकानेर राज्य के सम्वन्ध मुगल साम्राज्य से अधिक अच्छे नही थे । उन दिनो मुगल सत्ता से बिगाड रखना राज्य के हित मे नही था । कर्मचन्द इस तथ्य की गहराई को अनुभव करता था, अत उसने महाराजा रायसिंह को दिल्ली की बादशाहत से सम्वन्ध सुधारने की सलाह दी ताकि राज्य को स्थायित्व व शान्ति प्राप्त हो सके ।[4] रायसिंह ने सलाह की उपयोगिता स्वीकार की और बादशाह अकबर से सम्वन्ध सुधारने का प्रयास किया, जिसमे काफी सफलता प्राप्त हुई । मेवाड के महाराणा उदयसिंह की पुत्री जममादे से रायसिंह के विवाह के अवसर पर विवाह की सम्पूर्ण व्यवस्था का दायित्व कर्मचन्द ने ही निभाया ।[5] वि स० १६४५ मे बीकानेर के वर्तमान किले का निर्माण कार्य आरभ कराया जो वि स० १६५० मे पूर्ण हुआ । इस निर्माण कार्य की देख-रेख का सम्पूर्ण दायित्व भी महाराजा रायसिंह ने कर्मचन्द को ही सौंपा ।[6]

कर्मचन्द कुशल प्रशासक ही नही, अपितु योग्य योद्धा भी था । नागपुर से मिर्जा इब्राहिम जब ससैन्य बीकानेर पर आक्रमण करने आया तब कर्मचन्द ने उसका वीरतापूर्वक मुकाबला कर उसे पुन लौटने के लिए मजबूर कर दिया । गुजरात की चढाई और मिर्जा मुहम्मद हुसैन को हराने मे भी कर्मचन्द महाराजा रायसिंह के साथ रहा । सोजत, जालोर तथा सिन्ध की विजय मे भी कर्मचन्द का योगदान काफी स्मरणीय व महत्त्वपूर्ण रहा ।

कर्मचन्द पर बादशाह अकबर की भी विशेष कृपा थी । किन्ही कारणो से महाराजा राय-सिंह जब कर्मचन्द से अप्रसन्न हो गया तो यह दिल्ली जाकर अकबर के पास ही मृत्यु पर्यन्त रहा ।[7]

---

१ ओझा—बीकानेर राज्य का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० ७५२, २ वही पृ० ७५२
३ डॉ० दशरथ शर्मा—दयालदास री ख्यात, भाग २, पृ० ९१
४ वही, पृ० ९१–९२, ५ वही, पृ० १०७
६ ओझा—बीकानेर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० १७९
७ ओझा—राजपूताने का इतिहास द्वितीय भाग (उदयपुर), पृ० १३१३

सम्पन्न करते हुए वि स० १८९७ मे बीकानेर लौटे और महाराजा रत्नसिंह की राजकुवरी से विवाह किया तो महाराणा एव महाराजा दोनो ने ही हिन्दूमल की हवेली पर जाकर उसका आतिथ्य ग्रहण किया। कर्नल सदरलैंड का वि स० १९०४ मे जब बीकानेर आगमन हुआ तो हिन्दूमल वीमार होते हुए भी महाराजा के साथ वह उसकी पेशवाई को गया। वापस लौटते हुए उसकी हालत अधिक विगड गई एव ४२ वर्ष की अल्प आयु मे ही उसकी मृत्यु हो गई।[1]

हिन्दूमल अपने विनम्र स्वभाव, कार्यकुशलता व प्रशासनिक योग्यता के कारण महाराजा रत्नसिंह का ही नही अपितु अग्रेज अधिकारियो का भी प्रिय वन गया। इसकी मृत्यु पर कप्तान जैक्सन ने वि स १९०४ की माघ शुक्ला ७ के पत्र मे शोक प्रकट करते हुए हिन्दूमल की योग्यता की काफी प्रशसा की।[2] महाराजा रत्नसिंह ने अपने प्रिय दीवान की स्मृति को चिरस्थायी रखने के लिये 'हिन्दूमल कोट' नामक स्थान बनवा दिया।[3]

इसी प्रकार वीकानेर राज्य के शासन-प्रवन्ध मे अनेक जैनियो ने सैनिक व राजनीतिक योग-दान देकर अमूल्य सेवाए दी है। स्थानाभाव के कारण उन सवका वृत्तान्त यहा प्रस्तुत करना सभव नही है। अत उपर्युक्त जैन महापुरुषो के साथ उनका निम्नानुसार सक्षिप्त उल्लेख ही किया जा रहा है—

दी

१. बच्छराज या वत्सराज—राव वीका के समय मे दीवान।

२. वेद मेहता लाखणसी—राव वीका के समय मे तथा वीकानेर राज्य के आरम्भ काल मे दीवान।

३. मेहता करमसी बच्छावत—राव लूणकरण (वि. स० १५६१–८३) के समय मे दीवान। यह वच्छराज का पुत्र था।

४. मेहता वरसिंह बच्छावत—करमसी का छोटा भाई। रावजेतसिंह (वि स० १५८३-९८) के समय मे दीवान।

५ मेहता नगराज बच्छावत—वरसिंह का पुत्र। राव जेतसिंह के समय मे दीवान।

६ मेहता सग्रामसिंह बच्छावत—नगराज का पुत्र। राव कल्याण मल (वि स० १५९८-१६३०) के समय मे।

७ मेहता कर्मचन्द बच्छावत—सग्रामसिंह का पुत्र। राव कल्याणमल तथा महाराजा राय-सिंह (वि स० १६३०-६८ के समय मे दीवान।

८ वेद मेहता ठाकुरसी—उपर्युक्त वेद मेहता लाखणसी का पाचवा वशधर। महाराजा रायसिंह के समय मे।

---

१ ओझा—वीकानेर राज्य का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० ७५६-५७

२ पाउलेट—गजेटियर ऑव दि वीकानेर स्टेट, पृ० ८५

३ (i) ओझा—वीकानेर राज्य का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० ७५७

(ii) यह स्थान वीकानेर सभाग और श्रीगगानगर जिले मे पाकिस्तान की सीमा पर स्थिति है।

उपर्युक्त मुहरणोत परिवार के अतिरिक्त बोथरा परिवार के सदस्य भी दीवान रहे। मेहता उम्मेदसिंह, मेहता रघुनाथसिंह, मेहता माधवसिंह आदि जैन वीरो ने किशनगढ राज्य मे फौजबख्शी के पद पर भी कार्य किया।

(ड) सिरोही राज्य

सिरोही दक्षिणी-पश्चिमी राजस्थान मे स्थित और गुजरात की सीमाओ से मिला हुआ चौहान राजपूतो की देवडा शाखा का प्रसिद्ध राज्य है। यहा पर जैन मतावलम्बी सिंघी परिवार के लोगो ने लम्बे समय तक दीवानगी की। दीवान पद पर कार्य करने वाले ऐसे महापुरुष निम्न हैं—

सिंघी श्रीवतजी, सिंघी श्यामजी, सिंघी सुन्दरजी, सिंघी अमरसिंहजी, सिंघी हेमराजजी, सिंघी कानजी, सिंघी पोमाजी, सिंघी जोरजी, सिंघी कस्तूरचन्दजी, रायबहादुर सिंघी जवाहरचन्दजी। इन सबमे सिंघी कानजी, कस्तूरचन्दजी तथा जवाहरचन्दजी ने अलग-अलग समय मे तीन-तीन बार दीवान पद पर कार्य किया। एक बार बाफना चिमनलालजी दबानीवाले भी दीवान रहे।

(च) अन्य

राजस्थान के अन्य राज्यो मे भी जैन मतावलम्बी दीवान व फौजबख्शी पद पर आसीन रहे हैं, यथा—

प्रतापगढ देवलिया मे सुजानमलजी बाठिया दीवान पद पर, झालावाड मे सुराणा गगाप्रसादजी महाराणा पृथ्वीसिंह के समय मे फौजबख्शी तथा इन्ही गगाप्रसादजी के पुत्र सुराणा नरसिंह दासजी फौजबख्शी एव बासवाडा राज्य मे कोठारी परिवार के अनेक सदस्य दीवान पद पर आसीन रहे हैं।

इसी तरह राजस्थान के अन्य विभिन्न राज्यो, जागीरदारो व ठाकुरो के यहा पर भी मुशी कामदार, मुत्सद्दी, अहलकार, वकील, सैनिक आदि पदो पर अनेक जैनियो ने बडी योग्यता पूर्वक कार्य किया है, जिनकी सूची बहुत लम्बी होने के कारण यहा देना सभव नही है।

४० जयपुर के जैन दीवान

प० भवरलाल जैन

जयपुर-निर्माण से पूर्व जयपुर राजवश के पूर्वजो का इस ढूढाड प्रान्त मे एक हजार वर्ष से दौरदौरा रहा है। विक्रम की १०-११वी शती से यह कछवाहा वश मध्यप्रदेश से आकर राजस्थान मे बसा है और विभिन्न स्थानो पर इन्होने अपनी राजधानियाँ बनाई हैं। तभी से जैनो का इनके साथ विशेष सम्पर्क रहा है। नरवर—ग्वालियर से आकर इस वश ने सर्वप्रथम दौसा मे जो उस समय धवलगिरि के नाम से विख्यात था—अपनी राजधानी बनाई। दौसा के बाद खोह रेवारियान—जो शातिनाथजी की खोह के नाम से प्रसिद्ध है—वहाँ राजधानी बनी। इसके बाद रामगढ पर अधिकार हुआ और फिर आमेर मे। यह सब स्थान परिवर्तन ११-१२वी शताब्दी मे हो गया। तत्पश्चात् विक्रम सवत् १७८४ मे जयपुर बसाया गया। इस सुन्दर नगर को बसाने वाले अद्भुत प्रतिभाशाली महाराजा सवाई जयसिंह थे जिनका शासन काल वि० स० १७५६ से १८०० तक था। वे जैनो के काफी सम्पर्क मे थे। कर्नल टाड ने अपने ग्रथ मे लिखा है—जैनियो को ज्ञान-शिक्षा मे श्रेष्ठ जानकर जयसिंहजी उन पर अत्यन्त अनुग्रह रखते थे। ऐसा भी प्रकट होता है कि उन्होने जैनियो के इतिहास और धर्म के सम्बन्ध मे स्वय शिक्षा प्राप्त की थी। [पृष्ठ ६०१]

उक्त राजवश जब नरवर से इधर आया तब कई जैन घराने इनके साथ आये प्रतीत होते हैं। पहले भी इस प्रान्त मे जैन काफी थे व्यापार बढा हुआ था। महाराजा सोढदेवजी स० १०२३ मे दौसा मे राज्य गद्दी पर बैठे—उस समय निरभैराम छावडा नामक जैन दीवान थे—ऐसा उनके वशजो से ज्ञात हुआ है। इनके बाद इस वश मे कई जैन दीवान हुए हैं।

११वी शती से लेकर शताधिक जैन दीवान हुए हैं—पर उनका कोई क्रमबद्ध इतिहास नही मिलता। लेखक को अब तक करीब ५५ जैन दीवानो की जानकारी मिली है पर वे सब १६वी शताब्दी के बाद के हैं। पहले की खोज अपेक्षित है। यहाँ प्रमुख जैन दीवानो का परिचय दिया जा रहा है।

रामचन्द्र छाबडा—इनका दीवान-काल वि० स० १७४७ से १७७६ तक था। इनके पिता और दादा भी दीवान रह चुके हैं। इन्होंने राज्य की महत्त्वपूर्ण सेवायें की हैं। अन्तिम मुगल सम्राट् औरगजेब की मृत्यु के पश्चात् उनके लडको मे राज्यगद्दी के लिए लडाई हुई। विजयी के विपक्ष मे रहने के कारण तथा अन्य कारणो से आमेर पति जयसिंह से बहादुरशाह ने नाराज होकर स० १७६४ मे आमेर पर अपना प्रबन्धक नियुक्त कर दिया और जयसिंह को आमेर छोड उदयपुर चला जाना

पडा। उनके साथ दीवान रामचन्द्र आदि भी थे। दीवान रामचन्द्र राज्य खोकर कैसे बैठते ? कुछ फौजे एकत्र की, कुछ और उपाय किये और स्वय आमेर के प्रबन्धको पर टूट पडे और उन्हे मार भगाया। दीवानजी वीर थे और स्वाभिमानी भी। विभिन्न इतिहासकारो ने फौज आदि के सम्बन्ध मे विभिन्न रूप से वर्णन करते हुए रामचन्द्र के नेतृत्व को स्वीकार किया है और मुगलो से आमेर खाली कराने का श्रेय इन्हे ही दिया है। मुगल दरबार मे इससे रामचन्द्र के प्रति नाराजगी स्वाभाविक थी। शाहजादा जहाँ दाराशाह ने १७ जुलाई, सन् १७०६ के अपने पत्र मे उदयपुर वालो को लिखा था कि जयसिंह के नौकर रामचन्द्र दीवान ने नालायक और बेहूदा कार्यवाही की—बादशाही नौकरो से लडाई की। अत. जयसिंह, उसे निकाल दें। इससे दीवान रामचन्द्र का आमेर पर कब्जा करना स्पष्ट है।

दीवान रामचन्द्र जयसिंहजी के अधिक प्रिय थे। उस समय और भी दीवान थे, पर प्रमुख रामचन्द्र ही थे।

दीवान रामचद्र के दादा बल्लूशाह थे। मुगल बादशाह औरगजेब के समय मे छत्रपति शिवाजी के पास महाराजा रामसिंहजी की तरफ से बल्लूशाहजी ने सुलह की बातचीत की थी और शिवाजी को कैद कर लेने पर उन्हे छुडाकर लाने मे पूरा सहयोग दिया था। यह सवत् १७२३ की घटना है।

बल्लूशाह के पुत्र एव रामचन्द्र के पिता विमलदास भी दीवान थे जो जाटो के साथ युद्ध मे काम आये थे। लालसोट के पास इनकी छत्री बनी थी, ये वीर योद्धा थे। रामगढ मे विमलपुरा नामक मोहल्ला इन्ही के नाम से बसा था। इनकी हवेली वहाँ थी।

दीवान रामचन्द्र धार्मिक व्यक्ति थे। आमेर और रामगढ के बीच साहीबाड ग्राम मे आपने सवत् १७४७ मे एक मदिर बनवाया था जो आज मौजूद है। जब रामचन्द्रजी राजा जयसिंहजी के साथ उज्जैन मे रहते थे तो वहाँ भी एक मदिर बनवाया और जब दिल्ली मे रहते थे तो वहाँ भी मन्दिर बनवाया। सवत् १७७० मे भट्टारक देवेन्द्र कीर्त्ति के पट्ट महोत्सव मे आप अगुआ थे। इनका जीवन धार्मिक था। राज्य सेवा के विशेष अवसरों पर इन्हे राज्य से इनामे, जागीर आदि मिले हैं। साभर पर जयपुर जोधपुर मे तनाजा होने पर आपने ही आधा-आधा हिस्सा का बटवारा कर झगडा मिटाया था। फलत आपको सालाना नमक मिलने का पट्टा भी दिया गया था।

दीवान किशनचन्द —ये रामचन्द्रजी के पुत्र थे। राज्य सेवा मे विशिष्ट कार्य करने से स० १७६७ मे इन्हे ६०० बीघा जमीन मिली। जयपुर की ओर से बसवा और बाद मे टोक के प्रबन्धक रहे। स० १८१८ मे इन्हे और जागीरें मिली और स० १८१५ मे इनका स्वर्गवास हो गया।

दीवान भीमसिंह :—ये किशनचन्दजी के लडके थे। स० १८५५ से स० १८५६ तक प्रधान दीवान रहे। वैसे स० १८१६ से स० १८६७ तक इनका राज्य सेवा काल था। स० १८६७ मे इनका स्वर्गवास हुआ। इस प्रकार इस वश ने पाच-छ पीढी तक उच्च पद पर रहकर राज्य की सेवा की।

महामंत्री मोहनदास .—ये मिर्जा राजा जयसिंह के महामत्री थे। मिर्जा राजा का राज्यकाल स० १६७८ से स० १७२४ तक का था। मोहनदासजी के पूर्वज एव वंशज मे अनेक व्यक्ति दीवान हुए हैं। बडजात्या गोत्रीय मोहनदास सघी कहलाते थे। इनके पूर्वजों ने सघी उदा का नाम सर्वप्रथम

गया और सन् १८१८ मे राजा का अपुत्र अवस्था मे स्वर्गवास हो गया। फलतः और लोग अपना हक जमाने लगे। पर भटियानी रानी गर्भवती थी। सन् १८१९ मे जयसिंह तृतीय का जन्म हुआ और राजमाता राज्य कार्य देखने लगी। वह स्वतन्त्रता प्रेमी थी। अग्रेजो का दखल उसे पसन्द नही था। सघी भी इसी प्रकृति के थे। आर्थिक स्थिति को दृढ करने हेतु सघीजी को राजस्व मत्री वनाया गया पर मुसाहिव रावलजी के साथ इनकी नही वनी। वे अग्रेजो के हिमायती थे और ये अग्रेजो के विरोधी, फलत दोनो मे अनवन बढती गई और राजनैतिक पार्टिया वन गई। राजमाता ने रावलजी को वहुत समझाया। पर उन्हे अग्रेजो का वल था। सघीजी के विरुद्ध अग्रेजो को भडकाया गया। राजनैतिक सघर्ष मे कभी कोई शक्तिशाली बनता और कभी कौन। सघी मुख्य मत्री बना। उसने शेखावटी के झगडे निपटाने का प्रयत्न किया, राजस्व वढाया और जनता मे अमन किया। पर ज्योही राजमाता मरी और सयोगवश जयसिंह तृतीय भी १७ वर्ष की अवस्था मे काल कवलित हो गये, सघी के विरोधियो को मौका मिला और इन्हें वदनाम किया गया—राजा का हत्यारा वताया। पर जयसिंहजी की रानी चन्द्रावतजी ने इसे झूठा इल्जामा माना और सघी को ईमानदार और योग्य व्यक्ति पाया। सघी ने त्यागपत्र दिया पर स्वीकार नही किया। चन्द्रावतजी भी स्वतन्त्रता प्रेमी थी। पर अग्रेजो के कुचक्र चलते रहे और वे कूटनीति से ताकत मे आते रहे। अग्रेजो के जमाने मे आजादी के दीवानो की जो स्थिति सारे देश मे हुई, वही सघी और उनके साथियो की भी हुई। राजा की हत्या का अपराध लगाया पर उसमे विरोधियो को सफलता नही मिली। राज्य विद्रोह के षड्यत्र का अपराध जो देश प्रेमियो के लिए लगाया जाता था उसी के तहत स० १८९२ मे इन्हें किले मे नजर कैद किया गया। वही लगभग स० १८९५ मे चुनारगढ किले मे उनका स्वर्गवास हो गया।

इस प्रकार अग्रेजो और उनके पक्षपातियो का एक काटा निकल गया। कई इतिहासकारो ने सघी को वदनाम किया है पर वे इतिहासकार अग्रेजो से या विरोधियो से प्रभावित थे। निष्पक्ष इतिहासकार सघी को ईमानदार ही पायेंगे।

दीवान श्योजीराम एव अमरचन्द —जयपुर के इतिहास मे दीवान अमरचन्द वडे प्रख्यात हो गये हैं। देश और जनता की सेवा मे हसते-हसते प्राणो की वलि देने वाले इस अमर शहीद का नाम सदा याद रहेगा। इनके पिता श्योजीराम भी दीवान थे। तीन राजाओ (१) महाराजा पृथ्वीसिंह (स० १८२४ से १८३५), (२) प्रतापसिंह (स० १८३५ से १८६०) और (३) जगतसिंह (स० १८६० से १८७५) के शासन काल मे सं० १८३४ से १८६७ तक श्योजीरामजी के दीवान होने का उल्लेख मिलता है। ये वडे धर्मात्मा और वीर पुरुष थे। मनिहारो के रास्ते मे स्थित वडे दीवानजी का जैन मन्दिर तथा दि० जैन सस्कृत कॉलेज भवन इन्ही का वनाया हुआ है।

दीवान अमरचन्दजी का दीवान काल स० १८६० से १८९२ तक का है। इन्होने वचपन से धार्मिक शिक्षा ग्रहण की। ये विलक्षण प्रतिभाशाली और शान्त स्वभाव के थे। गरीबो के सेवक, समाज सुधारक और मूक दानी थे। विवाह मे लडकी वालो को निकासी के समय मूठ (मुट्ठीभर रकम) देने का रिवाज उस जमाने मे था। गरीब लोगो को इससे परेशान देख आपने दो आने देने का रिवाज चालू किया जो गत २५ वर्ष पूर्व था। आज तो मूठ देने का रिवाज ही उठ गया। इन्होने कई ग्रंथ लिखाये। लाल्जी साड के रास्ते मे स्थित छोटे दीवानजी का मदिर इन्ही का वनाया हुआ है। ये राज्य और जनता के खैरख्वाह थे और साथ ही स्वतन्त्रता प्रेमी। अग्रेजी राज्य जयपुर म न

जमने देने मे इनका सहयोग था। सघी झूथाराम के सहयोगी थे। फलत अग्रेज और अग्रेजो के हिमायती इनके विरोधी हो गये। इन्हें गिरफ्तार किया गया और अन्त मे देशप्रेमियो को जो सजा दी जाती है, वह अमरचन्द को दी गई। फासी के तख्ते पर लटककर सदा के लिए अमर हो गये, पर आजादी के अकुर बढते रहे।

दीवान राव कृपाराम पाड्या —जयपुर के इतिहास मे इस वश की महान् सेवायें हैं। इनके पूर्वज चाढमलजी बडे प्रतापी नररत्न थे। चम्पावती नाम चाटसू इन्ही के नाम से पडा—ऐसा विख्यात है। ये चाटसू के रहने वाले थे और वहाँ चौधरी थे। इस वश मे दीवान राव जगरामजी की मुगल दरबार मे पहुँच थी। ये जयपुर के स० १७७० से १७६० तक दीवान थे।

इनके पुत्र राव कृपाराम बडे विलक्षण व्यक्ति थे। इनका दीवान काल तो स० १७८० से १७६० तक ही था पर ये मुगल दरबार मे आमेर की ओर से प्रतिनिधि थे। बादशाह का इन पर काफी अनुग्रह था। लक्ष्मी की इन पर दया थी। इतिहासकार कर्नल टाड् इन्हें दिल्ली पति का कोषाध्यक्ष मानता है। जयपुर निर्माण मे इन्होने एक करोड रुपये दिये थे। इनकी पुत्री के विवाह मे महाराजा जयसिहजी हथलेवा मे कुछ गाव की जागीर देना चाहते थे पर स्वय धनिक, बादशाह तथा राजा के कृपा पात्र होते हुए भी समाज को महत्त्व दिया और मात्र दो रुपये हथलेवा मे राजाजी से दिलवाये, जो रिवाज आज भी प्रचलित है। मुगल दरबार मे अत्यधिक पहुँच होने से रजवाडो के बहुत से काम ये करवा देते थे। अत सभी रजवाडो मे इनकी धाक थी।

आमेर राज्य की ओर से कई बार विशेष सेवाओ के कारण इन्हें इनामे मिली हैं। मुगल दरबार से इन्हें मनसबदारी मिली थी। जयसिहजी और उनके भाई विजयसिहजी का झगडा इन्ही ने निपटाया था। ये धार्मिक और अपने इष्ट के पक्के थे। सूर्य का इन्हें इष्ट था। जयपुर की गलता घाटी की चोटी पर जो सूर्य का मन्दिर है, वह इन्ही का बनाया हुआ है। आमेर आदि कई जगह इन्होंने सूर्य के मन्दिर बनवाये थे। भानु सप्तमी को जो सूर्य रथ जयपुर मे निकलता है, वह इन्ही का चलाया हुआ है। स० १८०४ मे इनका स्वर्गवास हो गया।

इनके भाई राव फतहराम स १७६० से १८१३ तक, फतहराम के पुत्र भवानीराम स० १८४३ से १८५५ तक तथा भवानीराम के पुत्र जोखीराम भी दीवान हुए हैं। इस वश ने काफी राज्य सेवा की है।

दीवान बालचन्द छाबडा —जयपुर के दीवानो मे बालचन्द और उनके पुत्र रामचन्द काफी विख्यात हुए हैं। बालचन्दजी का दीवान काल स० १८१८ से १८२६ तक था। जयपुर मे उस समय साप्रदायिक तत्त्व उभर रहे थे। श्यामराम नामक एक साप्रदायिक व्यक्ति राजा के मुँह लगा हुआ था। उसने जैन दीवानो के साथ राजनैतिक विरोध को साम्प्रदायिक रूप देकर जैन समाज पर काफी जुल्म ढाये। स० १८१७ मे ढूढाड प्रान्त मे अनेक जैन मन्दिर साप्रदायिकता की लहर मे नष्टभ्रष्ट हुए। राजस्थान पुरातत्व विभाग से प्रकाशित 'बुद्धि विलास' मे इस घटना का सही वर्णन मिलता है। दीवान बालचन्द उदार थे। साम्प्रदायिक विद्वेष मे न पडकर नव निर्माण की ओर उन्होने ध्यान दिया और अनेक नये मन्दिर खडे करवा दिये। स १८२१ मे विशाल इन्द्र ध्वज पूजा महोत्सव इनके

सहयोग से हुआ जिसमे दूर-दूर से काफी यात्री आये। इससे सकुचित विचार वाले और भी चिढे और स० १८२६–२७ मे पुन. साप्रदायिक आग फैली जिसमे पण्डित टोडरमलजी आदि विद्वानो की आहुति लगी।

दीवान वालचन्दजी के पुत्र जयचन्दजी और रायचन्दजी भी बडे प्रतिभाशाली सज्जन थे। जयचन्दजी का दीवान काल स० १८२५–१८५५ तक रहा। इनके पुत्र कृपारामजी और ज्ञानचन्दजी भी दीवान हुए।

दीवान रायचन्दजी छाबडा .—दीवान वालचन्दजी के तृतीय पुत्र रायचन्दजी कुशल राजनीतिज्ञ, वीर और बडे धर्मात्मा हुए हैं। इनका राज्य सेवाकाल स० १८५० से १८६४ तक रहा है। स० १८६२ मे उदयपुर महाराजा की लडकी कृष्णा कुमारी से विवाह करने के सम्बन्ध मे जयपुर-जोधपुर मे काफी तनाव हुआ। युद्ध के लिए कूच हो गया। पर जयपुर के दीवान रायचन्द और जोधपुर के दीवान श्री इन्द्रराज सिघवी के वीचवचाव और प्रयत्न से युद्ध टला। पर यह सुलह स्थायी नही रही और पोकरण के ठाकुर द्वारा जोधपुर की गद्दी पर धौकलसिंह को विठाने के प्रयत्न मे पुन युद्ध भडका। दीवान रायचन्द ने जगतसिंहजी को काफी मना किया कि हमे ठाकुर पोकरण का पक्ष लेकर जोधपुर पर चढाई नही करना चाहिए पर जगतसिंह ने नही मानी। फलत. युद्ध मे विजय तो हुई पर काफी धन वर्वाद हो गया और जयपुर सकट मे पड गया। शेखावटी आदि के कई झगडे उस समय चल रहे थे जिन्हें रायचन्दजी ने निपटाये।

जोधपुर युद्ध के समय सब फौजें जोधपुर थी तो जोधपुर की ओर से अमीरखा पिंडारी ने जयपुर पर आक्रमण कर दिया और लूटखसोट करने लगा। जगतसिंहजी ने जव यह सुना तो वे जयपुर रवाना हुए। पर मार्ग मे अमीरखा तथा मारवाड वालो से पिंड छुडाना मुश्किल हो गया। फौजें थकी हुई थी। लुटेरे वडा जुल्म करने लगे। राजा हतोत्साह हो किंकर्तव्यविमूढ हो गया तो दीवान रायचन्द ने वणिक बुद्धि से काम किया और एक लाख रुपया पिंडारी को देकर जगतसिंहजी को सकुशल जयपुर पहुँचाया और पिंडारी को वापस लौटाया।

रायचन्दजी जहाँ गूढ नीतिज्ञ, वीर योद्धा और कुशल प्रशासक थे वहाँ वे वडे धर्मात्मा भी थे। इन्होने स० १८६१ मे विशाल पचकल्याणक प्रतिष्ठा कराई। इनका स्वर्गवास स० १८६४ मे हो गया। इनके दत्तक पुत्र दीवान सघी मन्नालाल ने दीवानगिरी की और फौजवख्शी रहे।

दीवान विजैराम तोतूका :—ये सवाई जयसिंह के समय मे दीवान थे। जयसिंहजी की वहिन का विवाह मुगल वादशाह अपने साथ करना चाहता था। राजा द्वारा इन्कार करना वडा मुश्किल था। पर जव राजा जयपुर मे नही थे, दीवान विजैराम ने वू दी के हाडा वुधसिंहजी के साथ उनका विवाह कर दिया। मुगल वादशाह नाराज हुए पर रणवाकुरे वू दी के हाडो और जयपुर से वैर मोल लेना उचित न समझा। मन मसोस कर रह गये। सवाई जयसिंहजी दीवान विजैराम से वडे खुश हुए और ताम्र पत्र देते हुए उसमे लिखा कि 'शावाश रे, तुमने कछावा वश का धर्म रखा, महान् कार्य किया। हमे जो रोटी मिलेगी, उसमे आधी तुम्हें वाटकर खायेंगे और हमारे वशज इस वायदे से नही फिरेंगे।' इन्होने और भी कई महत्त्वपूर्ण कार्य किये।

यहां जानकारी की दृष्टि से जयपुर राज्य मे हुए जैन दीवानो की संक्षिप्त तालिका प्रस्तुत की जा रही है[1] —

१ मोहनदास—मिर्जा जयसिंह के महामत्री, स० १७१४ के शिलालेख के आधार पर।
२ कल्याणदास पुत्र मोहनदास—स० १७७० मे मौजूद थे।
३ विमलदास छावडा—आमेरपति विशनसिंह (स० १७४६–५६) के दीवान थे।
४ रामचन्द्र छावडा—स० १७४७ से १७७६ तक दीवान रहे।
५ फतहचन्द छावडा—स० १७६५ से १७७१ तक दीवान रहे।
६ किशनदास छावडा—स० १७६७।
७ भीवचन्द छावडा पुत्र किशनदास—स० १८५५ से १८५६ तक।
८ जगराम पाड्या—स० १७७४ से १७९०।
९ ताराचन्द बिलाला पुत्र केशवदास—स० १७७३ से १७९० तक।
१० राव कृपाराम पाड्या पुत्र जगराम—स० १७८० से १७९० तक।
११ फतहराम पाड्या पुत्र राव जगराम—स० १७९० से १८१३।
१२ भगतराम पाड्या पुत्र राव जगराम—स० १७९२ से १८००।
१३ विजयराम छावडा पुत्र तोलूराम
१४. नैनसुख तेरापथी—स० १७६९ मे १७७०।
१५ श्रीचन्द छावडा—स० १७७० से १७७१।
६ कन्हीराम बैद पुत्र खेमकरण—स० १८०७ से १८२०।
१७ केसरीसिंह कासलीवाल—स० १८०८ से १८१७।
१८ रतनचन्द साह—स० १८२३ से १८२५।
१९ आरतराम खिन्दूका पुत्र ऋषभदास—स० १८१४ से १८३५।
२० मौजीराम छावडा
२१ वालचन्द छावडा पुत्र मौजीराम—स० १८१८ से १८२९।
२२ नैनसुख खिन्दूका पुत्र मुकन्ददास—स० १८२१ से १८२६।
२३. जयचन्द साह पुत्र रतनचन्द—स० १८२४ से १८३५।
२४ मोतीराम सघी गोधा पुत्र नन्दलाल—स० १८२५ से १८३४।
२५ अमरचन्द सौगाणी पुत्र भमाराम—स० १८२९ से १८३४।
२६ जयचन्द छावडा—स० १८२९ से १८५५।
२७ जीवराज सघी—स० १८३० से १८४०।
२८. मोहनराम पुत्र जीवराज सघी—स० १८३४ से १८६७।
२९ भागचन्द पुत्र सीताराम—स० १८४२ से १८४६।
३०. श्योलालजी खिन्दूका पुत्र रतनचन्द—स० १८३४ से १८६७।
३१ भगतराम बगडा पुत्र सुखराम—स० १८४२ से १८८५।

---

१. यह विवरण जयपुर जैन डायरेक्टरी (पृ० १–१८ से १–२०) से साभार उद्धृत किया गया है।
—सम्पादक

३२ भवानीराम पाड्या पुत्र फतेहराम—सं० १८४३ से १८५५ ।
३३ सदासुख छावडा पुत्र जयचन्द—स० १८५७ से १८६४ ।
३४ राव जाखीराम पुत्र भवानीराम
३५ अमरचन्द पाटणी—स० १८६० से १८९२ ।
३६ श्योजीलाल छावडा पुत्र चैनराम—स० १८६५ से १८७५ ।
३७ मन्नालाल छावडा पुत्र रामचन्द—स० १८६६ से १८६९ ।
३८ कृपाराम छावडा पुत्र जयचन्द—स० १८६९ से १८७५ ।
३९ लिखमीचन्द छावडा पुत्र जीवनराम—स० १८६९ से १८७४ ।
४०. लखमीचन्द गोधा पुत्र भगतराम—स० १८७४ से १८८१ ।
४१ नोनदराम खिन्दूका पुत्र आरतराम—स० १८७४ से १८८१ ।
४२ अमोलकचन्द खिन्दूका पुत्र नोनदराम—स० १८८२ से १८८६ ।
४३ संघी झूंथाराम पुत्र मोतीराम—स० १८८१ से १८९१ ।
४४ सघी हुकमचन्द पुत्र मोतीराम—स० १८८१ से १८९१ ।
४५ विरधीचन्द पुत्र हुकमचन्द मघी—स० १८९६ से १८९९ ।
४६ सम्पतराम खिन्दूका पौत्र आरतराम—स० १८९१ से १८९६ ।
४७ मानकचन्द ओसवाल—स० १९०६ से १९१२ ।
४८ सघी नन्दलाल गोधा पुत्र अनूपचन्द—स० १८१३ से १८२८ ।
४९ किशोरदास महाजन—स० १७४९ से १७७९ ।
५० गगाराम महाजन पुत्र कालूराम—स० १८४० से १८४५ ।
५१. कृपाराम छावडा रामचन्द के भतीजे—स० १८६९ से १८७५ ।
५२ रायचन्द्र
५३ प्यारेलाल कासलीवाल—स० १९७६ से १९७९ ।
५४ नथमल गोलेछा—माधोसिंहजी के समय मे दीवान थे ।
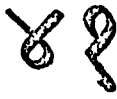
स्वतंत्रता-संग्राम एवं प्रशासन में जैनियों का योगदान

डॉ० भँवर सुराणा

राजस्थान की दुहरी-तिहरी गुलामी की अवस्था मे स्वतत्रता-सग्राम मे भाग लेने वालो का साहस और सगठन क्षमता सदा सर्वदा वन्दनीय अभिनन्दनीय रहेगी। राजस्थान मे स्वतत्रता सग्राम को दिशा देने और उसके लिये मर मिटने वाले दीवानो को तैयार करने वालो मे प० अर्जुनलाल सेठी का नाम सदा स्मरण किया जाता रहेगा। उन्होने वैलूर मे साढे सात वर्षो की जेल काटी और स्वय लोकमान्य बाल गगाधर तिलक ने जेल से बाहर आने पर उनका हार्दिक स्वागत किया। उन दिनो कहावत मशहूर थी "अग्रेजो मे लार्ड कर्जन, भारत मे लार्ड अर्जुन।" अग्रेजी, फारसी, सस्कृत, अरबी पाली और हिन्दी के विद्वान् और जैन-दर्शन ज्ञाता प० सेठी ने जयपुर मे 'वर्द्धमान् विद्यालय' के माध्यम से देश की स्वतत्रता के लिये मर मिटने वाला निष्ठावान वर्ग तैयार किया जिसमे माणकचन्द, मोतीचन्द (शोलापुर), जयचन्द, जोरावरसिंह सम्मिलित थे। रास बिहारी बसु, चन्द्रशेखर आजाद आदि से उनका सम्पर्क था और शहीद अशफाकुल्ला तथा क्रातिवीर शौकत उस्मानी आदि को उन्होने लम्बे अर्से तक अपने पास छिपाये रखा। आरा और निमेन काडो मे उनका नाम लिया गया। दिल्ली षडयन्त्र केस मे उनको नामजद किया गया। सरकार ने उन्हे खतरनाक मान कर सन् १९१४ मे नजरबन्द कर दिया। सारे देश ने उनकी नजरबन्दी का एक स्वर से विरोध किया पर सरकार ने उन्हे जयपुर से बदल कर वैलूर जेल मे भेज दिया। उन्होने सरकार द्वारा दुर्व्यवहार पर भूख हडताल की और अन्तत सरकार को झुकना पडा। सन् १९२० मे जेल से छूटने के बाद सेठीजी ने सन् १९२१ मे अजमेर मे सविनय अवज्ञा आन्दोलन मे भाग लिया। मध्यप्रदेश मे उन्होने १८ महिने का कारावास भुगता। वहा से लौट आने पर पुन वे अजमेर आये और उसे अपना कार्यक्षेत्र बनाया। काग्रेस के उग्रवादी और गाधीवादी खेमो की लडाई से सेठीजी इतने खिन्न हो गये कि उन्होने अपना सब कुछ छोडकर हिन्दू मुस्लिम एकता के लिये अनथक प्रयत्न किया और अन्तत उनकी इच्छा के अनुसार २३ दिसम्बर, १९४१ को देहावसान हो जाने पर उनको एक कब्र मे दफना दिया गया।

श्री सेठीजी की ही परम्परा के दूसरे तेजस्वी पुरुष श्री मोतीलाल तेजावत थे। उदयपुर जिले के एक छोटे से ग्राम कोलियारी मे उनका जन्म हुआ और वही ठिकाने मे कामदार के रूप मे कार्य करते हुए उन्होने किसानो-गरीबो पर जागीरदारो के अत्याचार एव अन्याय के वीभत्स रूप के दर्शन किये। श्री तेजावत ने उन जुल्मो के प्रतिरोध मे ठिकाने की नौकरी छोड दी और 'एकी-एकता'

आन्दोलन मे इन किसानो व गरीवो-भीलो के आन्दोलन का सूत्रपात किया । राशमी के पास तीर्थस्थल मातृकुन्डिया मे उन्होने किसानो को जुल्म के विरुद्ध आन्दोलन के लिये तैयार किया और महाराणा फतहसिंह को एक 21 सूत्रीय ज्ञापन पेश किया जिसमे से महाराणा ने १८ मागे मान ली । तेजावत जी की सगठन क्षमता अद्भुत थी और उसी के कारण उन पर वार वार ठिकानेदारो और उनके कारिन्दो ने मारने के लिये हमले किये । भीली क्षेत्र सिरोही, दाता, पालनपुर, इडिर, विजयनगर मे वे एक छत्र नेता थे । विजयनगर राज्य के नीमडा ग्राम मे जब राज्य के प्रतिनिधियो से बातचीत चल ही रही थी, राज्य की सेना ने षडयन्त्रपूर्वक अचानक गोलिया वरसाना प्रारम्भ कर दिया । निहत्थे लोग थे । लगभग १,२०० लोग वही मर गये । तेजावत जी स्वय पाव मे गोली व छर्रे लगने से घायल हुए । जलियावाला वाग से भी दर्दनाक यह घटना थी । घायल अवस्था में ही तेजावत को भील उठा ले गये और उनको आठ वर्ष तक राज्यो की कोपदृष्टि से वचाकर 'गुप्त वास' मे रखा ।

सरकार ने एक अन्य व्यक्ति का सिर काट कर यह प्रचार किया की तेजावत जी का सिर काट दिया है । यह उनके आन्दोलन को कमजोर करने की एक चाल थी । उनकी खोज में उदयपुर, सिरोही, इडिर आदि राज्यो की सरकारो ने कई गावो को आग लगादी । उनकी खोज में पुलिस के स्थान पर रियासती सेना भेजी जाती थी, पर वे हाथ नही आये । अन्तत गाधीजी के आश्वासन पर उन्होने इडिर में आत्मसमर्पण किया किन्तु रियासती शासक तो जले भुने बैठे थे । उदयपुर में उनको सन् १६२९ से १६३६ तक जेल में रखा और उसके बाद भी उन्हे नजरबन्द रखा गया । १६३८ का प्रजा मण्डल आदोलन तथा १६४२ के भारत छोडो आन्दोलन में उनको जेल भेजा गया और १६४५ तक उनको नजरवन्द रखा गया । १६४७ में भारत के स्वतत्र होने तक वे पुलिस के घेरे में रखे जाते थे, न वे कही आ जा सकते थे और न कोई कार्य ही जीवनयापन के लिये कर सकते थे । आजादी के सग्राम का यह अनन्य योद्धा ५ दिसम्बर, १६६३ को अपनी इहलीला समाप्त कर गया ।

जोधपुर रियासत के श्री आनन्दराज सुराणा का नाम प्रान्त में स्वतन्त्रता सग्राम में भाग लेने वालो में अग्रगण्य माना जाता रहेगा । उनको स्वतत्रता के लिये सतत् सघर्परत रहने की सीख अपने पिता श्री चान्दमल सुराणा से विरासत में मिली थी । उनके राष्ट्रीय विचारो को वीकानेर के महाराजा गगासिंह सहन नही कर सके और उन्हे न केवल नौकरी से ही निकाल दिया गया, अपितु वीकानेर से निर्वासित भी कर दिया गया । जयनारानए व्यास तथा भवरलाल सर्राफ के सहयोग से एक राजनीतिक सम्मेलन का वे आयोजन कर रहे थे । जोधपुर का सामन्ती शासन उसे वर्दाश्त नही कर पाया और इन नेताओ को वाडमेर, सिवाना और नागौर के किलो में ठूस दिया । तीनो को राजद्रोह के अपराध में पाच-पाच वर्ष की कठोर श्रमसहित सजा ठोक दी गई । अन्तत सन् १६३१ में गाधी-इरविन समझौते से उनको काल कोठरी से मुक्ति मिली । देशी राज्य लोक परिषद्, काग्रेस और १६४२ के भारत छोडो आन्दोलन में उन्होने सक्रिय भाग लिया । आनन्दराज जी के सवधियो को भी पुलिस ने परेशान करने में कोई कसर नही रखी । आनन्दराज जी ने पुलिस के चगुल से वच कर गाजियावाद, अजमेर, उदयपुर, जयपुर, हावडा आदि अनेक स्थानो पर छिप कर फरारी का समय विताया । सन् १६४५ में जब उनका वारण्ट रद्द हो गया, वे दिल्ली लौटे और काग्रेस में काम करने लगे । १६५५ से ५७ तक वे दिल्ली में काग्रेसी विधायक रहे ।

जयपुर के श्री कर्पूरचद पाटनी का नाम स्वतन्त्रता सग्राम के सेनानियो मे सदैव श्रद्धा और

सम्मान के साथ लिया जाता रहेगा। प० अर्जुनलाल सेठी की छत्रछाया मे शिक्षित-दीक्षित श्री पाटनी राजस्थान-मध्यप्रदेश की खादी सस्थाओ के साथ ही साथ हरिजन-सेवा और पत्रकारिता के क्षेत्र मे भी कार्य करते रहे। जयपुर राज्य के अन्नकर विरोधी आन्दोलन के वे प्राण थे। जयपुर मे प्रजामडल की स्थापना मे उनका बहुमूल्य योगदान रहा। जयपुर में सत्याग्रह करने पर उनको ६ माह की सजा दी गई। प० हीरालाल शास्त्री की आत्म कथा 'प्रत्यक्ष जीवन शास्त्र' के अनुसार पाटनी जी ने स्वय को सदैव पद से दूर रखा। उन्होने जयपुर राज्य की लोकप्रिय सरकार मे मन्त्री पद लेने से इन्कार कर दिया था।

माडलगढ (भीलवाडा) जिले मे जाये जन्में श्री शोभालाल गुप्त, श्री विजयसिंह पथिक के बिजौलिया आन्दोलन से बाल्यकाल से ही प्रभावित हुए। अजमेर मे विद्यार्थीकाल से उन्होने असहयोग आन्दोलन को अपनाया। राजस्थान सेवा सघ के वे आजीवन सदस्य बने और 'तरुण राजस्थान' के सपादक के रूप मे १९२४ मे राजद्रोह के अपराधी बनकर एक वर्ष की सश्रम सजा काटी। महात्मा गाधी के साबरमती आश्रम मे कुछ दिन रहने के बाद अजमेर मे अग्रेजी शासन के विरुद्ध भाषण देने पर एक वर्ष की सजा उनको दी गई। रचनात्मक कार्यो मे लगने के बाद सन् १९४० में वे 'दैनिक हिन्दुस्तान' के सम्पादकीय विभाग में आ गये। अगस्त १९४२ मे उनको गिरफ्तार कर दो वर्ष के लिये जेल भेजा गया।

मेवाड प्रजामण्डल के प्रथम अध्यक्ष (मास्टर) बलवतसिंह मेहता प्रताप सभा, भारत सेवक समाज आदि से भी सम्बद्ध रहे हैं। लाहौर काग्रेस (१९२९), कराची काग्रेस (१९३०) में प्रतिनिधि बनकर गये। श्री मेहता अजमेर मे राजनीतिक गतिविधियो में भाग लेते रहे। नौजवान भारत सभा, भारत अनुशीलन समिति आदि क्रातिकारी सगठनो के सक्रिय सदस्य श्री मेहत्ता ने मेवाड में सन् १९३२ में कर विरोधी आन्दोलन का नेतृत्व किया। मेवाड प्रजामडल के आदोलनो, १९४२ के भारत छोडो आन्दोलन आदि में बार–बार गिरफ्तार हुए और आदिवासियो के आन्दोलनो में उन्होने सक्रिय भाग लिया। स्वतत्रता के पश्चात् उद्योग मन्त्री पद पर भी श्री मेहता रहे है।

राजस्थान के रचनात्मक राजनीतिक कार्यकर्ताओ में श्री भूरेलाल बया का नाम उल्लेखनीय है। साइमन कमीशन के विरोध में उठ खडे हुए श्री बया ने बम्बई में नमक सत्याग्रह में भाग लिया। आर्थर रोड तथा यरवदा जेल में सजा काटी। बम्बई काग्रेस के सक्रिय कार्यकर्ता, 'सदेश' मासिक के सम्पादक श्री बया वर्षों गाधीजी के सानिध्य में रहे और उसके बाद मेवाड प्रजामडल के आन्दोलनो में भागीदार बने। आदिवासियो और किसानो के सत्याग्रहो में भाग लिया और आजादी के पश्चात् श्री माणिक्यलाल वर्मा तथा श्री हीरालाल शास्त्री के साथी मत्री बने। खादी ग्रामोद्योगो मे विशेष रुचि के कारण रचनात्मक सस्थाओ से अब भी सम्बद्ध हैं।

स्वतत्रता सग्राम में अपना योगदान देने वालो में श्री मोतीलाल तेजावत के पुत्र श्री मोहनलाल तेजावत को नही भुलाया जा सकता। भारत छोडो आन्दोलन में उन्हे ६ महिने की सजा दी गई और वे सतत् मेवाड प्रजामडल से सम्बद्ध रहे। ऐसे ही दूसरे सेनानी हैं श्री रोशनलाल बोर्दिया। १९३२ के कर विरोधी आन्दोलन और १९३८ के मेवाड प्रजामण्डल के आन्दोलनो में वे गिरफ्तार कर लिये गये। १९४२ के भारत छोडो आन्दोलन में भी उन्होने भाग लिया और १९४८ में उत्तरदायी

शासन की माग के आन्दोलन में पुलिस की गोली से आहत हुए। उदयपुर के ही श्री चिमनलाल बोर्दिया भारत छोडो आन्दोलन और नमक सत्याग्रह, विदेशी वस्त्रो की होली आदि में गिरफ्तार किये गये और उदयपुर में कर विरोधी प्रदर्शन में भाग लिया। कानोड के श्री उदय जैन मेवाड प्रजामडल के सक्रिय कार्यकर्ता के रूप मे सामन्ती व्यवस्था से लोहा लेने के अतिरिक्त 'भारत छोडो आन्दोलन' में गिरफ्तार किये गये और उदयपुर में उन्होने जेल काटी। मेवाड प्रजामडल के ही एक अन्य कार्यकर्ता श्री हीरालाल कोठारी को १९४२ में गाधी जयती समारोह आयोजित करने के अपराध मे ६ माह के लिये नजरवन्द किया गया। नाथद्वारा के श्री कज्जूलाल पोरवाल को भारत रक्षा कानून में ६ माह के लिये नजरबन्द रखा गया। उनके ही एक साथी फूलचन्द पोरवाल को भी उतने ही समय तक नजरवन्द रखा गया। 'भारत छोडो आन्दोलन' में ही श्री रतनलाल कर्णावट को उदयपुर तथा इसवाल जेल में १३ माह तक नजरवन्द रखा गया। छोटी सादडी के श्री पूनमचन्द नाहर १९३८ व १९४२ के आन्दोलनो में जेल गये और सामन्ती अत्याचारो का विरोध करते रहे। श्री सूर्यभानु पोरवाल भी १९४२ के आन्दोलन में नजरवन्द रहे।

भीलवाडा के श्री उमरावसिंह ढावरिया आजादी से पहले मेवाड प्रजामडल के आन्दोलनो से सम्बद्ध रहे। अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद् के सदस्य श्री ढावरिया १९४२ के आन्दोलन मे नजरवन्द रहे। आजादी के बाद वे समाजवादी दल मे सम्मिलित हुए और विधान सभा के सक्रिय सदस्य रहे। आजादी के वाद दर्जनो वार वे जेल मे गये। कानोड के श्री तख्तसिंह बावेल, सुखलाल उदावत, माधवलाल नन्दावत, अम्बालाल नन्दावत, भवरलाल डूगरवाल, चान्दमल भानावत १९४२ के भारत छोडो आन्दोलन तथा मेवाड प्रजामण्डल के कार्यकलापो से सम्बद्ध रहे हैं।

कुशलगढ के श्री डाडमचन्द दोपी ने भारत छोडो आन्दोलन मे भाग लिया और दोहद के जिलाधीश भवन पर तिरगा राष्ट्रीय ध्वज फहराकर आठ महिने की साबरमती मे सजा भोगी। श्री झब्बा लाल कावडिया, श्री उच्छबलाल मेहता, भैरूलाल तलेसरा, खेमराज श्रीमाल, कन्हैयालाल जैन, कन्हैयालाल मेहता, बापूलाल लखावत, कातिलाल शाह, पन्नालाल शाह, शातिलाल सेठ, गुमानमल लखावत, सुजानमल शाह, किशनलाल दोपी, शोभागमल दोपी आदि प्रजामण्डल के प्रमुख कार्यकर्ता थे।

कोटा के श्री नाथूलाल जैन विद्यार्थी काल से ही आजादी की लडाई मे भाग लेते रहे हैं। काग्रेस मे भाग लेने के कारण उनको होल्कर कालेज और इन्दौर राज्य से निर्वासित कर दिया गया। अगस्त आन्दोलन मे उसका सचालन किया। भूमिगत साथियो को सहायता देना, प्रचार बुलेटिन निकालना आदि उनके जिम्मे था। १९४२ मे अजमेर व कोटा मे नजरवन्द रखे गये। 'दीन वन्धु' पत्र का सचालन करते हुए बीकानेर व कोटा के तत्कालीन शासको से निरन्तर लोहा लिया और कई वार जमानतें दी। प्रजामडल और काग्रेस से निरन्तर सबद्ध रहे। श्री जैन आजकल राजस्थान लोक सेवा आयोग के सदस्य हैं।

कोटा के ही श्री बागमल बाठिया असहयोग आन्दोलन तथा उत्तरदायी शासन के लिये आदोलन करने वालो मे सक्रिय थे। उन्होंने कोटा मे डेढ माह से अधिक की जेल भुगती। कोटा के ही श्री मोतीलाल जैन, कोटा राज्य प्रजामडल के स्तम्भ रहे हैं। किसानो पर अत्याचार के विरुद्ध

उन्होंने आन्दोलनो को नेतृत्व दिया और उन्हे सगठित किया । अगस्त क्रांति मे उन्हे २ माह २४ दिन नजरबन्द रखा गया । एक सभा की अध्यक्षता करने पर उन्हे कोटा मे गिरफ्तार किया गया । वे कोटा राज्य प्रजामडल के प्रधानमन्त्री और अध्यक्ष रहे । कोटा के श्री हीरालाल जैन ने सरकारी नौकरी छोडकर देश सेवा का व्रत लिया और प्रजामडल से जुड गये । १९४२ मे उन्होंने कोटा मे शासन ठप्प करने वाले आन्दोलन मे भाग लिया । १९४६ मे काग्रेस समाजवादी दल की स्थापना की और उग्रपथी 'जयहिन्द' साप्ताहिक निकाला । गोआ आन्दोलन मे १९५५ मे उन्होने भाग लिया। सम्प्रति समाजवादी दल से सबद्ध है ।

जयपुर के स्वतन्त्रता सग्राम मे भाग लेने वालो में श्री गुलाबचन्द कासलीवाल, डॉ० राजमल कासलीवाल (आजाद हिन्द फौज) जस्टिस दौलतमल भडारी, बशीलाल लुहाडिया (एडवोकेट), मुक्तिलाल मोदी, रूपचन्द मोगानी, विजयचन्द जैन आदि के नाम उल्लेखनीय हैं । श्री सिद्धराज ढड्ढा भारत छोडो आन्दोलन मे दो वर्ष बनारस जेल में रहे । राजस्थान मन्त्रिमण्डल के सदस्य रहे और वर्तमान मे सव सेवा सघ से सम्बद्ध हैं ।

श्री जवाहरलाल जैन, श्री पूर्णचन्द्र जैन, श्री अरविन्दकुमार सोनी, उमरावमल आजाद, कपूरचन्द छावडा, गेन्दीलाल छावडा दीपचन्द बक्शी, दूनीचन्द जैन (बहावलपुर), नथमल लोढा, भवरलाल बोथरा, भवरलाल सामोदिया, मिश्रीलाल जैन, मिलापचन्द जैन, राजरूप टाक, रतनचन्द काष्टिया, बसन्तीलाल बगीचीवाला, ज्ञानप्रकाशकाला, कपूरचन्द पाटनी (जोबनेर), कैलाशचन्द बाकीवाला, फूलचन्द जैन (विधायक) भवरलाल अजमेरा आदि जयपुर राज्य प्रजामण्डल, काग्रेस आदि के आन्दोलनो में भागीदार बने और समय-समय पर कृष्णमन्दिर की यातनायें भी सही । श्री रामचन्द्र कासलीवाल, सोहनलाल सोगाणी, सुभद्रकुमार पाटनी आदि ने भी इन आन्दोलनो में सक्रिय भाग लिया ।

जोधपुर मे श्री अभयमल जैन ने आजादी की अलख जगाई और श्री जयनारायण व्यास के साथ मिल कर राजनीतिक चेतना को प्रज्वलित किया । अनेक आन्दोलनो के परिणाम स्वरूप वे कई बार जेल गये । मारवाड लोक परिषद् के सस्थापको में से एक श्री जैन ने 'भारत छोडो आन्दोलन' में भाग लेकर दो वर्ष की सजा काटी । श्री मानमल जैन भी उनके ही साथी थे । उन्होने १९३२ में ब्यावर सविनय अवज्ञा आन्दोलन के डिक्टेटर के रूप में भाग लिया और जेल गये । देशी राज्य प्रजा परिषद्, मारवाड लोक परिषद्, प्रजामण्डल आदि सभी सस्थाओ से सबद्ध श्री जैन ने उनके सभी आन्दोलनो में भाग लिया । श्री उगमराज मुहणोत क्रातिकारियो से सबद्ध रहे और छात्रावस्था में ही एक बम केस में उन्हे पकड कर डेढ वर्ष की सजा दी गई । (अभी वे जन सम्पर्क अधिकारी, बाडमेर हैं ।)

लाडनू के श्री चम्पालाल फूलफगर, बिलाडा के श्री पुखराज, फलौदी के श्री सम्पतलाल सिंघी, लूकड, सरदारशहर के श्री नेमीचन्द आचलिया, सिरोही के श्री धमचन्द सुराणा, श्री दुलीचद सिंघी, श्री रूपराज सिंघी, श्री शोभाराम सिंघी, श्री हजारीमल जैन आदि अनेक वे लोग हैं, जिन्होने सामन्ती अत्याचारो का विरोध किया, राष्ट्रीय आन्दोलनो में भाग लिया, जेल गये और जिनका परिवार सदैव कष्ट पाता रहा ।

पाली जिले में सादडी के निवासी श्री फूलचन्द बाफना, कोटा के श्री रिखबचन्द धाडीवाल

आदि ने स्वतन्त्रता सगाम को ही अपना जीवन समर्पित किया और लोक परिषद्, प्रजामडल किवा काग्रेस के आन्दोलनो मे भाग लेकर जेल जाते रहे। रचनात्मक कार्यक्रम में विश्वासी श्री बाफना, श्री हीरालाल शास्त्री के मन्त्रिमडल में स्वायत शासन मत्री रहे और श्री घाडीवाल भी बाद में मत्री रहे। भीलवाडा के श्री मनोहरसिंह मेहता, अजमेर के श्री जीतमल लूणिया, लडनू के श्री मानमल जैन आजादी की लडाई के प्रमुख सिपाही रहे हैं।

अन्य जिलो के प्रमुख स्वतन्त्रता-सग्राम के सेनानी इस प्रकार हैं :—

भीलवाडा—रोशनलाल चोरडिया, अजमेर—श्री मूलचन्द जैन, श्री टीकमचन्द जैन, श्री कालूराम लोढा, श्री वृद्धिचन्द हेडा, हरदयाल मिश्रीलाल जैन, अमोलकचन्द सुराणा, जैन (किशनगढ), वीरसिंह मेहता, मोतीलाल जैन। उदयपुर–हुक्मराज मेहता। भरतपुर–श्री रामचद जैन (कुम्हेर), श्री रामस्वरूप जैन (डीग), नेमीचद जैन। जयपुर—श्री कपूरचन्द जैन, दौलतमल जैन, श्री सरदारमल गोलेछा, श्री सोहनमल लोढा, श्री सुभापचन्द जैन। पाली—श्री तेजराज सिंघवी। सिरोही—श्री भारतमल वोवावत, श्री धनराज सिंघी। कोटा—श्री दौलतमल जैन, सोभागचन्द्र, देवीचन्द। जोधपुर—श्री सुगनचन्द भडारी, श्री ऋषभराज जैन, इन्द्रमल जैन, पारसमल खिवसरा, करोडीमल मेहता, सम्पतमल लूकड, पी० एम० लूकड, इन्द्रमल जैन, रिखवराज कर्णावट। चूरू—वद्रोप्रसाद सरावगी। चितौडगढ—श्री फतहलाल चडालिया, श्री भीमा राज धाडोलिया आदि।[1]

वर्तमान निर्वाचित प्रतिनिधि :—राजस्थान से लोक सभा मे श्री मूलचन्द डागा, श्री अमृत नाहटा तथा श्री नरेन्द्र कुमारी साघी वर्तमान मे सदस्य है। राजस्थान मन्त्रिमण्डल मे श्री चन्दनमल बैद (वित्तमन्त्री) जैन समाज के प्रमुख अग है। वर्तमान विधायको मे श्री यशवंतसिंह नाहर, श्री शातिलाल कोठारी, श्री वृद्धिचन्द जैन, श्री फूलचन्द जैन, श्री मोहनराज जैन, श्री गुमानमल लोढा, श्री प्रद्युम्न सिंह, श्री पुखराज कालानी, आदि के नाम उल्लेखनीय है।

पिछली विधान सभाओ एव लोक सभा मे श्री माणकचन्द सुराणा, श्री उमरावसिंह ढाबरिया, श्री फूलचन्द वाफणा, श्री प्रेमसिंह सिघवी, श्री रिखवचन्द धाडीवाल, श्री जसवन्तराज मेहता, श्री लक्ष्मीमल्ल भडारी, श्री वलवन्तसिंह मेहता, श्री प्रतापसिंह आदि के नाम सदैव स्मरण किये जाते रहेगे।

प्रशासनिक एव अन्य अधिकारी . स्वतन्त्रता के बाद राजस्थान के प्रशासको मे श्री भगवतसिंह मेहता का नाम सदैव आदर से लिया जाता रहेगा। डॉ० मोहनसिंह मेहता, श्री सत्यप्रसन्नसिंह भण्डारी, श्री गोकुललाल मेहता, श्री जगन्नाथसिंह मेहता, श्री नारायणदास मेहता, श्री देवेन्द्रराज मेहता, श्री रणजीतसिंह कूमट, श्री अनिल वोरदिया, श्रीमती प्रोतिमा वोरदिया, श्री मीठालाल मेहता, श्री जसवतसिंह सिघवी, श्री पी० एन० भडारी, श्री वावूलाल पानगडिया, श्री हिम्मतसिंह गलूडिया,

---

१ इस लेख की सामग्री (स्व०) श्री सुमनेश जोशी के ग्रन्थ 'राजस्थान में स्वतन्त्रता सग्राम के सेनानी', जयपुर जैन डायरेक्ट्री, राजस्थान सरकार द्वारा प्रसारित सूचना आदि से ली गई है। लेखक उनके प्रति आभार प्रकट करता है।

श्री हिम्मतसिंह सरुपरया, श्री कन्हैयालाल कोचर, श्री अर्जुनराज भंडारी, श्री पदमचन्द सिंघी, श्री प्रवीणचन्द जैन, श्री सम्पतराज सिंघवी, श्री सवाईसिंह सिंघवी, श्री वी० सी० जैन, श्री हरकराज भंडारी, श्री मनोहरसिंह मोगरा, श्री हीरालाल सिंघवी, श्री चन्द्रराज सिंघवी, श्री गुलाबसिंह दरड़ा, श्री नानालाल बया, श्री जोरावरसिंह पोखरना आदि अनेक जैन समाज के व्यक्तियों ने अपनी छाप प्रशासक के रूप में छोड़ी है। न्यायिक सेवाओं में उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के रूप में सर्वश्री इन्द्रनाथ मोदी, श्री दौलतमल भण्डारी, श्री सोहननाथ मोदी, श्री लहरसिंह मेहता, श्री चांदमल लोढा आदि की सेवायें विशेष उल्लेखनीय है। पुलिस विभाग में उदयपुर रेंज के उपमहानिरीक्षक श्री ज्ञानचन्द सिंघवी ने पुलिस तथा सीमा सुरक्षा-दल में अपनी उल्लेखनीय सेवाओं का परिचय दिया है। श्री कनकमल मेहता, डॉ० महेन्द्रकुमार दोषी, श्री दुर्गाप्रसाद जैन, श्री साहबलाल अजमेरा, श्री कन्हैयालाल मेहता, श्री हिम्मतसिंह मेहता, श्री विज्ञान भारिल्ल आदि अनेक अधिकारियों ने भी अपने-अपने विभागों में अपनी कार्यदक्षता व क्षमता का निर्णायक उपयोग किया है। भारतीय विदेश सेवा में श्री जगत मेहता का नाम सदैव सम्मान से लिया जाता रहेगा।

४

उद्योग और वाणिज्य

४२ राजस्थान की आर्थिक समृद्धि में जैनियों का योगदान

●

श्री बलवन्तसिंह मेहता

पृष्ठभूमि :

जैन धर्म के आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव भारत मे सर्व प्रथम असि, मसि, कृषि और शिल्प जैसे लौकिक कर्मों के जनक माने जाते है और उन्ही के पुत्र भरत के नाम पर हमारे देश का नाम भारत पडा तथा भरत ने ही सर्व प्रथम राज्य, दण्ड व विवाह व्यवस्था का आयोजन किया।

असि कर्मकर्ता क्षत्रिय, मसि कर्मकर्ता ब्राह्मण और कृषि कार्यकर्ता वैश्य कहलाये तथा इन तीनो ही कर्मों मे जिनकी स्वाभाविक प्रवृति और गति नही थी, वे कर्मकार शूद्र कहलाये। आदि तीर्थंकर ने इन चारो ही वर्णों को समान माना और इनमे ऊच-नीच का कोई भेद नही रखा, जैसा कि भगवान महावीर ने भी कहा है—

कम्मुणा बम्भणो होई, कम्मुणा होई खत्तिओ।
वइसो कम्मुणा होइ, सुद्दो होइ कम्मुणा॥

आज जो ससार मे धन कमाने की होडाहोड चल रही है और व्याप्त वेकारी फैल रही है तथा कर्म मे अकुशलता वढ रही है उसका एक मात्र उपाय वर्ण व्यवस्था और आश्रम पद्धति है। जो भारतीय आर्यों की बहुत बडी देन है। जैन धर्म ने जाति पाति के भेदभाव व ऊच-नीच की भावना को दूर कर कर्म द्वारा उसके शुद्ध स्वरूप मे उसे प्रतिष्ठित किया। इसी तरह आश्रम व्यवस्था मे भी क्रान्तिकारी परिवर्तन कर सवके लिये सव ही अवस्थाओ मे उसके द्वार खोल दिये और स्त्रियो तथा शूद्रो तक के लिए कोई अपवाद नही रखा।

भारत की आर्थिक समृद्धि मे आरम्भ से ही जैन जगत की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका रही तथा वर्णों के जातीय स्वरूप ग्रहण करने पर भी जैन समाज ने व्यापार, वाणिज्य, कृषि और पशुपालन आदि सभी अगो मे सर्वांगीण वृद्धि की है। देश की आर्थिक स्थिति और समृद्धि के प्रमुख स्तम्भ जैन, देश के हर भाग के आर्थिक क्षेत्रो के सयोजक व सचालक रहे हैं।

कृषि।

आरम्भ से ही कृषि जैनियो का उद्योग रहा है। कृषि की विभिन्न उपजो का सुदूर क्षेत्रो तक व्यापक रूप से वे व्यापार-वाणिज्य करते थे। ऐसे कृषि सम्पन्न जैनियो मे वाणिज्य ग्राम के आनन्द

गृहपति की धन-सम्पत्ति मे पाच सौ हलो की गिनती की गई है। एक हल के द्वारा सौ निवर्त्तन भूमि जोती जा सकती थी। 'उपासक दशाग' के अनुसार एक निवर्त्तन चालीस हजार वर्ग हाथ का माना जाता था। इससे स्पष्ट है कि गृहपति-श्रावक आरम्भ से ही कृषि भूमि के स्वामी रहे हैं। पर कृषि कर्म को फोडी कर्म मानने से कृषि मे भू-छेदन की हिंसा के कारण वैश्य-गृहपति श्रावक स्वय कृषि नही करते, किन्तु अपने खेतो मे किसानो से खेती करवाते थे। आज भी राजस्थान के गावो मे विरले ही ऐसे जैनी होगे जिनके घरू खेती न हो। शास्त्रो मे कई ऐसे गृहपतियो का वर्णन मिलता है जिनके पास हजार-हजार हल होने का उल्लेख पाया जाता है। जैन शास्त्रो के अनुसार वैश्य अन्न का विक्रय करते थे और किसान भी उनके माध्यम से अन्न का विक्रय करवाते थे। कृषि से सम्वद्ध होने के कई जातीय सम्बोधन आज भी जैन समाज मे विद्यमान है। वैश्यो द्वारा कृषि की सूचक अभी भी जैन समाज की 'खेतपालिया' जाति है। धान्यो को कोटि कुम्भो मे भर कर कोठार मे सञ्चित करने वाले को 'नयतिक' कहा जाता था जो आज भी 'न्याती' के रूप मे सम्वोधित है। इसी प्रकार अन्न के भण्डारो के स्वामी को 'भण्डशाली',, 'सचेती' और 'कोठारी' कहा जाता था जो आज भी 'भसाली', 'सचेती' और 'कोठारी' के रूप मे सम्वोधित हैं।

गो-रक्षा और गो-पालन :

कृषि के साथ गोरक्षा और गोपालन भी भारतीय अर्थ-सयोजन की आधारशिला तथा कृषि और व्यापार के पूरक रहे हैं। आरम्भ से ही गोरक्षा एव गोपालन का दायित्व वैश्य कर्तव्य के अन्तर्गत गिना गया है। वैश्य वर्ण और उसके कर्म के लिये गोधन की अनिवार्य उपादेयता थी। बैलो के विना न कृषि हो सकती है न प्राचीन भारत मे व्यापारिक यातायात सम्भव था, क्योकि उस समय न तो व्यवस्थित सुपथ थे, न व्यापक यातायात के साधन। अत वैश्य वर्ण को अपना स्थानातर व्यापार करने के लिए बैलो की सहायता लेनी पडती थी। गोधन से उन्हें कृषि के लिए प्रचुर मात्रा मे श्रेष्ठ खाद भी सुलभ हो जाता था तथा गायो के कारण उनका घृत व्यापार भी चरम सीमा पर था। इसीलिये वैश्यो के पास सहस्रो की सख्या मे गोधन होता था जिसे 'गोकुल' कहा जाता था। जैन-साहित्य और प्राचीन ग्र थो मे गृहपति-श्रावको के पास इस प्रकार के 'गोकुल' होने का उल्लेख मिलता है। राष्ट्र पिता गाधीजी ने गोरक्षा को हिन्दू धर्म का बहिर्मुख कहा है और वर्तमान मे इसकी उपेक्षा पर गम्भीर चिन्ता व्यक्त की थी।

व्यापार-वाणिज्य

व्यापार-वाणिज्य वैश्य वर्ण का मुख्य कार्य था। जैसे वैदिक सभ्यता मे व्यक्ति की पहचान कर्म से होती थी वैसे ही वर्णों के जातीय स्वरूप ग्रहण करने पर विशेप कार्य-व्यापार के कारण कई वैश्य जातियो का जन्म हुआ, जो व्यवस्था और कार्य बदल जाने पर भी आज भी उन्ही प्राचीन नामो से सम्वोधित है।

'दुश्य' सस्कृत शब्द है जिसका प्रयोग महर्षि पाणिनि ने अपने व्याकरण मे वस्त्र के लिये किया है। यही शब्द प्राकृत मे 'दुसअ' हुआ और इस वस्त्र का व्यापार करने वाले 'दोपी' कहलाते थे, जो आज भी गुजरात, राजस्थान और मध्य प्रदेश मे बडी सख्या मे पाये जाये जाते हैं। कपास की कृपि के घर गुजरात मे कपास का व्यापार करने वाले वैश्यो को 'कपासि' कहा जाता था, जो आज भी वहा वहुतायत से पाये जाते हैं। इसी प्रकार कुम्मट वृक्ष के गोद का व्यापार करने वाले व्यापारी

प्राचीन काल मे कूम्मट कहलाते थे, जो आज भी जैन समाज में एक पृथक गोत्र रूप मे उपस्थित हैं। हिरन-हिरण्य का अर्थ अनगढ सोना है। इस तरह के सोने का व्यापार करने वाले 'हिरण' कहलाते थे। ये लोग सरकार का कर भी वसूल करते थे। यह जाति अभी भी जैन समाज मे है। सोने के आभूपणो का व्यापार करने वाले 'सोनी' कहलाते थे, जो आज भी हैं। सोने के 'कबड्डिया', 'फदिया', 'गदैया' नामक सिक्को के व्यापारी कावडिया और फिरौदिया, गदैया कहलाते थे तथा सभी प्रकार के सिक्को के व्यापारियो को 'नानावटी' कहा जाता था। ये सभी गौत्र जैन समाज मे अभी भी ज्यो के त्यो हैं। इसी प्रकार घी बेचने वाले लोगो को घीया कहा जाता था। आज भी इस नाम की जाति जैन समाज मे है। नमक के व्यापारी 'लूणिया' और 'हिंग' के हिंगड कहलाते थे, जो आज भी हैं।

सस्कृत मे जहाज को बोहित्थ' कहा गया है। जैनी व्यापारी जहाजो के द्वारा विदेशो मे भी व्यापार करते थे। जहाज के स्वामी एव सचालक को 'बोथरा' और 'बोहितरा' कहा जाता था, ये जातियाँ जैन समाज मे अभी भी हैं। इसी प्रकार 'बोहरा' शब्द व्योहार का विकृत-प्राकृत शब्द है। शास्त्रो मे व्यवहार शब्द मुकदमें के तथा व्योहारी शब्द न्यायकर्ता के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। कालातर में यही शब्द लेन-देन का व्यापार करने वालो के लिए प्रयुक्त होने लगा। यह 'बोहरा' जाति भी जैन समाज में अभी भी है। इसी प्रकार तलेसरा, गाधी व पटुआ जातिया भी व्यापार विशेप के कारण बनी हुई हैं। व्यापार में विशेप सहयोगी कार्य से भी जातिया बनी है। जैसे हिरण की भाति वस्तुओ की गिनती कर, कर का निर्धारण करने वाले लोग हिरण्य गणक अथवा गन्ना कहलाते थे, जो आज भी गन्ना जाति के रूप में है। ऐसे ही हीरे-जवाहरात का व्यापार करने वाले या इस परखपूर्ण व्यापार में परख करने वाले लोग 'पारख' कहलाते थे, जो आज भी इसी नाम से अभिहित हैं। बोहरा जाति जैन समाज के अतिरिक्त ब्राह्मण तथा मुसलमानो में व्यापारी वर्ग मानी जाती है और गाधी जाति भी जैन समाज के अतिरिक्त पारसियो में व्यापारी वर्ग के अन्तर्गत है।

कुछ जैन जातियो का जन्म क्षेत्रीय सम्बोधन के आधार पर भी हुआ है जो तब से अब तक उसी नाम से सम्बोधित है। पाणिनि ने अपने वैयाकरण में 'रकू' जनपद का उल्लेख किया है। यहा 'रकू' नाम की बकरियो के लम्बे वालो से बनने वाले कम्बल राकव कहलाते थे और कम्बलो के बेचने वाले व्यापारी 'राका' कहलाते थे। यह गोत्र आज भी जैन जाति में विद्यमान है। इसी प्रकार गोधेय, शिवी, मारभू, टाक, अच्छा, बूलीय आदि जनपदो एव गणराज्यो के आधार पर गोधा, शेवा, मारू, टाक, आच्छा, बोलिया आदि गोत्रो का उद्गम हुआ। क्षेत्रीय आधार के अन्य परवर्ती गोत्र हैं— सिरोया, खिवसरा, चोरडिया, डूगरपुरिया, सरूपरिया, बोर्दिया, जालोरी, डागी, पुगलिया, नागौरी, ओसवाल, चडालिया, जावलिया, नृसिहपुरा, पोखरना, श्रीमाल, भिन्नमाल, बघेरवाल, खण्डेलवाल। सिंध क्षेत्र से आई वैश्य व्यापारिक जातियो में वियाणी, सोमाणी, इन्दाणी, कडवाणी, ललवानी, चोखानी, वीराणी आदि हैं।

पदो के अनुसार बनी वैश्य जातियो में नाहटा, ठाकुर, तातेड, चौधरी, मेहता, नवलखा, टाटिया, सिंघवी, पगारिया (वेतन चुकाने वाला), गन्ना आदि है।

कार्य के आधार पर बनी एक प्रमुख जाति 'पटुवा' है। ये लोग कपडो पर जरी का पक्का काम या कसीदे का काम करने के कारण पटवा कहलाते थे। प्राचीन काल में व्यापार का प्रमुख केन्द्र जैसलमेर इन पटवा लोगो का उद्गम् स्थल है। ये पटवा लोग जैन समाज की बापना गोत्र के अन्तर्गत आज भी हैं।

वैश्य वर्ण की इन सभी व्यापारकर्मी जाति-गोत्रो के अतिरिक्त जैन धर्म ने कुम्हार, लुहार, और बढ़ई को आर्य जातियो में समादृत किया है तथा इन जातियो के घरो में जैन साधुओ के ठहरने और आहार लेने को उचित माना गया है। वैशाली की कम्मार शाला (लुहार की दुकान) में भगवान महावीर ठहरे थे। सद्दालपुत्र नामक पोलासपुर के कुम्भकार के यहा जैन श्रमणो के ठहरने का उल्लेख है। यह सद्दालपुत्र जैन धर्म का अनुयायी था तथा इसकी ५०० दुकानें थी जिन पर कई नौकर-चाकर काम करते थे।

प्रमुख श्रेष्ठि :

प्राचीन काल मे राजस्थान मे चित्तौड, आयड, मज्झमिका और वसन्तपुर देश के प्रसिद्ध व्यापार-केन्द्र थे। यहा के व्यापारी न केवल भारत मे वरन् आयात-निर्यात द्वारा देश-विदेश मे व्यापार करते थे। पूर्व मे चीन, वर्मा, श्याम तथा पश्चिम मे अरब की खाडी व यूनान तक व्यापार होता था। राजस्थान मे विदेशी आयात का माल भृगुकच्छ (भडौच) से आता था।

दोषी गोत्र के चित्तौड के वैश्य व्यापारी तोलाशाह का व्यापार बगाल व चीन तक होता था। चीन मे तोलाशाह की पेडिया थी। भडौच से तोलाशाह के आयातित माल को बन्जारे बैलो की बालद से चित्तौड मे लाते थे। शत्रु जय का अ तिम उद्धार करने वाला कर्माशाह इसी तोलाशाह का पुत्र था। यह अपने पिता के ही समान बहुत बडा व्यापारी होने के साथ-साथ महाराणा रत्नसिंह का अमात्य भी था। इसी कर्माशाह ने गुजरात के बादशाह बहादुरशाह को युवराज अवस्था मे विपत्ति के समय १ लाख रुपया नकद और १ लाख रुपयो का सूती व रेशमी कपडा दिया था। इसी के उपलक्ष्य मे जब बहादुरशाह गुजरात का बादशाह बना, तब उसने कर्माशाह को शत्रुञ्जय का जीर्णोद्धार करने और भविष्य मे अपने द्वारा कोई जैन मन्दिर नही तोडने का वचन दिया।

इसी प्रकार जैसलमेर के प्रसिद्ध सेठ थिरूशाह भसाली ने अतुल राशि व्यय करके शत्रुञ्जय का प्रथम उद्धार करवाया था। जैसलमेर के भसाली बहुत समृद्ध सेठ और बडे-बडे भण्डारो के स्वामी होते थे तथा इनका व्यापार ईरान और अफगानिस्तान तक होता था। ये सिंध नदी से जहाजो के द्वारा भी व्यापार करते थे।

थिरूशाह के ही समान जैसलमेर के राका तथा पटवा जाति के सेठो ने अतुल धन सम्पत्ति व्यय करके वहा ऐसे अद्भुत महल तथा मन्दिर बनवाये जिनका शिल्प और कोरनी (खुदाई) का कार्य भारतवर्ष मे अनुपम माना जाता है।

भारत का प्रथम जगतसेठ राजस्थान की ही देन था। नागौर निवासी इस सेठ का उडीसा, बगाल और बिहार के अर्थतन्त्र पर पूर्ण प्रभुत्व था। देश के पूर्वी राज्यो मे इसकी सैकडो दुकानें व पेडिया थी। यह सेठ बादशाह फर्रूखशियार और बगाल के नवाब सिराजुद्दोला की भी समय-समय पर विपुल आर्थिक सहायता करता था। यह अपने समय मे विश्व का प्रमुख सामुद्रिक व्यापारी था।

इस जगत् सेठ के बारे में एक बहुत रोचक सत्य-कथा है। एक बार विदेशो में माल निर्यात करके इसके व्यापारिक जहाज भारत में खाली लौट रहे थे। तभी समुद्र में तूफान उठने के लक्षण दिखायी दिये और विकराल लहरें जलपोतो को डगमगाने लगी। तब जहाज सचालको व नियन्त्रको ने जहाज को सन्तुलित रखने के लिये जहाज में एक जल शैल-खड के पत्थर डाल लिये। इन पत्थरो को जहाज जब लेकर भारत पहुचा तब इन पत्थरो का सन्धान किया गया और ये पत्थर रत्न शिलाए

निकलें, जिनसे जगत सेठ को असख्य रत्नो की प्राप्ति हुई। इस अतुल धन-सम्पदा के फलस्वरूप बादशाह ने इस नागौरी सेठ को जगत् सेठ की उपाधि दी।

इस प्राचीन परम्परा में एक महत्त्वपूर्ण नाम जैसलमेर के पटवा सेठ जोरावरमलजी का है। इनकी सारे देश में चार सौ से अधिक पेढिया व दुकानें थी। जोरावरमलजी का स्थायी निवास उदयपुर था तथा इनका जैसलमेर, जोधपुर, बीकानेर, कोटा, बूदी, टोक व इन्दौर के राज्यो के खजानो पर पूर्ण प्रभुत्व था। ये इन राज्यो के खजाची थे। मेवाड जैसा ऐतिहासिक राज्य कई वर्षों तक इनके पास गिरवी रहा। इनके पौत्र राय बहादुर सर सिरेमल बापना कई राज्यो के दीवान रहे तथा इन्होने लदन के पहले गोल मेज सम्मेलन मे गाधीजी के साथ देसी रियासतो की ओर से भारत का प्रतिनिधित्व किया था। इन्होने एक विशाल जैन तीर्थ सघ भी निकाला। इस विशाल धर्म सघ के अतिरिक्त सेठ जोरावरमलजी बापना ने अपने समय का २ करोड से अधिक रुपया दान-पुण्य मे व्यय किया तथा २ करोड से अधिक रुपया आवास व धार्मिक भवनो के निर्माण मे व्यय किया। इनके द्वारा जैसलमेर मे बनाये गये महल और इनकी हवेली आज भी शिल्प और कौरनी मे बहुत प्रसिद्ध है, जिन्हे असख्य पर्यटक देखने जाते हैं।

इसके अतिरिक्त आज भी देश भर मे जो ख्याति प्राप्त धनी व्यापारी है उनमे से अधिकाश मूलत राजस्थान के ही निवासी है और आज भी ये अपने घर से सुदूर प्रान्तो तक जाकर व्यापार-वाणिज्य से देश की आर्थिक समृद्धि के भागीदार बने हुए हैं।

तोलाशाह और कर्माशाह जैसे प्रसिद्ध सेठो के निवास और व्यापार से स्पष्ट है कि प्राचीन-काल मे चित्तौडगढ कितना महत्त्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र था। इसी चित्तौड मे भामाशाह के श्वसुर भोमा नाहटा, जो अतुल सम्पत्ति का स्वामी था तथा भामाशाह का पिता भारमल जो १८ करोड का स्वामी और भारत प्रसिद्ध सेठ था, जैसे धनी वैश्य रहते थे।

व्यापार-केन्द्र :

ईसा की चौथी शताब्दी पूर्व चित्तौड के पास 'नगरी' नामक नगर व्यापार और जैन सस्कृति का प्रमुख केन्द्र था। भारतवर्ष मे सबसे प्राचीन शिलालेख यही मिला है, जो जैन शिलालेख है। कालातर मे इसी नगरी का नाम "मज्झमिका" पडा। यह मागधी का शब्द है जिसका अर्थ बडा और पवित्र नगर होता है। यहा के वस्त्र देश-देशान्तर मे प्रसिद्ध होने का उल्लेख करते हुए पाणिनि एव पतजली ने अपने भाष्यो मे यहा के लोगो तथा वस्त्र को 'माध्यमिकेय और 'माध्यमिक' लिखा है।

उदयपुर से कुछ दूर पूर्व मे स्थित वर्तमान आयड मोहनजोदडो कालीन सभ्यता का प्रमुख नगर गिना गया है। इसका तत्कालीन नाम "आघाटपुर" था तथा अर्धमागधी मे इसे "आहाड" कहा गया है, जिसका अर्थ ही व्यापारियो को आकर्षित करने वाला नगर होता है। आयड मे कर्नाटक, केरल, मध्यप्रदेश व पजाब के व्यापारियो का जमाव था। दसवी शताब्दी तक दक्षिण से यहा हाथी बिकने को आया करते थे। जो 'अल्लट' के समय के शिलालेख से प्रमाणित होता है।

उद्योग :

राजस्थान मे उद्योग का सबसे प्राचीन केन्द्र वसन्तपुर है, जिसका उल्लेख जैन शास्त्रो में आता है तथा जो भारत भर मे सर्वाधिक प्राचीन केन्द्रो मे से है। इसी वसन्तपुर के जैन धर्म सघ ने सर्व प्रथम जैतक के नेतृत्व मे जावर की खानो मे उत्खनन का कार्य प्रारम्भ किया था। जहा से,

चादी, जस्ता और सीसा निकाला जाता था। जैतक ससार का पहला खनिज अभियता, श्रमिक नेता और सहकारधर्मी था। जैन धर्म के इस मुखिया ने जावर में चण्डिका देवी का विशाल मन्दिर बनवाया। जैतक ने १८ प्रदेशो से उत्खनन विशेषज्ञ बुलाये थे। नितल में उत्खनन करने के कारण इन्हे उस समय "वैतालिक" कहा जाता था। उसी के अपभ्रश रूप में जैन समाज की वर्तमान "वेताला" जाति है।

ससार में सर्वप्रथम पीतल की देन इसी जावर खान की है। पीतल, ताम्बे और जस्ते के मिश्रण से बनता है और यही ये दोनो धातुए एक साथ उपलब्ध थी। इस पीतल की छठी शताब्दी की ढली हुई जैन मूर्तिया आज भी पिण्डवाडा के जैन मन्दिरो में देखी जा सकती हैं।

राजस्थान में सामोली का शिलालेख[1] (स० ७०३) क्षत्रियो का प्रथम शिलालेख माना जाता है। इस शिलालेख म राजा के बजाय जैतक की, तीन बार नाम के साथ जयकार की गई है और राजा शिलादित्य का नाम स्मरण भर है। अत यह शिलालेख जैतक का ही है और शिलादित्य का उल्लेख केवल राजा होने के कारण हुआ है, क्योकि उस शिलालेख मे किसी राजकार्य का उल्लेख नही है वरन् जैतक के महाजन सघ के मुखिया, खनिज अभियन्ता, श्रम विचारक और सहकार धर्मिता का वर्णन है।

प्रसिद्ध जैनाचार्य हरिभद्रसूरि ने वसन्तपुर का प्रमुख जैन तीर्थ एव व्यापारिक केन्द्र के रूप मे उल्लेख करते हुए लिखा है कि यहा के देश-प्रसिद्ध व्यापारी दक्षिण मे क्षितिप्रतिष्ठानपुर और पूर्व मे चम्पा जैसे सुदूर भागो मे जाकर व्यापार करते थे और वे अत्यन्त धनाढ्य थे। लगभग १६वी शताब्दी तक वसन्तपुर एक प्रमुख जैन व्यापारिक नगर था। अभी यह मेवाड की सीमा पर पिण्डवाडे के पास सिरोही जिले मे है।

उपर्युक्त सभी तथ्यो से सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि देश भर मे कृषि, गोरक्षा, व्यापार-वाणिज्य और उद्योगो के सचालक राजस्थान के जैन कितने व्यापक स्तर पर अपने उद्योग व्यापार का विस्तार करते थे और कितनी समृद्धि अर्जित करते थे कि बादशाहो और राजकोषो तक को आर्थिक सहयोग प्रदान करते थे। इसके साथ ही हम इन धनाढ्य श्रेष्ठियो मे धर्मधुरीणता और लोकोपकार की भावना का प्राचुर्य पाते है। आज भी इनमे अपने कर्म और धर्म पर अविचल रहना व देश का आर्थिक दायित्व वहन करना पाया जाता है। अपने रक्त, वर्ण और कर्म की श्रेष्ठता और अनुपालन से आरम्भ से ही जैन भारतीय समाज मे सबसे समृद्ध व देश की आर्थिक स्थिति के सयोजक नियोजक रहे हैं और इन्ही गुणो के कारण भविष्य मे भी रहेगे।

१ जयति वट नगर (बसन्तपुर) विनिर्गत महाजनो जैतक प्रमुख येनास्य, लोक जीवन उत्पाद्य आरण्य कूप गिरी एभिर्गुणै युत तत्र जैतक महत्तर अरण्य वासिना देवकुल चक्रे महाजनादिष्ट।

४३ | पूर्व मध्यकालीन जैन श्रेष्ठि

श्री रामवल्लभ सोमानी

७वी शताब्दी के आसपास राजस्थान मे अभूतपूर्व उन्नति हुई। कई उल्लेखनीय नगर औद्योगिक केन्द्रो के रूप मे विकसित हुये। इन नगरो मे चित्तौड, जालौर, भीनमाल, आबू, मडोर, ओसिया, पाली, लोद्रवा आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। स्थल मार्ग से सिंध, ईरान आदि की ओर व्यापार की निरन्तर वृद्धि से प्रतिहार काल मे पश्चिमी राजस्थान का यह क्षेत्र वडा ही श्रीसम्पन्न था। कई उल्लेखनीय व्यापारी यहा निवास करते थे। दक्षिण भारत के राष्ट्रकूटो के लेखों मे भीनमाल से गये व्यापारियो का उल्लेख है। जैन साधुओ ने भी इसी काल मे बडी सख्या मे अजैन परिवारो को जैन धर्म मे दीक्षित किया था।

प्रतिहार काल की श्री सम्पन्नता का विवरण कुवलयमाला, समराइच्च कहा, शिशुपाल वध, उप मिति भव प्रपच कथा आदि ग्र थो मे मिलता है। जैन अनुश्रुतियो के अनुसार वि० स० ७९५ में उदयप्रभ सूरि ने भीनमाल के करोडपति सेठ समधर को जैन धर्म मे दीक्षित किया। प्रतिहार राजा नागभट (प्रथम) भी लगभग इसी समय जालौर और भीनमाल के स्वामी हुये। ये जैन धर्म से वडे प्रभावित थे। आबू क्षेत्र मे कई साधुओ के विचरण के उल्लेख यत्र तत्र मिलते हैं। घटियाला का वि० स० ९१८ का प्राकृत भाषा मे निवद्ध लेख वहुत ही उल्लेखनीय है। इससे पता चलता है कि प्रतिहार राजा जैन धर्म से प्रभावित थे। इस लेख से पता चलता है कि धनेश्वरगच्छ के जाम्वव और आम्रक नामक साधु और माउड नामक श्रेष्ठि उस समय वहा के उल्लेखनीय व्यक्तियों मे से थे। इस लेख मे वढते हुये व्यापार की ओर भी ध्यान दिलाया गया है। लेख मे "हट्ट" अर्थात् वाजार वनाने का उल्लेख है। इसके अवशेष आज भी वहा दृष्टिगत होते हैं। जैसा ऊपर उल्लेख किया गया है वढते हुये व्यापार के कारण यह प्रदेश उस समय वडा उल्लेखनीय हो गया था। इस लेख मे मरु, माड, वल्ल, त्रमणी, गुजरात और साचोर प्रदेशों का उल्लेख है। इन प्रदेशो से वहा का व्यापारिक, सास्कृतिक और राजनैतिक सम्वन्ध रहा था। आज भी यहा खुदाई करने पर वाजार के भग्नावशेष मिलते हैं।

श्रेष्ठियों का प्रभाव

जैन श्रेष्ठियो का राजाओ पर वडा प्रभाव था। अहिंसा के प्रचार अमारिको घोषणा आदि इसके प्रमाण हैं। राजपूत राजाओ के राज्य मे श्रेष्ठि वर्ग की स्थिति वडी ही उल्लेखनीय रही है। नगर श्रेष्ठि को कई प्रकार की सुविधाए प्राप्त थी। 'समराइच्च कहा' मे दिये गय वृतान्त के अनुसार

नगर महन्त को पचकुल का सदस्य माना जाता था। राजाओ द्वारा नगर सेठ की उपाधि देने के १२वी शताब्दी तक के वृतान्त मिलते हैं। वि० स० १२०६ के किराडू के शिलालेख से पता चलता है कि स्थानीय शासक ने नाडोल के श्रेष्ठि प्राग्वाट शुभकर की प्रार्थना पर अमारि की घोषणा कराई और तत्सम्बन्धी सुरह लेख भी शिव मदिर मे लगवाया। इसके अनुसार प्रत्येक माम की एकादशी, चतुर्दशी व अमावस्या को जीवहिंसा पर रोक लगाई गई। कुभकार भी इन तिथियो को वर्तन पकाने का कार्य न करें, ऐसी आज्ञा भी जारी की गई। उक्त आज्ञा का उल्लघन करने पर ४ द्रम दड देने का प्रावधान किया गया था। इसी प्रकार का अन्य कई घोषणायें और भी करने के उल्लेख मिलते हैं। मेवाड मे महारावल तेजसिह और समरसिह के समय जैन धर्म का स्पष्टत प्रभाव दिखाई देता है।

धार्मिक जीवन :

मध्यकाल मे जैन श्रेष्ठियो के जीवन पर धर्म का वडा प्रभाव रहा है। राजस्थान मे सैकडो लेख जैन श्रेष्ठियो के मिलते हैं। इनमे विभिन्न साधुओ के उपदेश से धार्मिक कार्यों के करने का उल्लेख मिलता है। लेखो मे "स्व श्रेय से" माता-पिता के निमित्त आदि शब्दो का भी प्रयोग मिलता है। लेखो मे सबसे उल्लेखनीय शब्द "न्यायोपार्जित द्रव्य के सदुपयोगार्थ" बोधक शब्द भी मिलते हैं। न्यायोपार्जित शब्द का अर्थ कठोर कमाई से पैदा किया हुआ धन हो सकता है। इन लेखो और ग्रथ प्रशस्तियो मे ३ प्रकार के दान प्राय देने के उल्लेख मिलते हैं (१) ज्ञान दान, (२) अभय दान और (३) अर्थ दान। धार्मिक जीवन व्यतीत करने के कारण ही जैन श्रेष्ठि लोग विभिन्न व्यसनो से मुक्त रहते थे और अधिकाशत मास, मदिरा आदि व्यसनो से मुक्त थे और व्रत आदि के पालन, आचार-विचार का अनुपालन करने से इस वर्ग ने वैश्यो के अन्य वर्ग को भी बडा प्रभावित किया। तपस्या का प्रभाव अन्य समाज के वर्ग पर भी स्पष्टत दिखाई देता है।

सघ यात्रायें

जैन श्रेष्ठियो मे सघ यात्रायें निकालने का वडा प्रचार रहा था। मध्य काल मे ऐसी कई यात्रायें धार्मिक तीर्थो के लिये की जाती रही है। श्रेष्ठि अपने नाम के आगे "सघ पति" शब्द बडे ही गौरव से लिखाते थे। वैष्णवो मे चारधाम की यात्रायें की जाती है। इसी प्रकार जैनियो मे शत्रुञ्जय, गिरिनार, आबू आदि तीर्थो की यात्रायें प्राय॰ की जाती रही है। लोकागच्छ की स्थापना के वाद सघ यात्राए आचार्यो के चातुर्मास आदि स्थानो पर भी की जाने लगी। आबू के लेखो मे कई रोचक वृतान्त मिलते है। कई नगरो से यात्रार्थ आये श्रावको के उल्लेख है। राजाओ द्वारा लिये जाने वाले करो को मुक्त करने का भी उल्लेख है। आबू मे इस प्रकार के कर जो यात्रियो से लिये जाते थे वे महारावल लुम्भा ने वि० स० १३७२ मे और महाराणा कुभा ने वि० स० १५०६ मे क्षमा किये थे। शत्रुञ्जय यात्रा के निमित सुल्तान से "फरमान" लेना आवश्यक होता था। नाभिनन्दन जिनोद्धार प्रवन्ध चित्रकूट महावीरप्रसाद प्रशस्ति वि० स० १४९५, राणकपुर शिलालेख वि० स० १४९६, सोम सोभाग्य काव्य मे इस प्रकार के फरमान प्राप्त करके यात्राओ का रोचक वृतान्त मिलता है। सोम सौभाग्य काव्य मे कई सघ यात्राओ का वर्णन किया गया है।

ग्रथ लेखन

जैन श्रेष्ठियो ने ग्रथ लेखन को भी प्राथमिकता दी है। विभिन्न नगरो मे ग्रथ भडारो की स्थापना की गई है। इनमे सुरक्षित कई ग्रथो मे प्रशास्तियाँ दी हुई रहती हैं जो कई वार इतिहास

के अध्ययन के लिये बडी ही उपयोगी सिद्ध होती है। वि० स० १२०७ मे जब पाली पर कुमारपाल का आक्रमण हुआ और नगर मे लूटमार होने लगी तो प्रतिलिपिकार अधूरे और त्रुटित ग्रथ को यह लिखकर छोड भागे कि "पाली नगर भग हो गया है"। यह प्रति इसी स्थिति मे आज जैसलमेर भडार मे विद्यमान है। राजस्थान मे प्रतिलिपि किये ग्रथो मे १३वी से १६वी शताब्दी तक श्वेताम्बर श्रेष्ठियो का प्राय उल्लेख मिलता है। इसके बाद दिगम्बरो के पूर्वी राजस्थान मे प्राय उल्लेख मिलते है।

व्यापारिक दक्षता :

जैन श्रेष्ठियो मे दो प्रकार के वर्ग मिलते है (१) राजमत्री और (२) व्यापारी। राजमत्री अधिकाशत राजसेवा मे रहते थे। व्यापारी वर्ग भी बडा ही उल्लेखनीय रहा है। समराइच्च कहा, कुवलयमाला, उपमिति भव प्रपच कथा, शत्रुञ्जयतीर्थोद्धार प्रबध आदि ग्रथो मे इसका विस्तार से उल्लेख है। चित्तौड मे तोलाशाह कपडे के अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त व्यापारी थे। 'कान्हडदे प्रबन्ध' मे जालौर मे इसी प्रकार के बडे-बडे व्यापारियो के उल्लेख हैं। राजस्थान से बडी सख्या मे व्यापारी गुजरात की ओर मध्य काल से जाते रहे हैं। ऐसी मान्यता है कि वनराज चावडा ने जब गुजरात मे पाटन नगर की स्थापना की, तब भीनमाल क्षेत्र से कई व्यापारियो को वहा बसने को आमन्त्रित किया था। इन परिवारो मे महामात्य नन्नक का परिवार था जिसके वशज विमलशाह ने कालान्तर मे आबू मे 'विमलवसही' का निर्माण कराया था।

जैन धर्म के प्रसार मे भी इन श्रेष्ठियो का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। वस्तुपाल तेजपाल प्राग्वाट जैन श्रेष्ठि थे। इनका काल गुजरात और पश्चिमी राजस्थान मे बडा उल्लेखनीय है। इन्होने सैकडो ग्रथ लिखाये, कई मदिर बनवाये व मूर्तिया स्थापित कराई एव धर्म प्रचार के लिये महत्त्वपूर्ण कार्य किये। आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होने के कारण धर्म प्रचार के निमित बडी सख्या मे अर्थ व्यय कर सकना इन श्रेष्ठियो के लिये सभव था। लोकाशाह के सम्प्रदाय के विकास मे भी इसी प्रकार भामा शाह और उसके भाई ताराचद ने योगदान दिया था। इनके प्रचार का ही प्रभाव है कि आज मेवाड़ मे मदिर मानने वाले जैन उपासको की सख्या अत्यन्त कम है।

आज भी जैन व्यापारी भारत के उल्लेखनीय व्यापारियो मे से है। पूर्व मध्यकालीन कुछ जैन व्यापारियो का उल्लेख निम्नाकित है

(१) चद्रावती निवासी धरणिग

वस्तुपाल की पत्नी अनुपमा इनकी पुत्री थी। वि० स० १२८७ मे जब आबू के लूणिगवसही की प्रतिष्ठा की गई और गौष्ठिको की व्यवस्था की गई तब उसमे इस परिवार को भी सम्मिलित किया गया। यह परिवार अत्यन्त श्रीसम्पन्न था।

(२) कवीद्र बधु यशोवीर .

ये जालौर के राजा उदयसिंह के मत्री थे। इन्हें "कवीद्र बधु" की उपाधि दी हुई थी। ये बहुत विद्वान और शिल्प शास्त्र के ज्ञाता थे। 'प्रबध चिन्तामणि' के अनुसार इन्होने "लुणिगवसही" मे स्थापत्य सम्बन्धी कुछ दोष भी बताये थे जिसे शोभन शिल्पी ने भी स्वीकार किये थे। इनके

२ तथ आबू मे विमलवसही मे वि० स० १२४५ के लगे हुये हैं। अन्य २ लेख जालोर क्षेत्र से मिले हैं। इनके पिता का नाम उदयसिंह और माता का नाम उदयश्री था। लेख मे इसका अत्यन्त सुन्दर वर्णन है। लक्ष्मी और सरस्वती का एक साथ वरद हस्त इन पर होने का उल्लेख है।

(३) श्रेष्ठि यशोराज

जालोर दुर्ग निवासी श्रेष्ठि यशोराज श्रेष्ठि यशोवीर (उपर्युक्त न० २ से भिन्न) का पुत्र था। यह श्रीमाली जैन था। यह चद्रगच्छ के आचार्य चद्रसूरि के शिष्य पूर्णभद्र सूरि का भक्त था। जालोर के वि० स १२३९ के शिलालेख मे इसका उल्लेख है। शिलालेख मे दिये गये वर्णन से पता चलता है कि यह परिवार अत्यन्त श्रीसम्पन्न था।

(४) नागपुरीय बरहुडिया परिवार

वरहुडिया ओसवाल परिवार नागपुर का था। इसके द्वारा किये गये सद्कार्यों का विस्तार से वर्णन मिलता है। यह लक्षाधिपति था। वि० स० १२९६ के आबू के शिलालेख से पता चलता है कि इस परिवार ने शत्रुञ्जय, गिरिनार, आबू, जालोर, तारगा, पाटन, बीजापुर, लाठपल्ली, प्रहलादनपुर आदि स्थानो की यात्रायें की और वहा कई देव कुलिकाए बनाईं एव मूर्तिया स्थापित की। कई ग्रथ भी लिखाये। इस परिवार पर मधुसुदन ढाकी ने स्वाध्याय पत्रिका मे विस्तार से एक लेख लिखा है।

(५) नागड श्रेष्ठि परिवार

आबू परमार राजा धारावर्ष का मत्री नागर बहुत ही ख्यातिप्राप्त और श्रीसम्पन्न व्यक्ति था। वि० स० १२५२ के झाडोली ग्राम के लेख मे इसका विस्तार से उल्लेख है।

(६) वेसठ श्रेष्ठि परिवार ·

इस परिवार का विस्तार से उल्लेख नाभिनन्दन जिनोद्धार प्रबन्ध नामक ग्रथ में मिलता है। वेसठ ओसिया का रहने वाला था। कुछ समय पश्चात् वह किराडू नगर मे जा बसा। वहा के परमार राजा जैत्रसिंह ने उसे नगर सेठ की उपाधि दी। किराडू गुजरात और सिंध के मध्य व्यापार के प्रमुख मार्ग पर होने से यह परिवार शीघ्र ही अत्यन्त श्रीसम्पन्न हो गया और कालान्तर मे गुजरात की ओर चला गया। जहा इसके वशज समरसिंह ने शत्रुञ्जय का जीर्णोद्धार कराया था।

(७) राल्हा परिवार :

चित्तौड के निवासी श्रेष्ठि राल्हा खरतरगच्छ के साधुओ का भक्त था। इसने वि० स० १२८७–८८ मे सघ यात्रायें की और कई हस्त लिखित ग्रथ भी लिखाये। वि० स० १२९५ मे इसने नलकच्छपुर (नालछा) मे सघ यात्रा की और वहा 'कर्मविपाक' नामक ग्रथ भी उस समय लिखाया जो इस समय जैसलमेर भडार मे है। युगप्रधान गुर्वावली और उक्त ग्रथ की प्रशस्ति से पता चलता है कि यह परिवार अत्यन्त श्रीसम्पन्न था।

(८) श्रेष्ठि समधा :

मेवाड के निवासी श्रेष्ठि समधा का उल्लेख कई ग्रंथ प्रशस्तियो, ताम्रपत्रो, शिलालेखो आदि मे हैं। जैसलमेर भडार मे सग्रहीत 'दश श्रावक चरित्र चूर्णि' वि० स० १३०९ में इसका

उल्लेख है। यह मेवाड के वर ग्राम का निवासी था। सम सामयिक राजमत्री समवा का भी उल्लेख मिलता है जिसका उल्लेख वि० स० १३१६ से लेकर १३२३ तक के कई लेखो मे मिलता है। इसकी साली घाघी नामक श्राविका ने वि० स० १३५२ मे चित्तौड मे एक ग्र थ लिखवाया था। इस प्रकार वर ग्राम के अभवी श्रावक के पुत्र समधर का मेवाड के राजमत्री समधा से क्या सम्बन्ध था, बताना कठिन है।

(६) श्रेष्ठि धाधल।

जैसलमेर भडार मे सग्रहीत "चद्र दूत काव्य" की वि० स० १३४३ की प्रशस्ति मे एव युगप्रधान गुर्वावली के वि० स० १३३४ के वर्णन मे इस परिवार का उल्लेख है। धाधल के पुत्रो के नाम रत्ना और भीम था। करेडा के जैन मदिर मे वि० स० १३१७ का धाधल श्रेष्ठि का शिला लेख है इसमे इसके पिता का नाम आसराज दिया गया है। बडोदा मे सग्रहित "निघटुशेच" नामक ग्र थ (वि स० १३४३) भी इसी सौवर्णिक धाधल के परिवार का मान सकते है।

(१०) मडोवर के श्रेष्ठि जेल्हा परिवार।

बीकानेर मे मडोवर मूल नायक प्रतिमा आज भी विराजमान है। अतएव पता चलता है कि मडोवर मे बडी सख्या मे जैन श्रेष्ठि रहते थे। इनमे श्रेष्ठि जेल्हा का परिवार बडा उल्लेखनीय है। आबू के विमलवसही के जीर्णोद्धार मे इसी परिवार ने वि० स० १३७८ के आसपास बडा ही महत्त्वपूर्ण कार्य किया था। इस परिवार के कई लेख आबू मे लग रहे हैं। १४ बार सघ यात्रा निकालने का उल्लेख होने से पता चलता है कि यह परिवार अत्यन्त श्री सम्पन्न था।

(११) रामदेव नवलखा परिवार

महाराणा लाखा के समय देवकुलपाटक बहुत ही समृद्ध नगरो मे माना जाने लगा। यहां कई श्रेष्ठि परिवार रहते थे इनमे रामदेव नवलखा का परिवार उल्लेखनीय है। वि० स० १४३१ मे बडा भारी दीक्षा महोत्सव करेडा (जिला चित्तौड) मे कराया था। मेरुनन्दन उपाध्याय ने केलवाडा मे विज्ञप्ति लेख की प्रतिलिपि वि० स० १४४५ मे की जिसमे इस परिवार का उल्लेख किया गया है। इसकी पत्नी का नाम मेलादेवी था जो वि० स० १४८६ तक जीवित थी। इसके दो पुत्र साहण और सारग थे। इस परिवार ने कई प्रतिमाए बनवाई। कई ग्र थ लिखवाये।

(१२) वीसल श्रेष्ठि परिवार

उपर्युक्त रामदेव श्रेष्ठि की पुत्री "खीमाई" की शादी ईडर निवासी वत्सराज के परिवार मे वीसल के साथ हुई थी। वत्सराज के ४ पुत्र थे—(१) गोविन्द, (२) वीसल, (३) अक्करसिंह और (४) हीरा। गोविन्द द्वारा निकाले गये सघ का विस्तार से उल्लेख 'सोम सौभाग्य' काव्य मे है। वीसल श्रेष्ठि को महाराणा लाखा ने मेवाड मे बसने को कहा था। यह देलवाडा मे रहता था और अपने समय का उल्लेखनीय व्यापारी था इसके २ पुत्र धीर और चम्पक नामक थे। क्रियारत्न-समुच्चय ग्र थ की दस प्रतिया इस परिवार ने लिखाई थी और आचार्य सोमसुन्दर सूरि को आमत्रित करके विशालराज को वाचक पद दिलाने हेतु बहुत बडा महोत्सव कराया। इसी प्रकार जिनकीर्ति को सूरि पद दिलाने हेतु भी उत्सव किया था।

(१३) श्रेष्ठि गुणराज परिवार

गुणराज चित्तौड का रहने वाला था और गुजरात मे व्यापार करता था। इस परिवार का विस्तार से उल्लेख वि० स० १४६५ की चित्तौड की प्रशस्ति, राणकपुर की प्रशस्ति, सोम सौभाग्य काव्य आदि मे है। श्रेष्ठि गुणराज ने विशाल सघ निकाला था। गुजरात के बादशाह ने भी इसे सम्मानित किया था।

(१४) धरणाशाह परिवार

राणकपुर मदिर का निर्माता धरणाशाह बडा प्रसिद्ध है। इस परिवार वालो के कुछ लेख पिंडवाडा से भी मिले हैं। पिंडवाडा के वि० स० १४६५ के शिलालेख के अनुसार श्रेष्ठि कुरपाल के २ पुत्र रतना और धरणा थे। रतना का परिवार मोडू मे जाकर के रहने लगा। धारणाशाह ने आचार्य सोमसुन्दर सूरि के उपदेश से जगत्प्रसिद्ध राणकपुर के देवालय का निर्माण कराया। यह कार्य कराना एक व्यक्ति के लिये अत्यन्त कठिन है। ऐसा विशाल कार्य हाथ मे लेना यह प्रकट करता है कि धरणा शाह परिवार काफी अधिक धनवान परिवार था।

इन परिवारो के अतिरिक्त जैसलमेर मे कई उल्लेखनीय परिवार थे। यहा खरतरगच्छ का प्रसिद्ध केन्द्र था। मडोर मे भी जैनियो की बहुत बडी बस्ती थी। डूगरपुर मे श्रेष्ठि साल्हा शाह एक उल्लेखनीय व्यक्ति रहा था। इसका उल्लेख आतरी के शिलालेख, गुरुगुण रत्नाकर काव्य आदि मे हो रहा है।

इस प्रकार पूर्व मध्यकाल मे जैन श्रेष्ठियो की स्थिति काफी उल्लेखनीय थी।
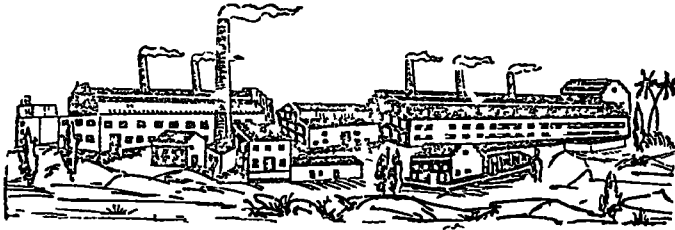
उन्नीसवीं सदी के राजस्थान के आर्थिक जीवन में कतिपय जैन परिवारों का योगदान

डॉ० कालूराम शर्मा

राजस्थान के इतिहास मे उन्नीसवी सदी सक्रमणकाल के रूप मे मानी जाती है। पिछली किसी एक सदी मे इतना अधिक परिवर्तन देखने मे नही आता है जितना उन्नीसवी सदी मे दिखाई पडता है। सदी के प्रारम्भ मे राजपूत राज्यो को जहा मराठो तथा पिंडारियो एव पठानो की लूट-खसोट का सामना करना पडा वही सामन्तो एव शासको के आपसी सघर्ष का विनाशकारी परिणाम भी भुगतना पडा। १८१८ ई० मे राजपूताने के नाम मात्र के स्वतन्त्र राज्य ईस्ट इण्डिया कम्पनी के आश्रित बन गये। फिर भी, शान्ति और व्यवस्था के कायम होने मे काफी वर्ष लग गये। सदी के अन्त तक अग्रेजो ने राज्यो के आन्तरिक प्रशासन पर भी अपना पूर्ण नियन्त्रण स्थापित कर लिया।

राजनीतिक उथल-पुथल एव अव्यवस्था की इस सदी मे भी राजस्थान के सेठ-साहूकारो ने राज्यो के आर्थिक जीवन को पगु नही होने दिया और व्यापार-वाणिज्य तथा लेन-देन के काम को सुचारू रूप से जारी रखा। यह वास्तव मे विस्मयजनक है। उनकी इस सफलता तथा उपलब्धि में जैन साहूकारो का योगदान विशेष उल्लेखनीय रहा है।

व्यावसायिक दृष्टि से रुपयो का लेन-देन और व्यापार वाणिज्य जैन साहूकारो का परम्परागत व्यवसाय था। कई जैन परिवार खालसा भूमि के राजस्व और सायर (चुगी) का इजारा लेने का काम भी करते थे। साहूकार के रूप में साधारण किसान से लेकर शासको तक को व्याज पर ऋण देना उनका मुख्य व्यवसाय था। इस सदी में जैन साहूकारो के कई घराने राज्यो के खजाची तथा बैंकर्स बने हुए थे। रीया वाले सेठ मुहणोत जीवनदास के घराने ने कई वर्षों तक जोधपुर, उदयपुर, किशनगढ, टोक आदि राज्यो के लिये बैंकर्स का काम किया था। इन राज्यो के कामो में जो कुछ खर्च होता था, वह सेठ लोग दे देते थे और राज्यो की जो आमदनी होती थी वह सेठो के पास जमा करा दी जाती थी। साल के अन्त में हिसाब कर लिया जाता था। सेठ हमीरमल के समय में इस घराने ने अग्रेजी सरकार के लिए भी खजाने तथा बैंकर्स का काम किया। सेठ चादमल के समय में कोहाट, कुर्रम, मलाकान, पेशावर, जालधर, होशियारपुर, सागर, साभर, पचपद्रा, डीडवाना

आदि स्थानो पर ब्रिटिश खजाने का सारा काम काज इसी घराने के अधिकार में था। १८७८-७९ में काबुल युद्ध के समय सेठ चांदमल ने अंग्रेज सरकार को एक करोड रुपये उधार दिये थे। इसी से इस घराने के ऐश्वर्य का पता चल जाता है।

बोहरगत के मामले में जैसलमेर के सेठ गुमानचन्द बापना का घराना भी काफी प्रतिष्ठित था। उनके पुत्र सेठ बहादुरमल के समय में कोटा, बून्दी, टोंक आदि रियासतो के खजाने का काम इसी घराने के हाथ मे रहा था। अंग्रेजो की देवली एजेन्सी के खजाने का काम भी कई वर्षों तक इसी घराने के पास रहा था। बहादुरमल के दत्तक पुत्र सेठ दानमल के समय मे इस घराने की प्रतिष्ठा और भी अधिक हो गई थी। गुमानचन्द के दो अन्य पुत्रो–मगनीराम और जोरावरमल ने मिलकर सुप्रसिद्ध "मगनीराम जोरावरमल" फर्म की स्थापना की। इस फर्म ने कई राज्यो के खजाने का काम किया। उदयपुर राज्य में नियुक्त अंग्रेज एजेन्ट कर्नल टॉड ने जोरावरमल को इन्दौर से बुलाकर उदयपुर राज्य का बैंकर तथा कोषाध्यक्ष नियुक्त किया। जोरावरमल ने अपनी पूंजी तथा सूझ-बूझ से उदयपुर राज्य की दयनीय आर्थिक स्थिति को सुधारने मे महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। उदयपुर राज्य की अंग्रेज एजेन्सी के खजाने का काम भी सेठ जोरावरमल को ही सौंपा गया। उनके पुत्र सेठ चांदमल ने १८५७ मे अंग्रेज सरकार को लाखो रुपये उधार देकर उसकी स्थिति को मजबूत बनाने मे योगदान दिया था।

अजमेर के मेहता गम्भीरमल के घराने ने भी कई वर्षों तक कई राज्यो के लिए खजाने तथा बैंकर्स का काम किया था। मेहता प्रतापमल के समय मे इस घराने का राजस्थान की बहुत-सी रियासतो के साथ लेन-देन का काम होता था। अजमेर के मेहता लालचन्द का घराना भी प्रतिष्ठित बैंकर था। उनकी फर्म "लूनकरण रिद्धकरण" का कई राज्यो के साथ लेन-देन था। अजमेर के सेठ कमलनयन हमीरसिंह लोढा के घराने की गिनती भी प्रतिष्ठित बैंकरो मे की जाती थी। जयपुर, जोधपुर, किशनगढ, टोंक आदि राज्यो के साथ उनका लेन-देन था। इस घराने के सेठ समीरमल को अलवर, कोटा और जोधपुर रेजीडेन्सियो तथा देवली और एरनपुरा की अंग्रेज सैनिक छावनियो के खजाने का काम भी सौंपा गया था। जयपुर और बाद मे अजमेर बस जाने वाले सेठ पद्मसी नेनसी ढढ्ढा के घराने ने भी बैंकिंग व्यवसाय मे काफी ख्याति अर्जित की। इस घराने का कई देशी रियासतो के साथ लेन-देन था। इसी घराने के सेठ अमरसी ने हैदराबाद दक्षिण मे "अमरसी सुजानमल" फर्म कायम की और दक्षिण के भारतीय शासको के साथ लेन-देन का काम शुरू किया था।

जयपुर के सेठ गुमानसिंह दानसिंह कोठारी का घराना भी प्रतिष्ठित बैंकर था। इस घराने का इन्दौर, बीकानेर, उदयपुर, ग्वालियर आदि राज्यो के साथ कई वर्षों तक लेन-देन रहा। जयपुर के ही सेठ देवीचन्द कोठारी का घराना भी लेन-देन का काम करता था। इस घराने के सेठ कपूरचन्द के समय में जयपुर राज्य ने लाखो रुपये उधार लिये थे। चूरू के सेठ केशरीचन्द गुलाबचन्द कोठारी के घराने ने पहली बार ब्रिटिश राज्य में अपनी बैंकिंग फर्म स्थापित की थी और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ भी कई वर्षों तक लेन-देन किया।

उन्नीसवीं सदी के मध्यकाल तक वस्तुओ के आयात-निर्यात का लेन-देन मुख्यतया हुंडियो के द्वारा ही किया जाता था। राजपूत राज्यो का आपसी लेन-देन और ब्रिटिश सरकार को दिये जाने

वाले खिराज का भुगतान भी हुडियो के द्वारा ही किया जाता था । सामान्य सैनिक और राजकर्मचारी अपने-अपने घर रुपये भिजवाने के लिये भी हुडियो का सहारा लेते थे । हुडी-व्यवसाय मे जैन साहूकारों ने काफी अच्छी साख अर्जित की थी । कोटा राज्य का खिराज सामान्यत मगनीराम जोरावरमल की हुडियो के द्वारा ही जमा होता था । कई बार कोटा के शाह केशोराम शिवनाथ की हुडियो के द्वारा भी जमा कराया गया । अग्रेज सरकार ने सेठ मगनीराम जोरावरमल को चार प्रतिशत कमीशन पर उदयपुर राज्य का खिराज हुडियो के द्वारा अजमेर खजाने में जमा कराने की आज्ञा दे रखी थी । जयपुर राज्य के सेठ गुमानसिह दानसिह कोठारी की हुँडिया इन्दौर, पूना, ग्वालियर, उदयपुर, अमरावती, बीकानेर, बम्बई आदि स्थानो के लिये की जाती थी । जयपुर के ही शाह देवीचन्द कोठारी की फर्म मालवा, कलकत्ता, बम्बई, कानपुर, फरुखाबाद आदि स्थानो के लिये हुडियो का काम करती थी । चूरू के केशरीचन्द गुलाबचन्द और उनके घराने की हुडिया सारे उत्तरी भारत में सिकारी जाती थी । अजमेर में हुडी का व्यवसाय करने वाले जैन साहूकारो में कमलनयन हमीरसिह, पदमसी नैनसी और लूनकरण रिद्धकरण की फर्मे मुख्य थी । उदयपुर में मेहता बदनमल की हुडी व्यवसाय में काफी ख्याति थी । रीया वाले सेठ मुहणोत जीवनदास के घराने तथा जैसलमेर के सेठ गुमानचन्द बापना के घराने ने इस क्षेत्र में अपूर्व कीर्ति अर्जित की ।

मध्यकालीन राजस्थान के व्यापार-वाणिज्य की उन्नति मे उसकी भौगोलिक स्थिति का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा । देश के उत्तरी, उत्तर पश्चिमी और दक्षिणी भारत के अधिकांश व्यापारिक मार्ग राजस्थान से होकर गुजरते थे । इस प्रकार, राजस्थान का भारत के दोनो प्रमुख क्षेत्रों से घनिष्ट व्यापारिक सम्पर्क बना रहा । अफ्रीका, यूरोप और एशिया के व्यापारी सिन्ध अथवा गुजरात के बन्दरगाहो से राजस्थान की प्रमुख मडियो तक आते थे और अपने सामान के बदले में उत्तरी, उत्तर-पश्चिमी भारत और मध्यएशिया की वस्तुए ले जाते थे । इसी प्रकार, मध्य एशिया के व्यापारी भी घोडो, सूखे मेवो तथा अन्य वस्तुओ के बदले मे पूर्वी एशिया का सामान ले जाते थे । उन्नीसवी सदी के मध्य तक राजस्थान के व्यापार-वाणिज्य की स्थिति पहले की भाति बनी रही और इसे बनाये रखने मे जैन साहूकारो की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही । उनका मुख्य कार्य कुटीर उद्योगों के उत्पादन तथा कृषि उत्पादन की वस्तुओ के निर्यात मे सहायता देना तथा स्थानीय आवश्यकता के अनुसार अन्य वस्तुओ का आयात करना था । उदाहरणार्थ, कोटा के शाह मोहनराम रिखबदास अफीम के बहुत बडे व्यापारी थे जिनके यहा से कच्चे माल से पुख्ता माल तैयार होकर अन्य राज्यों को भेजा जाता था । पाली मारवाड के सेठ कचरदास लोढा भी अफीम के बहुत बडे व्यापारी थे । अफीम के व्यापारियो मे सादडी के सेठ गगाराम बापना भी अग्रिम पक्ति मे थे । रतलाम और इन्दौर में भी उनकी दुकानें थी जिन पर बडे पैमाने पर अफीम का व्यापार किया जाता था ।

कपडा, कपास, अनाज, किराणा आदि के व्यापार-क्षेत्र मे राजस्थानी जैन साहूकार सबसे आगे रहे । रीया के नगर सेठ मुहणोत जीवनदास की पूना, अजमेर तथा दक्षिण भारत के अनेक स्थानो मे दुकानें कायम थी । हमीरमल के समय मे इस घराने का व्यापार-वाणिज्य और भी अधिक विस्तृत हुआ तथा पजाब और मध्यभारत में कई दुकानें खोली गई । जोधपुर राज्य की तरफ से इस घराने को विशेष सुविधाए प्रदान की गई । उनके व्यापार-वाणिज्य पर आधा महसूल माफ था और उनको घरेलू आवश्यकता के लिये आने वाले समस्त सामान की पूरी चु गी माफ कर दी गई

थी। सेठ चांदमल के समय में इस घराने की लगभग ४०० दुकानें सम्पूर्ण भारत मे फैली हुई थी। व्यापार-वाणिज्य के क्षेत्र में जैसलमेर के सेठ गुमानचन्द बापना के घराने ने विशेष प्रतिष्ठा अर्जित की। उनके पाच पुत्रो–बहादुरमल, सवाईराम, मगनीराम, जोरावरमल और प्रतापचन्द्र ने क्रमश कोटा, झालरापाटन, रतलाम, उदयपुर और जैसलमेर, इन्दौर को अपना-अपना कार्यक्षेत्र बनाया और सम्पूर्ण भारत में सैकडो दुकानें कायम की। चीन मे भी इस घराने की दुकान थी।

अजमेर के जैन साहूकार भी इस क्षेत्र मे पीछे नही रहे। मेहता प्रतापमल के घराने की दुकाने कलकत्ता, हैदराबाद, पूना, जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, इन्दौर, टोंक, उज्जैन आदि स्थानो पर थी। मेहता लालचन्द की ग्वालियर, झासी, फरूखाबाद, मिर्जापुर, भोपाल, जयपुर आदि स्थानो पर सराफे की दुकाने थी। इस घराने की "लूनकरण रिद्धकरण" फर्म की २५–३० शाखाए उत्तरी-भारत मे फैली हुई थी। अजमेर की ही "कमलनयन हमीरसिंह" फर्म की दुकानें जयपुर, जोधपुर, किशनगढ, फरुखाबाद, टोंक, सीतामऊ, कलकत्ता, बम्बई, कोटा, अलवर, सिरोंज आदि अनेक स्थानो पर कायम थी। अजमेर की एक अन्य प्रसिद्ध फर्म "पद्मसी नैनसी" थी जिसकी शाखाए दक्षिण-भारत मे मद्रास और पूर्व मे आसाम तथा उत्तर मे पजाब तक फैली हुई थी। चूरू के जैन साहूकारो मे "रुक्मानन्द वृद्धिचन्द" की फर्म काफी प्रसिद्ध रही। बाद मे इसका नाम "तेजपाल वृद्धिचन्द,' पडा। यह फर्म मुख्यत· कपडे और बैंकिंग का कारोबार करती थी और राजस्थान तथा आसाम-बगाल मे इसकी कई शाखाए थी

उदयपुर के मेहता बदनमल ने न केवल भारत मे ही अपितु रगून, हागकाग आदि सुदूर-पूर्वी स्थानो मे भी अपने फर्म की शाखाए स्थापित की थी। इसी प्रकार, जयपुर के गुलाबचन्द वेद जौहरी इगलैण्ड से पन्ना मगाकर भारत मे बेचने तथा इगलैण्ड को जवाहरात भेजने का व्यवसाय करते थे। जयपुर के 'गुमानसिंह दानसिंह" (कोठारी) की इन्दौर, पूना, ग्वालियर, उदयपुर, बीकानेर, अमरावती आदि स्थानो पर कई शाखाए थी। बम्बई मे राजस्थानी साहूकारो की सर्वप्रथम शाखा खोलने का श्रेय भी उन्ही को है। जयपुर के एक अन्य जैन साहूकार देवीचन्द कोठारी की मालवा, कलकत्ता, बम्बई, कानपुर, फरुखाबाद आदि स्थानो पर ५४ शाखाए थी। सरदारशहर के सेठ चैनरूप दूगड के घराने की "चैनरूप सम्पतराम" फर्म की कलकत्ता के बाजार मे काफी प्रतिष्ठा थी। यह फर्म विदेशी कपडे का सीधे इगलैण्ड से आयात करती थी। चूरू की ही एक अन्य फर्म "रुक्मानन्द-सागरमल" (बोथरा) जापान तथा इगलैण्ड से विदेशी कपडे का आयात करती थी। चूरू के त्यागी जैन साहूकार चिमनाराम मोदी के घराने की दुकानें भी अनेक स्थानो मे फैली हुई थी। दिल्ली मे उनकी फर्म "जयदयाल भीमराज" के नाम से प्रसिद्ध थी तो कलकत्ते में "बैजनाथ बालचन्द" के नाम से विख्यात थी।

उन्नीसवी सदी में कई जैन साहूकारो का मुख्य व्यवसाय भूमि-कर और सायर वसूली का इजारा लेना था। इसके साथ-साथ वे लोग जमीदारी का काम-काज भी करते थे। १८५१ ई० तक उदयपुर राज्य की सम्पूर्ण सायर वसूली का ठेका सेठ जोरावरमल के पास रहा था। अजमेर और ब्यावर की सायर वसूली का इजारा भी काफी वर्षों तक जैन साहूकारो ने ले रखा था। जैसलमेर राज्य से भूमि-कर वसूली का इजारा कुछ वर्षों तक सेठ गणेशदास बहादुरमल के पास रहा था।

सिरोही के बापना परिवार की "सूराजी फूलचन्द" फर्म भी भूमि-कर उगाही तथा सायर वसूली के इजारे लेने का काम करती थी। उदयपुर के प्रेमचन्द बापना का घराना भी इजारेदारी का काम करता था।

उन्नीसवी सदी के उत्तरार्द्ध मे राजस्थान की आर्थिक स्थिति मे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुये। अग्रेजो ने राजपूताना को भी अपनी आर्थिक साम्राज्यवादी नीति मे लपेट लिया। परिणामस्वरूप विभिन्न राज्यो मे खानो का उत्खनन बन्द हो गया। नमक-उद्योग पर ब्रिटिश सरकार का एकाधिकार कायम हुआ। रेल मार्गों के खुल जाने से हजारो बनजारो का व्यवसाय सीमित हो गया। पुराने व्यापारिक केन्द्रो का महत्त्व भी जाता रहा। भूमि बन्दोबस्त और चु गी की सशोधित व्यवस्था ने क्रमश भूराजस्व और सायर वसूली की इजारा प्रथा को समाप्त कर दिया। राज्यो मे आधुनिक खजानो की स्थापना ने राज्यो के साथ लेन-देन और ब्याज के व्यवसाय को भी काफी सीमित कर दिया। इस प्रकार, धन-सम्पत्ति अर्जित करने के परम्परागत साधन सीमित होते गये परन्तु नये साधन उपलब्ध नही हुए। ऐसी स्थिति मे राजस्थानी व्यापारियो और सेठ-साहूकारो ने राजस्थान के बाहर ब्रिटिश प्रान्तो तथा अन्य देशी रियासतो मे अपना भाग्य आजमाने का प्रयत्न किया। यह क्रम बीसवी सदी मे भी जारी रहा।

राजस्थान के बाहर भाग्य आजमाने जाने वाले व्यापारियो एव साहूकारो मे भी जैन साहूकारो की सख्या अधिक रही। सुदूर अनजाने प्रदेशो मे जाना और वहा बसना सरल काम नही था। फिर भी जैन साहूकारो ने अद्भुत साहस का परिचय दिया। बगाल, आसाम, मद्रास आदि प्रान्तो मे उन्नीसवी सदी के बीतते न बीतते अनेक प्रसिद्ध जैन गद्दियो का आविर्भाव हो गया। प्रारम्भ मे वे लोग बेनियन हुए। फिर मुतसद्दी, मुनीम और दलाल हुए। किन्तु बीसवी सदी के प्रारम्भ मे हम उन्हे प्रमुख बैंकर, कपडे के बडे व्यापारी, प्रधान जूट बेलर, अग्रिम पक्ति के लोहे के व्यापारी, चाय बागानो के स्वत्वाधिकारी, अफीम के प्रतिष्ठित व्यापारी के रूप मे देखते हैं। कलकत्ता की प्रसिद्ध फर्म "रूक्मानन्द वृद्धिचन्द" जो बाद मे "तेजपाल वृद्धिचन्द" के नाम से विख्यात हुई, चूरू के जैन साहूकारो की ही थी। इसी प्रकार, "मैसर्स चैनरूप सम्पतराम" फर्म सरदारशहर के जैन साहूकार की थी। जोधपुर के सेठ लालचन्द बोथरा ने बगाल मे "लालचन्द अमानमल" फर्म स्थापित की। चूरू के बोथरा परिवार ने भी कलकत्ता मे "रूक्मानन्द सागरमल" नामक फर्म स्थापित की। रतनगढ के सेठ माणकचन्द बैंद ने कलकत्ता मे "माणकचन्द हुक्मचन्द" नामक फर्म कायम की। चूरू के वेद उदयचन्द पन्नालाल और राजलदेसर (बीकानेर) के सेठो की "खडगसिंह लच्छीराम" फर्म कलकत्ते की प्रसिद्ध फर्मों मे से एक थी। पाली मारवाड के कोठारी नरसिंह के पुत्रो ने बम्बई मे "सागरमल निहालचन्द" फर्म स्थापित की। सेठ अमरसी ने हैंदराबाद दक्षिण मे "अमरसी सुजानमल" नामक सुविख्यात फर्म कायम की। इन लोगो के अतिरिक्त अनेक ऐसे जैन परिवारों का उल्लेख मिलता है जो कि एक लोटा डोर लेकर कमाने के लिए बाहर निकल पडे और हजारो मील की दूरी तय करके अनजान इलाको मे बस गये और वहा व्यापार-वाणिज्य द्वारा अच्छी सम्पत्ति अर्जित की और उन इलाको मे राजस्थानी सस्कृति के साथ-साथ जैन धर्म का आलोक भी फैलाया।

राजस्थानी सेठ-साहूकारो ने शुरू में वाणिज्य को ही अपनाया। उद्योग और उत्पादन के क्षेत्र में वे काफी देर से उतरे। परन्तु इस क्षेत्र में भी जैन साहूकार अग्रणी रहे। जयपुर के कोठारी

चादमल ने सर्वप्रथम अजमेर में आइस फैक्टरी कायम की। उन्होने अजमेर में एक आयरन एण्ड ब्रास फाउण्डरी, मडावर में एक जिनिग फैक्टरी तथा जयपुर में आइस फैक्टरी भी खोली। अजमेर के सेठ हमीरसिह लोढा ने ब्यावर में एडवर्ड मिल की स्थापना करके राजस्थान में वस्त्र-उद्योग को प्रोत्साहन दिया। जयपुर के गुलाबचन्द वेद ने जवाहरात उद्योग को आगे बढाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। राजस्थान के बाहर बसे राजस्थानी सेठ-साहूकारो पर ब्रिटिश सरकार द्वारा लगाये गये विशेप प्रतिबन्धो के कारण वे लोग अपने-अपने राज्यो में कारखाने स्थापित करने में असमर्थ थे। यही कारण है कि चाहते हुए भी वे अपने राज्यो में उद्योग-धन्धो का विकास नहीं कर पाये।

इस प्रकार, उन्नसवी सदी के राजस्थान में वोहरगत, हुडो-व्यवसाय, व्यापार-वाणिज्य, इजारा व्यवसाय आदि सभी आर्थिक गतिविधियो में जैन साहूकारो ने महत्त्वपूर्ण भाग लिया और व्यापार-वाणिज्य को उन्नत बनाये रखने में अपना अथक सहयोग प्रदान किया।

४५ | बीकानेर राज्य के आर्थिक विकास में जैनियों का योगदान
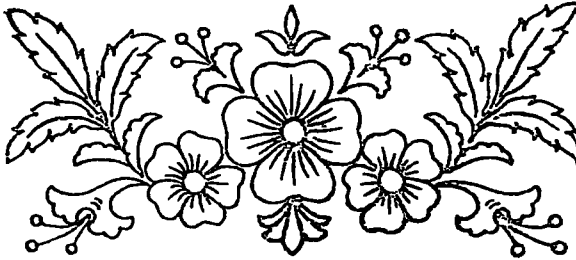
श्री गिरिजाशकर शर्मा

पृष्ठभूमि

बीकानेर राज्य के इतिहास मे जैन धर्मावलम्बियो का अपना एक विशिष्ट स्थान रहा है। राज्य के स्थापना काल से लेकर राजस्थान मे इसके एकीकरण तक जैन घराने बीकानेर राज्य की प्रशासनिक, सैनिक एव राजनैतिक सेवा मे सलग्न रह कर काफी ख्याति कमा रहे थे, तो दूसरी ओर इन्ही घरानो के अन्य लोग राज्य के वाणिज्य-व्यापार एव औद्योगीकरण मे भाग लेकर इसकी आर्थिक स्थिति सुदृढ करने मे व्यस्त थे। जब राव बीका ने बीकानेर राज्य की स्थापना करने के लिये जोधपुर राज्य से कूच किया तो उनके साथ जैन धर्मावलबी ओसवाल जाति के बच्छावत मेहता वरसिंह, वैद मेहता लाला और लाखणसी व कोठारी चौथमल मुतसद्दी के रूप मे आये।[1] राज्य की स्थापना के बाद इन लोगो को राज्य मे अनेक उच्च पदो पर नियुक्त किया गया। इनके बाद इनके वशजो मे मुख्य रूप से कमचद, वैद मेहता अबीरचद व मेहता हिन्दुमल तो अमात्य एव प्रधान अमात्य पदो को भी सुशोभित कर चुके थे। इन घरानो के अतिरिक्त सुराणा, राखेचा, एव नाहटा आदि कई जैन धर्मावलबियो के वशजो ने राज्य के उच्च पदो पर रहकर सैनिक एव राजनैतिक सेवाएँ देने का अवसर प्राप्त किया था। यहा यह द्रष्टव्य है कि महाराजा सरदारसिंह के शासन तक (सन् १८७२) राज्य के उच्च एव दायित्वपूर्ण पदो पर वैश्य वर्ग विशेषत जैन ओसवालो की प्रधानता रही।[2] इस समय तक प्रधान मत्री की अपनी अन्य जिम्मेवारियो के अतिरिक्त राज्य की आर्थिक स्थिति सुदृढ करना मुख्य जिम्मेवारी मानी जाती थी।[3] प्रस्तुत निबध मे हम उक्त घरानो एव समय-समय पर राज्य के विभिन्न भागो मे आकर बसने वाले वाणिज्य व्यापार मे सलग्न जैन धर्मावलम्बी लोगो का, राज्य की आर्थिक स्थिति सुदृढ करने मे जो योगदान रहा उस पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे।

सन् १८७४ मे जिस समय केप्टिन पाउलेट ने राज्य का गजेटियर तैयार किया था, उस समय बीकानेर के अस्सी प्रतिष्ठित व्यापारिक घराने वैद मेहता लाला को अपना पूर्वज मानते थे तथा

---

१ पाउलेट—गजेटियर ऑफ दी बीकानेर स्टेट, पृष्ठ १।

२ गौरीशकर हीराचद ओझा—बीकानेर राज्य का इतिहास (द्वितीय भाग), पृष्ठ ७५३।

३ गौरीशकर हीराचद ओझा—बीकानेर राज्य का इतिहास (द्वितीय भाग), पृष्ठ ७८४।

पाच अन्य व्यापारिक घराने कोठारी चौथमल को अपना पूर्वज मानते थे ।[1] ये दोनो राव बीका के साथ जोधपुर से आये थे । इनके अतिरिक्त बीकानेर के शासको ने राज्य मे अनेक गावो एव कस्बो को बसाने के लिये समय-समय पर राज्य के बाहर के व्यापारियो को निमन्त्रण दिया और यहाँ बसने के लिये उन्हे अनेक सुविधाएँ प्रदान की । इससे राजपूताने की अनेक रियासतो के व्यापारियो ने राज्य मे आकर अपना वाणिज्य व्यापार प्रारभ किया । इन व्यापारियो मे भी जैन धर्मावलबी ही सबसे अधिक आकर बसे ।[2] जैन लोग अधिकतर राज्य के सुजानगढ, सरदारशहर, रतनगढ, राजलदेसर, डूगरगढ व चुरू मे आकर बसे थे । इनमे ओसवाल, सरावगी व जैन धर्म को मानने वाले अग्रवाल मुख्य थे । राज्य मे सन् १६२१ मे कुल व्यापारियो की सख्या ४५,१३३ थी जिनमे से आधे से अधिक २५,००० के लगभग केवल जैन धर्मावलबी २४,५५१, सरावगी ४४६ व शेष अग्रवाल जैन ही थे ।[3] इस प्रकार राज्य मे अनेक जैन जाति के घराने यत्र तत्र बिखरे हुए थे, उनमे मुख्य घरानो के मूल नाम इस प्रकार है —

बाघचार, बडेर, धाडीवाल, भाडावत, शाह, मन्नी, साड, बूचा, मरोहठी, सेठिया, मालू, लोकडी, नाडबैद कोचर, सिरोहिया, बाफनिया, कोजतिया, भडारी, भूरा, सजती, रवड, लोनिया, सोनावत, चजलानी, ललवानी, फलोदिया, पनूचा, अभानी, बक्शी, दफ्तरी, कावडिया, आचलिया, सिपानी, हीरावत, आसाती, भूपानी, नाहर, खटोल, रामपुरिया, दोगड, मानोत, गोलछा, गलगलिया, खजाची, भडमाली, नाहटा, छाजेड, चोपडा, भादानी, मूडा, सुखानी, लढानी, बैद, बच्छावत, बडरिया, बेगानी, सावनसुखा, कोठारी, पारख, डड्ढा, बाठिया, कात्तेला, दसानी, लोढा, लालानी, पटवा, डागा, जैसलमेरी, डागाराजानी, पारखजेठानी, पारख पसारी, सिघी, सुराना, गुडिया, चोरडिया, सेठी, बोथरा, सनावत, चडालिया, गद्दैया, जलेबी चोर, डोसी, छुरिया, साकालिया, कुडलिया, गुडावत, भावक, सुजानी, राखेचा, पुगलिया, रतानी, काकरिया, कठोतिया व बाफना ।[4]

राज्य की ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था एव जैन व्यापारी

बीसवी सदी के प्रारभ तक राज्य मे ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था का आधार गावो एव कस्बो मे रहने वाले साहूकार एव महाजन ही थे, जो वैश्य जाति के प्रधान थे । सन् १६२१ तक राज्य मे ४७३४ व्यक्ति साहूकारी एव महाजनी के कार्य मे व्यस्त थे जिनमे भी ओसवाल जाति के लोग ही सर्वाधिक थे ।[5] प्रारभकाल से ही बीकानेर कृषि एव पशुपालन प्रधान राज्य था, तथा इसकी कुल

---

१ पाउलेट—गजेटियर ऑफ दी बीकानेर स्टेट, पृष्ठ १ ।

२ बीकानेर की परवाना वही, सवत् १८००–१६००, जो राजस्थान राज्य अभिलेखागार मे सुरक्षित है । इसके अनुसार बिलाडा से रामचद्र सुखानी, किशनगढ से मुहनोत आनन्दसिह, फकीरदास व बुधाराम तथा अन्य ओसवाल व्यापारियो को राज्य मे आने का निमन्त्रण दिया गया था । राज्य के शासक जैन सेठो को गाव अथवा कस्बो को बसाने के लिये चौधरी का पद भी इनायत किया करते थे । डूगरगढ के भादानी व सुजानगढ के कठोतिया क्रमश वहाँ के चौधरी थे ।

३ सैसस, बीकानेर स्टेट, सन् १६२१, पृष्ठ २६ ।

४ मुशी सोहनलाल—तवारीख राज बीकानेर, पृष्ठ ४६ ।

५ सैसस, बीकानेर स्टेट, सन् १६२१, पृष्ठ ३३ ।

जनसख्या का २/३ भाग केवल गावो मे रह कर ही अपना जीवन यापन करता था। किन्तु कम एव अनियमित वर्षा तथा नियमित अकालो के कारण ग्रामीण लोग अपना जीवन निर्वाह कठिनाई से किया करते थे। उनको अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति हेतु आर्थिक मदद के लिये, गाव अथवा पास के कस्बो के साहूकारो अथवा महाजनो पर ही मुख्य रूप से निर्भर रहना पडता था क्योकि राज्य मे इस समय तक राज्य की ओर से इस सम्बन्ध मे कोई विशेष व्यवस्था न थी।[1] कृषक एव पशुपालक बीज, हल एव पशु खरीदने से लेकर अपनी अन्य दैनिक आवश्यकताओ के लिये इन्ही साहूकारो एव महाजनो से रुपया उधार प्राप्त किया करते थे।[2] साहूकार एव महाजन ही मात्र ऐसा व्यक्ति था जिसे नियमित अकाल के कारण कृषक की फसल नष्ट होने का अनुमान होते हुए भी रुपया देने मे सकोच नही होता था, यही नही वह कृषक एव पशुपालक के अनुत्पादक खर्चों के लिये रुपया उधार दे दिया करता था। दूसरी ओर हम देखते हैं, राज्य की आर्थिक स्थिति को सुदृढ करने के लिये भू-राजस्व ही सबसे महत्त्वपूर्ण साधन था। राज्य मे नियमित भू-प्रबध से पूर्व गावो से भू-राजस्व वसूल करने मे इन वैश्य जाति के महाजन एव साहूकारो का योग कम न था। राज्य के ग्रामीण अचलो मे भू-राजस्व वसूल करने की मुख्य जिम्मेदारी गाव से सम्बद्ध हवलदार एव चौधरी की होती थी। अधिकाशत ये लोग भू-राजस्व की रकम ग्रामीण लोगो से सीधी वसूल न कर गाव के महाजन से एकमुश्त रकम प्राप्त करके गाव उसको सुपुर्द कर दिया करते थे तथा महाजन ग्रामीण लोगो से अपने पुश्तैनी लेनदेन के सम्बन्धो के कारण दी गयी रकम धीरे-धीरे वसूल कर लिया करते थे।[3] हालाकि गाव के इन साहूकारो एव ग्रामीण महाजनो की ऊँची ब्याज दर लेने के कारण आलोचना की जाती है किन्तु उस समय की राज्य की परिस्थितियो का अध्ययन किया जाय तो यह कहने मे कोई सकोच न होगा कि ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था को सुदृढ करने मे जितना इस वर्ग के लोगो ने योग दिया था उतना अन्य किसी ने नही।

राज्य का वाणिज्य-व्यापार एव जैन व्यापारी

ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था को सुदृढ करने मे ओसवाल जैन व्यापारी जिस प्रकार योग दे रहे थे, उसी प्रकार राज्य के वाणिज्य व्यापार मे भी उनका योग कम न था। प्रारभ से ही राज्य का व्यापारिक दृष्टि से बहुत महत्त्व था। राजगढ, चूरू व सुजानगढ आदि महत्त्वपूर्ण स्थान थे। इनमे से राजगढ तो बहुत बडा व्यापारिक स्थान था और भारत के उत्तरी भागो के सभी भागो से काफिले यहा आकर ठहरते थे। पजाब और काश्मीर की चीजें हासी और हिसार होकर सीधी यहा आती थी और पूर्वी भागो से दिल्ली, रेवाडी और दादरी होते हुए यहा रेशम, बढिया कपडा, नील, चीनी,

---

१ राज्य मे सन् १६३० तक कृषको को देवी विपत्तियो के समय करो मे कुछ छूट अवश्य दी जाती थी किन्तु राज्य की ओर से उनकी अन्य आवश्यकताओ की पूर्ति के लिये नकद भुगतान की विशेष व्यवस्था नही थी। इस समय तक किसी प्रकार की सहकारी समितियाँ भी सामने नहीं आई जो कृषको को ऋण दे सके।

२ राज्य मे सैंकडो ओसवाल साहूकारो को राज्य की तरफ से साहूकारी कार्यों को करने के पट्टे भी मिले हुए थे।

३ फेगन—सैटलमेंट रिपोर्ट, बीकानेर, पृष्ठ २०।

लोहा, तबाकू आदि आती थी। हाडौती और मालवा की तरफ से अफीम आता था जो राजपूताने की सभी रियासतो को जाता था। सिन्धु घाटी के प्रसिद्ध व्यापारिक स्थानो शिकारपुर और मुलतान से खजूर, गेहू, चावल, लू गी और फल आते थे। मारवाड मे पाली से विदेशो से समुद्री मार्ग से आयातित माल जैसे मसाले, दवाइया, नारियल आता था।[1] राजगढ से अनेक व्यापारी अपना माल रीणी होते हुए बीकानेर लाते थे तो कुछ लोग यहा से चूरू, रतनगढ एव सुजानगढ होकर फलोदी, नागौर और पाली की ओर चले जाते तथा अनेक व्यापारी यहा से पूगल होते हुए भावलपुर पहुचा करते थे। इसके अतिरिक्त भिवानी से मारवाड जाने वाले व्यापारी भी अपने माल के साथ शेखावटी की अपेक्षा बीकानेर राज्य मे से ही गुजरा करते थे क्योकि बीकानेर मे केवल एक जगह राजगढ अथवा सुजानगढ मे ही जकात देनी होती थी तथा इसके विपरीत शेखावटी मे वहा के ठाकुर इसे अनेक स्थानो पर वसूल किया करते थे। यहा यह द्रष्टव्य है कि उक्त व्यापार का कुछ भाग तो स्थानीय लोगो की आवश्यकता पूरी करता था परन्तु अधिकाश माल यहा से दूसरे स्थानो पर चला जाता था। इससे राज्य को राहदारी के रूप मे अच्छी आमदनी होती थी। चुरू, रतनगढ, सरदारशहर, सुजानगढ, डू गरगढ एव भादरा आदि के कस्बे जो कि राज्य के मुख्य व्यापारिक मार्गों पर स्थित थे, मे जैन व्यापारियो की सख्या सर्वाधिक थी। इन कस्बो के बाद राज्य की राजधानी मे भी इनकी सख्या काफी अधिक थी अत ऐसा कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि उक्त व्यापार को सम्पन्न करवाने मे अन्य जाति के व्यापारियो की अपेक्षा जैन धर्मावलबियो का सहयोग ही सर्वाधिक था।[2]

इस समय तक ओसवाल लोग अफीम का सौदा, घी, गल्ला, कपडा, ब्याज बट्टे व आढत का काम ही मुख्य रूप से किया करते थे तथा राज्य से माल का आयात भी किया करते थे।[3] परन्तु ज्योही ब्रिटिश भारत मे नयी व्यापारिक मडिया स्थापित हुई और यहा व्यापार मे लाभ के अधिक अवसर दिखायी दिये तो राजपूताने के अन्य व्यापारियो की भाति यहा के व्यापारियो का ध्यान भी उस ओर गया। दूसरी ओर राज्य मे बार-बार अकाल, जागीरदारो द्वारा सेठ-साहूकारो को तग करने एव महाराजा सूरतसिह के समय गृह युद्ध एव बाहर के अनेक युद्धो के कारण असुरक्षा की भावना, ब्रिटिश नीति के कारण राज्य का परम्परागत व्यापार एव व्यापारिक मार्गों के नष्ट हो जाने, राज्य मे कर भार अधिक होने एव अत मे शासको द्वारा अप्रत्यक्ष प्रोत्साहन ने यहा के व्यापारियो को अपने जीवनयापन के लिये ब्रिटिश भारत मे एव दक्षिण भारत की रियासतो मे जहा उन्हे उक्त सभी कठिनाइयो से छुटकारा मिलना सभव था, निष्क्रमण कर दिया।[4] इस प्रकार जैन जाति के ओसवाल एव सरावगी भी अन्य जाति के साहसी एव अध्यवसायी लोगो के साथ ही देश मे दूर-दूर

---

१ टाड, राजस्थान का इतिहास, पृष्ठ ११५४–११५५।

२ इस काल की परवाना बही एव कागदो की बहियो मे जो राजस्थान राज्य अभिलेखागार मे सुरक्षित हैं, जैन जाति के सैकडो व्यापारियो का उल्लेख मिलता है, जो राज्य मे चारो ओर फैलकर व्यापार कार्य मे सलग्न थे।

३ मु शी सोहनलाल, तवारीख राज बीकानेर, पृष्ठ ७१।

४ इस सम्बन्ध मे गिरिजाशकर शर्मा का राजस्थान इतिहास काग्रेस के अष्टम अधिवेशन अजमेर मे पढा गया शोध पत्र "बीकानेर के व्यापारियो का निष्क्रमण एव उसके कारण" द्रष्टव्य हैं।

चारो ओर फैल गये। परन्तु राज्य के ओसवाल जाति के व्यापारी अधिकतर बगाल, मालवा, सेन्ट्रल प्राविन्स, बम्बई, मद्रास, हैदराबाद व मैसूर मे पहुँचे। वहा जाकर उन्होने कपडा, अफीम, जवाहरात, सोना, चादी, जूट, रुई, बैंकिग, कमीशन एजेन्सी, फाटका व ठेकेदारी को अपने व्यापार का माध्यम बनाया। यही नही राज्य के ओसवाल प्रथम मारवाडी व्यापारी थे जिन्होने विदेशो मे ब्रिटिश फर्मों से सीधे ही कपडे का आयात करना प्रारभ किया था। इनमे से अनेक जूट प्रेसो के मालिक, शिपर्स व अनेक कारखानो के मालिक हो गये थे। इन्ही ओसवालो मे से कुछ बडे-बडे बैंकर बनकर भारी मुनाफा कमा रहे थे जिन्हें ब्रिटिश भारत मे अच्छा सामाजिक सम्मान भी प्राप्त था।[1] इतना होते हुए भी इन प्रवासी ओसवालो का अपने मूल निवास स्थान बीकानेर राज्य से बराबर सम्बन्ध बना रहा।

ब्रिटिश भारत स्थित अपने व्यापारिक प्रतिष्ठानो के साथ-साथ अधिकाँश लोगो ने राज्य मे भी अपने प्रतिष्ठानो की सहायक शाखाए खोल रखी थी जिन्हे दीवानखाने कहा जाता था जिनमे ब्याज बट्टा एव सर्राफी व हूडी चिट्ठी का काम मुख्य रूप से हुआ करता था। इन व्यापारियो मे साहूकारी का धधा अनेक रूप मे प्रचलित था। कुछ लोग तो राज्य के कस्बो जहा से वे सम्बद्ध होते थे एव उसके आसपास तक अपने धधे को सीमित रखते थे। परन्तु बहुत से लोगो ने इसे अपने पैतृक धधे के रूप मे अपना रखा था और इनका अपनी ब्रिटिश भारत स्थित शाखाओ से बराबर सम्बन्ध बना रहता था। ये लोग हूडी लिखने का काम एव ब्याज पर रकम जमा करने के कार्य के साथ कमीशन एजेन्सी (आढत) का काम भी किया करते थे और कृपको एव पशुपालको द्वारा कस्बो मे लाई गयी उपज को बेचने आदि कार्य का दायित्व भी लेते थे। इन्ही मे से अनेक लोग राज्य के बडे-बडे कस्बो एव राजधानी बीकानेर मे बैंकर का ही काम करते थे। वे रुपया, सोना, चादी जमा करते थे, चालू खातो पर रुपया निकालने की सुविधा देते थे, हूडी व अन्य कार्मशियल प्रलेखो जैसे रेल्वे रिसीप्ट आदि को बेचने एव खरीदने का कार्य करते और मुद्दती और दर्शनी हुडियो का लेनदेन मे उपयोग करते थे। अनेक ओसवाल एव सरावगी व्यापारियो ने राज्य मे जब कम्पनीज रजिस्टर्ड होने

---

१ इनमे मैसर्स चैनरूप सम्पतराम दूगड, मैसर्स उदयमल चादमल, मैसर्स हस्तमल डागा, मैसर्स अगरचद जेठमल सेठिया, मैसर्स हजारीमल हीरालाल रामपुरिया, मैसर्स ताराचद मगराज, मैसर्स मन्नालाल सोभाचद सुराना, मैसर्स गिरधारीलाल रामलाल गोठी, मैसर्स जैसराज जैचन्दलाल बैद, मैमर्स तिलोकचन्द जयमल, मैसर्स खेतसीदास कालूराम, मैसर्स जैसराज रिधकरण, मैसर्स नगराज माणकचद, मैसर्स खूमचद तोलाराम, मैसर्स कालूराम नथमल, मैसर्स लच्छीराम मेघराज, मैसर्स तेजमल बिरधीचद, मैसर्स हजारीमल सिरदारमल, मैसर्स हजारीमल सागरमल, मैसर्स पन्नालाल सागरमल, मैसर्स गणेशदास मालचद, मैसर्स जैसराज गिरधारीलाल, मैसर्स पन्नालाल, गणेशदास, मैसस मगलचद उदयमल, मैसर्स मौजीलाल पन्नालाल बाठिया व मैसर्स गुलाबचद हनुवतराम बीकानेर राज्य की पुरानी ओसवाल व सरावगी फर्में मुख्य थी जो ब्रिटिश भारत व दक्षिणी रियासतो मे विभिन्न प्रकार के व्यापार कार्य मे सलग्न थी।

रागी तो अनेक कम्पनियों को रजिस्टर्ड करवाया और उन्ही के माध्यम से व्यापार किया ।[1]

राज्य का औद्योगीकरण और व्यापारी

राज्य मे सगठित उद्योगो का श्रीगणेश बीकानेर के महाराजा गगासिंह द्वारा सत्ता के वास्तविक अधिकार प्राप्त करने (सन् १९०८) से ही माना जा सकता है । इनकी मृत्यु (सन् १९४३) तक राज्य मे अनेक उद्योग धधे खुल चुके थे जिनका अधिक विकास उनके पुत्र महाराजा शार्दूलसिंह के शासन (१९४३-४८) काल मे हुआ था । इसमे पूर्व राज्य मे अनेक कुटीर लघु उद्योग भी प्रचलित थे जिनमे अधिकतर पशुपालन पर ही आधारित थे । इनमे ऊन उद्योग प्रमुख था । ऊन का न केवल निर्यात ही किया जाता था बल्कि उसको कातकर ऊनी लोइया, कम्बल व चटाइया बनाई जाती थी । पशुओ की खाल व चमडे का भारी उत्पादन होता था, उससे अनेक प्रकार की वस्तुए बनायी जाती थी जिनमे कुप्पिया बहुत प्रसिद्ध थी । इसके अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रो मे घी का उत्पादन भी अच्छा होता था जो राज्य मे खपने के अतिरिक्त कुछ निर्यात भी किया जाता था । पशुपालन पर आधारित कुटीर उद्योग धधो के अतिरिक्त हाथी दात की चूडियो पर सोने चादी के तार चढाने का काम भी बहुतायत से हुआ करता था । घरो मे रसोई मे काम आने वाले मिट्टी के बर्तन राज्य मे उपलब्ध लाल मिट्टी या चिकनी मिट्टी के बनाये जाते थे । पीतल के बर्तनो पर पालिश का सु दर काम किया जाता था । लाख के काम मे खिलौने, चूडिया, पीढे (स्टूल) और चारपाई के पावो पर लाख का रग चढाया जाता था । चीनी से मिश्री बनाने का काम भी भारत प्रसिद्ध था ।[2]

राज्य के औद्योगीकरण मे ब्रिटिश भारत एव अन्य दक्षिणी रियासतो मे निष्क्रमण किये हुए बीकानेर के वैश्य वर्ग ने खुलकर भाग लिया । हालाँकि दुर्भाग्यवश अनेक कारणो से राज्य का उतना औद्योगिक विकास न हो सका जितना अपेक्षित था किन्तु जितने औद्योगिक प्रतिष्ठान स्थापित किये गये उनमे ओसवाल जैन जाति ने कम योग नही दिया । महाराजा गगासिंह के शासनकाल मे मध्यम श्रेणी के उद्योगो मे सेठ चादमल ढड्ढा ने सर्वप्रथम १९२९ मे ऊन साफ करके काटे निकालने की बरिंग फैक्ट्री स्थापित की ।[3] ये राज्य के ओसवालो मे बहुत ही प्रतिष्ठित सेठ थे । दूसरे

---

१. इस दृष्टि से बीकानेर के सेठ पूरनचद चोपडा, जयचदलाल पुगलिया, तेजमाल चौपडा, केशरीचद बोथरा व चम्पालाल बाठिया ने रुई व्यापार के लिये 'दी गगानगर इण्डस्ट्रीज लिमिटेड', चौपडा परिवार के लोगो ने व्यापार एव बैंकिंग कार्य के लिये 'दी जनरल इन्वेस्टमेट एण्ड ट्रेडिंग कम्पनी लिमिटेड', सेठ आसकरण, नथमल लोढा, व रतनलाल रामपुरिया ने शेयर व्यापार के लिये 'दी राजपूताना इन्वेस्टमेट सिन्डीकेट लिमिटेड', सेठ लहरचद सेठिया, जुगराज सेठिया, मुन्नालाल बैद व जौहरमल सहवाग ने व्यापार व बैंकिंग कार्य के लिये 'दी राजपूताना कामर्शियल कम्पनी लिमिटेड', सुजानगढ के सेठ एम सी चोटारिया, के सी सेठिया, टी सी दूगड व सतोपचद बैद ने व्यापार व बैंकिंग कार्य के लिये 'ओरियन्ट ट्रेडिंग कम्पनी और सेठ मन्नालाल सरावगी व रतनलाल काला ने व्यापार व बैंकिंग कार्य के लिये 'ट्रेडर्स इन्वेस्टमेट कम्पनी' बना रखी थी ।

२ पोलिटिकल डिपार्टमेट, बीकानेर १९०६-१२ न० एफ-IV/१३९, पृष्ठ ९४ ।

३. रेवन्यू डिपार्टमेट, बीकानेर, १९३२ न० ए० १२९५-१३३५, पृष्ठ ५७ ।

ओसवाल व्यक्ति भैरूंदानजी सेठिया थे जिन्होने राज्य मे ऊन की गाठ वाधने के लिये ऊन प्रेस की स्थापना की थी। यह राज्य के ऊन उद्योग के लिये एक क्रातिकारी कदम था क्योकि राज्य मे स्थानीय उद्योग के रूप मे ऊन ही मुख्य वस्तु रही है जो राज्य के बाहर निर्यात की जाती थी। अग्रेजी बाजारो मे आस्ट्रेलियन ऊन की अपेक्षा वीकानेर की ऊन की साख थी किन्तु यहा की ऊन को विदेशो मे भेजने से पूर्व उसको गाठ बधवाने के लिये राज्य के सीमात क्षेत्र फाजिल्का मे भेजा जाता था। वहा पर उसमे पजाब की घटिया ऊन मिला दी जाती थी इससे विदेशो मे बीकानेरी ऊन की साख गिरने लगी थी। इन परिस्थितियो मे वीकानेरी ऊन की विदेशो मे साख पुन जमाने मे सेठ भैरूदान सेठिया ने बीकानेर मे सन् १९३० मे वूलन प्रेस की स्थापना कर भारी योग दिया।[1] उक्त वूलन प्रेस आज भी उनके पुत्र सेठ जुगराज व ज्ञानपाल सेठिया चला रहे है। सन् १९३४ मे ऊन साफ करने की वॉरिंग फैक्ट्री भी भैरूदान सेठिया ने लगाली थी।[2] इससे पूर्व एक अन्य ओसवाल सज्जन सेठ शिवचद झावक ने गगानगर मे ऊन साफ करने की फैक्ट्री कायम की थी।[3]

राज्य मे प्रथम मुद्रणालय की मशीन स्थापित करने मे ओसवालों ने ही पहल की थी। सेठ भैरूदान सेठिया के पुत्र सेठ लहरचद सेठिया ने सन् १९२४ मे "सेठिया प्रिंटिग प्रेस" खोलकर पुस्तक प्रकाशन मे भारी योग दिया।[4] राज्य मे गगानगर क्षेत्र मे अनेक काटन जिनिग एव प्रेसिग फैक्ट्रियो के मालिक वीकानेर के गगाशहर के ओसवाल जाति के ईसरदास चोपडा ही थे। राज्य मे बर्फ बनाने की अनेक फैक्ट्रिया स्थापित की गयी थी उनमे से वीकानेर मे श्री मोहनलाल रामपुरिया जो कि राज्य के प्रतिष्ठित ओसवाल रामपुरिया परिवार से सम्बद्ध थे, ने पब्लिक लिमिटेड कम्पनी के आधार पर "रामपुरिया आईस फैक्ट्री" स्थापित की तथा चूरू मे भी उसी प्रकार की आईस फैक्ट्री की स्थापना ओसवाल सेठ धनपतसिह कोठारी ने की थी।[5] राज्य की प्रथम पावरलूम फैक्ट्री जो राज्य के सरदारशहर कस्बे मे वडी सफलतापूर्वक चल रही थी के मालिक मैसर्स सागरमल मरूपचन्द ही थे।[6] मध्यम श्रेणी के उद्योगो के अतिरिक्त राज्य मे वृहत स्तरीय उद्योग खडे करने मे ओसवाल जैन पीछे नहीं रहे। हालाकि राज्य मे गगानगर क्षेत्र मे प्रथम चीनी मिल खोलने का सन् १९३७ मे प्रयास किया गया था किन्तु वह फेक्ट्री सफल न हो सकी थी। इस पर सन् १९४५ मे कोटा के एक ओसवाल दीवान वहादुर सेठ केसरी सिह बाफना ने इसको खरीदकर पब्लिक लिमिटेड कम्पनी की स्थापना कर उसका नाम "मैसर्स पोद्दार बाफना लिमिटेड" रखा।[7] इस कम्पनी की अधिकृत पूजी १ करोड रुपया थी। यह चीनी मिल बहुत ही सफलतापूर्वक चली। इसी फर्म ने राज्य डिस्टलरी, प्लास्टिक प्रोडक्ट्स फैक्ट्री, कन्फेक्शनरी, कार्ड बोड फैक्ट्री, बिस्कुट फैक्ट्री, फ्लॉर, सूजी व मैदा मिल, स्टार्च फैक्ट्री, ऑयल मिल व सोप फैक्ट्री स्थापित करने का प्रयत्न किया था जिनमे से कुछ को ही खोलने मे सफलता मिल

---

१ रेवन्यू डिपार्टमेट, वीकानेर, १९३४ न० वी० ९०७-९१०।
२ श्रीमान् धर्मभूपण दानवीर सेठ भैरूदानजी सेठिया की सक्षिप्त जीवनी, पृष्ठ १८।
३ रेवन्यू डिपार्टमेट, वीकानेर सन् १९३२ न० ए १२९५-१३३५, पृष्ठ ४८।
४ होम डिपाटमेट, बीकानेर, सन् १९२४ न० बी ३११४-९५, पृष्ठ १०।
५ इण्डस्ट्रियल डेवलपमेट इन दी वीकानेर स्टेट, १९४३-४६, पृष्ठ २१।
६ रिपोर्ट ऑन दी एडमिनस्ट्रेशन ऑफ दी वीकानेर स्टेट, १९४४-४५, पृष्ठ ६५।
७ इन्डस्ट्रियल डेवलमेट इन दी बीकानेर स्टेट, १९४३-४६, पृष्ठ २२।

सकी थी। राज्य मे प्रथम वोन क्रशिग एण्ड वटन मेकिग फैक्ट्री चलाने का प्रयत्न ओसवाल फर्म मैसस पद्मचन्द भागचन्द ने ही किया था।[१] वडे पैमाने के अतिरिक्त राज्य को छोटे उद्योगो मे जैसे आटा पीसने की चक्की, दाल मिल व आईस केन्डी फैक्ट्रिया चलान म ओसवाल लोगो ने काफी सहयोग दिया।[२]

उपर्युक्त तथ्यो के आधार पर कहा जा सकता है कि बीकानेर राज्य के औद्योगीकरण मे जैनियो का योग काफी महत्त्वपूण रहा।

राज्य का बैंक व्यवसाय एव जैन व्यापारी

ज्यो ज्यो वाणिज्य व्यापार एव उद्योग धन्धो मे वृद्धि हो रही थी, उससे राज्य मे आधुनिक पद्धति के बैंक खोलने की आवश्यकता महसूस हो रही थी। ओसवाल लोगो ने अपने अन्य जाति के सहयोगियो के साथ मिल कर राज्य मे प्रथम बैंक सन् १९४३ मे "पारीक कामर्शियल बैंक की स्थापना की जिसकी इस्यूड केपीटल १ करोड रुपयो तक पहुच गयी थी तथा बम्बई, लाहोर, दिल्ली, कलकत्ता, जोधपुर एव जयपुर राज्य के अनेक स्थानो पर शाखायें स्थापित कर दी गयी थी। इसके निदेशक मडल मे सेठ छगनमल चोपडा, पूरनचद चोपडा एव लहरचन्द सेठिया जैसे के प्रतिष्ठित सेठ थे।[३] राज्य मे दूसरे प्रमुख बैंक "दी बैंक आफ बीकानेर लिमिटेड" की स्थापना सन् १९४५ मे की गयी थी। उसकी अधिकृत पू जी २ करोड रुपया थी तथा राजपूताने की अन्य रियासतो के साथ ब्रिटिश भारत मे उसकी सन् १९४७ तक ५२ शाखाए स्थापित हो चुकी थी उसके निदेशक मण्डल मे अन्य लोगो के अतिरिक्त सेठ भवरलाल रामपुरिया, सेठ बुधमल दूगड तथा बाद मे सेठ लालचद कोठारी सभी (ओसवाल) प्रतिष्ठित साहूकार थे।[४]

राज्य की विकास योजनाए एव जैन लोग

प्रारम्भ से ही राज्य की आर्थिक स्थिति सुदृढ न होने के कारण प्राय समस्त विकास योजनाओ मे यहा के धनीमानी सेठ साहूकारो ने सहयोग दिया। ये शिक्षा प्रसार, स्वास्थ्य सेवायें, सिंचाई सुविधाए, यातायात के साधनो को विकसित करने एव पेयजल की समस्या का समाधान करने से सम्बन्ध रखती थी। राज्य मे अकाल पडना एक साधारण बात थी, अत उससे निपटने के लिये सेठ साहूकारो ने अधिक से अधिक आर्थिक सहायता की। इसके अतिरिक्त राज्य युद्ध के समय एव आवश्यकता पडने पर अन्य अवसरो पर जनता से आर्थिक सहयोग प्राप्त करने के लिये ऋण जारी किया करता था उन ऋण-पत्रो को खरीदने मे सेठ साहूकार खुल कर सहयोग दिया करते थे। इन सेठ साहूकारो मे जैनियो का सहयोग द्रष्टव्य है। शिक्षा प्रसार के लिये मोमासर के सेठ इन्दरचद हीरालाल व गोरधन सचेती ने मोमासर मे अपर प्राइमरी एग्लो वर्नाकुलर स्कूल को लोअर मिडिल स्कूल बनाने के लिये बिल्डिग बना कर सहयोग दिया।[५] सेठ ईसरचद चोपडा ने राजलदेसर मे गर्ल्स

१ इन्डस्ट्रियल डवलपमेट इन दी बीकानेर स्टेट, १९४३-४६, पृष्ठ १८।

२ रेवन्यू डिपार्टमेट, बीकानेर, १९३४ न० बी—१९४८, पृष्ठ १।

३ इडस्ट्रियल डेवलपमेट इन दी बीकानेर स्टेट सन् १९४३-४६, पृष्ठ ९-१०।

४ इडस्ट्रियल इन दी बीकानेर स्टेट, सन् १९४३-४६, पृष्ठ १-८।

५ होम डिपार्टमेट, बीकानेर, सन् १९३५ न० ए० १७३-१७७ पृष्ठ ४।

स्कूल के भवन के लिये १० हजार रुपया दिया था ।[१] सेठ ईसरचद चोपडा ने गगाशहर मे 'भैरूदान चोपडा हाई स्कूल' के भवन का निर्माण करवाया था ।[२] वीकानेर के जैन समाज की ओर से राजधानी में एक जैन पाठशाला व एक लडको एव लडकियो के लिये स्कूल चलता था ।[3] भीनासर के सेठ कानीराम वाठिया ने भीनासर मे एक एग्लो वरनाकुलर प्राइमरी व बाद में लोग्रर मिडिल स्कूल स्थापित किया ।[४] रतनगढ मे स्कूल स्थापित करने में जालान घराने के साथ ओसवाल सेट मालचद वैद, गुरमुखराय नवलखा ने भी सहयोग दिया ।[५] सरदारशहर के दूगड परिवार ने प्रारभ में एक हाई स्कूल का निर्माण करवाया तथा वाद में गाधी विद्या मन्दिर के अन्तर्गत यहा पर वेसिक हाई स्कूल, बेसिक टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, वालवाडी, ग्राम ज्योति केन्द्र, आयुर्वेद विश्व भारती व सेठ बुधमल डिग्री कॉलेज की स्थापना कर सरदारशहर के एक पिछडे हुए छोटे से कस्वे को भारत के प्रमुख शिक्षा केन्द्रो में परिवर्तित कर दिया ।[६] चूरू का जैन श्वेताम्वर हाई स्कूल, सिघमुख का राजकीय हाई स्कूल, सुजानगढ का वगडिया हायर सेकण्डरी स्कूल, शिष्ट विद्यालय चूरू, सरदारशहर का सम्पतराम दूगड विद्यालय, राजकीय स्कूल परिहारा के अतिरिक्त वीदासर, छापर व डूगरगढ मे स्कूलो की स्थापना वहा के स्थानीय जैन परिवारो के सहयोग से की गयी थी ।[७] सुजानगढ मे ओसवाल समाज के सेठिया परिवार ने लडकियो के लिये प्रथम "सोनादेवी सेठिया गर्ल्स कॉलेज की स्थापना कर उच्च शिक्षा के लिये महान् कार्य किया ।[८] बीकानेर के प्रमुख ओसवाल जाति के रामपुरिया परिवार ने प्रारभ मे रामपुरिया हाई स्कूल की स्थापना कर वाद मे इसे बी० जे० एस० रामपुरिया जैन कॉलेज का रूप दिया ।[९] बीकानेर के ही ओसवालो के सहयोग से वीकानेर मे जैन पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज चल रहा है । उक्त दोनो जैन कॉलेजो का पुराना इतिहास रहा है ।

राज्य के जैन परिवारो ने स्कूल व महाविद्यालय ही स्थापित नही किये वल्कि ऐसे ऐसे पुस्तकालय स्थापित किये जिनकी भारत भर मे प्रतिष्ठा है । चूरू के ओसवाल सेठ तोलाराम सुराना ने सन् १९२० मे सुराना लाइब्रेरी की स्थापना की थी । इसमे हजारो वहुमूल्य पुस्तको के अतिरिक्त करीब २००० अलभ्य मैन्युस्क्रिप्ट थे । आज भी यह पुस्तकालय उनके परिवार के सदस्य सेठ निरमलकुमार सिंह सुराना की देखरेख मे है । श्री डूगरगढ पुस्तकालय की स्थापना (सन् १९४१) मे ओसवाल सज्जनो का सहयोग सराहनीय था । राजलदेसर का शाति पुस्तकालय भी ओसवाल समाज का सहयोग प्राप्त करने पर ही स्थापित हो सका ।[१०] महाराज शार्दुलसिह जी के समय कस्वे के विकासार्थ गठित

---

१ होम डिपार्टमेट, वीकानेर, १९३५, न० ए० १३४-१४२, पृष्ठ ३ ।
२ रेवन्यू डिपार्टमेट, वीकानेर, १९३४ न० बी ३००९-३०२३, पृष्ठ २१ ।
३ रेवन्यू डिपार्टमेट, वीकानेर, १९३४ न० वी २९५०-२९५३, पृष्ठ ५ ।
४ रेवन्यू डिपार्टमेट, वीकानेर, १९३३ न० वी० १७२५-१७३९, पृष्ठ १८ ।
५ होम डिपार्टमेट, वीकानेर, १९१४ न० ४३७-४४२, पृष्ठ १२ ।
६ श्री भवरलाल दूगड स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ ३१५-३२४ ।
७ राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स, चूरू, पृष्ठ २९४-२९७ ।
८ राजस्थान डिस्ट्रिकट गजेटियर्स, चूरू, पृष्ठ २८४ ।
९ रेवन्यू डिपार्टमेट, बीकानेर, १९३१ न० वी० २२४-२२९, पृष्ठ १ ।
१०. राजस्थान गजेटियर्स, चूरू पृष्ठ २८९-९० ।

श्री राजलदेसर यूनियन क्लब की कार्यकारिणी मे जैन परिवारो के लोग ही थे। सुजानगढ मे सेठ दानचन्द चोपडा ने एक पुस्तकालय की स्थापना की थी। बीकानेर का अभय जैन पुस्तकालय तो आज शोधजगत के अध्येताओ के लिये तीर्थ स्थल बन चुका है। इसके सस्थापक भारत के प्रसिद्ध जैन विद्वान श्री अगरचन्द नाहटा है। बीकानेर के दूसरे ओसवाल सेठ भैरू दानजी सेठिया थे जिन्होने राजधानी मे सेठिया लाइब्रेरी स्थापित की थी, जो आज भी उनके पुत्रो के सरक्षण मे चल रही है। बीकानेर मे श्री गोविन्दराम भसाली ने सन् १९३१ मे गोविन्द पुस्तकालय खोला। सन् १९३० मे श्री शकरदान नाहटा ने बीकानेर मे अगर जैन पुस्तकालय स्थापित किया। सन् १९१३ मे अगरचन्द भेरूदान सेठिया ने बीकानेर मे सेठिया वाचनालय खोला। सन् १९२४ मे श्री किशनचन्द पुस्तकालय, बीकानेर मे जैनियो द्वारा खोला गया था सन् १९२८ मे श्री शिखरचन्द कोचर, रामरतन कोचर व रतनचद चोपडा ने बीकानेर मे जैन परधान वाचनालय खोला। सन् १९३५ मे भैरू दान सुराना ने सुराना जैन पुस्तकालय खोला। सन् १९३३ मे सूरतगढ मे पारसनाथ जैन पुस्तकालय नानकराम डागा ने खोला था।

जिस प्रकार शिक्षा के प्रसार मे इस जाति ने सहयोग दिया उसी प्रकार स्वास्थ्य सेवा के प्रसार मे भी अच्छा सहयोग रहा। सन् १९३१ मे सुजानगढ के सेठ दानचन्द चोपडा ने वहा जनाना अस्पताल खोलने के लिये सब मिलाकर ७५,००० रुपये दिये।[1] गगानगर मे होस्पिटल खोलने के लिये वहा के सेठ भेरू दान ईसरीचन्द चोपडा ने ११,००० रुपये चूरू के ओसवाल सेठ मूलचन्द मालचन्द कोठारी ने १,५०० रुपये, चूरू के ही सेठ तेजपाल विरधीचन्द सुराणा ने १०१ रुपये, बीदासर के सेठ भेरू दान दूगड ने १,१००, सेठ नेमचन्द छाजेड सरदार शहर ने १,१०० रुपये दिये। इसके अतिरिक्त सरदार-शहर के सेठ नेमचन्द गद्दैया फूसराज दूगड, आनन्दराज लूणिया व बीकानेर के सेठ भैरू दान सेठिया, कानीराम बाँठिया ने भी आर्थिक सहायता प्रदान की।[2] बीकानेर के सेठ भेरूदान सेठिया ने एक होम्योपैथिक औषधालय स्थापित किया तथा एक अन्य ओसवाल सज्जन भेरूदान कोठारी ने आयुर्वेदिक औषधालय खोला था। इसके साथ ही राज्य के अनेक भागो में इस जाति के सज्जनो ने आयुर्वेदिक औषधालय खोलकर जन सेवा की।

राज्य मे जब महाराजा गगासिह को गगनहर लाने के लिये आर्थिक कठिनाई हुई तो अन्य सेठ साहूकारो के साथ ओसवाल सज्जनो मे हजारीमल हीरालाल रामपुरिया ने ५ लाख रुपये सुजानगढ के दानमल चोपडा ने १,५०,००० रुपये एव सुजानगढ के ही बालचन्द आसकरण ने ५०,००० रुपयो के बोण्ड खरीद कर राज्य की सहायता की। इसी प्रकार से जिस समय राज्य की ओर से वारलोन के बोण्ड जारी किये गये थे, उन्हे ओसवाल सज्जनो ने भारी मात्रा मे खरीद कर राज्य की सहायता की। इनमे सरदारशहर का दूगड परिवार, चूरू के सेठ केसरीचन्द कोठारी, सुजानगढ के थानमल रामपुरिया व चूरू के सेठ सागरमल वैद के नाम उल्लेखनीय हैं।[3]

राज्य के पास अकाल से निपटने के साधन अपर्याप्त थे, अत राज्य को इन अवसरो पर सेठ साहूकारो से आर्थिक सहायता की आवश्यकता रहती थी। अन्य जाति के सेठ साहूकारो के साथ इस जाति के लोगो ने भी राज्य को अकाल से उबारने के लिये धन देकर सहायता की सन् १८९९-

---

१ रेवन्यू डिपार्टमेट, बीकानेर, १९३१ न० बी० २२४-२२९, पृष्ठ १३।

२ रेवन्यू डिपार्टमेट, बीकानेर, १९३२ न० ए० १४६७-८०, पृष्ठ ३।

३ आदर्श श्रावक श्री सागरमल जी वैद, पृष्ठ ३३।

१९०० के भयकर अकाल के समय चूरू के गुरमुखराम सागरमल ने ४,००० रुपये सरदारमल कोठारी और बिरधीचन्द ने ५००, सरदारशहर के चैनरूप सम्पतराम दूगड ने १५,७५० रु०, इन्दरचन्द ने २,०२५ रु०, बीजराज कालूराम दूगड ने ३,३७५ रु०, हीरालाल बाघमल नाहटा ने २,७०० रु०, मेघराज दूगड ने ६०० रु०, प्रतापमल चौथमल दूगड ने २,७०० रु०, कालूराम श्रीचद सेठिया ने १,३५० रु०, राजलदेसर के सेठ छोगमल ग्रोमचन्द बैद ने १,४२५ रु०, हीरालाल बोथरा ने १०५० रु व जयचन्दराय ग्रासकरण बैद ने ८,००० रु० दान दिये ।[1] इसके अतिरिक्त सन् १९३८-३९ के अकाल मे भी राज्य के ओसवाल अर्थसहयोग मे पीछे नही रहे । रतनगढ के सेठ मोहन लाल बैद, लूणकरणसर के जेठमल बोथरा, बीकानेर के सेठ भैरूदान सेठिया, सरदारशहर के गिरधारीमल, सरदारमल बगडिया, चूरू के लखनलाल शिवप्रताप सरावगी, सेठ भैरूदान ईसरचन्द चोपडा, सेठ चम्पालाल बाठिया, सेठ अगरचन्द भैरूदान सेठिया, सेठ पूरनचन्द कोठारी व सेठ बिरधीचन्द करवा, मगनमल कोठारी, सेठ चम्पालाल सरावगी, मालचन्द लोढा, रावतमल श्रीराम सरावगी, करनीदान रावतमल कोठारी, मूलचद बालकिशनदास कोठारी, आदि के नाम उल्लेखनीय हैं जिन्होने अकाल के समय अनेक रूपो मे धन से सहायता की ।[2]

राज्य के आर्थिक विकास मे आने वाली बाधाओ को दूर करने मे जैन लोगो का योग

जिस प्रकार से इस जाति के लोग राज्य की विकास योजना मे धन से सहायता कर रहे थे तो दूसरी ओर इन्ही मे से अनेक लोग राज्य के आर्थिक विकास मे आने वाली वाणिज्य व्यापार औद्योगिकरण, यातायात के साधनो, दूर सचार के साधनो के सम्बन्ध मे आने वाली बाधाओ को दूर करवाने के लिए राज्य सरकार पर जोर डाला करते थे । ओसवाल जाति के अनेक प्रमुख सेठ साहूकार राज्य विधान सभा के नामजद एव निर्वाचित सदस्य थे ।[3] उन्होने राज्य सभा के सत्र अधिवेशनो मे नियमित भाग लेकर राज्य सरकार को बाध्य किया कि जगात एव आयकर सम्बन्धी कानूनो में परिवर्तन करे । उद्योग स्थापित करने के लिए आवश्यक सुविधा प्रदान करे, राज्य को भारत के अन्य व्यापारिक केन्द्रो से जोडने के लिए रेल निर्माण करायें, दूर सचार के लिए तार घर व टेलीफोन आदि

---

१. महकमा खास, बीकानेर, १९०० न० ६८, पृष्ठ ५-९ ।

२ रिपोर्ट ग्रान दी फेमीन रिलीफ ग्रापरेशन्स इन दी बीकानेर स्टेट १९३९-४०, पृष्ठ २१-११३ ।

३ बीकीनेर की राज्य सभा के प्रमुख जैन सभा सदस्य ये थे जो सन् १९१३ से १९४६ तक समय-समय पर नामजद एव निर्वाचित हुए—सेठ चादमल ढड्ढा, भैरू दान छाजेड, सेठ गणेशदास गद्दैया, सेठ दौलतराम भण्डारी, सेठ लक्ष्मीचन्द नाहटा, सेठ पन्नेचन्द सिंघी, हरखचद भादानी, सेठ फूसराज दूगड, मूलचद कोठारी, रामलाल नाहटा, शुभकरण सुराना, सेठ मालचद कोठारी, सेठ पूनमचद नाहटा, सेठ चुन्नीलाल चोपडा, सेठ कानीराम बाठिया, सेठ भैरू दान सेठिया, सेठ चम्पालाल कोठारी, सेठ बिरधीचद करवा, सेठ मोहलाल बैद, सेठ दानमल चोपडा, सेठ सूरजमल सरावगी, सेठ लहरचद सेठिया, सेठ भवरलाल रामपुरिया, सेठ ईसरचद चोपडा, सेठ चम्पालाल बाठिया, सेठ श्रीचद सुराना, सेठ सुमेरमल दूगड, सेठ बिरधीचद गद्दैया, सेठ पूनमचद बैद, सेठ जैसराज कठोतिया व सेठ रगलाल बगडिया ।

की व्यवस्था कराये । वाणिज्य व्यापार को सम्पन्न करते समय अनेक समस्याये खडी होती थी, उनके लिए कानूनो का निर्माण करायें । इसके अतिरिक्त राज्य मे आर्थिक मामलो के लिए राज्य सरकार ने अनेक कमेटियो का निर्माण किया उनमे जैन जाति के सेठ साहूकार भी नियुक्ति किए गए ।[1] इन कमेटियो के माध्यम से राज्य सरकार को जो सलाह दी जाती थी उसे उसने स्वीकार कर राज्य में वाणिज्य व्यापार, बैंकिंग एव औद्योगिक विकास किया ।

अन्त मे इस निष्कर्ष पर पहुचने मे कोई कठिनाई नही होती कि राज्य की लघुतम इकाई ग्राम, जहा कृषि एव पशु पालन ही मुख्य उद्यम था से लेकर बडे बडे कस्बो, शहरो एव राजधानी बीकानेर जहा वाणिज्य व्यापार एव उद्योग धधे प्रगति पर थे का आर्थिक आधार तो राज्य का समस्त वैश्य वर्ग ही था किन्तु उसमे भी राज्य के जैन परिवारो का योग सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण था । राज्य के जैन वर्ग ने यहा की व्यावसायिक महत्त्वपूर्ण प्रगति में तो योग दिया ही, प्रत्युत व्यावहारिक शिक्षा द्वारा राज्य के छात्रो को कर्मठ नागरिक बनाने की ओर भी उन्होने ध्यान दिया । उन्होने राष्ट्र की भावी प्रगति की जड को समय पर परख लिया था, उसी का ही परिणाम है कि आज देश में विभिन्न क्षेत्रो में जैन जाति व अन्य जाति के राजस्थानी लोग व्यापार व उद्योग में कुशलता से अपना कीर्तिमान स्थापित कर रहे है ।
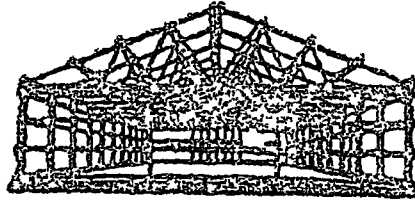
१ राज्य की उद्योग विकास समिति जो सन् १९२१ मे स्थापित की गई थी मे सेठ चादमल ढ्ढ्ढा ओसवाल सदस्य थे ।

४६ जोधपुर के औद्योगिक क्षेत्र में जैन समाज का योगदान

०

श्री घेवरचद कानूगो

प्रतिकूल भौगोलिक परिस्थितियो के कारण जोधपुर सदैव से ही औद्योगिक दृष्टि से पिछडा हुआ रहा है। स्वतन्त्रता के पश्चात् ही जोधपुर का औद्योगिक स्वरूप निखरा है। जोधपुर के औद्योगिक स्वरूप को परिष्कृत करने मे जैन समाज का महत्त्वपूर्ण योग रहा है। उच्च कोटि की औद्योगिक क्षमता और प्रबन्ध कुशलता के योग से जैन समाज ने विषम भौगोलिक परिस्थितियो और अन्य अभावो के बावजूद भी जोधपुर के औद्योगीकरण मे नये कीर्तिमान स्थापित किये है। इनके उद्यम, पू जी विनियोजन से राजस्थान के औद्योगिक मान-चित्र मे जोधपुर को विशिष्ट स्थान प्राप्त हुआ है।

जैन धर्मावलम्बियो द्वारा स्थापित प्रमुख इकाइयाँ—जोधपुर मे भारी उद्योगो का अभाव है तथापि मध्यम श्रेणी व लघु श्रेणी के उद्योगो का सराहनीय विकास हुआ है। जैन समाज के सदस्यो द्वारा स्थापित ऐसे उद्योगो की निम्न प्रमुख इकाइया है—

(१) ऊन उद्योग (२) अलोह धातु उद्योग (३) सूती वस्त्र उद्योग (४) उपभोक्ता सामग्री के निर्माता (५) विविध इकाइया—(क) प्लास्टिक उद्योग, (ख) रासायनिक उद्योग, (ग) धातु उद्योग अलोह 'धातु, (घ) ग्वार गम उत्पादक इकाइया, (ङ) टैंट निर्माण इकाइया।

अलोह धातु उद्योग—एल्कोवेक्स मैटल्स प्रा० लि० इस क्षेत्र की एक मात्र इकाई है। इसका वार्षिक उत्पादन (कुल मूल्य मे) ५ करोड रु० है। नान फैरस मेटल ब्रास, कोपर, एल्यूमिनियम, सिलिकोन, केडमियम, टेलुरीयम रोड्स व ट्यूब्स इसका प्रमुख उत्पादन है।

ऊन उद्योग—जोधपुर वूलन मिलस प्रा० लि० एक मात्र इकाई है। इसका वार्षिक उत्पादन अनुमानत ४ करोड रु० (कुल मूल्य मे) है। गलीचे, होजरी, परिष्कृत ऊन, धागा इसके प्रमुख उत्पादन है।

सूती वस्त्र उद्योग—जोधपुर मे सूती वस्त्र उत्पादन इकाइया बहुलता मे है। जैन मताव-लम्बियो की पन्द्रह इकाइया प्रति वर्ष अनुमानत ३ करोड रु० का उत्पादन करती है।

उपभोक्ता सामग्री के निर्माता —इस क्षेत्र मे लाइफ टाइम प्रोडक्टस कारपोरेशन प्रमुख है। बर्तन, स्टोव, तगारी, वाटर जग, रक्षा सम्बन्धी सामग्री का उत्पादन इस इकाई मे होता है।

विविध इकाइया —लघु उद्योगो के रूप मे अनेक इकाइया विद्यमान हैं। टैंटो के निर्माण मे मारवाड टैंट फैक्ट्री का नाम प्रमुख है। प्लास्टिक उद्योगो के अन्तगत भी कई इकाइया है।

रसायन —रासायनिक पदार्थों के उत्पादन की ओर भी कई इकाइया उन्मुख है। खाद्य-पदार्थों के उत्पादन की दृष्टि से ग्वार गम उत्पादन की कई इकाइया विद्यमान है। लकडी पर आधारित कई औद्योगिक इकाइया भी है।

उत्पादन (कुल मूल्य रु० मे) —उपर्युक्त सभी औद्योगिक इकाइया अपनी क्षमता के अनुरूप उत्पादन प्रक्रिया मे सलग्न है। कभी विद्युत् सकट, कभी श्रमिक अव्यवस्था एव अन्य प्रतिकूल परिस्थितियो के बावजूद भी पर्याप्त उत्पादन होता है। जोधपुर की समस्त औद्योगिक इकाइयो द्वारा उत्पादन मे जैन समाज की औद्योगिक इकाइयो का काफी बडा भाग शामिल है। इन औद्योगिक इकाइयो के उत्पादन को अनुमानत १–५ करोड रु० के मूल्य मे रूपातरित किया जा सकता है।

रोजगार व श्रम स्थिति —जैन समाज के सदस्यो द्वारा स्थापित ये औद्योगिक इकाइया तकनीशियनो श्रमिको व अन्य शिक्षितो को रोजगार का अवसर उपलब्ध कराने मे बहुत सहायक रही है। इन इकाइयो मे अनुमानत ३ हजार श्रमिक लगे हुए है? अप्रत्यक्ष रूप से भी रोजगार के अवसर अनेक वर्गों को प्राप्त हुए हैं और उपलब्ध अवसरो मे वृद्धि भी हुई है। इन औद्योगिक इकाइयो मे श्रम स्थिति सतोषप्रद है। श्रमिको को वेतन श्रम विभाग इजीनियरिंग वेज बोर्ड या श्रमिको के साथ हुए समझौते के अनुसार मिलता है। अकुशल श्रमिक को न्यूनतम वेतन २५०/– प्रतिमाह मिलता है वेतन के अलावा अधिकाश औद्योगिक इकाइयो मे भविष्य निधि, फैमिली पैंशन, ग्रेच्यूटी, ग्रूप इन्स्योरस आदि की सुविधाए भी उपलब्ध है। प्राय सभी श्रमिक यूनियनो से सम्बद्ध हैं और ये यूनियनें मान्यता प्राप्त है। औद्योगिक इकाइयो के प्रबन्धको व यूनियनो के बीच मधुर सम्बन्ध हैं।

निर्यात —जैन समाज के सदस्यो द्वारा स्थापित कुछ इकाइया निर्यात के क्षेत्र मे भी हैं। अपने श्रेष्ठ उत्पादनो से विदेशो मे बाजार निर्मित किये हैं। मध्यपूर्व एशिया, श्रीलका, नेपाल आदि इन औद्योगिक इकाइयो के बाजार हैं। इस प्रकार विदेशी मुद्रा प्राप्त करने मे इन औद्योगिक इकाइयो का महत्त्वपूर्ण योग है। एल्कोवेक्स मेटल्स प्रा० लि०, जोधपुर वुलन मिल्स प्रा० लि०, लाइफटाइम प्रोडक्टस इस क्षेत्र मे प्रमुख हैं। एल्कोवेक्स द्वारा उत्पादित विशिष्ट उत्पादनो ने इस क्षेत्र मे आयात मे कमी कर अमूल्य विदेशी मुद्रा की बचत मे सराहनीय योग दिया है।

जोधपुर मे औद्योगिक सभावनाए —जोधपुर औद्योगिक दृष्टि से अभी भी पिछडा हुआ है। यह पिछडापन प्रतिकूल भौगोलिक परिस्थितियो व अन्य साधनो के अभाव के कारण है। फिर भी उपलब्ध साधनो खनिज पदार्थों, पूजी और श्रम शक्ति को देखते हुए जोधपुर के औद्योगिक विकास की प्रचुर सभावनाए है।

पशुओ पर आधारित उद्योग —जोधपुर क्षेत्र मे अच्छी नस्ल की भेडें बहुतायत से हैं जिनसे अच्छे किस्म की ऊन प्राप्त की जाती है। अधिकाश ऊन बाहर भेज दी जाती है। अतएव जोधपुर मे ऊनी कपडा बनाने व ऊनी होजियरी की इकाइया स्थापित की जा सकती है।

पोर्टलैण्ड सीमेंट के कारखाने :—जोधपुर के निकटवर्ती क्षेत्रो मे चने के पत्थर के व जिप्सम के बडे भण्डार हैं। इतने विशाल भण्डार से देश के अन्य भागो की सीमेंट की आवश्यकता को पूरा किया जा सकता है। सफेद व रगीन सीमेन्ट की इकाइयो की स्थापना भी जोधपुर मे सभव है।

कांच बनाने का कारखाना —देश मे काच की बढती हुई माग को देखकर जोधपुर मे काच बनाने का कारखाना स्थापित किया जा सकता है, क्योकि जोधपुर क्षेत्र मे काच बनाने की मिट्टी प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध है।

स्कूटर, मोटर साइकिलो, ट्रेक्टर व उससे सम्बन्धित यत्रो के कारखाने —जोधपुर इन उपकरणो के उत्पादन हेतु सर्वथा उपयुक्त स्थान है। राजस्थान नहर एव अन्य सिंचाई परियोजनाए पूर्ण हो जाने पर ट्रेक्टर आदि की मात्रा बहुत बढ जाएगी अतएव ट्रेक्टर बनाने का कारखाना जोधपुर मे शीघ्रता से स्थापित होना चाहिये।

इसी प्रकार इजीनियरिंग उद्योगो, सूती वस्त्र की मिलो की स्थापना यहा हो सकती है।

४७ रत्न-व्यवसाय के विकास में जैनियों का योगदान
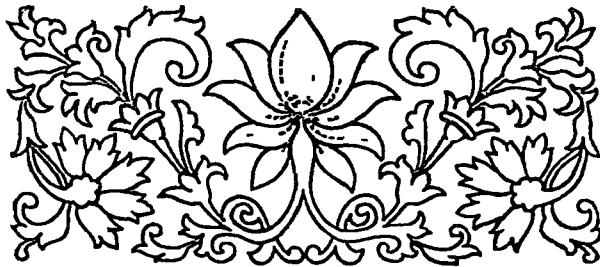
[१]
विकास की पृष्ठभूमि

श्री राजरूप टाँक

राजस्थान का इतिहास अतीत काल से ही शौर्य एव पराक्रम के साथ साथ कला और सस्कृति की गौरवपूर्ण परम्परा को लिए हुए कीर्तिमान रहा है। स्वतन्त्रता आन्दोलन तथा सामाजिक चेतना के सदर्भ मे भी राजस्थान अग्रणी रहा। भूतपूर्व रियासतो का विलीनीकरण होकर नव-निर्माण के कार्यक्रमो को लेकर नये रूप मे राजस्थान का गठन हुआ। किन्तु इससे पहले भी और वाद मे भी क्या सामाजिक क्या राजनैतिक और क्या व्यावसायिक, सभी क्षेत्रो मे राजस्थान आगे रहा है। राजस्थान के विकास मे सभी का योगदान स्तुत्य है। तथापि विशेषकर जनचेतना और आर्थिक समृद्धि के क्षेत्र मे यहा के जैन मतावलम्बियो का बहुत ही योगदान रहा है।

राजस्थान की राजधानी जयपुर नगर हर प्रकार के व्यवसाय और कलाओ का प्रमुख केन्द्र रहा है। जयपुर नगर के निर्माता सवाई जयसिहजी स्वय बहुत वडे उद्योग उपक्रमी, गणितज्ञ, ज्योतिपी और कलाप्रेमी थे। उन्होने सभी वर्गों के लोगो को सम्मान दिया जिसके कारण आज भी यहा पर लगभग सभी प्रकार का काम अथवा व्यवसाय करने वाले मिलते हैं। जयपुर दस्तकारी का मुख्य केन्द्र है और इसमे खास कर जवाहिरात का जो काम यहा होता है वैसा ससार भर मे कही नही होता। जयपुर इसके लिए विश्व विख्यात है। इस ख्याति का श्रेय मुख्य रूप से उन लोगो को है जो सदियो से यहा रह कर परम्परा से काम करते आए हैं। उनका परम्परागत ज्ञान और कौशल अनुपम है।

जयपुर मे पुराने जौहरियो को बाहर से बुलाकर, जो अधिकतर दिल्ली से आए थे, यहा बसाया था। भारत मे पहले दिल्ली, लखनऊ, वनारस, कलकत्ता ये केन्द्र थे। नगीने की कला यही की मशहूर होती थी। जयपुर मे पुराने नामी जौहरियो मे मुकीम, जूनीवाल, जरगड, फोफलिया, मालपानी ये लोग थे। इनके पश्चात् दिल्ली से श्री काशीनाथजी जौहरी आकर जयपुर मे वसे। इनके वाद श्री सुगनचन्दजी जरगड ने मुक्त रूप से इस कला को सिखाना शुरू किया, जिससे अधिक से अधिक लोगो को इसका ज्ञान और रुचि हो तथा व्यवसाय भी आगे बढे। सुगनचन्दजी के दो मुख्य शिष्य थे। इनके नाम है श्री वनजीलालजी ठोलिया और श्री रतनलालजी फोफलिया। ये दोनो ही रत्न जगत मे अत्यधिक प्रसिद्ध रहे हैं। इनकी परख और सूझबूझ अद्वितीय कही जाती थी। वनजीलालजी के पुत्र श्री सुन्दरलालजी ने भी अच्छी ख्याति प्राप्त की। उधर श्री रतनलालजी ने

काफी लोगो को काम सिखाया और नई दिशा एव प्रेरणा प्रदान की। मुझको यह कहते हुए गर्व है कि मैंने भी इन्ही के चरणो मे बैठकर काम सीखा, और उनके बताए हुए मार्ग पर चलने का सतत् प्रयत्न करता रहा हूँ। इनके शिष्य श्री सुगनचन्दजी चौरडिया ने भी कई लोगो को काम सिखाया और इस व्यवसाय को नई दिशा देकर बढाया।

जयपुर मे आज हजारो परिवार रत्न व्यवसाय मे लगे है। यहा सभी प्रकार के रत्नो का काम होता है। कारीगर से लेकर बडा व्यवसायी और निर्यातकर्त्ता इस काम को गर्व के साथ निष्ठा-पूर्वक करते है। कहना न होगा हमारे देश की अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाने मे हमारे रत्न व्यवसाय का स्थान प्रमुख है और इसके लिए इस व्यवसाय मे लगे सभी लोग उनके अच्छे योगदान के लिए बधाई के पात्र हैं।

[२]
विकास की दिशाएँ

श्री दुलीचन्द टॉक

राजस्थान के निर्माण से पूर्व काल से ही अर्थात् देशी राजघरानो के जमाने से ही यहा पर जैन मतावलम्बी सम्मानित वर्ग के रूप मे रहते आए हैं। यहा के प्रमुख व्यवसाय रत्न व्यवसाय मे भी अधिकतर बडे घराने जैन ही है। पहले राजाओ के जमाने से लेकर अब तक भी इस व्यवसाय की महानता रही है। आज इस व्यवसाय के द्वारा करोडो रुपये की विदेशी मुद्रा देश के लिए अर्जित होती है। राजस्थान और इसमे सही माने मे यहा की राजधानी जयपुर इसका मुख्य केन्द्र रहा है। जयपुर का कलात्मक काम विदेशो मे प्रसिद्ध है और यह एक निर्विवाद सत्य है कि ऐसा काम ससार मे कही पर भी नही होता।

जयपुर मे सभी प्रकार के रत्नो का काम प्रचुरता से होता है। रत्नो की घिसाई, कटाई व पालिश वगैरह बडे ही कलात्मक तरीके से की जाती है। इसमे केवल कारीगर का परम्परागत ज्ञान और कौशल होता है वरना वही साधारण से औजार और रग-रोगन काम आते हैं। यह सब कारीगर की कुशलता और सूझबूझ की बात है।

रत्न व्यवसाय के प्रशिक्षण के लिए हाल ही राज्य सरकार ने जयपुर मे एक प्रशिक्षण केन्द्र खोला है। जयपुर मे ही 'जैम एण्ड ज्वैलरी कौंसिल' ने एक टैस्टिंग लेबोरेटरी कायम की है। इससे व्यावसायिक आधार पर इस काम को बढावा मिलेगा। वैसे हमारे यहा पर काफी पहले से ही काम सिखाया जाता रहा है। मेरे पिता श्री राजरूपजी टाँक अत्यधिक रुचि के साथ प्रशिक्षणार्थियो को बडे ही सरल और रोचक ढग से काम सिखलाते रहे हैं। उनकी बात सहज ही हृदयगम हो जाती है। आज हजारो की सख्या मे उनके शिष्य इस व्यवसाय मे तरक्की की ओर अग्रसर हैं। काम सिखलाने के साथ ही साथ इसमे शोध एव विकास की ओर भी ध्यान दिया है। आधुनिक ढग से कटाई व घिसाई आदि से अवगत कराते हुए समुचित मार्गदर्शन देकर उन्होने लोगो का उत्साह बढाया है। इसीलिए आज इनके शिष्य वर्ग को इस व्यवसाय मे काफी सफलता प्राप्त हुई है। साथ ही हजारो कारीगरो को रोजीरोटी के साधन प्राप्त हुए हैं। कारीगरो को भी बिना किसी भेदभाव के ज्ञान कराया जाता रहा है।

बीकानेर के श्री प्रेमचन्दजी खजाची भी मोतो के काम के विशेषज्ञ है। इनके सान्निध्य में रहकर बहुत-से लोग इसमें पारगत हुए है।

हमारे यहा खनिजो की प्रचुर सम्पदा है। पन्ना, ताम्डा, ग्रेनाइट वगैरा बहुतायत से मिलते हैं। पन्ना, माणक की ही नही वरन् जयपुर में सभी प्रकार के रत्नो की कटाई घिसाई व पालिश आदि होती है। जयपुर इस व्यवसाय के लिए प्रमुख मण्डी है। हम इसके उज्ज्वल भविष्य को लेकर अग्रसर हैं, जिससे इस व्यवसाय को आधुनिक ढग पर आगे बढाया जा सके।[1]

१—जयपुर नगर के प्रमुख जैन रत्न व्यवसायी-प्रतिष्ठान इस प्रकार है:—जैम पैलेस, ज्वैलर्स एम्पोरियम, राक्यान्स, एस गुलाबचद लूनिया एण्ड कपनी, सुन्दरलाल विजयकुमार ठोलिया, आर बाई दुर्लभजी, वी सी दुर्लभजी, जैम्स ट्रेडिंग कारपोरेशन, रतन ट्रेडिंग कम्पनी, टीकमचद विनयचद, गुमानमल उमरावमल चोरडिया, एम० खाजूलाल एण्ड कम्पनी, लूनिया इन्टरनेशनल, कासमोपोलीटन ट्रेडिंग कारपोरेशन, धाधिया इन्टरनेशनल ज्वैलर्स, वी एच ज्वैलर्स, जयपुर जैम्स एण्ड ज्वैलर्स, सौभागमल गोकुल चन्द ज्वैलर्स, हीरालाल छगनलाल टाक, पुगलिया ज्वैलर्स कारपोरेशन, जेम्स एण्ड जेम्स, जेमाज, कर्नावट ट्रेडिंग कारपोरेशन, भूरामल राजमल सुराना (लाल कटला), देवेन्द्र एण्ड पुष्पेन्द्र, इण्डियन जैम्स ट्रेडर्स, पूनमचन्द हीराचन्द कोठारी, आर० के० ज्वैलर्स, गुजरानी ज्वैलर्स, सागरमल डागा एण्ड कम्पनी, पिंक ज्वैलर्स एण्ड हैण्डीक्राफ्ट्स, यूनीवर्सल ज्वैलर्स, के० डी० जवेरी, हजारीमल मिलापचन्द सुराना, महावीर ज्वैलर्स, सेठी ब्रादर्स, लोढा एण्ड कम्पनी, शरद सुधीर एण्ड कम्पनी, पूरनचन्द सुधीर कुमार गोदीका, ठाकुरदास केवलराम जैन, चोरडिया ट्रेडिंग कारपोरेशन, सरदारमल उमरावमल ढढ्ढा, श्रीचन्द विमलचन्द गोलेछा, ओवरसीज जैम्स कारपोरेशन, एस० सी० हीरावत एण्ड कम्पनी, जोरावरमल गुमानमल लूनावत, विजय जैम्स, खेतसीदास सदासुख दुग्गड, प्रवीण एण्ड सजीवन ब्रदर्स, आशानन्द लक्ष्मीचन्द भसाली, किशोरीलाल जैन एण्ड ब्रदर्स, गुलाबचन्द कमलकुमार कासलीवाल, अजित कुमार विराणी, जूनीवाल जेम्स ट्रेडिंग कारपोरेशन, जैम ज्वैलर्स (इण्डिया), सौभागमल सजनमल कोठारी, उमरावमल शाह ज्वैलर्स, ताराचन्द आशानन्द जैन, बुधसिंह हीराचन्द बैद, धर्मचन्द पारसचन्द एण्ड कम्पनी, रीयल जैम्स, हेमचन्द्र पदमचन्द, मैसर्स ढढ्ढा एण्ड कम्पनी, प्रकाशचन्द विमलचन्द, के० जी० कोठारी, कैलाशचन्द मोतीचन्द, हजारीमल बोथरा एण्ड कम्पनी, जी० डी० डागा एण्ड कम्पनी आदि।

—सम्पादक

५

धर्म और समाज

४८ जैन धार्मिक प्रवृत्तियों का जीवन और समाज पर प्रभाव

○

श्री कन्हैयालाल लोढ़ा

धर्म व्यक्ति और समाज के संदर्भ मे :

व्यक्तित्व के सर्वाङ्गीण विकास की कला का ही दूसरा नाम 'धर्म' है। धर्म से व्यक्ति के जीवन का सुन्दर निर्माण होता है। व्यक्तियो के संगठित समुदाय से समाज का निर्माण होता है। अतः जैसे व्यक्तियो का समुदाय होता है वैसा ही समाज का निर्माण होता है। भले व्यक्तियो से भले समाज का व बुरे व्यक्तियो से बुरे समाज का निर्माण होता है।

धर्म का कार्य है—व्यक्ति की बुराइयो एव राग-द्वेष, मोह आदि आन्तरिक विकारो को मिटाना। बुराइयो के मिटने से सुन्दर व्यक्तित्व का निर्माण होता है। सुन्दर व्यक्तित्व वाले मनुष्यो से सुन्दर समाज का निर्माण होता है। सुन्दर समाजो से सुराष्ट्र का निर्माण होता है। इस प्रकार धर्म से व्यक्ति, परिवार, समाज व राष्ट्र का सुन्दर निर्माण होता है। जैन-धर्म का इस कार्य मे अपना विशेष योगदान रहा है।

'जैन' शब्द का अर्थ है—अपने शत्रुओ पर विजय पाने का प्रयत्न करने वाला। शत्रु के स्वरूप का वर्णन करते हुए जैन दर्शन मे इस तथ्य को बहुत सुन्दर ढग से प्रस्तुत किया गया है कि हमारे वास्तविक शत्रु बाहर—बाहर कोई नही है अपितु अपने ही अन्तर मे विद्यमान राग-द्वेप, मोह, विपय-कपाय आदि, विकार, बुराइया व दोप ही हमारे वास्तविक शत्रु हैं। अत अपने इन दोपो का सहार करना, इनको मिटाना ही वास्तविक विजय है। इस विजय को प्राप्त करने का प्रयत्न करने वाला ही सच्चा जैन है।

धर्म : समस्त दुखो के निवारण का उपाय .

जो व्यक्ति अपनी बुराइयो को जितना–जितना मिटाता जाता है, वह उतना ही पवित्र होता जाता है, परमात्मा के निकट पहुचता जाता है। पूर्ण निर्दोष व पवित्र हो जाने पर परमात्मा बन जाता है। परमात्मा के निकट पहुँचा हुआ व्यक्ति ही 'महात्मा' कहा जाता है। इस प्रकार धर्म से राग द्वेप, हिंसा, झूठ, चोरी आदि दोपो को मिटाता हुआ व्यक्ति आत्मा से महात्मा और महात्मा से परमात्मा बन जाता है।

यह सर्व विदित है कि सर्व दुःखो की जड बुराइया हैं फिर वह दु ख चाहे वैयक्तिक हो या पारिवारिक, सामाजिक हो अथवा राष्ट्रीय । ऐसा कोई दु ख नही है जिसकी जड मे कोई न कोई बुराई न हो । अत. दु ख मेटने का उपाय है बुराई का निवारण और बुराइयो के निवारण का उपाय है 'धर्म' । अत. जगत के समस्त दु खो के निवारण का उपाय धर्म ही है ।

आत्मीय भाव का विकास ही आत्मा का विकास

जैन धर्म मे बुराइयो के निवारण व गुणो के प्रकटीकरण की, कारण-कार्य के अनिवार्य नियम पर आधारित एक अति ही व्यवस्थित वैज्ञानिक पद्धति प्रस्तुत की गई है, जिसमे गुणस्थानो के क्रमारोहण के रूप मे गुणो के क्रमिक विकास के स्वरूप और उनकी उपलब्धि के उपाय का पूर्ण मनोवैज्ञानिक रूप मे विशद् विवेचन किया गया है ।

जैन दर्शन प्राणी के विकास मे प्रधान स्थान आत्मीय भाव या अहिंसा को देता है । हिंसा को पशुता, दानवता व प्राणी के अविकास की प्रतीक माना गया है । आत्मीयता सहृदयता का ही दूसरा नाम है । हृदयहीन प्राणी मे आत्मीय भाव उत्पन्न ही नही होता है । हृदयहीनता मे ही हिंसा जन्म लेती है जो पशुता की निशानी है । हिंसक शेर-चीते आदि पशु व गिद्ध, चील, बाज आदि पक्षी तडफडाते जीवित प्राणियो को खा जाते हैं, उनके हृदय मे कपन (अनुकम्पा) नही होती है । उनका हृदय कठोर, पत्थरवत जड होता है । यह जडता चेतना के अविकास की द्योतक है । जो जितना कठोर व क्रूर हृदय है वह उतना ही अविकसित है और जो जितना सहृदय है वह उतना ही विकसित है । वस्तुत आत्मीय भाव का विकास ही आत्मा का विकास है । आत्मीय भाव के ही जैन दर्शन मे दया, अनुकम्पा, अहिंसा, करुणा, वात्सल्य, सहृदयता, आदि अनेक रूप हैं । इन्हें ही प्राणी के विकास का आधार बनाया गया है ।

आत्मीयता और मानवता

जो व्यक्ति अपनी आत्मा के समान दूसरो की आत्मा है, ऐसा अनुभव करता है, उसी मे दूसरे प्राणी के प्रति आत्मीय भाव उत्पन्न होता है । उसका हृदय दूसरो के दु ख से द्रवित होता है । उसे दूसरे का दु ख वैसा ही असह्य होता है जैसा अपना दु ख । फलत उसमे दूसरे का दु ख दूर करने की भावना प्रबल होती है । ऐसा व्यक्ति अपने स्वार्थ के लिए दूसरे को दु ख नही देता है । यदि किसी कारणवश देना भी पडे तो वह यथासभव कम से कम दु ख देता है और जितना सा उसके कारण से दूसरो को दु ख होता है उसके लिए भी उसे हार्दिक खेद होता है ।

जैन दर्शन आत्मीय भाव बढाता है जिससे हृदय की कोमलता बढती है और हृदय की कोमलता से उदारता बढती है तथा स्वार्थपरता घटती है । इससे दूसरे के हित के लिए प्रवृत्ति होती है । दूसरो के हित की प्रवृत्ति मे ही मानवता निहित है । मानवता ही से मानव और पशु का अन्तर प्रकट होता है अन्यथा खाना, पीना, सोना, आदि प्रवृत्तियाँ तो मानव मे और पशु मे समान देखी जाती हैं । तात्पर्य यह है कि जैन धर्म मानवता को जागृत करता है और मानवता की भूमिका मे नैतिक उत्थान व सामाजिक जागरण सभव है ।

अहिंसा और समाज-सेवा

मानवता का क्रियात्मक या प्रयोगात्मक रूप अहिंसा व सेवा है। जैन समाज मे अहिंसा को इतना अधिक महत्व दिया गया है कि बच्चे को जन्म से ही यह पाठ पढाया जाता है कि किसी को मारना या कष्ट पहुचना बुरा है, पाप है और दूसरो को सुख पहुचाना ही हमारे जीवन का परम कर्त्तव्य है। इस सस्कार के फलस्वरूप उसमे सहज ही दूसरो की सेवा करने की भावना जन्म लेती है। यही कारण है कि सख्या की अल्पता को देखते हुए भारत मे सेवा कार्यों मे जितना योगदान जैन समाज ने दिया है उतना अन्य किसी समाज ने नही।

भारत मे जैनियो की सख्या एक प्रतिशत से भी कम है फिर भी जितने सर्वजनोपयोगी कार्य जैन समाज कर रहा है उतना शायद ही कोई अन्य समाज कर रहा हो। जो औषधालय, विद्यालय, पुस्तकालय, अनाथालय, छात्रालय, धर्मशाला, गोशाला आदि जैन समाज के द्वारा खोले गये है उनकी सख्या सराहनीय है। कही बाढ आए या अकाल पडे, महामारी फैले या कोई दुर्घटना घटे। जैन लोग सर्व प्रथम पहुँच कर तन, मन, धन से सेवा करते रहे हैं।

किसी भी जैन के यहा कोई भी दान लेने आवे वह बिना भेदभाव के मुक्त हस्त से दान देता है। यही नही वह कार्यकर्त्ता के रूप मे बौद्धिक व शारीरिक सेवा भी देने को तत्पर रहता है। इस प्रकार जैन धर्मानुयायी तन, मन, धन आदि से पूर्ण योग प्रदान कर समाज व देश की महान् सेवा कर रहे है।

जैन धर्म की अहिंसा की बारीकियो ने भी जैनियो को परोपकार भावना मे बहुत आगे बढाया है। जैन धर्म जल, आग, वनस्पति आदि एकेन्द्रिय तुच्छ प्राणियो को भी नही सताने पर पूरा जोर देता है। इस शिक्षा का परिणाम यह हुआ कि हलते-चलते जीव चिऊँटी, मक्खी, मच्छर आदि क्षुद्र प्राणियो को सताने की भावना भी जैनियो मे नही पैदा होती, फिर मनुष्य और पशुओ को मारने या सताने की तो कल्पना भी नही की जा सकती। कहा भी है—जो नक्षत्र को लक्ष्य करके तीर छोडता है, उसका तीर उस व्यक्ति के तीर से ऊँचा जाता है जो वृक्ष के नीचे की टहनी को लक्ष्य बनाकर तीर छोडता है। इसी प्रकार जैनियो की अहिंसा या सेवाभाव का लक्ष्य बहुत ऊँचा है—वनस्पति आदि के जीवो को भी यथासभव बचाने का है, अत मानव के बचाव व सेवाभाव तो उसको प्राथमिक स्थिति मे ही आजाते हैं। यही कारण है कि जैन श्रावक से किसी को कोई डर या हानि की सभावना नही है और आज भी कोई व्यक्ति अपरिचित जैन परिवार के घर मे ठहरने मे किंचित भी भय या सदेह नही करता है तथा अपने जान-मान को पूर्ण सुरक्षित समझ कर निश्चिन्त रहता है।

राष्ट्रीय सस्थाओ मे भी सेवा देने मे जैन समाज कभी पीछे नही रहा है। देशी रियासतो में विश्वासपात्रता के कारण प्राय मत्री जैन ही हुआ करते थे। वे न केवल राज्य की शान्ति व समृद्धि की अभिवृद्धि मे ही योगदान देते थे वरन् युद्ध के समय भी अपना कर्त्तव्य निभाने, साहस दिखाने मे कभी मुँह नही मोडते थे। शायद ही भारत में कोई ऐसा राज्य मिले जहा जैन कार्यकर्त्ताओ ने अपनी सूझ-बूझ से वहा की जनता के सुख व शाति मे वृद्धि न की हो और राज्य का गौरव न बढाया हो। स्वतत्रता आदोलन के समय तन, मन, धन से जैन समाज ने जो योगदान दिया वह इतिहास में

चिरस्मरणीय है । आज भी काग्रेस, समाजवादी, साम्यवादी, जनसघ आदि राजनैतिक पार्टियो में सेवा देने वाले जैनियो की संख्या कम नही है ।

जैन समाज ने देश के औद्योगिक विकास में जो अपना महत्वपूर्ण योग दिया है उसके पीछे भी राष्ट्र-सेवा व समाज सेवा की भावना ही कार्य कर रही है । जब कितने ही उद्योगपतियो से प्रश्न किया गया कि जब आयकर आदि देने के पश्चात् उद्योगो से कुछ लाभ बचता ही नही है तब फिर आप उद्योग चलाने की व्यर्थ परेशानी मोल ही क्यो लेते है ? उन्होने सहज भाव से उत्तर दिया— भले ही हमे लाभ न हो, देश के हजारो लाखो बेकार लोगो को आजीविका का लाभ तो मिलता ही है । राष्ट्र की सम्पत्ति तो बढती ही है । यह भी अपना ही लाभ है । अपनी पेट-पूर्ति तो पशु भी कर लेता है मानव जीवन की विशेषता ही यह है कि वह सब के लाभ मे अपना लाभ समझे ।

नैतिक उत्थान

जैन धर्म मे मद्य, मास, चोरी, शिकार, वेश्यागमन, परस्त्रीगमन और जुआ इन सात कार्यों को कुव्यसन कहा है और इनका निषेध बताया है । ये ही सात कुव्यसन अनैतिकता को जन्म देने वाले हैं ।

अनीति उसे कहा जाता है जो अपने और दूसरे के लिए अहितकर हो, जो किसी के लिए भी हितकर न हो । शराब, जुआ, व्यभिचार आदि कुव्यसन मानव के वे महाशत्रु हैं जो उसकी शारीरिक, आर्थिक, बौद्धिक, मानसिक आदि शक्तियो व सम्पत्तियो का हरण कर उसे निर्बल, असहाय व दीन-हीन बना देते है । इनके चगुल मे फसे प्राणी का चित्त सदा भ्रमित व अशान्त रहता है । उसे अपने हित-अहित कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का भान नही रहता है । वह मानवता से च्युत हो जाता है । वह शरीर से रुग्ण और धन से हीन हो जाता है । उसकी बुद्धि मे जडता आ जाती है । मन का सकल्प-बल शिथिल हो जाता है । धीरे-धीरे उसके जीवन से सर्वगुण तिरोहित हो जाते हैं । ऐसा व्यक्ति किसी का विश्वासपात्र नही रहता । वह अलग-थलग पड जाता है । उसका जीवन नीरस व भारभूत हो जाता है । वह हीन भावना से ग्रस्त हो जाता है । उसका जीवन इतना दु खी व पतित हो जाता है कि वह जीने के बजाय आत्मघात कर मरना पसन्द करने लगता है ।

वस्तुत ये दुर्व्यसन समाज व राष्ट्र के प्रबल शत्रु हैं । इसीलिए प्रत्येक देश की सरकार शराब, जुआ, चोरी, वेश्या व परस्त्रीगमन आदि को अपराध मानती है । इन पर कानून बनाकर प्रतिबन्ध लगाती है और इनके सेवन करने वाले अपराधी को कडा दण्ड देती है । कोई भी अपराध-वृत्ति केवल गैर कानूनी घोषित कर देने मात्र से, समाज से मिट नही जाती कारण कि प्रत्येक प्रकार के अपराध की जड मानव के हृदय मे होती है । कानून ऊपर से लादा जाता है अतः वह ऊपर ही रहता है हृदय तक नही पहुँच पाता है, और जब तक वह हृदय तक नही पहुँचता, हृदय बदलता नहीं और हृदय के बदले बिना अपराध वृत्ति मिटती नही ।

हृदय बदलने का उपाय है—ज्ञान और अभ्यास । यह काम कानून या विधान नही कर सकता है । यह कार्य वे ही कर सकते हैं जिन्होने स्वय इनको हानिकारक समझकर पूर्ण रूप से त्यागा है । उन्ही के जीवन, व्यवहार व उपदेश का प्रभाव दूसरों पर पडता है । यही कारण है कि जहाँ

जैनियो के कुछ घर हैं, उनके आसपास व उनके सपर्क मे आने वाले इन कुव्यसनो से स्वत. बचते हैं। हजारो की सख्या मे जैन साधु प्रतिदिन अपने प्रवचनो मे सर्व लोगो के हित व भले की कामना रखते हुए उनके समक्ष इन कुव्यसनो की बुराइयो व हानियो को प्रस्तुत करते हैं। उन्हें प्रेम से समझाकर इनको छोडने की प्रेरणा देते हैं। इस प्रकार अपने सदुपदेशो मे जैन साधुओ ने दुर्व्यसनो व अनैतिकता का त्याग कराकर करोडो मानवो के जीवन को पतन के गर्त्त मे गिरने व बरबाद होने से बचाने मे अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

सामाजिक जागरण

जैन साधुओ के प्रतिदिन के भाषण का विषय ही कुव्यसन-निवारण, कुरुढियो व अनैतिकता के त्यागने तथा सेवा-सदाचार, परोपकार, आध्यात्मिक शक्तियो के जागरण का रहता है। उनका यह उपदेश विश्वविद्यालयो के प्राध्यापको के समान केवल वाचिक नही होता है अपितु स्वय उनके जीवन के अनुभव से युक्त होता है अत उसमे प्रभाव डालने की क्षमता होती है। उनकी आवाज अत·-करण से निकलती है अत प्राणवान होती है। यह नियम है कि केवल मुख से निकला हुआ शब्द श्रोता के कानो तक ही पहुँचता है वह गले उतर कर हृदय तक नही पहुँचता है—जबकि अत करण से निकली हुई आवाज श्रोता के गले उतरकर अत करण मे पहुँचने मे समर्थ होती है।

अनैतिकता व दुर्व्यसन निवारण तथा सेवा, सदाचार, परोपकार प्रसारण का कार्य वेतन-भोगी अध्यापको व कर्मचारियो के भाषणो से कदापि सभव नही है फिर वे भले ही एम.ए या पी एच डी हो, कारण कि उनके जीवन मे सेवा व त्याग का बल नही होता है अत उनके उपदेशो का प्रभाव नही पडता।

दूसरो को प्रेरणा देने व पथ प्रदर्शन करने मे वही समर्थ व सफल हो सकता है जो स्वय सैद्धान्तिक और प्रायोगिक दोनो का पक्षधार हो। केवल अभ्यास या प्रयोग करने वाला व्यक्ति दूसरो को समझाने मे असमर्थ होता है और केवल सिद्धान्त का ज्ञाता व्यक्ति प्रभाव डालने—प्रेरणा देने मे असमर्थ होता है। जैन साधु इन दोनो पक्षो से युक्त होता है। वह सफल साधक के साथ-साथ सफल उपदेशक भी होता है।

जैन साधु जनसाधारण को जैसा कर्त्तव्य का उपदेश देता है स्वय उस पर वह, उससे कई गुना अधिक चलता है। वह चीटी को चोट पहुचाना तो दूर रहा, वनस्पति काय के जीवो तक को कष्ट नही पहुँचाता है। एक शब्द भी झूठ नही बोलता है। एक नये पैसे की चीज भी किसी के दिये बिना नही लेता है। पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करता है। एक पैसा या धातु मात्र नही रखता है। पैदल नगे पैर चलता है। वस्त्र भी अति सीमित रखता है। वह मधुरभाषी, सेवाभावी सर्वहित चिंतक होता है अत उसके उपदेश का प्रभाव स्वाभाविक रूप से सहज ही पडता है।

सामाजिक उन्नति का मूलाधार है—दूसरो से कम से कम लेना और उन्हें अधिक से अधिक देना। जैन साधु समाज से केवल जीवनरक्षार्थ भोजन लेता है और देता है समाज सेवा मे अपना

चिरस्मरणीय है। आज भी काग्रेस, समाजवादी, साम्यवादी, जनसघ आदि राजनैतिक पार्टियो में सेवा देने वाले जैनियो की संख्या कम नही है।

जैन समाज ने देश के औद्योगिक विकास में जो अपना महत्वपूर्ण योग दिया है उसके पीछे भी राष्ट्र-सेवा व समाज सेवा की भावना ही कार्य कर रही है। जब कितने ही उद्योगपतियो से प्रश्न किया गया कि जब आयकर आदि देने के पश्चात् उद्योगो से कुछ लाभ बचता ही नही है तब फिर आप उद्योग चलाने की व्यर्थ परेशानी मोल ही क्यो लेते है ? उन्होने सहज भाव से उत्तर दिया—भले ही हमे लाभ न हो, देश के हजारो लाखो बेकार लोगो को आजीविका का लाभ तो मिलता ही है। राष्ट्र की सम्पत्ति तो बढती ही है। यह भी अपना ही लाभ है। अपनी पेट-पूर्ति तो पशु भी कर लेता है मानव जीवन की विशेषता ही यह है कि वह सब के लाभ मे अपना लाभ समझे।

नैतिक उत्थान

जैन धर्म मे मद्य, मास, चोरी, शिकार, वेश्यागमन, परस्त्रीगमन और जुआ इन सात कार्यों को कुव्यसन कहा है और इनका निषेध बताया है। ये ही सात कुव्यसन अनैतिकता को जन्म देने वाले हैं।

अनीति उसे कहा जाता है जो अपने और दूसरे के लिए अहितकर हो, जो किसी के लिए भी हितकर न हो। शराब, जुआ, व्यभिचार आदि कुव्यसन मानव के वे महाशत्रु हैं जो उसकी शारीरिक, आर्थिक, बौद्धिक, मानसिक आदि शक्तियो व सम्पत्तियो का हरण कर उसे निर्बल, असहाय व दीन-हीन बना देते हैं। इनके चगुल मे फसे प्राणी का चित्त सदा भ्रमित व अशान्त रहता है। उसे अपने हित-अहित कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का भान नही रहता है। वह मानवता से च्युत् हो जाता है। वह शरीर से रुग्ण और धन से हीन हो जाता है। उसकी बुद्धि मे जडता आ जाती है। मन का सकल्प-बल शिथिल हो जाता है। धीरे-धीरे उसके जीवन से सर्वगुण तिरोहित हो जाते है। ऐसा व्यक्ति किसी का विश्वासपात्र नही रहता। वह अलग-थलग पड जाता है। उसका जीवन नीरस व भारभूत हो जाता है। वह हीन भावना से ग्रस्त हो जाता है। उसका जीवन इतना दु खी व पतित हो जाता है कि वह जीने के बजाय आत्मघात कर मरना पसन्द करने लगता है।

वस्तुत ये दुर्व्यसन समाज व राष्ट्र के प्रबल शत्रु हैं। इसीलिए प्रत्येक देश की सरकार शराब, जुआ, चोरी, वेश्या व परस्त्रीगमन आदि को अपराध मानती है। इन पर कानून बनाकर प्रतिबन्ध लगाती है और इनके सेवन करने वाले अपराधी को कडा दण्ड देती है। कोई भी अपराध-वृत्ति केवल गैर कानूनी घोषित कर देने मात्र से, समाज से मिट नही जाती कारण कि प्रत्येक प्रकार के अपराध की जड मानव के हृदय मे होती है। कानून ऊपर से लादा जाता है अत. वह ऊपर ही रहता है हृदय तक नही पहुँच पाता है, और जब तक वह हृदय तक नही पहुँचता, हृदय बदलता नहीं और हृदय के बदले बिना अपराध वृत्ति मिटती नही।

हृदय बदलने का उपाय है—ज्ञान और अभ्यास। यह काम कानून या विधान नही कर सकता है। यह कार्य वे ही कर सकते हैं जिन्होने स्वय इनको हानिकारक समझकर पूर्ण रूप से त्यागा है। उन्ही के जीवन, व्यवहार व उपदेश का प्रभाव दूसरो पर पडता है। यही कारण है कि जहाँ

आध्यात्मिक जागरण के लिए बराबर प्रेरणा देते रहे हैं। आपने समाज मे सम्यक् ज्ञान का विकास हो, एतदर्थ स्वाध्याय के प्रचार पर विशेष जोर दिया, फलत सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर के अन्तर्गत स्वाध्याय सघ का जन्म हुआ। आज इस सघ मे सैकडो सक्रिय स्वाध्यायी है जो समता व सयम की ओर बराबर आगे बढ रहे है तथा सैकडो ग्रामो मे इनके द्वारा स्वाध्याय प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिल रहा है। इस प्रकार समाज मे ज्ञान वृद्धि के साथ नैतिक व आध्यात्मिक उन्नति मे महत्त्वपूर्ण योगदान मिल रहा है। स्व० श्री पन्नालालजी म० की प्रेरणा से सचालित स्वाध्याय सघ गुलाबपुरा भी इसी प्रकार योजनाबद्ध तरीके से नैतिक उत्थान मे उल्लेखनीय योगदान दे रहा है।

मेवाड कोकिला महासतीजी श्री जसकवरजी म० सा० का भी ध्यान इस ओर सदा से रहा है। आप ही के सदुपदेश की प्रेरणा से इसी वर्ष जोगणिया देवी (बेगूं) के यहाँ होने वाली सैकडो पशुओ की बलि प्रथा बद हुई है।

तेरापथ सम्प्रदाय के आचार्य श्री तुलसी के अणुव्रत आदोलन के माध्यम से नैतिक उत्थान व समाज-सुधार का जो कार्य हुआ है, वह प्रशसनीय है। भ्रष्टाचार-निवारण व सदाचार-प्रसारण के साथ-साथ इस आदोलन से जैन एकता एव सर्वधर्मसमभाव को भी बडा बल मिला है।

ऊपर केवल साकेतिक रूप मे जैन सतो द्वारा नैतिक उत्थान, सामाजिक जागरण व आध्यात्मिक विकास के लिए किए गए प्रयासो का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार की अन्य भी अनेक प्रवृत्तियाँ चल रही हैं। सच्चाई तो यह है कि जैनधर्मानुयायी प्रत्येक सत प्रतिदिन इस प्रकार की जीवन निर्माण की कुछ न कुछ प्रेरणा देता ही है और इसी का प्रभाव है कि आज देश के अन्य प्रान्तो मे जहा इतनी अनैतिकता व गुण्डागर्दी बढ गई है कि किसी का जान-माल सुरक्षित नही रहा है, रात को अकेले मकान से बाहर निकलना कठिन हो गया है, वहा राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश आदि मे, जहा जैन धर्म का प्रचार-प्रसार अधिक है, अब भी सुरक्षा व निश्चितता है। यह जैन धर्म के प्रचार प्रसार का ही परिणाम हैं।

जैन धर्मानुयायी गृहस्थो, श्रावको का भी नैतिक उत्थान व सामाजिक जागरण मे महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। श्रावक के लिए पाचो अणुव्रतो का पालन अत्यावश्यक है। उसके अहिंसा अणुव्रत के पालन से क्रूरता मिटकर आत्मीयता, मित्रता व सर्वोदय की प्रवृत्ति का प्रसार होता है। सत्याणुव्रत से अविश्वास, झूठ-कपट, धोखा-धडी मिटकर विश्वास, सत्यता, प्रामणिकता का प्रादुर्भाव होता है। अचौर्याणुव्रत से शक्ति-सपत्ति का अपहरण व शोषण मिटकर नैतिकता को बढावा मिलता है। ब्रह्मचर्याणुव्रत से व्यभिचार, दुराचार मिटकर सदाचार का पोषण होता है। परिग्रह परिमाणुव्रत से सग्रहवृत्ति, विषमता, भ्रष्टाचार मिटकर समता व शाति का विस्तार होता है। पच अणुव्रतो के पालन से परिवार, समाज व राष्ट्र मे दुर्व्यसनो, दुराचारो, अनाचारो मे कमी होती है व क्षमा, विनय, सरलता, सज्जनता, सहृदयता, वत्सलता, मृदुता, मधुरता, नम्रता, सहकारिता का विकास होता है जो नैतिक उत्थान व सामाजिक जागरण का मूल है।

पहले कह आए हैं कि जैन समाज मे शराब, व्यभिचार, जुआ आदि कुव्यसनो व अन्य बडी

जीवन दान । वह समाज के नैतिक उत्थान व जागरण के रूप मे जो कुछ भी देता है उसके वदले मे कुछ नही लेता है । उसका जीवन समाज का जीवन बन जाता है । इतिहास साक्षी है कि लाखो जैन साधुओ ने समाज व राष्ट्र के नैतिक उत्थान व सामाजिक जागरण के रूप मे देश की असीम सेवा की है। जनसाधारण को सस्कारित करने की दृष्टि से अनेक नैतिक, शिष्ट व सस्कारसम्पन्न समाजो का निर्माण किया है । ओसवाल समाज इसका जीता जागता प्रमाण है । दूर क्यो जायें, इसी शताब्दी मे स्वर्गीय दिवाकर श्री चौथमलजी म० सा० की नैतिक उत्थान के रूप मे की गई सेवा राजा से लेकर रक तक रही है । उन्होने एक ओर मेवाड के महाराणा फतेहसिहजी आदि राज वर्ग के लोगो को उपदेश देकर उन्हें सेवा के लिए प्रेरित किया तो दूसरी ओर रेगर, चमार, वलाई, भील, हरिजन आदि पिछडे वर्ग के लाखो लोगो को शराव, धूम्रपान, मास आदि कुव्यसनो का त्याग कराया । अगणित परिवारो मे आज भी वह परपरा चल रही है । प्रवर्तक स्व० श्री पन्नालालजी मा० सा० ने राजस्थान मे फैली हुई मोसर, दहेज, पशु वलि आदि कुप्रथाओ (जो समाज को जर्जर कर रही थी, लाखो परिवारो को बरबाद कर रही थी) के विरुद्ध विगुल वजाया । रूढिग्रस्त लोगो ने अनेक वार उन्हे मारने की धमकिया दी, सकट पैदा किये परन्तु आप अपने पथ से विचलित नही हुए। दिवाकरजी व प्रवर्तकजी द्वारा पशु वलि वद कराने, अगते पलवाने आदि के सैंकडो पट्टे आज भी विद्यमान हैं। आपके ही उपदेशो से मीणा समाज मे सामाजिक जागरण की नई चेतना आई । जैनपुरी आदि ग्रामो मे जाकर मीणो के नैतिक उत्थान का कोई भी व्यक्ति साक्षात्कार कर सकता है ।

जैन सतो के उपदेशो से हजारो खटीक परिवार, जिनका धधा ही पशुवध करना था, मास व खालें वेचना था, शराव पीने की जिनमे जातिगत लत थी, उन्होने अपना धधा छोड दिया, सप्त कुव्यसनो का त्याग कर दिया तथा एक सभ्य व उन्नत, समाज का आदर्श अपना लिया । इस प्रकार एक नीति व सदाचार सपन्न 'वीरवाल समाज' की रचना हुई । आज उनमे प्राय सभी ही कपडे, किराने आदि के सफल व प्रामाणिक व्यापारी है । उनकी प्रामाणिकता व सदाचारशीलता ने ही उनको गरीबी से उवारा है ।

आचार्य श्री नानालालजी म० सा० के सदुपदेशो से प्रेरित होकर हजारो वलाई परिवारो ने दुर्व्यसनो का त्याग कर 'धर्मपाल समाज' की रचना की है । परिणामस्वरूप धर्मपाल परिवारो की वतमान पीढी शिक्षा-दीक्षा मे पहले से वहुत आगे बढी है । अ० भा० साधुमार्गी जैन सघ, वीकानेर इन आदिवासियो के नैतिक उत्थान व सामाजिक जागरण के लिए वरावर प्रयत्नशील है । ये आदि-वासी, जिनका प्रमुख कार्य पहले तीर कमान रखना व शिकार करना था अव भारी सख्या मे शिकार, मांस तथा शराव का सर्वथा त्याग कर, कृषि आदि से अपनी आजीविका चलाने लगे हैं । उनमे सामायिक, स्वाध्याय की प्रवृत्ति भी वढी है ।

आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा० की प्रेरणा से भगवान् महावीर की पच्चीसवी निर्वाण शताब्दी के अवसर पर हजारो व्यक्तियो ने अपनी जातिगत शराव पीने, मास खाने आदि की परपरा का सदा के लिए त्याग कर दिया है । हजारो व्यापारियो ने प्रामाणिक माप तोल का नियम लिया है । इसके पूर्व भी आचार्य श्री योजनावद्ध रूप से समय-समय पर नैतिक उत्थान, सामाजिक व

आध्यात्मिक जागरण के लिए बराबर प्रेरणा देते रहे हैं। आपने समाज मे सम्यक् ज्ञान का विकास हो, एतदर्थ स्वाध्याय के प्रचार पर विशेष जोर दिया, फलत. सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर के अन्तर्गत स्वाध्याय सघ का जन्म हुआ। आज इस सघ मे सैकडो सक्रिय स्वाध्यायी है जो समता व सयम की ओर बराबर आगे वढ रहे है तथा सैकडो ग्रामो मे इनके द्वारा स्वाध्याय प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिल रहा है। इस प्रकार समाज मे ज्ञान वृद्धि के साथ नैतिक व आध्यात्मिक उन्नति मे महत्त्वपूर्ण योगदान मिल रहा है। स्व० श्री पन्नालालजी म० की प्रेरणा से सचालित स्वाध्याय सघ गुलावपुरा भी इसी प्रकार योजनावद्ध तरीके से नैतिक उत्थान मे उल्लेखनीय योगदान दे रहा है।

मेवाड कोकिला महासतीजी श्री जसकवरजी म० सा० का भी ध्यान इस ओर सदा से रहा है। आप ही के सदुपदेश की प्रेरणा से इसी वर्ष जोगणिया देवी (वेगू) के यहाँ होने वाली सैकडो पशुओ की वलि प्रथा वद हुई है।

तेरापथ सम्प्रदाय के आचार्य श्री तुलसी के अणुव्रत आदोलन के माध्यम से नैतिक उत्थान व समाज-सुधार का जो कार्य हुआ है, वह प्रशसनीय है। भ्रष्टाचार-निवारण व सदाचार-प्रसारण के साथ-साथ इस आदोलन से जैन एकता एव सर्वधर्मसमभाव को भी वडा वल मिला है।

ऊपर केवल साकेतिक रूप मे जैन सतो द्वारा नैतिक उत्थान, सामाजिक जागरण व आध्यात्मिक विकास के लिए किए गए प्रयासो का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार की अन्य भी अनेक प्रवृत्तियाँ चल रही हैं। सच्चाई तो यह है कि जैनधर्मानुयायी प्रत्येक सत प्रतिदिन इस प्रकार की जीवन निर्माण की कुछ न कुछ प्रेरणा देता ही है और इसी का प्रभाव है कि आज देश के अन्य प्रान्तो मे जहा इतनी अनैतिकता व गुण्डागर्दी वढ गई है कि किसी का जान-माल सुरक्षित नही रहा है, रात को अकेले मकान से वाहर निकलना कठिन हो गया है, वहा राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश आदि मे, जहा जैन धर्म का प्रचार-प्रसार अधिक है, अव भी सुरक्षा व निश्चितता है। यह जैन धर्म के प्रचार प्रसार का ही परिणाम है।

जैन धर्मानुयायी गृहस्थो, श्रावको का भी नैतिक उत्थान व सामाजिक जागरण मे महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। श्रावक के लिए पाचो अणुव्रतो का पालन अत्यावश्यक है। उसके अहिंसा अणुव्रत के पालन से क्रूरता मिटकर आत्मीयता, मित्रता व सर्वोदय की प्रवृत्ति का प्रसार होता है। सत्याणुव्रत से अविश्वास, झूठ-कपट, धोखा-धडी मिटकर विश्वास, सत्यता, प्रामणिकता का प्रादुर्भाव होता है। अचौर्याणुव्रत से शक्ति-सपत्ति का अपहरण व शोषण मिटकर नैतिकता को वढावा मिलता है। ब्रह्मचर्याणुव्रत से व्यभिचार, दुराचार मिटकर सदाचार का पोषण होता है। परिग्रह परिमाणुव्रत से सग्रहवृत्ति, विषमता, भ्रष्टाचार मिटकर समता व शाति का विस्तार होता है। पच अणुव्रतो के पालन से परिवार, समाज व राष्ट्र मे दुर्व्यसनो, दुराचारो, अनाचारो मे कमी होती है व क्षमा, विनय, सरलता, सज्जनता, सहृदयता, वत्सलता, मृदुता, मधुरता, नम्रता, सहकारिता का विकास होता है जो नैतिक उत्थान व सामाजिक जागरण का मूल है।

पहले कह आए हैं कि जैन समाज मे शराव, व्यभिचार, जुआ आदि कुव्यसनो व अन्य वडी

जीवन दान । वह समाज के नैतिक उत्थान व जागरण के रूप मे जो कुछ भी देता है उसके बदले मे कुछ नही लेता है । उसका जीवन समाज का जीवन बन जाता है । इतिहास साक्षी है कि लाखो जैन साधुओ ने समाज व राष्ट्र के नैतिक उत्थान व सामाजिक जागरण के रूप मे देश की असीम सेवा की है । जनसाधारण को सस्कारित करने की दृष्टि से अनेक नैतिक, शिष्ट व सस्कारसम्पन्न समाजो का निर्माण किया है । ओसवाल समाज इसका जीता जागता प्रमाण है । दूर क्यो जायें, इसी शताब्दी मे स्वर्गीय दिवाकर श्री चौथमलजी म० सा० की नैतिक उत्थान के रूप मे की गई सेवा राजा से लेकर रक तक रही है । उन्होने एक ओर मेवाड के महाराणा फतेहसिंहजी आदि राज वर्ग के लोगो को उपदेश देकर उन्हे सेवा के लिए प्रेरित किया तो दूसरी ओर रेगर, चमार, बलाई, भील, हरिजन आदि पिछडे वर्ग के लाखो लोगो को शराब, घूम्रपान, मास आदि कुव्यसनो का त्याग कराया । अगणित परिवारो मे आज भी वह परम्परा चल रही है । प्रवर्तक स्व० श्री पन्नालालजी मा० सा० ने राजस्थान मे फैली हुई मोसर, दहेज, पशु बलि आदि कुप्रथाओ (जो समाज को जर्जर कर रही थी, लाखो परिवारो को बरबाद कर रही थी) के विरुद्ध बिगुल बजाया । रूढिग्रस्त लोगो ने अनेक बार उन्हें मारने की धमकियां दी, सकट पैदा किये परन्तु आप अपने पथ से विचलित नही हुए । दिवाकरजी व प्रवर्तकजी द्वारा पशु बलि बद कराने, अगते पलवाने आदि के सैकडो पट्टे आज भी विद्यमान हैं । आपके ही उपदेशो से मीणा समाज मे सामाजिक जागरण की नई चेतना आई । जैनपुरी आदि ग्रामो मे जाकर मीणो के नैतिक उत्थान का कोई भी व्यक्ति साक्षात्कार कर सकता है ।

जैन सतो के उपदेशो से हजारो खटीक परिवार, जिनका धधा ही पशुवध करना था, मास व खालें बेचना था, शराब पीने की जिनमे जातिगत लत थी, उन्होने अपना धधा छोड दिया, सप्त कुव्यसनो का त्याग कर दिया तथा एक सभ्य व उन्नत, समाज का आदर्श अपना लिया । इस प्रकार एक नीति व सदाचार सपन्न 'वीरवाल समाज' की रचना हुई । आज उनमे प्राय. सभी ही कपडे, किराने आदि के सफल व प्रामाणिक व्यापारी हैं । उनकी प्रामाणिकता व सदाचारशीलता ने ही उनको गरीबी से उबारा है ।

आचार्य श्री नानालालजी म० सा० के सदुपदेशो से प्रेरित होकर हजारो बलाई परिवारो ने दुर्व्यसनो का त्याग कर 'धर्मपाल समाज' की रचना की है । परिणामस्वरूप धर्मपाल परिवारो की वर्तमान पीढी शिक्षा-दीक्षा मे पहले से बहुत आगे बढी है । अ० भा० साधुमार्गी जैन सघ, बीकानेर इन आदिवासियो के नैतिक उत्थान व सामाजिक जागरण के लिए बराबर प्रयत्नशील है । ये आदि-वासी, जिनका प्रमुख कार्य पहले तीर कमान रखना व शिकार करना था अब भारी सख्या मे शिकार, मांस तथा शराब का सर्वथा त्याग कर, कृषि आदि से अपनी आजीविका चलाने लगे है । उनमे सामायिक, स्वाध्याय की प्रवृत्ति भी बढी है ।

आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा० की प्रेरणा से भगवान् महावीर की पच्चीसवी निर्वाण शताब्दी के अवसर पर हजारो व्यक्तियो ने अपनी जातिगत शराब पीने, मास खाने आदि की परपरा का सदा के लिए त्याग कर दिया है । हजारो व्यापारियो ने प्रामाणिक माप तोल का नियम लिया है । इसके पूर्व भी आचार्य श्री योजनाबद्ध रूप से समय-समय पर नैतिक उत्थान, सामाजिक व

आध्यात्मिक जागरण के लिए बराबर प्रेरणा देते रहे हैं। आपने समाज मे सम्यक् ज्ञान का विकास हो, एतदर्थ स्वाध्याय के प्रचार पर विशेष जोर दिया, फलत सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर के अन्तर्गत स्वाध्याय सघ का जन्म हुआ। आज इस सघ मे सैकडो सक्रिय स्वाध्यायी है जो समता व सयम की ओर बराबर आगे बढ रहे हैं तथा सैकडो ग्रामो मे इनके द्वारा स्वाध्याय प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिल रहा है। इस प्रकार समाज मे ज्ञान वृद्धि के साथ नैतिक व आध्यात्मिक उन्नति मे महत्त्वपूर्ण योगदान मिल रहा है। स्व० श्री पन्नालालजी म० की प्रेरणा से सचालित स्वाध्याय सघ गुलाबपुरा भी इसी प्रकार योजनाबद्ध तरीके से नैतिक उत्थान मे उल्लेखनीय योगदान दे रहा है।

मेवाड कोकिला महासतीजी श्री जसकवरजी म० सा० का भी ध्यान इस ओर सदा से रहा है। आप ही के सदुपदेश की प्रेरणा से इसी वर्ष जोगणिया देवी (बेगूं) के यहाँ होने वाली सैकडो पशुओ की बलि प्रथा बद हुई है।

तेरापथ सम्प्रदाय के आचार्य श्री तुलसी के अणुव्रत आदोलन के माध्यम से नैतिक उत्थान व समाज-सुधार का जो कार्य हुआ है, वह प्रशसनीय है। भ्रष्टाचार-निवारण व सदाचार-प्रसारण के साथ-साथ इस आदोलन से जैन एकता एव सर्वधर्मसमभाव को भी बडा बल मिला है।

ऊपर केवल साकेतिक रूप मे जैन सतो द्वारा नैतिक उत्थान, सामाजिक जागरण व आध्यात्मिक विकास के लिए किए गए प्रयासो का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार की अन्य भी अनेक प्रवृत्तियाँ चल रही हैं। सच्चाई तो यह है कि जैनधर्मानुयायी प्रत्येक सत प्रतिदिन इस प्रकार की जीवन निर्माण की कुछ न कुछ प्रेरणा देता ही है और इसी का प्रभाव है कि आज देश के अन्य प्रान्तो मे जहा इतनी अनैतिकता व गुण्डागर्दी बढ गई है कि किसी का जान-माल सुरक्षित नही रहा है, रात को अकेले मकान से बाहर निकलना कठिन हो गया है, वहा राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश आदि मे, जहा जैन धर्म का प्रचार-प्रसार अधिक है, अब भी सुरक्षा व निश्चितता है। यह जैन धर्म के प्रचार प्रसार का ही परिणाम है।

जैन धर्मानुयायी गृहस्थो, श्रावको का भी नैतिक उत्थान व सामाजिक जागरण मे महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। श्रावक के लिए पाचो अणुव्रतो का पालन अत्यावश्यक है। उसके अहिंसा अणुव्रत के पालन से क्रूरता मिटकर आत्मीयता, मित्रता व सर्वोदय की प्रवृत्ति का प्रसार होता है। सत्याणुव्रत से अविश्वास, झूठ-कपट, धोखा-धडी मिटकर विश्वास, सत्यता, प्रामणिकता का प्रादुर्भाव होता है। अचौर्याणुव्रत से शक्ति-सपत्ति का अपहरण व शोषण मिटकर नैतिकता को बढावा मिलता है। ब्रह्मचर्याणुव्रत से व्यभिचार, दुराचार मिटकर सदाचार का पोषण होता है। परिग्रह परिमाणुव्रत से सग्रहवृत्ति, विषमता, भ्रष्टाचार मिटकर समता व शाति का विस्तार होता है। पच अणुव्रतो के पालन से परिवार, समाज व राष्ट्र मे दुर्व्यसनो, दुराचारो, अनाचारो मे कमी होती है व क्षमा, विनय, सरलता, सज्जनता, सहृदयता, वत्सलता, मृदुता, मधुरता, नम्रता, सहकारिता का विकास होता है जो नैतिक उत्थान व सामाजिक जागरण का मूल है।

पहले कह आए हैं कि जैन समाज मे शराब, व्यभिचार, जुआ आदि कुव्यसनो व अन्य बडी

बुराइयो का त्याग जातीय परम्परा से ही होता है। ये ही वे दुर्व्यसन है जिनसे व्यक्ति या परिवार दिवालिया होता है, पू जी का बुरी तरह से अपव्यय होता है। जैन परिवार इस अपव्यय से बचता है। इससे उसकी आय से व्यय कम होता है और कुछ न कुछ बचत सदा होती ही रहती है। यही बचत धीरे-धीरे बढकर पू जी का रूप ले लेती है। यह अर्थ शास्त्र का नियम है कि पू जी से पू जी पैदा होती है। इसी पू जी से जैनी उद्योग खोलते है। इस प्रकार देश की समृद्धि बढ़ाने व लाखो लोगो की बेरोजगारी दूर करने मे अपना योग देते हैं। आज भी जैन लोग न केवल भारत के सब प्रान्तों मे उद्योग व व्यवसाय से जनता की सराहनीय सेवा कर रहे हैं, अपितु विदेशो मे भी सफल व्यवसायियो व उद्योगपतियो मे गिने जाते हैं। देश के आर्थिक व औद्योगिक विकास मे जैन समाज का योगदान अपेक्षाकृत सबसे अधिक है।

कुछ लोगो की ऐसी धारणा है कि जैन लोग जनता का अधिक शोषण करते हैं। इसीलिए अन्य लोगो से अधिक सम्पन्न हैं। परन्तु उनकी यह धारणा यथार्थ न होकर भ्रमपूर्ण है। जैनियो की सम्पन्नता के लिए निम्नकारण विशेष रूप से उत्तरदायी हैं—

(१) जाति परम्परा के संस्कार के कारण जैन लोग पापभीरू होते हैं। अत. अपनी आजीविका चलाने के लिए ऐसे धन्धे करते हैं जिनमे हिंसा न हो। व्यापार मे अन्य सब धन्धो की अपेक्षा त्रसकाय की कम हिंसा होती है। अत जैनो का आजीविका का साधन मुख्यत व्यापार रहा है। व्यापार से अर्थोपार्जन अन्य धन्धो की अपेक्षा अधिक होता है।

(२) जैन जाति मे दुर्व्यसनो का त्याग होता है। कोई शराब पीता, मास खाता या व्यभिचार करता है तो उसका जाति से बहिष्कार कर दिया जाता है। दुर्व्यसनो मे धन का बुरी तरह व्यय होता है। अत जैनो मे दुर्व्यसन न होने से धन की बचत होती रहती है। यही बचत धीरे-धीरे बढकर पू जी बन जाती है। फिर पू जी से पू जी बढने का क्रम प्रारभ हो जाता है।

(३) जैनो में दुर्व्यसन न होने का एक लाभ यह भी है कि उनकी बौद्धिक क्षमता अन्य लोगो से अधिक होती है। अत वे जो भी कार्य करते हैं उनमें प्राय सफलता ही मिलती है कारण कि वे सफलता प्राप्ति के बीसो उपाय ढू ढ लेते है। व्यावसायिक सफलता ही जैनो की सम्पन्नता का कारण है।

इस सबध में महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि अन्य सपन्न लोगो की अपेक्षा जैन लोग समाज सेवा करने व दान देने में अधिक उदार रहे हैं। कारण यह है कि जैन घर में जन्मे बच्चे को जीवन के प्रारम्भ से ही यह सुनने को मिलता है कि परिग्रह अर्थात् धन का सग्रह बुरा है। धन का सदुपयोग सेवा करने व दान देने में है, भोग-विलास में नही। वही बच्चा जब बडा होता है तो इन्ही सस्कारो से जहा भी सेवा का अवसर आता है, वहा वह सहर्ष तन, मन, धन से अपना योग देता है।

जैन उदारचित्त होता है अत वह सेवा के क्षेत्र मे भी अपनी दृष्टि कभी भी सकुचित नही रखता है। उसका सेवा का क्षेत्र केवल जैन जाति तक ही सीमित या सकुचित नही होता है। वह जहा भी जैसी आवश्यकता होती है, वहा जाति-पाति के भेदभाव को भुलाकर नि स्स्वार्थ भाव से सेवा करता रहा हैं। वस्तुत सेवा जैन के जीवन का एक अ ग है।

जैन साधुओ ने जैन समाज को तो सेवा के लिए सतत प्रेरणा दी ही, साथ ही साथ अपने सार्वजनिक भाषणो मे बार बार सेवा पर जोर देकर, अन्य जैनेतर समाजो मे भी सेवा-भाव का प्रचार-प्रसार करने मे अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। सेवा के इसी सूत्र को, मत्र को यदि सब लोग अपना लें तो समाज और देश की सब समस्याएं सुलझ जाए ।

आशय यह है कि जैन समाज ने देश के सर्वांगीण विकास मे तन, मन, धन से पूर्ण योग दिया है। नैतिकता का कोई अ ग ऐसा नही है, जिसके उत्थान मे जैनियो का पूर्ण सहयोग न मिला हो, समाज का ऐसा कोई पक्ष नही है जिसके विकास मे जैनियो का योग किसी से कम रहा हो। जैन समाज, सख्या मे देश का एक प्रतिशत न होते हुए भी, देश और समाज के विकास मे अपेक्षाकृत सबसे आगे रहा है। प्रत्येक जैन अपने जीवन की सार्थकता इसी मे मानता है कि वह अपनी और दूसरो की बुराइयो को दूर करे व दूसरे के अधिक से अधिक काम आए। वह दूसरो के दु ख दूर करने व सुखी बनाने मे अपना सौभाग्य समझता है। यही कारण है कि भारत के इतिहास मे सामाजिक जागरण व सेवा के रूप मे जैनियो का योगदान सभी युगो मे स्वर्णाक्षरो मे लिखे जाने योग्य रहा है।

बुराइयो का त्याग जातीय परम्परा से ही होता है। ये ही वे दुर्व्यसन है जिनसे व्यक्ति या परिवार दिवालिया होता है, पूजी का बुरी तरह से अपव्यय होता है। जैन परिवार इस अपव्यय से बचता है। इससे उसकी आय से व्यय कम होता है और कुछ न कुछ बचत सदा होती ही रहती है। यही बचत धीरे-धीरे बढकर पूजी का रूप ले लेती है। यह अर्थ शास्त्र का नियम है कि पूजी से पूजी पैदा होती है। इसी पूजी से जैनी उद्योग खोलते है। इस प्रकार देश की समृद्धि बढाने व लाखो लोगो की बेरोजगारी दूर करने मे अपना योग देते हैं। आज भी जैन लोग न केवल भारत के सब प्रान्तो मे उद्योग व व्यवसाय से जनता की सराहनीय सेवा कर रहे हैं, अपितु विदेशो मे भी सफल व्यवसायियो व उद्योगपतियो मे गिने जाते हैं। देश के आर्थिक व औद्योगिक विकास मे जैन समाज का योगदान अपेक्षाकृत सबसे अधिक है।

कुछ लोगो की ऐसी धारणा है कि जैन लोग जनता का अधिक शोषण करते हैं। इसीलिए अन्य लोगो से अधिक सम्पन्न है। परन्तु उनकी यह धारणा यथार्थ न होकर भ्रमपूर्ण है। जैनियो की सम्पन्नता के लिए निम्नकारण विशेष रूप से उत्तरदायी हैं—

(१) जाति परम्परा के संस्कार के कारण जैन लोग पापभीरू होते हैं। अत अपनी आजीविका चलाने के लिए ऐसे धन्धे करते हैं जिनमे हिंसा न हो। व्यापार मे अन्य सब धन्धो की अपेक्षा त्रसकाय की कम हिंसा होती है। अत जैनो का आजीविका का साधन मुख्यत व्यापार रहा है। व्यापार से अर्थोपार्जन अन्य धन्धो की अपेक्षा अधिक होता है।

(२) जैन जाति मे दुर्व्यसनो का त्याग होता है। कोई शराब पीता, मास खाता या व्यभिचार करता है तो उसका जाति से बहिष्कार कर दिया जाता है। दुर्व्यसनो मे धन का बुरी तरह व्यय होता है। अत जैनो मे दुर्व्यसन न होने से धन की बचत होती रहती है। यही बचत धीरे-धीरे बढकर पूजी बन जाती है। फिर पूजी से पूजी बढने का क्रम प्रारभ हो जाता है।

(३) जैनो में दुर्व्यसन न होने का एक लाभ यह भी है कि उनकी बौद्धिक क्षमता अन्य लोगो से अधिक होती है। अत वे जो भी कार्य करते हैं उनमें प्राय सफलता ही मिलती है कारण कि वे सफलता प्राप्ति के बीसो उपाय ढूढ लेते है। व्यावसायिक सफलता ही जैनो की सम्पन्नता का कारण है।

इस सबध में महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि अन्य सपन्न लोगो की अपेक्षा जैन लोग समाज सेवा करने व दान देने में अधिक उदार रहे हैं। कारण यह है कि जैन घर में जन्मे बच्चे को जीवन के प्रारम्भ से ही यह सुनने को मिलता है कि परिग्रह अर्थात् धन का सग्रह बुरा है। धन का सदुपयोग सेवा करने व दान देने में है, भोग-विलास में नही। वही बच्चा जब बडा होता है तो इन्ही सस्कारो से जहा भी सेवा का अवसर आता है, वहा वह सहर्ष तन, मन, धन से अपना योग देता है।

जैन उदारचित्त होता है अत वह सेवा के क्षेत्र मे भी अपनी दृष्टि कभी भी सकुचित नही रखता है। उसका सेवा का क्षेत्र केवल जैन जाति तक ही सीमित या सकुचित नही होता है। वह जहा भी जैसी आवश्यकता होती है, वहा जाति-पाति के भेदभाव को भुलाकर नि स्स्वार्थ भाव से सेवा करता रहा हैं। वस्तुत सेवा जैन के जीवन का एक अग है।

जैन साधुओ ने जैन समाज को तो सेवा के लिए सतत प्रेरणा दी ही, साथ ही साथ अपने सार्वजनिक भाषणो मे बार बार सेवा पर जोर देकर, अन्य जैनेतर समाजो मे भी सेवा-भाव का प्रचार-प्रसार करने मे अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। सेवा के इसी सूत्र को, मत्र को यदि सब लोग अपना लें तो समाज और देश की सब समस्याए सुलझ जाए ।

आशय यह है कि जैन समाज ने देश के सर्वांगीण विकास मे तन, मन, धन से पूर्ण योग दिया है। नैतिकता का कोई अ ग ऐसा नही है, जिसके उत्थान मे जैनियो का पूर्ण सहयोग न मिला हो, समाज का ऐसा कोई पक्ष नही है जिसके विकास मे जैनियो का योग किसी से कम रहा हो। जैन समाज, सख्या मे देश का एक प्रतिशत न होते हुए भी, देश और समाज के विकास मे अपेक्षाकृत सबसे आगे रहा है। प्रत्येक जैन अपने जीवन की सार्थकता इसी मे मानता है कि वह अपनी और दूसरो की बुराइयो को दूर करे व दूसरे के अधिक से अधिक काम आए। वह दूसरो के दु ख दूर करने व सुखी बनाने मे अपना सौभाग्य समझता है। यही कारण है कि भारत के इतिहास मे सामाजिक जागरण व सेवा के रूप मे जैनियो का योगदान सभी युगो मे स्वर्णाक्षरो मे लिखे जाने योग्य रहा है।

बुराइयो का त्याग जातीय परम्परा से ही होता है। ये ही वे दुर्व्यसन है जिनसे व्यक्ति या परिवार दिवालिया होता है, पू जी का बुरी तरह से अपव्यय होता है। जैन परिवार इस अपव्यय से बचता है। इससे उसकी आय से व्यय कम होता है और कुछ न कुछ बचत सदा होती ही रहती है। यही बचत धीरे-धीरे बढकर पू जी का रूप ले लेती है। यह अर्थ शास्त्र का नियम है कि पू जी से पू जी पैदा होती है। इसी पू जी से जैनी उद्योग खोलते है। इस प्रकार देश की समृद्धि बढाने व लाखो लोगो की वेरोजगारी दूर करने मे अपना योग देते हैं। आज भी जैन लोग न केवल भारत के सब प्रान्तो मे उद्योग व व्यवसाय से जनता की सराहनीय सेवा कर रहे हैं, अपितु विदेशो मे भी सफल व्यवसायियो व उद्योगपतियो मे गिने जाते हैं। देश के आर्थिक व औद्योगिक विकास मे जैन समाज का योगदान अपेक्षाकृत सबसे अधिक है।

कुछ लोगो की ऐसी धारणा है कि जैन लोग जनता का अधिक शोषण करते हैं। इसीलिए अन्य लोगो से अधिक सम्पन्न हैं। परन्तु उनकी यह धारणा यथार्थ न होकर भ्रमपूर्ण है। जैनियो की सम्पन्नता के लिए निम्नकारण विशेष रूप से उत्तरदायी हैं—

(१) जाति परम्परा के संस्कार के कारण जैन लोग पापभीरू होते हैं। अत अपनी आजीविका चलाने के लिए ऐसे धन्धे करते हैं जिनमे हिंसा न हो। व्यापार मे अन्य सब धन्धो की अपेक्षा त्रसकाय की कम हिंसा होती है। अत जैनो का आजीविका का साधन मुख्यत व्यापार रहा है। व्यापार से अर्थोपार्जन अन्य धन्धो की अपेक्षा अधिक होता है।

(२) जैन जाति मे दुर्व्यसनो का त्याग होता है। कोई शराब पीता, मास खाता या व्यभिचार करता है तो उसका जाति से बहिष्कार कर दिया जाता है। दुर्व्यसनो मे धन का बुरी तरह व्यय होता है। अत जैनो मे दुर्व्यसन न होने से धन की बचत होती रहती है। यही बचत धीरे-धीरे बढकर पू जी बन जाती है। फिर पू जी से पू जी बढने का क्रम प्रारभ हो जाता है।

(३) जैनो में दुर्व्यसन न होने का एक लाभ यह भी है कि उनकी बौद्धिक क्षमता अन्य लोगो से अधिक होती है। अत वे जो भी कार्य करते हैं उनमें प्राय सफलता ही मिलती है कारण कि वे सफलता प्राप्ति के बीसो उपाय ढू ढ लेते है। व्यावसायिक सफलता ही जैनो की सम्पन्नता का कारण है।

इस सबध में महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि अन्य सपन्न लोगो की अपेक्षा जैन लोग समाज सेवा करने व दान देने में अधिक उदार रहे हैं। कारण यह है कि जैन घर में जन्मे बच्चे को जीवन के प्रारम्भ से ही यह सुनने को मिलता है कि परिग्रह अर्थात् धन का सग्रह बुरा है। धन का सदुपयोग सेवा करने व दान देने में है, भोग-विलास में नही। वही बच्चा जब बडा होता है तो इन्ही सस्कारो से जहा भी सेवा का अवसर आता है, वहा वह सहर्ष तन, मन, धन से अपना योग देता है।

जैन उदारचित्त होता है अत वह सेवा के क्षेत्र मे भी अपनी दृष्टि कभी भी सकुचित नही रखता है। उसका सेवा का क्षेत्र केवल जैन जाति तक ही सीमित या सकुचित नही होता है। वह जहा भी जैसी आवश्यकता होती है, वहा जाति-पाति के भेदभाव को भुलाकर नि स्स्वार्थ भाव से सेवा करता रहा हैं। वस्तुत सेवा जैन के जीवन का एक अ ग है।

जैन साधुओ ने जैन समाज को तो सेवा के लिए सतत प्रेरणा दी ही, साथ ही साथ अपने सार्वजनिक भाषणो मे बार बार सेवा पर जोर देकर, अन्य जैनेतर समाजो मे भी सेवा-भाव का प्रचार-प्रसार करने मे अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। सेवा के इसी सूत्र को, मत्र को यदि सब लोग अपना लें तो समाज और देश की सब समस्याएं सुलझ जाए ।

आशय यह है कि जैन समाज ने देश के सर्वांगीण विकास मे तन, मन, धन से पूर्ण योग दिया है। नैतिकता का कोई अ ग ऐसा नही है, जिसके उत्थान मे जैनियो का पूर्ण सहयोग न मिला हो, समाज का ऐसा कोई पक्ष नही है जिसके विकास मे जैनियो का योग किसी से कम रहा हो। जैन समाज, सख्या मे देश का एक प्रतिशत न होते हुए भी, देश और समाज के विकास मे अपेक्षाकृत सबसे आगे रहा है। प्रत्येक जैन अपने जीवन की सार्थकता इसी मे मानता है कि वह अपनी और दूसरो की बुराइयो को दूर करे व दूसरे के अधिक से अधिक काम आए। वह दूसरो के दु ख दूर करने व सुखी बनाने मे अपना सौभाग्य समझता है। यही कारण है कि भारत के इतिहास मे सामाजिक जागरण व सेवा के रूप मे जैनियो का योगदान सभी युगो मे स्वर्णाक्षरो में लिखे जाने योग्य रहा है।

४६ राजस्थान में जीव-हिं ा-निषेध के यत्न

•

श्री अगरचन्द नाहटा

मूलधर्म समता '

जैनतीर्थंकरो का मूल धर्म समता का है । उसीसे अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकान्त आदि सिद्धातो का विकास हुआ है । भगवान् महावीर ने तो अनेक जगह कहा है कि सभी जीव सुख चाहते हैं, जीना चाहते है । अत. किसी को भी दु ख देना और मारना अपना ही बुरा करना है । तुम दूसरे को दु ख देते हुए या मारते हुए अपने को ही दु ख दे रहे हो इसी भावना से प्राणीमात्र का रक्षण करो, अभय दो । सब आत्माओ को अपने समान देखो, यही अहिंसा है ।

अहिंसा की सूक्ष्मता

जैन धर्म मे सूक्ष्म जीवो का जितना अधिक विवेचन है उतना विश्व के किसी भी धर्म मे नही है । पृथ्वी, जल, अग्नि वायु और वनस्पति इन स्थावर एकेन्द्रिय जीवो को वतलाना केवलज्ञानी सर्वज्ञ तीर्थंकरो का ही काम है । आज तो अनेक यन्त्रो द्वारा वनस्पति आदि मे अन्य प्राणी जगत की भाति सुख दु ख की अनुभूति होती है, यह सिद्ध हो चुका है । पर भगवान महावीर या उससे पहले केवल आत्म विशुद्धि के वल पर ऐसा वतलाना अन्य किसी के लिए सभव ही नही था । केवल सूक्ष्म जीवो का निरुपण ही नही किया पर उनकी रक्षा के लिए भी उतना ही सजग उपदेश दिया व प्रयत्न किया । अत जैनधर्म की अहिंसा अन्य सव धर्मों की अपेक्षा वहुत ही सूक्ष्म है ।

जीवहिंसा महान् पाप

जिस लोक मे हम मनुष्य रहते हैं उसी मे पशु, पक्षी आदि जीव भी निवास करते हैं । उनसे केवल सम्पर्क ही नही होता, परस्पर सम्बन्ध भी बने रहते हैं । कई वातो मे तो हम उन सव जीवो के उपकृत भी है । इसलिए पशु-पक्षी जगत का विनाश करना तो वहुत ही हिंसा अर्थात् पाप का कारण है । उनकी हत्या अनेक कारणो से की जाती है । जिनमे सवसे पहला कारण तो है मासाहार, दूसरा है पशुबलि, हिंसात्मक यज्ञ आदि, तीसरा शिकार और खेल-मनोरजन । पशु-पक्षियो मे से कई प्राणी तो हिंसक हैं उनसे अपनी रक्षा करने के लिए भी मनुष्यो को समय-समय पर उनकी हिंसा करनी पडती है । इनमे से सवसे अधिक हिंसा तो मासाहार के लिए होती है । अत जैन धर्म मे मासाहार को नर्क का कारण वतलाते हुए लाखो मनुष्यो को उपदेश देकर निरामिषहारी वनाया गया । इसी

तरह यज्ञो और वलि के निवारण के लिए भी पूर्ण प्रयत्न किया गया । भगवान महावीर और उनके अनुवर्ती आचार्यों, मुनियो और श्रावको के महान प्रयत्नो से बहुत बडी जीव हिंसा वन्द की जा सकी । यह जैनो के लिए बहुत ही गौरवपूर्ण बात है ।

जैन धर्म और जैन धर्माचार्यों का प्रभाव

राजस्थान और गुजरात मे जैनधर्म का प्रचार सबसे अधिक रहा । फलतः अन्य प्रान्तो की अपेक्षा शाकाहारियो की सख्या इन दो प्रान्तो मे सबसे अधिक है । यज्ञो मे जो अश्व, मनुष्य आदि का होम किया जाता था वह तो जैनधर्म के प्रचार से सर्वथा बन्द ही हो गया । देवी-देवताओ को प्रसन्न करने के लिए जो बकरे, भैंसे आदि की वलि दी जाती थी, वह भी काफी अंशो मे वन्द हो गयी । और राजाओ आदि के अतिरिक्त प्रायः शिकार करना भी वन्द हो गया । सप्त व्यसनो मे मास के साथ-साथ शिकार का भी निषेध किया गया है । इसी तरह जुआ, मदिरापान, वेश्यागमन, परस्त्री गमन, चोरी भी सात व्यसनो मे सम्मिलित करके जैनी मात्र के लिए सप्त व्यसनो का निषेध किया गया । इसका प्रभाव अन्य सत-सम्प्रदायो पर भी और जैनेतर जनता पर भी पडा ।

उपकेशगच्छ की परम्परा के अनुसार भगवान महावीर के १७ वर्ष मे रत्नप्रभ सूरिजी ने ओसियानगरी मे लक्ष्याधिक अहिंसा प्रेमी जनी बनाये । इसी तरह अन्य ग्राम-नगरो मे श्वेताम्बर, दिगम्बर जैनाचार्यों ने लाखो व्यक्तियो को प्रतिवोध देकर मास, पशुवलि, शिकार आदि पापो से विरक्त करते हुए उन्हे जैनी बनाया । यह जैनाचार्यों की सयम, तप-त्याग और मन्त्रादि शक्ति का प्रभाव था । उन्हे अहिंसा प्रचार मे काफी कठिनाई हुयी फिर भी उन्होने अपना प्रयत्न निरन्तर जारी रखा और तनिक भी शिथिलता नही आने दी ।

आचार्य रत्नप्रभ सूरि जिन्होने सबसे पहले ओसवाल जैन बनाये उनके जीवन की ही एक घटना यहा दी जा रही है जिससे पता चलता है कि कितनी बडी कठिनाई को उन्होने कैसे सुन्दर रूप मे हल कर दिया । इसका महत्त्वपूर्ण और प्रेरणादायक उल्लेख पट्टावलियो, वशावलियो आदि मे मिलता है । ओसिया नगर मे उस समय चामुण्डादेवी की बडी मान्यता थी । नवरात्रि के दिनो मे तो सैकडो बकरो, भैसो आदि की वलि दी जाती थी । वैसे प्रायः प्रत्येक दिन ही देवी के सामने उन निरीह मूक पशुओ की निर्दयता पूर्ण हत्या की जाती थी । जन साधारण मे ऐसी मान्यता रूढ हो गयी थी कि जो देवी को वलि नही देगा उसका बडा अनिष्ट हो जायगा यह प्रश्न नये जैन बनने वालो के सामने भी आया । उन्होने देवी को पशु वलि नही दी तो कुछ दुर्घटनाए भी घटी, उपद्रव भी होने लगे । तो उन्होने आचार्य रत्नप्रभ सूरि से पुकार की, कि हम तो आपके उपदेश से अहिंसक बन गये, मास, पशु वलि, शिकार सबको छोड दिया पर चामुण्डा देवी बडी क्रूर है । इसको पशुवलि दिये बिना हमारी रक्षा कैसे होगी ? तब आचार्य श्री ने कहा कि अच्छा इसका उपाय किया जायगा । उन्होने अपने ध्यान वल से देवी को आकर्षित किया देवी ने कहा—मेरी परम्परागत वलि को आप कैसे निषेध कर रहे हैं ? तब सूरिजी ने कहा कि तुम तो जगत की माता—अम्बा हो, जैसे मनुष्य तुम्हारे सेवक और भक्त है वैसे बकरे भी तुम्हारी सन्तान हैं । उनकी भी तो रक्षा तुम्हे करनी चाहिये । देवी ने कहा कि आप कहते तो ठीक हैं पर लम्बे समय से लोग मुझे वलि दे रहे है उसके बिना मैं सतुष्ट नही होती, अभ्यास सा पड गया है । तब दृढता से साथ आचार्य श्री ने कहा कि हमतो अहिंसा धर्मी हैं पशु वलि तो तुम्हे किसी भी तरह नही चढा सकते । तुम मेरे प्रतिबोधित जैनो का उपद्रव

करोगी तो मुझे फिर अन्य कोई टेढा रास्ता सोचना पड़ेगा। नही तो फिर मेरा कहा मानो। मैं तुम्हे अच्छे-अच्छे खाद्य पदार्थ प्रचुर परिमाण मे चढाने को श्रावको से कह दूंगा। हमारे श्रावको के लिए तो तुम्हे इसकी छूट देनी ही पडेगी। अन्त मे सूरिजी के तप तेज से प्रभावित होकर देवी ने उनका कहा माना उसने सोचा कि मैं यदि ऐसे महात्मा पुरुष का कहा नही मानूंगी तो मेरे लिए ही भारी पडेगा। जैनी मुझे मानना छोड देंगे। मेरे से भी बडे देवी-देवता गुरुमहाराज के सेवक और भक्त है। अत मैं बिगाड करूंगी तो उनके द्वारा अशान्ति का निवारण हो जायगा।

देवी को प्रतिबोध देकर उन्होने उसे ओसवालो की कुलदेवी मान्य रखते हुए उसकी मान्यता जारी रखी। पर उसका चण्डिका नाम बडा क्रूर था उसे बदल कर उन्होने उस देवी का नाम सच्चिका-सत्यिका रख दिया। इस नाम वाली देवी के कई स्तोत्र जैनाचार्यों व मुनियो के रचे हुए मिलते है और उनके प्रतिष्ठित सत्यिका की कई मूर्तिया जोधपुर आदि म्यूजियम मे पायी जाती हैं।

ओसवाल समाज मूलतः क्षत्रिय समाज था जिसमे मासाहार, शिकार, बलि आदि का बोल-बाला था। इसलिए जैनी बनने के बाद अधिकाश लोगो ने खेती, व्यापार करते हुए अपने को वैश्य के रूप मे प्रतिष्ठित कर दिया। यद्यपि राजघरानो से भी उनका सम्बन्ध अच्छे रूप मे बना रहा। जैन जातियो की अलग स्थापना जैनाचार्यों ने बडी दीर्घ दृष्टि से इसीलिए की कि पूर्व सस्कार और आसपास के वातावरण और सम्पर्क से उनमे फिर हिंसा भाव का पनपना सम्भव है। इसलिए मासाहारियो, शिकारियो, पशुवलि आदि देने वालो से उनके रोटी, वेटी का व्यवहार बन्द कर दिया गया। इसी से जैनी आज भी पूर्ण शाकाहारी और पशु-पक्षी ही नही चीटी आदि छोटे-छोटे जन्तुओ की रक्षा के लिए भी सावधान रहते हैं। उनके इस अहिंसा पालन का प्रभाव आस-पास के सभी लोगो पर पडा। फलत करोडो व असख्य जीवो को अभय दान मिल गया।

दया और करुणा भाव :

इतना ही नही पशु-पक्षियो के प्रति दया और करुणा भाव भी इतना जाग्रत किया गया जिससे उन्हे दाने, चुग्गे आदि के लिए अन्न, रोटिया आदि देना प्रत्येक गृहस्थ का आवश्यक कर्तव्य हो गया। और गाय, बैल आदि की रक्षा के लिए गोशालाएँ, कबूतरखाने आदि खोले गये। पशु-पक्षियो की रक्षा ही नही उनके सरक्षण और सवर्द्धन का भी प्रयत्न किया गया। पाठको को यह जानकर बहुत ही आश्चर्य सा होगा कि कुत्ते आदि कई मासाहारी पशुओ को भी जैन समाज, व इतर समाज ने नित्य नियमित रोटिया खिलाकर उनकी मासाहार प्रवृत्ति कम करदी और पालतू बनाकर अपने घरो आदि की रक्षा का प्रवन्ध भी किया गया।

अमारि की उद्घोषणा ·

समय-समय पर जैनाचार्यों ने राजाओ और बादशाहो को अहिंसा धर्म का उपदेश देकर उनके राज्य भर मे अमारि (किसी जीव की भी हत्या नही की जाय न मारा जाय,) की उद्घोपणा करवा दी, फरमान जारी करवा दिये। उन सबका विस्तृत विवरण दिया जाय तो एक स्वतन्त्र ग्रन्थ ही बन सकता है। पर यहा थोडे से उदाहरण ही प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

मल्लधारी अभय देव सूरि के उपदेश से राजा जयसिंह ने अमारि उद्घोषणा करवायी थी? मल्लधारी हेमचन्द्रसूरि के उपदेश से सिद्धराज ने वर्ष मे ८० दिनो तक जीव रक्षा के लिए एतवर पत्र

लिखकर दिये थे। बहुत से राज्यो के मन्त्री सेनापति, कोषाध्यक्ष आदि जैनी ही थे। इसलिए अमारि उद्घोषणा व जीव हिंसा निषेध मे अधिक सहूलियत मिली।

बीकानेर राज्य के बच्छावत कई पीढियो तक मन्त्री रहे। उन्हे धन और मान की अपेक्षा धर्म अधिक प्रिय था। इसका एक ही उदाहरण दिया जा रहा है कि मन्त्रीश्वर कर्मचन्द्र ने बडी सूझबूझ से सम्राट अकबर को प्रसन्न करके राव कल्याणसिंह जी के जोधपुर के राजगवाक्ष मे बैठकर कमल पूजा करने का असभव सा मनोरथ पूर्ण कर दिया। इसके उपलक्ष्य मे जब कल्याणसिंहजी ने मन्त्रीश्वर को जो भी इच्छा हो मागने को कहा तो कर्मचन्द्र ने और कुछ भी न चाहकर यही मागा कि चातुर्मास मे हलवाई, तेली आदि अपने तिल पिडनादि हिंसात्मक कार्य न करें। बकरी, भेड, ऊँट आदि का कर न लिया जाय। इसी तरह समीयाणा के वन्दीजनो को रायसिंहजी की कृपा से सैनिको के हाथ से छुडाया। स० १६३५ के महादुष्काल के समय १३ महिनो तक मन्त्रीश्वर ने दान-शाला खोलकर दीन-हीन रोगग्रस्त व्यक्तियो को खान पान, वस्त्र, औषध आदि देकर प्रशसनीय सहायता की और आश्रितो को अपने खर्च से साथी देकर अपने स्थान पहुचा दिया। उनके हृदय मे कितनी दया व करुणा थी कि राज्य भर मे आठम, चवदस, पूनम, अमावस और चातुर्मास मे कुम्हार, तेली आदि को हिंसात्मक कार्य निषेध करवा दिये। सारे वायु मण्डल मे खेजडी आदि वृक्षो का छेदन निषेध करा दिया। सिन्धु देश की सतलज, रावि आदि नदियो मे मच्छो की हिंसा बन्द करवा दी।

इसी तरह सम्राट अकबर जब हीरविजयसूरि, जिनचन्द्रसूरि और विद्वान् जैन मुनियो से प्रभावित हुआ तो उसने आषाढ सुदी चौमासे के आठ दिन और पर्युषण के १२ दिन जीव हिंसा अपने सभी सूबो मे फरमान भेजकर बन्द करवा दी। खम्भात के समुद्र की मछलियो को पकडना १ वर्ष तक बन्द करवा दिया। यहा तक कि प्राय वर्ष मे ६ माह तक पशु-पक्षी की हिंसा सम्राट अकबर जैसे मुसलमान ने बन्द करवादी। गोरक्षा का फरमान जारी कर दिया और स्वय मासाहार करना छोड दिया।

मुसलमान सम्राट् अकबर ने हीरविजयसूरि व जिनचन्द्रसूरि को हिंसानिषेध के जो फरमान दिये थे उनकी नकल यहाँ दी जा रही है।

कसाइयो के मुचलके की नकल

बीकानेर मे पर्युषणो के १० दिन कसाईवाडा चिरकाल से बन्द रहता है। तत्सम्बन्धी कसाइयो के मुचलके की नकल इस प्रकार है—

मरजुआ १५ अक्टूबर सन् १८९२ ईस्वी
मोहर महकमे मुनिसीपल
कमेटी राज श्री बीकानेर
स० १९४७

श्री महाकमा म्युनिसीपल कमेटी
राज श्री बीकानेर
महाराव सवाईसिंह

लिखतु वोपारी हाजी अजीम वासल रो वा अलफु कीमँ रो वा खुदावग्स भीखँ रो वा वहादर समसँ रो वा इलाहीवग्स मोवत रो वा मोलावग्स मदँ रो वा कायमदीन अजीम रो वा, फोजू गोलू रो वा कायमदीन खाजु रो वगेरे समसुता जोग तथा म्हे लोग पजुसणा मे अगता मिति भादवा वदि १२ सूं मिती भादवा सुदी ६ ताई कदीमी राखता आवा छा और पेली ओसवाला री तरफ सूं

लावण, वीहा मे वगैरह मे म्हाने मिलतो छो सु इया वरसा मे कम मिलने लाग्यो जै पर म्हे हर साल पचान ओसवाल ने केवता रहा के हमारा बन्दोवस्त कर देणा चाहिजे लेकिन वारी तरफ से बन्दोवस्त नही हुआ स हमे मैनुसीपल कमेटी री मारफत मिती भादवा वदी १२ सु मिती भादवा सुदि ६ ताई कोई वैपारी जीव हत्या नही करसी और श्री रसोवडे री दुकान १ वाँ अजर साहब बहादुर री दुकान १ जारी रहसी जै मै रसोवडे री दुकान रो रसोवडे सिवाय दूजे ने नही देसी वा० अजर री दुकान वालो सवाय हुकमत अगरेज बहादुर ओरा ने नही देसी। केई साल मे भादवा दो रे कारण पजूसण दो होगा तो अगता दोणु पजुसण मे बरोबर राखसा रु० १००) सु ज्यादा नही मागसा इयँ मै कसर नही पडसी। अगर इयँ मै कसर घाता तो सिरकार सू सजा कैद वा जरीवाने री मरजी आवे सु देवे। ओ लिखत मै म्हारी राजी खुशी सू की यो छै। इये मै कही लाव कसर नहीं घात सा स० १६४६ मिति आसोज सुदी ६ ता ३० सितम्बर सन् १८८२ इस्वी।

द० खुदाबग्स वल्द भीखा वकलम— द० पीरबग्स

द० ....बगस द० इलाही वगस

द० मौलाबग्स वल्द मदारी बकलम धाय भाई छोगो।

खत वा० फाजु वल्द गोलु वा० कायमदीन वल्द खाजु वा हाजी अजीम वल्द वासल वकलम इलाहीबग्स। द० रहीम वल्द इलाईवग्स वा मोलावग्स वल्द नूरा वा० समसु वा० कादर वा अब्दुलो वा कायमदीन वल्द अजीम बकलम धाय भाई छोगो।

द० रैमतउल्ला बकलम खाजू। द० करमतउल्ला वकलम खाजू।

द० खाजू वल्द वा० लखा वल्द अजीम वा० इलाईबग्स वल्द इमामवग्स बकलम इलाईबग्स वमुजब के णे च्यारा के द० करीमबग्स द० गुलाम रसूल।

फरमान अकबर बादशाह गाजी का

सूबे मूलतान के बडे-बडे हाकिम, जागीरदार करोडी और सब मुत्सद्दी (कर्मचारी) जानलें कि हमारी यही मानसिक इच्छा है कि सारे मनुष्यो और जीव जन्तुओ को सुख मिले, जिसे सब लोग अमन चैन मे रहकर परमात्मा की आराधना मे लगे रहें। इससे पहले शुभ चिन्तक तपस्वी जयचन्द (जिनचन्द्र) सूरि खरतरगच्छ हमारी सेवा मे रहता था। जब उसकी भागवद् भक्ति प्रकट हुई तब हमने उसको अपनी बडी बादशाही की महरबानियो मे मिला लिया। उसने प्रार्थना की कि इससे पहले हीर-विजय सूरि ने सेवा मे उपस्थित होने का गौरव प्राप्त किया था और हर साल बारह दिन मागे थे, जिनमे बादशाही मुल्को मे कोई जीव मारा न जावे और कोई आदमी किसी पक्षी, मछली और उन जैसे जीवो को कष्ट न दे। उसकी प्रार्थना स्वीकार हो गई थी। अब मैं भी आशा करता हूँ कि एक सप्ताह का और वैसा ही हुक्म इस शुभचिन्तक के वास्ते हो जाय। इसलिये हमने अपनी-अपनी आम दया से हुक्म फरमा दिया कि आषाढ शुक्ला पक्ष की नवमी से पूर्णमासी तक साल मे कोई जीव मारा न जाय और न कोई आदमी किसी जानवर को सतावे। असल बात तो यह है कि जब परमेश्वर ने आदमी के वास्ते भाति-भाति के पदार्थ उपजाये है तब कभी किसी जानवर को दु ख न दे और अपने पेट को पशुओ का मरघट न बनावे। परन्तु कुछ हेतुओ से अगले बुद्धिमानो ने वैसी तजवीज की है। इन दिनो आचार्य जिनसिंह सूरि उर्फ मानसिंह ने अर्ज कराई कि पहिले जा ऊपर लिखे अनुसार हुक्म हुआ था नह खो गया है, इसलिये हमने उस फरमान के अनुसार नया फरमान इनायत किया है।

चाहिये कि जैसा लिख दिया गया है वैसा ही इस आज्ञा का पालन किया जाय। इस विषय मे बहुत बडी कोशिश और ताकीद समझ कर इसके नियमो मे उलट फेर न होने दें। ता ३१ खुरदाद इलाही सन् ४६।

हजरत बादशाह के पास रहने वाले दौलत खां को हुक्म पहुचाने से उमदा अमीर और सहकारी राय मनोहर की चौकी और ख्वाजा लालचन्द के वाकिया (समाचार) लिखने की बारी मे लिखा गया।

सम्राट जहांगीर ने भी कई खास दिनो मे जीव हिंसा निषेध जारी रखा। इसके अनुकरण मे राजस्थान के कई राजाओ ने भी अपने यहा अमारि उद्घोषणा करवा दी थी। यह सब जैनाचार्यों और श्रावको के अहिंसा प्रचार की प्रबल भावना और प्रभाव का द्योतक है।

जीव हिंसा निषेध जैनो का एक आवश्यक कर्तव्य ही हो गया। इसलिए जब भी जैन पर्व आते, कोई उत्सव होता तो सबसे पहला काम यही होता कि पशु पक्षियो की हिंसा बन्द करवाई जाय। कसाई वाडे बन्द रखवाये जाय, अगते पालन किये जाय, बकरो आदि को अमर बनाये जाय। इसके लिए वे अपने प्रभाव और प्रयत्न से राजाओ से आज्ञा जारी करवा देते। पैसे देकर कसाइयो से जीवों को छुडवा दिया जाता। बीकानेर, जोधपुर आदि राज्यो मे पर्युषणो आदि मे कसाई वाडा बन्द रहता। बीकानेर राज्य मे कसाईवाडा बन्दी का जो अन्तिम दस्तावेज था, उसकी नकल पीछे दी जा चुकी है। खेद है, जैन समाज की उपेक्षा के कारण यह प्रणाली कुछ वर्षों पहले बन्द हो गयी। फिर भी राजस्थान सरकार से कुछ खास दिनो के लिए[1] कसाईवाडे बन्द रखवाये जाते हैं। अभी भगवान महावीर के २५०० वें निर्वाण महोत्सव के उपलक्ष्य मे राजस्थान सरकार ने हिंसा निषेध के कुछ आदेश जारी किये हैं। शताब्दी वर्ष के लिए शिकार बन्द करदी है।

पशु-पक्षि बलि निषेध विधेयक

भगवान महावीर ने अपने समय मे व्याप्त धर्म के नाम पर की जाने वाली बलि प्रथा का सख्त विरोध किया था। वस्तुतः यज्ञ मे बलि देने का जो विधान है वह किसी पशु या पक्षी से सम्बद्ध न होकर अपनी पशुता (पापवृत्तिया) को होमने का विधान है। व्यासजी का यह कथन इसी ओर इंगित करता है—ज्ञान रूपी पाल से घिरे हुए ब्रह्मचर्य और दया रूपी जल से परिपूर्ण पाप रूपी अग्नि कुण्ड मे दम रूपी वायु द्वारा प्रज्वलित ध्यान रूपी अग्नि मे बुरे कर्म रूपी ईंधन (समिधा) डाल कर श्रेष्ठ अग्नि होत्र करो। इसमे धर्म, अर्थ, और काम का नाश करने वाले कषाय (क्रोध, मान, माया और लोभ) रूपी दुष्ट पशुओ का होम कर शातिमत्र की आहुतिया देकर बुद्धिमान पुरुषो द्वारा विहित यज्ञ करो।

इसी धार्मिक मान्यता की झलक 'उत्तराध्ययन' सूत्र के बारहवें अध्ययन मे भी प्रतिबिम्बित है—तप रूपी अग्नि है, जीव अग्नि का स्थान है। मन, वचन और काया के शुभ व्यापार कुडछी रूप

---

१ ये खास दिन (अगते) निम्नलिखित हैं—
महाशिवरात्रि, रामनवमी, महावीर जयन्ती, गणतन्त्रदिवस, तीस जनवरी, बुद्ध जयन्ती, गणेश चतुर्थी, ऋषिपचमी, कृष्ण जन्माष्टमी, अनन्त चतुर्दशी, पन्द्रह अगस्त, गाधी जयन्ती, कार्तिक कृष्णा १५ (दीपमालिका), और कार्तिक शुक्ला १५।
—सम्पादक

है। शरीर तप रूप अग्नि को उद्दीपन करने के लिये कडा रूप है, अष्ट कर्म लकडी रूप है। सयम के व्यापार पाप-शमन के लिये शान्ति पाठ रूप है। इस प्रकार मैं ऋषियो द्वारा प्रशसा किया गया, सम्यक् चारित्र रूप होम करता हू।

पर व्यवहार मे ऐसा न होकर धार्मिक पूजा के सार्वजनिक स्थानो पर बलि का आयोजन कर लोग अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ बैठे। वस्तुत वह बलि प्रथा एक प्रकार की हिंसा ही है।

भगवान महावीर के इस निर्वाण वर्ष मे इस बलिप्रथा पर रोक लगाने के लिये पिछले दो वर्षों से निरन्तर प्रयत्न हो रहा था। श्री भीमसेन चौधरी ने सन् १९७३ मे राजस्थान पशु एव पक्षी बलि निषेध विधेयक राज्य विधानसभा मे प्रस्तुत किया था जो बाद मे १५ सदस्यीय प्रवर समिति को विचारार्थ सौप दिया गया था। प्रवर समिति ने चार बैठकें आयोजित की। उसकी सिफारिश के आधार पर यह बिल २९ मार्च १९७५ को राज्य विधान सभा मे पारित किया गया। अब यह अधि-नियम बन गया है। इस बिल के मुख्य बिन्दु इस प्रकार है।

१ राजस्थान राज्य मे मदिरो के अन्दर अथवा मन्दिरो के परिसर मे अथवा धार्मिक पूजा के सार्वजनिक स्थानो मे पशुओ एव पक्षियो की बलि निषिद्ध कर दी गई है।

२ 'बलि' से अभिप्रेत है किसी देवी देवताओ को प्रसन्न करने के इरादे अथवा प्रयोजन से किसी पशु अथवा पक्षी को मारा जाना अथवा उसका अग-भग किया जाना।

३ न तो कोई व्यक्ति किसी भी पशु अथवा पक्षी की बलि देगा और न ही किसी को बलि देने मे सहायता प्रदान करेगा।

४ जो कोई इसका उल्लघन करेगा अथवा उल्लघन किये जाने के लिये सहायता अथवा दुष्प्रेरणा करेगा, अपराधी ठहराये जाने पर छह माह तक की जेल अथवा पाच सौ रुपये तक का जुरमाना अथवा दोनो से एक साथ दण्डित किया जा सकेगा।

राजस्थान राज्य ने यह विधेयक पारित कर बहुत ही महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक कार्य किया है। यह विधेयक एक प्रकार से प्राणिमात्र के प्रति मैत्री भाव का मागलिक दस्तावेज है।
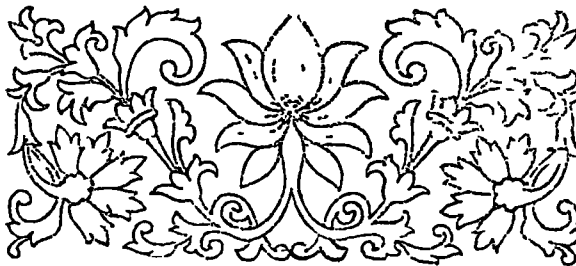
५० | नैतिक उत्थान व सामाजिक जागरण मे जैन धर्म की भूमिका

[१]

अहिंसा का प्रभाव

श्री मधुकर मुनि

भारतवर्ष मे अहिंसा का सर्वतोमुखी प्रचार व प्रसार जितना जैनधर्म ने किया है, उतना किसी अन्य धर्म ने किया हो, यह मेरी जानकारी मे नही है। अहिंसा के दो विभाग है—एक निषेध रूप और दूसरा विधि रूप। न + हिंसा = अहिंसा, यह अहिंसा का निषेध रूप है। किसी भी प्राणी के प्राणो का हनन नही करना व किसी भी प्राणी को किसी भी प्रकार की पीडा न पहुचाना–आदि सिद्धान्त अहिंसा के इस विभाग के अन्तर्गत है। अहिंसा का दूसरा विभाग जो विधि रूप है, वह यह है–दया, अनुकम्पा, विश्व-प्रेम व प्रति-प्राणि मगल-कामना आदि। 'सर्वे सुखिन सन्तु' व 'जीओ और जीने दो' ये दोनो सिद्धान्त भी अहिंसा के विधि रूप विभाग के ही फलितार्थ है। ससार के सभी प्राणी जीना चाहते हैं। मृत्यु को चाहने वाला कोई भी प्राणी नही है, अत किसी भी प्राणी का वध मत करो व उसे मत सताओ—यह अहिंसा के निषेध रूप विभाग का अमर उद्घोष है। अपना सर्वस्व समर्पित करके भी मरते हुए या किसी के द्वारा मारे जाते हुए प्राणी का सरक्षण करो व प्रत्येक प्राणी के साथ सहानुभूति रखो—यह अहिंसा के विधि रूप विभाग का सुमधुर सन्देश है। अहिंसा के ये दोनो सिद्धान्त जैन धर्मावलम्बियो के जीवन के अणु-अणु मे उतर आए थे, इसलिए जैन धर्म की छाप यत्र, तत्र, सर्वत्र असीमित रूप मे पडी थी।

यज्ञ मे होने वाली पशु बलि को रोकने का प्रयास विशेषत जैन धर्म ने ही किया था। जन-जन पर भी जैन धर्म का ऐसा प्रभाव पडा कि उनके मानस मे भी याज्ञिक हिंसा के प्रति अनास्था हो गई।

आज जो यह राजस्थान है, इसमे अनेक रियासतो का विलीनीकरण हुआ है। यहा की प्राय सभी रियासतो मे जैनो की खासी अच्छी बस्ती रही है। अपने सुमधुर स्वभाव के कारण जैन धर्मावलम्बियो का जैनेतर लोगो पर गहरा प्रभाव पडा है। यही कारण है कि अद्यावधि निम्नस्तर के लोग

भी किसी भी प्राणी को मारते हुए हिचकिचाते रहते हैं। जहा अन्य देशो के लोग सर्प विच्छू आदि जहरीले जन्तुओ को देखते ही मार डालते है, वहा राजस्थान के निम्नस्तर वाले लोग भी ऐसे जन्तुओ को पकड कर दूर फेंक देते है परन्तु उनका वध कभी नही करते।

मरुधरा राजस्थान का एक प्रान्त है। यहा की 'ओसिया' नगरी मे ओसवाल सघ की स्थापना हुई थी। ओसवाल सघ अर्थात् जैनो का एक विशिष्ट सघ। इस सघ मे प्रवेश पाने का अधिकार उन व्यक्तियो को मिला था जो मदिरा, मास, व रात्रि-भोजन का परित्याग करने के लिए तैयार थे। अनेक प्राणियो के सहार पर ही मदिरा बनती है। पचेन्द्रिय प्राणियो के वध से ही मास-भोजन तैयार होता है और रात्रि-भोजन में अनेक जीव-जन्तुओ का सहार सुनिश्चित है। अत इस सघ में प्रवेश पाने के अभिलाषियो को मदिरा, मास व रात्रि भोजन का परित्याग करना अतीव आवश्यक था, परन्तु यह त्याग सरल नही था। फिर भी इस कठिन तप-त्याग को स्वीकार कर सहस्रश: व्यक्तियो ने इस सघ में प्रवेश किया। यह जैन धर्म की एक बहुत बडी विजय थी। जो इस सघ में अपना स्थान नही बना सके, वे भी जैन धर्म से इतने प्रभावित हुए कि मदिरा, मास की ओर तो उनकी अरुचि बढी ही, वे साथ में रात्रि-भोजन से भी घृणा करने लगे।

अन्य देशो की अपेक्षा राजस्थान विशेषत जैन मुनिराजो की विहार-स्थली बनी हुई है। इस भूमि में विचरण करने वाले मुनिराजो ने स्थान-स्थान पर प्राणी-वध को रुकवाया है:

एक समय था, राजस्थान में वर्षों से जागीरदारी प्रथा थी। जागीरदार प्राय राजपूत लोग ही होते थे। छोटे-मोटे जागीरदारो पर जैन मुनिराजो का अच्छा प्रभाव था। उनके उद्बोधक उपदेश से अनेक जागीरदारो ने पर्व तिथियो पर शिकार खेलने व अन्य जीवहिंसा का परित्याग कर दिया था। कुछ जागीरदार तो ऐसे भी रहे कि उन्होने अपने अधिकृत क्षेत्र में सर्वथा जीव-हिंसा का निषेध कर दिया। वर्षावास काल में सूक्ष्म जीवो की उत्पत्ति विशेष रूप से होती है। इसलिए ऐसे समय में अतिहिंसाजनक कर्मो से दूर रहना, अहिंसा (जीव-दया) का एक सूत्र है। घाणी चलाना, भट्टी जलाना आदि अति-हिंसाजनक कर्म माने गए है। जिन लोगो को ये कर्म आजीविका के साधन थे, वे लोग भी इन दिनो में अपनी आजीविका के साधनभूत इन कर्मों से विरक्ति लेते थे। आज भी यत्र-तत्र यह प्रणाली प्रचलित है। इसमें जैन लोगो का सुमधुर व्यवहार व प्रभाव ही काम करता था।

देवी-देवताओ के स्थान पर होने वाला पशु-वध भी जैनो के प्रभाव से अनेक स्थानो पर रुका है।

होली के दिनो में राजस्थान के कुछ प्रान्तो में एक सामूहिक शिकार 'आहेडा के नाम से हुआ करती थी। निम्न जाति के पहाडी लोग एक बहुत विशाल समूह के रूप में एकत्रित होकर, चारो ओर से पहाड को घेर कर उसमें घूमने वाले हिरण, खरगोश आदि वन्य पशुओ को बडी बेरहमी से मारते थे। जैनो के सतत प्रयासो से यह क्रूरतम कर्म भी काफी अ शो में रुक गया है। ऐसे अनेक जीव दया के कार्य हैं, जो जैनो द्वारा राजस्थान में किये गए हैं। सचमुच यह जैन धर्म की राजस्थान को एक महान् देन है।

[२]
जागरण की दिशा

डॉ० नरपतचन्द सिंघवी

जागरण का अर्थ है—कर्मक्षेत्र मे अवतीर्ण होना और कर्मक्षेत्र क्या है ? जीवन संग्राम। सामाजिक जागरण से इस संदर्भ मे अभिप्राय है—सामाजिक कुरीतियो का उन्मूलन कर, मानव मूल्यो की प्रतिष्ठा करना, मनुष्य मात्र के हित के लिए संघर्ष करना। जैन समाज ने इस दृष्टि से अप्रतिम योगदान दिया है। प्रेम और करुणा, आत्म-निग्रह और संयम, नैतिकता तथा सदाचार, आत्मविसर्जन और आत्मसमर्पण आदि उदार मानवीय भावो को अपने मे समाहित कर जैन-समाज ने राजस्थान के जन-जीवन मे नई चेतना का संचार किया और मानव-मुक्ति, समता, समानता, भ्रातृत्व जैसे मधुर आदर्शों की प्राप्ति के लिए प्रयत्न किया।

राजस्थान मे जैन साधुओ एव श्रावको ने सामंतीकारा से शूद्र और नारी को मुक्त कर तथा उन्हे नया व्यक्तित्व देकर, भगवान् महावीर के आदर्शों एव सिद्धातो का पालन करते हुए, अस्पृश्यता, वर्ण-भेद तथा धार्मिक और सामाजिक जडताओ से जीवन को उबारकर अपने समाज सुधारक व्यक्तित्व का परिचय दिया। रस्किन के शब्दो मे वही समाज सदा सुखी रहता है जिसने नैतिक गुणो को अपने जीवन मे आत्मसात् कर लिया है। जैन-समाज ने भगवान् महावीर द्वारा दी गई आचार-संहिता के पाच व्रतो—१ अहिंसा, २ सत्य, ३ अस्तेय, ४ ब्रह्मचर्य व ५ अपरिग्रह का पालन करना अपने जीवन का ध्येय समझकर अहिंसामूलक संस्कृति का निर्वाह करते हुए वैचारिक एव व्यावहारिक संघर्ष को टाला तथा सामाजिक जीवन मे परस्पर सौहार्द बनाए रखने का सद्प्रयत्न किया।

जैन समाज मे भी दो बडी श्रेणिया हैं—एक, जिनके पास भूख से अधिक भोजन है और दूसरी वह जिसके पास भोजन से अधिक भूख है। जैन मतावलम्बी—चाहे वह किसी सम्प्रदाय का हो यदि अपरिग्रह के व्रत का सच्चा अनुयायी है तो अपनी उदारता एव दानशीलता का परिचय दुर्बल वर्ग की आर्थिक सहायता कर प्रस्तुत करता है। जयपुर, अजमेर एव जोधपुर क्षेत्रो में अनेक ऐसी संस्थाए हैं जो अर्थ से कमजोर वर्ग की सहायता कर अपने को कृतार्थ समझती हैं।

भगवान महावीर ने श्रावको की आचार-संहिता मे श्रावक के लिए चार प्रकार के दानो का विधान किया है—१ औषधिदान २ शास्त्रदान ३ अभयदान और ४ आहारदान। राजस्थान के प्रायः प्रत्येक जिले मे जैन समाज ने औषधालय तथा चिकित्सा-गृहो की स्थापना कर प्रत्येक जाति के लिए निःशुल्क चिकित्सा तथा स्वास्थ्य-सेवा की व्यवस्था उपलब्ध करा कर नये कीर्तिमान स्थापित किए हैं। राजस्थान में जैन-समाज द्वारा संचालित महाविद्यालय, विद्यालय, छात्रावास, पुस्तकालय आदि सैकडो की संख्या में हैं। इससे व्यावहारिक एव नैतिक शिक्षण को बडा बल मिला है। जयपुर, उदयपुर, अजमेर, बीकानेर, जोधपुर आदि नगरो में जैन-समाज द्वारा स्थापित अनेक ट्रस्ट हैं जो प्रति वर्ष कई लक्ष रुपयो की छात्र-वृत्ति प्रदान करते हैं। जैन-श्रावको द्वारा आहार दान की परम्परा आज भी प्रचलित है। बाढ, अकाल, भूकम्प आदि प्राकृतिक विपत्तियो के अवसर पर वे कल्याणकार्यों में मुक्तहस्त से सहयोग करते हैं। राजस्थान के प्रमुख नगरो में सार्वजनिक उपयोग के लिए प्याऊ, कूप धर्मशालाए आदि के निर्माण की परम्परा जैनियो द्वारा आज तक निभायी जा रही है।

जर्मन दार्शनिक गेटे के मतानुसार सबसे अधिक सुखी समाज वह है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति परस्पर हार्दिक सम्मान की भावना रखता है। जैन-समाज पारस्परिक सौहार्द की भावना रखता है। पापकर्म से यथासम्भव दूर रहना, निरन्तर पुण्य मे तत्पर रहना, अच्छी मनोवृत्ति रखना और शुभाचरण करना, जन-कल्याण के साधनो को अपनाना, सत्य का अन्वेषण करना तथा व्यापक और सामञ्जस्यपूर्ण जीवन-बोध करना एव कराना—इन उत्तम साधनो को व्यवहृत कर जैनसमाज सामाजिक जागरण की भूमि तैयार करने मे अधिकाशत लगनशील रहता है। स्वानुभूत सत्य और आत्म-चिन्तन की प्रतिष्ठा कर सामाजिक सुधार को जैन-समाज मूल स्वर प्रदान करता है। जैन-समाज ने भारतीय इतिहास के प्रत्येक काल में साधारणतया परन्तु आधुनिक काल मे विशेषतया, सुधारवादी धार्मिक और सामाजिक सस्थाए एव सस्थान स्थापित किए और मानव मात्र के जागरण एव कल्याण के स्वर निनादित किये। जैन साधु-सतो ने मनुष्य मात्र की व्यथा समझने, मानव की मुक्ति का उद्‌घोष करने तथा प्राणी मात्र के प्रति आत्मीयता की भावना का विकास करने की प्रेरणा प्रदान की। जैन-मतावलम्बियो ने समय-समय पर सती-दाह, बाल हत्या, नर-बलि, पशु-बलि, यज्ञ, कर्मकाण्ड, वाल-विवाह, मृत्युभोज विवाह में फिजूलखर्ची जैसी कुरीतियो के विरोध मे स्वर बुलन्द किया और इनसे यथासम्भव दूर रहने की प्रतिज्ञाए की।

जन साधारण की यह सामान्य मान्यता है कि जैन समाज एक सम्पन्न, धनाढ्य समाज है और यह मान्यता अधिकाशत उचित ही है क्योकि जैन-समाज निर्व्यसनी है तथा इसके नब्वे प्रतिशत सदस्य सयमी हैं। महावीर के अनुयायी हर युग मे जनमानस में आत्म-विश्वास और मानववादी स्वर की दृढता का सचार करते रहे है। उन्होने सदैव सामाजिक जागरण में नैतिकता और धर्म का समन्वय स्थापित करने की चेष्टा की, श्रम की महत्ता प्रतिपादित की, अस्पृश्यता निवारण तथा नारी-मुक्ति की जोरदार अपील की। दलित और पीडित के प्रति अनन्त सहानुभूति के द्वार खोले, जीवन-मूल्यो की नैतिक स्थापना की, धार्मिक अन्धविश्वास और जडता से मुक्ति की कामना की, दरिद्रता के प्रति क्षोभ प्रकट किया तथा मानव अधिकारो के सजग प्रहरी की भूमिका अदा की। अपनी दुर्बलताओ एव सीमाओ के बावजूद भी जैन समाज ने राजस्थान में सामाजिक जागरण को विशेष स्वर प्रदान किया।

साधक के लिए सबसे वडा प्रतिवन्ध कीर्ति की चाह है। जैन-साधको ने सदा ही यश या कीर्ति की मृगतृष्णा मे भटकने से अपने को बचाया है तथा जैन श्रावको ने उत्तम साध्य के लिए सदैव उत्तम साधन ही अपनाये। व्यापक सामाजिक बन्धुत्व और उदार धार्मिक वातावरण मे जैन समाज ने राजस्थान मे सामाजिक जागरण की महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है, यही आज का विश्वास है और जैन-समाज मानव-गरिमा की प्रतिष्ठा मे भविष्य में क्रातिदर्शी भूमिका निभायेगा, यही कल की आशा है।

[३]

जैन संतो का योग

श्री मिट्ठालाल मुरडिया

त्याग, वलिदान, स्वदेशप्रेम और वीरता मे राजस्थान का गौरव सर्वोच्च रहा है। साधु-सतो का सम्मान भी यहा कम नही हुआ है। श्रमणो की अमृत वाणी और वैराग्य भावनाओ से यहा का

प्राचीरें और किले आज भी गूंज रहे है। यहा की एक-एक ईंट और एक-एक पत्थर मे वीरता के भाव व्याप्त है। यहा का कण कण वीरता की कहानी कहते सुनाई देता है। युद्ध और प्रेम के आख्यान आज भी उत्तुंग घाटियो और मैदानी तलहटियो मे प्रतिध्वनित हो रहे है। यहा के वीरो ने सचमुच जीवन और मृत्यु को खेल ही माना है। यह खेल यहा के राणा जीवन भर खेलते रहे। यहा की वीर नारियें भी कम नही थी। वीरो का सम्मान कर वीरता को आदर देना यह उन्होंने धार्मिक-व्रतो से सीखा था। इसी वीर भूमि ने पन्नाधाय जैसी वीर माता को जन्म दिया जिसने छाती पर पत्थर रखकर, अपने लाडले लाल का नगी तलवार से टुकडे करते देखकर भी, चू नही किया और मेवाड की वश परम्परा कायम रखने के लिए उदयसिंह की रक्षा की थी। इसी भूमि मे मीरा ने अपनी भक्ति साधना का प्रेम स्त्रोत बहाकर सारे रेगिस्तान को हरा-भरा कर दिया। सन्तो के सामीप्य के कारण मीरा की भक्ति भावना बढी-चढी थी। मीरा प्रेम सदन की नही भक्ति मन्दिर की साधिका थी। मीरा के भजनो की स्वर लहरिया आज भी देश मे लहरा रही है।

जनता युद्ध की विभीषिकाओ से परेशान थी। सुख का नाम नही था ऐसे समय समाज का जागरण कैसे होता ? उनकी आशा-आकाक्षाओ को सम्मान कहा मिलता ? पर जैन सत इस विकट परिस्थिति मे भी नीति और धर्म का उपदेश देते हुए ग्रामानुग्राम विचर रहे थे, साधारण जनता का भय दूर कर, अहिंसात्मक कथाए सुनाते हुए आगे बढ रहे थे। तप, त्याग की छाप डालकर उन्हे व्रत नियम दिलवा रहे थे। एक तरफ युद्ध का आतक था, दूसरी ओर धर्म का शान्ति सदेश। एक ओर अशान्ति थी और दूसरी ओर धर्म की मगलवाणी। यह सन्तो के उपदेश का ही परिणाम था कि कोई राजा किसी निहत्थे शत्रु पर वार नही करता था। धर्म का यह सकल्प वे जीवन पर्यन्त पालते रहे।

जहा यह वीर भूमि सकल्प और आन-बान और शान के लिये प्रसिद्ध रही है। वहा यह धरा अन्धविश्वास, भैरू भवानी, जादू-टोना, मन्त्र-तन्त्र और अशिक्षा से ग्रस्त भी रही है। अधविश्वास के कारण कई माताए दिन दहाडे ठगी जाती थी। शिक्षा की दिशा मे राजस्थान इतना पिछडा था कि अन्य राज्यो की तुलना में इसकी स्थिति विशेष चिन्तनीय थी। किसानो, भीलो, मीणो, जाटो, लुहारो मेहतरो और रेगरो का बुरी तरह शोषण होता था। कही-कही तो एक कुल्हाडी का मूल्य नही चुकाने पर व्याज दर व्याज से भैंस तक देनी पडती थी। एक धोती के बदले २ बीघा जमीन और ५) पाच रुपये के बदले २ गाडी गेहूँ देने के उदाहरण आज भी सुनने मे आते है।

राजाओ की ज्यादती, ठाकुरो की मनमानी, सेठो का आतक और पुलिस की जोरजबरदस्ती से जनता परेशान और भयभीत थी। उनकी बात को टालने पर खडे खडे कोडे लगवा दिये जाते थे। किसानो की चार मास की खरी कमाई का अनाज लूट लिया जाता था। बिचारा किसान कडी मेहनत करने के बाद भी, अपने बच्चो सहित भूखा ही सोता था।

इस आतक से समाज मे हाहाकार मचा हुआ था। शासको की लापरवाही से प्रजा पीडित थी, मगर साधारण जन कुछ नही कर सकता था। मौत का भय सदा उनके सिर पर मडराता रहता था। ऐसी स्थिति मे जैन श्रमणो ने राजाओ को बोध देकर जनता की भलाई की ओर उनका ध्यान

था। इधर देश में आजादी की लहर उमड़ रही थी। फिर, भला राजस्थान इस लहर से कैसे अछूता रहता? राष्ट्रीय जागरण से लोक मानस का आलस्य टूटा। सभी ओर से अन्याय के खिलाफ आवाजें उठने लगीं। देशप्रेम की लहर के साथ ही साथ सामाजिक जागरण की चेतना जगी। शिक्षा प्रसार से अंध विश्वास टूटने लगा। [illegible] मनमानी का प्रभाव मिटने लगा और सामाजिक बुराइया कम हो गईं। राष्ट्रीय आन्दोलनो, बुद्धिजीवियो के आह्वान और जैन सन्तो के शिक्षात्मक उपदेशो से सामाजिक कुरीतियो के बन्धन ढीले पड़ने लगे। जनता सन्तो के जीवन के निकट आकर व्रत-उपवास, धर्माराधना आदि करने लगी।

इधर सन्तो ने कहा कि एकता से ही समाज का जागरण सम्भव है। जब समाज की जागृति हो जायगी तो फिर धर्म और समाज का नैतिक उत्थान भी होगा। सन्तो ने गाव-गाव, नगर-नगर घूम कर प्रचार किया कि बाल-विवाह न्यायोचित नही है। इससे धन, जन और स्वास्थ्य की बर्बादी के साथ देश का गौरव घटता है। विधवाओ का जीवन कष्टपूर्ण था। पति की मृत्यु के बाद वे घर के परकोटे से बाहर नही जा सकती थी। समाजोत्थान से विधवाओ के प्रति आदर भाव बढा और उनमे अपूर्व नारीत्व का तेज जागृत हुआ। वे समाज सेवा के कार्यों मे सक्रिय हुईं। बार बार साधु-सन्तो के आगमन से गावो मे धूम मचने लगी। समूचा राजस्थान जाग उठा, ललकारें और हुंकारें होने लगी, उत्साह और जोश एक साथ उमड पडा। ज्यो-ज्यो सन्तो के उपदेशो से सामाजिक जागरण और नैतिक उत्थान होने लगा, त्यो-त्यो व्रत, उपवास और धर्मोपासना बढने लगी। समाज सुधार की मगल भावनाओ का प्रभावोत्पादक असर डाकुओ, लुटेरो पर पडा। वे सन्तो के निकट आकर धर्म लाभ लेने लगे। चोरो ने चोरी न करने, शराब न पीने और मास न खाने का सकल्प लिया और भविष्य मे आम जनता की तरह उज्ज्वल जीवन जीने में उनका विश्वास जमा।

जैन दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता श्री चौथमलजी म० एक ऐसे निर्ग्रन्थ थे जिन्होने सामाजिक जागरण और नैतिक उत्थान के लिये जो कार्य किया राजस्थान उनकी सेवाओ को कभी विस्मरण नहीं कर सकेगा। उन्होने जनता को सरल भाषा मे उपदेश दिया जो सामाजिक रूढिया तोडने और अन्धविश्वास दूर करने मे कारगर सिद्ध हुआ। अपने शिष्यो के बहुत बडे समुदाय के साथ पैदल घूम-घूम कर इस निर्ग्रन्थ ने दया और करुणा की, प्रेम और सत्य की जो ललकारें की, उससे राजाओ का आलस्य टूटा और वे सन्मार्ग गामी बने। इनके प्रभाव से लाखो व्यक्तियो ने शराब, मास, बीडी, सिगरेट और जीव हिंसा छोडी तथा वे उत्तम मार्ग के राही बने। इनके व्याख्यानो में राजे-महाराजे, सेठ-साहूकार, हाकिम, सरदार, ठाकुर, नाई, धोबी, कुम्हार, मुसलमान, मीणा और बोरे सभी आकर अपने जीवन को धन्य बनाते थे। राजस्थान की दलित जाति के नैतिक उत्थान मे इनका जो सहयोग रहा है, वह कभी भूला नही जा सकेगा।

स्वर्गीय आचार्य श्री जवाहर लालजी म० ने लोक कल्याण के लिए थली प्रान्त को विशेषत अपना विहार-क्षेत्र बनाया, जनता में आत्म जागृति कर मगलमयी भावनायें फैलाईं। उनका कहना था कि लोग साहस पूर्ण तरीको के साथ सम्मान पूर्वक जीवन व्यतीत करें और अपना कार्य ईमानदारी के साथ करें। जीवन के प्रत्येक व्यवहार में विवेक और धर्म को न छोडें। अच्छे कपडे पहिनने और अलकारो से लदने से ही व्यक्ति बडा नही बनता। बडे बनने के लिए गुण आवश्यक हैं। व्यक्ति अपने आत्मीय गुणो से ही बडा बनता है। वे राष्ट्रीय विचारो के क्रातिकारी सत थे। उन्होने स्वातन्त्र्य

सग्राम में जुटे रहने की प्रेरणा दी। वे सत्याग्रह और स्वदेशी आदोलन के बडे हिमायती थे। खादी पहिन और राष्ट्र धर्म को महत्त्व देकर उन्होने राष्ट्रीय भावना के विकास में बडा योग दिया।

स्वर्गीय आ० श्री गणेशलालजी म०, आचार्य श्री हस्तीमलजी म०, मरुधर केशरी, श्री मिश्रीमलजी म०, श्री पूर्णमलजी म०, स्व० श्री समरथ मलजी म०, आचार्य श्री नानालालजी म० आचार्य श्री तुलसी आदि का नाम भी राजस्थान के नैतिक उत्थान में विशेष उल्लेखनीय हैं।

इस दिशा में साध्वियो का योगदान भी महत्त्वपूर्ण हैं। समाज को मार्ग दर्शन देने, बुराइया निकालने, बहिनो को जगाने व उनमे आत्म विश्वास पैदा करने मे साध्वी समुदाय के योग को कभी विस्मृत नही किया जा सकता।

आत्म कल्याण के इन पथिको को किसका भय ? जो दूसरो को भयभीत करते है, वे सदा भयभीत होते हैं, जो दूसरो को डराते हैं, वे सदा डरते हैं, किन्तु जो निडर होते हैं उन्हे डरने की आवश्यकता नही रहती हैं।

राजस्थान में जैन निर्ग्रन्थो ने समाज-जागरण और नैतिक उत्थान का जो अभूतपूर्व कार्य किया, सरकार सैकडो अफसरो को नियुक्त कर लाखो रुपये व्यय करके भी यह कार्य नही कर सकती थी। जनता में भी आज सत्य, अहिंसा, दया, करुणा, उपकार और प्रेम की जो भावनाए दिखाई देती हैं, वह इन सन्तो के प्रताप का ही परिणाम है। राजस्थान की कोई ऐसी जाति नही होगी जिसे इन सन्तो ने उद्‌बोधन न दिया हो।

[४]

व्यसन-मुक्ति और संस्कार-निर्माण

श्री रिखबराज कर्णावट

यो तो इस अवसर्पिणी काल (वर्तमान समयचक्र) के जैनो के प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव ने समाज-व्यवस्था कायम की तभी से जैन धर्मावलम्बियो द्वारा इस बात का सतत प्रयास रहा कि समाज मे नैतिकता का उल्लघन न हो। व्यसन सदा ही समाज की बुराई व नैतिक मूल्यो के उल्लघन माने जाते रहे हैं। मद्यपान, मासभक्षण, शिकार, जुआ, चोरी, व्यभिचार तथा वेश्यावृत्ति की गणना सात कुव्यसनो मे की जाती है। जैन धर्म के सभी तीर्थंकरो ने आत्मिक उत्थान पर अधिक बल दिया है। सासारिक सुख-वैभव, भोगविलास मे लोगबाग न फसें, इस हेतु सदा ही उन्हे सावधान रखने का प्रयास किया जाता रहा। फलस्वरूप बुराइयो से निवृत्ति व सद्‌विचारो मे प्रवृत्ति का उपदेश जैन धर्मोपदेशक देते रहे।

इस काल के अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर के साधु-साध्वियो, श्रावक, श्राविकाओ ने मानवो को व्यसनो से बचाकर सुपथ पर लाने का काम किया तथा आज भी उनके अनुयायी इस काम को रुचिपूर्वक कर रहे हैं। मध्य काल मे अनेक जैनाचार्यों ने योजनाबद्ध तरीके से यह काय किया। ओसवाल जाति की उत्पत्ति व्यसन-निवृत्त समाज के रूप मे ही हुई। दादागुरु रत्नप्रभ सूरि, जिनदत्त-सूरि एव आचार्य हरि विजयसूरि आदि ने सामूहिक स्तर पर इस काय को सम्पन्न किया। वस्तुत सभी जैन धर्मोपदेशक लोगो से व्यक्तिगत सम्पर्क रखकर उन्हें व्यसन-मुक्त करने मे लगे हुए है। इसी

शताब्दी मे प्रसिद्ध वक्ता जैन दिवाकर मुनि श्री चोथमलजी महाराज ने राजस्थान व मालवा मे राजवर्गी लोगो, जागीरदारो व नरेशो से सपर्क कर, स्थान-स्थान पर अगते (व्यसन मुक्त दिन) रखवाने के घोषणा-पत्र जारी करवाए और व्यसनो मे फसे सहस्रो लोगो को व्यसनो का त्याग करवाया। स्वर्गीय आचार्य श्री जवाहरलाल जी महाराज ने महात्मा गाधी से सपर्क कर राष्ट्र उत्थान हेतु गाधीजी के परामर्श के अनुसार सहस्रो लोगो को सदाचार से रहने का व्रत दिया। अन्य अनेक सतो ने भी अपना समय इस काम मे दिया। इन सब महान् पुरुषो के कार्य का विवरण दिया जाय तो एक बडा ग्र थ तैयार हो जाये।

वर्तमान समय मे भी जैनो के सभी सप्रदायो के आचार्य अपने साधु-साध्वियो व अनुयायियो के माध्यम से व्यसनो के बढते हुए प्रचार को रोकने तथा व्यसन-मुक्त समाज के निर्माण मे लगे हुए हैं। इस बात को समझने के लिये कुछ थोडे से सतो व सस्थाओ का सक्षिप्त उल्लेख करना उपयोगी होगा। तेरापथ समाज के आचार्य श्री तुलसी ने अणुव्रत समाज की स्थापना की और अणुव्रत के माध्यम से शराब, मास आदि कुव्यसनो के निवारण का तथा नैतिक मूल्यो की स्थापना का बडा अभियान प्रारम्भ किया और उसका काफी असर भारत के अनेक प्रातो मे हुआ। अभी-अभी आचार्य तुलसी की प्रेरणा से 'सस्कार-निर्माण समिति' की स्थापना हुई और स्थान-स्थान पर विशेषकर थली प्रदेश मे इस समिति की शाखायें खुली हैं। यह समिति वर्षों से पददलित एव शोषित अनुसूचित जातियो मे जागरण व उनको व्यसनो से मुक्ति दिलाने का काम करती है। आचार्य तुलसी की आज्ञा से लगभग ६०० साधु-साध्वी तथा सैकडो गृहस्थ इस काम मे योग दे रहे हैं।

इसी भाति स्थानकवासी जैन समाज के आचार्य श्री हस्तीमल जी म० सा० की प्रेरणा से अ० भा० वीर निर्वाण साधना समारोह समिति की स्थापना हुई थी। जिसने हजारो लोगो को शराब, मास आदि व्यसनो से मुक्ति दिलाई है और नैतिक कर्तव्यो की ओर अग्रसर किया है। स्थानकवासी समाजके ही एक अन्य आचार्य श्री नानालाल जी म० सा० ने भी धर्मपाल सघ की स्थापना कर हजारो लोगो को व्यसनो से छुडाया है। एक अन्य मुनि श्री समीर मुनि जी ने भी वीरवाल सघ बनाकर इस दिशा मे काफी काम किया है। राष्ट्रीय विचारो के धनी मुनि श्री सतवाल जी तथा मुनि श्री नेमिचन्द्रजी ने भी व्यसन-निवारण की दिशा मे बडा महत्त्वपूर्ण काम किया है। गुजरात और पजाब के जैन सतो ने विशेष रूप से व्यसन-निवारण सबधी काम को हाथ मे लेकर उसे क्रियान्वित किया है।

आज भी सभी आचार्य व अन्य साधु-साध्वी व श्रावकवृन्द व्यसन-मुक्ति व नैतिक उत्थान के काम मे दिन-रात लगे हुए है। यह दुर्भाग्य की बात है कि पाश्चात्य हवा का असर हमारे देश मे जोरो से वढ रहा है। फलस्वरूप नई पीढी के लोग व्यसनो की तरफ झुक रहे हैं यहा तक कि जैन जाति के युवक भी इस हवा मे प्रगतिशीलता के नाम पर, बहने लगे हैं, यद्यपि उनकी सख्या बहुत अधिक नही है, परन्तु इसका हल्ला ज्यादा है, फिर भी जैन सतो की कृपा से उनके धर्म के सस्कार पारिवारिक तौर-तरीको पर कायम हैं। जो लोग व्यसनो मे फसे भी हैं तो वे प्राय छिपे रूप मे और व्यसनो मे लिप्त होने के काम को बुरा मानते हैं। जो भी हो, वर्तमान मे भी जैन सतो का और उनकी प्रेरणा से जैनो का योगदान व्यसन-मुक्ति मे निरतर चालू है।

[५]

धर्मस्थानकों की भूमिका

श्री सम्पतराज डोसी

सर्वज्ञो ने प्राणीमात्र की अहिंसा, दया, इन्द्रियो एव मन का निग्रह रूप सयम, और स्वाध्याय, ध्यान, अनशनादिरूप तप को ही धर्म और सुख का प्रमुख उपाय बताया। धर्म की शुद्धि और परीक्षा के लिये किसी कवि ने कितना सुन्दर कहा है—

"निज आतम कू दमन कर, पर आतम कू चीन।
परमातम को भजन कर, सोई मत परवीन ॥"

ऐसे परमोत्कृष्ट मगल रूप धर्म की साधना जिस स्थान विशेष पर की जाय, उसे धर्म स्थानक कहते है।

वैसे स्वाध्याय, ध्यान, चिन्तन, मनन तथा सतकर्म आदि सभी क्रियाये विशेषकर आत्मा और मन से सम्बन्ध रखती हैं इसलिये कोई भी स्थान या समय इनके लिये साधक या बाधक नही हो सकता है फिर भी अधिकाश साधको के लिये स्थान, वातावरण और सगति का प्रभाव होना सभव है। सासारिक या घर के वातावरण मे लडाई झगडे, होहल्ला, शुभाशुभ शब्द, रूप आदि का विक्षेप रहता है पर धर्म स्थान मे स्वाध्याय, ध्यान, चिंतन, मनन, व्याख्यान, स्तवन आदि का वातावरण रहता है, जो साधक के लिये मन, वचन और काया के योगो को अशुभ से हटाकर शुभ की ओर लगाने मे निमित्त बनता है। जिन-जिन धर्म स्थानो मे छ काय के आरम्भ समारम्भ, या नाच-गायन आदि राग-रग अथवा निंदा-विकथा आदि पाप प्रवृतियो का सेवन होता हो वह स्थान भी उस समय धर्म-स्थानक कहलाने योग्य नही रहता।

पुराने समय मे भी शख जैसे प्रमुख श्रावक थे जो अपनी साधना के लिये घर से अलग पौषधशाला रखा करते थे। धर्म साधना मे प्रमुख निमित्त सत समागम, व्याख्यान, चौपाई, प्रश्नोत्तर आदि भी धर्म स्थानक मे ही ज्यादा मिल सकता है। इसके अलावा भी घर की अपेक्षा धर्म स्थानक मे धर्म साधना करने से निम्न लाभ हैं :—

(१) धर्म स्थान मे सामायिक आदि करने पर अपने ज्ञान का लाभ दूसरो को व दूसरों के ज्ञान का लाभ अपन ले सकते हैं।

(२) अच्छे क्रियावान श्रावको की सत् सगति से कुव्यसन आदि अनेको दुर्गुणो से छुटकारा मिल जाता है।

(३) प्रमाद वश सामायिक स्वाध्याय आदि मे अनियमितता आ जाय तो धर्म स्थानक में हमेशा साथ धर्म ध्यान करने वालो से पुन प्रेरणा मिलती रहती है।

(४) घर पर सामायिक, स्वाध्याय आदि करते नीद आदि भी आ सकती है पर धर्म स्थानक मे कोई चेता भी सकता है।

(५) बहुत लोगो के साथ मे सामूहिक रूप से धर्माराधना करने से समाज मे धर्म का वातावरण बनता है।

(६) धर्म स्थानको मे यदि धार्मिक उपकरण हो, पुस्तकालय हो, तो उनकी सार-सभाल की जा सकती है नही तो उनमें कचरा जम कर दीमक आदि जानवरो से सामग्री नष्ट हो सकती है।

एक ही धर्म स्थानक मे अनेको धार्मिक एव सामाजिक कार्य जैसे प्रार्थना, सामायिक, स्वाध्याय, दया, पौषध, व्याख्यान, धार्मिक पाठशाला, पुस्तकालय, वाचनालय, आदि-आदि हो सकने के कारण हर छोटे या बडे क्षेत्र मे इनका होना अत्यन्त आवश्यक है। उपयुक्त स्थान के अभाव मे हर क्षेत्र मे उपर्युक्त सभी प्रवृत्तियो का सुचारू रूप से चलना सभव नही हो सकता। कई गावो मे तो धर्म स्थानको के अभाव मे ये प्रवृत्तिया रुकी रहती हैं पर कई गावो व बडे नगरो मे अनेक स्थानक एक ही नगर मे होने पर भी उपर्युक्त प्रवृत्तियो के अभाव मे वे सूने पडे रहते हैं। उनमे धूल ही जमा होती है सिर्फ वर्षाकाल मे जब साधु-सतियो का पदार्पण होता है तभी वहा का कचरा निकलता है और कुछ चहल-पहल भी होती है। जिन-जिन गावो व नगरो मे स्थानक हैं उन-उन के श्रावक सघो के अधिकारियो को इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता है कि वहा नियमित प्रार्थना, सामायिक, स्वाध्याय, बालको के धार्मिक शिक्षण की व्यवस्था तथा पर्यूषण पर्व मे स्वाध्यायियो को बुलाना तथा ग्रीष्मावकाश मे स्थानीय शिविरो का आयोजन आदि करने की व्यवस्था हो। ताकि समाज मे धर्म वातावरण बना रहे तथा स्थानको का भी उपयोग हो सके। हर छोटे से छोटे गाव में तथा बडे-बडे शहरो मे हर मोहल्ले-मोहल्ले मे एक-एक धर्म स्थानक हो और वहा नजदीक मे रहने वाले हो सके तो हमेशा, नही तो कम से कम रविवार, चतुर्दशी, पक्खी आदि के रोज वहा जाकर सामूहिक प्रार्थना, सामायिक, प्रतिक्रमण आदि करें तो समाज मे बालको, नवयुवको आदि मे भी धार्मिक सस्कार पड सकते हैं।

धर्म स्थानक समाज और देश की वे व्यायामशालाए हैं जहा जाकर बच्चे से लेकर वृद्ध तक अहिंसा, दया, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, क्षमा, सेवा, सन्तोष, सरलता, विनय, परोपकार आदि सभी सद्गुणो रूप धर्म का ज्ञान व अभ्यास रूप साधना करके व्यक्ति से लेकर विश्व तक मे सच्चे सुख और वास्तविक शान्ति का वातावरण बनाया जा सकता है। स्व और पर सब के कल्याण, तथा इस जीवन मे और भवान्तर मे भी सुख-शान्ति की प्राप्ति के उपाय उपर्युक्त गुण ही हैं। इन स्थानको मे निराकार परमात्मा के साकार उपासको की सत्सगति, व्याख्यान, आदि का लाभ उपलब्ध होता है। परन्तु ये सब लाभ तभी प्राप्त हो सकते हैं जब कि स्थानक मे जाकर व्यक्ति ज्ञान या क्रिया की आराधना करें। स्थानक मे चले जाने मात्र से या खाली रूढ क्रियाओ तक करके सन्तोष धारण कर लेने से जीवन बदल नही सकता और धर्म जीवन मे उतरे विना धर्म का सच्चा सुख और वास्तविक शान्ति मिल नही सकती। बडे-बडे आचार्यों, सन्तो, महासतिया आदि के उपदेशो का उनकी सगति का लाभ इन्ही धर्म स्थानको मे प्राप्त हो सकता है। स्कूलो और कॉलेजो मे मात्र भौतिक उत्थान की शिक्षा मिल सकती है जिससे मात्र अपना या परिवार का पेट भरा जा सकता है परन्तु स्व के साथ प्राणी मात्र की कल्याण की भावना और आचरण की शिक्षा इन्ही धर्म स्थानको मे ही मिल सकती है। इनसे बढकर विश्व भर मे कोई पवित्र स्थान नही हो सकता।

कुछ प्रमुख धर्म स्थानकों का परिचय :—वैसे जोधपुर, बीकानेर, जयपुर, उदयपुर, अजमेर आदि नगरो मे एक-एक मे अनेक बडे तथा छोटे स्थानक हैं तथा गाव-गाव मे गिनती की जाये तो राजस्थान मे ही सैकडो स्थानक है। पर सब का परिचय देने से तो स्वतन्त्र ग्रन्थ ही बन जाय। इस कारण मात्र कुछ प्रमुख धर्म स्थानकों के नाम व सक्षिप्त परिचय ही यहा दिया जा रहा है।

जोधपुर —यहा के प्रमुख धर्मस्थानक इस प्रकार हैं —

(१) सवाईसिंहजी की पोल—यह स्थानक काफी बडा व पुराना है तथा इसमें "जैन रत्न पुस्तकालय" भी है। इसके कुछ हिस्से मे व्यावहारिक स्कूल भी चलती है। २-३ हजार व्यक्ति व्याख्यान का लाभ ले सकते हैं। यह धार्मिक पाठशाला के उद्देश्य से खरीदा गया था।

(२) श्री साधुमार्गी जैन ज्ञान भवन सिटी पुलिस—यह कपडा बाजार मे सिटी पुलिस के सामने है, तथा तीन मजिला बना है। श्रावक वर्ग के धर्म, ध्यान, दया, पौषध हेतु खरीदा गया। परठने की सुविधा छतो पर है।

(३) श्री वर्द्धमान जैन कन्या पाठशाला भवन घोडो का चौक—यह भी तिमजिला बना हुआ है। पाठशाला हेतु खरीदा व बनाया गया। धार्मिक पाठशाला भी चलती हैं। पुस्तकालय व वाचनालय के साथ स्वाध्याय सघ व वीर निर्वाण समिति का कार्यालय भी यहाँ है।

(४) जैन ज्ञान भवन रायपुर हाउस—यह अभी नया खरीदा गया तथा कपडा बाजार के बीच मे आम रास्ते पर है। निर्माण कार्य चालू है। बडे व्याख्यान हाल के साथ, बडा लाइब्रेरी हाल साथ मे धार्मिक बोर्डिंग भी बनाने की योजना है। रात्रि मे धार्मिक पाठशाला चलती है।

(५) बाजार का स्थानक—यह भी कपडे बाजार मे सडक पर ही है। यहा भी २५-३० व्यक्ति रोज सामायिक करते हैं। रात्रि मे धार्मिक पाठशाला भी चलती है।

(६) महावीर जैन भवन ऊपल्लावासा—यह भी दुमजिला स्थानक है तथा धार्मिक पाठशाला चलती है।

(७) कोठारी भवन, सरदारपुरा—यहा भी पाठशाला चलती है तथा दुमजिला अच्छा स्थानक है।

(८) जैन भवन, नेहरू पार्क, सरदारपुरा—यह भी दुमजिला स्थानक है तथा काफी बडा है।

जयपुर—यहा चौडा रास्ता स्थित लालभवन प्रसिद्ध स्थानक है। यह तीन मजिला बडा स्थानक है। ३-४ हजार व्यक्ति व्याख्यान का लाभ ले सकते हैं। आचार्य श्री विनयचन्द ज्ञान भण्डार जैसा विशाल हस्तलिखित सग्रहालय तथा पुस्तकालय इसी मे है। यहा धार्मिक पाठशाला चलती है। ३०-३५ व्यक्ति रोज सामायिक स्वाध्याय मे भाग लेते हैं।

यहा वारह गणगौर के रास्ते पर एक अन्य स्थानक भी है जहा साध्विया जी म० सा० ठहरती हैं, तथा महिलाए सामायिक, स्वाध्याय करती हैं। इसी से जुडा हुआ सुबोध बालिका विद्यालय है।

अजमेर—यहा लाखन कोटडी का तीन मजिल का काफी बडा स्थानक है। २-३ हजार व्यक्ति व्याख्यान श्रवण का लाभ ले सकते हैं।

बीकानेर—यहा रागडी मोहल्ले मे स्थित सेठिया जी की कोटडी नाम से प्रसिद्ध दुमजिला स्थानक है, और काफी बडा है।

अन्य स्थानको मे सवाईमाधोपुर, आलनपुर, कोटा, भरतपुर, उदयपुर, व्यावर, कानोड जैसे अनेक नगरो के काफी अच्छे स्थानक है। मारवाड मे बाडमेर, साचोर, जालोर, बिलाडा, भोपालगढ, वालेसर, भावी, जैतारण, हरसोलाव, मेडता, नागौर, खीचन, फलोदी, लोहावट, कुचेरा आदि तथा मेवाड मे देलवाडा, भादसोडा, डूगला, धासा, डबोक, आकोला, फतेहनगर, बडीसादडी, सनवाड, खैरोदा, वल्लभनगर, नाथद्वारा, काकरोली, देवगढ आदि सैकडो स्थानक हैं।
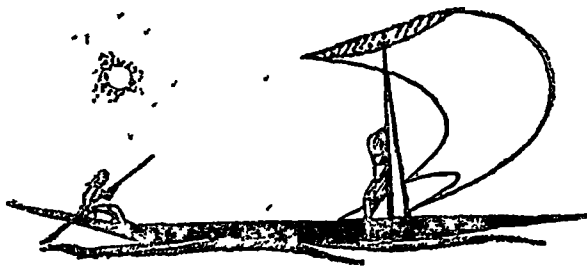
५१ | रा स्थान में लोकोपकारी जैन संस्थाएँ[1]

●

श्री महावीर कोटिया
डॉ० (श्रीमती) शान्ता भानावत

जैन धर्म लोक धर्म है। इसके सिद्धान्त लोक-कल्याण की भावना के प्रतिविम्ब हैं। भगवान् महावीर ने लोक सेवा को महान् धर्म वतलाया था। उन्होने एक ऐसे समाज का स्वप्न देखा था, जहा न केवल मनुष्य ही अपितु पृथ्वी का छोटे से छोटा जीव-जन्तु भी निर्भय रहकर अपने जीवन का आनन्द ले सके। इसलिए उन्होने अहिंसा को परम धर्म कहा। इस विचारधारा के अनुसार प्रत्येक समर्थ, शक्तिवान एव सम्पन्न का यह पवित्र कर्तव्य है कि वह समाज के असहाय, पीडित, अभावग्रस्त लोगो की सहायतार्थ अपनी शक्ति व धन का सदुपयोग करे और परमार्थ को जीवन मे आवश्यक समझे। इस दृष्टि ने जैन धर्मानुयायियो को सदा ही लोक कल्याणकारी कार्य करने की प्रेरणा दी है। जैन साधु तथा साध्वियो ने भी धर्म के इस स्वरूप को श्रावको के समक्ष प्रस्तुत करते रहने का अत्यधिक महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। यही कारण है कि अनेक लोकोपकारी जैन सस्थाओ के निर्माण के मूल मे उन विद्वान साधुओ की सद्प्रेरणा प्रमुख रही है। ऐसे समर्थ साधुओ की विद्वता, निस्पृहता और लोक सेवा भावना का श्रावक समाज मे सदैव आदर व सम्मान रहा है। लोकोपकार की इस भूमि पर ही धर्म का सच्चा रूप प्रकट हो पाया है, धर्म सामाजिक वन सका है। प्रस्तुत पृष्ठो में जैन धर्म के इस सर्व प्राणी हिताय सामाजिक रूप के दिग्दर्शन का छोटा सा प्रयास किया गया है। हमने प्रयत्न किया कि हमें अधिकाधिक सस्थाओ का परिचय प्राप्त हो सके, जो कुछ प्राप्त हो सका वह पाठको के समक्ष है।

(क) शैक्षणिक सस्थाएँ

मन की पवित्रता व्यक्ति को स्वत ही धर्मोन्मुख वनाती है। जैन धम इस पवित्रता की

हमारे अनुरोध पर जिन सस्थाओ एव व्यक्तियो ने अपने क्षेत्र की सस्थाओ का परिचय भेजा है, उसके आधार पर यह सर्वेक्षण प्रस्तुत किया जा रहा है। अन्य स्रोतो से भी जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया गया है। जिनका परिचय प्राप्त नही हो सका है, उन सस्थाओ का मात्र नामोल्लेख ही किया जा सका है। फिर भी यह सभव है कि प्रदेश की कई सस्थाओ की जानकारी इस परिचय मे आने से रह गई है। इसके लिए हम क्षमाप्रार्थी हैं।

प्ररणा के लिए सतत् चेष्टारत रहा है । जैन धर्म मे स्वीकृत पचाणुव्रत इसी आधार-भित्ति पर प्रतिष्ठित हैं । इसी कारण से जैन धर्म मे अध्ययन-मनन, स्वाध्याय-चिन्तन आदि को महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है । ज्ञान का समुचित प्रकाश पाकर ही मानव अपने स्वरूप को पहचान सकता है । अपने को पहचान कर और पाकर ही मानवतात्मा मुक्ति की राह पकड सकती है । जैन धर्म का प्राणीमात्र के लिए निर्दिष्ट पथ है—स्वप्रयत्नो से आत्मा को क्रमश ऊर्ध्वगामी बनाते हुए परम लक्ष्य को प्राप्त करना, मुक्त होकर, स्वय शुद्ध-प्रवुद्ध परमात्मा बन जाना । और कहना नही होगा, इस लक्ष्य प्राप्ति का प्रथम सोपान—आधारभूत सोपान 'शिक्षा' है, ज्ञान है । इसलिए जैन धर्मावलम्बियो मे—साधु वर्ग तथा श्रावक वर्ग—दोनो मे ही स्वय ज्ञान पाने तथा ज्ञान का प्रचार-प्रसार करने की परम्परा रही है । विशेषत जैन साधु वर्ग की दिनचर्या का अधिकतम अ श स्वाध्याय, चिन्तन, मनन, लेखन तथा श्रद्धालुओ को ज्ञान बोध देने आदि मे ही व्यतीत होता है । इस पृष्ठभूमि पर जैन धर्मावलम्बियो द्वारा राष्ट्र के शैक्षणिक व सास्कृतिक जीवन मे, उसके महत्त्वपूर्ण योगदान का चित्र स्वत ही उभरने लगता है । जैनियो द्वारा राष्ट्र के विविध भागो मे अनेक शिक्षा-सस्थाओ का निर्माण व सचालन, पुस्तकालयो-वाचनालयो की स्थापना व सचालन अध्ययनरत छात्रो की सुविधा के लिए छात्रावासों का सचालन साहित्य का प्रणयन व प्रकाशन, स्वाध्याय, मनन व चिन्तन के लिए अन्य धार्मिक व सार्वजनिक सस्थानो की स्थापना, शास्त्र व सत्साहित्य के पठन व श्रवण की परम्परा, ज्ञान गोष्ठियो का प्राय आयोजन, जिनका बिना भेदभाव के सभी लाभ उठा सकते हैं, शिक्षण-शिविरो का आयोजन आदि अनेक प्रवृतिया हैं, जिनके माध्यम से जैन समाज देश मे व्याप्त अज्ञानान्धकार को नष्ट कर, ज्ञान की समुज्जवल प्रभा विकीर्ण करता रहा है । प्रस्तुत विवरण मे शैक्षणिक विकास के कार्यों मे रत राजस्थान प्रदेश की प्रमुख जैन सस्थाओ का परिचय देने का प्रयत्न किया गया है ।

शिक्षा की दृष्टि से राजस्थान देश के अत्यधिक पिछडे प्रदेशो मे से था । स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय इतने बडे प्रदेश मे कोई विश्वविद्यालय तक नही था । राजस्थान विश्वविद्यालय की स्थापना १९४७ मे हुई । इसी प्रकार स्कूल कॉलेजो का भी अभाव था । राज्यो की राजधानियो के अतिरिक्त अन्य नगरो मे कालेज प्राय नही थे । जिन राज्यो के विलय से राजस्थान राज्य का निर्माण हुआ है, उन सभी मे स्वतन्त्रता से पूर्व निरकुश राजतन्त्र था । ये राजागण अधिकाशत अपने ही स्वार्थ की बात अधिक सोचते थे, जन-जागरण से तो उन्हें प्रत्यक्ष भय ही था । अत शिक्षा के प्रचार-प्रसार मे उनकी अधिक रुचि नही रही । फलत ग्राम अञ्चलो मे तो माध्यमिक स्तर तक के विद्यालय भी प्राय तहसील केन्द्र पर भले ही थे, ग्रामो मे तो प्राथमिक पाठशालाएँ भी नही के बराबर थी । ऐसे वातावरण मे जैन साधुओ ने तथा उनकी प्रेरणा से धनी श्रावको ने जनजागरण का यह महाशख फूंका । इन लोगो के परिश्रम, सद् विचार तथा सद् प्रयत्नो ने अनेक शैक्षणिक सस्थाओ को जन्म दिया । ये सस्थाएँ आज फलफूलकर राजस्थान प्रदेश मे शिक्षा के प्रचार-प्रसार की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही हैं । आगे दी जाने वाली शिक्षा-सस्थाओ की सूची से यह तथ्य स्पष्ट है ।

जैन शिक्षा-सस्थाओ की सूची

महाविद्यालय

१ श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सुबोध कॉलेज, जयपुर

२ बी० जे० एस० आर० जैन कॉलेज, बीकानेर
३ सोना देवी सेठिया विद्या मन्दिर (कन्या), सुजानगढ
४ एस० पी० यू० कॉलेज, फालना
५ श्री जैन स्नातकोत्तर कॉलेज, बीकानेर
६ श्री जैन टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, अलवर
७ श्री दिगम्बर जैन सस्कृत कॉलेज, जयपुर
८ सी० आर० जे० बी० एन० वाणिज्य महाविद्यालय, राणावास
९. श्री प्राज्ञ जैन महाविद्यालय, विजयनगर
१०, श्री वीर बालिका महाविद्यालय, जयपुर
११ श्री जवाहर विद्यापीठ स्वायत्त ग्रामीण महाविद्यालय, कानोड ।

उच्च तथा उच्चतर माध्यमिक विद्यालय

१ श्री शान्ति जैन सैकण्डरी स्कूल, ब्यावर
२ श्री दि० जैन आदर्श महिला विद्यालय, श्री महावीर जी (सवाई माधोपुर)
३ श्री के० डी० जैन हा० सै० स्कूल, मदनगज, किशनगढ
४ श्री जैन सैकण्डरी, स्कूल, अलवर
५ श्री महावीर दि० जैन हा० सै० स्कूल, जयपुर
६ श्री एस० एस० जैन सुबोध हा० सै० स्कूल, जयपुर
७ श्री श्वेताम्बर जैन सैकण्डरी स्कूल, जयपुर
८ श्री दि० जैन हा० सै० स्कूल, सीकर
९ श्री जैन हा० सै०, स्कूल, बीकानेर
१० श्री जैन श्वे० तेरापथी सैकण्डरी स्कूल चूरू
११ श्री ओसवाल सैकण्डरी स्कूल, सुजानगढ
१२ श्री वर्द्धमान जैन सैकण्डरी, स्कूल, ओसिया
१३ श्री जैन रत्न विद्यालय सैकण्डरी स्कूल, भोपालगढ
१४ श्री महावीर हा० सै० स्कूल, लाडनू
१५ एस० पी० यू० सैकण्डरी स्कूल, फालना
१६ श्री सुमति शिक्षा सदन (हा० सै० स्कूल), राणावास
१७ श्री मरुधर केसरी विद्यालय (सैकण्डरी स्कूल) राणावास
१८ श्री पार्श्वनाथ सैकण्डरी स्कूल, वरकाणा
१९ श्री महावीर हा० सै० स्कूल, भीलवाडा
२० श्री डी० सी० सेठिया उच्चतर विद्यालय, बीदासर
२१ श्री गाधी उच्च माध्यमिक विद्यालय, गुलाबपुरा
२२ श्री जवाहर विद्यापीठ हा० सै० स्कूल, कानोड (उदयपुर)
२३ श्री गोदावत जैन हा० सै० स्कूल छोटी सादडी
२४ श्री वीर बालिका विद्यालय सैकण्डरी स्कूल, जयपुर

२५. श्री पद्मावती कन्या विद्यालय (सैं० स्कूल), जयपूर
२६ श्री मरुधर बालिका विद्यापीठ, विद्यावाडी, रानी
२७ श्री दि० जैन सैकण्डरी स्कूल (कन्याएँ), उदयपुर
२८ श्री सरदार उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, जोधपुर

अन्य सस्थाएँ

१. श्री तेरापथी मिडिल स्कूल, जयपुर
२. श्री महावीर विद्यालय मिडिल स्कूल, सरदारशहर
३ श्री वर्धमान जैन मिडिल स्कूल, जोधपुर
४ श्री महावीर विद्यालय मिडिल स्कूल, बू दी
५ श्री वर्धमान जैन मिडिल स्कूल, मोतीभवन, भीलवाडा
६ श्री विमलसागर जैन विद्यालय, भीलवाडा
७ श्री पी० सी० एम० सी० जैन मिडिल स्कूल, उदयपुर
८ श्री पार्श्वनाथ जैन दि० मिडिल स्कूल, उदयपुर
९ श्री महावीर दि० जैन बालिका विद्यालय (मि० स्कूल), जयपुर
१० श्री एल० के० एस० जैन कन्या पाठशाला, बीकानेर
११ श्री जैन केसर बालिका विद्यालय, चूरू
१२ श्री महावीर कन्या पाठशाला जोधपुर
१३ श्री भ० यशकीर्ति दि० जैन माध्यमिक विद्यालय, प्रतापगढ
१४ श्री रमरण बहिन दि० जैन कन्या शाला, प्रतापगढ
१५ श्री फूलचन्द जैन कन्या पाठशाला, सवाई सिंह जी की पोल, जोधपुर
१६ श्री भट्टारक यशकीर्ति दि० जैन गुरुकुल ऋषभदेव (उदयपुर)
१७. श्री शान्ति वीर जैन गुरुकुल, जोबनेर
१८ श्री जैन दिवाकर प्राथमिक पाठशाला, चित्तौडगढ
१९ श्री गुलाब कँवर ओसवाल उच्च प्राथमिक शाला, अजमेर
२० श्री दिवाकर बाल निकेतन, कोटा ।
२१ श्री वीर जैन विद्यालय, अलीगढ, टौक
२२ श्री महावीर जैन विद्यालय, भरतपुर
२३ श्री जैन सुबोध बालिका विद्यालय, जयपुर
२४ श्री अकलक दि० जैन पाठशाला, कोटा
२५ श्री दिगम्बर जैन विद्यालय, सुजानगढ
२६ श्री फूलचन्द जैन कन्या पाठशाला, जोधपुर
२७ श्री सुबोध जैन पाठशाला, जोधपुर
२८ श्री सागर जैन विद्यालय, किशनगढ
२९ श्री शाति जैन पाठशाला, ब्यावर
३० श्री दि० जैन पन्नालाल एलक प्राथमिक विद्यालय, ब्यावर

३१ श्री खूबचन्द बाँठिया, विद्या मन्दिर, बीदासर
३२ श्री मगनज्ञान मन्दिर, गोगुन्दा
३३ श्री वर्द्धमान जैन कन्या पाठशाला, घोडो का चौक, जोधपुर
३४ श्री गाधी बालिका उच्चतर विद्यालय, बीदासर
३५ श्री जीवन कन्या पाठशाला, बीकानेर
३६ श्री सेठिया जैन कन्या पाठशाला, बीकानेर

प्रमुख सस्थाओ का परिचय

सस्थाओ का विस्तृत परिचय प्राप्त करने का प्रयत्न किया गया था। जिन सस्थाओ का परिचय हमे प्राप्त हो सका उनका परिचय आगे के पृष्ठो मे दिया जा रहा है। परिचय का क्रम है—महाविद्यालय, उच्च तथा उच्चतर माध्यमिक विद्यालय तथा अन्य सस्थाएँ।

(१) महाविद्यालय

१ **श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सुबोध महाविद्यालय, जयपुर**—इस सस्था की स्थापना श्री माधव मुनि जी की प्रेरणा से सन् १९२५ मे एक प्राथमिक पाठशाला के रूप मे हुई। सन् १९३४ मे माध्यमिक विद्यालय, १९४४ मे हाई स्कूल, १९५४ मे इण्टर कॉलेज तथा सन् १९६१ मे स्नातक स्तर तक के महाविद्यालय मे क्रमोन्नत होकर यह नन्हा पौधा आज जयपुर नगर की प्रमुख शिक्षा सस्था के रूप मे अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। सस्था का जौहरी बाजार मे विशाल भवन है तथा अब कॉलेज विभाग का नया भव्य भवन रामबाग सर्किल के पास निर्मित हो चुका है। सस्था का सचालन एक समिति द्वारा होता है जिसके वर्तमान अध्यक्ष श्री सिरह मल नवलखा है। मन्त्री के रूप मे स्व० श्री सिरहमल जी बम्ब की सेवाएँ कई वर्षो तक मिलती रही। वर्तमान मे प्राचार्य श्री नथमल गोलेछा हैं। प्राचार्य के रूप मे श्री बालचन्द वैद्य की सेवाएँ इस सस्था के इतिहास मे महत्त्वपूर्ण रही हैं।

२ **श्री पार्श्वनाथ उम्मेद महाविद्यालय एव श्री पार्श्वनाथ उम्मेद माध्यमिक विद्यालय, फालना**—उक्त सस्थाएँ श्री पार्श्वनाथ उम्मेद जैन शिक्षण सघ, फालना के द्वारा सचालित हैं। इस सस्था की स्थापना श्री विजय वल्लभ सूरीश्वर जी महाराज की प्रेरणा से हुई। सस्था की स्थापना उम्मेदपुर मे हुई थी परन्तु १९४२ की बाढ मे क्षतिग्रस्त हो जाने के बाद यह सस्था फालना मे स्थानान्तरित हो गई। सस्था १९४७ मे मिडिल स्कूल, १९४८ मे हाई स्कूल, १९५१ मे इण्टर कॉलेज तथा १९५८ मे डिग्री कॉलेज के रूप मे विकसित होकर इस प्रदेश के विद्यार्थी वर्ग को लाभान्वित करती रही हैं। वर्तमान मे सस्था महाविद्यालय एव माध्यमिक विद्यालय की दो पृथक इकाइयो का सचालन करती है तथा साथ ही दोनो सस्थाओ के निजी छात्रावास भी हैं। सघ की वर्तमान कार्यकारिणी मे सघवी कुन्दनमल जी पारेख अध्यक्ष तथा सघवी मोहनलाल जी बनेचन्द जी मन्त्री है।

३ **श्री रामपुरिया जैन महाविद्यालय, बीकानेर**—शिक्षा प्रेमी, व्यवसायी स्व० श्री भवरलाल जी रामपुरिया द्वारा २९ जुलाई, १९३४ को अपने आदरणीय पितामह श्री सेठ बहादुरमल जी पिता सेठ जसकरण जी एव पितृव्य सेठ श्री सिद्धकरण जी की स्मृति मे बी० जे० एस० रामपुरिया

जैन स्कूल के रूप मे एक माध्यमिक शाला की स्थापना की गई। उन्होने प्रारम्भ मे सस्था के लिए १½ लाख रुपये से एक ट्रस्ट की स्थापना की। इसके अतिरिक्त इसकी उन्नति मे वे समय-समय पर मुक्त हस्त से दान देते रहे। इसी कारण यह विद्यालय एक वर्ष के अनन्तर हाई स्कूल मे क्रमोन्नत हुआ। सन् १९४५ मे यह सस्था इण्टर कॉलेज बनी। इस अवसर पर भी सेठ साहब ने एक लाख रुपये का अतिरिक्त दान देकर कॉलेज ट्रस्ट को २½ लाख रुपये का बना दिया। सन् १९५६ मे इस सस्था ने डिग्री कॉलेज का स्वरूप प्राप्त किया। प्रारभ मे इसमे वाणिज्य सकाय की कक्षाए ही प्रारभ की गई थी। सन् १९६१ मे कला सकाय की तथा सन् १९७३ मे विधि सकाय कक्षाए भी इसमे चालू हो गई हैं। इस प्रकार आज यह महाविद्यालय वाणिज्य, कला एव विधि सकाय के लगभग ८०० विद्यार्थियो को शिक्षा प्रदान कर रहा है। बीकानेर नगर के शिक्षण क्षेत्र मे इस महाविद्यालय का महत्त्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा-स्तर एव परीक्षा परिणामो की दृष्टि से भी यह प्रारभ से ही उल्लेखनीय सस्था रही है। सस्था के विकास में स्व० श्री शिवकाली सरकार का प्राचार्य के रूप मे महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। वर्तमान मे इसके मन्त्री श्री युगराज सेठिया है।

४ श्री आदिनाथ जैन शिक्षण सस्थान, अलवर—श्री आदिनाथ जैन शिक्षण सस्थान, अलवर द्वारा श्री जैन शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय एव श्री जैन उच्च माध्यमिक विद्यालय का सचालन हो रहा है।

सस्था ने सन् १९०० में समाज के छोटे बालको को धार्मिक शिक्षा देने की दृष्टि से एक शाला की स्थापना की थी। यही शाला सन् १९१६ में प्राथमिक विद्यालय के रूप में क्रमोन्नत हुई और इसमे सामान्य शिक्षण कार्य प्रारभ किया गया। तत्कालीन अलवर नरेश श्री जयसिंह ने इसे राजकीय सहायता प्रदान की। सन् १९४४ मे यह शाला मिडिल स्कूल तथा सन् १९६५ मे जूनियर हायर सैकण्डरी स्कूल के रूप मे क्रमोन्नत हुई। शिक्षण प्रशिक्षण महाविद्यालय की स्थापना सन् १९६८ मे हुई। इस प्रकार सस्थान के अन्तर्गत इस समय तीन भिन्न सस्थाए कार्यरत है—(१) श्री जैन उच्च प्राथमिक शाला, (२) श्री जैन माध्यमिक शाला एव (३) श्री जैन शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय। प्रथम दो सस्थाओ को राजकीय अनुदान प्राप्त है। सस्थान में लगभग एक हजार छात्र-छात्राए अध्ययन रत हैं।

शालाओ में जैन धर्म की शिक्षा का भी अलग से प्रबन्ध है। विद्यार्थी अखिल भारतीय जैन परीक्षा मण्डल द्वारा आयोजित परीक्षाओ में बैठते है। सस्थान के अध्यक्ष श्री बाबूराम जैन तथा व्यवस्थापक श्री ग्यारसीराम जैन है।

५ श्री दिगम्बर जैन सस्कृत कॉलेज, जयपुर—सस्था की स्थापना सन् १८८५ में श्री धन्नालाल जी फौजदार एव श्री भोलीलाल जी सेठी के विशेष प्रयत्न से हुई। प्रसिद्ध जैन विद्वान प० चैनसुखदास जी सन् १९३१ से मृत्युपर्यन्त इस सस्था से सम्बन्धित रहे तथा इसकी उन्नति में विशेष योगदान किया। यह सस्था प्रवेशिका, उपाध्याय, शास्त्री तथा आचार्य तक की सस्कृत-परीक्षाओ के लिए सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त है। आचार्य में जैन-दर्शन तथा सस्कृत साहित्य प्रमुख विषय है। सस्था शिशुकला से लेकर अष्टम श्रेणी तक सामान्य शिक्षा भी देती है। सस्था का निजी छात्रावास भी हैं। सस्था की व्यवस्था एक प्रबन्ध समिति करती है जिसके वर्तमान अध्यक्ष श्री प्रकाशचन्द कासलीवाल एव मन्त्री श्री कपूरचद पाटनी हैं।

६. **श्री जवाहर विद्यापीठ, स्वायत्त ग्राम्य महाविद्यालय, कानोड**—इस संस्था की स्थापना मुनि श्री चाँदमलजी महाराज की प्रेरणा से प० श्री उदय जैन द्वारा २४ अक्टूबर, सन् १६४० ई० को 'प्रतापोदय' स्कूल के नाम से हुई। यह प्रतापोदय स्कूल नाम का नन्हा पौधा आज जवाहर विद्यापीठ के वटवृक्ष के रूप मे फल फूल गया है। सन् १६५३ मे यह हायर सैकण्डरी, १६५८ मे बहुउद्देशीय हायर सैकण्डरी व सन् १६७४ मे डिग्री कॉलेज के रूप मे क्रमोन्नत हुआ है। स्कूल मे कला, वाणिज्य व विज्ञान तीनो सकाय है। कॉलेज मे कला व वाणिज्य की कक्षाएँ चलती है। सस्था का निजी छात्रावास है जिसमे २०० से अधिक छात्र है। इसका प्रबन्ध जैन शिक्षण सघ, कानोड द्वारा होता है। वर्तमान मे इसके अध्यक्ष श्री गुमानमलजी चोरडिया तथा प० श्री उदय जैन सचालक है। सघ के अधीन विभिन्न शैक्षणिक सस्थाएँ कार्यरत है, जिनमे डिग्री कॉलेज, उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, जवाहर जैन गुरुकुल, जवाहर विद्यापीठ प्राथमिक शाला, श्री जैन कन्या विद्यालय, श्री कस्तूरबाई बालचन्द बाल मन्दिर, महिला उद्योगशाला, रात्रि प्रौढशाला आदि है। कुल मिलाकर लगभग १५०० छात्र लाभ उठाते है। लगभग सात बीघे से अधिक जमीन पर जवाहर विद्यापीठ के लाखो रुपयो की लागत के भवन बने हुए है।

(२) उच्च तथा उच्चतर माध्यमिक विद्यालय

१ **श्री जैन रत्न विद्यालय, भोपालगढ**—इस आवासीय शिक्षण सस्था की स्थापना १५ जनवरी, १६२६ को हुई। आज यह सस्था राजस्थान शिक्षा विभाग द्वारा सैकण्डरी स्कूल स्तर तक मान्यता प्राप्त है। सस्था मे लगभग ४०० विद्यार्थीगण अध्ययनरत हैं। सस्था के छात्रावास मे लगभग ७५ छात्रो के रहने की व्यवस्था है। सस्था की स्थापना मुनि श्री मोहन ऋषिजी महाराज की प्रेरणा से हुई थी। सस्था का भवन निर्माण सेठ श्री भीकमचन्दजी विजयराजजी कांकरिया तथा सेठ राजमलजी ललवाणी के अथक प्रयत्नो से हुआ। इस सस्था को जैन जगत की प्रसिद्ध मासिक पत्रिका 'जिनवाणी' का प्रकाशन प्रारभ करने का भी श्रेय है।

२ **श्री महावीर दिगम्बर जैन उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, जयपुर**—इस सस्था का प्रारम्भ श्री दिगम्बर जैन सस्कृत कॉलेज की शाखा के रूप मे हुआ। यह सस्था सन् १६४१ मे मिडिल स्कूल, सन् १६४५ मे हाईस्कूल तथा सन् १६६५ मे हायर सैकण्डरी स्कूल के रूप मे क्रमोन्नत हुई। आज यह सस्था जयपुर नगर की अत्यधिक लोकप्रिय व महत्त्वपूर्ण शिक्षा सस्था है। सस्था का महावीर मार्ग, सी-स्कीम मे विशाल भव्य भवन है। सस्था का सचालन श्री महावीर दिगम्बर जैन शिक्षा परिषद् द्वारा हो रहा है जिसके वर्तमान अध्यक्ष श्री गोपीचन्द पाटनी तथा मन्त्री श्री तेजकरण डण्डिया हैं। विद्यालय की एक शाखा घीवालो के रास्ते मे भी हैं।

३ **श्री महावीर उच्च माध्यमिक विद्यालय, लाडनू**—सन् १८६५ मे एक प्राथमिक विद्यालय के रूप मे स्थापित यह सस्था सन् १६५६ से उच्च माध्यमिक विद्यालय के रूप मे क्रमोन्नत होकर सेवारत है। वर्तमान मे विद्यालय मे कला, विज्ञान एव वाणिज्य विषयो मे ८२७ विद्यार्थी अध्ययन कर रहे हैं।

४ **श्री श्वेताम्बर जैन सैकण्डरी स्कूल, जयपुर**—सन् १६४५ मे स्थापित यह सस्था सैकण्डरी स्कूल स्तर तक के अध्ययन के लिए एक प्रमुख सस्था है। घीवालो के रास्ते मे सस्था का विशाल भवन

है। सस्था का सचालन एक प्रवन्ध समिति द्वारा होता है जिसके वर्तमान अध्यक्ष श्री मेहतावचन्द गोलेछा तथा मन्त्री श्री छुट्टनलाल श्रीमाल हैं।

५ श्री के. डी जैन उच्च माध्यमिक विद्यालय, किशनगढ—इस विद्यालय की स्थापना सेठ श्री भागचन्द सोनी, श्री हीरालाल पाटनी, श्री मगनलाल पाटनी आदि के प्रयास से सन् १९५१ मे हुई। सन् १९५९ से यह उच्च माध्यमिक विद्यालय मे क्रमोन्नत हुआ है। यह मदनगज, किशनगढ की महत्त्वपूर्ण शिक्षा सस्था है। इस समय विद्यालय मे २२८९ छात्र अध्ययनरत है।

६ गाधी उच्च विद्यालय, गुलाबपुरा—इस विद्यालय की स्थापना मुनि श्री पन्नालालजी म० की सद्प्रेरणा से जैन विद्यालय के रूप मे सन् १९३८ मे हुई। ४ जुलाई, १९४९ को गाधी विद्यालय के रूप मे इसे वर्तमान सार्वजनिक शिक्षण सस्था का रूप प्राप्त हुआ। विद्यालय से सम्बद्ध तीन छात्रावास—श्री नानक जैन छात्रावास, श्री गाधी छात्रावास तथा श्री कृष्ण छात्रावास हैं। विद्यालय-पुस्तकालय मे दस हजार पुस्तको का सकलन है।

७ श्री पार्श्वनाथ उच्च माध्यमिक विद्यालय, वरकाणा (पाली)—इस सस्था की स्थापना २६ फरवरी, १९२६ को श्री विजय ललित सूरीश्वरजी महाराज साहब की प्रेरणा से हुई। सस्था के निर्माण मे स्व० श्री जसराजजी सिंघी तथा स्व० सेठ श्री मूलचन्दजी सादडी निवासी का विशेष योग तथा प्रयास रहा। आज यह सस्था राजस्थान माध्यमिक शिक्षा वोर्ड से सम्बन्धित, उच्च माध्यमिक विद्यालय के रूप मे इस क्षेत्र की सेवा कर रही है। विद्यालय का अपना छात्रावास भी है। वर्तमान मे सस्था की प्रबन्ध समिति के अध्यक्ष श्री कालिदास राठौड तथा प्रधानाध्यापक श्री दाऊलाल माथुर हैं।

८ श्री गोदावत जैन गुरुकुल (उच्च माध्यमिक विद्यालय), छोटी सादडी—मेवाड क्षेत्र की यह एक महत्त्वपूर्ण शिक्षा सस्था है। इसकी स्थापना सन् १९१९ मे हुई थी। इसके सस्थापक सेठ श्री नाथूलालजी गोदावत द्वारा सवा लाख रुपये की धनराशि दान देने से जैनाश्रम की स्थापना के रूप मे इस सस्था का प्रारम्भ हुआ था। सन् १९१९ मे जबकि ग्रामीण अञ्चल मे शिक्षा का प्रचार-प्रसार नगण्य था, इस सस्था की स्थापना अत्यधिक महत्त्वपूर्ण कदम था। आज यह सस्था राजस्थान माध्यमिक शिक्षा वोर्ड से सम्बद्ध एक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के रूप मे क्षेत्र मे सेवारत है। यह एक आवासीय शिक्षा सस्था भी है। सलग्न छात्रावास मे लगभग ६० विद्यार्थियो के रहने योग्य स्थान है। श्री नेमीचन्द सुराणा पिछले २५ वर्षो से यहां प्रधानाध्यापक के रूप मे कार्य कर रहे हैं। सस्था का सचालन एक ट्रस्ट मण्डल द्वारा होता है। मत्री के रूप मे श्री चांदमलजी नाहर की सेवाएँ उल्लेखनीय हैं। वर्तमान मे इसके मत्री श्री शातिचन्द्र मोगरा हैं।

९ श्री सुमति शिक्षा सदन उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, राणावास—इस सस्था की स्थापना सन् १९४४ मे "श्री जैन श्वेताम्वर तेरापन्थी शिक्षण सघ" राणावास (पाली) के द्वारा हुई। आज यह सस्था हायर सैकेण्डरी स्तर तक की शिक्षा प्रदान कर रही है, तथा इसमे कला, विज्ञान व वाणिज्य तीनो ही विषय समूहो के अध्ययन की व्यवस्था है। सस्था से सम्बन्धित आदर्श निकेतन छात्रावास है जिसमे लगभग ३५० छात्रो के रहने का प्रवन्ध है। सन् ७४ से यह सस्था

वाणिज्य एव कला महाविद्यालय के रूप मे क्रमोन्नत हो गई है। सस्था की स्थापना में स्व० श्री वस्तीमलजी छाजेड एव स्व० श्री गणेशमलजी सुराणा मुख्य प्रेरक एव सहयोगी रहे है। श्री केसरीमलजी सुराणा पिछले २६ वर्षों से अवैतनिक रूप मे इस सस्था के सचालन एव विकास मे जुटे हुए है।

१० श्री मरुधर केसरी उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, राणावास (पाली)—यह सस्था मरुधर केसरी मुनि श्री मिश्रीमलजी महाराज साहब की प्रेरणा से जुलाई, १९७० मे प्रारभ हुई। सस्था मे कक्षा ६ से ११ तक लगभग ४०० छात्र अध्ययन करते हे। सस्था से सलग्न छात्रावास मे ३५० छात्रो के रहने की सुन्दर व्यवस्था है। सस्था की प्रवन्ध-समिति के वर्तमान अध्यक्ष श्री इन्द्रसिंह जी मुणोत एव मन्त्री श्री अमीरचन्दजी कटारिया है।

११ श्री मरुधर बालिका विद्यापीठ, विद्यावाडी, रानी (पाली)—इस उच्चतर माध्यमिक कन्या विद्यालय का उद्घाटन १५ अगस्त, १९५७ को हुआ। सस्था आवासीय शिक्षण सस्थान है। सलग्न छात्रावास मे छात्राओ के निवास तथा खानपान की सुन्दर व्यवस्था हे। सस्था के मन्त्री श्री फूलचन्द बाफना हैं तथा प्रधानाध्यापिका श्रीमती सुभद्रा जैन है। सस्था की विकासमान प्रवृत्तियो मे प्रो० गणपतिचन्द्र भण्डारी का विशेप योगदान रहा है।

१२ श्री शान्ति वीर जैन गुरुकुल सस्कृत प्रवेशिका विद्यालय, जोबनेर (राज०)—जोवनेर के जैन समाज द्वारा धार्मिक व सस्कृत शिक्षा के लिए स्थापित श्री बाल बोधनी दिगम्बर जैन पाठशाला ही आचार्य श्री शिवसागरजी महाराज की प्रेरणा से सन् १९६३ मे शान्ति वीर जैन गुरुकुल के नाम से नवीनीकृत हुई। इस समय सस्था राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा प्रवेशिका स्तर तक मान्यता प्राप्त है। इस समय २३६ विद्यार्थी यहाँ अध्ययनरत है। विद्यालय का अपना छात्रावास भी है। वर्तमान मे सस्था की प्रवन्ध समिति के अध्यक्ष श्री सुगनचन्द पाटनी तथा मन्त्री श्री मिलापचन्द जैन हैं।

१३ श्री वीर बालिका उच्च माध्यमिक विद्यालय, जयपुर—सस्था की स्थापना सन् १९२५ मे साध्वी श्री स्वर्णश्रीजी की प्रेरणा से हुई। इस समय विद्यालय मे लगभग ११०० छात्राएँ अध्ययनरत है। सन् १९७४ से विद्यालय को महाविद्यालय के रूप मे क्रमोन्नत कर दिया गया है। इसका सचालन श्वेताम्बर जैन समाज द्वारा गठित समिति करती है। समिति के वर्तमान अध्यक्ष श्री सौभाग्यमल श्री श्रीमाल है। स्व० श्रीमती प्रकाशवती सिन्हा का प्रधानाध्यापिका के रूप मे इस सस्था को उल्लेखनीय योगदान रहा। यह सस्था कुन्दीगरो के भैरूजी के रास्ते मे स्थित है।

१४ श्री पद्मावती जैन बालिका माध्यमिक विद्यालय, जयपुर—इस सस्था की स्थापना सन् १९०८ मे हुई थी। सन् १९६० मे यह उच्च माध्यमिक विद्यालय के रूप मे क्रमोन्नत हुआ। यह घीवालो के रास्ते मे स्थित है। वर्तमान मे लगभग ५५० छात्राएँ यहाँ अध्ययनरत है। इसका प्रवन्ध दिगम्बर जैन कन्या शिक्षा प्रचारिणी कमेटी द्वारा होता है जिसके वर्तमान अध्यक्ष श्री कोमलचन्द पाटनी एव मत्री श्री चतुरमल अजमेरा हैं। श्री माणिक्यचन्द्र जैन प्रधानाध्यापक है।

१५ आदर्श महिला विद्यालय, श्री महावीरजी—इस सस्था की स्थापना सन् १९५३ मे विदुषी कमलाबाई द्वारा हुई। यह बालिका विद्यालय सैकण्डरी स्कूल स्तर तक मान्यता प्राप्त है।

इस समय इसमे कक्षा १ से १० तक ६५० बालिकाएँ अध्ययनरत हैं। विद्यालय का लगभग २ लाख रुपये का अपना भवन है। विद्यालय के छात्रावास मे मात्र तीस रुपये मासिक शुल्क पर बालिकाओ के रहने तथा खाने-पीने की सुन्दर व्यवस्था है।

१६ श्री दिगम्बर जैन बालिका माध्यमिक विद्यालय, उदयपुर—इस सस्था का प्रारभ १९४१ मे एक जैन मन्दिर के प्रागण मे हुआ। धीरे-धीरे क्रमोन्नत होकर सन् १९६४ मे सस्था ने अपना वर्तमान रूप प्राप्त किया है। आज सस्था मे कक्षा ६ से १० तक ४५० बालिकाएँ अध्ययनरत हैं। यह सस्था स्थानीय दिगम्बर जैन शिक्षा समिति के तत्त्वावधान मे कार्यरत है।

१७ हीरालाल सौभागमल रामपुरिया विद्या निकेतन, गगाशहर (बीकानेर)—बीकानेर के सुप्रसिद्ध उद्योगपति रामपुरिया बधु श्री जयचन्दलाल, श्री रतनलाल व श्री माणकचन्द रामपुरिया ने अपने स्व० पितामह सेठ हीरालाल रामपुरिया व स्व० पिता सौभागमल रामपुरिया की पावन स्मृति मे सन् १९५४ मे इस शिक्षणशाला की स्थापना की।

विद्या निकेतन एक विशिष्ठ शिक्षण शाला है यहा पर शिशु विभाग मे मॉन्टेसरी पद्धति से बच्चो को शिक्षा दी जाती है और २½ वर्ष के बच्चो को प्रवेश दिया जाता है।

बालिकाओ के लिए सैकण्डरी तक पढने की व्यवस्था है। बालक-बालिकाओ के व्यक्तित्व का समुचित विकास करने हेतु निकेतन मे मनोवैज्ञानिक उपकरणो, साज-सज्जा आदि की समुचित व्यवस्था है व विभिन्न प्रकार के कार्य-क्रम अपनाये जाते हैं। इस समय सस्था मे ५५० विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं व २५ शिक्षक सेवारत हैं।

रामपुरिया विद्या निकेतन का भवन बीकानेर से पाच किलोमीटर दूर शान्त व स्वच्छ वातावरण मे गगाशहर मे सडक के किनारे स्थित है। दूर से बच्चो को लाने के लिए सस्था की अपनी पाच बसें है। मुख्य भवन मे सास्कृतिक कार्यक्रमो के लिए सस्था का अपना ओडिटोरियम, खेलकूद के लिए मैदान, सुसज्जित वाचनालय, पुस्तकालय व प्रयोगशालायें हैं।

१८ श्री सुबोध बालिका विद्यालय, जयपुर—इस सस्था की स्थापना सन् १९१८ मे हुई। सन् १९७३ से पूर्व यह उच्च प्राथमिक शाला के रूप मे थी और अब क्रमोन्नत होकर सैकण्ड्री स्कूल के रूप मे बालिकाओ की शिक्षा के क्षेत्र मे महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही है। सस्था का प्रबन्ध श्री जैन श्वेताम्बर स्थानक समाज द्वारा गठित समिति द्वारा होता है जिसके वर्तमान अध्यक्ष श्री सिरहमल नवलखा है। यह बारह गणगोर रास्ता, जौहरी बाजार मे स्थित है।

(३) अन्य विद्यालय

१ श्री महावीर दिगम्बर जैन बालिका विद्यालय, जयपुर—इस सस्था की स्थापना श्री मुन्शी सूरजनारायणजी सेठी की प्रेरणा से महिला शिल्प विद्यालय के रूप मे सन १९३० में हुई। सन् १९६२ से यह मिडिल स्कूल बना। यहाँ कक्षा ८ तक की पठन-पाठन की सुन्दर व्यवस्था है। श्री हीरालाल जैन परोपकार फण्ड द्वारा सस्थापित इस सस्था का सचालन एक प्रबन्ध समिति द्वारा होता है जिसके वर्तमान अध्यक्ष श्री सूरजनारायण सेठी व मन्त्री श्री मिलापचन्द शास्त्री हैं। सस्था चुरुको का रास्ता (मोदीखाना) मे स्थित है।

२ श्री जैन श्वेताम्बर तेरापथी माध्यमिक विद्यालय, जयपुर—मोतीसिंह भोमिया के रास्ते मे स्थित इस शिक्षा सस्था की स्थापना स्व० सेठ सूरजमलजी बाठिया द्वारा सन् १६१३ मे हुई। यहाँ कक्षा अष्टम तक के शिक्षण की सुन्दर व्यवस्था है। इसका सचालन तेरापथी समाज द्वारा होता है।

३ श्री गुलाब कवर ओसवाल उच्च प्राथमिक कन्या विद्यालय, अजमेर—इस सस्था की स्थापना श्री धनराजजी कान्टिया के प्रयास से ८ सितम्बर, १६१२ को हुई। वतमान मे सस्था का सचालन ओसवाल फीमेल एज्यूकेशन सोसाइटी के द्वारा होता है। पाठशाला मे आठवी कक्षा तक अध्ययन की व्यवस्था है। सस्था के वर्तमान अध्यक्ष श्री रतनचन्दजी सचेती तथा मत्री श्री चादमलजी सीपाणी हैं।

४ श्री अकलक दिगम्बर जैन पाठशाला, कोटा—जैन मन्दिर स्ट्रीट मे स्थापित यह माध्यमिक शाला, राजस्थान सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त है। वर्तमान मे यहाँ ५०० छात्र-छात्राएँ तथा १४ अध्यापक हैं। सस्था का निजी भवन है।

५ श्री दिगम्बर जैन विद्यालय, सुजानगढ—इस विद्यालय की स्थापना सन् १६१० मे हुई थी। जुलाई, १६७२ से यह माध्यमिक शाला के रूप मे सेवारत है। इसका सचालन स्थानीय दिगम्बर जैन समाज का एक ट्रस्टी मण्डल करता है।

६ श्री भट्टारक यशकीर्ति दिगम्बर जैन धर्मार्थ ट्रस्ट गुरुकुल, ऋषभदेव (उदयपुर)—यह ट्रस्ट भी भट्टारक यशकीर्तिजी महाराज की प्रेरणा से सन् १६५६ मे रजिस्टर्ड होकर अस्तित्व मे आया। ट्रस्ट गुरुकुल के अतिरिक्त दिगम्बर जैन कन्या पाठशाला, महिला उद्योगशाला तथा सरस्वती भवन पुस्तकालय आदि शैक्षणिक प्रवृत्तियो का सचालन करता है। ट्रस्ट के अध्यक्ष जवेरी श्री मोतीलालजी मीण्डा, उदयपुर व मन्त्री प० रामचन्द्रजी जैन हैं।

७. श्री भट्टारक यशकीर्ति दिगम्बर जैन बोर्डिंग, प्रतापगढ—इस नाम से रजिस्टर्ड सस्था न केवल छात्रावास की व्यवस्था करती है अपितु श्री भट्टारक यशकीर्ति दिगम्बर माध्यमिक विद्यालय व श्री रमण बहिन दिगम्बर जैन कन्याशाला का भी सचालन व प्रवन्ध करती हैं। इस सस्था के प्रेरक भट्टारक श्री यशकीर्ति महाराज थे तथा सस्था १८ मई, १६४४ को अस्तित्व मे आई। सस्था की प्रगति का श्रेय भट्टारकजी के शिष्य प० रामचन्द्रजी को है।

८ श्री दिवाकर बाल निकेतन, कोटा—यह विद्यालय श्री आनन्द ऋषिजी महाराज साहब की प्रेरणा से सन् १६७१ मे स्थापित किया गया। इसमे नर्सरी कक्षा से कक्षा ६ तक की अध्ययन की व्यवस्था है। वर्तमान मे १६५ छात्र-छात्राएँ तथा ७ अध्यापक हैं। शाला की सचालक समिति के अध्यक्ष श्री हरवशलाल जैन तथा व्यवस्थापक श्री माणिकचन्द्र जैन है।

६. श्री महावीर जैन विद्यालय, भरतपुर—यह सस्था स्थानीय महावीर भवन मे स्थापित है। यहाँ कक्षा प्रथम से पाँचवी तक के अध्ययन की सुचारु व्यवस्था है। बच्चो को धार्मिक शिक्षा भी दी जाती है।

१०. श्री जैन दिवाकर प्राथमिक पाठशाला, चित्तौड़गढ़—जैन दिवाकर मुनि श्री चौथमलजी

महाराज साहब की स्मृति मे स्थापित यह पाठशाला निजी भवन मे सुचारु रूप से सचालित है। कक्षा १ से ५ तक के अध्यापन की व्यवस्था है।

११ श्री वीर जैन विद्यालय, अलीगढ़ (टौंक)—श्री गोडीदासजी महाराज साहब की प्रेरणा से सम्वत् २००३ मे इसकी स्थापना हुई। यह प्राथमिक विद्यालय है। सेठ श्री राधाकृष्णजी जालानी, कलकत्ता सस्था का समस्त व्यय-भार वहन कर रहे हैं।

१२. श्री वर्द्धमान जैन कन्या पाठशाला, नागौर—आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज साहब की सद्-प्रेरणा एव स्थानकवासी जैन समाज, नागौर के कतिपय उत्साही व सेवाभावी सज्जनो के सद्-प्रयास के फलस्वरूप विक्रम सवत् २००९ मे इस पाठशाला का शुभारम्भ हुआ। सस्था की स्थापना का मुख्य उद्देश्य नन्ही बालिकाओ मे धार्मिक एव नैतिक शिक्षण के माध्यम से सुसस्कार उत्पन्न करना रहा है। इसी उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुए पाठशाला मे राजकीय पाठ्यक्रम के अतिरिक्त धार्मिक शिक्षण की विशेष व्यवस्था है। इस समय पाठशाला मे पाचवी कक्षा तक पढाई होती है। छात्राओ की सख्या एक सौ से अधिक है एव अध्यापिकाओ की सख्या ५ है। सन् १९६९ मे पाठशाला के सचालन हेतु नया विधान बनाया गया। तत्पश्चात् सस्था को पजीबद्ध कराया जाकर राजकीय मान्यता प्राप्त कराई गई। पाठशाला भवन आधुनिक सुविधाओ से युक्त एव नगर के मध्य मे स्थित है। भवन समिति पृथक् बनी हुई है जिसके अथक प्रयास से ही भवन का वर्तमान स्वरूप बन सका है। पाठशाला का सचालन निर्वाचित कार्यकारिणी समिति के द्वारा किया जाता है जिसमे कुल २१ सदस्य है। समिति के वर्तमान अध्यक्ष श्री भेरुदान जी सुराणा, मत्री श्री नवरत्न राज मेहता एव कोषाध्यक्ष श्री डुगरमलजी सुराणा हैं। सस्थापक सदस्य सर्व श्रीपारसमल जी सुराणा एव उमरावमल जी सुराणा हैं तथा सरक्षक सर्व श्री दीपचन्दजी सुराणा एव गणेशमलजी काकरिया हैं।

(४) धार्मिक शिक्षण संस्थाए

जैन धार्मिक सिद्धान्तों, जैन-साहित्य व दर्शन आदि के अध्ययन अध्यापन के लिए प्रदेश भर मे अनेक सस्थाए कायरत हैं। जैन-धर्मावलम्बियो मे अपने विद्यालय छात्रावास, मन्दिर, स्थानक, उपाश्रय, आदि से सलग्न धार्मिक शिक्षा केन्द्र चलाने की परम्परा रही है। अत धार्मिक शिक्षण केन्द्र प्रदेश भर मे बडी सख्या मे इतस्तत. फैले हुए हैं। यहा कुछ प्रमुख सस्थाओ का नामोल्लेख किया जा रहा है।

१ श्री शान्ति वीर दि० जैन गुरुकुल सघीजी की नसिया, जयपुर

२ श्री जैन दर्शन विद्यालय, चाकसू का चौक, जयपुर

३ श्री वीतराग विज्ञान पाठशाला, टोडरमल स्मारक भवन, जयपुर

४ श्री धार्मिक शिक्षण शाला, लालभवन, जयपुर

५ श्री धार्मिक शिक्षा केन्द्र, दि० जैन समाज, आदर्शनगर, जयपुर

६. श्री आत्मानन्द जैन धार्मिक पाठशाला, आत्मानन्द जैन-सभा भवन, घी वालो का रास्ता, जयपुर

७ श्री महावीर दि० जैन पाठशाला, कोटा

८ श्री महावीर जैन शिक्षण शाला, भादसोड़ा

९ मुनि श्री हजारीमल स्मृति जैन सिद्धान्त शाला, ब्यावर
१० श्री साधुमार्गी जैन सिद्धान्त शाला, ब्यावर
११ श्री भूधर जैन पोपधशाला, जोधपुर
१२ श्री वर्धमान जैन धार्मिक पाठशाला, जोधपुर
१३ श्री महावीर स्वाध्याय मण्डल, श्यामपुरा
१४ मुनि श्री रामकुमार जैन धार्मिक पाठशाला, श्यामपुरा
१५ महता ज्ञानचन्द जैन सिद्धान्त शिक्षणशाला, ब्यावर
१६ श्री वर्धमान स्थानक वासी जैन पाठशाला, आलनपुर
१७ श्री बाहुबलि जैन पाठशाला, नसीराबाद
१८ श्री शान्ति जैन पाठशाला पाली
१९ श्री जैन विद्यालय सचालन समिति, डूगता
२० श्री गजेन्द्र ज्ञान जैन पाठशाला, धनोप
२१ श्री नाहर धार्मिक जैन पाठशाला, भोजास (नागौर)
२२ श्री पार्श्वनाथ जैन तत्वज्ञान विद्यापीठ, अजमेर
२३ श्री श्रमणोपासक जैन फूलादेवी धार्मिक रात्रि पाठशाला, अजमेर
२४ श्री नानक जैन कन्या पाठशाला, विजयनगर
२५ श्री जैन धार्मिक शिक्षण शिविर, जोधपुर

[ख] छात्रावास

जैन शिक्षण सस्थाओ मे से अनेक के साथ सलग्न छात्रावास भी है। पीछे पृष्ठो मे सस्थाओं के परिचय के साथ इनका उल्लेख भी यथा-स्थल कर दिया गया है। इनके अतिरिक्त स्वतन्त्र रूप से भी अनेक छात्रावास हैं। इनसे सम्बन्धित विवरण नीचे दिया जा रहा है।

१. **श्री आनन्द यश जैन छात्रावास, फूलिया कला**—इसकी स्थापना २२-८-६८ को महासती श्री यशकवरजी म सा की प्रेरणा से श्री आनन्द कवरजी मा सा. की पावन स्मृति मे हुई। श्री नेमीचन्दजी बडोला यहा के गृहपति हैं।

२. **आदर्श निकेतन छात्रावास, राणावास**—श्री सुमति शिक्षा सदन से सलग्न इस छात्रावास मे ३५० विद्यार्थियो के रहने की सुन्दर व्यवस्था है।

३ **श्री उपाध्याय प्यारचन्द जैन छात्रावास, ब्यावर**—इस सस्था की स्थापना स्व उपाध्याय श्री प्यारचन्दजी मा सा की स्मृति मे सन् १९६९ मे हुई।

४. **श्री कुथुसागर दिगम्बर जैन छात्रावास डूगरपुर**—मुनि श्री कुथुसागरजी की प्रेरणा से इसकी स्थापना हुई थी। इसके सचालक श्री सूरजमल ढीढू हैं।

५. **श्री कृष्णाबाई मुमुक्षु महिलाश्रम, श्री महावीरजी**—इसकी सस्थापक तथा सचालिका ब्रह्मचारिणी कृष्णा बाई हैं। इसमे लगभग १०० छात्राओ के रहने की सुन्दर व्यवस्था है।

६ **श्री गणेश जैन छात्रावास, उदयपुर**—इसकी स्थापना आचार्य श्री गणेशीलालजी म. सा की पुण्य स्मृति मे अगस्त १९६४ मे हुई इसका सचालन श्री अखिल भारतीय साधुमार्गी जैन सघ, बीकानेर द्वारा होता है।

७ श्री गोदावत जैन गुरुकुल छात्रावास, छोटी सादडी—गोदावत जैन गुरुकुल का परिचय शिक्षा सस्थाओ मे दिया चुका है। सलग्न छात्रावास मे लगभग ६० विद्यार्थियो के रहने की समुचित व्यवस्था है।

८ श्री जयमल्ल जैन छात्रावास, मेडता शहर—इसकी स्थापना आचार्य श्री जयमल्लजी म सा की पावन स्मृति मे जुलाई १९६१ मे हुई। इसका सचालन एक ट्रस्टीमण्डल द्वारा होता है जिसके अध्यक्ष पद्म श्री मोहनमल जी चोरडिया है।

९ श्री जवाहर विद्यापीठ छात्रावास, कानोड—सस्था का परिचय पिछले पृष्ठो मे दिया जा चुका है। सलग्न छात्रावास मे लगभग २५० विद्यार्थियो के रहने की समुचित व्यवस्था है। इसके साथ ही यहा छात्राओ के लिये एक अलग छात्रावास भी चलता है।

१० श्री जैन बोर्डिंग छात्रावास, कुचेरा—इस छात्रावास की स्थापना १५ जुलाई १९४२ को स्वर्गीय सेठ श्री ताराचन्द जी गेलडा द्वारा स्थानीय समाज के कर्मठ व प्रतिष्ठित सज्जनो के सहयोग से हुई। छात्रावास का नवनिर्मित सुन्दर भवन है तथा सलग्न पुस्तकालय भी है।

११. श्री जैन रत्न विद्यालय छात्रावास, भोपालगढ—विद्यालय का परिचय सस्थाओ के साथ दिया जा चुका है। सलग्न छात्रावास मे लगभग ७५ छात्रो को रहने की सुन्दर व्यवस्था है।

१२ श्री जैन सिद्धात शिक्षण सस्थान, जयपुर—आचार्य श्री हस्तीमलजी मा सा की प्रेरणा व श्री नथमलजी हीरावत के प्रयत्नो से सन् १९७३ मे श्री सम्यक् ज्ञान प्रचारक मडल के अन्तर्गत इसकी स्थापना हुई। इस सस्थान का मुख्य उद्देश्य सस्कारशील उच्चकोटि के जैन विद्वान तैयार करना है। सस्थान मे प्रविष्ट छात्रो के आवास व भोजन आदि की नि शुल्क व्यवस्था है। वतमान मे श्री कन्हैयालाल लोढा इसके अधिष्ठाता है।

१३ श्री दि० जैन आदर्श महिला विद्यालय छात्रावास, श्री महावीरजी—इस छात्रावास की स्थापना कुचामन निवासिनी ब्रह्मचारिणी विदुषी कमलाबाई ने की थी। इस समय छात्रावास मे लगभग १५० छात्राए अध्ययनार्थ निवास करती है।

१४ प० चैन सुखदास छात्रावास, जयपुर—यह छात्रावास श्री दि० जैन सस्कृत कॉलेज से सलग्न है। सस्कृत कॉलेज मे अध्ययन रत छात्रो के लिए यहाँ निवास की व्यवस्था है।

१५. श्री नानक जैन छात्रालय, गुलाबपुरा—इसकी स्थापना श्री नानकरामजी म सा की स्मृति मे सन् १९३८ मे श्री पन्नालालजी म सा के सदुपदेश से हुई। छात्रालय का अपना विशाल भवन है। श्री रतनलाल जैन यहा गृहपति हैं।

१६. श्री पारसमल मिलापचन्द जैन छात्रावास जोधपुर—इसकी स्थापना श्री मिलापचन्दजी बोहरा मडिया निवासी ने की। इसकी स्थापना से विश्वविद्यालय स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियो के रहने की अच्छी व्यवस्था हो सकी है।

१७ श्री पार्श्वनाथ विद्यालय छात्रावास, वरकाणा (पाली)—यह छात्रावास श्री पार्श्वनाथ उच्च माध्यमिक विद्यालय से सलग्न है। यहा रहने की अच्छी व्यवस्था है।

१८ श्री पार्श्वनाथ उम्मेद जैन शिक्षण सघ, फालना द्वारा सचालित छात्रावास—इस सघ के तत्वावधान मे महाविद्यालय छात्रावास तथा जैन छात्रावास सचालित होते है। इनमे पार्श्वनाथ उम्मेद, महाविद्यालय तथा माध्यमिक विद्यालय मे अध्ययन रत छात्रो के निवास की सुविधा है।

१९ श्री पार्श्वनाथ जैन छात्रालय, मालवाडा—इसकी स्थापना मार्च १९४६ मे सेठ श्री उमाजी ओखाजी के सुपुत्र श्री मगनलालजी, श्री मूलचन्दजी एव श्री चिमनलालजी ने की थी। इस छात्रावास मे ११० विद्यार्थियो के निवास की सुन्दर व्यवस्था है।

२०. श्री पार्श्वनाथ दि० जैन छात्रावास, धानमण्डी उदयपुर—इसकी स्थापना ब्रह्मचारी श्री चादमलजी द्वारा हुई। छात्रावास मे २० छात्रो के रहने की व्यवस्था है।

२१ श्री भ यशकीर्ति दि० जैन बोर्डिंग प्रतापगढ—इसकी स्थापना भट्टारक श्री यशकीर्तिजी महाराज की प्रेरणा एव प्रयत्नो से सन् १९४४ मे हुई। सस्था के भवन मे १०० विद्यार्थियो के रहने की समुचित व्यवस्था है।

२२ श्री भ यशकीर्ति दि० जैन धर्मार्थ ट्रस्ट गुरुकुल, ऋषभदेव (उदयपुर)—इस सस्था की स्थापना १९६८ मे हुई थी। यहा १०० छात्रो के पढने-लिखने तथा रहने की उत्तम व्यवस्था है।

२३ श्री मरुधर केसरी उच्च माध्य विद्यालय छात्रावास, राणावास—उच्चतर माध्यमिक विद्यालय से सलग्न छात्रावास मे ३५० छात्रो के रहने की व्यवस्था है। छात्रावास का सचालन श्री फूलचन्दजी कटारिया करते है।

२४ श्री मरुधर बालिका विद्यापीठ छात्रावास, रानी (पाली)—छात्रावास की स्थापना भी सस्था के साथ-साथ ही १५ अगस्त १९५७ को हुई। छात्रावास मे साधारण शुल्क पर छात्राओ के रहने तथा खाने-पीने की सुन्दर व्यवस्था है।

२५ श्री महावीर जैन छात्रावास सीकर—जैन एजूकेशन ट्रस्ट के अधीन इस छात्रावास की भगवान महावीर के २५००वे निर्वाण-महोत्सव के क्रम मे स्थापना हुई है। इससे यहा की शिक्षा सस्थाओ मे अध्ययनरत छात्रो को रहने की सुविधा हो गई है।

२६ श्री लोकाशाह जैन गुरुकुल, सादडी (मारवाड)—इसकी स्थापना फरवरी, १९४४ मे मरुधर केसरी श्री मिश्रीमलजी म०, स्वामीजी श्री भारमलजी म० सा०, श्री त्रिलोकचदजी म० सा० व प० रत्न मुनि श्री कन्हैयालालजी 'कमल' के सदुपदेशो से हुई। इसी सस्था के प्रागण मे सन् १९५२ मे स्थानकवासी समाज का बृहत्साधु सम्मेलन हुआ था। सस्था मे छात्रो की आवास व भोजन व्यवस्था के साथ-साथ उनके धार्मिक व व्यावहारिक शिक्षण की विशेष व्यवस्था है। सस्था का अपना स्वतन्त्र पुस्तकालय, वाचनालय औषधालय, बालोद्यान आदि भी है। वर्तमान मे ६४ छात्र यहा रहकर अध्ययन कर रहे है। इसका सचालन कार्यकारिणी द्वारा होता है। वर्तमान मे इसके अध्यक्ष श्री नथमलजी बलदोठा, उपाध्यक्ष श्री हस्तीमलजी मेहता व मत्री श्री जीवतराजजी पुनमिया है। गुरुकुल का वार्षिक व्यय लगभग साठ हजार रुपया है।

२७ श्री विजय जैन छात्रालय, ब्यावर—स्व० सेठ श्री विजयराजजी मूथा के प्रयत्नो से इस छात्रालय की स्थापना जनवरी १९५६ मे हुई। छात्रावास मे २० छात्रो के खाने-पीने तथा रहने की सुन्दर व्यवस्था है।

२८ श्री जैन छात्रावास, सिरोही—यह शाति नगर मे स्थित है। इसकी स्थापना सन् १९५१ मे हुई। इसमे ५० छात्रो के रहने के लिए पर्याप्त सुविधा है। वर्तमान मे २३ छात्र रहते है।

२९ श्री सेठिया जैन छात्रावास, बीकानेर—श्री अगरचन्द भैरोदान सेठिया जैन पारमार्थिक सस्था के अधीन यह छात्रावास सन् १९४६ से चल रहा है। यहाँ प्रविष्ट छात्रो के आवास एव भोजन आदि की नि शुल्क व्यवस्था है।

३० श्री आत्मानन्द जैन छात्रावास, सादडी (मारवाड)—मूर्तिपूजक सम्प्रदाय द्वारा सचालित इस छात्रावास मे लगभग ३५ छात्रो के निवास की सुविधा है।

अन्य छात्रावास

३१ श्री शान्ति वीर जैन गुरुकुल छात्रावास, जोबनेर
३२ श्री जैन गुरुकुल छात्रावास, ब्यावर
३३ मुनि श्री बुधमल जैन छात्रावास, भरतपुर
३४ श्री शान्ति वीर नगर गुरुकुल छात्रावास, श्री महावीर जी
३५ श्री जिनदत्त सूरिमडल छात्रावास, अजमेर
३६ श्री सूरज बाई दि० जैन छात्रावास, कोटा
३७ श्री शाति जैन छात्रालय, पाली
३८ श्री जैन विद्या मन्दिर छात्रावास, कालन्द्री (सिरोही)
३९ श्री जैन छात्रावास जावाल (सिरोही)
४० श्री जय चौथ जैन छात्रावास, जवाजा
४१ श्री जयमल्ल जैन छात्रावास, नागौर
४२ श्री गौतम जैन गुरुकुल, सोजतसिटी
४३ श्री मरुधर केसरी जैन छात्रालय, जैतारण
४४ श्री व स्था० जैन बख्तावर पारमार्थिक छात्रावास, किशनगढ

[ग] पुस्तकालय एव वाचनालय

पुस्तके ज्ञान-राशि का सचित कोष है। अत पुस्तकालय स्थापित करना एक पवित्र कार्य है। पुस्तकालय अच्छे समाज के निर्माण मे कितने सहायक हो सकते है, यह कोई अप्रकट सत्य नही। धर्मों का मूल इसी सत्य मे निहित है कि पृथ्वी मनुष्य के निवास के लिए सर्वोत्तम स्थान बन सके। यही जैन-दृष्टि भी है। अत जैनियो मे पठन-पाठन का धार्मिक कृत्य के रूप मे भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। जैन-समाज का लगभग ९० प्रतिशत वर्ग शिक्षित है।

जैन-मन्दिर, स्थानक, उपाश्रय आदि धार्मिक स्थानो पर प्रारम्भ मे ही ग्रन्थ भण्डार होने की परम्परा रही है। ये ग्रन्थ भण्डार एक प्रकार से पुस्तकालय ही है। छोटे से छोटे गाँव मे भी यदि जैन मन्दिर या स्थानक है तो उसके साथ ही वहाँ ग्रन्थ भण्डार अवश्य है। प्रस्तुत पृष्ठो मे हमारा ध्येय इन भण्डारो का परिचय देना नही है। जैन-सस्थाओ तथा जैन-धर्मावलम्बियो ने इनके अतिरिक्त अनेक सार्वजनिक पुस्तकालय एव वाचनालय भी स्थापित किए है जो राष्ट्र की शैक्षणिक जागरूकता

की वृद्धि मे महत्त्वपूर्ण योगदान कर रहे है। राजस्थान प्रदेश मे भी ऐसे अनेक सार्वपुस्तकालय एव वाचनालय है। इन पृष्ठो मे उनका सक्षिप्त परिचय देने का प्रयास किया जा रहा है।

१ श्री जैन सावला पुस्तकालय, ब्यावर—इस पुस्तकालय की स्थापना सेठ श्री जीवराजजी तथा श्री फूलचन्दजी सावला द्वारा सन् १९४५ मे हुई। पुस्तकालय का निजी भवन है। पुस्तकालय मे लगभग १०२५० पुस्तके है।

२ श्री महावीर जैन पुस्तकालय, कोटा—इस पुस्तकालय की स्थापना सन् १९१८ मे हुई। इसका सचालन स्थानीय जैन-समाज करता है। इस समय इसमे ३०५९ पुस्तके सग्रहीत है जो विषयवार वर्गीकृत है।

३ श्री भवरलाल दूगड आयुर्वेद विश्वभारती पुस्तकालय, सरदार शहर—आयुर्वेद विश्वभारती के अन्तर्गत सचालित इस पुस्तकालय की स्थापना १९५६ मे हुई। इसमे लगभग ४ हजार ग्रन्थ हैं। आयुर्वेद एव पाश्चात्य विज्ञान से सम्बन्धित ग्रन्थ सग्रह पुस्तकालय की निजी विशेषता है। सस्था का निजी भवन हे।

४ श्री जैन श्वेताम्बर मित्र मण्डल पुस्तकालय, जयपुर—इस पुस्तकालय की स्थापना श्री रतनचन्द जी कोचर द्वारा १९२७ मे हुई। यह घी वालो के रास्ते मे स्थित है। इसमे वर्तमान मे ३५०० पुस्तके तथा लगभग २५० हस्तलिखित ग्रन्थो का सग्रह है। श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ सघ इसका सचालन करता है।

५ श्री महावीर पुस्तकालय, जयपुर—इस पुस्तकालय की स्थापना १९३६ मे हुई। पुस्तकालय किशनपोल बाजार स्थित महावीर पार्क मे है। वर्तमान मे यहा ६००० पुस्तको का सग्रह है। १५ पत्र-पत्रिकाए आती हैं। श्री प्रसन्नकुमार सेठी यहा पुस्तकालयाध्यक्ष है।

६ श्री जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ सघ पुस्तकालय, जयपुर—यह पुस्तकालय मोतीसिंह भोमियो के रास्ते मे शिवजीराम भवन के सामने उपाश्रय मे स्थित है। इसका सचालन खरतरगच्छ सघ करता है, जिसकी परामर्शदात्री समिति के अध्यक्ष श्री राजरूप टाक और मन्त्री श्री गुमानमल मालू हैं। सग्रहालय मे ५००० पुस्तकें हैं जिनमे १४०० हस्तलिखित ग्रन्थ है। श्री ज्ञानचन्द जैन (रावका) अवैतनिक पुस्तकालयाध्यक्ष के रूप मे कार्यरत हैं।

७ आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार, जयपुर—इस भण्डार की स्थापना आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज सा की प्रेरणा एव स्व श्री सोहनमल जी कोठारी के प्रयास से स० २०१६ तदनुसार सन् १९५९ मे हुई। यह चौडा रास्ता स्थित लालभवन मे चल रहा है। अब तक इस भण्डार मे लगभग तीस हजार ग्रन्थ और १५० गुटके (जिनमे अनुमानत पाच हजार फुटकर रचनाए लिपि बद्ध है) हस्तलिखित ग्रन्थो के रूप मे सग्रहीत हो चुके हैं। प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ-सग्रह के साथ-साथ शोधकार्य को वैज्ञानिक एव तुलनात्मक दृष्टिकोण से आगे बढाने के लिए यहा स्तरीय एव बहुमूल्य मुद्रित पुस्तको तथा शोध सम्बन्धी पत्र-पत्रिकाओ को भी सग्रहीत किया गया है। वर्तमान मे श्री श्रीचन्दजी गोलेछा इसके अध्यक्ष व डॉ० नरेन्द्र भानावत मानद निदेशक हैं। श्री मोतीलालजी गाधी पुस्तकालयाध्यक्ष के रूप मे अपनी सेवाए दे रहे है।

८ श्री सन्मति पुस्तकालय, जयपुर— इस पुस्तकालय की स्थापना मा० मोतीलालजी सघी द्वारा १९२० मे हुई। पुस्तकालय का नवीन भव्य भवन अर्जुनलाल सेठी नगर मे बना है। पुस्तकालय के सस्थापक मास्टर मोतीलाल जी एक महान् पुस्तकालय-अनुदाता तथा पुस्तकालय-कार्यकर्ता थे। वर्तमान मे लगभग ४० हजार पुस्तके इस पुस्तकालय मे है।

९ श्री जैन साहित्य शोध-विभाग पुस्तकालय, महावीर भवन, चौडा रास्ता, जयपुर— विलुप्त साहित्य की खोज, प्रकाशन एव शोध के लक्ष्य को ध्यान मे रखकर श्री दि जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी की प्रबन्धकारिणी समिति द्वारा सन् १९४७ मे इसकी स्थापना की गई। इसके प्रेरक स्व० प० चैनसुखदासजी थे। यहा के पुस्तकालय में हस्तलिखित तथा प्रकाशित दोनो ही प्रकार के ग्रन्थो का अच्छा सग्रह है। यहा के प्रकाशन विभाग से अब तक १७ ग्रन्थो का प्रकाशन हो चुका है। अनेक शोधार्थी यहा के पुस्तकालय से लाभ उठा चुके है। डॉ० कस्तूरचन्द जी कासलीवाल के योग्य निर्देशन में यहा का शोध विभाग जैन-साहित्य की महान् सेवा कर रहा है।

१० श्री सरस्वती भवन, श्री दि. जैन मन्दिर ठोलियान, जयपुर—घी वालो के रास्ते में स्थित इस जन पुस्तकालय में लगभग ९०० हस्तलिखित ग्रन्थ तथा ७०० मुद्रित ग्रन्थ हैं। श्री नरेन्द्र मोहन डडिया इसकी देख-रेख करते है।

११ श्री सरस्वती भण्डार, दि जैन मन्दिर गोधान, जयपुर—चौकडी घाट दरवाजा, नागौरियो के चौक में अवस्थित इस पुस्तकालय में लगभग २१०० मुद्रित तथा ७०० हस्तलिखित पुस्तकें है। श्री राजमल सघी समिति के सयोजक हैं।

१२ श्री जैन शास्त्र भन्डार सग्रहालय, जैसलमेर—इस सग्रहालय मे अनेक प्राचीन व दुर्लभ हस्तलिखित जैन ग्रन्थ उपलब्ध हैं। जैन-शोध की दृष्टि से इन ग्रन्थो का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

१३ श्री महावीर पुस्तकालय, महनसर—इसकी स्थापना सन् १९३३ मे हुई। वर्तमान में इसमें ४८८३ पुस्तकें सग्रहीत हैं। पुस्तकालय पर प्रतिवर्ष लगभग २ हजार रुपये व्यय होता है।

१४ श्री ओसवाल पुस्तकालय लाडनू ओसवाल सभा द्वारा १९१९ मे इस पुस्तकालय की स्थापना हुई। पुस्तकालय का निजी भवन है। वर्तमान मे इसमे ९४५० पुस्तकें सग्रहीत है। वार्षिक व्यय लगभग ११ हजार रुपये है पाठको की प्रतिदिन औसत सख्या १५० है। श्री मोहनलाल चोरडिया यहा पुस्तकालयाध्यक्ष हैं।

१५ श्री जैन सार्वजनिक पुस्तकालय, भादरा—इसकी स्थापना सन् १९४७ मे हुई। वर्तमान मे यहा ४३७४ पुस्तकें सग्रहीत है तथा ४० पत्र-पत्रिकाए आती हैं। राज्य सरकार से सहायता प्राप्त है।

१६ श्री जैन दिवाकर पुस्तकालय, ब्यावर—मेवाडी गेट पर सस्था का नवनिर्मित निजी भवन है। लगभग २००० पुस्तको का सग्रह है, जिनमे हस्तलिखित शास्त्रादि भी हैं।

१७ श्री जैन दिवाकर शोधपीठ पुस्तकालय, कोटा—यह पुस्तकालय जैन दिवाकर स्मृति भवन मे स्थित है। इसकी स्थापना श्री अजित मुनि की प्रेरणा से हुई। वर्तमान मे लगभग एक हजार हस्तलिखित ग्रन्थो का सग्रह है। इसी भवन मे अलग से एक पुस्तकालय भी है, जिसमे लगभग ५०० पुस्तको का सग्रह है।

१८. आचार्य श्री चूत्रचन्दजी पुस्तकालय, निम्बाहेडा—इस पुस्तकालय की स्थापना आचार्य श्री की स्मृति मे हुई है। अभी लगभग ५०० पुस्तको का सग्रह है।

१९ श्री जिनदत्त सूरि मण्डल पुस्तकालय, अजमेर—सन् १९५२ मे स्थापित जिनदत्त सूरि मण्डल द्वारा सचालित यह एक समृद्ध पुस्तकालय है जिसमे लगभग ७००० उपयोगी ग्रन्थों का सग्रह ह। पुन्तकालय का निजी विशाल भवन है। मण्डल की स्थापना श्री मागीलाल जी पारख द्वारा की गई। वर्तमान अध्यक्ष श्री अमरचन्द जी लूणिया तथा मन्त्री श्री चादमल जी सीपाणी हैं।

२० श्री जैन श्वेताम्बर तेरापथी सभा पुस्तकालय, मोमासर—सभा का प्रादुर्भाव १९५१ मे हुआ था। सभा का निजी भवन है, उसी मे सभा द्वारा स्थापित पुस्तकालय भी है। सभा के अन्तगत महिला विकास मण्डल व किशोर मण्डल आदि सस्थाओ के भी निजी पुस्तकालय व वाचनालय हैं।

२१ श्री सेठिया जैन ग्रन्थालय, बीकानेर—श्री अगरचन्द भैरोदान सेठिया जैन पारमार्थिक सस्था द्वारा सचालित सेठिया जैन ग्रन्थालय, बीकानेर के प्रमुख पुस्तकालयो मे उल्लेखनीय है। इसमें हिन्दी, उर्दू, मराठी, बगला, अग्रेजी, गुजराती, फ्रेन्च, जमन, रूसी आदि भाषाओ की १७००० पुस्तकें हैं। इनके अतिरिक्त सैकडो ऐसे ग्रन्थ हैं जिनकी एक से अधिक प्रतिया है। ग्रन्थालय मे १५०० हस्तलिखित ग्रन्थ एव ७०० पत्र-पत्रिकाओ की अलभ्य फाइलें है। ग्रन्थालय की सदस्यता नि शुल्क है। वाचनालय उपविभाग में दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक एव त्रैमासिक कुल चालीस पत्र-पत्रिकाए आती हैं।

२२ श्री अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर—श्री अभयराज जी नाहटा की स्मृति में नाहटा परिवार द्वारा उक्त साहित्यिक, सास्कृतिक व लोकोपयोगी प्रवृतियाँ खरतरगच्छीय आचार्य जिनकृपाचन्द सूरि जी महाराज के परामर्श से सवत् १९८४ के लगभग प्रारम्भ की गई। हस्तलिखित ग्रन्थो के सग्रह में श्री कृपाचन्द सूरि जी के यतिशिष्य तिलकचन्द जी की प्रेरणा बहुत मूल्यवान रही। पिछले लगभग ४८ वर्षों में ग्रन्थालय हस्तलिखित एव प्रकाशित ग्रन्थो का इतना बडा भण्डार बन गया है कि आज ग्रन्थालय के लिए विशेष रूप से निर्मित तीनतल्ला भवन में ग्रन्थ रखने को जगह नही रही है। १०० से भी अधिक आलमारिया ग्रथो से भरी हुई है और लगभग एक लाख ग्रन्थो का महत्वपूर्ण सग्रह यहा उपलब्ध है। अनेक विद्वान तथा अनुसन्धानकर्ता इस महत्वपूर्ण ग्रन्थालय से लाभान्वित होते रहते है। प्रसिद्ध गवेषक श्री अगरचन्द नाहटा इसके सचालक हैं।

२३. श्री जैन दिवाकर चतुर्थ पु लय, उदयपुर—यह पुस्तकालय महावीर भवन, मदनगोल, बडा बाजार मे स्थापित है। विविध विषयो की तथा धर्म सम्बन्धी पुस्तको का विशाल सग्रह है।

२४ श्री शान्ति जैन पुस्तकालय, जयपुर—सन् १९२४ मे स्थापित यह पुस्तकालय आज नगर के प्रमुख पुस्तकालयो मे है। पुस्तकालय मे लगभग ६५०० ग्रन्थ हैं। इसके अतिरिक्त वाचनालय मे अनेक मासिक, साप्ताहिक व दैनिक पत्र आते हैं। पुस्तकालय का सचालन श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन समाज करता है। यह चौडा रास्ता स्थित लालभवन मे है।

२५. श्री जैन रत्न पुस्तकालय, जोधपुर—श्री जैन रत्न हितैपी श्रावक सघ द्वारा सचालित यह पुस्तकालय श्वेताम्बर जैन स्थानक सवाईसिंह जी की पोल मे स्थित है। इसमे ७००० पुस्तको का सग्रह है। इसकी एक शाखा घोडो के चौक मे है।

२६ श्री सुबोध जैन पुस्तकालय, जोधपुर—यह पुस्तकालय कपडा बाजार, जोधपुर मे स्थित है। इसका सचालन तथा व्यवस्था श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक सघ द्वारा होती है।

२७ श्री महावीर जैन पुस्तकालय, जोधपुर—इसकी स्थापना ग्रभी दिसम्बर १९७४ मे नेहरू पार्क, सरदारपुरा के जैन स्थानक मे हुई है। इसकी स्थापना श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक सघ द्वारा की गई है।

२८ श्री दिगम्बर जैन पार्श्वनाथ वाचनालय, जयपुर—इसकी स्थापना श्री गप्पूलाल जैन ने की। इसमे लगभग पाच सौ धार्मिक तथा ग्रन्य पुस्तकें हैं। यह गोखले मार्ग सी-स्कीम मे स्थित है।

२९ श्री शान्तिनाथ दिगम्बर जैन वाचनालय, जयपुर—यह वाचनालय सेठ बनजीलाल ठोलिया चेरिटी ट्रस्ट के ग्रन्तगत चलता है। यहा पर मासिक, पाक्षिक, साप्ताहिक, एवम् दैनिक पत्र पत्रिकाए ग्राती है। लगभग ६० पाठक प्रतिदिन इस वाचनालय से लाभ उठाते है। इसकी प्रबन्ध व्यवस्था श्री ताराचन्दजी ठोलिया के द्वारा होती है।

३० सम्यक् ज्ञान मोक्षमार्ग वाचनालय, जयपुर—इसके निर्माण मे श्री ग्रमरचन्द नाहर का विशेष योग है। यह सोथली वालो के रास्ते मे स्थित है।

ग्रन्य पुस्तकालय एवं वाचनालय

१ श्री महावीर पुस्तकालय, केकडी
२ श्री महावीर पुस्तकालय, रघुनाथ चौक, कोटा
३ श्री जैन पुस्तकालय एव वाचनालय, बलजी राठौड की गली, ग्रलवर
४ श्री महावीर भवन पुस्तकालय, ग्रलवर
५ श्री जैन सावजनिक पुस्तकालय, हरसाना
६. श्री ज्ञानभण्डार, देलवाडा मन्दिर, ग्राबू
७ श्री जय विजय ज्ञान भण्डार, सिरोही
८ श्री पकुबाई ज्ञान भण्डार, शिव गज, (सिरोही)
९ श्री ग्रन्थ भण्डार, श्री प्रेम सूरीश्वर जी उपाश्रय, पिण्डवाडा
१०. श्री जैन पुस्तकालय, कालन्द्री, (सिरोही)
११ श्री जैन पुस्तकालय, किशनगढ
१२ श्री प्राज्ञ जैन वाचनालय, विजयनगर
१३ श्री महावीर पुस्तकालय, राताकोट
१४ श्री देवमुनि जैन सार्व० पुस्तकालय, भोईवाडा, उदयपुर
१५ श्री स्थानकवासी जैन पुस्तकालय, डग, (झालावाड)
१६ श्री वर्ध० जैन पुस्तकालय, सिंहपोल, जोधपुर

१७. श्री नानक जैन वाचनालय, पाण्डुकला, (नागौर)
१८. श्री स्था० जैन पुस्तकालय, वडी सादडी
१९ श्री सरदार जैन पुस्तकालय, कानोड
२० श्री वर्धमान जैन पुस्तकालय, कुश्तला, (सवाईमाधोपुर)
२१ श्री श्वेताम्वर पोरवाल जैन पुस्तकालय एव वाचनालय, सवाईमाधोपुर
२२ श्री श्वेताम्बर जैन पुस्तकालय, चौथ का वरवाडा
२३ आचार्य पूज्य श्री दौलतराम पुस्तकालय सवाईमाधोपुर
२४ श्री दि० जैन पन्नालाल एलक पुस्तकालय, सवाईमाधोपुर
२५ श्री वर्द्धमान स्थानक जैन वाचनालय, आलनपुर (सवाईमाधोपुर)
२६ श्री भवर पुस्तकालय, वीदासर
२७ श्री दीपचन्द वोथरा सार्वजनिक वाचनालय, बीदासर
२८. श्री महावीर जैन वाचनालय, खुशालपुर
२९ श्री रघुनाथ जैन पुस्तकालय, सोजत सिटी
३० श्री शान्ति जैन पुस्तकालय, भीलवाडा
३१ श्री वर्धमान स्थानक जैन पुस्तकालय, अजमेर
३२ श्री वर्धमान स्थानक जैन वाचनालय, वदनोर
३३ श्री महावीर जैन पुस्तकालय, वीकानेर
३४ श्री जैन पुस्तकालय एव वाचनालय, सादडी, (मारवाड)
३५ सेठ श्रीचन्दजी गधैया पुस्तकालय, सरदारशहर
३६ श्री जैन श्वेताम्वर तेरापथी पुस्तकालय, मोमासर, (चूरू)
३७. श्री जैन किशोर मडल पुस्तकालय, मोमासर, (चूरू)
३८ श्री वर्धमान जैन पुस्तकालय, वाडमेर
३९ श्री गुलाव पुस्तकालय, जयपुर
४० श्री आत्मानन्द जैन सभा पुस्तकालय एव वाचनालय, जयपुर
४१ श्री सरस्वती पुस्तकालय, चौकडी मोदीखाना, जयपुर
४२ श्री पार्श्वनाथ जैन लायब्रेरी, जयपुर
४३ श्री जैन प्राज्ञ पुस्तक भडार, भिनाय, (अजमेर)
४४ श्री सुराना जैन लायब्रेरी, चूरू
४५ श्री शाति पुस्तकालय, राजलदेसर
४६ श्री जैन पुस्तकालय, सुजानगढ
४७ श्री गोविन्द पुस्तकालय, बीकानेर
४८ श्री किशनचन्द पुस्तकालय, बीकानेर
४९. श्री सुराना जैन पुस्तकालय, बीकानेर
५० श्री पार्श्वनाथ जैन पुस्तकालय, सूरतगढ
५१ श्री जैन पुस्तकालय, डूगरगढ
५२ श्री व स्था० जैन वख्तावर पारमार्थिक पुस्तकालय, किशनगढ़

(घ) चिकित्सालय एवं औषधालय

धनी जैन-श्रावको तथा जैन लोकोपकारी सस्थाओ द्वारा प्रदेश मे विभिन्न स्थानो पर शताधिक ऐलोपैथिक, आयुर्वेदिक तथा होम्योपैथिक चिकित्सालय व औषधालय खोले गए है। वस्तुतः जैन धर्म मे लोकोपकार को, दीन-दुखियो की सेवा को जो महत्त्व प्राप्त है, वह भावना इन सस्थाओ के द्वारा साकार होती दिखाई देती है। हमको जिन चिकित्सा सस्थाओ का परिचय प्राप्त हो सका है, वह यहा दिया जा रहा है। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक चिकित्सा-सस्थान रह गये हैं, जिनकी जानकारी के अभाव मे उल्लेख नही किया जा सका है।

१ **सन्तोकबा दुर्लभजी मेमोरियल अस्पताल, जयपुर**—पद्म श्री खेलशकर दुर्लभजी ने अपनी मातुश्री एव पिता श्री की स्मृति मे सन् १९५८ मे सन्तोकबा दुर्लभजी ट्रस्ट की स्थापना की और इसके अन्तर्गत क्रमशः सन् १९६३ मे डाईग्नोस्टिक क्लिनिक, सन् १९६६ मे प्रसव केन्द्र तथा सन् १९७१ मे अस्पताल की स्थापना की। यह अपने ढग का समस्त राजस्थान मे एक ही चिकित्सा केन्द्र है। इसका सु दर भवन, साज-सज्जा, सफाई व व्यवस्था प्रत्येक चिकित्सालय के लिए अनुकरणीय है। अस्पताल मे सर्जीकल, मेडीकल, ग्यानोकोलोजी, न्यूरो सर्जरी, पोलियो, आँख, कान एव गला निदान केन्द्र तथा पैथोलोजी आदि विभाग हैं। एक्स-रे की सुविधा उपलब्ध है।

२ **श्री अमर जैन मेडीकल रिलीफ सोसायटी, जयपुर**—मुनि श्री अमरचन्दजी महाराज की स्मृति मे इस सोसायटी की स्थापना २४ फरवरी १९६१ को हुई। स्व० श्री स्वरूपचन्दजी चोरडिया एव स्व० श्री सागरमलजी डागा का इस सस्था को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। सोसायटी ने अपने १३-१४ वर्ष के कार्यकाल मे उल्लेखनीय प्रगति की है। इस समय सोसायटी के तत्त्वावधान मे चिकित्सालय, महिला विभाग चिकित्सालय, एक्स-रे क्लिनिक, परीक्षण प्रयोगशाला, टीका केन्द्र, तथा परिवार नियोजन सलाह सुविधा केन्द्र कार्यरत हैं। सोसायटी ने श्री स्वरूपचन्द चोरडिया प्रसूति गृह की भी स्थापना की है जो पूर्णतया आधुनिक सुविधा सम्पन्न है।

३ **श्री ओसवाल औषधालय, अजमेर**—इसकी स्थापना स० १९७४ मे सेठ दीवान बहादुर श्री उम्मेदमलजी लोढा के द्वारा हुई। तब से अब तक यह औषधालय बराबर जनता की नि शुल्क सेवा करता आ रहा है। सन् १९५६ मे इसके अन्तर्गत एक सर्जरी विभाग भी खोला गया। इसका सालाना खर्च करीब १५ हजार रुपया है। प्रतिदिन करीब ३००-४०० रोगियो की नि.शुल्क सेवा की जाती है। इसकी व्यवस्था एक प्रबन्ध समिति द्वारा होती है जिसके अध्यक्ष श्री सम्पतमलजी लोढ़ा व मन्त्री श्री लालचदजी चौपडा हैं।

४ **श्री दिगम्बर जैन औषधालय, जयपुर**—यह औषधालय जयपुर नगर का सर्वाधिक प्राचीन आयुर्वेदिक औषधालय है जो चौकडी मोदीखाना के लालजी साड के रास्ते मे स्थित है। इसकी स्थापना विक्रम सवत् १९७२ मे हुई। गत ६० वर्षों से यह औषधालय शुद्ध आयुर्वेदिक पद्धति से जनता की बिना किसी जातीय भेदभाव के नि शुल्क चिकित्सा कर रहा है और अब तक इससे लाखो रोगियो ने आरोग्य लाभ लिया है। यह सस्था धन्वन्तरि औषधालय से भी प्राचीन है तथा अपनी नि स्वार्थ सेवा के कारण लोकप्रिय बनी हुई है। वर्तमान मे श्री प्रकाशचन्द कासलीवाल इसके अध्यक्ष व श्री अनूपचन्द न्यायतीर्थ मन्त्री हैं।

५ श्री सेठिया जैन होम्योपैथिक औषधालय, बीकानेर—श्री अगरचद भैरोदान सेठिया जैन पारमार्थिक सस्था द्वारा सचालित यह औषधालय बीकानेर नगर की प्रमुख चिकित्सा-सस्था है। यह औषधालय सन् १९४९ से जनता की सेवा कर रहा है। यहा नि शुल्क चिकित्सा की व्यवस्था है। असहाय एव निर्धन रोगियो को पथ्य, भोजन सामग्री एव दूध हेतु नकद राशि देने का भी प्रावधान है।

गत वर्ष ६०,००० (साठ हजार) से अधिक रोगियो को इसका लाभ मिला है। बीकानेर नगर, जिला एव निकटवर्ती गावो के रोगी ही नही, राजस्थान के अन्य भागो, दिल्ली, आसाम, हरियाणा, बगाल आदि प्रान्तो से भी रोगी अपनी चिकित्सा हेतु यहा आते है। अनेक व्यक्तियो ने पत्राचार द्वारा विदेशो से हमारे चिकित्सा अधिकारी (डॉ० हेमचन्द्र भट्टाचार्य) से परामर्श भी किया है।

इस औषधालय मे सैकडो ऐसे रोगियो की चिकित्सा की गई है जो अन्य पद्धतियो द्वारा की गई असाध्य रोगो की चिकित्सा से निराश हो चुके थे। अनेक रोगियो को इस चिकित्सा द्वारा शल्य-चिकित्सा के कष्टो से बचाया गया है।

औषधालय के चिकित्सा अधिकारी की विशिष्ट निदान-शैली, मधुर व्यवहार एव दीर्घकालीन अनुभव के कारण दिन-ब-दिन अधिक रोगी पजीयत हो रहे है।

६ एस० जोरास्टर एण्ड कम्पनी पॉली क्लिनिक, जयपुर—कम्पनी के सस्थापक सेठ राजमलजी गोलेछा व सोहनमलजी गोलेछा की स्मृति मे यह क्लिनिक प्रारम्भ की गई। यहा पर अनुभवी चिकित्सको द्वारा नाम मात्र के शुल्क पर रोगी को परामर्श व निदान सुलभ कराया जाता है।

७ पक्षी चिकित्सा गृह, जौहरी बाजार जयपुर—प्रारम्भ मे कबूतर खाने के रूप मे स्थापित यह चिकित्सालय आज पक्षियो की चिकित्सा की दृष्टि से आधुनिकतम सुविधाओ से युक्त है। इसमे बीमार बन्दरो, कबूतरो, तोता, चील कोए आदि का ऐलोपैथिक तरीके से इलाज होता है। इसका सचालन व० स्थानकवासी जैन श्रावक सघ जयपुर द्वारा होता है।

८ श्री दिगम्बर जैन धर्मार्थ औषधालय, जयपुर—यह आयुर्वेदिक औषधालय खजाचियो की नसिया ट्रस्ट के अन्तर्गत चलता है। इसमे बिना किसी साम्प्रदायिक भेद भाव के रोगियो की नि शुल्क सेवा की जाती है।

९ श्री शान्तिसागर दिग० जैन औषधालय, जयपुर—इसकी स्थापना सेठ बनजीलाल ठोलिया के परिवार द्वारा आचार्य श्री शान्ति सागरजी म० की प्रेरणा से स० १९८९ मे की गई। यहा रोगियो को नि शुल्क औषधिया प्रदान की जाती है।

१० श्री धर्मार्थ औषधालय, जयपुर—इसकी स्थापना श्री पूजा प्रचारक समिति, जयपुर की ओर से सन् १९६३ मे की गई। अब तक हजारो रोगियो ने इससे नि.शुल्क लाभ उठाया है। यहा होम्योपैथिक एव आयुर्वेद पद्धति से चिकित्सा सुविधा उपलब्ध है।

११ श्री दिग० जैन औषधालय, रामपुरा, कोटा—यह लगभग ७० वर्ष पुरानी सस्था है। यहा बिना किसी भेदभाव के प्रतिदिन ४००-५०० रोगी लाभ उठाते हैं। रोगियो को औषधिया भी

यथासम्भव नि शुल्क दी जाती हैं। औषधालय की अपनी फार्मेसी है, जहा सभी प्रकार की औषधिया तैयार की जाती हैं। यह राजस्थान सरकार से मान्यता प्राप्त रजिस्टर्ड सस्था है।

१२. श्री देशभूषण जैन औषधालय, चौडा रास्ता, जयपुर—इस औषधालय की स्थापना १९६४ मे हुई। यहा पर रोगियो की नि शुल्क चिकित्सा की जाती है। औषधियो का निर्माण भी औषधालय के अन्तर्गत ही किया जाता है। निकट भविष्य मे औषधालय के अन्तर्गत अन्तरग चिकित्सालय (Indoor Hospital) बनाने की योजना है।

१३ श्री दीपचन्द राजमल जैन जनाना अस्पताल, सादडी (मारवाड)—लगभग दो लाख रुपयो की लागत से इसका निर्माण कर यह राज्य सरकार को सौप दिया गया है।

१४ श्री रूपचन्द ताराचन्द जैन पुरुष अस्पताल, सादडी (मारवाड)—यह भी लगभग दो लाख रुपयो की लागत से निर्मित कराकर राज्य सरकार को सौंप दिया गया है।

१५ श्री परमार्थ जैन औषधालय, नसीराबाद—यह नगर के मध्य मे स्थित है। गत ८५ वर्षों से यह जनता की सेवा करता आ रहा है। प्रति वर्ष हजारो रोगी इससे लाभ उठाते हैं।

अन्य औषधालय

१६ श्री महावीर जैन आयुर्वेदिक औषधालय, जोधपुर
१७ श्री रामनाथ मेहता होम्योपैथिक औषधालय, जोधपुर
१८ श्री नवरत्न भाडावत आयुर्वेदिक औषधालय, जोधपुर
१९ श्रीमती उमरावकुवर मोदी होम्योपैथिक औषधालय, जोधपुर
२० श्री थानचन्द मेहता आई बैंक, जोधपुर
२१. श्री होम्योपैथिक औषधालय, जोधपुर
२२ श्री आखो का अस्पताल, जोधपुर
२३ श्री जैन आयुर्वेदिक औषधालय, टोक
२४ श्री जैन आयुर्वेदिक औषधालय, कोटा
२५ श्री जैन आयुर्वेदिक औषधालय, भरतपुर
२६ श्री मानव सेवा औषधालय, भरतपुर
२७ श्री जैन आयुर्वेदिक औषधालय, अलवर
२८ श्री जैन आयुर्वेदिक औषधालय, पालासनी
२९ श्री चक्षु चिकित्सा सेवा समिति, जोधपुर
३० श्री थानचन्द मेहता रोगी सेवा बैंक, जोधपुर
३१ श्री भवरी देवी शेखानी मातृ सेवा सदन, बीदासर
३२ श्री टाटिया पशु चिकित्सालय, बीदासर
३३ श्री दि० जैन औषधालय, अजमेर
३४ श्री दि० जैन औषधालय, किशनगढ
३५ श्री जैन आयुर्वेदिक औषधालय, बीकानेर

(ङ) विविध संस्थाएं

विभिन्न स्थानो पर सचालित अनेक लोकोपकारी, धार्मिक, सास्कृतिक, सामाजिक व औद्योगिक प्रवृतियां वहां के समाज तथा दानी महानुभावो द्वारा सस्थापित सघ, सभा तथा समितियो के माध्यम से सचालित हो रही है। ऐसी सस्थाएँ अधिकाशत बहुउद्देशीय है तथा कुछेक विशिष्ट उद्देश्यो को लेकर कार्यरत है। इन पृष्ठो मे हमने ऐसी प्रमुख सस्थाओ का परिचय प्राप्य सामग्री के आधार पर व्यवस्थित करने का प्रयत्न किया है। परिचय के अभाव मे बहुत सी सस्थाओ का नामोल्लेख भर किया जा सका है। फिर भी यह सभव है कि कई सस्थाएँ इस परिचय-क्रम मे आने से रह गई हो।

(१) प्रमुख बहुउद्देशीय सस्थाएं

१ श्री सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर—स्व० आचार्य श्री रतनचन्द्रजी म० सा० की स्वर्गवास शताब्दी (स० २००२) के पुनीत अवसर पर आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा० की प्रेरणा से सस्थापित यह मण्डल विगत तीस वर्षों से ज्ञान और साधना के प्रचार-प्रसार की अनेक प्रवृत्तियाँ चला रहा है। प्रारम्भ मे इसका कार्यालय जोधपुर मे था पर बाद मे यह जयपुर स्थानान्तरित कर दिया गया। मण्डल के विकास मे अध्यक्ष के रूप मे न्यायमूर्ति स्व० इन्द्रनाथजी मोदी की सेवाएँ विशेष उल्लेखनीय रही है। मत्री के रूप मे स्व० श्री सिरहमलजी बम्ब की सेवाएँ सदैव स्मरण की जाती रहेगी। मण्डल को सुदृढ और सक्रिय बनाने मे मत्री के रूप मे श्री नथमलजी हीरावत का उल्लेखनीय योगदान रहा है। वर्तमान मे न्यायमूर्ति श्री सोहननाथजी मोदी इसके अध्यक्ष, श्री उमरावमलजी ढड्ढा एव श्री सिरहमलजी नवलखा उपाध्यक्ष, श्री चन्द्रराजजी सिंघवी मत्री और श्री पूनमचन्दजी बडेर कोषाध्यक्ष है। मण्डल की मुख्य प्रवृतियां निम्न है—

१ आध्यात्मिक विचार एवं आचार के प्रचार व प्रसार हेतु मासिक 'जिनवाणी' पत्रिका का विगत ३२ वर्षों से प्रकाशन। इसके स्वाध्याय, सामायिक, तप, श्रावक धर्म, साधना और ध्यान विशेषाक सर्व प्रशसित और विशेष उपयोगी रहे हैं। सम्पादक हैं डॉ० नरेन्द्र भानावत।

२ समाज मे ज्ञान एव चरित्रवान सुश्रावको, स्वाध्यायियो, योग्य धार्मिक अध्यापको तथा मेधावी प्रचारको को तैयार करने हेतु स्वाध्यायी एव शिक्षक प्रशिक्षण शिविरो का आयोजन करना।

३ समाज मे प्रकाण्ड पण्डितो, विद्वानो एव वक्ताओ को तैयार करने हेतु श्री जैन सिद्धान्त शिक्षण सस्थान का सचालन करना। वर्तमान मे इसमे ५ छात्र अध्ययनरत हैं।

४ गावो एव नगरो मे बालक-बालिकाओ तथा नवयुवको आदि मे धार्मिक सस्कार डालने हेतु स्थानीय धार्मिक शिक्षण शिविरो तथा धार्मिक पाठशालाओ का सचालन करना।

५ सन्त, मुनियो व महासतियांजी के चौमासो से वचित क्षेत्रो मे पर्युषण-पर्व पर शास्त्र व्याख्यान, चौपाई आदि वाचन हेतु योग्य स्वाध्यायियो को भेज कर जैन सस्कृति के रक्षण व प्रचार एव प्रसार मे योगदान देना।

६ समाज के विद्वान, चारित्रवान, समाज सेवियो का प्रति वर्ष गुणी-अभिनन्दन करना।

७ मुनियो व गृहस्थो के बीच का ब्रह्मचारी या साधक वर्ग तैयार करना।

८ भगवान महावीर की २५वी निर्वाण शताब्दी को व्यापक एव रचनात्मक ढग से मनाने हेतु विविध प्रकार के त्याग एव प्रत्याख्यान करवाने हेतु अखिल भारतीय वीर निर्वाण साधना समारोह समिति का गठन ।

९ आगम एव अन्य विविध प्रकार के सद् साहित्य का प्रकाशन करना । अब तक मण्डल की ओर से लगभग ५० ग्र थ प्रकाशित हो चुके हैं ।

मण्डल के अन्तर्गत सचालित विभिन्न सस्थाओ का परिचय इस प्रकार है—

(क) श्री स्था० जैन स्वाध्यायी सघ जोधपुर—इस सघ की स्थापना सवत् २००२ मे आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा० के सदुपदेश से हुई । इसका मुख्य कार्यालय घोडो का चौक, जोधपुर मे है । इसके सयोजक हैं श्री सम्पतराजजी डोसी । विगत वर्षों मे सघ ने सराहनीय प्रगति की है । वर्तमान मे लगभग १५० स्वाध्यायी श्रावक है जो राजस्थान के अतिरिक्त मद्रास, मैसूर, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश, गुजरात आदि प्रान्तो मे अपनी सेवाए दे चुके हैं । सघ के प्रमुख उद्देश्य हैं—

१ श्रावक समाज मे सम्यग्ज्ञान का प्रचार व प्रसार करना जिससे प्रत्येक क्षेत्र मे सत सतियो की अनुपस्थिति मे भी सामायिक, स्वाध्याय, धर्म ध्यान आदि की प्रवृत्ति चालू रह सकें ।

२. पर्वाधिराज पर्युषण के अवसर पर जिन-जिन क्षेत्रो मे सत सतियो के चातुर्मास न हो वहा-वहा स्वाध्यायी श्रावको को भेज कर धर्म आराधना कराना ।

३ स्वाध्यायियो के ज्ञान, दर्शन, तप, त्याग मे वृद्धि हेतु तथा नये-नये स्वाध्यायी धार्मिक अध्यापक तैयार करने हेतु विभिन्न प्रान्तो मे समय-समय पर धार्मिक शिविरो का आयोजन करना ।

४ नगर-नगर व गाव-गाव मे घर-घर के बालक बालिकाओ एव नवयुवको मे धार्मिक सस्कार डालने हेतु धार्मिक पाठशालाएँ चलाना एव स्थानीय धार्मिक शिक्षण शिविर लगाना ।

५. सब के उपयोगी धार्मिक साहित्य का प्रकाशन करना ।

निम्नलिखित स्थानो पर सघ की प्रमुख शाखाएँ हैं—

१ सवाई माधोपुर—इस शाखा के अन्तर्गत सवाई माधोपुर से लगाकर कोटा तक का क्षेत्र है । गत वर्ष तक सदस्यो की सख्या ६५ थी । इस वर्ष के अन्त तक १०१ नये स्वाध्यायी बनने की आशा है ।

२ बैंगलोर—कर्नाटक प्रान्त की इस शाखा की स्थापना गत वर्ष ही हुई । वर्तमान में ११ सदस्य हैं ।

३. मद्रास—इस शाखा की स्थापना भी गत वर्ष हुई । यहा कुल ७ सदस्य हैं ।

४ पाली—इस शाखा की स्थापना भी गत वर्ष हुई । सदस्य सख्या २० है ।

५ डूँगला—इस शाखा की स्थापना इसी वर्ष हुई ।

गत वर्ष रूडेडा, नवाणिया, पारसोली, वोहेडा आदि स्थानो पर स्थानीय शिविर लगाये गये तथा कई नये स्वाध्यायी बनाये गये । मेवाड क्षेत्र मे डूँगला, भादसोडा, आकोला, कपासन, भूपालसागर, खैरोदा, वल्लभनगर, घासा, देलवाडा, डबोक, नाथद्वारा, जासमा, फतहनगर, सनवाड आदि कई स्थानो मे ८२ नय स्वाध्यायी बने ।

उपर्युक्त स्थानो के अलावा अनेक गावो व नगरो जैसे अजमेर, दिल्ली, जलगाव, उटकमड, कोइम्बटूर, पीपाड, रणसीगांव, बिलाडा, जालोर, बालेसर, भोपालगढ, कोसाणा आदि के स्वाध्यायी है।

(ख) अ० भा० वीर निर्वाण साधना समारोह समिति, जोधपुर—भगवान् महावीर के २५००वें निर्वाण वर्ष को साधना और त्यागमय ढग से मनाने हेतु आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा० के सद्उपदेशो से ७–१–७२ को राजस्थान उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति माननीय श्री सोहननाथजी मोदी की अध्यक्षता मे इस समिति का गठन किया गया। समिति ने समाज के समक्ष २५ सूत्रीय कार्यक्रम प्रस्तुत किया जिसमे २५०० मास त्यागी, २५०० शराब त्यागी, २५०० धूम्रपान त्यागी आदि सामाजिक दुर्व्यसनो तथा दहेज प्रथा, रात्रि भोजन, खोटे माप तौल आदि सामाजिक कुरीतियो को मिटाने का सकल्प किया है। इसके साथ ही भगवान् महावीर के सिद्धान्तो को हम अपने दैनिक जीवन मे उतार सकें इस हेतु सामायिक और स्वाध्याय के भी कायक्रम प्रस्तुत किए है। इन सभी सकल्पो मे २५००–२५०० न्यूनतम लक्ष्य रखा है। समिति ने अपने लक्ष्यो के पूर्ति हेतु व्यक्तिगत सम्पर्क पर बल दिया एव देश के विभिन्न भागो जैसे मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, मद्रास, कर्नाटक आदि प्रान्तो मे प्रचारार्थ अपने कार्यकर्ता भेजे। मध्यप्रदेश, गुजरात व राजस्थान के आदिवासी क्षेत्रो मे प्रचार कर उन्हे मासाहार एव मदिरापान आदि छुडवाए। इसी प्रकार मद्रास, कर्नाटक आदि प्रान्तो मे स्वाध्याय और सामायिक की प्रवृतिया बढाने हेतु प्रचार किया। परम श्रद्धेय आचार्य प्रवर के शुभाशीर्वाद, सन्तसतियाजी म० सा० की प्रेरणा एव सामाजिक कार्यकर्ताओ के सद्सहयोग के फलस्वरूप समिति ने अपने अधिकतम लक्ष्यो की पूर्ति कर ली है। इन लक्ष्यो की पूर्ति मे समिति को श्री शान्तिचन्द्रजी भण्डारी, श्री दौलतरूपचन्दजी भण्डारी, श्री सम्पतराजजी डोसी, श्री मदनराजजी सिंघवी, श्री भवरलालजी चौपडा, श्री मोहनराजजी चामड, श्री मोहनलालजी जैन, श्री पूनमचन्दजी बरडिया, अहमदाबाद, श्री मोतीलालजी सुराणा, इन्दौर आदि महानुभावो का विशेष सहयोग रहा। समिति के युवा मत्री श्री ज्ञानेन्द्रजी बाफना एव माणकमलजी भण्डारी की कार्य-व्यवस्था सराहनीय रही।

(ग) श्री महावीर धर्म प्रचार सघ—भगवान् महावीर के २५००वें निर्वाण महोत्सव के शुभ अवसर पर आचार्य प्रवर श्री हस्तीमलजी म० सा० की प्रेरणा से सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के तत्वावधान मे गठित अ० भा० वीर निर्वाण साधना समारोह समिति द्वारा प्रस्तुत २५ सूत्रीय कार्यक्रमो के बढते चरण मे दिनाक २९–११–७४, शुभ मिति कार्तिक सुदि १५ सम्वत् २०३१, सवाई-माधोपुर वर्षावास के समापन दिवस पर इस सघ की स्थापना की गई। इसका केन्द्रीय कार्यालय जयपुर मे व प्रधान कार्यालय जोधपुर मे है।

सघ के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

१ देश के विभिन्न प्रान्तो मे जैन घरो का सर्वेक्षण करना एव वहा के विशिष्ट व्यक्तियो की तालिकाएँ बनाना।

२ उक्त क्षेत्रो मे प्रवृत्तमान धार्मिक एव सामाजिक गतिविधियो की जानकारी एकत्रित करना।

३. सामयिक सघ एव स्वाध्याय सघ की प्रवृतियो को बढावा देने हेतु स्थान स्थान पर ऐसे सघो का गठन करना।

४ धार्मिक शिक्षण हेतु यथा सभव धार्मिक पाठशालाए खोलने का प्रयास करना व स्थानीय धार्मिक शिविरो के आयोजन की प्रेरणा करना ।

५ सामाजिक कुरीतियो एव दुर्व्यसनो के निवारणार्थ प्रयत्न करना ।

६ मुख्य तिथियो पर स्थानीय कत्लखाने बन्द रखवाने एव अगता पालन करने के लिए जीव दया समितियो का गठन करना ।

७ धार्मिक सत् साहित्य, उपकरण आदि उपलब्ध करवाने हेतु व्यवस्था करना ।

८. धर्म स्थानो को सुचारु रूप से व्यवस्थित रखने का प्रबन्ध करना ।

९ स्वधर्मी वात्सल्य सेवा हेतु कार्य करना एव समाज के असमर्थ भाई वहिनो की उचित सहायता का प्रबन्ध करना ।

१०. अन्य ऐसे सभी कार्य करना जो धर्म प्रवृत्तियो को बढाने मे सहायक हो ।

प्रचारको की श्रेणियां :—

१ विशिष्ट प्रचारक : जो व्यक्ति एक साल भर सेवा देंगे वे विशिष्ट प्रचारक कहलायेंगे ।

२ प्रेमी प्रचारक जो व्यक्ति वर्ष मे तीन माह सेवा देंगे तथा प्रतिमाह एक दिन सेवा देंगे वे प्रेमी प्रचारक कहलायेंगे ।

३ सामान्य प्रचारक • जो व्यक्ति एक वर्ष मे लगातार एक माह एव प्रतिमाह एक दिन सेवा देंगे वे सामान्य प्रचारक होगे ।

४ साधारण प्रचारक : जो व्यक्ति एक वर्ष मे एक साथ आठ दिन एव प्रतिमाह एक दिन सेवा देंगे वे साधारण प्रचारक कहलायेंगे ।

नियम :—

१ आजीवन सप्त व्यसनो (मास, मदिरा, शिकार, वेश्यागमन, स्त्रीगमन, जुआ, चोरी) का त्याग ।

२ प्रचारक का जीवन, सरल, सात्विक और आचारनिष्ठ होना ।

सेवाकाल के नियम •—

१ स्थूल हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील तथा परिग्रह का त्याग ।

२ सामायिक, स्वाध्याय, व्रत प्रत्याख्यान से ओतप्रोत दिनचर्या ।

३ धार्मिक क्रिया मे धोती व दुपट्टे का प्रयोग ।

४ प्रतिदिन के कार्यों की डायरी लिखना ।

५ प्रचारक को यात्रा व्यय लेना अनिवार्य होगा ।

६ किसी प्रकार की भेंट स्वीकार नही करेंगे ।

७ किसी प्रकार का धूम्रपान नही करेंगे ।

८ सूर्योदय से पहले चाय नाश्ता नही लेना ।

निम्न का भी यथासम्भव पालन करें —

१ रात्रि भोजन का त्याग ।
२ स्थानक व ज्ञान गोष्ठियो मे दुपट्टे का प्रयोग ।
३ ज्ञानचर्चा करते समय मुहपत्ति या रुमाल का प्रयोग ।

कार्य क्रम के विशेष बिन्दु —

१ प्रत्यक क्षेत्र मे सामायिक व स्वाध्याय का प्रचार करना तथा स्वाध्यायियो एव योग्य कार्यकर्ताओ को तैयार करना ।

२ धार्मिक शिक्षा का उचित प्रबन्ध करने की प्रेरणा देना यथासभव धार्मिक पाठशालाएँ खुलवाना अथवा स्थानीय शिविर लगवाने की प्रेरणा देना । धार्मिक परीक्षाओ के लिए परीक्षार्थियो को तैयार करना ।

३ जहाँ १० या इससे अधिक घर हो वहा पर्यूषण पर्व मे स्वाध्यायियो को बुलाने की प्रेरणा करना ।

४ युवक मण्डल, बाल मण्डल एव महिला मण्डल की स्थापना करना एव उनमे जागृति भरना ।

५ अपाहिज, निर्धन, जरूरतमन्द आदि व्यक्तियो को सहायता दिलवाने के लिए श्रीमन्तो को प्रेरणा देना ।

६ विविध विषयो पर आवश्यकतानुसार भाषण सगोष्ठिया, निबन्ध लेखमालाएँ आदि साहित्यक व सास्कृतिक कार्य-क्रमो का आयोजन करना ।

७ स्थानीय आवश्यकताओ के माफिक कार्य करना ।

२. श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन सघ, बीकानेर—श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन सघ की स्थापना स० २०१६, मिती आसोज शुक्ला २, दिनाक ३० सितम्बर, १९६२ को श्रद्धेय आचार्य श्री गणेशलालजी म० सा० के स्थिरावास स्थान उदयपुर नगर मे हुई । इसका मुख्य कार्यालय बीकानेर मे हैं व राजस्थान तथा देश के अन्य भागो मे इसकी कई शाखाएँ सचालित हैं । सघ का उद्देश्य श्रमण सस्कृति और आचार-विचार मूलक सिद्धातो के धरातल पर स्वस्थ, सम्पन्न समाज का निर्माण करना है । जिसमे व्यक्ति को धार्मिक, नैतिक, शैक्षणिक आदि सभी क्षेत्रो मे समता, समानता और स्वतत्रता प्राप्त हो जिससे व्यक्ति समतामय नैतिक धरातल पर स्वनिर्माण, आध्यात्मिक विकास करते हुए सुदृढ, सुसपन्न, प्रगतिशील, जागरूक राष्ट्र बनाने मे सहकारी बने । अतएव इन सभी दृष्टिकोणो को लक्ष्य मे रखते हुए विचारशील मनीषीवर्ग ने सघ का उद्देश्य—'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की वृद्धि और समाजोन्नति के कार्यों को करना' निर्धारित किया । उद्देश्य को प्रतिफलित करने के लिए सघ ने निम्नलिखित प्रवृत्तियो का प्रावधान अपने विधान मे किया है—

१ जैन साहित्य का निर्माण तथा प्रचार एव प्राचीन साहित्य की खोज करना और इसके प्रकाशन की व्यवस्था करना ।

२ धार्मिक शिक्षा का प्रचार करना ।

३ समाज सेवा तथा पारमार्थिक कार्यों को करना एव दूसरो को प्रोत्साहित करते हुए महयोग देना ।

४ स्वधर्मी सहयोग प्रदान करना ।

५ जैन छात्रो को छात्रवृत्ति प्रदान करना व छात्रावास का निर्माण करना ।

६. जैन धर्म का प्रचार एव सघ की प्रवृत्तियो को बढाने के लिए पत्र का प्रकाशन करना ।

७ जीवदया के कार्यों के लिए प्रयत्न करना ।

८ श्रमण-सस्कृति के रक्षार्थ शुद्ध चारित्र पालने वाले साधुमार्गी श्रमणवर्ग के सुसगठन मे महयोग देना ।

९ उक्त प्रवृत्तियो से सबधित और पूर्ति मे कोई कार्य करना ।

उक्त प्रवृत्तियो के क्रियान्वयन हेतु वर्तमान मे सघ द्वारा निम्नलिखित कार्य हो रहे हैं—

१ सत्साहित्य का प्रकाशन—अब तक लगभग २५ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

२ प्राचीन अनुपलब्ध साहित्य की सुरक्षा व उस पर शोध-कार्य हेतु आचार्य श्री गणेश ज्ञान भण्डार की स्थापना की गई है ।

३ धार्मिक परीक्षा बोर्ड की स्थापना एव सचालन—हजारो परीक्षार्थी बोर्ड की विभिन्न परीक्षाओ मे सम्मिलित होते है ।

४ धार्मिक-नैतिक शिक्षणशालाओ मे सहयोग—कई स्थानो पर सघ की ओर से इन शालाओ का सचालन किया जाता है ।

५ श्री गणेश जैन छात्रावास का सचालन—उदयपुर मे छात्रावास का निजी भवन है जिसमे छात्र रहते है ।

६ अध्ययनशील छात्रो को छात्रवृत्ति ।

७ स्वधर्मी सहयोग—जरूरतमद भाई-बहिनो को आर्थिक सहयोग प्रदान किया जाता है ।

८ धर्मपाल जैन प्रवृत्ति—आचार्य श्री नानालालजी म० सा० की प्रेरणा से मालवा क्षेत्र मे बलाई जाति के भाई-बहिनो को सस्कारशील बनाने मे यह प्रवृत्ति विशेष सक्रिय है ।

९ जीवदया सबधी कार्यों को करना ।

१० 'श्रमणोपासक' पाक्षिक पत्र का नियमित प्रकाशन ।

११ महिला उद्योग मदिर (रतलाम) की स्थापना ।

१२ समता समाज रचना का प्रयत्न ।

वर्तमान मे इसके अध्यक्ष श्री गुमानमलजी चोरडिया व मत्री श्री भवरलालजी कोठारी हैं ।

३ श्री अखिल भारतीय तेरापथ युवक परिषद्, लाडनूं—तेरापथ युवक परिषद् युवको का एक गतिशील सगठन है। सरचना और सगठन के माध्यम से समाज की युवा पीढी को सही कार्य दिशा प्रदान करना इसका लक्ष्य है। तेरापथ धर्म सघ के

सचालक युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी का जीवन्त व्यक्तित्व युवको का प्रेरणा-सबल है। उनके निर्देशन मे चलने वाली प्रत्येक प्रवृत्ति मे अपनी शक्ति को नियोजित करने मे परिषद् का प्रत्येक सदस्य अपना आत्मगौरव मानता है। यही कारण है कि तेरापथ युवक परिषद् के पवित्र उद्देश्यो की पूर्ति मे श्रद्धास्पद आचार्य प्रवर का आशीर्वाद प्राप्त होता रहा है।

परिषद् का मुख्य कार्यालय लाडनू मे है पर देश के विभिन्न भागो मे इसकी शाखाएँ गठित की गई है। युवा भावनाओ का प्रतिनिधित्व करने तथा जीवन के समग्र पक्षो को समग्रता से देखने का दृष्टिकोण देने के लिये परिषद् ने 'युवादृष्टि' मासिक पत्र प्रारम्भ किया है। केन्द्रीय कार्यालय द्वारा देश के विभिन्न अचलो मे फैली हुई अपनी शाखा परिषदो को एक निश्चित और सुनियोजित कार्यक्रम 'पाथेय के माध्यम से प्रतिमाह प्रसारित किया जाता है। सत्सस्कारो के निर्माण तथा सयम सहअस्तित्व और अनुशासन का सक्रिय प्रशिक्षण देने के लिये विभिन्न परिषदो द्वारा अपने-अपने क्षेत्रो मे शिविर आयोजित किये जाते हैं। केन्द्रीय परिषद् द्वारा वर्ष मे एक बार अखिल भारतीय युवक प्रशिक्षण शिविर का आयोजन किया जाता है। जन्म, विवाह और मृत्यु के प्रसग पर जैन सस्कार विधि के प्रसार का उपक्रम परिषद् ने किया। परिषद् ने इसके लिये एक पुस्तिका भी प्रकाशित की है। समाज मे इसका अच्छा स्वागत हुआ है। पच्चीसवी निर्वाण शताब्दी के अवसर पर भगवान् महावीर की वाणी को जन-जन मे प्रसारित करने का व्यापक कार्य-क्रम परिषद् ने अपने हाथ मे लिया है। स्थान-स्थान पर तथा हर गली मोहल्लो मे महावीर वाणी को अकित करने का कार्य परिषद् की विभिन्न शाखाए कर रही है। इसी सदर्भ मे ऐसे पच्चीस सौ युवको को तैयार करने का गुरुतर कार्य परिषद् ने प्रारम्भ किया है जो शादी या विवाह के प्रसग मे किसी प्रकार का लेन-देन का ठहराव नही करेंगे। स्वस्थ समाज की रचना के क्षेत्र मे यह एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। बालको मे धार्मिक ज्ञान और सस्कार निर्माण के लिये देश के अनेक भागो मे ज्ञानशालाओ का व्यवस्थित क्रम चल रहा है। समाज के योग्य युवको को काम दिलाने का उपक्रम नियुक्ति केन्द्र के माध्यम से किया जाता है। योग्य और प्रतिभा सम्पन्न छात्रो को छात्रवृत्ति देने का क्रम प्रारम्भ हुआ है। जन साधारण की सुविधा एव ज्ञान विकास के लिये देश के विभिन्न भागो मे पुस्तकालय एव वाचनालयो का सचालन विभिन्न तेरापथ युवक परिषदो द्वारा किया जाता है। जनता के लिये यह एक उपयोगी कार्यक्रम सिद्ध हुआ है। बुक बैंक द्वारा अध्ययनशील और जरूरतमन्द छात्रो को इस प्रवृत्ति के द्वारा अनेक क्षेत्रो मे पाठ्यपुस्तको की सुविधा प्रदान की जाती है। समाज की उन बहिनो को, जिन्हे आजीविका के लिये काम की आवश्यकता है, परिषद् के सदस्य विविध उपक्रमो के माध्यम से सहायक योजना क्रियान्वित करने के लिये अग्रसर हो रहे हैं। वर्तमान मे इसके अध्यक्ष श्री धरमचन्द चोपडा और मत्री श्री विजयसिह कोठारी है।

४. **श्री जिनदत्तसूरि मण्डल, दादाबाडी, अजमेर**—जैन समाज की आध्यात्मिक एव सामाजिक प्रगति को लक्ष्य मे रखते हुये इसकी स्थापना सन् १९५२ मे समाज के सेवाभावी श्रीमान् मागीलालजी सा० पारख के कर कमलो द्वारा हुई। उस समय से ही यह सस्था बडे उत्साह, लगन एव निष्ठा से सामाजिक, धार्मिक आदि विविध क्षेत्रो मे अत्युत्तम एव व्यवस्थित रूप से सेवा कार्य कर रही है। जिससे समाज के बाल, तरुण एव वृद्धानुभवी जनता को पर्याप्त लाभ हुआ और समाज की प्रगति भी हुई।

वार्षिक मेला—जन जागरण, सामाजिक सम्मेलन एव धार्मिक प्रचार के उद्देश्य से प्रतिवर्ष युगप्रधान दादा सा० जिनदत्तसूरिजी की स्मृति मे आषाढ शुक्ला १०-११ को अखिल भारतीय स्तर पर मेले का आयोजन होता है, जिसमे भारत के भिन्न-भिन्न भागो, नगरो तथा ग्रामो मे सैकडो की सख्या मे श्रद्धालु भक्तजन आकर पूज्यपाद गुरुदेव के श्री चरणो मे श्रद्धान्जलि समर्पित करते हैं।

पुस्तकालय—सस्था के अन्तगत उच्च कोटि की साहित्यिक सामग्री से समृद्ध एक विशाल पुस्तकालय है, जिसमे विभिन्न प्रकार के लगभग ७००० उपयोगी ग्र थ है। विद्वज्जन यहाँ प्रवास कर स्वाध्याय, समालोचना तथा शोध काय सुचारु रूप से करें, एतदथ समुचित व्यवस्था है।

छात्रावास—यहाँ पर बिना शुल्क विशेष के छात्रो को स्थान देने की सुविधा है। प्रति वर्ष अनेक अध्ययनशील छात्र यहा आवास प्राप्त कर लाभान्वित होते हैं।

ऋण-छात्रवृत्ति—समाज के होनहार बालको के लिये प्रतिवर्ष आवश्यकतानुसार ऋण एव छात्रवृत्तिया दी जाती हैं जिसम छात्रो को अध्ययन सबधी आवश्यकता व अभाव की पूर्ति होती है। अब तक कुल ८६,००० रु० की छात्रवृत्तिया योग्य छात्रो को दी जा चुकी हैं। ऋण प्राप्त करने वाले छात्र अध्ययन के पश्चात् ऋण राशि तत्परता पूर्वक लौटा देते है। विद्या के क्षेत्र में भी यह सस्था अच्छी प्रगति कर सकी है। जो ओसवाल कन्याये सस्कृत लेकर अपना अभ्यास आगे बढाती हैं उन्हे छात्रवृत्ति देकर उनका निरन्तर उत्साहवधन किया जाता है। इस योजना की सबसे बडी विशेषता यह है कि बिना किसी स्थाई कोष के १२ वर्ष से निरन्तर सफलतापूर्वक उद्देश्य पूर्ति में तत्पर है। कुछ वर्षों से उदारदानी महानुभावो से प्रति वर्ष लगभग १०,००० रु० की धनराशि एकत्रित कर वितरण कर दी जाती है। ऋण लेन वाले छात्र ऋण राशि के भुगतान के साथ ही अपनी ओर से सस्था को यथाशक्ति धनराशि प्रदान कर सक्रिय सहयोग भी देन है।

निराश्रितो को सहायता—गत चार वर्षों से समाज के अशक्त बन्धुओ और बहनो को जो निराश्रित है अथवा जिनके पास जीवनयापन का कोई साधन नही हैं उन्हे उदार दानी सज्जनो के आर्थिक सहयोग स सक्रिय सहायता देने की व्यवस्था है। इससे कई बधु व बहिनें लाभान्वित हो रही है।

प्रकाशन—किसी भी समाज, जाति एव धर्म को यदि जीवित रहना है तो समाज एव जाति व उस धर्म को मानने वालो में सुसस्कारो का बीजारोपण करने के लिये सुसाहित्य की अत्यत आवश्यकता है। इस दृष्टिकोण को लेकर अब तक इस योजना के अन्तर्गत २२ ग्र थ प्रकाशित हो चुके हैं।

५ राजस्थान जैन सभा जयपुर—राजस्थान जैन सभा दिगम्बर जैन समाज जयपुर का एक मात्र ऐसा प्रतिनिधि सगठन है जो जैन समाज के सभी वर्गों को सगठित कर उसके सर्वांगीण विकास मे सक्रिय प्रयत्नशील है। समाज के साहित्यिक, सास्कृतिक, चारित्रिक एव आर्थिक उन्नति मे कायक्रम हेतु सभा का स्वय का एक सविधान है जो राजस्थान सोसाइटीज एक्ट के अन्तर्गत पजीकृत है।

अपने कार्यकाल मे सभा ने जहा जैन मान्यताओ और जैन समाज के हितो की रक्षा के लिये प्रयत्न किये हैं वहा नवयुवको मे जीवन एव स्फूर्ति उत्पन्न करने की दिशा मे काफी महत्वपूर्ण भूमिका

अदा की है। जनमानस को धम एव कतव्य की ओर आकृष्ट करने की दृष्टि से पर्युषण पर्व, क्षमापन समारोह, महावीर जयन्ती तथा निर्वाणोत्सव आदि प्रमुख पर्वों पर विविध आयोजन सभा की मुख्य गतिविधिया है।

सामाजिक कुरीतियो के उन्मूलन हेतु मभा ने समाज का ध्यान आकृष्ट करते रहने का कार्यक्रम भी लिया हुआ है तथा उस दिशा मे सतत् प्रयत्नशील है। साहित्यिक गतिविधियो मे समय-समय पर छोटे-छोटे ट्रैक्टस् प्रकाशित किये है और महावीर जयन्ती के अवसर पर 'महावीर जयन्ती स्मारिका' का प्रकाशन किया जाता है—यह प्रकाशन अपन आप मे महत्त्वपूर्ण एव उपयोगी सिद्ध हुआ है।

जयपुर के मूक समाज-सेवी मास्टर मोतीलालजी सघी का स्मृति दिवस मनाना भी सभा की एक नियमित गतिविधि बनी हुई है इसका मुख्य उद्देश्य सेवाभावी कार्यकर्ताओ को तैयार करना है।

सभा की गतिविधि केवल समारोहो के आयोजन तक ही सीमित नही रही है। राजस्थान विधान सभा मे प्रस्तुत किये गये नग्न विरोधी बिल को वापिस कराने, राजस्थान सरकार द्वारा अनन्त चतुर्दशी एव सवत्सरी का ऐच्छिक अवकाश स्वीकृत कराने, राजस्थान विधान सभा द्वारा पारित राजस्थान ट्रस्ट एक्ट मे सशोधन कराने तथा जन-गणना मे जैन सम्प्रदायो के सभी वर्गों को जैन लिखवाने आदि क्षेत्रो मे भी इस सभा ने काफी महत्त्वपूण कार्य किया है।

जयपुर मे पधारे आचार्यों, मुनियो, तथा विद्वानो के भाषणो, विचार गोष्ठियो के आयोजन भी सभा कराती रहती है तथा समाज के लोगो को उनके द्वारा विशेप कार्य सम्पन्न कराने, विदेश यात्रा से लौटने अथवा उच्च स्थान प्राप्त करने पर भी उन्हे सम्मान देने की दृष्टि से समय-समय पर अभिनन्दन समारोह के आयोजन भी सभा द्वारा किये जाते है।

सभा मे कार्य समिति के लिये प्रतिवर्ष चुनाव होते हैं। विधानानुसार क्रम से सात सदस्यो का रिटायरमेट होता है और उनके स्थान पर नवीन चुनाव बेलट पद्धति द्वारा कराये जाते है। वर्तमान मे सभा के अध्यक्ष श्री कपूरचन्द पाटनी और मत्री श्री रतनलाल छाबडा है।

६ श्री अगरचन्द भैरोदान सेठिया जैन पारमार्थिक सस्था, बीकानेर—मरुस्थल मे सरस्वती सुरसरि प्रवर्तित करने का भगीरथ प्रयत्न सेठिया बन्धु द्वारा (श्री अगरचन्दजी एव श्री भैरोदानजी) ने सन् १६१३ मे किया। तदनन्तर ज्ञानरश्मिया सम्पूर्ण भारत मे प्रशस्त करने के उद्देश्य से सस्था मे ग्रन्थालय, प्रकाशन विभाग सिद्धान्तशाला आदि खोले गये। गत ६२ वर्षो मे सस्था ने जैनधर्म एवं दर्शन के प्रचार-प्रसार का जो कार्य किया है वह चिर स्मरणीय रहेगा। सस्था भवन मरोठी सेठियो के मोहल्ले मे मुख्य सडक पर स्थित है। सस्थापको ने दूरदर्शी दृष्टिकोण अपनाया और कलकत्ता मे सस्था के मकान खरीद लिए, जिसके किराये और ब्याज से सस्था का कार्य सुचारु रूप से चलता आ रहा है। स्व० श्री जेठमलजी सेठिया की मत्री के रूप मे उल्लेखनीय सेवाए रही हैं। वर्तमान मे श्री जुगराजजी सेठिया सस्था के मत्री है। सम्प्रति सस्था के निम्नलिखित विभाग हैं—

(१) **प्रकाशन विभाग**—वैदिक सस्कृति के प्रचार प्रसार हेतु जिस प्रकार गीता प्रेस, गोरखपुर ने कार्य किया है, उसी स्तर पर सस्था ने जैनधर्म दर्शन के व्यापक प्रचार प्रसार का कार्य किया है। सस्था ने निजी मुद्रणालय क्रय कर बडे पैमाने पर ग्रन्थो का प्रकाशन किया है। अब तक सेठिया जैन ग्रन्थमाला के १४० पुष्प प्रकाशित हुए हैं। सस्था का सदा यही उद्देश्य रहा है कि पुस्तकें लागत मूल्य या उससे भी कम मूल्य पर उपलब्ध की जायें। अब तक विविध ग्रन्थो की हजारो प्रतियो का मूल्य

'सदुपयोग', 'नित्य पठन', 'ज्ञानाराधन', रखकर सस्था ने सस्कार-निर्माण की दिशा मे श्लाघनीय कार्य किया है। सामायिक, प्रतिक्रमण, पच्चीस बोल का थोकडा आदि ग्रन्थ वर्षों से प्रामाणिक माने गये है और इनका बडे पैमाने पर अध्ययन किया जाता रहा है। हिन्दी बालशिक्षा एव जैन सिद्धात बोल सग्रह ग्रन्थो की मुक्तकठ से प्रशसा हुई है। जैन सिद्धात बोल सग्रह (भाग १-८) तो जैन धर्म दर्शन का विश्वकोष है। इसमे बोल-क्रम से जैन ग्रन्थो का निचोड सगृहीत है।

(२) पुस्तक उपहार विभाग—सस्था द्वारा विविध पुस्तकालयो, अध्ययन केन्द्रो, सन्त सतियाजी एव अन्य पाठको को उपहार स्वरूप ग्रन्थ भेजने का प्रावधान है। प्रतिवर्ष करीब ५००) रु० के ग्रन्थ भेंट स्वरूप प्रदान किए जाते है। इनमे मुख्य रूप से सस्था के प्रकाशन होते है।

(३) दीक्षोपकरण एव धर्मोपकरण विभाग—दीक्षार्थी भाई-बहनो के लिए ओघे, पातरे, खादी, पूजणी, कम्बल, डोरी आदि उपकरण सस्था द्वारा प्रदान करने का प्रावधान है। पातरे, डोरी, कपडा आदि सभी सम्प्रदाय के मुनिराज ले सकते है। इसी प्रकार धार्मिक उपकरण भी सस्था मे सगृहीत है। पूजणी, आसन, ओघे आदि विक्रयार्थ भी उपलब्ध किए जाते है।

(४) सेठिया जैन छात्रावास—जैन आवासीय शिक्षण सस्थाओ मे सेठिया जैन छात्रावास का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह सन् १९४६ से चल रहा है। इसमे प्रविष्ट छात्रो के लिए आवास, भोजन, बिजली, पानी आदि की नि शुल्क व्यवस्था सस्था की ओर से है। सस्था को गर्व है कि छात्रावास मे अध्ययन कर सैंकडो छात्र आज लब्ध प्रतिष्ठ चिकित्सक, निदेशक, प्राचार्य, व्याख्याता, अधिवक्ता अभियता, प्रशासक, लेखक, सम्पादक, व्यापारी, शिक्षक आदि के रूप मे समाज एव राष्ट्र की सेवा कर रहे है। छात्रावास मे रहकर उन्होने व्यावहारिक शिक्षा तो ग्रहण की ही, साथ मे धार्मिक अध्ययन से उनमे सस्कार-निर्माण भी हुआ है।

(५) सेठिया जैन ग्रन्थालय—ग्रन्थालय मे हिन्दी, अग्रेजी, फ्रेन्च, जर्मन, अरबी प्राकृत, सस्कृत, राजस्थानी, गुजराती आदि भाषाओ की २०००० पुस्तकें है। विविध विषयो के चुनिन्दा ग्रन्थो का सग्रह कर सस्थापको ने समाज को एक निधि दी है। सैंकडो ग्रन्थो की एकाधिक प्रतिया है और अनेक दुर्लभ ग्रन्थ भी उपलब्ध है। वाचनालय उपविभाग मे त्रैमासिक, मासिक, पाक्षिक, साप्ताहिक एव दैनिक—कुल ३० पत्र-पत्रिकाए आती है।

(६) कन्या पाठशाला—सन् १९२८ से सेठिया जैन कन्या पाठशाला कार्यरत है इसमे प्राथमिक स्तर का अध्ययन कराया जाता है। शैक्षणिक एव व्यावहारिक ज्ञान के साथ छात्राओ को नैतिक व धार्मिक शिक्षा दी जाती है जिससे उनमे धार्मिक सस्कार जाग्रत हो। साथ ही छात्राओ को सिलाई, कसीदा, स्वेटर बुनना आदि भी सिखाया जाता है। सम्प्रति, १४५ छात्राए अध्ययन कर रही है।

(७) सिद्धान्तशाला एव विद्यालय—सन्त-सतिया जी को पढाने के लिए सस्था द्वारा पूर्ण व्यवस्था की गई है। उन्हे व्याकरण (हिन्दी, सस्कृत, प्राकृत) जैनागम, दर्शन आदि विषयो का अध्ययन कराया जाता है। योग्य एव होनहार छात्रो के लिए फीस, पुस्तकें आदि प्रदान करने का भी प्रावधान है। सस्था की ओर से इनके लिए ट्यूशन की व्यवस्था भी की जाती है।

(८) होमियोपैथिक औषधालय—सन् १९५३ से सस्था की ओर मे निशुल्क होमियोपैथिक औषधालय चलता है, जिसमे प्रतिदिन २५० से भी अधिक रोगी अपनी चिकित्सार्थ आते है।

७ श्री ओसवाल सभा, बीदासर—इस सभा की स्थापना वि स० १९८६ मे हुई थी। अपने लम्बे कार्यकाल मे सभा ने महत्व पूर्ण प्रगति की है और आज यह सभा बीदासर कस्बे की सामाजिक

व सास्कृतिक उत्थान करने वाली प्रतिनिधि सस्था है। सस्था के कार्यक्रम 'सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय' की पवित्र भावना पर आधारित है। सस्था का उद्देश्य एक आदर्श समाज की रचना का रहा है, जहाँ सभी व्यक्ति परस्पर प्रेम, सहयोग, एव भ्रातृत्व भावना से रहते हुए उन्नति की ओर कदम बढाते जाए।

पिछले लगभग ४६ वर्षों मे सस्था ने जिन महत्त्वपूर्ण प्रवृत्तियो के सस्थापन एव सचालन मे सहयोग दिया है, वे निम्न प्रकार हे—

(क) सेठ दुलीचन्द सेठिया हा सै स्कूल (ख) श्री गान्धी बालिका उच्चतर विद्यालय (ग) श्री खूबचन्द बाठिया विद्या मन्दिर (घ) श्री भवरी देवी शेखानी मातृ सेवा सदन (ङ) श्री भवर पुस्तकालय (च) श्री ओसवाल स्वास्थ्य परिषद् (छ) बालवाडी (ज) श्री दीपचन्द बोथरा सार्वजनिक वाचनालय (झ) श्री सुख समृद्धि फन्ड का निर्माण।

सभा का अपना सुन्दर भवन है। सभा द्वारा बीदासर कस्बे की सार्वजनिक उन्नति मे लगातार योग रहा है। बीदासर नगरपालिका के निर्माण मे सभा का महत्वपूर्ण योगदान रहा। सभा कस्बे के सुन्दर व आधुनिक सुविधाओ से पूर्ण बनाने का लगातार प्रयत्न करती रही है। सभा की भावी योजनाओ मे पशु चिकित्सालय का निर्माण, गऊशाला की स्थापना, विश्रामालय के लिए भवन-निर्माण, महिला कुटीर उद्योग की स्थापना, टाउनहाल का निर्माण, मानकमर तालाब पर पिकनिक, स्पोट का विकास आदि प्रमुख कार्यक्रम हैं।

८ श्री जैन शिक्षण सघ, कानोड—२४ अक्टूबर, १९४० ई० मे प० 'उदय' जैन द्वारा अपने पिता और अपने नाम से सस्थापित 'प्रतापोदय' स्कूल १९४६ ई मे व्यवस्थित श्री जैन शिक्षण सघ कानोड बना दिया गया और मेवाड गवर्नमेट से रजिस्टर्ड करा दिया गया। वर्तमान मे इसके सचालक प० उदय जैन हैं।

१९४७ ई० मे जैन विद्यालय, जैन कन्या विद्यालय, डूगला, मोरवन, मगलवाड चिकारडा और कुथवास धार्मिक स्कूलो के साथ जैन छात्रालय भी चालू किया गया। १९५२ ई० तक सभी सस्थायें इस सघ द्वारा चलाई जाती थी।

१९५२ अप्रैल से जवाहर विद्यापीठ अलग रजिस्टर्ड सस्था बनादी गई तब से राज्य सरकार से मदद प्राप्त सभी प्रवृत्तिया इसके अन्तर्गत आ गई। श्री जैन शिक्षण सघ इनको आर्थिक योग देता आ रहा है।

वर्तमान मे श्री जवाहर जैन छात्रालय प्रमुखतया चल रहा है। इसमे २३० बच्चे बाहर के रहते है और उन्हे मकान, पानी, भोजन व रोशनी का पूर्ण लाभ दिया जाता है। औपधोपचार की भी व्यवस्था है। धार्मिक, शारीरिक व व्यावहारिक शिक्षण दिया जाता है। राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र एव मध्यप्रदेश के छात्र लाभ उठा रहे हैं। चालू वार्षिक व्यय १½ लाख रुपयो का है गृहपति सहित १० कर्मचारी कार्यरत है।

वर्तमान भवन ७ बीघा जमीन पर फैले हुए हैं। जवाहर जैन छात्रालय, विनोद कुमार सामायिक भवन, जैन कन्या गुरुकुल भवन, अध्यापक वसति गृह पशुशालाएँ आदि करीब ८ लाख के भव्य भवन है। सभी भवनो मे पानी और रोशनी की सस्था की निजी व्यवस्था है।

भ० महावीर के २५००वें निर्वाण वर्ष मे 'वीर-विभूति' प्रकाशित हो चुकी है और 'साम्प्रदायिकता से ऊपर उठो' ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है। प० 'उदय' जैन अभिनदन ग्रन्थ का प्रकाशन भी जैन शिक्षण सघ द्वारा किया गया है।

सभी प्रवृत्तियो को चलाने के लिए सवा लाख का स्थायी फंड भी है जो बैंको मे सुरक्षित है। जैन शिक्षण सघ का चालू व्यय ६०,०००) रु० वार्षिक का है। इसके अन्तर्गत ही स्वायत्त ग्राम्य महाविद्यालय, उच्च माध्यमिक विद्यालय, जवाहर पुस्तकालय एव वाचनालय, प्राथमिक पाठशाला, कन्या विद्यालय, श्री कस्तूर बाई बालचन्द जवाहर बालमन्दिर, महिला उद्योगशाला, रात्रि प्रौढशाला आदि अनेक प्रवृत्तिया सचालित है।

६. पडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर—इस सस्था का मुख्य उद्देश्य आत्मकल्याणकारी, परम-शान्ति-प्रदायक वीतराग-विज्ञान तत्त्व का नई पीढी मे प्रचार व प्रसार करना है। इसकी पूर्ति के लिए सस्था ने तत्त्व प्रचार सम्बन्धी अनेक गतिविधिया प्रारम्भ की, जिन्हे अत्यल्प काल मे ही अप्रत्याशित सफलता प्राप्त हुई है। वर्तमान मे ट्रस्ट द्वारा निम्न गतिविधिया सचालित हैं।

पाठ्यपुस्तक निर्माण विभाग—बालको को सामान्य तत्त्वज्ञान प्राप्ति एव सदाचारयुक्त नैतिक जीवन बिताने की प्रेरणा देने के उद्देश्य से युगानुकूल उपयुक्त धार्मिक पाठ्यपुस्तकें सरल, सुबोध भाषा मे तैयार करने मे यह विभाग कार्यरत है। इसके अन्तर्गत बालबोध पाठमाला भाग १, २, ३, वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग १, २, ३, तथा तत्त्व ज्ञान पाठमाला भाग १, २, पुस्तको का प्रकाशन हो चुका है।

परीक्षा विभाग—उपर्युक्त पुस्तको की पढाई आरम्भ होते ही सुनियोजित ढग से परीक्षा लेने की समुचित व्यवस्था की आवश्यकता प्रतीत हुई। फलस्वरूप 'श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड' की स्थापना हुई। इस परीक्षा बोर्ड से सन् १९६८-६९ मे ५७१ छात्र परीक्षा मे बैठे, जबकि १९७३ ७४ मे यह सख्या बढकर २०,०३५ हो गई। परीक्षा बोर्ड से विभिन्न प्रान्तो की ३०९ शिक्षण-सस्थायें सम्बन्धित हैं—जिनमे २२० तो परीक्षा बोर्ड द्वारा स्थापित नवीन वीतराग विज्ञान पाठशालायें है। गुजराती भाषी परीक्षार्थियो की सुविधा की दृष्टि से इसकी एक शाखा अहमदाबाद मे भी स्थापित की गई है।

शिविर विभाग—१. प्रशिक्षण शिविर—श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड का पाठ्यक्रम चालू हो जाने पर और उत्तर-पुस्तकाओ के अवलोकन करने पर अनुभव हुआ कि अध्ययन शैली मे पर्याप्त सुधार हुए बिना इन पुस्तको को तैयार करने का उद्देश्य सफल नही हो सकेगा। अतएव धार्मिक अध्यापन की सैद्धान्तिक व प्रायोगिक प्रक्रिया मे अध्यापक बन्धुओ को प्रशिक्षित करने हेतु ग्रीष्मावकाश के समय २० दिवसीय प्रशिक्षण शिविर लगाया जाना प्रारम्भ किया गया। तत्सम्बन्धी एक पुस्तक 'वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका' भी प्रकाशित की गई है। अभी तक ऐसे कुल सात शिविर क्रमश जयपुर, विदिशा, जयपुर, आगरा, विदिशा, मलकापुर व छिंदवाडा मे सम्पन्न हो चुके है, जिनमे ९४० अध्यापको ने प्रशिक्षण प्राप्त किया है।

२ शिक्षण शिविर—प्रशिक्षण शिविर की भाति ही बालको एव प्रौढो के लिये भी यथा समय जगह-जगह शिक्षण शिविर लगाये जाते है। इनमे लोकप्रिय प्रवचनकारो के साथ ही ट्रस्ट के

प्रशिक्षण शिविरो मे प्रशिक्षित अध्यापक पढाने जाते है। परिणामस्वरूप जगह-जगह वीतराग-विज्ञान पाठशालाएँ खुलती हैं। अतः परीक्षा बोर्ड की छात्र सख्या बढने मे इनका बहुत बडा योगदान है।

शिक्षा विभाग—इस विभाग की चार शाखायें है—

१ वीतराग विज्ञान पाठशाला विभाग—इस विभाग के अन्तर्गत धार्मिक शिक्षण देने के लिए सारे भारत मे इस समय २२० पाठशालाएँ चलाई जा रही हैं, जिनमे एक घण्टा धर्म की शिक्षा दी जाती है।

२. सरस्वती भवन विभाग—अध्ययन व स्वाध्याय के लिए सर्व प्रकार का साहित्य उपलब्ध हो सके, इस दिशा मे सरस्वती भवन मे अब तक १,८८२ ग्रन्थो का सग्रह किया जा चुका है।

३. वाचनालय विभाग—वाचनालय विभाग मे लौकिक एव पारलौकिक ज्ञान की वृद्धि हेतु धार्मिक, सामाजिक और लौकिक सभी प्रकार की पत्र-पत्रिकाएँ मगाई जाती हैं। वर्तमान मे इनकी सख्या २० हैं।

४ शोधकार्य विभाग—'पण्डित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्त्तृत्व' नामक शोध-प्रबन्ध इस विभाग की प्रथम उपलब्धि है। इस विभाग द्वारा आगे और भी शोधकार्य हाथ मे लिए जाने की अपेक्षा है।

वर्तमान मे डॉ० हुकमचद भारिल्ल इसके सचालक व श्री नेमीचन्द पाटनी इसके मन्त्री है।

१० श्री अखिल भारतीय पल्लीवाल जैन महासभा, जयपुर—सन् १९६२ मे जयपुर के कतिपय नवयुवको ने पल्लीवाल जैन समाज मे सगठनात्मक कार्य की दृष्टि से उक्त सगठन को जन्म दिया। सगठन के विधान मे एक प्रमुख उद्देश्य यह भी था कि जितनी जैन जातिया, उपजातिया हैं, उनको सामाजिक दृष्टि से सगठित किया जाये और जैन समाज की भावनात्मक स्तर पर एकता बढाई जाये। इस दृष्टि से सगठन का मासिक-पत्र "जैन सगम" जयपुर से प्रकाशित किया गया। पत्रिका का सम्पादन श्री महावीर कोटिया ने तथा व्यवस्था का कार्य श्री युगलकिशोर जैन व कुन्दनलाल काश्मीरिया ने बराबर इसी लक्ष्य को ध्यान मे रखकर किया। पत्रिका कुछ परिस्थितियो वश सन् १९६६ मे बन्द कर देनी पडी। सगठन के कार्य मे भी कुछ शिथिलता आई। परन्तु उत्साही कार्य-कर्ताओ के प्रयास से सस्था को पुनर्गठित किया गया। इस समय सस्था के अध्यक्ष डॉ० किशनचन्द तथा महामन्त्री श्री कान्तिकुमार हैं। सस्था का पत्र "पल्लीवाल जैन" नाम से प्रकाशित हो रहा है। सस्था का अपना एक स्थायी कोष है जिसके ब्याज से तथा अन्य स्रोतो से विविध सामाजिक गति-विधियो, जिनमे असहाय विधवाओ को सहायता, निर्धन विद्यार्थियो, विधवाओ को छात्रवृत्तिया देना आदि भी सम्मिलित हैं। सगठन अखिल भारतीय स्तर पर कार्य रत है तथा विभिन्न स्थानो पर इसकी शाखाएँ हैं।

११ श्री वर्धमान श्वेताम्बर स्था० जैन श्रावक सघ, जयपुर—इस सघ की स्थापना सन् १९३० मे हुई थी यह सघ जयपुर श्वे० स्था० समाज की प्रतिनिधि सस्था है। सघ द्वारा निम्न प्रवृत्तियो का सचालन हो रहा है—

आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार, श्री जैन श्वे० स्था० शिक्षा समिति के अन्तर्गत—(क) श्री एस० एस० जैन सुबोध महाविद्यालय, (ख) श्री एस० एस० जैन सुबोध उ० मा० विद्यालय, (ग) श्री एस० एस० जैन सुबोध बालिका विद्यालय, (घ) श्री एस० एस० जैन सुबोध प्राथ० विद्यालय। श्री अमर जैन मेडिकल रिलीफ, सोसायटी, पक्षी चिकित्सालय, धार्मिक व नैतिक शिक्षणालय, श्री शान्ति जैन पुस्तकालय, कबूतर भण्डार।

सघ के वर्तमान अध्यक्ष श्री गणपतलाल जी कोठारी तथा मन्त्री श्री सरदारमल जी चौपडा हैं।

१२ श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ सघ, जयपुर—श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ सघ, जयपुर सामाजिक व सास्कृतिक अभ्युत्थान मे रत एक महत्त्वपूर्ण सस्था है। सस्था विविध ११ प्रवृत्तियो का सचालन व प्रबन्ध करती है जो इस प्रकार है—

श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ मन्दिर, उपाश्रय, आत्मानन्द जैन सभा भवन, धार्मिक पाठशाला, जैन श्वे० मित्र-मण्डल पुस्तकालय, श्री वर्धमान आयम्बिल शाला, श्री आत्मानन्द जैन सेवक मण्डल, श्री सुमति ज्ञान भण्डार, सुमति जिन स्नात्र मण्डल, जैन कला चित्र दीर्घा तथा 'मणिभद्र' वार्षिक-पत्र का प्रकाशन। वर्तमान मे श्री हीरा भाई एम० शाह इसके अध्यक्ष और श्री जवाहरलाल चौरडिया सघ मत्री है।

१३ श्री जैन श्वे० खरतर गच्छ सघ, जयपुर—जयपुर खरतर गच्छ समाज की विविध प्रवृत्तियो का सचालन इस सघ के माध्यम से होता है। समाज के मन्दिर तथा धर्मशालाओ की व्यवस्था के अतिरिक्त सघ द्वारा भी ज्ञान भण्डार (प्राचीन हस्तलिखित ग्र थ भण्डार), ज्ञान प्रसारण भण्डार व पुस्तकालय, धार्मिक शिक्षण केन्द्र आदि प्रवृत्तियो का सचालन भी होता है। वर्तमान मे इसके अध्यक्ष श्री महतावचन्द गोलेछा व मन्त्री श्री सुभागचद नाहटा है।

१४ श्री जैन श्वे० तेरापन्थी सभा, जयपुर—सभा की स्थापना सन् १९३३ मे हुई। तेरापथी समाज की विविध प्रवृत्तियो की व्यवस्था व सचालन सभा करती है। मुख्य प्रवृत्तिया हैं—तेरापन्थी सभा भवन, तेरापन्थी माध्यमिक विद्यालय, श्री तेरापथी महिला मण्डल व कन्या मण्डल, श्री तेरापथ युवक परिषद् श्री गुलाब पुस्तकामय व ज्ञानशाला। सभा के वर्तमान अध्यक्ष श्री श्यामलाल नागौरी तथा मन्त्री श्री राजकुमार बरडिया है।

१५. अ० भा० दिग० जैन परिषद्, जयपुर प्रान्तीय शाखा, (राजस्थान)—यह अखिल भारतीय स्तर की प्राचीनतम सस्था की शाखा है। इसकी स्थापना हुए ५० वर्ष से भी अधिक समय हो गया है। इस परिषद् की राजस्थान प्रदेश शाखा का उद्घाटन १९ जनवरी, १९६८ को जयपुर मे बडे दीवान जी के मन्दिर मे सुप्रसिद्ध विद्वान स्व० प० चैनसुखदास जी न्यायतीर्थ द्वारा सम्पन्न हुआ। राजस्थान मे विभिन्न नगरो मे इसकी २० से अधिक शाखाएँ स्थापित हो चुकी हैं। इसका प्रमुख उद्देश्य जैन समाज मे सामाजिक एव सास्कृतिक जागृति उत्पन्न करना है। इस परिषद् की जयपुर शाखा के अध्यक्ष डॉ० कस्तूरचद कासलीवाल और मन्त्री श्री बाबूलाल सेठी है।

१६ श्री भैरूबाग पार्श्वनाथ जैन तीर्थ, जोधपुर—इसकी स्थापना स० १९४८ मे हुई व श्रीमद् विजयनीति सुरीश्वर जी म० सा० के सान्निध्य मे निर्माण कार्य सम्पन्न हुआ। इसकी प्रतिष्ठा

स० १९९८ मे श्रीमद् विजयलब्धि सूरीश्वर जी म० सा० द्वारा सम्पन्न हुई। यहा दुमजिला मन्दिर है जिसमे भगवान् पार्श्वनाथ की विशाल कलापूर्ण मकराने की मूर्ति प्रतिष्ठित है। मन्दिर के साथ ही ६० कमरो की एक धर्मशाला है। जहा जैन सत सतियो को ठहरने की व्यवस्था के साथ यात्रियो को ठहरने की भी सुविधा है। यहा भोजनशाला, आयबिल शाला, धार्मिक पाठशाला आदि प्रवृत्तिया भी चालू है।

१७. जैन विश्व भारती, लाडनू—तेरापथ द्विशताब्दी के अवसर पर आचार्य श्री तुलसी की प्रेरणा से जैन विश्व भारती की योजना बनी और विचार-विमर्श व विद्वानो के सतपरामर्श से बने सस्था के सविधान को २२ अगस्त १९७० को पजीकृत कराया गया।

जैन विश्व भारती के रूप मे जैन-विद्या के अध्ययन-अध्यापन व शोध की एक अनूठी विश्व-सस्था सस्थापित करने की परिकल्पना है जो लगभग १५० बीघा भूमि पर फैली होगी। सस्था के मुख्य भवनो मे ग्रन्थालय भवन, अतिथि भवन केन्द्रीय हाल, प्रयोगशालायें, साधना भवन, कार्यकर्त्ता प्रवास भवन, छात्रावास ध्यान कुटीर, स्वाध्याय भवन आदि के निर्माण की योजना है। वर्द्धमान ग्र थागार और अतिथि भवन का उद्घाटन तथा गौतम ज्ञान शाला, महिला विद्यापीठ तथा तुलसी अध्यात्म नीडम् आदि भवनो का शिलान्यास मार्च ७५ मे उपराष्ट्रपति श्री बी० डी० जत्ति द्वारा सम्पन्न हुआ। समय-समय पर जैन विद्या से सम्बद्ध सगोष्ठियो का आयोजन इसकी मुख्य प्रवृत्ति है। जैन विश्व भारती का प्रकाशन विभाग कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित कर चुका है। तुलसीप्रज्ञा' त्रैमासिक पत्रिका का भी प्रकाशन होता है। इसके अध्यक्ष श्री खेमचद सेठिया व मत्री श्री सम्पतराय भूतोडिया हैं। इसकी एक शाखा दिल्ली मे भी है।

(२) धार्मिक, सामाजिक जागृति एवं सस्कार निर्माणकारी प्रमुख संस्थाएँ

१. श्री अ रा. स्था. अहिंसा प्रचारक जैन सघ, अहिंसानगर, चित्तौडगढ—श्री सुमेर मुनि जी म० ने राजस्थान व मध्यप्रदेश की बिखरी खटीक जाति मे अहिंसा का प्रचार करने हेतु अपना लक्ष्य निर्धारित कर उन लोगो से सम्पर्क किया। उनको धीरे धीरे उपदेशो से अपनी ओर आकर्षित किया। सयोग से मुनि श्री का सवत् २०१३ का चातुर्मास चित्तौड नगर मे हुआ। उसी वर्ष ९-१० खटीक परिवारो ने सस्कारी बनना स्वीकार किया। धीरे धीरे नीमच, छावनी, प्रतापगढ, नारायणगढ, मनासा, मन्दसोर, छोटी सादडी निम्बाहेडा आदि के खटीक परिवारो ने अपने पुराने धन्धे (मास बकरे आदि का विक्रय) छोड अहिंसा के मार्ग पर चलने की शपथ ली। जब धीरे-धीरे कुछ परिवारो ने सस्कारी बनना स्वीकार किया तो बीच मे १ मई, १९५८ को इन सब परिवारो को नई जाति का रूप देकर वीरवाल जाति नाम से सम्बोधित किया गया। इस सस्कार परिवर्तन का मुख्य उद्देश्य अधर्म-निवारण करके धर्म की स्थापना करना, अज्ञान मिटाकर ज्ञान की वृद्धि करना, दुर्गुण दूर करके गुण बढाना, अनार्य प्रवृत्ति का त्याग कर अहिंसा का पूर्ण पालन करना एव जाति मे फैले हुए गरीबी के कारणो को दूर कर साधारण सम्पन्नता बढे, वैसा प्रयत्न करना रहा। धीरे-धीरे मालवा व मेवाड के उन क्षेत्रो मे मुनि श्री का विहार हुआ, जिन क्षेत्रो मे इस जाति के लोग काफी मात्रा मे थे। आज कुल मिलाकर १००० परिवार अहिंसा का रास्ता अपना कर, वीरवाल बने हैं।

इस प्रवृत्ति को स्थायी रूप से चलाने के लिये चित्तौडगढ से ४ मील दूर ओछडी व सेंती के समीप करीब २० एकड जमीन लेकर अहिंसा नगर की स्थापना की गई है जो इस प्रवृत्ति का मख्य

केन्द्र बिन्दु है। ३ अप्रैल १९६६ महावीर जयन्ती के अवसर पर राजस्थान के मुख्य मत्री मोहनलाल जी सुखाडिया के कर कमलो द्वारा अहिंसा नगर का शिलान्यास हुआ। उस अवसर पर इस प्रवृत्ति को मूर्त रूप देने के लिए सेठ श्री हेमराज जी सा० सिघवी, कुशलपुरा वाले ने १ लाख रुपये दान देने की घोषणा की। वर्तमान मे इस सस्था द्वारा निम्नलिखित प्रवृत्तिया सचालित हो रही हैं—

धार्मिक सम्मेलन व शिविर आयोजन—वीरवाल जाति के सामाजिक व आर्थिक पहलुओ पर विचार विमर्श व समाधान हेतु वर्ष मे एक से अधिक सम्मेलन आयोजित किये जाते हैं। इन सम्मेलनो मे साधु-सन्त व समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति व कार्यकर्ता आदि सम्मिलित होते हैं। वर्ष मे एक बार पर्युषण पर्व के अवसर पर ८ दिन का वार्षिक शिविर आयोजित किया जाता है। जिसमे वीरवाल परिवारो को धार्मिक अध्ययन कराया जाता है। इन शिविरो मे वीरवाल भाई-बहन सामायिक, उपवास आदि करते हैं। इन परिवारो मे बहुत से भाई-बहन ५-८ ही नही १-१ माह के उपवास तक करते हैं। ये रात्रि भोजन नही करते, व जैन धर्म के प्रमुख नियमो की पूरी-पूरी पालना करते हैं।

छात्रावास—अहिंसा नगर मे एक छात्रावास सन् १९६८ से चलाया जा रहा है जिसमे वीरवाल विद्यार्थियो को भोजन, निवास, दूध तथा रोशनी आदि की निशुल्क सुविधा प्रदान की जाती है। इस वर्ष चार अहिंसक आदिवासी छात्रो को भी भरती किया गया है। गरीब छात्रो को पाठ्य पुस्तके कपडे आदि भी दिलवाये जाते हैं। इस वर्ष छात्रावास के परीक्षा परिणाम शत-प्रतिशत रहे। छात्रावास मे स्कूली शिक्षा के अतिरिक्त धार्मिक शिक्षा भी दी जाती है।

छात्रवृत्ति—छात्रावास के अतिरिक्त अन्य वीरवाल छात्रो को सघ के माध्यम से छात्रवृत्ति दी जाती है तथा जरूरतमद छात्रो को रोजगार भी उपलब्ध करवाया जाता है।

रात्रि-शालाएँ—सघ की ओर से कूरज और वल्लभनगर मे रात्रि शालायें भी चलाई जाती हैं। जिनमे धार्मिक और व्यावहारिक शिक्षा दी जाती है। इस समय लगभग १०० छात्र-छात्रायें इन रात्रि शालाओ का लाभ उठा रहे है। भ० महावीर के २५००वें निर्वाण वर्ष के दौरान २५ रात्रि-शालाएँ चलाने का निर्णय किया गया है।

वर्तमान मे सघ के अध्यक्ष श्री हेमराज जी सिघवी और मन्त्री श्री नाथूलाल जी चडालिया हैं।

२. अ भा जैन सामायिक सघ एव अहिंसा प्रचार समिति, जयपुर—सघ अनेक शाखाओ के माध्यम से लोगो को सात्विक जीवन जीने की प्रेरणा देता है। स० २०१९ से सघ के प्रति वर्ष विभिन्न स्थानो पर सम्मेलन आयोजित होते रहे हैं। सघ के सयोजक श्री चुन्नीलालजी ललवाणी हैं। सघ के सदस्यो को निम्न प्रतिज्ञाओ मे आवद्ध रहना होता है—

१ ताश आदि पर पैसे रखकर जुआ नही खेलना।
२. मास, मछली और अण्डे आदि का उपयोग नही करना।
३ देशी-विदेशी शराब, भग, अफीम की आदत नही रखना।
४ वैश्या गमन नही करना।

५ पर स्त्री का त्याग करना।

६ बिना दी हुई पराई चीज छिपाकर नही लेना (यह चोरी है)।

७ बिना अपराधी किसी जीव पर आक्रमण नही करना।

८ व्यापारीवर्ग द्वारा माप-तोल खोटे नही करना एव सर्विस वालो द्वारा भ्रष्टाचार नही करना।

९ माल मे गलत तरीके से नफा नही कमाना तथा मिलावट नही करना।

सामायिक सघ की महिला सदस्यो की प्रतिज्ञाएँ

१ रेशमी, चर्बी आदि के हिंसक वस्त्र नही पहनना।

२ घर मे या पडौस मे कोई बीमार हो तो उसकी सभाल किये बिना नही सोना।

३. बच्चो को क्रोध मे बेसुध हो नही पीटना।

४ रात को असमय मे किसी के घर रोने को नही जाना एव पल्ले नही लेना।

५ किसी पर कलक नही देना, एव झगडा नही करना।

६ चोरी नही करना एव बगैर पूछे किसी की वस्तु नही उठाना।

७ मादक एव नशीले पदार्थ नही लेना, आत्महत्या नही करना।

८ स्वपति सन्तोप एव शील का पालन करना।

९ गन्दे गीत नही गाना और भद्दे चित्रपट (सिनेमा) आदि नही देखना।

३ श्री श्वे स्था. जैन स्वाध्यायी सघ. गुलाबपुरा—श्रावको को सयम, ज्ञान, दर्शन और चारित्र के प्रति जागरूक बनाने उन्हे जैनागम का बोध कराने तथा साधु-साध्वी जी म० के चातुर्मास से वचित क्षेत्रो मे पर्युषण मे स्वाध्यायी श्रावको को नि शुल्क भेजकर धर्म ध्यान की साधना-आराधना करने-कराने के उद्देश्य से श्रद्धेय स्व० श्री पन्नालाल जी म० सा० के सदुपदेश से २५ वर्ष पूर्व इसकी स्थापना हुई थी। विगत १०-११ वर्षों से इस सघ के तत्वावधान मे स्वाध्यायी श्रावको को तैयार करने के लिये छात्रो एव अध्यापको का पाक्षिक ग्रीष्मकालीन धार्मिक शिक्षण शिविर भी आयोजित किया जाता रहा है। इस सघ द्वारा देश के विभिन्न प्रातो मे काफी बड़ी सख्या मे स्वाध्यायी श्रावक भेज कर सत सतियो के चातुर्मास से वचित क्षेत्रो मे पर्युषण काल मे धर्म साधना का सराहनीय कार्य गत २५ वर्षों से होता आ रहा है। सघ के मत्री श्री मिलापचद जामड है। सघ को प्रवर्तक श्री छोटमल जी म० सा०, श्री कुन्दनमल जी म० सा० एव श्री सोहनलाल जी म० सा० का विशेष आशीर्वाद प्राप्त होता रहा है।

४ सस्कार-निर्माण समिति, सरदारशहर—अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य श्री तुलसी गत २० वर्षों से भी अधिक समय से दलित वर्ग के लोगो मे सस्कार निर्माण और मानवीय एकता का कार्यक्रम अपनाये हुए हैं दलित वर्ग के हजारो लोग आचार्य श्री के सपर्क मे आये और उनके साधु-साध्वियो एव श्रावक-श्राविकाओ ने दलित वर्ग की बस्तियो मे जाकर सम्पर्क साधा। आचार्य श्री ने जहा अपने अनुयायिओ को उपदेशो, व्रतो और गीतिकाओ के द्वारा जातिगत छूआछूत की भावना का

परित्याग करने की प्रेरणा दी वहा दलित वर्ग के लोगो को हीनभावना का परित्याग करने की प्रेरणा दी।

अणुव्रत ग्राम वरदासर मे अखिल भारतीय अणुव्रत अधिवेशन का निर्णय आचार्य श्री का अस्पृश्यता निवारण की दिशा मे एक महत्त्वपूर्ण और प्रभावी कदम था। इस अधिवेशन मे छुआछूत की दीवार पर एक जबर्दस्त प्रहार किया और दलित वर्ग के लोगो मे एक नई चेतना का सचार किया।

८ अप्रैल, १९७३ को पडिहारा मे आचार्य श्री के सान्निध्य मे दलित वर्ग के कार्यकर्ताओ का एक सम्मेलन हुआ है। तीन गोष्ठियो मे गम्भीर चिंतन के बाद सस्कार निर्माण समिति का गठन हुआ। १५ व्यक्तियो की एक अस्थायी कार्य समिति बनी जिसके अध्यक्ष डॉ० गोविन्दराम गोयल और मन्त्री श्री मोहनलाल जैन थे।

समिति के मुख्य कार्यक्रम हैं--(१) शराब और मास का परित्याग, (२) मोसर (मृत्यु भोज) बन्द, (३) आचार-व्यवहार शुद्धि, (४) ज्ञानालयो, छात्रावासो एव उपासना कक्षो की स्थापना, (५), अस्पृश्यता निवारण, (६) सस्कार निर्माण शिविर, (७) साहित्य प्रकाशन और प्रचार।

५. श्री वर्धमान अहिंसा एण्ड वेलफेयर सोसायटी बम्बई, शाखा, अजमेर—इसका मुख्य उद्देश्य जगह-जगह हर शहर, कस्बो मे बाल मन्दिर, छात्रावास, स्कूल तथा कालेज खोलने का है जिसमे बिना जाति-पाति व धर्म के भेद से ऐमे छात्र-छात्राओ, अध्यापक-अध्यापिकाओ तथा उसके कर्मचारियो को ही प्रवेश किया जावे जो यह शपथ पत्र भरें कि अण्डे, मास, मछली नही खावेंगे और ऐसा बाल मन्दिर अजमेर लाखन कोटडी मे चालू कर दिया है और उपयुक्त स्थान मिलने पर छात्रावास भी चालू कर दिया जावेगा। इसके अन्तर्गत जैन पुस्तकालय लाखन कोटडी मे रात्रि के समय २½ घण्टे प्रतिदिन समाज की निरन्तर सेवा कर रहा है। इसके मुख्य ट्रस्टी मगलचन्द सखलेचा है।

६ महावीर समाज, जोधपुर—समाज मे व्याप्त जडता, अन्ध विश्वास तथा अन्य कुरीतियो के उन्मूलन का प्रयास करने हेतु इस सस्था की स्थापना हुई है। इसके अध्यक्ष है श्री प्रकाश बाठिया। समाज के प्रमुख लक्ष्य इस प्रकार है—

१ सामाजिक कुरीतियो यथा दहेज प्रथा, शराब, मास अण्डा आदि मादक व तामसिक पदार्थों के विरुद्ध प्रबल आदोलन।

२ सामूहिक विवाहपद्धति का प्रचलन।

३ सामाजिक सुरक्षा हेतु महावीर सेना का गठन।

४ समाज मे व्याप्त बेरोजगारी उन्मूलन हेतु प्रयास।

५ स्वयसेवी रोजगार व वैवाहिक कार्यालय की स्थापना।

६ भावी जीवन का मार्ग दर्शन करना।

इन लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए निम्न प्रवृत्तियो का सचालन किया जाता है।

१ नवयुवको के शारीरिक विकास हेतु व्यायाम शालाओ की स्थापना करना ताकि नवयुवक हर सँकट का सामना करने में अपने को सक्षम समझ सकें।

२ युवावर्ग में पारस्परिक विश्वास सोहार्द व सद्भावना का विकास।

३ असहाय पीडित व निर्धन जन का सहयोग करना ।

४ विभिन्न क्षेत्रो मे अग्रगण्य सज्जनो का स्वागत और युवा जन को उनके कार्यों से प्रेरणा लेने हेतु प्रेरित करना ।

५ उच्चाधिकारियो द्वारा समाज के विकास हेतु सहयोग प्राप्त करना ।

६ वाद-विवाद प्रतियोगिताओ, विचार गोष्ठियो आदि अन्य साहित्यिक धार्मिक व सास्कृतिक कार्यक्रमो का आयोजन ।

७ श्री पारमार्थिक शिक्षण सस्था, लाडनू—इस सस्था की स्थापना तेरापथ के आचार्य श्री तुलसी के सान्निध्य में फाल्गुन शु० २ सवत् २००५ को सरदार शहर मे हुई । प्रारम्भ के २३ वर्षों में यह सस्था एक चलते-फिरते विद्यालय के रूप मे कार्यरत रही । सवत् २०२८ मे लाडनू नगर मे श्री सम्पतराय जी भूनोडिया द्वारा अपने स्व० माता-पिता की स्मृति में भेट किए गए भवन मे सस्था स्थायी रूप से स्थिर होकर कार्यरत है ।

यह सस्था दीक्षार्थियो को अध्यात्म शिक्षा तथा सयम साधना का विधिवत प्रशिक्षण देने वाली एक मात्र सस्था है । सस्था का कार्यक्रम ६ वर्ष का है । इसमे शिक्षार्थी को सस्कृत, प्राकृत, जैन तत्त्व विद्या, दर्शन, न्याय, योग, इतिहास हिन्दी अ ग्रेजी तथा भाषा-साहित्य आदि विषयो की शिक्षा दी जाती है । सस्था अब तक लगभग २५० भाई बहिनो को प्रशिक्षण देकर दीक्षित करने मे सहयोगी रही है ।

८. श्री अहिंसा स्नेही मण्डल, नसीराबाद—नसीराबाद की एक मात्र धार्मिक व सामाजिक सस्था के रूप में अहिंसा स्नेही मण्डल का महत्त्वपूर्ण स्थान है । यह सस्था सन् १९६० से जीव दया की प्रमुख प्रचारक सस्था है । इसका मुख्य उद्देश्य अहिंसा एव स्नेह के द्वारा जन सेवा लोक कल्याण एव शाकाहारिता का प्रचार-प्रसार करना है । गाव-गाव में सभाओ तथा गोष्ठियो द्वारा यह अपने उद्देश्यो का प्रचार करता है । प्रतिवर्ष लगभग ५-६ हजार व्यक्तियो मे यह मण्डल मास-मदिरा खाने-पीने का त्याग कराता आ रहा है ।

९ जैन वीर मण्डल, जयपुर—इसकी स्थापना सन् १९६४ मे हुई । यह एक समाज सेवी सस्था है । नवयुवको मे धर्म के प्रति जागृति हेतु दशलक्षण पर्व मे प्रवचनो, व्याख्यानो आदि का आयोजन मण्डल करता है । वर्तमान मे इसके अध्यक्ष श्री कुवेरचद काला एव मन्त्री श्री प्रकाशचद लुहाडिया हैं ।

११. जैन युवा परिषद्, जयपुर—इसकी स्थापना १४ सितम्बर, १९७३ को हुई । इसके लगभग ३०० सदस्य हैं । इसमे श्वेताम्बर-दिगम्बर सभी आम्नाय के जैन युवक युवतिया कार्यरत हैं । इसका प्रमुख उद्देश्य सामाजिक सगठन, कुरीतियो के विरुद्ध सघर्ष, हिंसा को रोकना, असहाय छात्रो को सहायता प्रदान करना है । अनन्त चतुर्दशी के दिन परिषद् द्वारा मास, मदिरा का विक्रय वन्द करवाया जाता है । इसके अध्यक्ष श्री विमल चौधरी और महामन्त्री श्री सतीश बाकलीवाल हैं ।

११ श्री महावीर जैन श्राविका समिति, जोधपुर—आचार्य प्रवर श्री हस्तीमल जी म सा. की प्रेरणा से स० २०२९ चैत्र सुदि १३ को इसकी स्थापना हुई । इसके मुख्य उद्देश्य हैं—महिलाओ मे अध्यात्मिक चेतना जागृत करना, समाज मे व्याप्त रूढियो एव कुरीतियो को दूर करने का प्रयास

करना तथा महिलाओं को सादा जीवन व उच्च विचार के लिए प्रेरित करना। वर्तमान मे इसकी अध्यक्ष श्रीमती सुशीला बोहरा व मन्त्री श्रीमती रतन चोरडिया हैं।

१२ महिला जागृति परिषद्, जयपुर—इसकी स्थापना ८ फरवरी सन् १९६३ को हुई। इसका उद्देश्य शिक्षित महिलाओं मे साहित्यिक एव सामाजिक जागृति उत्पन्न करना है। इसके सस्थापक डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल एव मन्त्री श्रीमती सुशीलादेवी बाकलीवाल है।

अन्य संस्थाएँ

१३. सन्मति जैन धर्म प्रचारक मण्डल, अजमेर
१४ श्री बुद्धवीर स्मारक मण्डल, जोधपुर
१५ श्री महावीर जैन महिला मडल, जोधपुर
१६ श्री महावीर जैन नवयुवक मण्डल, जोधपुर
१७ श्री महावीर दल, जोधपुर
१८ श्री श्वे० पोरवाल जैन नवयुवक मण्डल, सवाई माधोपुर
१९ श्री जैन मित्र मण्डल, ब्यावर
२० श्री जैन मुमुक्षु मण्डल, नसीराबाद
२१ श्री वर्धमान जैन मण्डल, बाडमेर
२२ श्री जैन मित्र मण्डल, अलवर
२३ श्री स्था० जैन बाल मण्डल, मजल (बाडमेर)
२४ श्री जैन सभा, श्री गगानगर
२५ श्री अ० भा० साधुमार्गी जैन महिला समिति, बीकानेर
२६ श्री महावीर जैन सभा, माडवला (जालौर)
२७ श्री राजस्थान अणुव्रत समिति, जयपुर
२८ श्री जीव रक्षा समिति, जयपुर
२९ श्री मगन जैन साधना सदन, उदयपुर
३० श्री महिला जैन विकास मण्डल, मोमासार (चूरू)
३१ श्री मेवाड कान्फ्रेंस, राजसमन्द (उदयपुर)

(३) स्वधर्मी वात्सल्य फंड, एवं अन्य सहायता सेवा समितियाँ

१ श्री वर्द्धमान सेवा समिति, जयपुर—समाज के आर्थिक ढाचे की ओर एक नजर डालें तो कुछ ज्वलन्त समस्याए सामने आती हैं। अधिकतर घरो मे कमाने वाला एक है परन्तु आश्रित अनेक है। कही-कही तो कमाने वाला भी नही है। कीमतें बढ रही हैं और आय स्थिर है। सामाजिक रीतियो मे परिवर्तन के आसार नजर नही आते वरन् उनमे व्यय बढते जा रहे हैं। किसी को विद्याध्ययन के लिये धन की आवश्यकता है तो किसी को व्यवसाय अथवा नौकरी की। किसी को आय का अतिरिक्त स्रोत चाहिये तो किसी को तत्काल सहायता।

आर्थिक विषमता समाज मे वैमनस्य व अलगाव की भावना उत्पन्न करती है। वर्ग सघर्ष से बचने के लिए वर्ग सामजस्य आवश्यक है। समाज मे सरसता, एकता व भ्रातृत्व प्रेम के लिये एक

ऐसे सगठन की आवश्यकता है जो एक दूसरे की मदद का प्रबन्ध करे व सहानुभूति का वातावरण तैयार करे। जहाँ समृद्ध वर्ग मे त्याग व प्रेम की भावना को जागृत करना है वहा कमजोर वर्ग मे स्वावलम्बन व सहयोग को भी पनपाना है।

समाज की इन परिस्थितियो को ध्यान मे रखते हुए समाज के सर्वांगीण विकास हेतु सन् १९७० मे वर्द्धमान सेवा समिति का गठन किया गया। यह भगवान् महावीर के सिद्धान्तो का रचनात्मक रूप है।

यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि यह केवल धर्मार्थ सस्था नही है। यह एक ऐसा सगठन है जिसका मूल उद्देश्य स्वावलम्बन की भावनाओ का प्रसार करना व सत्य की नीव पर चरित्र का निर्माण करना है।

वर्द्धमान सेवा समिति ने समाज की तात्कालिक समस्याओ को ध्यान मे रखते हुये निम्न कार्य हाथ मे लिये है —

(क) छात्रवृत्ति—शिक्षा के लिये जरूरतमद छात्रो को छात्रवृत्ति अथवा तदर्थ आर्थिक सहायता देना। इस कार्य के लिए करीब ५ लाख रुपये का एक कोष स्थापित करना ह जिससे कोष के ब्याज से नियमित रूप से छात्रवृत्ति दी जा सके। शिक्षार्थियो द्वारा धनोपार्जन की स्थिति मे आने पर छात्रवृत्ति की रकम समिति को लौटाने का प्रावधान है।

छात्रवृत्ति मेधावी एव जरूरतमंद छात्र, जो कम से कम ५५% नम्बर प्राप्त करते है तथा जिनके अभिभावक की आय रु० ६०००) प्रतिवर्ष से कम है, को दी जाती है। एक बार छात्रवृत्ति स्वीकृत करने पर जब तक कोर्स पूरा न हो, छात्रवृत्ति चालू रखी जाती है, यदि छात्र का पठन कार्य सतोषजनक चलता रहे।

(ख) बेरोजगारो को व्यवसाय अथवा नौकरी पाने मे सहायता—समाज के कई जरूरतमद लोगो को विभिन्न राजकीय विभागो एव निजी सस्थाओ मे नौकरी प्राप्त करने मे मार्ग-दर्शन किया गया। बेरोजगार व्यक्तियो के मार्ग-दर्शन एव सहायता हेतु अन्य कुछ योजनायें भी बनाई गई, जैसे स्टेनोग्राफी, टाइप आदि के प्रशिक्षण की व्यवस्था, जवाहरात की कटाई मे प्रशिक्षण देने हेतु एक योजना बनाई गई है जिसके द्वारा इच्छुक व्यक्तियो को इस महत्त्वपूर्ण कार्य मे नि शुल्क प्रशिक्षण देने का प्रावधान है।

(ग) उद्योग शाला—बहिनो के लिये भी एक महिला उद्योग शाला चलाने की योजना बनाई गई है जिसमे पापड-बडी बनाना, सिलाई, स्वेटर बुनाई, कसीदाकारी, स्क्रीन एव ब्रुश पेन्टिग, गोटा-किनारी आदि अन्य उपयोगी धन्धो द्वारा जरूरतमन्द परिवारो को काम दिलवाकर उनकी आय मे बढोतरी करवाने का प्रावधान है। वर्तमान मे समिति के अध्यक्ष श्री सत्यप्रसन्नसिंह भण्डारी और मत्री श्री रणजीतसिंह कूमट है।

२. श्री जैन बेनेफिट सोसाइटी मद्रास, शाखा सिरोही—यह सस्था इस समय दो कार्यक्रम चला रही है एक स्थानीय राजकीय महाविद्यालय सिरोही के जरूरतमन्द छात्रो के लिए विज्ञान सकाय से सम्बद्ध बुक बैंक। यह बुक बैंक सभी वर्गों के छात्रो को सहायता देता है। इसी से बहुत ही आवश्यक होने पर निर्धन छात्रो को आर्थिक सहायता भी प्रदान की जाती है।

इसका दूसरा कार्यक्रम सिरोही के अस्पतालो से सम्बद्ध रोगी सहायता कार्यक्रम है जो जीव सेवा समिति के नाम से कार्य करता है। मासिक ३००) तक की दवाइया असहाय रोगियो की सहायतार्थ काम आती है। समिति के अपने दो आक्सीजन सिलेण्डर भी है जो नि शुल्क कही भी लेजाए जा सकते है। देने योग्य रोगियो से शुल्क उनकी इच्छानुसार लिया जाता है।

३ **श्री शान्ति सेवासघ, माडोली नगर (जालौर)**—यह सस्था सन् १९६८ के भीषण अकाल के समय बनी थी, जिससे अकाल सहायना का कार्य हुआ। जरूरतमन्दो को अनाज तथा मवेशियो के लिए चारे-पानी का प्रबन्ध व गरीबो को दवाई, बालको को शिक्षावृत्ति आदि इसकी मुख्य प्रवृत्तिया है। बालचद उद्योग समूह द्वारा दिये गये चार इन्जिनो से जानवरो हेतु घास एव पानी की व्यवस्था होती है। सस्था की सबसे बडी योजना एक गौशाला बनाने की है। 'शान्ति ज्योति' पत्रिका के प्रकाशन का सचालन भी इस सघ द्वारा होता है।

४ **वीर सेवक मण्डल, जयपुर**—इसका गठन सन् १९२० मे हुआ। मण्डल का मुख्य उद्देश्य समाज की निस्वार्थ सेवा, सामाजिक जागृति एव सुधार का कार्य करना है। श्री महावीर जी के वार्षिक मेले के अवसर पर मण्डल के स्वयसेवक यात्रियो की सुविधा सम्बन्धी सम्पूर्ण व्यवस्था करते हैं। इसके अध्यक्ष श्री सूरजमल बैद और मत्री श्री राजमल सोनी है।

५ **श्री ऋषभवात्सल्य फड, जोधपुर**—इसकी स्थापना ई० सन् १९६२ मे हुई। इसका मुख्य उद्देश्य छात्रो को विद्याध्ययन के लिए आर्थिक सहायता देना है। इसके साथ ही जैन स्वधर्मी बन्धुओ को भी सहायता देना है जिनकी आर्थिक स्थिति कमजोर हो।

६ **श्री ओसवाल सहायता समिति जोधपुर**—यह समिति समस्त ओसवाल समाज के आर्थिक सहायता के इच्छुक व्यक्तियो को १०) से ५०) रुपये प्रतिमाह तक प्रत्येक परिवार को सहायता देती है। प्रति वर्ष लगभग २० हजार की सहायता लगभग ८० परिवारो को दी जाती है। मुख्य कार्यकर्त्ता हैं श्री रूपराजजी सचेती, श्री घीगडमलजी गिडिया, श्री सम्पतराजजी डोसी व श्री छगनराजजी साड।

७ **श्री मगन सहायता समिति ब्यावर**—यह समिति समाज के असहाय वर्ग को सहायता देने का कार्य करती है। इस समय करीब ६० भाई-बहिनो को गुप्त सहायता समिति की ओर से दी जा रही है। इसके सस्थापक हैं श्री अभयराजजी नाहर।

८ **सेवादल, जयपुर**—यह समाज मे गरीब, असहाय व्यक्तियो की यथा सभव वस्त्र, खाद्यान्न एव दवाइयो के रूप मे सहायता करता है। गत वर्षो मे इसने जरूरतमद छात्रो को पुस्तकें व स्टेशनरी के रूप मे भी सहायता प्रदान की। यह गोपाल जी के रास्ते मे श्री जैन नवयुवक मण्डल के अन्तर्गत सचालित है।

९ **श्री दि० जैन अ० क्षेत्र महावीरजी द्वारा सचालित छात्रवृत्ति फण्ड, जयपुर**—इसके द्वारा प्रतिवर्ष हजारो रुपयो की छात्रवृत्ति दी जाती है। छात्रवृत्ति फण्ड से अनेक विद्यार्थी लाभान्वित हुए है। इसका कार्यालय महावीर भवन, चौडा रास्ता है।

१० **श्री सन्मति सहायता कोष, जयपुर**—यह असहाय जैन बन्धुओ, विधवाओ और प्रतिभाशाली छात्रो को आर्थिक सहायता प्रदान करता है। इसके मत्री श्री केवलचन्द ठोलिया तथा कोषाध्यक्ष श्री नानूलाल चादवाड हैं।

११ स्वर्ण फण्ड, जयपुर—श्वेताम्बर साधु साध्वियो, श्रावको आदि को समय-समय पर विभिन्न सहायता एव सहयोग देने आदि के उद्देश्य से इस फड का गठन किया गया है। इसके अध्यक्ष श्री राजरूपजी टाक व मत्री श्री रतनचन्दजी कोठारी है।

अन्य ट्रस्ट एव सेवा समितिया

१२ अखिल भारतीय [illegible] जैन सेवा सघ, अजमेर
१३ श्री जैन वृद्धाश्रम, चित्तौडगढ
१४ „ भंवरचदजी बाठिया व श्रीमती लक्ष्मीदेवी बाठिया स्वधर्मी सहायता फण्ड
१५ „ श्वे० साधुमार्गी जैन हितकारिणी सस्था, बीकानेर
१६ श्रीमती जेठादेवी काकरिया स्वधर्मी सहयोग फण्ड, बीकानेर
१७ श्री सुरेन्द्रकुमार साड शिक्षा सोसायटी, बीकानेर
१८ „ थानचन्द मेहता शिक्षा ट्रस्ट, जोधपुर
१९ „ थानचन्द मेहता लोकसेवा ट्रस्ट, जोधपुर
२० „ सन्तोकबा दुलभजी ट्रस्ट, जयपुर
२१ „ बनजीलाल ठोलिया चॅरिटेबिल ट्रस्ट, जयपुर
२२ „ दीवान उदयलाल जैन ट्रस्ट, जयपुर
२३ „ सुराना चॅरिटबिल ट्रस्ट, जयपुर
२४ „ जैन दिवाकर सेवासदन, उदयपुर
२५ „ भूरालाल पालडेचा स्वधर्मी सहायता फण्ड, धनोप
२६ „ महावीर जैन सेवा समिति, जोधपुर
२७ „ श्रीलाल पारमार्थिक ट्रस्ट फण्ड, रेनवाल (किशनगढ)

(४) प्रमुख प्रकाशन-सस्थान

१ श्री जैन इतिहास समिति, लालभवन, जयपुर—इस समिति की स्थापना आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराजा सा० की प्रेरणा से सवत् २०२२ मे उनके बालोतरा चातुर्मास के अवसर पर हुई। समिति का मुख्य उद्देश्य जैन-परम्परा के शृ खलाबद्ध प्रामाणिक इतिहास लेखन प्रकाशन एव अन्य महत्वपूर्ण गवेषणात्मक जैन-ग्रन्थो का प्रकाशन है। समिति को व्यवस्थित रूप देने मे इसके अध्यक्ष स्व० श्री इन्द्रनाथ जी मोदी एव मन्त्री स्व० श्री सोहनमलजी कोठारी का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। समिति ने अब तक 'जैन धर्म का मौलिक इतिहास भाग १–२,' ऐतिहासिक काल के तीन तीर्थंकर, पट्टावली प्रबन्ध सग्रह, जैन आचार्य चरितावली आदि ग्रन्थो का प्रकाशन किया है। वर्तमान मे समिति के अध्यक्ष श्री इन्द्रचन्द्र हीरावत, मन्त्री श्री चन्द्रराज सिंघवी व कोषाध्यक्ष श्री पूनमचन्द बडेर है।

२ श्री जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय, ब्यावर—इस प्रकाशन सस्था की स्थापना २४ वर्ष पूर्व उपा० श्री प्यारचदजी म० की प्रेरणा से एव सेठ देवराजजी सुराणा, सेठ स्वरूपचदजी तालेडा श्री चादमलजी टोडरवाल, श्री चादमलजी कोठारी, श्री छगनलालजी दुगड, श्री बापूलालजी बोथरा व श्री अभयराजजी नाहर आदि के सम्मिलित प्रयास से सम्पन्न हुई।

यह प्रकाशन सस्था पूर्व मे "श्री जैनोदय पुस्तक प्रकाशन समिति, चौमुखीपुल, रतलाम

(म० प्र०)" के नाम से कार्यरत थी। इस रतलाम की सस्था का ही व्यावर मे नवाभ्युदय हुआ। इन दोनो ही सस्थाओ द्वारा अभी तक छोटे-बडे शताधिक प्रकाशन हो चुके हैं। दोनो ही सस्थाओ ने प्रमुखतः परम श्रद्धेय जैन दिवाकर गुरुदेव श्री चौथमलजी म० एव उनके सुशिष्य-प्रशिष्यो की नैतिक आध्यात्म एव समाज-बोधी रचनाओ का सराहनीय प्रकाशन किया है। वर्तमान मे इसके मन्त्री श्री अभयराजजी नाहर हैं।

३. **श्री आदर्श साहित्य सघ चूरू**—यह साहित्यिक, सामाजिक, आध्यात्मिक साहित्य के प्रकाशन एव विक्रय का प्रमुख सस्थान है। इस सस्थान ने अब तक शताधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थो का प्रकाशन किया है। आचार्य श्री तुलसी, मुनि श्री नथमल, मुनि श्री बुधमल व तेरापथ सम्प्रदाय के अनेक सत-सतियो के ग्रन्थ इस सघ ने प्रकाशित किये है। इस प्रकाशन सस्थान की कलकत्ता व दिल्ली मे भी शाखाए हैं।

४. **श्री जवाहर साहित्य समिति, भीनासर**—इस समिति की स्थापना आचार्य श्री जवाहरलालजी म० सा० की स्मृति मे की गई है। आचार्य श्री के चरित व प्रवचन साहित्य का प्रकाशन जवाहर किरणावली नाम से कई भागो मे इस समिति ने किया है। समिति के मत्री श्री चम्पालालजी बाठिया हैं।

५. **श्री जैन जवाहर मित्र मण्डल, ब्यावर**—मण्डल होनहार छात्र-छात्राओ को अध्ययन के लिए आर्थिक सहायता देने के साथ साथ जैन साहित्य के प्रचार व प्रसार के लिए सत् साहित्य का प्रकाशन भी करता है। इस दिशा मे मडल गत ३० वर्षों से कार्यरत है।

६. **श्री अभय जैन ग्रथमाला, बीकानेर**—इसका प्रकाशन श्री जिन कृपाचन्द सूरिजी के परामर्श व प्रेरणा से प्रारभ हुआ। सर्वप्रथम अभ्यरत्न सार' नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। अब तक इस ग्रन्थमाला मे २५ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके है।

७ **मुनि श्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन, ब्यावर**—मुनि श्री हजारीमल स्मृति ग्रन्थ के प्रकाशन के बाद सन् १९६५ ई० मे उनकी स्मृति को चिर स्थायी बनाने की दृष्टि से इस प्रकाशन सस्थान की स्थापना की गई। सस्था के कार्य सचालन के लिए एक कार्यकारिणी समिति है, जिसके अध्यक्ष श्री फूलचन्दजी नाहटा, जोधपुर हैं तथा मन्त्री श्री अमरचन्दजी मोदी ब्यावर हैं। सस्था ने अब तक २४ प्रकाशन किए हैं।

सस्था के अन्तर्गत ही एक सिद्धान्तशाला तथा मुनि ब्रज-मधुकर जैन पुस्तकालय भी सचालित हो रहे हैं।

८. **श्री मरुधर केसरी साहित्य प्रकाशन समिति, जोधपुर-ब्यावर**—श्री मरुधर केसरी अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन समिति ने सन् १९६८ ई० में अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित करके अपना उद्देश्य पूर्ण किया। तब समिति के सदस्यो को यह आवश्यक लगा कि पूज्य प्रवर्त्तक मरुधर केसरी श्री मिश्रीमलजी म सा की वाणी को जन-जन मे प्रचारित करने के लिये साहित्य प्रकाशन का कार्य चालू रखा जावे। इस तरह श्री मरुधर केसरी अभिनन्दन ग्रथ प्रकाशन समिति को ही श्री मरुधर केसरी साहित्य प्रकाशन समिति के रूप मे परिवर्तित करके इस सस्था की स्थापना की गयी। सस्था का मुख्य उद्देश्य ऐसे साहित्य का प्रचार व प्रसार करना है जिससे समाज मे जैनधर्म के प्रति अनुराग पैदा हो, सन्तो के प्रति भक्ति एव धर्म मे दृढ़ आस्था जमे। अब तक समिति ४० के लगभग ग्रन्थ प्रकाशित कर चुकी है।

६. श्री शीतल जैन साहित्य सदन, माडलगढ—इसके प्रेरक है उप प्रवर्तक श्री मोहनलालजी म के विद्वान सुशिष्य मुनि श्री महेन्द्र कुमारजी 'कमल'। इसकी स्थापना सन् १६७० मे हुई। इसका एक शाखा कार्यालय वीगोद (भीलवाडा) मे भी है। इसके निम्नलिखित उद्देश्य है—

१ विभिन्न धर्मों मे समन्वय स्थापित करने की दिशा मे कार्य करना।

२ महत्वपूर्ण जीवन स्पर्शी लोक भोग्य सत् साहित्य का प्रकाशन करना।

३ समय-समय पर उपस्थित होने वाली धार्मिक, सामाजिक, सास्कृतिक, साहित्यिक, तथा राजनैतिक समस्याओ पर विचार गोष्ठिया आयोजित कर उनके समाधान हेतु दिशा-निर्देश करना।

४ सस्थान के उद्देश्यो के प्रसार हेतु पत्रिका एव स्मारिकाए प्रकाशित करना।

५ भारतीय धर्म नेताओ, विद्वानो, समाज सेवियो तथा सत्साहित्यकारो को भारत के नैतिक एव चारित्रिक आदर्शो के प्रचारार्थ विदेशो मे भेजने और विदेशी विद्वानो को अपने यहा आमन्त्रित करने की व्यवस्था करना है।

६ विशिष्ट विद्वानो, साहित्यकारो, समाज सेवियो तथा सन्तो का यथा समय सम्मान करना।

७ नैतिकता एव चारित्र निर्माण सम्बन्धी समस्त जन हितकारी कार्य करना।

१० श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर—इसकी स्थापना सन् १६६६ मे पदराडा गाव मे श्री पुष्कर मुनिजी की प्रेरणा से हुई। संस्था के ग्रन्थभण्डार मे प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थो का महत्त्वपूर्ण सग्रह है। सत्-साहित्य के प्रकाशन के क्षेत्र मे सस्था ने उल्लेखनीय कार्य किया है। अब तक लगभग ३८ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके है। सस्था के वर्तमान अध्यक्ष श्री डालचन्द जी परमार हैं। अब इसका मुख्य कार्यालय उदयपुर मे है।

११ श्री अमर जैन साहित्य सस्थान उदयपुर—थोडे ही समय मे इस प्रकाशन सस्थान ने कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित कर अपने आपको प्रतिष्ठित किया है। अब तक हिन्दी तथा गुजराती मे लगभग १५ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके है जिनमे श्री गणेशमुनि के ग्रन्थ विशेष उल्लेखनीय है।

१२ वीर पुस्तक भण्डार, जयपुर—मनिहारो के रास्ते मे स्थित यह सस्थान धार्मिक पूजा-पाठ, पुराण, चरित्र सिद्धात आदि सभी प्रकार के जैन ग्रन्थो का प्रमुख प्रकाशक एव विक्रेता है। अब तक इसने १५ से अधिक ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं। इससे सलग्न 'वीर प्रेस' है। इसका सचालन श्री भवरलालजी, न्यायतीर्थ करते हैं।

१३ श्री वर्द्धमान जैन ज्ञानपीठ, सिरपाल (उदयपुर)—यह सस्था जैनागम व जैनतत्त्व को सरल सरस कथात्मक शैली मे प्रस्तुत करने के साथ साथ नैतिक बोधपरक साहित्य प्रकाशित करता रहा है। श्री भगवती मुनि 'निर्मल' के कई ग्रन्थ यहा से प्रकाशित हुए हैं।

अन्य प्रकाशन सस्थान

१४ श्री सम्यग्ज्ञान प्रचारक मडल, जयपुर

१५ श्री अ० भा० साधुमार्गी जैन सघ, वीकानेर

१६ श्री दि० जैन अतिशय क्षेत्र, महावीरजी, जयपुर

१७ प० श्री टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर

१८ श्री जिनदत्त सूरि मडल, अजमेर

१९ श्री अगरचन्द भैरोदान सेठिया जैन पारमार्थिक सस्था, बीकानेर
२० श्री जैन विश्व भारती, लाडनू
२१ श्री राजस्थान जैन सभा, जयपुर
२२ श्री अ० भा० तेरापथ युवक परिषद्, लाडनूं
२३ श्री जैन शिक्षण सघ, कानोड

नोट —उक्त प्रकाशन सस्थानो का परिचय अन्यत्र यथास्थल दिया जा चुका है।

(५) कला एव उद्योग सस्थान

१ श्री थानचन्द मेहता कला एव उद्योग सस्थान, राणावास—इसकी स्थापना जुलाई १९७३ मे हुई। इस सस्था की स्थापना का मुख्य उद्देश्य, निरुद्देश्य शिक्षा को सोद्देश्य बनाना है। आज भारत के कोने कोने से शिक्षाशास्त्रियो, नेताओ बुद्धिजीवियो, यहा तक कि सामान्य नागरिको की भी यही आवाज प्रतिध्वनित हो रही है कि विश्वविद्यालयो, महाविद्यालयो तथा सैकण्डरी विद्यालयो से निकलने वाले छात्र, बेकारी, बेरोजगारी के शिकार हो रहे है और फलत एक बडी भीड, भीड ही क्यो, टिड्डियो का एक दल राष्ट्रीय सम्पत्ति के लिए उखाड-पछाड कर रहा है। युवको का आक्रोश उत्तरोत्तर राष्ट्र के सामने महान् चिन्ता का विषय बना हुआ है। यह कटु सत्य है कि राजनेता चाहे नौकरी के कितने ही मीठे आश्वासन दें किन्तु वे इन आश्वासनो को किस सीमा तक पूरा करने मे समर्थ होगे ?

ऐसी दशा मे बेकार, दर-दर भटकने वाले, परावलम्बी, छात्र यदि व्यावहारिक शिक्षा न मिलने के अभाव से विध्वस और अनुशासनहीता का दुखान्त नाटक खेलते रहे तो इसमे कोई आश्चर्य की बात नही। यह सस्थान देश को उपर्युक्त विषम परिस्थिति से निकालने के लिए आशा और उत्साह भरा कदम है। सस्थान की आशाए अभिलाषाए, योजनाए तथा भावी स्वप्न बहुत ऊचे हैं। देश का युवक श्रमप्रिय और स्वावलम्बी बना दिया जाय तो देश व्यापी विध्वस लीला के समाप्त होने की आशा की जा सकती है। इसमे कोई सदेह नही कि हाथ द्वारा किये गए काम से हम देश की श्रम शक्ति का न केवल उपयोग ही करेंगे वरन् कई अन्यन्य क्षमताओ को भी प्रकाश मे ला सकेंगे।

सम्प्रति सस्थान की विभिन्न प्रवृत्तियो मे कुल ७२ विद्यार्थी 'सीखो और कमाओ' योजना के अन्तर्गत प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे है। ये श्री मरुधर केसरी उच्च माध्यमिक विद्यालय के छात्र हैं। कला एव उद्योग के जिन विषयो का प्रशिक्षण दिया जाता है वे इस प्रकार हैं—

(i) सगीत (ii) ड्राइग तथा पेन्टिग (iii) सोफा सेट तथा आधुनिक साज सजावट का सामान (iv) कारपेन्टरी (v) अटेची, होलडोल आदि बनाना (vi) टकण सुधार प्रशिक्षण (vii) टेलरिंग (सिलाई)

इस अवधि मे बालको ने जो कार्य किया है उससे यह अनुभव हुआ है कि बालक कला एव उद्योग मे बडी रुचि लेते है, बडी तत्परता व तन्मयता से काय करते हैं और अपनी काय कुशलता निरतर बढाते जा रहे है और आत्म-विश्वास की प्रबल भावना जागृत होकर यह प्रेरणा दे रही है कि सीखो और कमाओ का सिद्धान्त उनके लिए वरदान है।

२ श्री जिनेन्द्र कला भारती, भीलवाडा—सुसगीत एव कला के माध्यम से जिनवाणी के प्रसार एव नई पीढी को धार्मिक क्रिया-कलापो की ओर प्रवृत करने के पवित्र उद्देश्य को लेकर इस

सस्था की स्थापना ४-६-७२ को हुई थी। अपने थोडे से ही कार्यकाल मे सस्था ने महत्त्वपूर्ण कार्य किए है तथा समाज के प्रबुद्ध वर्ग की प्रशसा प्राप्त की है। कला भारती ने सम्पूर्ण जैन समाज मे णमोकार मन्त्र, भक्तामर स्तोत्र, मेरी भावना, ध्वजगीत तथा कीर्तन आदि को एक ही ताल स्वर मे गाने की दृष्टि से स्थान स्थान पर आध्यात्मिक सगीत प्रशिक्षण शिविरो का आयोजन किया है, जिनमें अब तक तीस हजार व्यक्तियो को प्रशिक्षित किया जा चुका है। इस वर्ष की समाप्ति तक एक लाख व्यक्तियो को प्रशिक्षित करने का लक्ष्य है। इसी दृष्टि से सस्था ने भक्ति सगीत माला भाग १ व २ का प्रकाशन भी किया है। सस्था के अन्तर्गत एक सुसगीत विद्यालय का सचालन भी होता है, जहा भक्ति सगीत शिक्षण की उत्तम व्यवस्था है। सस्था द्वारा अखिल भारतीय स्तर पर जैन-सगीत विशारद, जैन सगीत निपुण आदि परीक्षाओ के आयोजन तथा सचालन का भी कार्यक्रम है। सस्था के कठपुतली विभाग द्वारा कठपुतलियो के माध्यम से जैन तत्त्व को रगमच पर लाने का प्रयास किया जा रहा है। यह अपने ढग का प्रथम प्रयास है। सस्था अब तक तीन कठपुतली नाटिकाओ का प्रदर्शन कर चुकी है। सस्था ने लोक धुनो पर आधारित १०० भजनो का सकलन एव उनकी स्वर-लिपियो की रचना का भी स्तुत्य कार्य किया है। सस्था के अध्यक्ष श्री गौरीलाल अजमेरा तथा मन्त्री श्री निहाल अजमेरा है।

३ भारतीय लोककला मडल, उदयपुर—लोकधर्मी कलाओ के शोध, सर्वेक्षण, प्रदर्शन, प्रकाशन, उन्नयन एव परिमार्जन के वृहत् उद्देश्यो को लेकर पद्मश्री देवीलाल सामर के प्रयत्नो से २२ फरवरी १९५२ को इसकी स्थापना हुई। परम्परागत कठपुतली एव लोकनृत्य के क्षेत्र मे मण्डल ने अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त किये है। राजस्थानी लोककला व लोक सस्कृति के रक्षण एव उन्नयन मे मण्डल का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। मडल के सचालक श्री सामरजी ने हाल ही मे भ० महावीर के २५००वें निर्वाण वर्ष के उपलक्ष्य मे 'वैशाली का अभिशेक' नामक कठपुतली नाटिका का सृजन कर पुतली नाट्य क्षेत्र मे एक अभिनव प्रयोग किया है। डॉ० महेन्द्र भानावत वतमान मे मडल के उपनिदेशक हैं।

४. नाहटा कला-भवन बीकानेर—स्व० श्री शकरदान जी नाहटा की स्मृति मे स्थापित इस कला भवन मे हस्तलिखित प्रतियो के साथ-साथ अनेक प्राचीन चित्र, दुर्लभ मूर्तियो व अमूल्य सिक्को का महत्वपूर्ण सग्रह है। श्री अगरचन्दजी नाहटा तथा भवरलालजी नाहटा जैसे विद्वान इस सस्था से सम्बन्धित है।

५ श्री वर्द्धमान जैन उद्योगशाला, बाडमेर—राजस्थान के पश्चिमी सीमावर्ती क्षेत्र बाडमेर नगर मे जैन समाज ने अपने ही समाज की आर्थिक दृष्टिकोण से कमजोर, एव कम आय के परिवार की जैन महिलाओ को आर्थिक मदद पहुचाने के लिये श्री वर्द्धमान जैन उद्योगशाला की स्थापना की। जिसके माध्यम से समाज की अनेक माताऍं एव बहनें अपने श्रम से लघु उद्योग मे कार्य कर अपनी एव अपने पर आश्रित परिवार का भरण पोषण कर रही हैं।

इस समाज सेवी सस्था की स्थापना मुनिवर श्री कातिसागरजी एव दर्शनसागर जी महाराज साहब के सद्उपदेश, से ३० जनवरी ७२ को हुई। आरम्भ मे इस उद्योगशाला मे ४० महिलाओ को रोजगार उपलब्ध करवाया गया और स्थाई रूप से ९ स्त्री-पुरुषो को इस शाला के विभिन्न कार्यों के लिये नियुक्त किया गया। अब इस उद्योग शाला मे ६५ महिलाऍं प्रतिदिन पापड बटने एव बडियें

तैयार कर रोजगार प्राप्त कर रही है। आरभ मे इस उद्योगशाला मे केवल १६ किलो पापड प्रतिदिन तैयार किया जाता था। बाजार मे अन्य पापडो के मुकाबले हमारे यहा से तैयार शुद्ध एव स्वादिष्ट पापड ने बाजार मे अपना अच्छा स्थान प्राप्त कर लिया। अब प्रतिदिन ८० किलो पापड तैयार होने लगा है। यद्यपि यह अत्यन्त ही कम मुनाफे एव जोखिम का व्यापार था फिर भी अच्छी क्वालिटी मे तैयार होने के कारण बाडमेर का यह पापड बाजार मे अधिक साख जमा सका। जिसके कारण आरम्भ के साढे चार मास मे उद्योग शाला ने सभी प्रकार का खर्चा आदि को निकाल कर रु० १०११) का शुद्ध मुनाफा अर्जित किया। वर्तमान मे अध्यक्ष श्री हुकमीचन्द मालू व मन्त्री श्री देवीचन्द गुलेछा है।

६. महावीर जैन शिक्षण सघ छोटी सादडी—गत वर्ष इस सघ की स्थापना की गई। इसका मुख्य उद्देश्य सस्कार निर्माण के साथ साथ टाईपिग, टेलरिंग, मोटर मेकेनिजम, रेडियो मेकेनिज्म आदि प्रशिक्षण देकर युवको को आत्म निर्भर बनाना है। इसके अध्यक्ष श्री केशरी किशोर नलवाया और मत्री श्री सोहनलाल जैन है।

अन्य उद्योग सस्थान

७ श्री जैन नारी उद्योगशाला, कोटा

८ श्री महिला सिलाई केन्द्र, ब्यावर

९ श्री लोका शाह जैन महिला उद्योग, ब्यावर

१० श्री फूलकुमारी चोरडिया महिला विकास केन्द्र, बीदासर

११. श्री उद्योग पापड भण्डार, पाली

१२ श्री जैन महिला उद्योगशाला, बीकानेर

चतुर्थ खण्ड

परिचर्चा

५२ | राजस्थान के सांस्कृतिक विकास में जैनधर्म एवं संस्कृति का योगदान

○

परिचर्चा-आयोजक—डॉ० नरेन्द्र भानावत
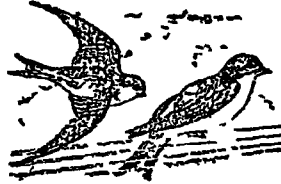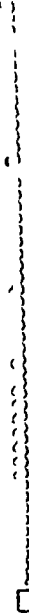
भारतीय सास्कृतिक जीवन के निर्माण तथा उससे प्रसूत सास्कृतिक परम्पराओ की रक्षा और विकास के विविध प्रयत्नो मे किसी प्रदेश विशेप का ही एकाधिकार रहा हो, ऐसा नही कहा जा सकता। प्रागैतिहासिक काल से लेकर आज तक के भारतीय जीवन मे सास्कृतिक चेतना का जो विशिष्ट स्वरूप रहा हे वह सभी प्रदेशो के मानवीय प्रयत्नो की समन्विति का फल है। इसी प्रकार देश की सस्कृति तथा सभ्यता के अवरोधक एव साधक तत्वो का सक्रमण भी एक प्रदेश से दूसरे प्रदेशो मे होता रहा है। निष्कर्प यह कि समूचे देश की सस्कृति और सभ्यता के सर्जन, रक्षण और विकास की समस्यायें द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की दृष्टि से विभिन्न रूपो की होते हुए भी मूलत एक जैसी हैं। भारत और उसके प्रदेशो की सस्कृति के विषय मे कही गई यह बात विश्व और उसके देशो के विषय मे भी सत्य है। इतना सब कुछ होते हुए भी प्रत्येक देश और प्रदेश की अपनी कुछ आचलिक विशेपताए और छवियाँ होती हैं जिनसे उस प्रदेश विशेप की सास्कृतिक चेतना अपना अलग रग विखेरती है। यह सस्कृतिमूलक वैविध्य अलगाव का प्रतीक न होकर सम्पन्नता का परिचायक होता है। राजस्थान के सास्कृतिक दाय की वहुरगी छवि का अध्ययन और मूल्याकन इसी परिदृष्टि से किया जाना चाहिए।

किसी भी प्रदेश की सास्कृतिक चेतना के विकास मे वहा के प्रचलित-पल्लवित धर्मों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। राजस्थान को अनेक धर्मों एव मतो की उद्गमस्थली एव सगमभूमि होने का गौरव प्राप्त है। उन सवके सम्मिलित प्रयत्नो से यहा के सास्कृतिक गौरव मे वृद्धि हुई है, विचारो मे सहिष्णुता और व्यवहार मे सहनशीलता का भाव जागृत हुआ है। जैन धर्म के विशिष्ट प्रभाव के रूप मे एक ओर साहित्य, कला और दर्शन का आयाम विस्तृत हुआ है तो दूसरी ओर आचार दृष्टि से जीवन मे निर्व्यसनता, मितव्ययता और आहार-शुद्धि जैसे भावो के प्रति विशेप सजगता का भाव विकसित हुआ है।

सक्षेप मे कहा जा सकता है कि राजस्थान के सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, राजनीतिक एव अध्यात्मिक चेतना के विकास मे अन्य धर्मों के साथ-साथ जैनाचार्यों व जैनधर्मानुयायियो की महत्त्वपूर्ण

भूमिका रही है। जैन धर्म मे प्रतिपादित मूल्य व्यक्ति, समाज व विश्व-मानवता के विकास के लिए सदैव प्रेरणाशील रहे हैं। इस योगदान के मूल्यांकन और आगे प्रेरणा ग्रहण करते रहने की दृष्टि से हमने यह परिचर्चा आयोजित की है। परिचर्चा को अधिक व्यवस्थित और उपयोगी बनाने की दृष्टि से हमने विभिन्न क्षेत्रो मे कार्यरत विद्वान् मनीषियो के समक्ष निम्नलिखित ५ प्रश्न प्रस्तुत किये। उनमे जो उत्तर प्राप्त हुए, वे प्रश्नानुक्रम से यहा प्रस्तुत हैं—

विचार के लिए प्रस्तुत प्रश्न

१—आपकी दृष्टि मे राजस्थान की सांस्कृतिक दाय का स्वरूप क्या है ?

२—राजस्थान की सांस्कृतिक चेतना के विकास मे यहा के विभिन्न धर्मो की क्या भूमिका रही है ?

३—उस भूमिका मे जैन धर्माचार्यो और जैन धर्म के अनुयायियो का क्या विशिष्ट योगदान रहा ?

४—जैन धर्म मे प्रतिपादित वे कौन से मूल्य है जिनसे सांस्कृतिक जागरण मे आज भी प्रेरणा मिल सकती है ?

५—आपकी दृष्टि मे नव सांस्कृतिक जागरण मे जैन समाज की सम्भावित भूमिका क्या है ?

विचारक विद्वान्

[१] युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी

१ राजस्थान की सांस्कृतिक दाय का स्वरूप बहुरंगी है। राजस्थान ने जन जीवन को स्वस्थ और स्वच्छ वातावरण दिया है, जिसमे आहार और व्यवहार की शुद्धि को अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व मिला है। यहा की सांस्कृतिक चेतना का उदात्त पहलू है लोकजीवन मे व्यसनो की अल्पता। व्यसन कम है फलत अपराध भी कम है। इस आन्तरिक स्वस्थता के साथ स्वतन्त्रता, त्याग, बलिदान और स्वाभिमान आदि तत्त्व भी राजस्थान की सांस्कृतिक चेतना के महत्त्वपूर्ण अंग रहे हैं। राजस्थानी समाज ने व्यावसायिक कौशल के साथ-साथ मानवीय पक्ष को भी उजागर किया है, जिसका शाश्वत सांस्कृतिक मूल्य है। राजस्थान के पर्व, त्यौहार, संगीतकला, नाट्यकला, चित्रकला, वास्तुकला विशेष प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान आदि भी यहा की सांस्कृतिक चेतना के प्रतीक हैं।

२ राजस्थान मे वैष्णव, रामस्नेही, दादूपन्थी, जैन—दिगम्बर, श्वेताम्बर, मूर्तिपूजक, स्थानकवासी और तेरापथी आदि अनेक धाराए प्रभावी रही हैं। इनके द्वारा आहार-विहार की शुद्धि और व्यसन मुक्ति पर पर्याप्त बल दिया गया, जिससे राजस्थान की चेतना को जागरण मिला। वैष्णव धारा ने भक्तिमार्ग को पल्लवित किया। रामस्नेही, दादूपन्थी आदि धाराओ ने सन्त परम्परा के विचार विकसित किए और जैन परम्परा ने भक्ति एव तत्त्वज्ञान का समन्वित रूप प्रस्तुत किया। राजस्थान की लोक चेतना को अभिनव जागृति देने वाले अणुव्रत आन्दोलन का प्रारम्भ भी राजस्थान की धरती से हुआ है।

३ राजस्थान के सांस्कृतिक विकास मे जैन आचार्यों का बहुत योगदान रहा है। वर्तमान मे उनकी स्मृति साहित्य, कला, लिपि, ग्रन्थ भण्डार आदि अनेक रूपो मे की जा सकती है। जैन धर्म

के महान् आचार्य श्री हरिभद्र सूरि, पण्डित आशाधर, पण्डित टोडरमल, आचार्य समय सुन्दर, आचार्य जिनचन्द्र, पूज्य जयमलजी, आचार्य श्री भिक्षु, श्री मज्जयाचार्य आदि अनेक आचार्यों, मुनियो और पण्डितो ने साहित्य की अनेक विधाओं को पल्लवित पुष्पित किया है। लिपिकला के विकास और हस्तलिखित ग्रन्थागारो के विकास मे सैकडो सैकडो जैन मुनियो और आचार्यों का योगदान रहा है। आयुर्वेद, मन्त्रविद्या, ज्योतिष आदि विषयो मे यतियो और भट्टारको के भण्डार बहुत महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करते है। पर खेद है कि उन पर पर्याप्त रूप से काम नही हो पाया है।

सामाजिक परिवेश मे सांस्कृतिक मूल्यो के उन्नयन का कार्य भी जैन धर्म के माध्यम से हुआ है। समाज चेतना को जर्जरित करने वाली कुरूढियो मे परिवतन और परिशोधन की दृष्टि से उल्लेखनीय काम हुआ है। इस कार्य से विशेष रूप से प्रभावित हुई स्त्रियो की चेतना, जिसको अन्ध विश्वास, अशिक्षा और अर्थहीन मिथ्या धारणाओ की पकड से एक सीमा तक मुक्ति प्राप्त हुई है।

४ मानवीय सभ्यता और सामाजिक सगठन का सबसे बडा आधार अहिंसा है। जैन धर्म ने अपनी सबसे अधिक शक्ति अहिंसा को उजागर करने मे लगाई है। करुणा, मैत्री और सहिष्णुता अहिंसा के इन सभी पक्षो को सप्राण बनाकर उसने लोक चेतना को जागृत किया है।

जैन धर्म व्रत प्रधान धर्म है उपासना प्रधान नही है। जैन श्रावक व्रती बनते हैं। व्रत स्वीकार के फल स्वरूप उनकी प्रामाणिक चेतना अधिक उद्बुद्ध रही है। इस चेतना से सास्कृतिक चेतना पर गहरा प्रभाव होता है और समाज मे विशेष प्रकार के मूल्य प्रतिष्ठित हो जाते है।

सामाजिक जीवन मे सघर्ष की अनिवार्यता मानी गई है। 'जीवो जीवस्य जीवनम्' यह प्राचीन सिद्धान्त रहा है। वर्तमान का नया सिद्धात है—सघर्ष जीवन के लिए है। जैन विचारधारा का सिद्धान्त इससे उलटा है। उसने सघर्ष के स्थान पर सहयोग को स्वीकार किया। "परस्परोपग्रहो जीवानाम्" इस मूल्य पर सामाजिक चेतना को जागृत करने का प्रयत्न किया गया।

अहिंसा, करुणा, मैत्री, सहिष्णुता, प्रामाणिकता, समन्वय और सापेक्षता ये शाश्वत मूल्य है। जैन धर्म ने इन मूल्यो पर विशेष बल दिया। वे अतीत मे जितने सत्य थे, वर्तमान मे भी उतने ही सत्य हैं। ये मूल्य जितने प्राचीन हैं उतने ही सामयिक हैं। इनके द्वारा आज भी सास्कृतिक चेतना के जागरण मे सहयोग मिल सकता है।

५ इस प्रश्न का उत्तर देना कुछ कठिन प्रतीत हो रहा है। यद्यपि जैन समाज को विरासत के रूप मे अनेक महत्त्वपूर्ण मान्यताए, सिद्धान्त और मूल्य प्राप्त हैं, फिर भी वह काल जर्जरित रूढियो और आयातीत मान्यताओ से सत्रस्त नही है, ऐसा मैं नही सोचता। जैन समाज अपने पडौसी दूसरे समाजो से भिन्न अस्तित्व बनाए हुए हैं, यह भी प्रतीत नहीं होता। फिर भी कुछ सस्कारगत विशेषताओ के कारण इस सम्भावना से इन्कार नही किया जा सकता कि समाज मे समतापूर्ण व्यवस्था, सापेक्षता और सहअस्तित्व की भूमिका के निर्माण हेतु अपरिग्रह और विसर्जन हो सकता है और ऐसा होने मे बाध्यता नही किन्तु सहजता हो सकती है। इसके साथ धार्मिक मूल्यो के परिप्रेक्ष्य मे नैतिक और मानवीय मूल्यो की प्रतिष्ठा भी सम्भावित है।

[२] प्रो० गरणपतिचन्द्र भण्डारी

१ राजस्थान की सास्कृतिक दाय बहुमुखी है पर उसका मूलाधार है 'जातीय चेतना'। सामती युग मे जातीय सगठन बडे शक्तिशाली रहे और जन जागरण का सारा कार्य भी जातीय स्तर पर होता रहा। 'जाति प्रेम' एक सर्वमान्य मूल्य था। इसके फलस्वरूप विभिन्न जातियो ने अपने समाज मे विद्या प्रचार के लिए शिक्षण सस्थाए और छात्रावास खोले। आमोद-प्रमोद के लिए गाव या नगर के उपकठ मे किसी जलाशय के निकट बगीचिया और तीर्थ स्थानो पर धर्मशालाए बनाई पर वे प्राय स्वजाति की सेवा के लिए ही थी अथवा सुविधाए देने मे स्वजाति और पर जाति का भेद अवश्य किया जाता रहा। इससे जहा जातीय सगठन के रूप मे एक समूह विशेष के भीतर आत्मीयता पनपी वहा विभिन्न जातियो की स्पर्द्धा भी इतनी बढी कि कही-कही उसका विद्वेषपूर्ण घातक रूप भी प्रकट होने लगा।

इस जातीयता का सर्वाधिक प्रबल रूप जोधपुर राज्य मे देखने को मिलता है। जहा विभिन्न जातियो की लगभग १०-१५ शिक्षण सस्थाए हैं। इनसे कतिपय हानियो के साथ एक लाभ यह अवश्य हुआ कि जातीय चरित्र उभर कर ऊपर आया। राजपूत अपने दर्प, शौर्य, साहस और शरणागत-रक्षा एव बलिदान के गुणो से पहचाने जाने लगे तो चारण अपनी विद्वत्ता और काव्य-काशल के लिए। ओसवाल, अग्रवाल और माहेश्वरी आदि वैश्य जातिया अपने सादे और निर्व्यसनी जीवन, बुद्धिमत्ता एव व्यवसाय कौशल के लिए विशेष प्रसिद्ध हुई तो कायस्थ अपने बौद्धिक, कौशल और नीति-निपुणता के लिए विख्यात हुए। ब्राह्मणो ने विद्वत्ता, सगीत-कौशल एव ज्योतिष ज्ञान मे प्रसिद्धि पाई तो श्रमिक जातियो ने स्थापत्य और शिल्प-कौशल मे। मुसलमानो ने सगीत और नृत्य शैलियो का विकास किया तो ईसाइयो ने शिक्षा और चिकित्सा के श्रेष्ठ प्रतिमान स्थापित किये। सोमपुरो ने विश्वविख्यात जैन मदिरो का निर्माण किया तो ढोलियो ने सगीत, नृत्य, अभिनय को सहेजा। लोक कलाओ की रक्षा अधिकतर, निम्न समझी जाने वाली जातियो ने ही की है। अत राजस्थान की सास्कृतिक दाय जाति मूलक है या धर्म मूलक क्योकि अनेक जातिया धर्म के आधार पर ही निर्मित है।

निर्गुणोपासना भी राजस्थान की एक प्रमुख सास्कृतिक दाय है जिसे अछूत जाति के सतो ने प्रतिष्ठित किया और आज भी अनेक श्रमिक जातियो के अध्यात्मज्ञान के वे ही उद्गम स्रोत है। सवर्ण हिन्दुओ मे सगुणोपासना भी खूब प्रचलित रही। नाथ पथ और कबीर पथ का प्रचार भी राजस्थान मे काफी रहा।

२ जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, धर्म और जाति का घनिष्ट सम्बन्ध रहा हैं यद्यपि कुछ अपवाद भी अवश्य है। ब्राह्मण प्राय शैव व वैष्णव हैं, राजपूत और चारण शाक्त भी हैं और कुछ शैव व वैष्णव भी, जैसे उदयपुर का राजपरिवार। ओसवाल प्राय. जैन हैं पर उनके अतिरिक्त पोरवाल भी जैन हैं। दिगम्बर जैनो में सरावगी गोदा, हूण आदि जातिया हैं पर अधिकाश दिगम्बर स्वय को 'जैन' ही लिखते-बताते हैं, वे जाति का उल्लेख नही करते। अधिकाश दिगम्बर जैन पूर्वी और दक्षिणी राजस्थान में हैं परन्तु बहुसख्यक जैन श्वेताम्बर हैं जो अधिकतर पश्चिमी राजस्थान के निवासी हैं। कायस्थो में कुछ सतसगी सम्प्रदाय के हैं जिनके गुरु की गद्दी दयाल बाग, आगरा में है तो अन्य वैष्णव भी हैं। राजस्थान में अग्रवाल जैन बहुत कम हैं, अधिकाश वैष्णव हैं। माहेश्वरी,

माली एव अधिकाश श्रमिक जातिया वैष्णव, शैव, रामदेव या सत मत के विभिन्न सम्प्रदायो की है। विश्नोइयो का अपना अलग सम्प्रदाय है जिसके प्रणेता जाम्भोजी है। इनके अतिरिक्त मुसलमान, ईसाई और आर्यसमाजी भी है। राजस्थान के सास्कृतिक विकास मे इन धर्मो की दाय लगभग वही है जो इनकी अनुयायी जातियो की है। फिर भी कुछ ऐसे कार्य है जिन पर जाति की अपेक्षा धर्म की छाप अधिक है और जो जाति के प्रतिबध से मुक्त है।

सुविधा के लिए यदि हम शैव, शाक्त, वैष्णव और निर्गुणोपासको को हिन्दू धर्म में समाहित मान ले तो राजस्थान मे मुख्य धर्म ५ रह जाते है—हिन्दू, जैन वैदिक (आर्यसमाजी), इसलाम और ईसाई। राजस्थान के सास्कृतिक विकास मे इन सबका योगदान रहा है। हिन्दू धर्म ने यहा एक ओर सगुण भक्ति की गगा बहाई और मीरा, नागरीदास और चद्र सखी जैसे भक्त साहित्यकार प्रदान किये एव नाथद्वारा, काकरोली, एकलिंगजी जैसे भव्य तीर्थ स्थानो का निर्माण किया तो दूसरी ओर दादू और कबीर आदि के अनुयायियो ने सतो की वाणी गा गाकर अल्पशिक्षित और अशिक्षित श्रमिक जातियो मे शुद्ध आचरण एव नैतिक और सतोषी जीवन को प्रोत्साहन दिया। साथ ही रूढ धार्मिक उपदेशो ने इन्हे भाग्यवादी भी बनाया। धर्मशालाओ और गोशालाओ के निर्माण जैसे लोकोपकारी कार्य भी धार्मिक वृत्ति के लोगो ने किये।

राजस्थान के सास्कृतिक विकास मे जैनो का योगदान बहुमुखी और अत्यत महत्त्वपूर्ण रहा है विशेषत साहित्य, शिक्षा और शिल्प एव स्थापत्य के क्षेत्र मे, जिसकी चर्चा तीसरे प्रश्न के उत्तर मे अधिक विस्तार से की जायगी।

जन जागरण के क्षेत्र मे सर्वाधिक मूल्यवान योगदान आर्यसमाज का रहा है। महर्षि दयानन्द का देहावसान अजमेर मे होने से राजस्थान मे वैदिक धर्म के प्रचार की एक मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि बनी और उनके सिद्धातो के व्यापक प्रचार से मानो राजस्थान ने इस महान् विभूति के प्रति अपनी धरती पर किये गये क्रूर अन्याय का प्रतिकार किया। स्त्री शिक्षा, पर्दा निवारण, अछूतोद्धार, विधवा विवाह एव अनाथ सरक्षण जैसे सामाजिक क्राति के ठोस कार्य आर्यसमाज द्वारा पूरे जोश खरोश से किये गये और सामाजिक सुधारो का एव अधविश्वासो को त्याग कर बौद्धिक दृष्टि से स्वतत्र चितन के नये युग का सूत्रपात करने का बहुत बडा श्रेय आर्यसमाज के प्रचारको को है। इन्होने अनेक शिक्षण सस्थाएँ भी स्थापित की और महिलाओ को अबला से सबला बनाने का व्यापक प्रयास किया।

इस्लाम की देन मे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है अजमेर मे ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह जो मुसलमानो का अतर्राष्ट्रीय महत्त्व का तीर्थ स्थान है और जिन के उर्स पर हिन्दू और मुसलमान दोनो उनके भक्तो की कव्वालियो का आनद लेते हैं एव उनके प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करते हैं। ईसाइयो ने श्रेष्ठ शिक्षण सस्थाएँ और चिकित्सालय कायम करके एक ओर चिर उपेक्षित आदिवासियो मे अपने धर्म का प्रसार किया तो दूसरी ओर जनता को शिक्षा और चिकित्सा के क्षेत्र मे बहुमूल्य सेवाएँ प्रदान की। पर इन शिक्षण सस्थाओ का लाभ अधिकतर धनिक वर्ग ने ही उठाया और इससे उनके जीवन और रहन सहन पर पाश्चात्य सस्कृति का गहरा रग चढ गया। अग्रेजी के विद्वानो और कुशल प्रशासको के निर्माण मे मिशनरी स्कूलो का विशेष योगदान रहा है।

३ सास्कृतिक चेतना की इस पृष्ठभूमि मे जैनो का योगदान बहुमुखी और महत्त्वपूर्ण रहा

है। जैनाचार्यों ने बहुमूल्य धार्मिक साहित्य का निर्माण किया और प्राचीन साहित्य का सरक्षण भी। राजस्थानी का प्राचीनतम उपलब्ध साहित्य जैनाचार्यों का ही रचित है। उनकी कृतिया नैतिक और आध्यात्मिक जीवन की प्रेरक तो है ही, लोकनीति और लोक व्यवहार की परिचायक भी हे और साथ ही अनेक कृतिया साहित्यिक सौंदर्य से पूर्ण हैं। उपदेशो का आधार प्राय रोचक कथाए रही है। यह साहित्य गद्य और पद्य दोनो मे है और विक्रम की १३वी शताब्दी से ही उपलब्ध होता है। इसमे विविधता भी बहुत है। साथ ही राजस्थान मे पच्चीसो ऐसे ग्र थागार है जहा जैनो ने प्राचीन हस्तलिखित साहित्य को सुरक्षित रखा है। इनमे अनेक अलभ्य जैनेतर कृतिया भी हैं और इस सुरक्षित साहित्य की मात्रा विपुल है। जैनाचार्यो की साहित्य-साधना आज तक निरतर चलती रही है और आज भी अनेक कवि काव्य रचना की नवीन पद्धति को अपनाते हुए अपना सदेश प्रभावशाली ढग से देते है और उनकी कृतियाँ देश के ख्यातनामा हिन्दी प्रकाशको ने प्रकाशित की है। प्राचीन साहित्यकारो मे आचार्य हेमचद्र, मेरुतु ग, तरुणप्रभसूरि, माणिक्य सु दर सूरि, कुशललाभ, राजेंद्र सूरि, आचार्य भिक्षु जयाचाय आदि विख्यात है और आधुनिक साहित्यकारो मे आचार्य तुलसी, आचार्य हस्तीमलजी, मुनि नगराजजी, मुनि नथमलजी, मुनि महेन्द्रकुमारजी, मुनि मधुकरजी उल्लेखनीय है। प्राचीन जैन श्रावको मे नैणसी मु हणोत राजस्थान के प्रथम महत्त्व-पूर्ण इतिहासकार है और आधुनिक श्रावको मे अनेक कवि, लेखक, समीक्षक एव शोधकर्ता हैं जिनमे श्री अगरचद नाहटा, श्री कन्हैयालाल सेठिया, श्री भवरमल सिंघी व डॉ० नरेन्द्र भानावत आदि विशेप उल्लेखनीय है।

साहित्य रचना और सरक्षण के अतिरिक्त गाधी युग के आचार्यों और मुनियो ने समाज सुधार की चेतना उत्पन्न करने मे भी प्रशसनीय योगदान दिया जिसमे स्त्री शिक्षा का प्रचार, पर्दा और अधविश्वासो का विरोध, फैशन, नशा, वृद्ध विवाह, बाल विवाह आदि का विरोध मुख्य था। इनमे जैन दिवाकर मुनि श्री चौथमलजी, आचार्य श्री जवाहरलालजी और गणेशीलालजी विशेप लोकप्रिय हुए। शिक्षा प्रचार का कार्य राजस्थान मे श्री विजयवल्लभ सूरि ने विशेप रूप से किया। सास्कृतिक चेतना जगाने और नैतिकता का प्रभावशाली प्रचार करने मे आचार्य तुलसी और उनके शिष्यो का कार्य विशेष सराहनीय है। आचार्य तुलसी ने जैन धर्म को जैनो के सीमित दायरे से निकाल कर सर्वसाधारण के मध्य प्रतिष्ठित करने एव राजनैतिक नेताओ, उच्च अधिकारियो और विद्वानो को जैन धर्म के निकट सम्पर्क मे लाने वाले वैचारिक मच के निर्माण का क्रातिकारी कार्य किया है जिसका अनुकरण अब अन्य सम्प्रदायो के साधु लोग भी करने लगे हैं। साम्प्रदायिक अह को तोडने और विद्वेप को मिटाने का भी आचार्य तुलसी ने योजनाबद्ध कार्य किया एव साधु समाज को आधुनिक विद्याओ का ज्ञान प्राप्त करने एवम् कलात्मक साधना के लिए भी प्रेरित किया। इस प्रकार शिक्षण सस्थाओ के निर्माण द्वारा ज्ञान की वृद्धि और चेतना के विकास का एव सामाजिक सुधार और चरित्र-उत्थान का श्लाघनीय कार्य वर्तमान युग मे जैन श्रमणो द्वारा किया जा रहा है।

जहा तक अनुयायियो के योगदान का प्रश्न है, वे अपने गुरुओ के आदेशो का पालन करने मे खुले दिल से धन लगाते है। प्राचीन काल में उन्होने भव्य और विशाल मदिरो का निर्माण करके राजस्थान को स्थापत्य और शिल्प की अनुपम थाती भेंट की और आज के युग में शिक्षण सस्थाओ का निर्माण करके ज्ञान-प्रसार के कार्य में सक्रिय योग दे रहे है। इसके अलावा चिकित्सालयो के

निर्माण द्वारा एव अकाल आदि प्राकृतिक प्रकोपो के समय उदार द्रव्य दान द्वारा लोक सेवा भी करते हैं। स्वतन्त्रता सग्राम के अग्रणी नेताओ में भी अनेक जैन नेता थे, जैसे सर्वश्री अर्जुनलाल सेठी, आनदराज सुराणा, फूलचद बाफणा, मानमल जैन इत्यादि। राजस्थान के औद्योगिक विकास मे भी जैन श्रावको का महत्वपूर्ण हाथ रहा है और वाणिज्य व्यवसाय मे तो वे देश भर मे अनेक सस्थानो के अत्यत दायित्वपूर्ण पद सम्हाले हुए हैं। इस प्रकार राष्ट्रनिर्माण के काय मे भी उनका सराहनीय योगदान है। परन्तु इतने बडे समाज मे सभी लोग उच्च नैतिक स्तर के नही होते, अत कुछ लोग धन के लोभ से कुछ ऐसे धधे भी अपना लेते हैं जो जैनो को शोभा नही देते, जैसे तस्करी, काला-बाजारी, मिलावट, कर चोरी। पर छाती पर हाथ रख कर देखें तो आज कौनसा समाज इससे मुक्त है ? कौन है दूध का धुला हुआ आज ? तथापि जैन धर्म के बिम्ब को धुधलाने वाले ऐसे धधो से कम से कम जैनो को तो दूर ही रहना चाहिए। वैसे व्यक्तिगत गुणो की दृष्टि से औसत जैन व्यवहार का मधुर, बुद्धिमान, व्यसनो से मुक्त और झगडे टटे से दूर रहने वाला होता है।

४ जैन धर्म मे प्रतिपादित पाचो महाव्रत ऐसे मूल्य है जिनके स्थूल रूप अणुव्रतो के नाम से प्रसिद्ध हैं और युगानुकूल सदर्भ देकर आचाय तुलसी ने जिनका विशेप प्रचार किया है। वे हैं—

(१) अहिंसा—जिसका व्यावहारिक रूप है किसी के मन को दुर्भावना से न दुखाना और किसी जीव का जहा तक सभव हो, हनन न करना। गाधीजी ने इसका राजनैतिक क्षेत्र मे भी सफलता से प्रयोग किया और अतर्राष्ट्रीय समस्याओ को बातचीत से सुलझाने की आधुनिक प्रवृत्ति के पीछे भी अहिंसा का सिद्धान्त ही है। कुछ लोग दया, करुणा और प्रेम को भी इस का ही विधायक रूप मानते हैं और ये गुण सफल एव सुसस्कृत सामाजिक जीवन के लिए परम आवश्यक हैं।

(२) सत्य—आचार विचार मे मिथ्यात्व से बचना, किसी से छल न करना, मिलावट न करना, ठगी न करना आदि स्वस्थ सामाजिक जीवन की अनिवार्य शर्तें है, जो चिरतन हैं।

(३) अस्तेय (अचौर्य)—इसकी आज के युग मे सर्वाधिक आवश्यकता है और वह भी हमारे देश को विशेप रूप से। कर की चोरी, झूठा नाप-तौल, सार्वजनिक सम्पत्ति एव रेल्वे की सम्पत्ति की चोरी, दफ्तरो से विभिन्न प्रकार के सामान की चोरी कॉलेजो मे विचारो की चोरी (नकल)—सर्वत्र चोरी का बोलबाला है। इससे बचना जैनो का प्रमुख सिद्धात है।

(४) ब्रह्मचर्य—बढती जनसख्या विश्व का सबसे बडा अभिशाप है और उसे रोकने का एक उपाय है ब्रह्मचर्य की साधना। पर यह होना चाहिए ध्यान की साधना से न कि काम प्रवृत्ति के दमन द्वारा। काम की अपेक्षा काम के चिंतन से मुक्त होने की बहुत आवश्यकता है। यदि मन काम से मुक्त हो तो तन की चिंता करने की आवश्यकता भी नही रहती।

(५) अपरिग्रह—अपनी आवश्यकताओ को सीमित रखना और नितात आवश्यकता से अधिक कोई वस्तु न रखना। आज के सग्रहखोर युग मे इसकी कितनी उपयोगिता है, इसे बताने की कोई आवश्यकता नही। यदि सभी लोग अपने भोग्य पदार्थों की और सम्पत्ति की सीमा निर्धारित कर दें तो देश की आर्थिक स्थिति मे आमूलचूल परिवर्तन हो जाए, पर कहा ? स्वय जैनियो मे ही

अनेक उच्च कोटि के परिग्रही है। परिग्रह से बचना बढती हुई जनसख्या के भरणपोपण के लिए नितात आवश्यक है।

इन सबके मूल मे है अनेकान्तवादी जैन दृष्टि जो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। अपने विचार दूसरो पर थोपो मत। आग्रही मत बनो। यह सोचकर चलो कि दूसरे का कथन भी किसी अन्य दृष्टि से सही हो सकता है। पारस्परिक सम्बन्धो को स्वस्थ रखने के लिए यह गुण नितात आवश्यक है। सत्य बहु आयामी होता है और हम एक समय मे उसके केवल एक ही पहलू को देख पाते हैं, अत उसके अन्य पहलुओ की सम्भावना स्वीकारने मे हिचकिचाहट क्यो हो ? फिर जिन्होने पूर्ण सत्य की अनुभूति की है, वे भी भाषा की अपूर्णता के कारण अपनी अनुभूति का सही रूप मे सम्प्रेषण नही कर पाते और भाषा मे ढलते ही सत्य एकागी हो जाता है क्योकि भाषा एक आयामी है—आप एक समय मे एक साथ घटित होने वाली बातो को भी एक-एक करके क्रमानुसार ही कह सकते हैं जिससे पूर्ण सत्य का चित्र विकृत हो जाता है अत सत्य के इतर पहलुओ की सम्भावना स्वीकार करते हुए अपनी ही बात सही और श्रेष्ठ मानने का आग्रह न किया जाय—यही स्याद्वादी दृष्टि है जो आज के जीवन मे पारिवारिक जीवन से लेकर अतर्राष्ट्रीय जीवन तक अत्यत उपयोगी और पारस्परिक बधुत्व भावना बढाने वाली है।

५ क्या यह युग 'नव सास्कृतिक जागरण का युग' है भी ? मुझे तो लगता है, यह युग 'तोडने' का ही युग है—बिखराव का युग है जिसमे परम्परागत आस्थाए टूट रही है, पुराने जीवन मूल्य बिखर रहे हैं और हमारा सामाजिक जीवन मानो मर्यादाहीनता और अराजकता से ग्रसित होता जा रहा है। अभी पतझड चल रहा है और बसन्त की कोपलें फूटी नही है। हर नव सृजन के पूर्व पुरातन का ध्वस अवश्यम्भावी है—वही हो रहा है। नव निर्माण होगा अवश्य—नये मूल्य भी आकार लेंगे ही—पर अभी उन के रूप रग और आकार-प्रकार का आभास नही मिल रहा है। जैन समाज भी इसका अपवाद नही। यदि हम आज के औसत नवयुवक की दिनचर्या देखें तो शायद वह जैन से अधिक अजैन कृत्यो और विचारो से ही लिप्त दिखाई देगी। ठीक है प्रश्न ४ के उत्तर मे लिखित जीवन के कतिपय चिरतन लगने वाले मूल्यो की सुरक्षा मे हमारे धर्माचार्य लगे हैं परन्तु नये जीवन की नई समस्याए सम्भव है, उनमे भी परिवर्तन की माग करे।

[३] श्री भवरमल सिंघी

१ राजस्थान को शौर्य-सस्कृति का स्थल कहा गया है। वहा की भूमि के लिए मुख्य विशेषण 'वीर-प्रसविनी' रहा है। राजस्थान का नाम आते ही महाराणा प्रताप आदि रणवीरो का खयाल आता है और जन्मभूमि की स्वतन्त्रता और सुरक्षा के लिए लडते-लडते प्राणो की बलि देने वाले अन्य वीरो का भी सहज ही स्मरण हो आता है। पर उसी के साथ भामाशाह जैसे उदार और त्यागी जैन वीरो का भी तो स्मरण हो आता है, जिन्होने लोक-कल्याण की भावना से, निस्वार्थ रूप से अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया। वास्तव मे, राजस्थान वीरो की तपोभूमि रही है। तप और त्याग वहा की सस्कृति का हार्द रहा है। शस्त्र-वीरता तो बाह्य रूप है, वास्तविक महत्ता तो मन-प्राण की आतरिक वीरता की है। इसी से हिंसक वीरता की अपेक्षा अहिंसक वीरता कही बडी मानी जाती है।

राजस्थान मे तप और त्याग की जो महान् ऊर्जा सगठित और विकसित हुई, उसके पीछे वहा पर प्रचलित सभी धर्मों और संस्कृतियो का योग रहा है। मानवमात्र की स्वतन्त्रता, समता और शान्ति के लिए राजस्थान हर अवसर पर प्राणोत्सर्ग करता रहा है। वहा शान्ति के समय सन्तों की शान्त वाणी निनादित होती रही है, तो युद्ध के समय चारणों का ओजस्वी सिंहनाद गूजता रहा है। दोनो मे ही नि स्वार्थ भाव से व्यक्ति, समाज और देश के जीवन मे त्याग और बलिदान की संस्कृति अपने प्रशस्त मार्ग पर अग्रसर होती रही है।

२–३ राजस्थान जैन धर्म और संस्कृति का प्रमुख क्षेत्र रहा है। वहा जैन धर्मावलम्बियो की बहुत बडी संख्या है। न केवल वाणिज्य-व्यवसाय मे ही, बल्कि प्रशासन और स्वतन्त्रता सग्राम मे भी उनका बहुत बडा हाथ रहा है। ज्ञान के क्षेत्र मे अन्य जातियो और समाजो की अपेक्षा जैनियो ने कही अधिक प्रगति की है। साहित्य और कला के क्षेत्र मे जैन समाज के लोगो का अप्रतिम अवदान है। जैन साधुओ और यतियो ने इस दिशा मे बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। यही कारण है कि जिसे भी राजस्थान के इतिहास और साहित्य की खोज करनी हो, उसे जैन मन्दिरो और भाडारो की शरण लेनी ही होती है। केवल जैन धर्म सम्बन्धी दार्शनिक ग्रन्थो का ही नही, बल्कि इतिहास और लोक-संस्कृति की परम्परा सम्बन्धी ग्र थो का भी बहुत बडा समुच्चय इन मन्दिरो और भाडारो मे भरा पडा है। संस्कृत एव प्राकृत भाषाओ के अतिरिक्त राजस्थानी भाषा की समृद्धि बढाने मे भी जैन साधुओ एव अन्य लेखको का विशिष्ट योग रहा है। इतिहास के सदर्भ मे हमे उस विद्वान् जैन यति का स्मरण हो आना स्वाभाविक है, जिसकी सहायता से ही कर्नल टाड राजस्थान का इतिहास प्रस्तुत कर पाये। टाड का इतिहास जिस सामग्री पर आधारित है, उसमे जैन आचार्यो, साधुओ और यतियो के हस्त-लिखित ग्र थो का कितना महत्त्व रहा है, यह उस इतिहास को पढने वाले सभी जानते और मानते है। स्वय टाड ने उनका ऋण स्वीकार किया है।

इस प्रकार अपने बहु-सूत्रीय महत्त्वपूर्ण अवदान से जैन समाज ने राजस्थान की जीवन-संस्कृति को अत्यन्त प्रभावित किया है। जैन धर्म के मूल सिद्धान्त जैसे अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकान्त आदि समता, सयम और त्याग पर जोर देते है और सम्यक् दृष्टि, सम्यक् ज्ञान एव सम्यक् चारित्र्य की महिमा मानते हैं। इन गुणो के आधार पर ही जैनियो ने समता-मूलक संस्कृति का निर्माण और निर्वाह किया है। यद्यपि व्यापार-व्यवसाय, जो जैनियो का प्रमुख कर्म रहा है, मे अपरिग्रह एव अहिंसा की मूल भावना पूरी तरह से नही खिल पाई परन्तु राष्ट्रीय तथा सामाजिक सकटो के समय जैन श्रावको ने औदार्य और त्याग के पर्याप्त उदाहरण रखे हैं। स्वनामधन्य भामाशाह इसी संस्कृति का पुष्प था। मेवाड के स्वाधीनता सग्राम मे उन्होने अपना सर्वस्व महाराणा प्रताप को समर्पित करके जो महान् कार्य किया, उसे इतिहास कभी भी भुला नही सकता। उन्होने राष्ट्रीय और सामाजिक हितो के लिए दान की जो प्रवृत्ति स्थिर की, वह कम-ज्यादा रूप से बराबर कायम रही। आज भी राजस्थान मे ही नही, वहा से बाहर भी जगह-जगह जैनियो द्वारा लोकमगल के सार्वजनिक कार्यो मे बहुत अवदान हो रहा है। जैन संस्कृति का हार्द निवृत्ति और निवृत्तिमूलक प्रवृत्ति है। जिसके स्वभाव मे परिग्रह की भावना नही है, वह किसी से राग-द्वेष नही करता। राग-द्वेष के लिये अवसर ही नही होता।

महावीर और पूर्ववर्ती सभी जैन तीर्थंकरो ने अहिंसक जीवन पद्धति और समाज-रचना को

अपनी साधना का प्रमुख ध्येय माना और उसके लिए अहिंसा, अपरिग्रह तथा अनेकान्त के सिद्धान्त पर चलने की बात कही। जगत् एव जीवन सवन्धी अपनी इन मान्यताओ पर बल देते हुए भी उन्होने अन्य धर्मो के सिद्धान्तो एव विचारो की कभी उपेक्षा नही की जिससे सह-धार्मिकता और सह-जीवन की भावना रख कर वे शान्ति पूर्वक जीवन की ऊर्ध्व गति प्राप्त करते रहे। जैन साधु साध्विया अपने नियमो के अनुसार चलते फिरते तीर्थ रहे हैं—गाव-गाव मे पद-यात्रा करते हुए वे सयम एव त्याग की सस्कृति के प्रचार के जीवन-दूत सिद्ध हुए। लोक-भाषा मे बोलते हुए लोक-कल्याणमयी सस्कृति का जीवन-सदेश फैलाते रहे है। प्राणि-रक्षा की मूल मानवीय भावना के निरन्तर प्रचार से उन्होने इस सारे क्षेत्र मे मद्य और मास के त्याग का जो अनुपम सुसस्कार डाला, वह स्पष्ट है। लोकमान्य तिलक ने ठीक ही कहा है कि गुजरात प्राणि-रक्षा एव निर्मास भोजन के सस्कार मे जो सभी प्रान्तो से आगे है, वह जैन धर्म और सस्कृति के प्रचार एव पालन का ही फल है। राजस्थान के विषय मे भी यह बात उतनी ही सच है।

४ सस्कृति केवल पुस्तकीय और शास्त्रीय वस्तु नही है, उसकी कसौटी तो जीवन है। जैन दृष्टि से जीवन मे सतत् शोधन-सस्कार द्वारा कर्मक्षय की पद्धति एव प्रवृत्ति सदैव कायम रहनी चाहिए। यही कारण है कि हमारी सस्कृति मे मैत्री और क्षमा भावना पर इतना जोर दिया गया है। इन गुणो वाली जीवन-सस्कृति के निर्माण और विकास के लिये हम दर्शन, ज्ञान और चारित्र्य की सम्यक्ता रूपी रत्नत्रयी की साधना को अनिवार्य मानते हैं।

जीवन शोधन की सतत् प्रवृत्ति की जो बात मैंने अभी कही, उसी से प्रेरित होकर आधुनिक काल मे भी जैन समाज ने व्यक्तियो एव समाजो के मध्य पारस्परिक मैत्री एव एकता के कार्यो मे बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान किया। यह कहना तो सही नही होगा कि जैनियो मे जडता और अधपरपरा की स्थिति है ही नही। परन्तु यह जरूर कहा जा सकता है कि जब जब सिद्धान्तो मे या तदनुसार जीवनचर्या मे विकास की वृद्धि हुई, उसका सशोधन करने की दिशा मे जैन लोगो ने विशेष रुचि और प्रवृत्ति दिखाई है। जैन सिद्धातो के अनुसार समस्त जीव समान हैं और सभी प्राणियो के जीवन का समान महत्त्व है। इसी मे अहिंसा धर्म का सच्चा पालन है। जैन सस्कृति मे जाति भेद नही है। परन्तु अन्य समाजो की जाति व्यवस्था से जैन भी प्रभावित हुए और कालान्तर से उनमे भी जातिगत भेदभाव पैदा हो गया। एक ही गुरु और तीर्थंकर के अनुगामी होते हुए भी सामाजिक व्यवहार मे जाति की दीवारें जैनियो मे खडी हो गई। यहा तक कि जीव-अजीव सबकी समानता मे विश्वास करने वाले जैन समाज मे अस्पृश्यता भी घुस गई। इसमे जैन जीवन विधि का सर्वान्त निषेध था। जैन धर्म के कर्म-सिद्धान्त के अनुसार जाति-भेद के लिए कोई स्थान नही है। इस मान्यता के अनुसार राजस्थान मे स्व० श्री अर्जुनलाल सेठी ने जातिवाद के विरुद्ध जो सुधार आदोलन सगठित और सचालित किया उसका राजस्थान की मैत्रीपूर्ण लोकसस्कृति के विकास में बहुत बडा योग सिद्ध हुआ जिसका महत्त्व आज भी माना और समझा जाता है।

५ सम्प्रति सारे देश मे भगवान् महावीर की पच्चीसवी निर्वाण-शती मनायी जा रही है। इस सदर्भ मे हम भगवान् महावीर के लिये केवल परिग्रह-पूजा का ही आयोजन न करें बल्कि जीवन के शोधन-परिवर्तन की दिशा मे भी सक्रिय हो ताकि जैन सस्कृति का वास्तविक रूप उजागर हो तथा महावीर की जीवन-साधना की ओर सभी लोगो का ध्यान आकर्षित हो। आज सग्रह और शोषण की

होती है इसलिए संकीर्णता और उदारता दोनो का सह अस्तित्व सम्भव होता रहा है। विभिन्न धर्मावलम्बियो ने जीवन के सास्कृतिक पक्ष को समझने-समझाने का जो प्रयत्न किया है उससे साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के होते हुए भी सार्वजनिक अथवा सामाजिक लाभो की निष्पत्ति हुई है। यहा के विद्वानो, आचार्यों और साधु-सन्तो ने जीवन के शाश्वतिक मूल्यो को निरावृत रूप मे प्रस्तुत किया है। और एक बार नही, अनेक बार स्थितिपालको मे से ही कई लोग ऐसे निकले हैं जिन्होने चेतना के क्षेत्र मे क्रातिकारी कदम उठाये है।

ऐसे लोगो के उपदेशो, व्याख्यानो और सवादो का सामाजिक परिणाम यह हुआ है कि समृद्धि और सम्पन्नता के मायाजाल मे फसे हुए लोगो को, चाहे वे सम्पन्न रहे हो या असम्पन्न, सासारिक उपलब्धियो की नश्वरता का बोध बराबर बना रहा है। इससे मानव और मानव के बीच की दरारे तो चाहे नही मिट सकी, पर उनके बीच गहरा खाइया नही बन पाई। किसी भी निमित्त विशेष को लेकर अनेकश एक जगह बैठ सके, खा पी सके, एक दूसरे की भावना का आदर कर सके और वैचारिक क्षेत्र मे स्थूल और सूक्ष्म के अन्तर को आदान प्रदान की प्रक्रिया से, वादो और शास्त्रार्थो से समझ सके समझा सके।

३ इस बडे काम मे निश्चय ही राजस्थान के जैन आचार्यों, साधुओ तथा प्रबुद्ध गृहस्थो का भी प्रशसनीय योग रहा—ऐसा योग जिसका प्रभाव देशकालातीत है। कम से कम लेकर अधिक से अधिक देने की वृत्ति वाले जैन श्रमणो या तापसो ने एक स्थान से दूसरे स्थान तक पद-यात्रा करते हुए जन साधारण की चेतना के आवरणो को हटाने और शुद्ध एव सरल जीवन धारा को निरन्तर प्रवाहित करते रहने मे स्थायी योग दिया। उन्होने व्यक्ति की समस्याओ को जाना, उसकी पीडा का अनुभव किया और सामाजिक रूप से उनका समाधान किया। त्याग और तपस्या के महत्व को मनोवैज्ञानिक रीति से समझाकर उन्होने अर्थशक्ति अथवा राज्यशक्ति से सम्पन्न लोगो को धन या राज्य को ही सब कुछ मानने के अभिमान से बचाया और दोनो शक्तियो से हीन लोगो को दीनता या हीनता के भाव से मुक्त किया, उनमे आत्म-बल का सचार किया। जीवन के लक्ष्य की स्पष्ट रूप रेखा प्रस्तुत करके उसकी प्राप्ति की ओर सभी वर्गों के लोगो को—मानवमात्र को—गतिशील किया। प्रबुद्ध गृहस्थो ने भी साधु सस्था की उपयोगिता को समझा और अपने व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन मे आत्मोद्धार के पथ का अवलम्बन करते हुए उन्होने साधु-सन्तो के कार्य को आगे बढाया। यह परम्परा आज भी चालू है। आज भी सहस्रो की सख्या मे साधु साध्विया अर्थतन्त्र की बारीक पर सशक्त तन्त्रियो मे जकडे मानव को पैदल ही गाव-गाव और नगर नगर जाकर अपनी—स्वय की—गहराइयो मे उतरने की प्रेरणा दे रहे हैं। बहिरात्मा को अन्तरात्मा बनने की प्रेरणा देने का काम साधारण नही है। अपने सन्तुलन या समत्व को बनाए रखते हुए दूसरो को अन्तर्मुख बनाना आत्मवान व्यक्तियो के लिए ही सम्भव है। कितना महान् योग रहा है हृदय परिवर्तनकारी इस बडे काम मे इन आचार्यों, साधुओ और विद्वानो का। इसका प्रत्यक्ष दर्शन उस विपुल साहित्य के अध्ययन से हो सकता है जिसमे पूर्वागम (चतुर्दश पूर्व, द्वादश अ ग और आगम) एव उन पर आधारित विविध विधाओ मे विरचित प्राकृत, सस्कृत, अपभ्र श और आधुनिक भारतीय तथा विदेशी भाषाओ की कृतियो का समावेश है।

४, जैन दृष्टि तत्त्व-ज्ञान पर बल देती है। स्व और पर का भेद, चेतन औ[illegible] र का

भेद, जीव और अजीव का भेद, एक ही बात है विभिन्न शब्दो मे। इस भेद का इतना विस्तृत, गहन और सूक्ष्म विवेचन किया है जैनाचार्यों ने कि इसी कारण एक विज्ञान अस्तित्व मे आ गया, भेद विज्ञान। और वह जैन दर्शन की एक विशेषता बन गया। यदि आत्मा और अनात्मा का भेद दर्शन ज्ञान और चारित्र की सम्यक्ता से यथार्थ रूप मे उपलब्ध हो गया तो जीवन सार्थक हो गया। कर्मरूप पुद्गल बन्ध से मुक्ति जीवन का परम पुरुषार्थ है, उसके लिए अन्तरात्मता चाहिये। पर वासनाओ के जटिल जाल मे फसा हुआ आज का असन्तुष्ट मानव केवल प्रवृत्ति की भाषा को ही समझता है। जैन दर्शन प्रवृत्ति की भाषा मे भी एक ऐसी आचार पद्धति को प्रस्तुत करता है जो उसे सही मार्ग पर ला सके। यह पद्धति लौकिक सम्बन्धो को यथार्थ या मूर्त रूप मे प्रस्तुत करने की है। यथा, अहिंसा जो आत्मा का भाव है उसकी ओर किसी को उन्मुख करने के लिए कहा जाय—हिंसक की आकृति को देखो, उसके कामो को देखो, जिसकी हिंसा हो रही है उसकी दशा को देखो, इससे होने वाले समाज व्यापी परिणामो को देखो, इसके विपरीत अहिंसक की आकृति को देखो, उसके कामो को देखो जिसके साथ अहिंसामय व्यवहार हो रहा है उसकी दशा को देखो, इसमे होने वाले सामाजिक परिणामो को देखो। और फिर दोनो के अन्तर को समझो—। इसी प्रकार चौर्य अचौर्य, असत्य सत्य अपरिग्रह परिग्रह और अब्रह्मचर्य ब्रह्मचर्य, इनमे रत रहने वाले लोगो के कार्यों का अन्तर समेत बोध सुस्पष्ट रीति से सोदाहरण दिया जाय।

इस बोध का यही परिणाम आना चाहिए कि मानव परावलम्बिता के स्थान पर स्वावलम्बी बने, उसका ज्ञानावरण हटे और वह अपने ज्ञानमय रूप मे प्रतिष्ठित होता जाय। स्पष्ट है, मानव के जागरण के किसी भी प्रसग मे स्व-रूप मे प्रतिष्ठित होने की बात का सर्वथा सॉगत्य और औचित्य है। अणुव्रतो और महाव्रतो के नाम से सुपरिचित अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य तथा दश लक्षण धर्म के नाम से सुविदित क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि मूल्यो की जीवन मे अभिव्यक्ति होनी ही चाहिये तभी असस्कार या कुसस्कार, अशिक्षा या कुशिक्षा से जनित दोषो का उपशम या क्षय होगा। और तब व्यक्ति सुधार के मार्ग से समाज के नव सास्कृतिक जागरण का मार्ग खुल जायगा। इसके लिए प्राचीन दोषपूर्ण रूढियो को छोडकर आधुनिक आवश्यकताओ के अनुरूप स्वस्थ परम्पराओ का निर्माण करते रहना होगा।

५ यह एक शुभ लक्षण है कि जैन समाज चाहे कितना भी अर्थ परायण हो गया है उसके घटक व्यक्ति के विचार और भाव दोनो के किसी न किसी विन्दु पर अध्यात्म का प्रभाव गहराई को लिये हुये है। इसलिए देश और समाज के नव जागरण के प्रसग में इस प्रभाव का अधिक से अधिक उपयोग होना चाहिये। वर्तमान मे नव जागरण से इतना भी अभिप्राय पर्याप्त हो सकता है कि मानव समता, एकता और परस्परोपयोगिता के महत्त्व को भौतिक और आध्यात्मिक दोनो स्तरो पर समझे। उसके शिक्षण प्रशिक्षण, उद्योग व्यवसाय तथा ज्ञान विज्ञान की उपलब्धियो मे अहिंसक भाव की प्रमुखता हो जिससे समाज उस स्थिति मे आ जाय जो नव जागरण के लिये उपयुक्त भूमि बन सके।

भगवान् महावीर के २५००वें निर्वाणोत्सव के इस वर्ष मे जो भी सावचेता लोग हैं, चाहे वे गृहस्थ हैं या गृहत्यागी, सागार हैं या अनागार अपनी उदार भावना, सयत वाणी और अप्रमत्त आचरण से सर्वोदय की इस दिशा में चल पडें, इतना ही पर्याप्त है। गति होगी तो अवरोध हटेंगे और फिर लक्ष्य की प्राप्ति सुनिश्चित है।

[५] श्री रिषभदास रांका

१ राजस्थान की भारतीय संस्कृति को सबसे बडी देन है, त्याग। राजस्थान का इतिहास आत्मोत्सग से भरा पडा है। चारित्र्यशील तथा आत्म-सम्मान के लिये मर मिटना राजस्थानियों की विशेषता है। आजादी, धर्म व शील की रक्षा के लिये हसते-हसते मृत्यु का वरण करना यहा की वीर रमणियो का धर्म रहा है। आश्रय मे आये हुये की रक्षा के लिये बडे शत्रु का भी हिम्मत से मुकाबला करना और समय आने पर सर्वस्व त्याग कर देना यहा के वीरो की परम्परा रही है। त्याग और शौय की गाथाए राजस्थान के साहित्य मे प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध है। मातृभूमि या शासक के प्रति समर्पण करने वाले भामाशाह और पन्ना धाय जैसे उदाहरण भी राजस्थान के इतिहास मे पाये जाते है। शरण मे आये हुये को उदारतापूवक अभयदान देना और उस शत्रु से परास्त होने की घटनाए भी राजस्थान मे अनेक घटी है और हमीर का नाम तो इसी कारण हठी-हमीर पड गया था। धर्म के प्रति अपूर्व श्रद्धा, कला के प्रति अगाध प्रेम, उपास्यदेव के प्रति अनुपम भक्ति राजस्थान मे देखने को मिलती है। भारतीय कला के उत्कृष्ट नमूने भी राजस्थान मे हैं और उसको आध्यात्मिक रूप देने की विशिष्टता भी यहा परिलक्षित होती है। स्थापत्य, चित्रकला व साहित्य का विपुल सृजन भी राजस्थान मे हुआ है। विदेशियो के हुये उत्तर दिशा के हमलो को रोकने तथा मन्दिरो व मूर्तियो को बचाने का काम राजस्थानी वीरो ने किया। भारतीय सस्कृति मे सभी दृष्टियो से राजस्थान मुकुटमणि कहा जाय तो अतिशयोक्ति नही होगी।

२ वैसे भारतीय धर्मों की तीनो शाखाओ (जैन, बौद्ध और वैदिक) का कम अधिक मात्रा मे योगदान रहा है। वैदिक व जैनियों का योगदान बौद्धो की अपेक्षा अधिक है। वैदिक शाखाओ मे से वैष्णव व शैव दोनो के ही अनुयायियो ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। राजस्थान के तीर्थो मे शिव, कृष्ण व राम तीनो का ही योगदान रहा है और तीनों के ही मदिर और भक्ति राजस्थानियो मे आज भी पाई जाती है। वैदिक या ब्राह्मण शाखा की तरह जैनियों का प्रभाव भी इस प्रदेश मे विशेष रूप से पाया जाता है। नाथपथी एव योगियो का भी प्रभाव प्राचीनकाल से अब तक कही-कही दिखाई देता है। प्राचीन मदिर राजस्थान के विविध क्षेत्रों मे पाये जाते हैं। विदेशियो को जैन व भारतीय बनाने का महत्त्वपूर्ण कार्य अनेक आचार्यों ने किया जो आचार्य जिनदत्तसूरि तक चलता रहा। जैन के प्रभावक आचार्यों ने विदेशियो को जैन के रूप में भारतीय बनाकर भारत की अखण्डता को सुरक्षित रखा था पर बाद मे वर्णाश्रम धर्म का प्रभाव बढने से जन्म से जाति मानी जाने लगी। वर्ण मे ऊच नीच का भेद तीव्र बनकर विदेशियों को भारतीय बनाना तो बन्द हुआ ही पर उनके सम्पर्क में आने वाले को धर्म से अलग किया जाने लगा। छूआछूत का प्राबल्य बढा। यदि कोई विदेशी का छुआ हुआ भोजन भी कर लेता तो उसे अपने धर्म से बाहर किया जाने लगा, फलत लाखों नही करोडो भारतीयों ने पर-धर्म स्वीकारा जिसका प्रारम्भ मुस्लिम काल से ईसाइयो के समय तक चलता रहा। भारत के पराधीन बनने व विभाजन का दु खद इतिहास हमारी सकुचितता के कारण सर्जित हुआ। जैनियों के आचार्यो ने उसके बाद भी जैन बनाने का काम तो किया ही पर उनका प्रभाव वर्णाश्रम धर्मवालो के समक्ष कुछ कम रहा। स्वय जैन गृहस्थ भी छूआछूत और छोटे-बडे के भेद को मानने लगे। कई जैन जातियां भी अजैन बनी और जो नये जैन बने उन्हें भी जैनी अपने मे शामिल न कर पाये।

जब मुगल काल में मुसलमानो का प्रभाव बढा तो अजमेर जैसे स्थान पर उनका बहुत बडा

तीर्थस्थान बन गया। कई जैन व हिन्दू मदिर, मस्जिदो के रूप में परिवर्तित हुये। मुस्लिमो की तरह ईसाइयो ने भी अपने धर्म के प्रचार का क्षेत्र राजस्थान के पिछडे हिस्से व पिछडी जातियो में बनाया। राज्यसत्ता से भी उन्होने सेवा के बल पर तथा भारतीयो की ऊच-नीच की भावना का लाभ उठाकर अपने धर्म का प्रसार किया। आज अनेक स्कूल, शिक्षा सस्थाएँ तथा अस्पताल ईसाइयो के हैं। अकाल के समय लोगो को सहायता पहुँचा कर उन्हे अपने धर्म मे ये आकर्षित करते रहते हैं। जब तक अग्रेजो का राज्य रहा उन्होने अपने धर्म-प्रचारको के द्वारा उनके काम में सहायता की, पर अग्रेजो ने धर्म-प्रचार में राजस्थान मे जोर-जबर्दस्ती की हो, ऐसा नही दिखाई देता। जिन सेवा के तरीको से अग्रेजो ने ईसाई धर्म को बढावा दिया, जैनियो ने भी धर्मप्रचार में इसी तरीके से धर्म-प्रसार का काम किया था। जैनो के चार दान प्रसिद्ध है—अन्नदान, विद्यादान, औषधिदान और अभयदान। जैनाचार्यों ने उत्तर की तरह दक्षिण में भी यही तरीका अपनाया। हमारे यहा यतियो ने शिक्षा, वैद्यकीय, ज्योतिष, मत्र-विद्या द्वारा धर्म-प्रचार का काम किया।

३ जैनाचार्यों का राजस्थान की सास्कृतिक चेतना जागृत रखने मे बहुत बडा योगदान रहा। जैसा हम ऊपर बता चुके हैं कि उन्होने विदेशियो को भारतीय बनाने का महत्त्वपूर्ण कार्य यूनानी, सिथियन, शक, हूण, आभीर, गुर्जर और न मालूम कितनी ही जातिया भारतीय बनी और भारत की राष्ट्रीयता सुरक्षित रखी। ऊच-नीच के भेद को प्रश्रय मिलने पर आपसी ईर्ष्या और द्वेष बढा जिससे हम टुकडो मे बट गये। कई बार तो विदेशियो को अपनी फूट के कारण ही हमने विजयी बनाकर गुलामी अपनाई। यदि जैनाचार्यों की उदारता और व्यापक दृष्टिकोण को समाज अपनाता तो उनकी शक्ति का बहुत अधिक उपयोग होता। उन्होने जो समाज मे सद्‌गुणो और चारित्र्य की प्रतिष्ठापना के लिये कठोर दिनचर्या व जीवन अपनाया था उसका लाभ राजस्थान व पूरे भारत को अधिक मिलता। इन जैनाचार्यों ने प्रजा मे धर्म व उदात्त विचारो का प्रसार किया था। उससे राष्ट्र अधिक सुदृढ होता। फिर भी जैन साधुओ की त्यागपूर्ण व श्रमाधारित चर्या व निस्पृह जीवन निरर्थक गया हो, ऐसी बात नही।

समाज के विविध क्षेत्रो मे जैनाचार्यों ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया। समाज में सद्‌गुणो की प्रतिष्ठापना की जिससे जैन श्रावको ने निस्वार्थ भाव से शासन के द्वारा अनेक जनोपयोगी कार्य किये और आज जैनी सख्या के अनुपात मे सेवाकार्यो मे अधिक योगदान देते हैं। चाहे वह क्षेत्र राजनैतिक हो या सामाजिक, शैक्षणिक हो या सेवा का। इसके अतिरिक्त साहित्य और कला के क्षेत्र मे भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। जीवन मे त्याग के महत्त्व को उन्होने बनाये रखा है और आज भी त्याग के महत्त्व को उन्होंने सामाजिक जीवन मे महत्त्वपूर्ण स्थान दिलाया है। उनकी अहिंसा का उन पर तथा लोकजीवन पर अच्छा परिणाम हुआ है और आज भी मासाहार की अपेक्षा निरामिष भोजन ही होता है और जो मासाहार करने वाली जातिया है वे भी धार्मिक पर्वो मे मासाहार नही करती। निर्व्यसनता, परिश्रमशीलता, मितव्ययता आदि गुणो का जनजीवन पर जो प्रभाव दीखता है वह भी कुछ अशो मे जैनाचार्यो तथा जैन धर्म के सिद्धान्तो का ही प्रभाव है। जैन साधु पद यात्रा के द्वारा जनजीवन को अपने उपदेशो से प्रभावित करते रहते है। उनके कठोर व त्यागमय जीवन को देखकर साधुत्व यानी त्याग ऐसी मान्यता साधुओ के सम्बन्ध मे सहज मे होकर उनसे त्याग की अपेक्षा रखी जाती है। एक तरह से मानवीय गुणो की वृद्धि मे जैनाचार्यो व जैन धर्म का विशिष्ट स्थान स्पष्ट दिखाई देता है।

४. जैन धर्म का आचार मार्ग और मानवीय गुणो की वृद्धि पर दिया हुआ वल, ये तत्त्व ऐसे हैं जिनसे सास्कृतिक जागरण मे प्रेरणा मिल सकती है। जीवन को विशुद्ध बनाकर धर्माचरण आये विना हम केवल भगवान् की भक्ति कर अपना उद्धार नही कर सकते। हमारे दुष्कर्मों व सत्कर्मों के हमे फल मिलते है जिससे भगवान् की भक्ति मे से परावलम्वन दूर होकर कामनिक भक्ति के कारण जो अकर्मण्यता जनता मे आती है उसे दूर करने व जीवन मे सदाचार का महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने मे जैन तत्त्व सहायक हो सकते है। जैन धर्म मे मनुष्य जाति से नही, कर्म से छोटा-वडा या ऊच-नीच माना गया है। इसका आधार लेकर छूआछूत को मिटाकर समता भाव प्रतिष्ठित करने मे जैन धर्म प्रेरक बन सकता है। जैन धर्म का अनेकान्त सिद्धान्त अन्य सम्प्रदायो के साथ उदारता का व्यवहार सिखाता है। इससे साम्प्रदायिकता के दुष्परिणामो से वचा जा सकता है। धर्म और कर्तव्य के लिये त्याग की प्रेरणा जैन धर्म दे सकता है। जैनियो ने सगठित होकर अपने जाति या धर्म के लिये कभी विशेष अधिकार नही मागे, किन्तु सदा राष्ट्रीयता को ही प्राधान्य दिया है। उन्होने आजादी के जग मे या उसके भी जातीय द्वेष को बढावा न देकर, राष्ट्रीयता को प्राधान्य दिया है। जैनियो को दान या सेवा की विरासत परम्परा से प्राप्त है। वे आज भी व्यापक दृष्टिकोण से सेवा कार्यों मे योगदान देते है।

५ मेरी दृष्टि मे राष्ट्र या मानवता के सास्कृतिक नव-जागरण मे जैन समाज बहुत बडा काम कर सकता है और उसे करना चाहिये। नव सास्कृतिक जागरण मे आज सबसे बडी आवश्यकता समता और आत्म स्वातन्त्र्य भाव की है। आज का प्रवुद्ध व्यक्ति, चाहे वह किसी भी विचारधारा से प्रभावित हो, समता को प्राथमिकता देता है। जैन धर्म प्रत्येक व्यक्ति मे पूर्ण विकास की क्षमता मानता है और इस बात पर वल देता है कि व्यक्ति अपने सद्गुणो व पुरुषार्थ से सर्वोच्च पद पा सकता है। उसे अपने पूर्ण विकास के लिये या महत्त्वपूर्ण स्थान पाने के लिये किसी की गुलामी नही करनी होती। जैन धर्म उच्च स्थान प्राप्ति के लिये याचना की जरूरत नही मानता। उसकी उपासना, अपने उपास्यदेव ने जिस मार्ग से और जैसे विकास किया, उसके अनुकरण की है जो उसे कर्मण्यता की ओर प्रेरित करती है। अपने विकास मे बाधक दूसरा नही परन्तु स्वय उसकी कमिया है, यह प्रेरणा जैन धर्म से प्राप्त की जा सकती है। भगवान् महावीर के २५००वें निर्वाण वर्ष मे उनके सर्वोपयोगी और सभी का कल्याण करने वाले उपदेशो का आज के सन्दर्भ मे प्रचार-प्रसार होना आवश्यक है। यदि जैनियो ने यह कार्य किया तो उसमे उनका, राष्ट्र का व मानव जाति का कल्याण है। महावीर का उपदेश विशुद्ध धम का उपदेश है। उसमे कही व्यक्तिगत श्रेष्ठता को आवश्यकता से अधिक स्थान नही है, पर सद्गुणो को ही प्रधानता है। उच्च तत्त्वो के आचरण से ही कल्याण हो सकता है, यह विधान है। यह धर्म शाश्वत है, सर्वकाल के लिये उपयोगी है और वुद्धि द्वारा प्रतिपादित तत्त्वो को जीवन मे अपनाने की प्रेरणा देने वाला है। उसका प्रचार यदि जैनी कर सकें तो वे सास्कृतिक नव जागरण मे महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकेंगे। स्वय समता का आचरण सयमपूर्वक करें और दूसरे को वैसा करने की प्रेरणा दें, यही भगवान् महावीर के प्रति सच्ची श्रद्धाजलि हो सकती है।

[६] डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय

१ भारतवर्ष की सस्कृति का अग राजस्थान है। प्रत्येक अचल की अपनी सास्कृतिक और कलात्मक उपलब्धिया होती हैं, वे राजस्थान की भी हैं। राजस्थान सस्कृतियो का भडार है। यहा

बहुत से जनसमूह और जातिया, जमातें बाहर से आईं। उन्होने यहा राज्य बनाये और सामान्य भारतीय जीवन मे घुलमिल गये। इस तरह राजस्थान मे एक घुलीमिली सस्कृति है। लेकिन उसके कई रग अपने हैं जो यही मिलते हैं और कही नही मिलते। राजस्थान की सस्कृति की विशेषता इसका समन्वित रूप है। यहा विभिन्न सस्कृतियो मे घुलनशीलता है। यहा हिन्दू समाज की प्रधानता होते हुए भी जैन धर्म बहुत सबल है और अनेक प्रभावशाली व्यक्ति उसमे विश्वास करते हैं।

२ राजस्थान वीर भूमि भी है और योग भूमि भी है। यह साधना-स्थल रहा है और आज भी है। यहा मनुष्य ने विभिन्न धर्मों के निर्देशन मे प्रवृत्तियो से ऊपर उठकर आध्यात्मिक मनोविज्ञान की सृष्टि की, जिसकी वजह से सारी दुनिया मे इस देश को आज भी गौरव मिलता है, क्योकि वे देश प्रवृत्तियो से परेशान हैं और मूल्यहीनता के शिकार हैं। राजस्थान ने महान् हठयोगियो और देलवाडा मन्दिर के महान् निर्माताओ को जन्म दिया। कई जैन अजैन विद्वानो और साहित्यकारो को जन्म देने का श्रेय भी इसे है। राजस्थान के सामन्ती शासक चर्च या धर्म के प्रति यूरोप के सामन्तो की तरह मुकाबले की मन स्थिति मे नही थे। वे परम्पराओ के अनुसार शासन करते थे। यह देश अत्यन्त प्राचीन और सभ्य देश है इसलिये स्मृतियो मे वर्णित कठोरताए, परम्पराओ के कारण कम होती रहती थी। फलस्वरूप सब एक-दूसरे को सहते थे। यह सहनशीलता राजस्थान के वातावरण मे भी है और अवचेतन मे भी। फिर भी रग की दृष्टि से राजस्थान मे प्रत्येक मत और प्रत्येक सगठन ने अपनी पहचान को बनाये रखा है। उसकी अपनी परम्पराए, मूल्य और रीतिरिवाज हैं।

३ जैन धर्माचार्यो का सबसे बडा योगदान यह रहा कि उन्होने भारतीय सस्कृति को वैचारिक उदारता और व्यावहारिक सहनशीलता दी। उन्होने मानव व्यक्तित्व के विकास का चरम आदर्श प्रस्तुत किया और इस विकास बिन्दु को पाने मे बाधक हर चीज को छोड दिया। प्रवृत्ति से शुद्ध विचार या आदर्श की इस यात्रा मे राजस्थान के जैन साधको, जैन विद्वानो और सामान्यत सभी जैन मतावलम्बी नागरिको ने यथासभव इस आदर्श को पाने की कोशिश की और यह कोशिश जारी है। चरम अहिंसा मे विश्वास करने के कारण जैन मत का एक सीमा तक आर्थिक व्यवस्था पर भी असर पडा। कृषि मे हिंसा होने के कारण अहिंसावादियो ने उद्योग-धन्धो और व्यवसाय को अपनाया, जिनमे साक्षात् हिंसा नही होती। जैन मत के प्रभाव से परम्परागत व्यवसायी व्यक्ति यूरोप और अमरीका के धन प्रदर्शनवादी और अहकारी व्यवसायियो की तुलना मे बहुत नम्र और सभ्य प्रतीत होते हैं। जीव दया के प्रचार से हिन्दुस्तानी व्यवसायियो के प्रति सामान्य जनता मे उतनी नफरत नही है जितनी कि समझी जाती है। आधुनिक व्यवसायी और परम्परागत व्यवसायी का अन्तर मुख्य रूप से जैन प्रभाव का अन्तर है। आधुनिक व्यवसायी धर्मोन्मुख नही है। वह किसी उच्चतर मूल्य को स्वीकार नही करता। इसीलिये वर्ग चेतना बढ रही है।

है जो मनुष्य के विकास मे बाधक है या व्यवहार मे उसकी गरिमा की विनाशक है। इसलिये जैन मत के अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह, जीव-दया इत्यादि चरम मूल्य आज भी मानवता के लिये प्रेरक हैं और कल भी रहेगे।

५ यदि अपरिग्रह और जीवदया, इन दो महान् मूल्यो को जीवन-व्यवहार मे परिणत करने के लिये सघर्ष कर सकें तो जैन मत सास्कृतिक पुनर्जागरण में निर्णायक भूमिका अदा कर सकता है। देश को एक सास्कृतिक क्राति की आवश्यकता है जिसमे व्यक्ति वस्तुओ के प्रति मोह छोडे, उपभोग से ऊपर उठे और एक ऐसे समाज की रचना करे जिसमे प्रत्येक व्यक्ति अपनी आतरिक और बाह्य आवश्यकताओ को पूरा कर सके, अपनी सम्भावनाओ को चरितार्थ कर सके। परिग्रही होकर जैन मत का प्रचार धर्म को सम्प्रदाय मे परिणत करता है जबकि जैनधर्म धर्म है, सम्प्रदाय नही। उसकी अपील साम्प्रदायिक नही, सार्वभौमिक और सार्वजनिक है।

[७] श्री सौभाग्यमल श्रीश्रीमाल

१–२ एक विद्वान् ने कहा है "सामान्यत. धर्म निर्वाण का एक साधन है। धर्म वह है जो निष्कामता के लिए हो, कामनाओ की वृद्धि के लिए नही, विराग के लिए हो, राग के लिए नही, सासारिक लाभो को घटाने के लिए हो, बढाने के लिए नही, निर्लोभ के लिए हो, लोभ के लिए नही, सन्तोष के लिए हो, असन्तोष के लिए नही, एकान्त के लिए हो, भीड के लिए नही, उद्यम के लिए हो, प्रमाद के लिए नही, अच्छाई मे प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए हो, बुराई मे प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए नही" यही कारण है कि धर्म और सस्कृति मे परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध रहता आया है। वस्तुत सस्कृति के तीन प्रमुख कार्य हुआ करते हैं। पहला यह कि सस्कृति शिक्षा और अनुशासन के द्वारा मनुष्य के नैतिक, बौद्धिक और सौन्दय बोध से सम्बन्धित विकास को सम्पन्न करे। दूसरे वह ललित कलाओ, मानवीय शास्त्रो और विज्ञान के उदार पक्षो मे अभिरुचि उत्पन्न करे और विकास मे योग दे। तीसरे वह मानवीय स्वभाव को सुसस्कृत करे और उसे प्रकाश प्रदान करे। ललित कलाएँ मनुष्य के हृदय को अधिक प्रभावित करती हैं और उसकी चेतना को उच्च धरातल पर ले जाने मे समर्थ होती हैं फलत उसको अधिक सस्कृत और विशुद्ध करती है।

सामान्यत. कला के दो रूप हैं, धार्मिक और लौकिक। धार्मिक कला मनुष्य की चेतना को उच्चतर धरातल पर ले जाने का प्रयत्न करती है। उदाहरण के लिए किसी कलाकृति अथवा कलात्मक सौन्दर्ययुक्त मूर्ति को लीजिये। जब साधक उसकी ओर अपने चित्त को स्थिर करता है तो स्वभावत, उसे अपनी चेतना को निमल और परिशुद्ध करने मे सहायता मिलती है। इस प्रकार कला मे चित्र कला, मूर्ति अथवा स्थापत्य कला, सगीत और कविता को एक आध्यात्मिक परम्परा मे अन्तर्निबद्ध कर दिया गया है।

३ जैनधर्म और उसकी मान्यतायें इन सभी क्षेत्रो मे अपूर्व योगदान देते रहे हैं। राजस्थान मे आज भी जैन धर्म का अधिक प्रभाव है और यहा के जन-जीवन मे जैन मान्यताओ की छाप किसी न किसी रूप मे दृष्टिगत होती है। जैन साधु और श्रावको ने विभिन्न प्रकार के साहित्य की रचना की। प्राकृत सस्कृत और सर्व प्रचलित राजस्थानी भाषा मे अनेक मौलिक रचनाए आज भी हस्तलिखित और उनमे से कुछ मुद्रित उपलब्ध हैं। साहित्य को लोकोपयोगी एव प्रभावशाली बनाने के उद्देश्य से और सब साधारण के समझने और मनन करने की दृष्टि से ढाल, चौपाई, लावणी, ख्याल आदि कई

रूपो मे लिपि बद्ध किया। छपाने की सुविधा उपलब्ध नही होने के युग मे भी उनको सुन्दर, सुडौल, अक्षरो मे, दीर्घ जीवी कागजो पर टिकाऊ स्याही से मोटी, बारीक लेखनी द्वारा लिखा गया जिनके प्रत्यक्ष उदाहरण आज भी ग्रन्थ भण्डारो मे सुरक्षित है। पद्य के प्रति विशेष रुचि रही। जिनमें अनेक प्रकार के छन्दो का उपयोग किया गया। अधिकतर उनमे गेय है। जिनको पाठक गा सकता है और श्रोताओ को मन्त्र मुग्ध कर सकता है। धार्मिक मान्यताओ और प्रक्रियाओ की जन-जन पर छाप रहे इस दृष्टि से इन गेय पदो का आज भी बडा प्रभाव देखा जा सकता है। इन ग्रन्थो के निर्माण मे शास्त्रीय सगीत को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। उसकी परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखने मे जैन धम की बडी देन हे। हस्तलिखित ग्रन्थो की लेखन कला के विकास मे जैन धर्म का विशेप योगदान रहा है। जो ग्रन्थ समय के प्रभाव से लुप्त होते जा रहे थे अथवा जीर्णशीण हो रहे थे उनको सुरक्षित रखने की दृष्टि से भी उनका प्रतिलेखन किया गया जिसके कारण वे दुर्लभ ग्रन्थ नष्ट होने से बच सके। ऐसे ग्रन्थो के आधार पर उनके निर्माताओ का इतिवृत्त भी जाना जा सका। इस इतिवृत्त की भी एक विशेषता यह है कि अधिकतर ग्रन्थो मे प्रारम्भ या अन्त मे लेखक ने अपने सम्बन्ध मे, अपने समय की परिस्थितियो एव विशेपताओ के बारे मे भी उल्लेख किया है। इससे ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का सामान्य परिचय मिलता है।

साहित्य सरक्षण मे भी जैन लोगो ने बडा काम किया है। जैन सन्तो ने हस्तलिखित ग्रन्थो को स्वय लिखकर अथवा औरो से लिखवा कर ग्रहस्थो के पास रखवाया जिसका आवश्यकतानुसार समय समय पर स्वय भी उपयोग करते रहे। ऐसे ग्रन्थो को एकत्रित कर गृहस्थो ने बडे-बडे ग्रन्थ-भण्डार एव सग्राहलय खडे कर दिये जहा वे आज भी सुरक्षित है और अनुसन्धान कर्ताओ के लिए अमूल्य सामग्री प्रस्तुत करते हैं। हस्तलिखित ग्रन्थो के निर्माण के साथ-साथ जैन मतावलम्बियो ने कला के क्षेत्र मे भी अनुपम कृतिया निर्मित की हैं।

सामान्यत जैन साधु काष्ठ के उपकरण ही काम मे लेते है। इन उपकरणो को कलात्मक स्वरूप देने मे उनकी बडी देन है। स्वय साधु उन पर वारनिश करने, रग करने, उनको चित्रित करने और सुन्दर स्वरूप देने मे बडा कार्य करते रहे हैं। हाथ मे रखने की लकडी की पट्टी छोटी स्केल (चपटी) जिसकी सहायता से पंक्तिवार शास्त्र पढा जा सके को तरह तरह के आकर्पक स्वरूपो मे तैयार करते रहे है। इन कलाकृतियो मे २४ तीर्थंकरो के छोटे नाप के गोल चित्र भी बडा महत्त्व रखते हैं जिनमे प्रत्येक तीर्थंकर का मुह बोलता हाथ का बना चित्र बहुत से श्रावको के घरो मे आज भी देखने को उपलब्ध है जो इस बात का प्रमाण है कि जैन धर्मावलम्बियो ने चित्रकला के प्रचार व प्रसार मे और उसको जीवित रखने मे बडा योगदान दिया है। उनमे बडे-बडे ज्योतिपी, चित्रकार, लेखक, कवि एव कलाविद् हुए हैं। मूर्तिकला और स्थापत्य कला के जीते जागते नमूने तो पूरे राजस्थान मे मौजूद हैं। देलवाडा और उसके आस-पास के अन्य जैन मन्दिरो को देखकर देश-विदेश के दर्शक आज भी दातो तले उगली दबा लेते है।

इसी प्रकार सामाजिक क्षेत्र मे भी जैनो की बडी देन रही है। उन्होने कट्टरता और धर्म विरोध को प्रश्रय नही दिया। आज भी आम जैन अपने शादी ब्याह के अवसरो पर जैनेतर—प्रणाली से विवाह सस्कार व अन्य रीति रिवाज करता है। आज भी लक्ष्मी पूजन, गणेश पूजन, सरस्वती पूजन, गणगौर पूजा, होलिका दहन आदि अनेक अवसरो पर राष्ट्रीय मान्यता को ही महत्त्व देता है और उनसब का दैनिक जीवन मे एक सामान्य स्थान हो गया है।

४ यह उदारता एव आत्मसात् करने की भावना सदा से जैन धर्मावलम्बियो मे रही है। धार्मिक सहिष्णुता एव दूसरे धर्मों को उचित आदर देना अनेकातवाद का ही प्रतीक है। यही कारण है कि जैन धर्म के विशिष्ट सिद्धातो का किसी न किसी रूप मे, राजस्थान मे पनपे अन्य धर्मा मे, थोडा-बहुत प्रभाव आज भी देखने को मिलता है। अहिंसा, अनेकान्तवाद, अपरिग्रह, ध्यान, मानवता, करुणा, दार्शनिक चिन्तन, चित्त की शुद्धि, मैत्री, उदारता, आत्म वलिदान आदि अनेक मान्यतायें आज के इस भौतिकवाद के युग मे भी अपरिहार्य हैं। आवश्यकता यह है कि उनको वतमान परिप्रेक्ष्य मे नवीन स्वरूप मे उपस्थित किया जाय।

५ जैन धर्म मानने वालो का राजस्थान की सामाजिक एव शैक्षणिक प्रवृत्तियो मे भी वडा योगदान रहा है। अधिकतर जैन समाज व्यापार उद्योगो के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण कार्य करता है। यही कारण है कि इस प्रकार से होने वाली आय का एक निश्चित भाग धर्मार्थ नाम से बचाया जाता है और उससे लोकोपकारी प्रवृत्तियो को सहायता दी जाती है। इस सहायता से राजस्थान मे अनेक विद्यालय, महाविद्यालय, छात्रावास, वृद्धाश्रम, विधवाश्रम, उद्योग शिक्षण केन्द्र, पुस्तकालय, वाचनालय, साहित्य प्रकाशन सस्थान, धार्मिक शिक्षणशालाये, जीवदया केन्द्र, असहाय सहायताकोष, छात्रवृत्तिया, स्वाध्याय मडल, औषधालय, अस्पताल आदि जैन धर्मावलम्बियो द्वारा वर्षों से चल रहे हैं और राजस्थान के विकास मे सहायक हो रहे है। उक्त प्रकार की कतिपय सस्थाए सार्वजनिक रूप से सभी लोगो के लिये सेवारत हैं और सकुचित भावना से ऊपर उठकर काम करती हैं।

राजनीतिक क्षेत्र मे भी जैन समाज ने वडा सक्रिय भाग लिया है। प्रशासन के ऊचे से ऊचे पदो पर वे सफलता पूवक काम करते रहे है। स्वतन्त्रता सग्राम और उसके पश्चात् की राजनीति मे भी ऐसे जैन कर्मठ कार्यकर्ता रहे हैं जिन्होने अपने त्याग और वलिदान से राष्ट्र और प्रदेश को सुदृढ वनाने मे अद्वितीय भूमिका अदा की है।

सक्षेप मे, यदि अन्य जैन सिद्धान्तो को छोडकर, अनेकान्त एव अपरिग्रह इन दो ही को मुख्य रूप से लेकर चलें तो इन से ही हम वर्तमान मे व्याप्त सघर्ष और अशाति का सही ढग से शमन कर सकते हैं। ये दो महान् सिद्धात जैन धर्म और महावीर की अनोखी देन हैं। इन पर विचार किया जाना चाहिये और इनको आधुनिक परिस्थितियो मे कैसे उपयोगी बनाया जा सकता है, इस पर अधिकारी विद्वानो को गवेषणापूर्वक चिन्तन, मनन और फिर उसकी विवेचना समाज के सामने कार्यान्विति के लिए उपस्थित की जानी चाहिए।

[८] डॉ० नरपतचन्द सिंघवी

१ जातीय गौरव, स्वामिभक्ति, आत्मोत्सर्ग, शौर्य एव त्याग, सगुण-निर्गुण भक्ति एव हिन्दू-मुस्लिम प्रेम राजस्थान के सास्कृतिक दाय है। कला (स्थापत्य, मूर्ति, चित्र, सगीत तथा ललित कलाए और लोक कलाए), साहित्य (अपभ्रश, अर्धमागधी, डिंगल काव्य तथा इतर) तथा जैन धर्म के विकास, मध्यकालीन शौर्य—'रजपूती', नवयुग मे देश-भक्ति, मानवीय मूल्यो के रक्षार्थ उत्सर्ग की भावना प्रमुखतया सास्कृतिक दाय है।

२ प्रारम्भ मे वैष्णव धर्म (वैदिक यज्ञ धर्म), तदुपरान्त जैन धर्म इस प्रदेश मे अत्यन्त लोकप्रिय हुआ। महावीर ने स्थापित धर्म या सस्कृति के विरुद्ध विद्रोह किया तथा उपनिषदो की चिन्तनधारा को खीच कर वे अपनी मनोवाछित दिशा की ओर ले गए। महावीर ने भारतीय सस्कृति

परिशिष्ट

हमारे सहयोगी लेखक

[परिचय अकारादि क्रम से है]

जैन धर्म के श्वेताम्बर, दिगम्बर आदि भेदो मे अन्तर्भुक्त थे। शूद्र, कबीर, रैदास आदि के अतिरिक्त जिस श्रेणी के सम्पर्क मे अधिक आते थे, उनसे प्रभावित होते थे। इन विभिन्न मतो, सम्प्रदायो ने क्षत्रिय व शूद्र वर्ण को छोडकर, शेष ने अहिंसा के व्यक्त रूपो को ग्रहण किया। वैष्णव मतानुयायियो ने परिस्थिति सापेक्ष अहिंसा को और जैनमतानुयायियो ने परिस्थिति निरपेक्ष अहिंसा को। लगभग सभी मे अन्य मत समादर विकसित होता गया। फलत: निरामिषाहार सगुण भक्ति, दया-दान, जीवन मे बाह्यातर शुद्धता आदि पनपे।

३ यह इतिहास की—जन जीवन के इतिहास की बात है। प्राय. जैन धर्माचार्य साधु-साध्वियो के प्रवचन, उपदेश, व्रतग्रहण प्रेरणादान की विशेष भूमिका रही। इनके उपदेश मन्दिरो, उपाश्रयो आदि के अतिरिक्त खुले सार्वजनिक स्थानो पर भी होते थे जिन्हे सभी मतानुयायी श्रद्धाभाव से सुनते थे। कथा-कहानियो, गीतो और राजस्थानी के स्थानीय रूपो के प्रयोग से इनके प्रवचन सहज, सुबोध और हृदयग्राह्य होते थे। जैन धर्मानुयायी विविध व्रत ग्रहण, तपपूर्ति के उपलक्ष्य मे दान धर्म तथा औषधालय, धर्मशाला मन्दिर निर्माण सचालन आदि के द्वारा जन कष्ट निवारण का प्रयत्न करते देखे जाते थे। रात्रि भोजन त्याग व शुद्धाहारपान के आग्रह के कारण इनकी विशिष्टता वैष्णवधर्मानुयायियो मे स्पष्टत पृथक् परिलक्षित होती थी। ये उच्च सस्कृति (महाजन सस्कृति) के चिह्न माने जाते थे।

४ अहिंसा, सत्य, अस्तेय ब्रह्मचय और अपरिग्रह ये पाच अणुव्रत (जिन्हे योग दर्शन मे 'यम' कहा गया है), अनेकातवाद, (जिससे सर्वमत समभाव, जीओ और जीने दो आदि व्यवहारो मे लाये जा सकते है), निरामिषाहार, रात्रि भोजन त्याग, मादक, उत्तेजक व्यसन त्याग (जिनके प्रचार-प्रसार मे स्वास्थ्य विज्ञान की सहायता ली जा सकती है तथा जो शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य सवर्धन के लिए आवश्यक है) 'जन्म' के स्थान पर 'कर्म' को महत्त्व प्रदान, अप्रमाद आदि मूल्य आज भी सस्कारशील जीवन के लिए प्रेरणा स्रोत बन सकते है। ये मूल्य अब तो 'जैन धर्म' के ही नही, 'मानव-धर्म' के लिए अपरिहार्य हैं। व्यवहार मे देखा यह जा रहा है कि जन्मना जैन कर्मणा जैन नही पाये जा रहे हैं। अत इन बातो पर 'जैन' धर्म की छाप लगाना बेमानी है। ये मानवमात्र के सास्कृतिक विकास के लिए उपयोगी है। फिर वैदिक मतानुयायी, वैष्णव आदि 'रात्रिभोजन त्याग' को छोड शेष बातें अधिकाश मे मानते है। अनेकातवाद को जैन धर्म का शब्द होने से भले ही न मानने का ढोल करें पर व्यवहार मे सापेक्षवाद के रूप मे मानते ही है। ईसाई, मुसलमान धर्मानुयायी निरामिषाहार की ओर आते आते आयेंगे।

५ रूढियो मे बधा रह कर, बुद्धि तर्कसगत हुए बिना जन्मना 'जैन' समाज युग की समस्याओ का समाधान नही कर सकेगा। सर्व धर्म समभाव व वैज्ञानिकता की ओर बढे बिना आधुनिक वैज्ञानिक उपलब्धियो का श्रमोपहरण करके, जैन शास्त्रो की तथाकथित अन्ध मान्यताओ से चिपके रहकर क्या निर्णायक भूमिका निभायी जा सकेगी ? जैन समाज 'जन्मना जैन' और अजैन की भाषा मे सोचता रहेगा तो क्या कर सकेगा ? जैन धर्म का युगानुरूप कायाकल्प आवश्यक है। वास्तव मे सभी धर्मो का कायाकल्प 'मानव धर्म' के रूप मे होने से ही विश्व मानवता का विस्तार होगा। सभी धर्मानुयायियो को विवेक की छलनी से छानकर अपने-अपने धर्मो की व्यर्थ रूढियो, निस्सार मान्यताओ और अवैज्ञानिकतापूर्ण विकारो को निकाल फेंकना होगा और मानव मात्र के लिए शुद्ध-मानव धम के रूप मे परिणत होना होगा, अन्यथा अपनी-अपनी खीचतान तो हो ही रही है, वह होती रहेगी।

•••

परिशिष्ट

हमारे सहयोगी लेखक

[परिचय अकारादि क्रम से है]

ले   -परिचय

१. श्री अगरचन्द नाहटा—हिन्दी व राजस्थानी के प्रसिद्ध गवेपक विद्वान् व लेखक, जैन धर्म और साहित्य के विशेपज्ञ, अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।

२ प० अनूपचन्द—कवि, लेखक और गवेपक, महावीर भवन, चौडा रास्ता, जयपुर–३।

३ उपाध्याय अमर मुनि—जैन मुनि, प्रवुद्ध चिन्तक, कवि और लेखक, राजगृह मे वीरायतन योजना के प्रेरक।

४ आचार्य श्री आनन्द ऋषि जी—जैन आचार्य, आगमवेत्ता और शास्त्रज्ञ।

५ श्री कन्हैयालाल लोढा—प्रवुद्ध चिन्तक, लेखक और स्वाध्यायी, अधिष्ठाता—श्री जैन शिक्षण सस्थान, गमललाजी का रास्ता, जयपुर–३।

६ डॉ कमलचन्द सोगानी—उदयपुर विश्वविद्यालय के दर्शन विभाग मे रीडर, जैन दर्शन के विद्वान और लेखक, 'Jain Ethics' पर शोध कार्य, १०६, अशोक नगर, उदयपुर।

७ डॉ कस्तूरचन्द कासलीवाल—जैन साहित्य के गवेपक विद्वान् और लेखक, राजस्थान के जैन ग्र थ भडार विपय पर शोध काय, श्री दि० जैन अ० क्षेत्र श्री महावीर जी, जयपुर के साहित्य-शोध विभाग के निदेशक, महावीर भवन, चौडा रास्ता, जयपुर–३।

८ डॉ कालूराम शर्मा—वनस्थली विद्यापीठ मे इतिहास विभाग के आचार्य एव अध्यक्ष।

९ डॉ के. ऋपभचन्द्र—गुजरात विश्वविद्यालय मे प्राकृत और पालि विभाग के अध्यक्ष, जैन साहित्य और दर्शन के विद्वान्, ३ यूनिवर्सिटी टीचर्स होस्टल, अहमदावाद–९।

१० डॉ कैलशचन्द जैन—विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन के इतिहास विभाग मे रीडर, प्राचीन इतिहास और पुरातत्व के विद्वान्, जैन धर्म और दर्शन के मर्मज्ञ। मोहन निवास, कोठी रोड, उज्जैन।

११ श्री गणपतिचन्द्र भण्डारी—जोधपुर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग मे प्राध्यापक, कवि, समालोचक और सम्पादक। कई सामाजिक व शैक्षणिक सस्थाओ से सम्बद्ध, ४८०-बी, तीसरी 'सी' सडक, सरदारपुरा, जोधपुर।

१२ श्री गिरिजाशकर शर्मा—राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर के सहायक निदेशक।

१३. श्री भंवरचन्द कानूगो—उत्साही सामाजिक कार्यकर्ता और प्रसिद्ध व्यवसायी, एनर्जी वेल्स मटल्स प्रा० लि० जोधपुर के प्रबन्ध सचालक।

१४ प० चैनसुखदास (स्व०)—जैनदर्शन के प्रसिद्ध विद्वान, और सामाजिक, धार्मिक एव साहित्यिक सस्थाओ के प्रेरणा स्रोत।

१५ डॉ० छविनाथ त्रिपाठी—कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग मे रीडर, हिन्दी-सस्कृत के विद्वान्, लेखक और समालोचक, जैनदर्शन और साहित्य के मर्मज्ञ, चम्पू काव्य पर शोध कार्य, डी-४६, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय परिसर, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)।

१६ श्री जोधसिंह मेहता—सेवा निवृत्त राजस्थान प्रशासनिक सेवा अधिकारी, देलवाडा मन्दिर, आबू के मुख्य प्रबन्धक।

१७ डॉ ज्योतिप्रसाद जैन—प्राचीन भारतीय इतिहास और पुरातत्त्व के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान्, लेखक और गवेषक, जैन-दशन के विशेषज्ञ, ज्योति निकुज, पान दरीबा, चार बाग, लखनऊ-१।

१८ आचार्य श्री तुलसी—जैन आचार्य, अणुव्रत-आन्दोलन के प्रवर्तक, आगमवेत्ता और शास्त्रज्ञ, कवि और प्रवुद्ध विचारक।

१९ श्री दुलीचन्द टाँक—जवाहरात के व्यवसायी, जौहरी बाजार, जयपुर-३।

२० डॉ देव कोठारी—राजस्थानी साहित्य और इतिहास के विद्वान्, राजस्थान विद्यापीठ साहित्य-सस्थान, उदयपुर के उपनिदेशक।

२१ मुनि श्री नथमल—जैन मुनि, जैन धर्म और दर्शन के मर्मज्ञ विद्वान् और प्रवुद्ध चिन्तक।

२२ डॉ नरपतचन्द सिंघवी—जोधपुर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग मे प्राध्यापक, लेखक और सम्पादक, निराला के कथा साहित्य पर शोध कार्य, मोतीलाल बिल्डिंग, जोधपुर।

२३ डॉ नरेन्द्र भानावत—राजस्थान विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग मे प्राध्यापक, आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार शोध प्रतिष्ठान, जयपुर के मानद निदेशक तथा 'जिनवाणी' के मानद सम्पादक। कवि और समीक्षक, 'राजस्थानी वेलि साहित्य' पर शोध कार्य, सी-२३५-ए, दयानन्द मार्ग, तिलकनगर, जयपुर-४।

२४ आचार्य श्री नानालालजी म०—जैन आचार्य, आगमवेत्ता और शास्त्रज्ञ, समतादर्शन के गूढ व्याख्याता।

२५ डॉ नेमिचन्द्र शास्त्री (स्व०)—सस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, काव्यशास्त्र, ज्योतिष, और जैन दर्शन के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान्, अनेक ग्रन्थो के लेखक।

२६ श्री परमानन्द चोयल—उदयपुर विश्वविद्यालय मे चित्रकला विभाग के अध्यक्ष, प्रसिद्ध चित्रकार।

२७ श्री पूर्णचन्द्र जैन—सर्वोदयी विचारक और लेखक, सामाजिक कार्यकर्ता, जयपुर।

२८ डॉ प्रेम सुमन जैन—उदयपुर विश्वविद्यालय मे सस्कृत विभाग मे प्राकृत के प्राध्यापक, सस्कृत, प्राकृत और जैन साहित्य के विद्वान्, 'कुवलयमाला का सास्कृतिक अध्ययन' विषय पर शोध कार्य, ४, रवीन्द्र नगर, उदयपुर।

२९ श्री प्रवीणचन्द जैन—सस्कृत साहित्य और जैनदर्शन के विद्वान्, कई साहित्यिक एव शैक्षणिक सस्थाओ से सबद्ध, वर्तमान मे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की सेवा निवृत्त शिक्षको की

४५ डॉ. रामगोपाल शर्मा—राजस्थान विश्वविद्यालय के इतिहास एव भारतीय सस्कृति विभाग मे रीडर, प्राचीन भारतीय इतिहास और सस्कृति के विशेषज्ञ, 'महाभारत में राजनीतिक चिन्तन और सस्थान, विषय पर शोध कार्य, सी–११, तिलक नगर, जयपुर–४।

४६. श्री रामबल्लभ सोमानी—इतिहास और पुरातत्त्व के गवेषक विद्वान, कानूनगो भवन, कल्याणजी का रास्ता, जयपुर–१ ।

४७ श्री रावत सारस्वत—हिन्दी-राजस्थानी के कवि और लेखक, मरुवाणी' राजस्थानी मासिक के सम्पादक, राजस्थान भाषा प्रचार सभा के सचिव, राजस्थान रेडक्रास सोसायटी के सगठन सचिव, डी–२८२ मीरा मार्ग, बनीपार्क, जयपुर–६ ।

४८ श्री रिखबराज कर्णावट—अभिभाषक, सर्वोदयी विचारक और सामाजिक कार्यकर्ता, ४४८ रोड, १ 'सी', सरदारपुरा, जोधपुर ।

४६ श्री रिषभदास राका—सुप्रसिद्ध समाजसेवी, कर्मठ कार्यकर्ता और लेखक, 'जैन जगत' के सम्पादक, भारत जैन महामण्डल एव महावीर कल्याण केन्द्र के मत्री, अनेक धार्मिक, शैक्षणिक एव सेवा-सस्थाओ से सम्बद्ध, लक्ष्मी महल, वमन जी पेटिट रोड, बम्बई–६१ ।

५०. उपाध्याय विद्यानन्द मुनि—जैन मुनि, जैनदर्शन और साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् प्रबुद्ध चिन्तक और प्रखर वक्ता ।

५१ डॉ विश्वम्भरनाथ उपाध्याय—राजस्थान विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग मे रीडर एव अध्यक्ष, कवि, उपन्यासकार और समीक्षक, ज्ञानमार्ग, तिलक नगर, जयपुर–४ ।

५२ डॉ (श्रीमती) शान्ता भानावत—विदुषी लेखिका, 'जिनवाणी' मासिक के सम्पादन मे सम्बद्ध, 'ढोला मारु रा दूहा का अर्थ वैज्ञानिक अध्ययन' विषय पर शोध कार्य, सी-२३५ ए, तिलक नगर, जयपुर–४ ।

५३ श्री श्रीचन्द जैन—सान्दीपनी स्नातकोत्तर महाविद्यालय के प्राचार्य, लेखक और समीक्षक, मोहन निवास, कोठी रोड, उज्जैन ।

५४ श्री सम्पतराज डोसी—स्था० जैन स्वाध्यायी सघ के सयोजक, जैन दर्शन के विशेषज्ञ, लेखक और प्रचारक घोडो का चौक, जोधपुर ।

५५ प सुखलाल सघवी—जैन धर्म और दर्शन के मर्मज्ञ विद्वान, पद्मभूषण अलकार से सम्मानित, अहमदाबाद ।

५६ मुनि श्री सुशीलकुमार—जैन मुनि, प्रबुद्ध चिन्तक और लेखक, विश्वधर्म सम्मेलन और अहिंसा शोधपीठ, दिल्ली के प्रेरक ।

५७ श्री सौभाग्यमल श्रीश्रीमाल—अवकाश प्राप्त प्रधानाध्यापक, लेखक और शिक्षाविद्, कई शैक्षणिक व सामाजिक सस्थाओ से सम्बद्ध, बी ८१, बापू नगर, जयपुर–४ ।

५८ आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज—जैन आचार्य, आगमवेत्ता और शास्त्रज्ञ, गवेपक विद्वान् और इतिहासज्ञ ।

४५ डॉ रामगोपाल शर्मा—राजस्थान विश्वविद्यालय के इतिहास एव भारतीय सस्कृति विभाग मे रीडर, प्राचीन भारतीय इतिहास और सस्कृति के विशेषज्ञ, 'महाभारत में राजनीतिक चिन्तन और सस्थान, विषय पर शोध कार्य, सी–११, तिलक नगर, जयपुर–४।

४६ श्री रामबल्लभ सोमानी—इतिहास और पुरातत्त्व के गवेषक विद्वान, कानूनगो भवन, कल्याणजी का रास्ता, जयपुर–१ ।

४७ श्री रावत सारस्वत—हिन्दी-राजस्थानी के कवि और लेखक, मरुवाणी' राजस्थानी मासिक के सम्पादक, राजस्थान भाषा प्रचार सभा के सचिव, राजस्थान रेडक्रास सोसायटी के सगठन सचिव, डी–२८२ मीरा मार्ग, वनीपार्क, जयपुर–६ ।

४८ श्री रिखबराज कर्णावट—अभिभाषक, सर्वोदयी विचारक और सामाजिक कार्यकर्ता, ४४८ रोड, १ 'सी', सरदारपुरा, जोधपुर ।

४९ श्री रिषभदास राका—सुप्रसिद्ध समाजसेवी, कर्मठ कार्यकर्ता और लेखक, 'जैन जगत' के सम्पादक, भारत जैन महामण्डल एव महावीर कल्याण केन्द्र के मत्री, अनेक धार्मिक, शैक्षणिक एव सेवा-सस्थाओ से सम्बद्ध, लक्ष्मी महल, वमन जी पेटिट रोड, बम्बई–६१ ।

५०. उपाध्याय विद्यानन्द मुनि—जैन मुनि, जैनदर्शन और साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् प्रबुद्ध चिन्तक और प्रखर वक्ता।

५१ डॉ विश्वम्भरनाथ उपाध्याय—राजस्थान विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग मे रीडर एव अध्यक्ष, कवि, उपन्यासकार और समीक्षक, ज्ञानमार्ग, तिलक नगर, जयपुर–४ ।

५२ डॉ (श्रीमती) शान्ता भानावत—विदुषी लेखिका, 'जिनवाणी' मासिक के सम्पादन मे सम्बद्ध, 'ढोला मारु रा दूहा का अर्थ वैज्ञानिक अध्ययन' विषय पर शोध कार्य, सी-२३५ ए, तिलक नगर, जयपुर–४ ।

५३ श्री श्रीचन्द जैन—सान्दीपनी स्नातकोत्तर महाविद्यालय के प्राचार्य, लेखक और समीक्षक, मोहन निवास, कोठी रोड, उज्जैन ।

५४ श्री सम्पतराज डोसी—स्था० जैन स्वाध्यायी सघ के सयोजक, जैन दर्शन के विशेषज्ञ, लेखक और प्रचारक घोडो का चौक, जोधपुर ।

५५ प. सुखलाल सघवी—जैन धर्म और दर्शन के मर्मज्ञ विद्वान, पद्मभूषण अलकार से सम्मानित, अहमदाबाद ।

५६ मुनि श्री सुशीलकुमार—जैन मुनि, प्रबुद्ध चिन्तक और लेखक, विश्वधर्म सम्मेलन और अहिंसा शोधपीठ, दिल्ली के प्रेरक ।

५७ श्री सौभाग्यमल श्रीश्रीमाल—अवकाश प्राप्त प्रधानाध्यापक, लेखक और शिक्षाविद्, कई शैक्षणिक व सामाजिक सस्थाओ से सम्बद्ध, बी ८१, बापू नगर, जयपुर–४ ।

५८ आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज—जैन आचार्य, आगमवेत्ता और शास्त्रज्ञ, गवेषक विद्वान् और इतिहासज्ञ ।